प्रकाशकः—
चतुरसेन गुप्त
प्रबन्धक
महाभारत कार्यालय
दिल्ली



मुद्रकः—
डा० प्यारेलाल गुप्त L. M. P.
संस्कृत यन्त्रालय
शामली (मुजफ्फरनगर) U. P.

नम्र-निवेदन

माननीय महोदय :—

महाभारत के प्रकाशन में हमें जिस कठिनाई का सामना करना पड़ रहा है उसे हमारे माननीय ग्राहक महोदय अच्छी तरह जानते हैं। इस विश्वव्यापी महायुद्ध के कारण कागज, सियाही, गत्ता १
कपड़ा आदि की भयंकर तेजी भी किसी से छिपी नहीं है। इस परिस्थिति में भी हम इसे उसी मूल्य में प्रकाशित कर रहे हैं। और पृष्ठ संख्या भी बहुत अधिक करदी है।

हमारा उद्देश्य तो महाभारत को सम्पूर्ण प्रकाशित कर देना ६
है चाहें इसमें कितनी भी कठिनाई उठानी पड़े। यद्यपि हम अब तक महाभारत के प्रकाशन में ५०००) से अधिक का घाटा उठा चुके हैं तथापि हम महाभारत के प्रकाशन की प्रतिज्ञा को पूर्ण करने पर ही तुले हुए हैं हानि या लाभ स्थायी नहीं रहते-यह ४
सोचकर ही हम इसके प्रकाशन में जुटे हुए हैं।

हम अपने ग्राहक महानुभावों से यह निवेदन करना चाहते हैं कि इस पवित्र कार्य में आप भी हाथ बढ़ावें, और कम से कम किसी एक मित्र को नया ग्राहक बनवादें। तथा "मंडल" द्वारा प्रकाशित कौटलीय अर्थ शास्त्र की एक प्रति का आर्डर देकर भी मण्डल को उत्साहित करें। ४

निवेदक—
चतुरसेन गुप्त

शामली

महाभारत के तेरहवें भाग

की

विषयानु-क्रमणिका

—***—

कर्ण पर्व



वर्णाश्रम और राजधर्म के एक महान् ग्रन्थ का प्रकाशन

आचार्य चाणयक के अर्थशास्त्र से भी प्राचीन

श्रीशुक्राचाय जी महाराज लिखित।

शुक्र-नीति

हिन्दू राज नीति के प्रधान ग्रन्थ कौटलीय अर्थ शास्त्र को भाषानुवाद सहित मंडल ने प्रकाशित करके आपकी सेवा में उपस्थित कर ही दिया है। हम बड़ी प्रसन्नता से यह निवेदन करते हैं कि हमारे इस "अर्थशास्त्र" का हिन्दू जगत् में बड़ा स्वागत हुआ, धड़ाधड़ आर्डर आये, बड़े बड़े महाराजाओं, प्रोफेसरों, आचार्यों तथा अनेक संस्थाओं, ने बड़ी सहानुभूति के साथ अपनाया है। हिन्दू जनता की अपने प्राचीन ग्रन्थों की ओर बढ़ती हुई इस रुचि को देखकर यह निस्संदेह कहा जा सकता है कि अब हिन्दू राष्ट्र का अभ्युत्थान होने वाला है। महाभारत और कौटलीय अर्थशास्त्र के पश्चात् अब यह तीसरा महान् ग्रन्थ शुक्रनीति भाषानुवाद सहित शीघ्र प्रकाशित किया जारहा है, इस महान ग्रन्थ में वर्णाश्रमधर्म, राजधर्म का पूरा पूरा वर्णन है साथ ही इसमें युद्ध के उपयोगी—

तोप, गोले, बारुद,

आदि बनाने के प्रकार और नुसखे भी लिखे हैं जिन्हें देखकर आप दंग रहजावेंगे। वास्तव में हिन्दू राष्ट्र के यह ग्रन्थ-रत्न अभी तक सर्वसाधारण की दृष्टि से ओझल थे।

इस ग्रन्थ में लग भग २५०० श्लोक हैं महाभारत साईज के ७०० पृष्ठ होंगे। बढ़िया कागज और अजिल्द का मूल्य लागत मात्र प्रचारार्थ केवल १॥) होगा। आज ही एक प्रति का आर्डर भेजदीजिए। महाभारत कार्यालय, दिल्ली,

राजपूतों की अमर कीर्ति का दिग्दर्शन

१२२ वर्ष पुराने राजपूताने के पोलिटिकल एजेंट

कर्नल टाड की लेखनी से लिखा हुआ

टाड राजस्थान

हिन्दी में सम्पूर्ण प्रकाशित करने की विराट आयोजना

यह महान् ग्रन्थ

लै० कर्नल जेम्स टाड ने सन् १८१७ ईसवी में जिस समय वे राजपूताने के पोलिटिकल एजेन्ट थे राजपूताने भर के ग्रामों, कस्बों, राजधानियों, राजघरानों, ऊँचे २ पहाड़ों पर बने हुए विशाल दुर्गों, महाराणा प्रताप की प्रसिद्ध रणस्थली "हल्दी घाटी" जैसे दुर्गम स्थानों में लगातार १० वर्ष तक घूम २ कर एवं राजपूताने के राजाओं सरदारों, अमीर-उमरावों तथा राजपण्डितों पुरोहितों चारण, भाटों और अनेक कवियों से मिल जुलकर राजपूताने का विस्तृत इतिहास तय्यार किया था। यह महान् ग्रन्थ जहां राजपूताने का प्रामाणिक इतिहास है वहां राजपूतानेकी अद्भुत वीरता, अनुपम त्याग, और आदर्श बलिदान का खजाना है।

यह महान् ग्रन्थ लंदन में

कितनी ही वार लाखों की संख्या में छप कर धड़ा-धड़ बिकता रहा है उसी महान् ग्रन्थ को हम अंग्रेजी से हिन्दी भाषा में अविकल अनुवाद सहित प्रकाशित कर रहे हैं। यह विशाल ग्रन्थ बड़े साईज के १५०० पृष्ठों में समाप्त होगा। मोती सी छपाई, बढ़िया कागज और बहुत मोटी मोटी दो जिल्दों में होगा। मूल्य केवल १०) रखा जावेगा। परन्तु अभी से आर्डर देने वाले सज्जनों को ८) में मिलेगा अब तक यह ग्रन्थ हिन्दी में २४) में बिकता था।

महाभारत कार्यालय, दिल्ली।

वर्णा

जर्मन की जहरीली गैसों से क्यों हैरान होते हो ?

क्योंकि इस प्रकार की बातें तो भारत के प्राचीन सम्राट् चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधान मन्त्री आचार्य चाणक्य ने आज से २२०० वर्ष पूर्व अपने महान् ग्रन्थ

❀ कौटलीय अर्थशास्त्र ❀

में लिख दी थी, लेकिन यह शास्त्र भारतीयों को नसीब नहीं था, सबसे पहले जर्मनी में छपा था और ७८) में बिकता था। इस ग्रन्थ में राजनीति की सभी बातों को विस्तार पूर्वक लिखा है और युद्ध विद्या का वर्णन करते समय महीनों भूख प्यास नष्ट करने के कितने ही नुस्खे, शत्रु की फौजों को अन्धा और पागल करने की गैसें, आग बरसाने के उपाय, रात में देखने के नुस्खे, दुश्मन को सुला देना वाली गोली, आदि २ हजारों बातें भरी पड़ी हैं।

इसी ग्रन्थ में खुफिया पुलिस की स्थापना और खोज करने के प्रकार, राज दरबारों की रचना, राजाओं, राजकुमारों, रानियों और राज मन्त्रियों के कर्तव्यों का ब्योरे वार वर्णन है इस ग्रन्थ की एक एक बात लाखों रुपयों से भी सस्ती है। यह ग्रन्थ जहाँ राजनैतिक क्षेत्र में सर्वोत्तम है वहाँ इसके ५०१ सूत्र धार्मिक जगत् में उच्चकोटि के हैं। यह वही शास्त्र है जिसे:—

बम्बई यूनिवर्सिटी ने B. A. कोर्स में, बनारस यूनिवर्सिटी ने आचार्य और कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने प्रथमा और मध्यमा में स्वीकार किया है।

यह महान् ग्रन्थ बड़े साईज के ७०० पृष्ठों में छपा है, फस्ट क्लास पेपर, मोती सी छपाई और सुन्दर जिल्द बन्धी होने पर भी मूल्य केवल ६) है डाक खर्च १-) हम देंगे। केवल एक प्रति मंगाकर देखें।

महाभारत कार्यालय दिल्ली।



॥ श्री महर्षिव्यासप्रणीतम् ॥

महाभारतम्

कर्ण पर्व



तेरहवां भाग



पहला अध्याय

॥ श्रीगणेशाय नमः ॥ ॥ श्रीवेदव्यासाय नमः ॥

नारायणं नमस्कृत्य नरं चैव नरोत्तमम् ।
देवीं सरस्वतीं चैव ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥

वैशम्पायन उवाच—

ततो द्रोणे हते राजन्दुर्योधनमुखा नृपाः ।
भृशमुद्विग्नमनसो द्रोणपुत्रमुपागमन् ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे राजन् ! जब द्रोणाचार्य मारे जा चुके-तो राजा दुर्योधन आदि आदि कौरव वीर, अत्यन्त उदास हो गए । अब वे सब मिलकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के पास पहुंचे ॥१॥

ते द्रोणमनुशोचन्तः कश्मलाभिहतौजसः ।
पर्युपासन्त शोकार्तास्ततः शारद्वतीसुतम् ॥२॥

ये आचार्य द्रोण का बड़ा शोक मान रहे थे । इस शोक से उनका सारा तेज नष्ट हो गया था । ये शोकातुर हुए शारद्वती (कृपी) के पुत्र महारथी अश्वत्थामा के चारों ओर बैठ गए ॥२॥

ते मुहूर्तं समाश्वस्य हेतुभिः शास्त्रसंमितः ।
रात्र्यागमे महीपालाः स्वानि वेश्मानि भेजिरे ॥३॥

इन्होंने थोड़ी देर तक शास्त्र सम्मत युक्तियों द्वारा अश्वत्थामा को सान्त्वना दी । जब रात होगई-तो ये राजा लोग, अपने २ वेश्मों (खेमों) में चले गए ॥३॥

ते वेश्मस्वपि कौरव्य पृथ्वीशा नाप्नुवन्सुखम् ।
चिन्तयन्तः क्षयं तीव्रं दुःखशोकसमन्विताः ॥४॥

हे कौरव्य ! अब इन राजा लोगों को अपने स्थानों पर भी चैन नहीं पड़ा । ये अपना तीव्र विनाश देखकर बड़ी चिन्ता में पड़ गए ॥४॥

विशेषतः सूतपुत्रो राजा चैव सुयोधनः ।
दुःशासनश्च शकुनिः सौवलश्च महाबलः ॥५॥
उषितास्ते निशां तां तु दुर्योधननिवेशने ।
चिन्तयन्तः परिक्लेशान्पाण्डवानां महात्मनाम् ॥६॥

इस समय सूत-पुत्र कर्ण, राजा सुयोधन, महाबली दुःशासन, सुवल-पुत्र शकुनि, वहुत ही चिन्तातुर हुए और महात्मा पाण्डवों को वे पूर्व में दिये हुए क्लेशों का विचार करके चिन्ता करते हुए उस रात राजा दुर्योधन के स्थान पर ही सो गए ॥५-६॥

यत्तद्द्यूते परिक्लिष्टा कृष्णा चानायिता सभाम् ।
तत्स्मरन्तोऽनुशोचन्तो भृशमुद्विग्नचेतसः ॥७॥

हे भारत ! द्यूत के समय जो खैंचकर द्रौपदी को सभा में लाये थे-उस घटना को सोचकर तो ये बहुत ही भयातुर होकर चिन्ता करने लगे ॥७॥

तथा तु सञ्चिन्तयतां तान्क्लेशान्द्यूतकारितान् ।
दुःखेन क्षणदा राजञ्जगामाब्दशतोपमा ॥८॥

हे राजन् ! द्यूत में दिये हुए क्लेशों को सोचते २ इनको रात भर नींद न आई और इनको यह रात दुःख के साथ सौ वर्ष के तुल्य व्यतीत हुई ॥८॥

ततः प्रभाते विमले स्थिता दिष्टस्य शासने ।
चक्रुरावश्यकं सर्वे विधिदृष्टेन कर्मणा ॥ ९ ॥

इसके अनन्तर प्रातःकाल होते ही दैव के चक्कर में पड़े हुए कौरव वीरों ने शास्त्र विधि के अनुसार सन्ध्या वन्दनादि प्रातःकाल का कृत्य किया ॥९॥

ते कृत्वावश्यकार्याणि समाश्वस्य च भारत ।
योगमाज्ञापयामासुर्युद्धाय च विनिर्ययुः ॥१०॥
कर्णं सेनापतिं कृत्वा कृतकौतुकमङ्गलाः ।
पूजयित्वा द्विजश्रेष्ठान्दधिपात्रघृताक्षतैः ॥११॥
गोभिरश्वैश्च निष्कैश्च वासोभिश्च महाधनैः ।
वन्द्यमाना जयाशीर्भिः सूतमागधवन्दिभिः ॥१२॥

हे भारत ! इन कौरव वीरों ने अपनी आवश्यक क्रियाओं को करके और कुछ आश्वासन लेकर सारथियों को सवारी जोड़कर लाने की आज्ञा दी । इन्होंने अपने विश्वास के अनुसार मङ्गलीक चिन्ह धारण किये । दधिपात्र घृत और अक्षत आदि का स्पर्श किया । गौ, अश्व, कण्ठा भूषण, बहुत मूल्य के वस्त्र आदि के दान द्वारा उत्तम २ ब्राह्मणों की पूजा करके तथा सूत मागध और वन्दियों द्वारा जय और आशीर्वाद ग्रहण करते हुए ये लोग, अङ्गराज कर्ण को अपना सेनापति बनाकर युद्ध के लिए चल पड़े ॥१०-१२॥

तथैव पाण्डवा राजन्कृतपूर्वाह्णिकक्रियाः ।
शिबिरान्निर्ययुस्तूर्णं युद्धाय कृतनिश्चयाः ॥१३॥

हे राजन् ! इसी तरह पाण्डव भी प्रातःकाल के सन्ध्या हवन आदि को पूरा करके बड़ी शीघ्रता से अपने शिबिर (खेमों से युद्ध के निमित्त निकल पड़े ॥१३॥

ततः प्रववृते युद्धं तुमुलं लोमहर्षणम् ।
कुरूणां पाण्डवानां च परस्परजयैषिणाम् ॥१४॥

अब परस्पर विजयाभिलाषी इन कौरव और पाण्डवों का रोमाञ्च खड़े कर देने वाला महाघोर युद्ध होने लगा ॥१४॥

तयोर्द्वौ दिवसौ युद्धं कुरुपाण्डवसेनयोः ।
कर्णे सेनापतौ राजन्बभूवाद्भुतदर्शनम् ॥१५॥

हे राजन् ! महारथी कर्ण के सेनापतिकाल में इन कौरव और पाण्डवों का दो तीन दिन तक बड़ा ही अद्भुत युद्ध होता रहा ॥१५॥

ततः शत्रुक्षयं कृत्वा सुमहान्तं रणे वृषः ।
पश्यतां धार्त्तराष्ट्राणां फाल्गुनेन निपातितः ॥१६॥

हे भरतर्षभ ! महाघोर युद्ध में अपने शत्रु पाण्डवों की सेना का बहुत भारी विनाश करने वाले कर्ण को तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन आदि के देखते २ रण में अर्जुन ने मार गिराया ॥१६॥

ततस्तु सञ्जयः सर्वं गत्वा नागपुरं द्रुतम् ।
आचष्ट धृतराष्ट्राय यद्वृत्तं कुरुजाङ्गले ॥१७॥

कर्ण के मरते ही सञ्जय बड़ी तीव्र गति से हस्तिनापुर पहुंचे, और जो कुछ कुरुजाङ्गल प्रदेश में हो रहा था-उस सारे वृत्तान्त को राजा धृतराष्ट्र को जा सुनाया ॥१७॥

जनमेजय उवाच—

आपगेयं हतं श्रुत्वा द्रोणं चापि महारथम् ।
आजगाम परामार्तिं वृद्धो राजाम्बिकासुतः ॥१८॥
स श्रुत्वा निहतं कर्णं दुर्योधनहितैषिणम् ।
कथं द्विजवर प्राणानधारयत दुःखितः ॥ १९ ॥
यस्मिञ्जयाशां पुत्राणां सममन्यत पार्थिवः ।
तस्मिन्हते स कौरव्यः कथं प्राणानधारयत् ॥२०॥

जनमेजय ने कहा—हे ब्रह्मन् ! महारथी भीष्म और आचार्य द्रोण का मरण सुनकर ही अम्बिका-पुत्र वृद्ध राजा धृतराष्ट्र को दुःख हुआ था । अब वह, राजा दुर्योधन के हित में तत्पर अङ्गराज कर्ण की मृत्यु सुनकर तो बहुत ही दुःखी हुआ होगा । इस दुःख की अवस्था में वह किस प्रकार अपने प्राणों को धारण किये रहा । वह तो इस कर्ण पर ही अपने पुत्रों की विजय का भार मान रहा था । जब इस प्रकार आशा का अवलम्बतन्तु कर्ण ही नष्ट हो गया तो फिर भी कुरुवंश श्रेष्ठ राजा धृतराष्ट्र कैसे जीवित बने रहे ॥१८-२०॥

दुर्मरं तदहं मन्ये नृणां कृच्छ्रेऽपि वर्त्तताम् ।
यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा नात्यजज्जीवितं नृपः ॥२१॥

हे ब्रह्मर्षे ! अब मुझे तो यह जच गया, कि मनुष्य को विपत्ति में मृत्यु भी दुर्लभ होती है । यही कारण है, कि कर्ण

को मृत्यु प्राप्त कर लेने पर भी राजा धृतराष्ट्र अपने जीवन को नहीं छोड़ सकता ॥२१॥

तथा शान्तनवं वृद्धं ब्रह्मन्बाह्लीकमेव च ।
द्रोणं च सोमदत्तं च भूरिश्रवसमेव च ॥२२॥
तथैव चाऽन्यान्सुहृदः पुत्रान्पौत्रांश्च पातितान् ।
श्रुत्वा यन्नाजहात्प्राणांस्तन्मन्ये दुष्करं द्विज ॥२३॥

हे ब्रह्मन् ! शान्तनु-पुत्र भीष्म, वृद्ध बाल्हीक, द्रोणाचार्य, राजा सोमदत्त, भूरिश्रवा, ऐसे ही अन्य अपने पक्ष के राजा महाराजा और पुत्र तथा पौत्रों को रण में प्राण छोड़ते देखकर भी जो राजा धृतराष्ट्र अपने प्राणों को नहीं छोड़ सका-यह मैं बहुत ही क्लेश की दुष्कर बात समझता हूं ॥२२-२३॥

एतन्मे सर्वमाचक्ष्व विस्तरेण महामुने ।
न हि तृप्यामि पूर्वेषां शृण्वानश्चरितं महत् ॥२४॥

इति श्री महाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि जनमेजयवाक्यं नाम प्रथमोऽध्यायः ॥ १ ॥

हे महामुने ! अब तुम मुझे इस सबको विस्तार पूर्वक सुनाओ । मुझे अपने पूर्वजों के चरित सुनते २ तृप्ति नहीं होती है ॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में जनमेजय के प्रश्न का पहिला अध्याय समाप्त हुआ ।



दूसरा अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

हते कर्णे महाराज निशि गावल्गणिस्तदा ।
दीनो ययौ नागपुरमश्वैर्वातसमैर्जवे ॥१॥

वैशम्पायन बोले—हे महाराज जब अङ्गराज कर्ण मारे जा चुके-तो गवल्गण पुत्र सञ्जय वायु के समान वेग वाले अश्वों से रात में ही हस्तिनापुर पहुंचे। इस समय इनकी दशा बहुत ही हीन हो रही थी ॥१॥

स हास्तिनपुरं गत्वा भृशमुद्विग्नचेतनः ।
जगाम धृतराष्ट्रस्य क्षयं प्रक्षीणबान्धवम् ॥२॥

अत्यन्त उद्विग्न चित्तधारी, सञ्जय, हस्तिनापुर पहुंच कर बन्धु-बान्धुओं के नष्ट होने से शून्य, राजा धृतराष्ट्र के भवन पर पहुंचा ॥२॥

स तमुद्वीक्ष्य राजानं कश्मलाभिहतौजसम् ।
ववन्दे प्राञ्जलिर्भूत्वा मूर्ध्ना पादौ नृपस्य ह ॥३॥

सञ्जय, शोक से नष्ट ओज वाले, राजा धृतराष्ट्र को देख कर उस के पास पहुंचे और हाथ जोड़ कर उसके चरणों में अपना मस्तक झुकाकर उसको प्रणाम किया ॥३॥

सम्पूज्य च यथान्यायं धृतराष्ट्रं महीपतिम् ।
हा कष्टमिति चोक्त्वा स ततो वचनमाददे ॥४॥

राजा धृतराष्ट्र का राजकीय विधि के अनुसार आदर प्रदर्शित करके सञ्जय कहने लगा, कि बहुत ही चिन्ता की बात उपस्थित होती जा रही है ॥४॥

सञ्जयोऽहं क्षितिपते कच्चिदास्ते सुखं भवान् ।
स्वदोषैरापदं प्राप्य कच्चिनाद्य विमुह्यति ॥५॥

हे महीपते ! मैं सञ्जय हूँ और आपके पास आया हूँ-आप का शरीर तो सुखी है । अपने दोष से विपत्ति प्राप्त करने वाले आप को अब कुछ अधिक क्लेश तो नहीं हो रहा है ॥५॥

हितान्युक्तानि विदुरद्रोणगाङ्गेयकेशवैः ।
अगृहीतान्यनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् । ६॥

महात्मा विदुर, द्रोण, गङ्गा-पुत्र भीष्म और श्री कृष्ण ने तुम को बार २ हित की बात सुझाई परन्तु तुमने उनको ग्रहण नहीं किया इस बात को स्मरण करके आप को दुःख तो नहीं हो रहा है ॥६॥

रामनारदकण्वाद्यैर्हितमुक्तं सभातले ।
न गृहीतमनुस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥७॥

हे राजन ! परशुराम, नारद और कण्व आदि महर्षियों ने तुम्हें तुम्हारा हित सुझाया था-उसको भी तुमने ग्रहण नहीं किया-यह स्मरण करके तुम्हारे मित्र को कोई खेद तो नहीं हो रहा है ॥७॥

सुहृदस्त्वद्धिते युक्तान्भीष्मद्रोणमुखान्परैः ।
निहतान्युधि संस्मृत्य कच्चिन्न कुरुषे व्यथाम् ॥८॥

जो तुम्हारे हितकारी भीष्म, द्रोण आदि व्यक्ति थे, उनको शत्रुओं ने युद्ध में मार गिराया-इस बातका स्मरण करके तो तुम कोई कष्ट नहीं मान रहे हो॥८॥

तमेवंवादिनं राजा सूतपुत्रं कृताञ्जलिम् ।
सुदीर्घमथ निःश्वस्य दुःखार्तं इदमब्रवीत् ॥९॥

हे जनमेजय! हाथ जोड़ कर खड़े हुए,सूतपुत्र सञ्जय को इस प्रकार कहते हुए देख कर राजा धृतराष्ट्र ने लम्बी सांस ली और दुःख के साथ उस से यह वचन कहा ॥९॥

धृतराष्ट्र उवाच—

आपगेये हते शूरे दिव्यास्त्रवति सञ्जय ।
द्रोणे च परमेष्वासे भृशं मे व्यथितं मनः ॥१०॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय!

दिव्य अस्त्रधारी गङ्गापुत्र शूरवीर भीष्म तथा महाधनुर्धर आचार्य द्रोण के मारे जाने पर मेरा मन बहुत व्यथित हो रहा है ॥१०॥

यो रथानां सहस्राणि दंशितानां दशैव तु ।
अहन्यहनि तेजस्वी निजघ्ने वसुसम्भवः ॥११॥
तं हतं यज्ञसेनस्य पुत्रेणेह शिखण्डिना ।
पाण्डवेयाभिगुप्तेन श्रुत्वा मे व्यथितं मनः ॥१२॥

जो तेजस्वी भीष्म, दश सहस्र सजे हुए शत्रु के रथों को नित्य मार लेता था, उसी वसुदेवता के तेज से उत्पन्न भीष्म को राजा

द्रुपद के पुत्र शिखण्डी ने अर्जुन से सुरक्षित होकर मार गिराया-इस बात का स्मरण करके मेरा मन बहुत ही चिन्तातुर होता है ॥११-१२॥

भार्गवः प्रददौ यस्मै परमास्त्रं महाहवे ।
साक्षाद्रामेण यो बाल्ये धनुर्वेद उपाकृतः ॥१३॥
यस्य प्रसादात्कौन्तेया राजपुत्रा महारथाः ।
महारथत्वं संप्राप्तास्तथान्ये वसुधाधिपाः ॥१४॥
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा धृष्टद्युम्नेन संयुगे ।
सत्यसन्धं महेष्वासं भृशं मे व्यथितं मनः ॥१५॥

हे सूत ! महायुद्ध में काम देने वाले बड़े अस्त्रोंको भृगुवं परशुराम ने जिनको प्रदान किए । बाल्यावस्था में परशुराम ने ह जिनको स्वयं धनुर्वेद सिखाया । जिन के अनुग्रह से कुन्ती-पुत्र राजकुमार महारथी पाण्डव, और अन्य राजा गण, महारथी को प्राप्त कर सके-उन्हीं आचार्य द्रोण का रण में धृष्टद्युम्न द्वा वध सुनकर मेरा मन बड़ा ही चिन्तातुर हो रहा है । ये मह धनुर्धर और बड़े ही सत्य प्रतिज्ञाधारी थे ॥१३-१५॥

ययोर्लोके पुमानस्त्रे न समोऽस्ति चतुर्विधे ।
तौ द्रोण भीष्मौ श्रुत्वा तु हतौ मे व्यथितं मनः ॥१६॥

जिन वीरों के समान चारों प्रकार (मुक्त, अमुक्त, मन्त्र-मु और मुक्तामुक्त) के अस्त्र शस्त्रों में कोई भी समान नहीं था, उ

द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह की मृत्यु सुनकर मेरा मन अत्यन्त क्लेशातुर हो रहा है ॥१६॥

त्रैलोक्ये यस्य चाऽस्त्रेषु न पुमान्विद्यते समः ।
तं द्रोणं निहतं श्रुत्वा किमकुर्वत मामकाः ॥१७॥

जिसकी अस्त्र विद्या की जोड़ का पुरुष त्रिलोकी में भी नहीं मिलता था-उसी द्रोण की मृत्यु सुनकर मेरे पुत्रों ने क्या किया-जरा यह तो बताओ ॥१७॥

संशप्तकानां च बले पाण्डवेन महात्मना ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमिते यमसादनम् ।
नारायणास्त्रे च हते द्रोणपुत्रस्य धीमतः ॥१८॥
विप्रद्रुतेष्वनीकेषु किमकुर्वत मामकाः ।

पाण्डु-पुत्र महावीर अर्जुन ने जब संशप्तकों की सेना को मार २ कर यमपुरी भेज दिया और द्रोण-पुत्र महा-बुद्धिमान अश्वत्थामा का नारायणास्त्र भी नष्ट कर दिया-इस समय जब सेना भाग निकली-तो मेरे पुत्र क्या कर सके ॥१८॥

विप्रद्रुतानहं मन्ये निमग्नाञ्शोकसागरे ॥१९॥
प्लवमानान्हते द्रोणे सन्ननौकानिवार्णवे ।
दुर्योधनस्य कर्णस्य भोजस्य कृतवर्मणः ॥२०॥
मद्रराजस्य शल्यस्य द्रौणेश्चैव कृपस्य च ।
मत्पुत्रस्य च शेषस्य तथान्येषां च सञ्जय ॥२१॥

विपद्रुतेष्वनीकेषु मुखवर्णोऽभवत्कथम् ।
एतत्सर्वं यथा वृत्तं तथा गावल्गणे मम ॥२२॥
आचक्ष्व पाण्डवेयानां मामकानां च विक्रमम् ।

हे सञ्जय मेरे ध्यान (ख्याल) में तो यह भी शोक सागर में डूबकर भाग निकले होंगे, क्योंकि द्रोणाचार्य के मरने से तो इन की दशा यही हो गई होगी-जो नौका के टूटने पर समुद्र में यात्रियों की होती है। राजा दुर्योधन, कर्ण, भोजवंशोद्भव कृतवर्मा मद्रराज, शल्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, मेरे अन्य शेष पुत्र तथा अन्य राजकुमारों की भागने के समय मुख-कान्ति कैसी हो गई। हे गवल्गण-पुत्र ! यह जो कुछ जैसे २ हुआ तथा पाण्डव और मेरे पुत्रों ने जो २ पराक्रम के कार्य किये-वे सब तुम मुझे सुनाओ ॥१६-२२॥

सञ्जय उवाच —

तवापराधाद्यद्वृत्तं कौरवेयेषु मारिष ॥२३॥
तच्छ्रुत्वा मा व्यथां कार्षीर्दिष्टे न व्यथते बुधः ।
यस्मादभावी भावी वा भवेदर्थो नरं प्रति ।
अप्राप्तौ तस्य वा प्राप्तौ न कश्चिद्व्यथते बुधः ॥२४॥

सञ्जय ने कहा—हे आर्यवृत्त ! जो कुछ कौरवों पर बीती है वह सब तुम्हारे अपराधरूपी वृक्ष के फल हैं। अब तुम इन वृत्तान्तों को सुनते हुए व्यथित नहीं होना, क्योंकि दैव &

अवश्य की आने वाली बात पर विद्वान शोक नहीं किया करते। कारण से होनहार हो या अनहोनी हो-जो कुछ भी सम्भव असम्भव हो जावे तथा जो नहीं प्राप्त होने वाली बात सामने आ खड़ी हो-तो उससे बुद्धिमान दुःखी नहीं होते ॥२३-२४॥

धृतराष्ट्र उवाच—

न व्यथाभ्यधिका काचिद्विद्यते मम सञ्जय ।
दिष्टमेतत्पुरा मन्ये कथयस्व यथेच्छकम् ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रसञ्जयसंवादे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! मुझे इसके सुनने में कोई अधिक पीड़ा नहीं होती है-क्योंकि मैं तो यह पहिले ही समझ रहा हूं, कि यह सब कुछ दैव करा रहा है। तुम निःशङ्क होकर सब कुछ कहो ॥२५॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत द्रोणपर्व में राजा धृतराष्ट्र और सञ्जय के सम्वाद का दूसरा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



तीसरा अध्याय

सञ्जय उवाच—

हते द्रोणे महेष्वासे तव पुत्रा महारथाः ।
बभूवुरस्वस्थमुखा विषण्णा गतचेतसः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरत श्रेष्ठ ! जब महाधनुर्धर द्रोणाचार्य मारे जा चुके-तो तुम्हारे महारथो पुत्र, बड़े अस्वस्थ हुए और वे चिन्तातुर होकर मूर्च्छित से हो गए ॥१॥

अवाङ्मुखाः शस्त्रभृतः सर्व एव विशाम्पते ।
अवेक्षमाणाः शोकार्त्ता नाभ्यभाषन्परस्परम् ॥२॥

हे विशाम्पते ! इन्होंने शस्त्र धारण कर रखे थे । परस्पर एक दूसरे की ओर देखकर भी शोक से व्याप्त हुए ये कुछ बोल नहीं पाते थे ॥२॥

तान्दृष्ट्वा व्यथिताकारान्सैन्यानि तव भारत ।
ऊर्ध्वमेव निरैक्षन्त दुःखत्रस्तान्यनेकशः ॥३॥

हे भारत ! जब अपने सेनापतियों को तुम्हारी सेना ने इस प्रकार चिन्तित देखा-तो वह भी अनेक बातें विचार कर घबड़ा उठी और ऊपर की ओर देखने लगी ॥३॥

शस्त्राण्येषां तु राजेन्द्र शोणिताक्तानि सर्वशः ।
प्राभ्रश्यन्त कराग्रेभ्यो दृष्ट्वा द्रोणं हतं युधि ॥४॥

हे राजेन्द्र ! इन महावीरों के शस्त्र सब ओर से रक्त में रञ्जित हो रहे थे, द्रोणाचार्य के रण में मृत हो जाने पर ये शस्त्र भी उन वीरों के हाथ से छुट पड़े ॥४॥

तानि बद्धान्यरिष्टानि लम्बमानानि भारत ।
अदृश्यन्त महाराज नक्षत्राणि यथा दिवि ॥५॥

हे भरत वंशोद्भव ! राजन ! वे बँधे हुए और लटकते हुए शस्त्रास्त्र, गिरते हुए ऐसे प्रतीत हुए जैसे आकाश से नक्षत्र टूट २ कर गिर रहे हों ॥५॥

तथा तु स्तिमितं दृष्ट्वा गतसत्त्वमवस्थितम् ।
बलं तव महाराज राजा दुर्योधनोऽब्रवीत ॥६॥
भवतां बाहुवीर्यं हि समाश्रित्य मया युधि ।
पाण्डवेयाः समाहूता युद्धं चेदं प्रवर्तितम् ॥७॥
तदिदं निहते द्रोणे विषण्णमिव लक्ष्यते ।
युध्यमानाश्च समरे योधा वध्यन्ति सर्वशः ॥८॥

हे महाराज ! इस प्रकार जड़ी भूत, प्राणहीनता के साथ स्थित तुम्हारी सेना को देखकर राजा दुर्योधन ने कहा—हे-महीपतियों ! मैंने तो तुम्हारी भुजाओं के पराक्रम का आश्रय लेकर ही पाण्डवों को युद्ध का निमन्त्रण दिया और इस युद्ध को जारी किया है। आज द्रोणाचार्य के मरने से तुम लोग दुःखी दिखाई दे रहे हो तथा यह समझ रहे हो कि रण में युद्ध करते हुए कौरव वीर नष्ट होते जा रहे हैं ॥६-८॥

जयो वापि वधो वापि युध्यमानस्य संयुगे ।
भवेत्किमत्र चित्रं वै युध्यध्वं सर्वतोमुखाः ॥९॥

हे नृपो ! जय या पराजय यह तो लड़ने वालों में एक को मिलती ही है । इसमें अद्भुतता क्या है । तुम लोग तो सन्नद्ध होकर सब ओर से युद्ध में जुट जाओ ॥९॥

पश्यध्वं च महात्मानं कर्णं वैकर्त्तनं युधि ।
प्रचरन्तं महेष्वासं दिव्यैरस्त्रैर्महाबलम् ॥१०॥

अब तुम लोग, युद्ध में सूर्य पुत्र महावीर कर्ण का घूमना देखना । यह महाधनुर्धर बड़े २ दिव्य अस्त्रों से सम्पन्न होने से अत्यन्त बल सम्पन्न है ॥१०॥

यस्य वै युधि सन्त्रासात्कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
निवर्त्तते सदा मन्दः सिंहात्क्षुद्रमृगो यथा ॥११॥

रण में इस कर्ण के ही भय से कुन्ती-पुत्र अर्जुन, इस प्रकार मन्द २ घूमता है, जैसे, सिंह के भय से क्षुद्र वन जन्तु घूमता हो ॥११॥

येन नागायुतप्राणो भीमसेनो महाबलः ।
मानुषेणैव युद्धेन तामवस्थां प्रवेशितः ॥१२॥

जिसने, दश सहस्र हाथियों के बल के धारक, महाबली भीमसेन को मनुष्य ढंग के युद्ध में ही बड़ी भीषण अवस्था में पहुंचा दिया था ॥१०॥

येन दिव्यास्त्रविच्छूरो मायावी स घटोत्कचः ।
अमोघया रणे शक्त्या निहतो भैरवं नदन् ॥१३॥

इसी शूरवीर ने दिव्य अस्त्र जानने वाले, शूरवीर, माया की घटोत्कच को अमोघ शक्ति द्वारा रण में मार गिराया-जो बहुत ही भीषण शब्द कर रहा था ॥१३॥

तस्य दुर्वारवीर्यस्य सत्यसन्धस्य धीमतः ।
बाह्वोर्द्रविणमक्षय्यमद्य द्रक्ष्यथ संयुगे ॥१४॥

तुम लोग किसी से नहीं रोके जाने वाले सत्य प्रतिज्ञा धारी उसी बुद्धिमान् कर्ण की भुजाओं का आज रण में अमोघ बल, देखोगे ॥१४॥

द्रोणपुत्रस्य विक्रान्तं राधेयस्यैव चोभयोः ।
पश्यन्तु पाण्डुपुत्रास्ते विष्णुवासवयोरिव ॥१५॥

आज पाण्डव, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और राधा पुत्र कर्ण के पराक्रम को इन्द्र और विष्णु के पराक्रम के सदृश देखेंगे ॥१५॥

सर्वे एव भवन्तश्च शक्ताः प्रत्येकशोऽपि वा ।
पाण्डुपुत्रान्रणे हन्तुं ससैन्यान्किमु संहताः ।
वीर्यवन्तः कृतास्त्राश्च द्रक्ष्यथाऽद्य परस्परम् ॥१६॥

तुम लोग, तो प्रत्येक इतने महाबली हो, जो सेना सहित पाण्डवों को स्वयं रण में मारकर गिरा सकते हो-फिर इकट्ठे हो जाने पर तो तुम्हारे पराक्रम को कौन सह सकता है। तुम सब

लोग, पराक्रम शाली और अस्त्र विद्या में कुशल हो-आज अपने २ पराक्रम को तुम परस्पर स्वयं देखोगे ॥१६॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा ततः कर्णं चक्रे सेनापतिं तदा ।
तव पुत्रो महावीर्यो भ्रातृभिः सहितोऽनघ ॥१७॥

सञ्जय ने कहा—हे अनघ ! इतना कहकर महा पराक्रमी राजा दुर्योधन ने अपने भाइयों की राय से कर्ण को सेनापति बना दिया ॥१७॥

सैनापत्यमथाऽवाप्य कर्णो राजन्महारथः ।
सिंहनादं विनद्योच्चैः प्रायुध्यत रणोत्कटः ॥१८॥

हे राजन् ! महारथी कर्ण भी सेनापति पद को पाकर सिंहनाद करने लगा और रण में बड़ा उत्कट होकर भिड़ गया ॥१८॥

स सृञ्जयानां सर्वेषां पञ्चालानां च मारिष ।
केकयानां विदेहानां चकार कदनं महत् ॥१९॥

हे आर्य ! इसने सृञ्जय, सारे पञ्चाल, केकय और विदेह राजाओं की सेना का बहुत ही विध्वंस उड़ा दिया ॥१९॥

तस्येषुधाराः शतशः प्रादुरासञ्छरासनात् ।
अग्रे पुङ्खेषु संसक्ता तथा भ्रमरपंक्तयः ॥२०॥

इस कर्ण के धनुष से बाण धारा इस प्रकार चल निकली कि एक बाण के मूल से दूसरे बाण की नोक मिलती चली गई, जो भ्रमर पंक्ति जैसी प्रतीत होती थी ॥२०॥

स पीडयित्वा पञ्चालान्पाण्डवांश्च तरस्विनः ।
हत्वा सहस्रशो योधानर्जुनेन निपातितः ॥२१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्यं नाम तृतीयोऽध्यायः ॥३॥

इस कर्ण ने बड़े वेगशाली पाण्डव और पञ्चालों तथा अन्य सहस्रों वीरों को रण में मार गिराया, परन्तु अन्त में यह भी अर्जुन द्वारा मारकर रण भूमि में गिरा दिया गया ॥२१॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में सञ्जय के वृत्तान्त के आरम्भ करने का तीसरा अध्याय समाप्त हुआ ।



चौथा अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

एतच्छ्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
शोकस्यान्तमपश्यन्वै हतं मेने सुयोधनम् ॥१॥
विह्वलः पतितो भूमौ नष्टचेता इव द्विपः ।

वैशम्पायन ने कहा—हे महाराज ! इस प्रकार अम्बिका पुत्र धृतराष्ट्र ने जब सुना तो उसके शोक की सीमा न रही और उसने समझ लिया कि अब दुर्योधन भी मारा जावेगा-वह बच नहीं सकता है। इस समय राजा धृतराष्ट्र अचेत हुए हाथी की तरह व्याकुलता के साथ भूमि में गिर गये ॥१॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ विह्वले राजसत्तमे ॥२॥
आर्त्तनादो महानासीत्स्त्रीणां भरतसत्तम।
स शब्दः पृथिवीं कृत्स्नां पूरयामास सर्वशः ॥३॥

हे भरतसत्तम ! इस राजश्रेष्ठ धृतराष्ट्र के भूमि में विह्वल होकर गिर जाने पर कौरव स्त्रियों में बहुत आर्तनाद होने लगा। इस शब्द ने सारी पृथ्वी में फैलकर सब ओर से उसे भर दिया ॥२-३॥

शोकार्णवे महाघोरे निमग्ना भरतस्त्रियः।
रुरुदुर्दुःखशोकार्त्ता भृशमुद्विग्नचेतसः ॥४॥

इस समय भरतवंश की स्त्रियां महाघोर शोक समुद्र में डूब गई-ये दुःख और शोक से व्याकुल होकर अत्यन्त घबरायी हुई रोने लगी ॥४॥

राजानं च समासाद्य गान्धारी भरतर्षभ।
निःसंज्ञा पतिता भूमौ सर्वाण्यन्तःपुराणि च ॥५॥

हे भरतर्षभ ! इस समय गान्धारी भी राजा धृतराष्ट्र के पास पहुंची और वह उनकी इस दशा को देखकर अचेत होकर भूमि में गिर गई और यही सारे अन्तःपुर की दशा हुई ॥५॥

ततस्ताः सञ्जयो राजन्समाश्वासयदातुराः।
मुह्यमानाः सुबहुशो मुञ्चन्त्यो वारि नेत्रजम् ॥६॥

हे राजन् ! ये बड़ी व्याकुल होकर मोहित हो रही थी और इनकी आंखों से अश्रुओं की धारा बह निकली थी । इनको सञ्जय ने जैसे-तैसे सान्त्वना दी ॥६॥

समाश्वस्ताः स्त्रियस्तास्तु वेपमानाः मुहुर्मुहुः ।
कदल्य इव वातेन धूयमानाः समन्ततः ॥७॥

यद्यपि इस कौरव स्त्रियों को कुछ सान्त्वना मिल चुकी थी-तो भी ये बार २ इस प्रकार कांप रही थी, जैसे-वायु से कदलीवृक्ष, सब ओर से कांपता रहता है ॥७॥

राजानं विदुरश्चापि प्रज्ञाचक्षुषमीश्वरम् ।
आश्वासयामास तदा सिञ्चंस्तोयेन कौरवम् ॥८॥

प्रज्ञाचक्षु (अन्धे) ऐश्वर्यशाली कुरुराज राजा धृतराष्ट्र को भी जल छिड़क कर महात्मा विदुर ने सचेत किया ॥८॥

स लब्ध्वा शनकैः संज्ञां तांश्च दृष्ट्वा स्त्रियो नृपः ।
उन्मत्त इव राजेन्द्र स्थितस्तूष्णीं विशाम्पते ॥९॥

हे विशाम्पते ! जब राजा धृतराष्ट्र को धीरे २ चेतनता आई-तो वह भरतवंश की इन स्त्रियों को इस प्रकार व्याकुल देखकर आप भी इनको पागल की भांति चुपचाप देखने लगा ॥

ततो ध्यात्वा चिरं काले निःश्वस्य च पुनः पुनः ।
स्वान्पुत्रान्गर्हयामास बहु मेने च पाण्डवान् ॥१०॥

हे राजन् ! फिर बहुत देर तक विचार कर और बार २ निःश्वास लेकर अपने पुत्रों की निन्दा करने लगा और अब उसकी दृष्टि में पाण्डवों का महत्व आया ॥१०॥

गर्हयंश्चात्मनो बुद्धिं शकुनेः सौबलस्य च ।
ध्यात्वा तु सुचिरं कालं वेपमानो मुहुर्मुहुः ॥११॥

यह इस समय अपनी सुबल-पुत्र शकुनि, की बुद्धि की निन्दा करने लगा । यह बहुत देर तक सोचता रहा । इसको इस बीच में बार २ कँप कँपी आ रही थी ॥११॥

संस्तभ्य च मनो भूयो राजा धैर्यसमन्वितः ।
पुनर्गावल्गणिं सूतं पर्यपृच्छत सञ्जयम् ॥१२॥

राजा ने अपने मन को रोक कर धैर्य धारण किया और यह फिर गवलगण के पुत्र, सूतवंशज सञ्जय से पूछने लगा ॥१२॥

यत्त्वया कथितं वाक्यं श्रुतं सञ्जय तन्मया ।
कच्चिद्दुर्योधनः सूत न गतो वै यमक्षयम् ॥१३॥

हे सञ्जय ! जो वाक्य तुमने कहे-वे मैंने सुन लिये हैं, परन्तु यह तो बता-कहीं दुर्योधन तो मर कर यमलोक नहीं चला गया है ॥१३॥

जये निराशः पुत्रो मे सततं जयकामुकः ।
ब्रूहि सञ्जय तत्त्वेन पुनरुक्तां कथामिमाम् ॥१४॥

हे सञ्जय ! यद्यपि मेरे पुत्र को विजय की आशा नहीं रही है, परन्तु फिर भी वह विजय की इच्छा बार २ कर रहा है । अब

तुम इस कथा को मुझे ठीक २ सुनाओ। यद्यपि मैंने अनुमान से सब कुछ जान रखा है, और तुम्हारी कथा तो पुनरुक्ति ही होगी ॥१४॥

एवमुक्तोऽब्रवीत्सूतो राजानं जनमेजय।
हतो वैकर्त्तनो राजन्सह पुत्रैर्महारथः ॥१५॥
भ्रातृभिश्च महेष्वासैः सूतपुत्रैस्तनुत्यजैः।

हे जनमेजय! जब राजा धृतराष्ट्र ने सञ्जय से इतना कहा-तो वह बोला—हे राजन्! सूर्य पुत्र कर्ण, अपने महारथी पुत्रों के साथ मारा गया और इसी समय कर्ण के अपने प्राणों की परवा नहीं करने वाले, महाधनुर्धर सूत-पुत्र भ्राता भी मार लिए गए ॥१५॥

दुःशासनश्च निहतः पाण्डवेन यशस्विना।
पीतं च रुधिरं कोपाद्भीमसेनेन संयुगे ॥१६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रशोको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥४॥

हे राजन्! इसी युद्ध में महायशस्वी पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने दुःशासन को मार लिया और कोप के साथ उसके रक्त का पान करके उसने अपनी प्रतिज्ञा को पूरा किया ॥१६॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में धृतराष्ट्र के शोक का चौथा अध्याय समाप्त हुआ।



पांचवां अध्याय

वैशम्पायन उवाच—

इति श्रुत्वा महाराज धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
अब्रवीत्सञ्जयं सूतं शोकसंविग्नमानसः ॥१॥

वैशम्पायन कहने लगे—हे महाराज ! अम्बिका-सुत राजा धृतराष्ट्र इतनी बात सुनकर शोक से उद्विग्न हुआ, सूत-पुत्र सञ्जय से बोला ॥१॥

दुष्प्रणीतेन मे तात पुत्रस्याऽदीर्घजीविनः ।
हतं वैकर्त्तनं श्रुत्वा शोको मर्माणि कृन्तति ॥२॥

हे तात ! मेरी दुर्नीति के कारण ही मेरे पुत्र की अल्पायु होती दिखाई दे रही है। अब तो सूर्य-पुत्र कर्ण की मृत्यु के समाचार सुनकर तो मुझे इतना शोक हुआ, कि मेरे मर्म स्थान कट से रहे हैं ॥२॥

तस्य मे संशयं छिन्धि दुःखपारं तितीर्षतः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च के च जीवन्ति के मृताः ॥३॥

अब मैं इस दुःख से पार होना चाहता हूं। तुम मेरे सन्देह का विच्छेद करो। इस समय तो तुम यह बताओ, कि कौरवों और सृञ्जयों में कौन जीता है और कौन मर गया है ॥३॥

सञ्जय उवाच—

हतः शान्तनवो राजन्दुराधर्षः प्रतापवान् ।
हत्वा पाण्डवयोधानामर्बुदं दशभिर्दिनैः ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! महाप्रतापी दुराधर्ष शान्तनु-पुत्र भीष्मपितामह मरणासन्न हुए शरशय्या पर पड़े हैं। इन्होंने दश दिन में पाण्डव योद्धाओं की ओर के अरबों की संख्या में सैनिक मार डाले ॥४॥

तथा द्रोणो महेष्वासः पञ्चालानां रथव्रजान् ।
निहत्य युधि दुर्धर्षः पश्चाद्रुक्मरथो हतः ॥५॥

इसी तरह महाधनुर्धर, द्रोणाचार्य ने पञ्चालों के रथिसमूहों को मारकर पीछे सुवर्ण रथधारी, दुर्धर्ष, द्रोण भी रण में मारे गए ॥५॥

हतशेषस्य भीष्मेण द्रोणेन च महात्मना ।
अर्धं निहत्य सैन्यस्य कर्णो वैकर्त्तनो हतः ॥६॥

भीष्म और महातमा द्रोणाचार्य से बची हुई सेना का आधा भाग मार कर सूर्य-पुत्र कर्ण भी मारा गया ॥६॥

विविंशतिर्महाराज राजपुत्रो महाबलः ।
आनर्त्तयोधाञ्शतशो निहत्य निहतो रणे ॥७॥

हे महाराज ! महाबली राजपुत्र, विविंशति भी सैकड़ों की संख्या में आनर्त्त योद्धाओं को मारकर फिर स्वयं भी रण में मारा गया ॥७॥

तथा पुत्रो विकर्णस्ते क्षत्रव्रतमनुस्मरन् ।
क्षीणवाहायुधः शूरः स्थितोऽभिमुखतः परान् ॥८॥

घोररूपान्परिक्लेशान्दुर्योधनकृतान्बहून् ।
प्रतीज्ञां स्मरता चैव भीमसेनेन पातितः ॥९॥

हे राजन ! तुम्हारा पुत्र शूरवीर विकर्ण भी क्षत्रिय धर्म के अनुसार अपने विरोधी पाण्डवों के सन्मुख पहुंचा । इसके पास शस्त्र नहीं रह गये थे और इसके अश्व भी मारे जा चुके थे । राजा दुर्योधन के दिए हुए घोर क्लेशों के कारण भीमसेन ने तुम्हारे सारे पुत्रों के मारने की प्रतिज्ञा की थी उसी प्रतिज्ञा को ध्यान में रखकर भीमसेन ने विकर्ण को मार दिया, यद्यपि यह तो सर्वदा पाण्डवों का ही पक्ष लिया करता था ॥८-९॥

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ राजपुत्रौ महारथौ ।
कृत्वा त्वसुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥१०॥

अवन्ति राजकुमार विन्द और अनुविन्द बहुत बड़े महारथी थे । ये भी बहुत बड़ा वीर कार्य करके यमराज के भवन को चले गए ॥१०॥

सिन्धुराष्ट्रमुखानीह दश राष्ट्राणि यानि ह ।
वशे तिष्ठन्ति वीरस्य यः स्थितस्तव शासने ॥११॥
अक्षौहिणीर्दशैकां च विनिर्जित्य शितैः शरैः ।
अर्जुनेन हतो राजन्महावीर्यो जयद्रथः ॥१२॥

हे राजन् ! सिन्धु देश के अधीन-दश राष्ट्र हैं । ये सब उसी राजा जयद्रथ की आज्ञा में थे, जो राजा जयद्रथ तुम्हारे अधीन था । कौरवों की एकादश अक्षौहिणी सेना को तीक्ष्ण बाणों से

जीतकर अर्जुन ने महा शक्तिशाली उसी राजा जयद्रथ को रण भूमि में मार गिराया ॥११-१२॥

तथा दुर्योधनसुतस्तरस्वी युद्धदुर्मदः ।
वर्त्तमानः पितुः शास्त्रे सौभद्रेण निपातितः ॥१३॥

इसी तरह राजा दुर्योधन का बड़ा वेग शाली युद्ध में दुर्मद, लक्ष्मण नामक पुत्र था, जो अपने पिता की आज्ञा में वर्तमान था। उसे सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु ने रण में मार गिराया ॥१३॥

तथा दौःशासनिः शूरो बाहुशाली रणोत्कटः ।
द्रौपदेयेन सङ्गम्य गमितो यमसादनम् ॥१४॥

दुःशासन पुत्र भी बड़ा शूरवीर, भुजाओं के बल में श्रेष्ठ, और रण में उत्कट बलशाली था। उसको द्रोपदी के पुत्र प्रतिविन्ध्य ने रण में आगे बढ़कर मार लिया ॥१४॥

किरातानामधिपतिः सागरानूपवासिनाम् ।
देवराजस्य धर्मात्मा प्रियो बहुमतः सखा ॥१५॥
भगदत्तो महीपाल क्षत्रधर्मरतः सदा ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥१६॥

हे महीपाल! सागर तट प्रान्त के निवासी, किरातों के अधिपति, देवराज इन्द्र का प्रिय बड़ा माननीय मित्र, धर्मात्मा राजा भगदत्त, क्षत्रिय धर्म (पराक्रम) में सर्वदा रत था। उससे युद्ध करके धनञ्जय अर्जुन ने उसे यमराज के घर भेज दिया ॥

तथा कौरवदायादो न्यस्तशस्त्रो महायशाः ।
हतो भूरिश्रवा राजञ्शूरः सात्यकिना युधि ॥१७॥

हे राजन् ! कुरुवंशोत्पन्न, शूरवीर महा यशस्वी राजा भूरिश्रवा को सात्यकि ने युद्ध में मार गिराया । इसने रणाङ्गण में यद्यपि शस्त्रों का त्याग कर दिया था ॥१७॥

श्रुयायुरपि चाम्बष्ठः क्षत्रियाणां धुरन्धरः ।
चरन्नभीतवत्सङ्ख्ये निहतः सव्यसाचिना ॥१८॥

क्षत्रियों में धुरन्धर वीर, राजा श्रुतायु अम्बष्ठ क्षत्रिय थे ये रण में बिल्कुल निडर होकर घूमते थे इसको भी अर्जुन ने रण में मार लिया ॥१८॥

तव पुत्रः सदामर्षी कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।
दुःशासनो महाराज भीमसेनेन पातितः ॥१६॥

हे महाराज ! तुम्हारा पुत्र, सदा आवेश में भरा रहने अस्त्र विद्या में कुशल, युद्ध दुर्मद, दुःशासन को भी भीमसेन मार दिया ॥१६॥

यस्य राजन्गजानीकं बहुसाहस्रमद्भुतम् ।
सुदक्षिणः स संग्रामे निहतः सव्यसाचिना ॥२०॥

हे राजन् ! कई सहस्र हाथियों की जिसके पास अद्भुत सेना थी-उस राजा सुदक्षिण को भी सव्यसाची अर्जुन ने मार डाला ॥२०॥

कोसलानामधिपतिर्हत्वा बहुमतान्परान् ।
सौभद्रेणेह विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥२१॥

कोसल देश के अधिपति भी बहुत से विरोधी वीरों को मारकर अन्त में सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु से लड़ते हुए उसके हाथ से यमालय में पहुंच गए ॥२१॥

बहुशो योधयित्वा तु भीमसेनं महारथम् ।
चित्रसेनस्तव सुतो भीमसेनेन पातितः ॥२२॥

महारथी भीमसेन से अनेक विचित्र ढंग से युद्ध करके तुम्हारा पुत्र चित्रसेन भी यम के घर का अतिथि बन गया। अर्थात् भीमसेन ने उसे मार गिराया ॥२२॥

मद्रराजात्मजः शूरः परेषां भयवर्द्धनः ।
असिचर्मधरः श्रीमान्सौभद्रेण निपातितः ॥२३॥

शत्रुओं के भय के बढ़ाने वाले, खड्ग चर्मधारी कान्तिमान्, शूरवीर मद्रराज के पुत्र को भी सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने ही रण में मार गिराया ॥२३॥

समः कर्णस्य समरे यः स कर्णस्य पश्यतः ।
वृषसेनो महातेजाः शीघ्रास्त्रो दृढविक्रमः ॥२४॥
अभिमन्योर्वधं श्रुत्वा प्रतिज्ञामपि चात्मनः ।
धनञ्जयेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥२५॥

हे भारत ! युद्ध में कर्ण के समान ही पराक्रमी, महातेजस्वी, शीघ्र अस्त्र चलाने का अभ्यासी, दृढ़ पराक्रमी, कर्ण पुत्र वृषसेन

को महारथी कर्ण के देखते २ ही अपने पुत्र अभिमन्यु के वध से कुपित तथा सिन्धुराज के मार देने की अपनी प्रतिज्ञा के पूर्ण करने में लगे हुए अर्जुन ने घोर युद्ध करके अन्त में यम के घर भेज ही दिया ॥२४-२५॥

नित्यं प्रसक्तवैरो यः पाण्डवैः पृथिवीपतिः ।
विश्राव्य वैरं पार्थेन श्रुतायुः स निपातितः ॥२६॥

हे राजन् ! जिस राजा श्रुतायु का पाण्डवों के साथ सर्वदा से वैर चला आता था । वह अर्जुन से अपना वैर निकालता २ स्वयं मारा गया ॥२६॥

शल्यपुत्रस्तु विक्रान्तः सहदेवेन मारिष ।
हतो रुक्मरथो राजन्भ्राता मातुलजो युधि ॥२७॥

हे आर्य ! मद्रराज शल्य के द्वितीय पराक्रमी पुत्र, रुक्मरथ को पाण्डु-पुत्र सहदेव ने रण में मार डाला । यद्यपि यह अपने मामा का बेटा भाई था ॥२७॥

राजा भगीरथो वृद्धो बृहत्क्षत्रश्च केकयः ।
पराक्रमन्तौ विक्रान्तौ निहतौ वीर्यवत्तरौ ॥२८॥

हे भरतर्षभ ! इसी तरह वृद्ध राजा भगीरथ और केकयराज, बृहत्क्षत्र, बड़े ही पराक्रमी वीर थे, इन पराक्रमी, अत्यन्त बलवान् वीर पुरुषों को भी इस रण में मार डाला गया ॥२८॥

भगदत्तसुतो राजन्कृतप्रज्ञो महाबलः ।
श्येनवच्चरता सङ्ख्ये नकुलेन निपातितः ॥२९॥

हे राजन्! महाबली, बुद्धिमान् राजा भगदत्त का पुत्र था, वह रण में श्येन पक्षी की तरह वेग से उड़ता फिरता था उसे नकुल ने मार लिया ॥२९॥

पितामहस्तव तथा वाह्लीकः सह बाह्लिकैः ।

निहतो भीमसेनेन महाबलपराक्रमः ॥३०॥

तुम्हारा पितामह वाल्हीक राज को भी अनेक वाल्हीक वीरों के साथ, भीमसेन ने मार गिराया, जो अत्यन्त बली और पराक्रमी थे ॥३०॥

जयत्सेनस्तथा राजञ्जारासन्धिर्महाबलः ।

मागधो निहतः सङ्ख्ये सौभद्रेण महात्मना ॥३१॥

हे राजन! महाबली जरासन्ध-पुत्र मगध देश का अधिपति जयत्सेन था, उसे भी महावीर सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु ने युद्ध में मार दिया ॥३१॥

पुत्रस्ते दुर्मुखो राजन्दुःसहश्च महारथः ।

गदया भीमसेनेन निहतौ शूरमानिनौ ॥३२॥

हे राजन; तुम्हारा पुत्र, दुर्मुख और महारथी दुःसह थे। शूरवीरता के अभिमान रखने वाले इन दोनों वीरों को भी गदा से भीम ने मार हटाया ॥३२॥

दुर्मर्षणो दुर्विषहो दुर्जयश्च महारथः ।

कृत्वा त्वसुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ॥३३॥

इसी तरह तुम्हारे पुत्र, दुर्मर्षण, दुर्विषह और महारथी दुर्जय रणाङ्गणमें कठिन कर्म के अन्त में यमराज के घर चले गये ॥३३॥

उभौ कलिङ्गवृषकौ भ्रातरौ युद्धदुर्मदौ।
कृत्वा चासुकरं कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥३४॥

कलिङ्ग और वृषक नामक दो युद्ध दुर्मद भ्राता थे। वे भी रणाजिर में सीधी तरह नहीं होजाने वाले भीषण कर्म को करके अन्त में यम के घर पहुंचे ॥३४॥

सचिवो वृषवर्मा ते शूरः परमवीर्यवान्।
भीमसेनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥३५॥

अत्यन्त पराक्रमी तुम्हारे मन्त्री शूरवीर वृषवर्मा थे। इन से भीमसेन ने युद्ध कर के इन को यमराज के घर पहुंचा दिया ॥३५॥

तथैव पौरवो राजा नागायुतबलो महान्।
समरे पाण्डुपुत्रेण निहतः सव्यसाचिना ॥३६॥

इसी तरह पौरव नाम के बड़े उदार राजा थे, जिन में दश हजार हाथी का बल था। उसको भी रण में सव्यसाची अर्जुन ने मार गिराया ॥३६॥

वसातयो महाराज द्विसाहस्राः प्रहारिणः।
शूरसेनाश्च विक्रान्ताः सर्वे युधि निपातिताः ॥३७॥

हे महाराज! वसाति संज्ञक क्षत्रियों के दो सहस्र प्रहार में कुशल शूरवीर थे। ये सारे क्षत्रिय वीर भी युद्ध में मार डाले गए ॥३७॥

अभीषाहाः कवचिनः प्रहरन्तो रणोत्कटाः ।
शिबयश्च रथोदाराः कालिङ्गसहिता हताः ॥३८॥

हे राजन ! अभीषाह नामक क्षत्रिय वीर कवच धारी और रण में बड़ी उत्कंटता के साथ प्रहार करने में समर्थ थे, महारथियों में श्रेष्ठ, शिवि वीर, और कलिङ्ग वीर ये सब इकट्ठे ही एक साथ मारे गए ॥३८॥

गोकुले नित्यसंवृद्धा युद्धे परमकोपनाः ।
तेऽपावृत्तकवीराश्च निहताः सव्यसाचिना ॥३९॥

जो कुल में वृद्धि पाए हुए, युद्ध में अत्यन्त कोप करने वाले अपावृत्तक वीर भी सव्यसाची अर्जुन ने मार गिराए ॥३९॥

श्रेणयो बहुसाहस्राः संशप्तकगणाश्च ये ।
ते सर्वे पार्थमासाद्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥४०॥

इसी तरह कई हजार श्रेणि संज्ञक क्षत्रिय और संशप्तक वीरों के गण थे। ये सब भी अर्जुन से टकराकर विवस्वान्-पुत्र यम राज के घर चल दिए ॥४०॥

स्यालौ तव महाराज राजानौ वृषकाचलौ ।
त्वदर्थमतिविक्रान्तौ निहतौ सव्यसाचिना ॥४१॥

हे महाराज ! तुम्हारे साले राजा वृषक और अचल ने भी तुम्हारी विजय के लिए बहुत ही पराक्रम कर दिखाया। अर्जुन ने उन्हें भी मार लिया ॥४१॥

उग्रकर्मा महेष्वासो नामतः कर्मतस्तथा ।

शाल्वराजो महाबाहु भीमसेनेन पातितः ॥४२॥

हे राजन ! शाल्वराज, महाधनुर्धर, महाबाहु उग्रकर्मा थे । इन का जैसा उग्रकर्मा नाम था-वैसा ही इनका पराक्रम भी था । भीमसेन ने उसे भी मार गिराया ॥४२॥

ओघवांश्च महाराज बृहन्तः सहितौ रणे ।

पराक्रमन्तौ मित्रार्थे गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥४३ ॥

हे महाराज ! राजा ओघवान् और राजा बृहन्तने अपने मित्र दुर्योधन की विजय के निमित्त रण में बड़ा ही पराक्रम किया-तो भी वे दोनों ही साथ २ विवस्वान्-पुत्र यम के लोक में चले गये ॥४३॥

तथैव रथिनां श्रेष्ठः क्षेमधूर्तिर्विशाम्पते ।

निहतो गदया राजन्भीमसेनेन संयुगे ॥४४ ॥

हे विशाम्पते ! इसी तरह रथियों में श्रेष्ठ, क्षेमधूर्ति राजा थे । हे राजन ! भीमसेन ने अपनी गदा से रण उन्हें भी मार डाला ॥४४॥

तथा राजन्महेष्वासो जलसन्धो महाबलः ।

सुमहत्कदनं कृत्वा हतः सात्यकिना रणे ॥४५॥

हे राजेन्द्र ! इस के अनन्तर महाबली, महाधनुर्धर राजा जलसन्ध थे । उन्हों ने रण में शत्रु सेना का बड़ा विध्वंस किया । अंत में उन्हें सात्यकि ने मार गिराया ॥४५॥

अलम्बुषो राक्षसेन्द्रः खरबन्धुरयानवान् ।
घटोत्कचेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥४६॥

राक्षसेन्द्र अलम्बुष, खच्चर के रथों में बैठकर रण में आया था। राक्षसराज घटोत्कच ने उस से युद्ध करके उसे भी यम राज के घर पहुंचा दिया ॥४६॥

राधेयः सूतपुत्रश्च भ्रातरश्च महारथाः ।
केकयाः सर्वशश्चापि निहताः सव्यसाचिना ॥४७॥

राधा-पुत्र कर्ण और सूत-पुत्र इसके कई महारथी भ्राताओं एवं केकय वीरों को अच्छी तरह सव्यसाची अर्जुन ने मार गिराया ॥४७॥

मालवा मद्रकाश्चैव द्राविडाश्चोग्रकर्मिणः ।
योधेयाश्च ललित्थाश्च क्षुद्रकाश्चाप्युशीनराः ॥४८॥
मावेल्लकास्तुण्डिकेराः सावित्रीपुत्रकाश्च ये ।
प्राच्योदीच्याः प्रतीच्याश्च दाक्षिणात्याश्च मारिष ॥४९॥
पत्तीनां निहताः सङ्घा हयानां प्रयुतानि च ।
रथव्रजाश्च निहता हताश्च वरवारणाः ॥५०॥
सध्वजाः सायुधाः शूराः सवर्माम्बरभूषणाः ।
कालेन महतायस्ताः कुशलैर्ये च वर्धिताः ॥५१॥
ते हताः समरे राजन्पार्थेनाक्लिष्टकर्मणा ।

हे आर्यगुणसम्पन्न ! राजन् ! मालव, मद्रक, द्राविड उग्रकर्मी, योधेय, ललित्थ, क्षुद्रक, उशीनर, मावेल्लक, तुण्डिकेर, सावित्रीपुत्रक,

प्राच्य, उदीच्य, प्रतीच्य और दाक्षिणात्य, तथा पैदलों के सङ्ग और लाखों अश्वारोही, रथसमूह, उत्तम हाथी, मार डाले गए। ध्वजा, आयुध कवच, वस्त्र, और आभूषणधारी शूरवीर, समय पाकर बहुत बढ़ गए थे। कुशल साथियों ने उनको बहुत ही बढ़ा दिया था। अद्भुत कर्म कर दिखाने वाले अर्जुन ने इन वीरों को रण में मार गिराया ॥४८-५१॥

अन्ये तथामितबलाः परस्परवधैषिणः ॥५२॥
एते चान्ये च बहवो राजानः सगणा रणे।
हताः सहस्रशो राजन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥५३॥

इनके अतिरिक्त अमितबलशाली, परस्पर वध के इच्छुक, ये तथा अन्य बहुत से राजाओं को सेना सहित पाण्डवों ने मार दिया। हे राजन्! जिनके विषय में तुमने प्रश्न किया-वे क्षत्रियवीर सहस्रों की संख्या में मारे गए॥५२-५३॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कर्णार्जुनसमागमे।
महेन्द्रेण यथा वृत्रो यथा रामेण रावणः ॥५४॥
यथा कृष्णेन नरको मुरश्च नरकारिणा।
कार्त्तवीर्यश्च रामेण भार्गवेण यथा हतः ॥५५॥
सज्ञातिबान्धवः शूरः समरे युद्धदुर्मदः।
रणे कृत्वा महद्युद्धं घोरं त्रैलोक्यमोहनम् ॥५६॥

हे भारतश्रेष्ठ! कर्ण और अर्जुन के इस संग्राम में इस प्रकार यह महान् विध्वंस हुआ, जैसे इन्द्र के साथ वृत्रासुर, राम के

साथ रावण, श्रीकृष्ण के साथ नरकासुर, विष्णु के साथ मुर, परशुराम के साथ कार्तवीर्य अर्जुन का संग्राम हुआ। और उसमें सेनाओं का विनाश हुआ। युद्धदुर्मद शूरवीर कार्तवीर्य अर्जुन को तो ज्ञाति-बन्धुबान्धव सहित परशुराम ने बुरी तरह मार डाला। उस समय त्रिलोकी को मोहित कर देने वाला घोर महायुद्ध परशुराम ने कर दिखाया था ॥५४-५६॥

यथा स्कन्देन महिपो यथा रुद्रेण चान्धकः ।
तथार्जुनेन स हतो द्वैरथे युद्धदुर्मदः ॥५७॥

हे राजन् ! जैसे स्कन्द ने महिषासुर और रुद्र ने अन्धकासुर को मार डाला, उसी तरह अर्जुन ने भी मन्त्री और बान्धवों के सहित, प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, कर्ण को मार डाला ॥५७॥

सामात्यबान्धवो राजन्कर्णः प्रहरतां वरः ।
जयाशा धार्त्तराष्ट्राणां वैरस्य च मुखं यतः ॥५८॥
तीर्णस्तत्पाण्डवो राजन्यत्पुरा नावबुध्यसे ।
उच्यमानो महाराज बन्धुभिर्हितकांक्षिभिः ॥५९॥
तदिदं समनुप्राप्तं व्यसनं सुमहात्ययम् ।

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्रों की जयाशा का तन्तु और कौरव पाण्डवों के वैर का बीज कर्ण ही था। इसको मारकर मानो पाण्डव, बड़े भारी समुद्र को पार कर गए। हे धृतराष्ट्र ! तुमने यह बात प्रथम नहीं समझी थी। हे महाराज ! हित चाहने वाले

बन्धुओं ने तुमको बार २ समझाया था । इसी कारण से तुमको यह महती विपत्ति प्राप्त हुई है ॥५८-५९॥

पुत्राणां राज्यकामानां त्वया राजन्हितैषिणा ।
अहितान्येव चीर्णानि तेषां तत्फलमागतम् ॥६०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्ये पंचमोऽध्यायः ॥५॥

हे राजन् ! राज्य के लोलुप अपने पुत्रों के हित में तत्पर हुए तुमने अहितकारी व्यक्तियों का ही संग्रह किया, जिसका यह फल प्राप्त हुआ है ॥६०॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में सञ्जय के वाक्य का पांचवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



छठा अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

आख्याता मामकास्तात निहता युधि पाण्डवैः ।
हतांश्च पाण्डवेयानां मामकैर्ब्रूहि सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे तात ! सञ्जय ! तुमने पाण्डवों द्वारा मारे हुए मेरे पक्ष का वर्णन किया । अब तुम मुझे यह भी बताओ कि हमारे पक्ष के वीरों ने पाण्डवों के किन २ वीरों को मार लिया है ॥१॥

सञ्जय उवाच —

कुन्तयो युधि विक्रान्ता समसत्वा महाबलाः ।
सानुबन्धाः सहामात्या गाङ्गेयेन निपातिताः ॥२॥

सञ्जय ने कहा—कुन्तिसंज्ञक क्षत्रिय, युद्ध में बड़े विकराल थे। ये महाबली सारे ही बलवैभव से सम्पन्न थे। सेना और मन्त्रियों के सहित गङ्गा-पुत्र भीष्म ने उन्हें मार गिराया ॥२॥

नारायणा बलभद्राः शूराश्च शतशोऽपरे ।
अनुरक्ताश्च वीरेण भीष्मेण युधि पातिताः ॥३॥

नारायण, बलभद्र शूरसेन तथा अन्य ऐसे ही सैंकड़ों पाण्डवों के अनुरक्त वीरों को महारथी भीष्म ने रण में गिरा दिया ॥३॥

समः किरीटिना सङ्ख्ये वीर्येण च बलेन च ।
सत्यजित्सत्यसन्धेन द्रोणेन निहतो युधि ॥४॥

रण में बल और पराक्रम दिखाने में जो अर्जुन के ही समान था उस सत्यजित् का सत्य प्रतिज्ञाधारी आचार्य द्रोण ने रण में वध कर दिया ॥४॥

पञ्चालानां महेष्वासाः सर्वे युद्धविशारदाः ।
द्रोणेन सह सङ्गम्य गता वैवस्वतक्षयम् ॥५॥

पञ्चालों के अधिकांश युद्धविशारद महाधनुर्धर वीर द्रोणाचार्य के साथ युद्ध करके यमपुरी को सिधार गए ॥५॥

तथा विराटद्रुपदौ वृद्धौ सहसुतौ नृपौ ।
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन निहतौ रणे ॥६॥

इसी तरह अपने सुहृद्भूत राजा युधिष्ठिर के हित में तत्पर वृद्ध राजा द्रुपद और विराट भी अपने २ अनेक पुत्रों के साथ रण में पराक्रम दिखाकर द्रोणाचार्य से वध को प्राप्त हुए परलोक चले गए ॥६॥

यो बाल एव समरे सम्मितः सव्यसाचिना ।
केशवेन च दुर्धर्षो बलदेवेन वा विभो ॥७॥
परेषां कदनं कृत्वा महारथविशारदः ।
परिवार्य महामात्रैः षड्भिः परमकै रथैः ॥८॥
अशक्नुवद्भिर्बीभत्सुमभिमन्युर्निपातितः ।

हे विभो ! जो दुर्धर्ष बचपन में ही सव्यसाची अर्जुन, श्रीकृष्ण और बलराम के सदृश युद्ध में था । वही महारथियों में श्रेष्ठ, अभिमन्यु, रण में शत्रुओं का बहुत सा विध्वंस करके, मारा गया । इस अभिमन्यु को कर्ण आदि छः महारथियों ने घेरकर अन्त में मार डाला । जब इन महारथियों का अर्जुन पर वस न चला-तो उन्होंने अपने क्रोध को उसके पुत्र इस अभिमन्यु पर ही निकाल डाला ॥७-८॥

कृतं तं विरथं वीरं क्षत्रधर्मे व्यवस्थितम् ॥९॥
दौःशासनिर्महाराज सौभद्रं हतवान्रणे ।

हे महाराज ! जब सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु को इन कर्ण आदि महारथियों ने रथहीन कर दिया-तो वह फिर भी क्षत्र धर्मानुसार युद्ध करता ही रहा। उस समय रथ और शस्त्रहीन अभिमन्यु को रण में आगे बढ़कर दुःशासन के पुत्र ने मार डाला ॥९॥

सपत्नानां निहन्ता च महत्या सेनया वृतः ॥१०॥
अम्बष्ठस्य सुतः श्रीमान्मित्रहेतोः पराक्रमन् ।
आसाद्य लक्ष्मणं वीरं दुर्योधनसुतं रणे ॥११॥
सुमहत्कदनं कृत्वा गतो वैवस्वतक्षयम् ।

अपने शत्रुओं का नाश करने वाला बड़ी भारी सेना से युक्त, शक्तिमान् राजा अम्बष्ठ का पुत्र, अपने मित्र धर्मराज के निमित्त युद्ध करता हुआ रण में राजा दुर्योधन के पुत्र, वीर लक्ष्मण से भिड़ गया। इसने इस युद्ध में कौरव सेना का बहुत नाश किया और अन्त में यह भी विवस्वान् पुत्र यम के लोक का अतिथि हो गया ॥१०-११॥

बृहन्तः सुमहेष्वासः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ॥१२॥
दुःशासनेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

महाधनुर्धर, युद्ध दुर्मद, अस्त्रविद्या में कुशल, राजा बृहन्त को महाबली दुःशासन ने लड़कर यमधाम भेज दिया ॥१२॥

मणिमान्दण्डधारश्च राजानौ युद्धदुर्मदौ ॥१३॥
पराक्रमन्तौ मित्रार्थे द्रोणेन युधि पातितौ ।

मणिमान् और दण्डधार नामक अन्य युद्ध दुर्मंक राजा थे। मित्रभूत धर्मराज के निमित्त युद्ध करते हुए इन वीरों का रण में द्रोणाचार्य ने वध कर दिया ॥१३॥

अंशुमान्भोजराजस्तु सहसैन्यो महारथः ॥१४॥
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ।

भोजराज अंशुमान् भी बड़े महारथी थे। इनके साथ युद्ध करके इनको भी सेना सहित भरद्वाज वंशोत्पन्न द्रोणाचार्य ने यम के घर भेज दिया ॥१४॥

सामुद्रश्चित्रसेनश्च सह पुत्रेण भारत ॥१५॥
समुद्रसेनेन बलाद्गमितो यमसादनम् ।

समुद्र के राजा चित्रसेन को उसके पुत्र समुद्रसेन के द्रोणाचार्य ने यमपुरी को भेज दिया ॥१५॥

अनूपवासी नीलश्च व्याघ्रदत्तश्च वीर्यवान् ॥१६॥
अश्वत्थाम्ना विकर्णेन गमितो यमसादनम् ।

अनूप निवासी राजानील और महापराक्रमी व्याघ्रदत्त महावीर अश्वत्थामा और विकर्ण से लड़कर य पहुंच गए ॥१६॥

चित्रायुधश्चित्रयोधी कृत्वा च कदनं महत् ॥१७॥
चित्रमार्गेण विक्रम्य विकर्णेन हतो मृधे ।

अद्भुत ढंग से युद्ध करने वाले राजा चित्रायुध ने रणाङ्गण में बहुत ही विध्वंस मचाया। तुम्हारे पुत्र, विकर्ण

बड़े विचित्र मार्गों (पैंतरों) द्वारा पराक्रम दिखाकर अन्त में युद्ध में इन्हें मार ही लिया ॥१७॥

वृकोदरसमो युद्धे वृतः कैकेययोधिभिः ॥१८॥
कैकेयेन च विक्रम्य भ्राता भ्रात्रा निपातितः ।

पाण्डवपक्षी कैकयदेशोत्पन्न अनेक वीरों के साथ केकयराज अपने ही देशोत्पन्न केकय भ्राता से युद्ध करके उसके हाथ से मारा गया । यह रण में भीमसेन के समान पराक्रमी था ॥१८॥

जनमेजयो गदायोधी पार्वतीयः प्रतापवान् ॥१९॥
दुर्मुखेन महाराज तव पुत्रेण पातितः ।

हे महाराज ! पर्वत देश का एक महाप्रतापी, गदा युद्ध में कुशल, जनमेजय नामक राजा था । उसको तुम्हारे पुत्र दुर्मुख ने बुरी तरह पछाड़ लिया ॥१९॥

रोचमानौ नरव्याघ्रौ रोचमानौ ग्रहाविव ॥२०॥
द्रोणेन युगपद्राजन्दिवं सम्प्रापितौ शरैः ।

हे राजन ! दो बड़े सुन्दर पुरुष प्रवीर भ्राता थे, जिनका नाम ही रोचमान पड़ गया था । ये ग्रह की भांति चमकीले अर्थात तेजस्वी थे । इनको आचार्य द्रोण ने अपने वाणों से एक दम स्वर्गपुरी भेज दिया ॥२०॥

नृपाश्च प्रतियुध्यन्तः पराक्रान्ता विशाम्पते ॥२१॥
कृत्वा न सुकरं कर्म गता वैवस्वतक्षयम् ।

हे विशाम्पते ! इसी तरह अनेक अन्य महापराक्रमी राजा थे, जो धर्मराज के निमित्त युद्ध करते हुए महाभीषण कर्म करके यमराज के लोक को चले गए ॥२१॥

पुरुजित्कुन्तिभोजश्च मातुलौ सव्यसाचिनः ॥२२॥
संग्रामनिर्जिताँल्लोकान्गमितौ द्रोणसायकैः ।

हे भारत ! तुम जानते हो कि सव्यसाची अर्जुन के पुरुजित् और कुन्तिभोज दो मामा थे । ये भी द्रोणाचार्य के बाणों से आहत होकर संग्राम में प्राप्त किये जाने वाले दिव्यलोकों को प्राप्त हो गए ॥२२॥

अभिभूः काशिराजश्च काशिकैर्बहुभिर्वृतः ॥२३॥
वसुदानस्य पुत्रेण न्यासितो देहमाहवे ।

काशिराज अभिभू भी अपने काशी के अनेक वीरों के साथ इस युद्ध में सम्मिलित था । वसुदान के पुत्र ने रण में इनकी भी देह को प्राणों से वियुक्त कर दिया ॥२३॥

अमितौजा युधामन्युरुत्तमौजाश्च वीर्यवान् ॥२४॥
निहत्य शतशः शूरानस्मदीयैर्निपातिताः ।

अत्यन्त ओजस्वी युधामन्यु और महापराक्रमी उत्तमौजा ने रण में सैंकड़ों हमारे वीरों को मारकर अन्त में हमारे ही योद्धाओं के हाथ से रण में मारे गए ॥२४॥

मित्रवर्मा च पाञ्चाल्यः क्षत्रधर्मा च भारत ॥२५॥
द्रोणेन परमेष्वासौ गमितौ यमसादनम् ।

हे भारत ! पाञ्चाल वीर मित्रवर्मा और क्षत्रधर्मा, बड़े ही धनुर्धर वीर थे। इन को द्रोणाचार्य ने यमराज के घर भेज दिया ॥२५॥

शिखण्डितनयो युद्धे क्षत्रदेवो युधां पतिः ॥२६॥

लक्ष्मणेन हतो राजंस्तव पौत्रेण भारत ।

हे राजन ! योद्धाओं में श्रेष्ठ, शिखण्डी का पुत्र क्षत्रदेव को तुम्हारे पौत्र लक्ष्मण ने मार डाला ॥२६॥

सुचित्रश्चित्रवर्मा च पितापुत्रौ महारथौ ॥२७॥

प्रचरन्तौ महावीरौ द्रोणेन निहतौ रणे ।

हे भारत ! सुचित्र और चित्रवर्मा दो पिता पुत्र और दोनों ही महारथी थे। इन महावीरों ने भी रण में घूम २ कर बड़ी खलबली मचादी। इनका भी द्रोणाचार्य ने ही वध किया ॥२७॥

वार्धक्षेमिर्महाराज समुद्र इव पर्वणि ॥२८॥

आयुधक्षयमासाद्य प्रशान्ति परमां गतः ।

हे महाराज ! वर्धक्षेम का पुत्र राजा वार्धक्षेमि, पूर्वकाल में समुद्र की भांति रण में उछल रहा था। जब उसके शस्त्र समाप्त हो गए तो अन्त में वह भी परम शान्तिरूप मृत्यु को प्राप्त हो गया ॥२८॥

सेनाबिन्दुसुतः श्रेष्ठः शस्त्रवान्प्रवरो युधि ॥२९॥

बाह्लिकेन महाराज कौरवेन्द्रेण पातितः ।

हे महाराज ! राजा सेनाबिन्दु का पुत्र, बड़ा भारी रण कुशल श्रेष्ठ युद्धवीर था। कौरववंशश्रेष्ठ बाल्हिक ने उसे भी रण में जा गिराया ॥२६॥

धृष्टकेतुर्महाराज चेदीनां प्रवरो रथः ॥३०॥
कृत्वा न सुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ।

हे महाराज ! राजा धृष्टकेतु, चेदिवंश के क्षत्रियों में श्रेष्ठ माना जाता था। वह भी इस रण में भीषण कर्म करके अन्त में यमधाम पहुंच गए ॥३०॥

तथा सत्यधृतिर्वीरः कृत्वा कदनमाहवे ॥३१॥
पाण्डवार्थे पराक्रान्तो गमितो यमसादनम् ।
सेनाबिन्दुः कुरुश्रेष्ठः कृत्वा कदनमाहवे ॥३२॥

इसी तरह वीरश्रेष्ठ सत्यधृति ने रण में बहुत सा विध्वंस कर डाला। पाण्डवों के निमित्त युद्ध करते हुए इस वीर को कौरव वीरों ने यमलोक भेज दिया। कुरुवंशश्रेष्ठ सेना बिन्दु भी बहुत सी कौरव सेना का नाश करके यमलोक चला गया ॥३१-३२॥

पुत्रस्तु शिशुपालस्य सुकेतुः पृथिवीपतिः ।
निहत्य शात्रवान्सङ्ख्ये द्रोणेन निहतो युधि ॥३३॥

राजा शिशुपाल का पुत्र, पृथिवीपति सुकेतु भी रण में बहुत से शत्रुओं को मारकर अन्त में युद्ध में द्रोणाचार्य द्वारा मारा गया ॥३३॥

तथा सत्यधृतिर्वीरो मदिराश्वश्च वीर्यवान् ।
सूर्यदत्तश्च विक्रान्तो निहतो द्रोणसायकः ॥३४॥

इसी तरह वीरश्रेष्ठ, सत्यधृति, वीर्यवान् मदिराश्व, तथा अत्यन्त पराक्रमशाली राजा सूर्यदत्त, द्रोण के बाणों से रण में मारे गये ॥३४॥

श्रेणिमांश्च महाराज युध्यमानः पराक्रमी ।
कृत्वा न सुकरं कर्म गतो वैवस्वतक्षयम् ॥३५॥

हे महाराज ! अत्यन्त पराक्रमी राजा श्रेणिमान् ने भी महायुद्ध किया। यह अत्यन्त कठिन कर्म करके अन्त में यमपुरी को सिधार गया ॥३५॥

तथैव युधि विक्रान्तो मागधः परमास्त्रवित् ।
भीष्मेण निहतो राजञ्शेतेऽद्य परवीरहा ॥३६॥

हे राजन् ! इसी तरह युद्ध में पराक्रम दिखाने वाले अस्त्रविद्या में कुशल, मगधराज को भीष्मपितामह ने मार डाला, जो शत्रु वीरनाशक आज रणभूमि में पड़ा है ॥३६॥

विराटपुत्रः शङ्खस्तु उत्तरश्च महारथः ।
कुर्वन्तौ सुमहत्कर्म गतौ वैवस्वतक्षयम् ॥३७॥

राजा विराट का पुत्र महारथी उत्तर और शङ्ख-महाभीषण कर्म करके अन्त में यमपुरी चले गए ॥३७॥

वसुदानश्च कदनं कुर्वाणोऽतीव संयुगे ।
भारद्वाजेन विक्रम्य गमितो यमसादनम् ॥३८॥

राजा वसुदान ने भी रण में अत्यन्त विध्वंस कर डाला। भरद्वाज-पुत्र द्रोणाचार्य ने उससे युद्ध करके उसे भी यमलोक भेज दिया ॥३८॥

एते चाऽन्ये च बहवः पाण्डवानां महारथाः ।
हता द्रोणेन विक्रम्य यन्मां त्वं परिपृच्छसि ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संजयवाक्ये षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

ये तथा अन्य भी बहुत से पाण्डवों के महारथियों को आचार्य द्रोण ने मार २ कर रण में बिछा दिया। तुमने जिस विषय में मुझ से पूछा था मैंने वह तुमको सब कुछ सुना दिया है ॥३६॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में सञ्जय वाक्य का छठा अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



सातवाँ अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेकस्य सञ्जय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! अबतो मैं अपनी अनुत्साहित सेना की बचत नहीं देख रहा हूँ । अपने प्रधान वीर भीष्म

आदि के मारे जाने से यह बहुत ही साहसहीन होगई सी दिखाई पड़ती है ॥१॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे कुरुसत्तमौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा नार्थो वै जीवितेऽसति ॥२॥

भीष्म और द्रोण ये दोनों कौरव पक्ष के सर्वश्रेष्ठ वीर थे। इन दोनों महाधनुर्धरों ने मेरे निमित्त प्राण त्याग दिए। अब भीष्म और द्रोण की मृत्यु सुनकर मुझे अपने प्राणों तक का लोभ नहीं रह गया है ॥२॥

न च शोचामि राधेयं हतमाहवशोभनम् ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतत् ॥३॥

जिस राधा-पुत्र कर्ण की भुजाओं में सहस्र हाथी के तुल्य बल था। युद्ध में शोभा पाने वाले इस वीर कर्ण तक का मुझे इन दोनों वीरों के सन्मुख शोक नहीं है ॥३॥

हतप्रवरसैन्यं मे यथा शंससि सञ्जय ।
अहतानपि मे शंस केऽत्र जीवन्ति के च न ॥४॥

हे सञ्जय ! जिस तरह तुमने मुझे अपने मरे हुए सैनिक वीर सुनादिए उसी तरह अब तुम मुझे नहीं मरे हुए वीरों के नाम सुनाओ, कि उनमें कौन २ जीवित हैं ॥४॥

एतेषु हि मृतेष्वद्य ये त्वया परिकीर्तिताः ।
येऽपि जीवन्ति ते सर्वे मृता इति मतिर्मम ॥५॥

जो तुमने मुझे मृत वीरों के नाम सुनाए तथा अब जो जीवितों के नाम सुनाने वाले हो-मेरी सम्मति में ये भी सब मृत ही समझने चाहिए ॥५॥

सञ्जय उवाच—

यस्मिन्महास्त्राणि समर्पितानि,
चित्राणि शुभ्राणि चतुर्विधानि ।
दिव्यानि राजन्विहितानि चैव,
द्रोणेन वीरे द्विजसत्तमेन ॥६॥
महारथः कृतिमान्क्षिप्रहस्तो,
दृढायुधो दृढमुष्टिर्दृढेषुः ।
स वीर्यवान्द्रोणपुत्रस्तरस्वी,
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥७॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जिस अपने पुत्र को ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने मुक्त अमुक्त यन्त्रमुक्त और मुक्तामुक्त या दृढ़, दूर, सूक्ष्म और शब्दवेधी ये चार प्रकार के बड़े २ अद्भुत, चमकीले दिव्य महास्त्रो प्रदान किये-वे युद्ध कुशल, शीघ्र हाथ चलाने वाले, दृढ़ आयुधधारी, दृढ़ता के साथ धनुष पकड़ने वाले, दृढ़ बाण धर्ता, महापराक्रमी और अत्यन्त वेगशाली द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा तुम्हारे निमित्त युद्ध करने को अभी जीवित है ॥

आनर्त्तवासी हृदिकात्मजोऽसौ,
महारथः सात्वतानां वरिष्ठः ।
स्वयं भोजः कृतवर्मा कृतास्त्रो,
व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥८॥

हे भरतर्षभ ! आनर्त देशवासी, सात्वत वंशश्रेष्ठ, भोजपदवी-धारी, अस्त्र विद्या में कुशल, हृदिक-पुत्र महारथी कृतवर्मा अभी तुम्हारे लिए युद्ध करने को उपस्थित है ॥८॥

आर्तायनिः समदुष्प्रकम्प्यः,
सेनाग्रणीः प्रथमस्तावकानाम् ।
यः स्वस्रीयान्पाण्डवेयान्विसृज्य,
सत्यां वाचं स्वां चिकीर्षुस्तरस्वी ॥९॥
तेजोवधं सूतपुत्रस्य सङ्ख्ये प्रतिश्रुत्याजातशत्रोः पुरस्तात् ।
दुराधर्षः शक्रसमानवीर्यः शल्यः स्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे॥१०॥

युद्ध में किसी प्रकार नहीं कांपने वाला, सेना के आगे चलने में तत्पर, तुम्हारे महारथियों की प्रथम श्रेणी में गणना के योग्य, अत्यन्त वेगशाली, दुराधर्ष, इन्द्र के समान पराक्रमी ऋतायन पुत्र मद्रराजशल्य भी तुम्हारे लिए युद्ध करने को उत्सुक हैं। जिसने अपनी वाणी सत्य करने के निमित्त अपने भगिनी-पुत्र पाण्डवों का भी साथ नहीं दिया तथा अजात शत्रु धर्मराज से कर्ण के तेज के वध करने के निमित्त प्रतिज्ञा करके भी रण में कुछ नहीं किया ॥९-१०॥

आजानेयैः सैन्धवैः पार्वतीयैर्नदीजकाम्भोजवनायुजैश्च ।
गान्धारराजः स्वबलेन युक्तो व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥

हे राजन् ! आजानेय, सिन्धु, पर्वत, नदीज, काम्बोज और वनायु देशोत्पन्न अश्वों से तथा अपनी महाबल युक्त सेना से सम्पन्न, गान्धारराजशकुनि, तुम्हारी ओर से युद्ध करने को उत्सुक हो रहे हैं ॥११॥

शारद्वतो गौतमश्चापि राजन्महाबाहुर्बहुचित्रास्त्रयोधी ।
धनुश्चित्रं सुमहद्भारसाहं व्यवस्थितो योद्धुकामः प्रगृह्य ॥१२॥

हे राजन ! गौतम गोत्री, शरद्वान्-पुत्र, महाबाहु, विचित्र प्रकार से युद्ध करने वाला, कृपाचार्य, महान युद्ध के भार के सहने में समर्थ अद्भुत धनुष को लेकर तुम्हारी ओर से युद्ध करने को उद्यत हैं ॥१२॥

महारथः केकयराजपुत्रः सदश्वयुक्तं च पताकिनं च ।
रथं समारुह्य कुरुप्रवीर व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ॥१३॥

हे कुरुप्रवीर ! महारथी केकय राज-पुत्र, उत्तम अश्व और पताका से सुशोभित, रथपर बैठकर पाण्डवों से तुम्हारी विजय के लिए अभी लड़ने को विद्यमान है ॥१३॥

तथा सुतस्ते ज्वलनार्कवर्णं रथं समास्थाय कुरुप्रवीरः ।
व्यवस्थितः पुरुमित्रो नरेन्द्र व्यभ्रे सूर्यो भ्राजमानो यथा खे ॥

हे नरेन्द्र! कुरुवंश श्रेष्ठ, तुम्हारा पुत्र पुरु-मित्र, अग्नि और सूर्य के तुल्य चमकीले रथ में बैठकर युद्ध में इस प्रकार चमकता है, जैसे मेघरहित आकाश में सूर्य चमकता हो ॥१४॥

दुर्योधनो नागकुलस्य मध्ये व्यवस्थितः सिंह इवावभासे ।
रथेन जाम्बूनदभूषणेन व्यवस्थितः समरे योत्स्यमानः ॥१५॥

राजा दुर्योधन भी अपने सुवर्ण से विभूषित रथ के द्वारा रण में पराक्रम दिखाता हुआ ऐसे शोभित होता है, जैसे-हाथियों के समूह में स्थित सिंह प्रकाशित होता हो रहा हो ॥१५॥

स राजमध्ये पुरुषप्रवीरो रराज जाम्बूनदचित्रवर्मा ।
पद्मप्रभो वह्निरिवाल्पधूमो मेघान्तरे सूर्य इव प्रकाशः॥१६॥

सुवर्ण निर्मित विचित्र कवचधारी, कमल की सी कान्ति वाला यह पुरुष प्रवीर राजा दुर्योधन, राजाओं के मध्य में इस तरह सुशोभित होता है, जैसे मेघ के हट जाने पर सूर्य का प्रकाश चमक रहा हो ॥१६॥

तथा सुषेणोऽप्यसिचर्मपाणिस्तवात्मजः सत्यसेनश्च वीरः ।
व्यवस्थितौ चित्रसेनेन सार्धं हृष्टात्मानौ समरे योद्धुकामौ॥१७॥

इस तरह खर्ग चर्म (ढ़ाल तलवार) धारी तुम्हारा पुत्र सुषेण और वीर श्रेष्ठ, सत्यसेन, अपने भाई चित्रसेन के साथ युद्ध के निमित्त बड़े उत्साह से रण भूमि में उपस्थित हैं ॥१७॥

ह्रीनिषेवो भारत राजपुत्र उग्रायुधः क्षणभोजी सुदर्शः ।
जारासन्धिः प्रथमश्चादृढश्च चित्रायुधः श्रुतवर्मा जयश्च ॥१८॥
शलश्च सत्यव्रतदुःशलौ च व्यवस्थिताः सहसैन्या नराग्रयाः।

हे भारत ! लज्जाशील, उग्रआयुधधारी, राज-पुत्र शीघ्र भोजन करने वाला, राजा सुदर्श, जरासन्ध, श्रुतवर्मा, और जय, शल, सत्यव्रत दुःशल आदि वीरश्रेष्ठ, सेना लेकर अभी कौरवों की ओर से युद्ध के लिए तैयार है ॥१८॥

कैतव्यानामधिपः शूरमानी रणे रणे शत्रुहा राजपुत्रः ॥१९॥
रथी हयी नागपत्तिप्रयायी व्यवस्थितो योद्धुकामस्त्वदर्थे ।

शूरवीरता के अभिमानी, प्रत्येक रण में शत्रु के नाशक, राजपुत्र, कैतव्याधिपति, रथ, अश्व, हाथी और पैदल आदि की चतुरङ्गिणी सेना सजाकर तुम्हारी ओर से युद्ध के निमित्त सब तरह से स्थित हैं ॥१९॥

वीरः श्रुतायुश्च धृतायुधश्च चित्राङ्गदश्चित्रसेनश्च वीरः ॥२०॥
व्यवस्थिता योद्धुकामा नराग्रया प्रहारिणो मानिनः सत्यसन्धाः
कर्णात्मजः सत्यसन्धो महात्मा व्यवस्थितः समरे योद्धुकामः॥

वीरवर श्रुतायु, धृतायुध, चित्राङ्गद, चित्रसेन आदि बड़े २ वीर पुरुष युद्ध की कामना से अभी तुम्हारी ओर खड़े हैं। ये प्रहार करने में कुशल, बड़े अभिमानी और सत्य प्रतिज्ञा वाले हैं। इसी प्रकार कर्ण-पुत्र महात्मा सत्यसन्ध भी अभी तक युद्ध की इच्छा से रण में उपस्थित हैं ॥२०-२१॥

अथापरौ कर्णसुतौ वरास्त्रौ व्यवस्थितौ लघुहस्तौ नरेन्द्र ।
महद्बलं दुर्भिदमल्पवीर्यैः समन्वितौ योद्धु कामौ त्वदर्थे ॥२२॥

हे नरेन्द्र ! उत्तम २ अस्त्र और शीघ्र हाथ चलाने में तत्पर, कर्ण के दो अन्य पुत्र शेष हैं। उनके पास बड़ी भारी सेना है, जिसको थोड़ी शक्ति वाले शत्रु छिन्न-भिन्न नहीं कर सकते हैं वे भी तुम्हारी ओर से युद्ध को उत्सुक हैं ॥२२॥

एतैश्च मुख्यैरपरैश्च राजन्योधप्रवीरैरमितप्रभावैः ।
व्यवस्थितो नागकुलस्य मध्ये यथा महेन्द्रः कुरुराजो जयाय॥

हे राजन ! इन मुख्य २ वीर तथा अपरिमित प्रभाव वाले अन्य क्षत्रिय वीरों के साथ, कुरुराज दुर्योधन, अपनी विजय की अभिलाषा से इस तरह रणभूमि में खड़े हैं, जैसे हाथियों की सेना के मध्य में इन्द्र उपस्थित हों ॥२३॥

धृतराष्ट्र उवाच—

आख्याता जीवमाना ये परे सैन्या यथायथम् ।
इतिदमवगच्छामि व्यक्तमर्थाभिपत्तितः ॥२४॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सूत ! तुमने हमारे पक्ष और विरोधी पक्ष के जीवित वीर राजाओं की गणना कर दी है। इससे मैं भविष्य में होने वाली जय और पराजय का अनुमान कर सकता हूं. क्योंकि अनुमान से भी बहुत सी बातें स्पष्ट सिद्ध हो जाती है। अबतो यही प्रतीत होता है, कि हमारी विजय नहीं होगी ॥२४॥

वैशम्पायन उवाच—

एवं ब्रुवन्नेव तदा धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
हतप्रवीरं विध्वस्तं किञ्चिच्छेषं स्वकं बलम् ॥२५॥

श्रुत्वा व्यामोहमागच्छच्छोकव्याकुलितेन्द्रियः ।
मुह्यमानोऽब्रवीच्चापि मुहूर्तं तिष्ठ सञ्जय ॥२६॥
व्याकुलं मे मनस्तात श्रुत्वा सुमहदप्रियम् ।
मनो मुह्यति चाऽङ्गानि न च शक्नोमि धारितुम् ॥२७॥

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय ! इस प्रकार अम्बिका-पुत्र राजा धृतराष्ट्र ने कहा । अधिक मारे हुए अपने वीर तथा अल्पायु शेष सेना को देख उसे मूर्च्छासी आगई । शोक से इसकी इन्द्रियां व्याकुल हो उठी । इस अचेत अवस्था में भी वह बोला—सञ्जय ! अभी कुछ थोड़ी देर और ठहरो । हे तात ! इस अप्रिय समाचार को सुनकर मेरा मन बहुत घबरा रहा है । मेरा मन मोहित होता जा रहा है और मैं अपने अङ्गों के धारण करने में भी समर्थ नहीं हूं ॥२७॥

इत्येवमुक्त्वा वचनं धृतराष्ट्रोऽम्बिकासुतः ।
भ्रान्त चित्तस्ततः सोऽथ बभूव जगतीपतिः ॥२८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि सञ्जयवाक्यं नाम सप्तमोऽध्याय ॥७॥

हे राजन् ! अम्बिका-पुत्र राजा धृतराष्ट्र इतना कहकर उद्विग्न हो गया । उसका मस्तक चकराने लगा और वह कुछ देर को पागल सा होगया ॥२८॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में सञ्जय वाक्य
का सातवां अध्याय समाप्त हुआ ।

आठवां अध्याय

जनमेजय उवाच —

श्रुत्वा कर्णं हतं युद्धे पुत्रांश्चैव निपातितान् ।
नरेन्द्रः किञ्चिदाश्वस्तो द्विजश्रेष्ठ किमब्रवीत् ॥१॥
प्राप्तवान्परमं दुःखं पुत्रव्यसनजं महत् ।
तस्मिन्यदुक्तवान्काले तन्ममाचक्ष्व पृच्छतः ॥२॥

जनमेजय ने पूछा—हे द्विजश्रेष्ठ ! अङ्गराज कर्ण और अपने पुत्रों को रण में मरा हुआ सुनने के अनन्तर राजा धृतराष्ट्र को जो व्याकुलता हुई और उसके पीछे जो थोड़ी देर में कुछ आश्वासन आया-तो उन्होंने सञ्जय से क्या कहा । इनको अपने दुःशासन आदि पुत्रों के मरने का बहुत ही दुःख हुआ होगा । अब मैं आपसे यही पूछता हूं, कि आप यह बताइये, कि इस समय सञ्जय से उन्होंने क्या कहा ॥१-२॥

वैशम्पायन उवाच—

श्रुत्वा कर्णस्य निधनमश्रद्धेयमिवाद्भुतम् ।
भूतसंमोहनं भीमं मेरोः संसर्पणं यथा ॥३॥
चित्तमोहमिवायुक्तं भार्गवस्य महामतेः ;
पराजयमिवेन्द्रस्य द्विषद्भयो भीमकर्मणः ॥४॥
दिवः प्रपतनं भानोरुर्व्यामिव महाद्युते ।
संशोषणमिवाचिन्त्यं समुद्रस्याक्षयाम्भसः ॥५॥

महीवियद्दिगम्बूनां सर्वनाशमिवाद्भुतम् ।
कर्मणोरिव वैफल्यमुभयोः पुण्यपापयोः ॥६॥

वैशम्पायन बोले—हे महाद्युते ! राजा धृतराष्ट्र, नहीं हो सकने वाले श्रद्धा के अयोग्य, प्राणियों को मोह में डालने वाले, भयानक, मेरुपर्वत के खसकने के सदृश, भृगुवंशोद्भव, महाज्ञानी परशुराम के चित्त में नहीं होने वाले मोह के समान, भीषण कर्म करने वाले शत्रुओं से इन्द्र के पराजय की भांति तथा पृथिवी में आकाश से सूर्य के गिरने के तुल्य, कर्ण का मरण सुनकर बड़े ही चिन्तित हुए । यह मृत्यु, अपार जल राशिधारण करने वाले, असम्भव समुद्र के शोषण के सदृश तथा पृथिवी, आकाश, दिशा और जल के अद्भुत सर्वनाशक तुल्य थी । यह तो इतनी असम्भव घटना हुई, जैसे पुण्य और पाप कर्मों का फल नष्ट हो गया हो ॥२-६॥

सञ्चिन्त्य निपुणं बुद्ध्या धृतराष्ट्रो जनेश्वरः ।
नेदमस्तीति सञ्चिन्त्य कर्णस्य समरे वधम् ॥७॥
प्राणिनामेवमन्येषां स्यादपीति विनाशनम् ।

राजा धृतराष्ट्र ने अपनी बुद्धि से अच्छी तरह विचारकर समझ लिया, कि रण में जो कर्ण का वध हुआ है—इससे प्रतीत होता है, कि अब यह हमारा सारा ऐश्वर्य ही नहीं रहेगा । अब तो जो कुछ अन्य प्राणी बचे हुए हैं, उनका भी विनाश अवश्यम्भावी है ॥७॥

शोकाग्निना दह्यमानो धम्यमान इवाशये ॥८॥
विस्रस्ताङ्गः श्वसन्दीनो हाहेत्युक्त्वा सुदुःखितः।
विललाप महाराज धृतराष्ट्राऽम्बिकासुतः। ॥९॥

भट्टी में लोहे के जलने के समान शोक की अग्नि से जलते हुए राजा धृतराष्ट्र-बड़े हीन हो गये। उनके अङ्ग शिथिल पड़ गए और वे श्वास मारने लगे। वे हाहाकार करते हुए बड़े दुःखी हुए। हे महाराज! इस प्रकार अम्बिका सुत राजा धृतराष्ट्र, विलाप करके व्याकुल हो उठे ॥८-९॥

धृतराष्ट्र उवाच—

सञ्जयाधिरथिर्वीरः सिंहद्विरदविक्रमः।
वृषभप्रतिमस्कन्धो वृषभाक्षगतिश्चरन् ॥१०॥
वृषभो वृषभस्येव यो युद्धे न निवर्त्तते।
शत्रोरपि महेन्द्रस्य वज्रसंहननो युवा ॥११॥
यस्य ज्यातलशब्देन शरवृष्टिरवेण च।
रथाश्वनरमातङ्गा नावतिष्ठन्ति संयुगे ॥१२॥
यमाश्रित्य महाबाहुं विद्विषां जयकांक्षया।
दुर्योधनोऽकरोद्वैरं पाण्डुपुत्रैर्महारथैः ॥१३॥
स कथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णः पार्थेन संयुगे।
निहतः पुरुषव्याघ्रः प्रसह्यासह्यविक्रमः ॥१४॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! अधिरथ पुत्र, कर्ण, बड़ा वीर, और सिंह तथा हाथी की सी चाल चलने वाला था। इसकी

आंखे और स्कन्ध वृषभ के सदृश थीं। यह युद्ध में वृषभ की भांति ही घूमता था। जैसे-एक वृषभ से दूसरा वृषभ पीछे नहीं हटता, वैसे ही यह कर्ण भी, यदि इन्द्र भी शत्रु हो तो-उससे भी पीछे नहीं हटता था। इस युवावीर का शरीर वज्र के तुल्य दृढ़ था। जिसके धनुष की डोरी और करतल त्राण की ध्वनि तथा बाण वृष्टि के सन्नाटे को सुनकर रथ, अश्व, नर और हाथी रण में ठहर भी नहीं सकते थे। इसी कर्ण के अवलम्ब से महारथी पाण्डवों के साथ राजा दुर्योधन ने वैर खड़ा किया। इसी महाबाहु के आश्रय से दुर्योधन, अपने शत्रु पाण्डवों से विजय की अभिलाषा रखते थे। रथियों में श्रेष्ठ, असह्य पराक्रम धारी पुरुष व्याघ्र, उसी महारथी कर्ण को रण में अर्जुन ने कैसे बल-पूर्वक मार गिराया ॥१०-१४॥

यो नामन्यत वै नित्यमच्युतं च धनञ्जयम् ।
न वृष्णीन्सहितानन्यान्स्वबाहुबलदर्पितः ॥१५॥
शार्ङ्गगाण्डीवधन्वानौ सहितावपराजितौ ।
अहं दिव्याद्रथादेकः पातयिष्यामि संयुगे ॥१६॥
इति यः सततं मन्दमवोचल्लोभमोहितम् ।
दुर्योधनमवाचीनं राज्यकामुकमातुरम् ॥१७॥

अङ्गराज कर्ण भी अपने बाहुबल का इतना अभिमान रखता था, कि वह श्रीकृष्ण, अर्जुन तथा अन्य इकट्ठे ही वृष्णि वीरों को कुछ नहीं समझता था। हे तात ! कर्ण को तो यही अभिमान

था, कि मैं नहीं पराजित होने वाले शार्ङ्ग नामक धनुर्धर श्रीकृष्ण और गाण्डीवधारी अर्जुन को एक साथ अपने दिव्य रथ से रण भूमि में एक दिन अवश्य गिरा दूंगा यही बात उसने बार बार मूर्ख; लोभ में फंसे हुए, बड़ी आतुरता से राज्य के लिए व्याकुल, सीधे साधे दुर्योधन से कही थी ॥१५-१७॥

योऽजयत्सर्वकाम्बोजानावन्त्यान्केकयैः सह ।
गान्धारान्मद्रकान्मत्स्यांस्त्रिगर्तांस्तङ्गणाञ्शकान् ॥१८॥
पञ्चालांश्च विदेहांश्च कुलिन्दान्काशिकोसलान् ।
सुह्मानङ्गांश्च वङ्गांश्च निषादान्पुण्ड्रचीरकान् ॥१९॥
वत्सान्कलिङ्गांस्तरलानश्मकानृषिकानपि ।

इस कर्ण ने सारे काम्बोज, अवन्तीवीर, केकय, गान्धार, मद्रक, मत्स्य, त्रिगर्त, तङ्गण, शक, पञ्चाल, विदेह, कुलिन्द, काशि और कोसल देशोत्पन्न वीर, सुह्म, अनङ्ग, वङ्ग, निषाद, पुण्ड्र, चीरक, वत्स, कलिङ्ग, तरल, अश्मक, ऋषिक आदि वीरों को एक दम जीत लिया था ॥१८-१९॥

जित्वैतान्समरे वीरश्चक्रे बलिभृतः पुरा ॥२०॥
शरव्रातैः सुनिशितैः सुतीक्ष्णैः कङ्कपत्रिभिः ।
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं राधेयो रथिनां वरः ॥२१॥

कङ्क पक्षी के पर्खों से युक्त अपने तीक्ष्ण बाणों से महारथी कर्ण ने इन को रण में जीत कर देने वाला बनाया था। यह सब

कुछ रथियों में श्रेष्ठ राधा-पुत्र कर्ण ने दुर्योधन की वृद्धि के लिए किया था ॥२०-२१॥

दिव्यास्त्रविन्महातेजाः कर्णो वैकर्तनो वृषः ।
सेनागोपश्च स कथं शत्रुभिः परमास्त्रवित् ॥२२॥
घातितः पाण्डवैः शूरैः समरे वीर्यशालिभिः ।

सूर्य-पुत्र वृष नामधारी कर्ण, महा तेजस्वी और दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता थे। इसी दिव्य अस्त्रों के ज्ञाता, सेनापति कर्ण को पराक्रमशाली महा वली पाण्डवों ने रण में कैसे मार गिराया॥२२॥

वृषो महेन्द्रो देवेषु वृषः कर्णो नरेष्वपि ॥२३॥
तृतीयमन्यं लोकेषु वृषं नैवानुशुश्रुम ।

देवों में वर्षा करने वाला इन्द्र (वृष) और मनुष्यों में दान के समय धन और रण में वाणों की वर्षा करने वाला (वृष) दूसरा कर्ण था। हमने तो त्रिलोकी में तीसरा कोई वृष (वर्षा करने वाला) सुना ही नहीं है ॥२३॥

उच्चैःश्रवा वरोऽश्वानां राज्ञां वैश्रवणो वरः ।
वरो महेन्द्रो देवानां कर्णः प्रहरतां वरः ।

अश्वों में उच्चैश्रवा, राजाओं में कुबेर जैसे और देवों में इन्द्र उत्तम है, उसी तरह प्रहार करने वाले योद्धाओं में कर्ण सर्व श्रेष्ठ है ॥२४॥

योऽजितः पार्थिवैः शूरैः समर्थैर्वीर्यशालिभिः ॥२५॥
दुर्योधनस्य वृद्ध्यर्थं कृतस्नामुर्वीमथाजयत् ।

बड़े पराक्रमशाली महावीर, शक्तिशाली राजाओं से भी कर्ण, पराजित नहीं हो सके थे। इसने राजा दुर्योधन की वृद्धि के निमित्त सारी पृथिवी को जीतकर उनके अधीन कर दिया था॥

यं लब्ध्वा मागधो राजा सान्त्वमानोऽथ सौहृदैः॥
अरौत्सीत्पार्थिवं क्षत्रमृते यादवकौरवान्।
तं श्रुत्वा निहतं कर्णं द्वैरथे सव्यसाचिना॥२७॥

जिसकी सहायता से ही सारे सुहृद् मगधराज के साथी हुए थे। उसी महारथी कर्ण को इस घोर युद्ध में सव्यसाची अर्जुन द्वारा मारा हुआ सुनकर मैं शोक सागर में इस तरह डूब रहा हूं, जैसे टूटी नौका समुद्र में डूबने लगती है॥२६-२७॥

शोकार्णवे निमग्नोऽहं भिन्ना नौरिव सागरे।
तं वृषं निहतं श्रुत्वा द्वैरथे रथिनां वरम्॥२८॥
शोकार्णवे निमग्नोऽहमप्लवः सागरे तथा।

रथियों में श्रेष्ठ, बाणों की झड़ी लगाने वाले महारथी कर्ण को इस रण में मरा हुआ सुनकर मैं इस तरह शोक समुद्र में डूब रहा हूं-जैसे-बिना नौका मनुष्य डूब रहा हो॥२८॥

ईदृशैर्यद्यहं दुःखैर्न विनश्यामि सञ्जय॥२९॥
वज्राद् दृढतरं मन्ये हृदयं मम दुर्भिदम्।

हे सञ्जय! यदि इस तरह के दुःखों से भी मैं नष्ट नहीं हो रहा हूं, तो मेरा हृदय वज्र से भी दृढ़तर और दुर्भेद्य है-इसमें सन्देह नहीं मानना चाहिए॥२९॥

ज्ञातिसम्बन्धिमित्राणामिमं श्रुत्वा पराभवम् ॥३०॥
को मदन्यः पुमाँल्लोके न जह्यात्सूत जीवितम्।

हे सूत ! जाति, सम्बन्धी और मित्रों का इस भांति से विनाश सुनकर भी कौन मेरे सिवा पुरुष होगा-जो अपने प्राणों का परित्याग नहीं कर देगा ॥३०॥

विषमग्निं प्रपातं च पर्वताग्रादहं वृणे ॥
नहि शक्ष्यामि दुःखानि सोढुं कष्टानि सञ्जय ॥३१॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रवाक्येऽष्टमोऽध्यायः ॥८॥

हे सञ्जय ! अबतो मैं विष खालूंगा-अग्नि में जल मरूंगा और पर्वत से गिर जाऊँगा-परन्तु मुझ से ये अत्यन्त कठिन दुःख नहीं सहे जा सकेंगे ॥३१॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में धृतराष्ट्र के वाक्य
का आठवां अध्याय समाप्त हुआ।

नौवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्रिया कुलेन यशसा तपसा च श्रुतेन च ।
त्वामद्य सन्तो मन्यन्ते ययातिमिव नाहुषम् ॥१॥

श्रुते महर्षिप्रतिमः कृतकृत्योऽसि पार्थिव ।
पर्यवस्थापयात्मानं मा विषादे मनः कृथाः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे नृप ! आज तुमको विद्वान्, नहुष-पुत्र ययाति की भांति, राज्यलक्ष्मी, कुल, यश तप और शास्त्र ज्ञान में श्रेष्ठ समझते हैं । आपका शास्त्र ज्ञान महर्षियों के ज्ञान से चढ़ा बढ़ा हुआ है। तुम अपनी आत्मा में धैर्य धारण करो और अपने मन को विषाद के अधीन न होने दो ॥१-२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

दैवमेव परं मन्ये धिक् पौरुषमनर्थकम् ।
यत्र शालप्रतीकाशः कर्णोऽहन्यत संयुगे ॥३॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! मुझे यह प्रतीत हो गया है, कि दैव ही प्रधान है, पुरुषार्थ तो व्यर्थ और निरर्थक है। यही तो कारण है, जो शाल के समान विशाल आकारधारी महारथी कर्ण भी रण में मारा गया ॥३॥

हत्वा युधिष्ठिरानीकं पञ्चालानां रथव्रजान् ।
प्रताप्य शरवर्षेण दिशः सर्वा महारथः ॥४॥

मोहयित्वा रणे पार्थान्वज्रहस्त इवासुरान् ।
स कथं निहतः शेते वायुरुग्ण इव द्रुमः ॥५॥

जिस महारथी कर्ण ने राजा युधिष्ठिर की सेना को मार २ कर बिछा दिया, पाञ्चालों के रथ समूहों को चकना चूर कर डाला एवं अपनी बाण वर्षा से सारी दिशाओं को सन्तापित बना दिया। जिसने असुरों को वज्रधारी इन्द्र की भांति रण में पाण्डवों को भयभीत कर दिया-वह कर्ण भी आज मरकर वायु से तोड़े हुए वृक्ष की भांति कैसे रण भूमि में गिर गया ॥४-५॥

शोकस्यान्तं न पश्यामि पारं जलनिधेरिव ।
चिन्ता मे वर्धतेऽतीव मुमूर्षा चापि जायते ॥६॥

हे तात समुद्र के पार पाने के समान मैं इस शोक समुद्र का पार नहीं पा रहा हूं । मुझे बड़ी चिन्ता हो रही है और शरीर पर मृत्यु का आक्रमण सा हो रहा है ॥६॥

कर्णस्य निधनं श्रुत्वा विजयं फाल्गुनस्य ।
अश्रद्धेयमहं मन्ये वधं कर्णस्य सञ्जय ॥७॥

हे सञ्जय ! मैंने कर्ण की मृत्यु और अर्जुन की विजय के समाचार सुन लिए-तो भी मुझे अभी कर्ण के वध में विश्वास या श्रद्धा नहीं सी हो रही है ॥७॥

वज्रसारमयं नूनं हृदयं दुर्भिदं मम ।
यच्छ्रुत्वा पुरुषव्याघ्रं हतं कर्णं न दीर्यते ॥८॥

हे सञ्जय ! मेरा हृदय वज्रसार से बना हुआ बड़ा दुर्भेद्य है, जो पुरुषव्याघ्र कर्ण की मृत्यु सुनकर भी नहीं फटता है ॥८॥

आयुर्नूनं सुदीर्घं मे विहितं दैवतैः पुरा ।

यत्र कर्णं हतं श्रुत्वा जीवामीह सुदुःखितः ॥९॥

हे सूत ! ईश्वर ने मेरी आयु भी बड़ी लम्बी चौड़ी निर्मित की है, जो कर्ण की मृत्यु सुनकर भी दुःख पूर्वक मैं जीवित रह रहा हूं ॥९॥

धिग्जीवितमिदं चैव सुहृद्धीनस्य सञ्जय ।

अद्य चाऽहं दशामेतां गतः सञ्जय गर्हिताम् ॥१०॥

कृपणं वर्त्तयिष्यामि शोच्यः सर्वस्य मन्दधीः ।

हे सञ्जय ! अपने हित चिन्तकों से हीन होकर जीवित रहने को धिक्कार है, जिससे आज मैं इस निन्दित दशा को प्राप्त हो रहा हूं. मुझ मूर्ख पर आज सब दया दिखा रहे और मैं बड़ी करुणापूर्ण स्थिति में प्राण धारण किये हुए हूं ॥१०॥

अहमेव पुरा भूत्वा सर्वलोकस्य सत्कृतः ॥११॥

परिभूतः कथं सूत परैः शक्ष्यामि जीवितुम् ।

हे सूत ! पूर्वकाल में सब लोग मेरा आदर सत्कार और मान प्रतिष्ठा करते थे। अब मैं विरोधियों से तिरस्कार पाकर कैसे जीवित रहने की चेष्टा कर सकता हूं ॥११॥

दुःखात्सुदुःखव्यसनं प्राप्तवानस्मि सञ्जय ॥१२॥
भीष्मद्रोणवधेनैव कर्णस्य च महात्मनः ।

आज मुझे दुःख से भी अधिक दुःखदायी व्यसन (विपत्ति) प्राप्त हो गया है, जो भीष्म, द्रोण और महावीर कर्ण रण में मारे जा चुके ॥१२॥

नावशेषं प्रपश्यामि सूतपुत्रे हते युधि ॥१३॥
सहि पार्यं महानासीत्पुत्राणां मम सञ्जय ।

हे सञ्जय ! सूतपुत्र कर्ण के मारे जाने पर अब इस युद्ध में मुझे कोई, उत्तम वीर दिखाई नहीं देता है। कर्ण तो मेरे पुत्रों को इस युद्ध रूपी समुद्र से पार करने वाली नौका के तुल्य था ॥

युद्धे हि निहतः शूरो विसृजन्सायकान्बहून् ॥१४॥
को हि मे जीवितेनार्थस्तमृते पुरुषर्षभम् ।

कर्ण ने युद्ध में बहुत से बाणों की झड़ी सी लगा दी अब उस पुरुष प्रवीर कर्ण के विना मेरे जीवन से भी क्या लाभ है ॥१४॥

रथादाधिरथिर्नूनं न्यपतत्सायकार्दितः ॥१५॥
पर्वतस्येव शिखरं वज्रपाताद्विदारितम् ।

आज अधिरथ पुत्र कर्ण, अर्जुन के बाण से अर्दित होकर रथ से नीचे इस तरह गिर गया, जैसे—वज्र से विदारित होकर पर्वत का शिखर हो जाता है ॥१५॥

स शेते पृथिवीं नूनं शोभयन्रुधिरोक्षितः ॥१६॥
मातङ्ग इव मत्तेन द्विपेन्द्रेण निपातितः ।

आज रक्त में भीगा हुआ कर्ण रण भूमि की शोभा बढ़ाता हुआ पृथिवी में ही इस प्रकार सो रहा होगा, जैसे मदोन्मत्त हाथी दूसरे हाथी को मार गिराता है ॥१६॥

यो बलं धार्त्तराष्ट्राणां पाण्डवानां यतो भयम् ॥१७॥
सोऽर्जुनेन हतः कर्णः प्रतिमानं धनुष्मताम् ।

जो कौरवों का बल था और पाण्डवों को जिससे भय था धनुष धारियों के बल की सीमा दूत उसी कर्ण को अर्जुन ने आज मार गिराया ॥१७॥

स हि वीरो महेष्वासो मित्राणामभयङ्करः ॥१८॥
शेते विनिहतो वीरो देवेन्द्रेण इवाचलः ।

यह महाधनुर्धर वीर श्रेष्ठ कर्ण, मित्रों को अभय देने वाला था। आज यह वीर इन्द्र द्वारा गिराये हुए पर्वत की भांति नष्ट भ्रष्ट होकर भूमि में पड़ा है ॥१८॥

पङ्गोरिवाध्वगमनं दरिद्रस्येव कामितम् ॥१९॥
दुर्योधनस्य चाकूतं तृषितस्येव विप्रुषः ।

राजा दुर्योधन के आज सारे मनोरथ, पङ्गु के मार्ग चलने दरिद्री महल अटारी बनाने और प्यासे को दो चार बूंद पानी मिलने के तुल्य हो गए ॥१९॥

अन्यथा चिन्तितं कार्यमन्यथा तत्तु जायते ॥२०॥
अहो नु बलवद्दैवं कालश्च दुरतिक्रमः ।

मनुष्य किसी कार्य को अन्य ही रीति से विचारता है और वह अन्य ही ढंग से हो जाता है। दैव बड़ा बलवान् और अद्भुत है तथा काल भी बड़ा दुरतिक्रम होता है ॥२०॥

पलायमानः कृपणो दीनात्मा दीनपौरुषः ॥२१॥
कच्चिद्विनिहतः सूत पुत्रो दुःशासनो मम ।

हे सूत ! दीन होकर भागता हुआ तथा पुरुषार्थ हीन और करुणा के योग्य होकर मेरा पुत्र दुःशासन रण भूमि में मारा तो नहीं गया ॥२१॥

कच्चिन्न दीनाचरितं कृतवांस्तात संयुगे ॥२२॥
कच्चिन्न निहतः शूरो यथान्ये क्षत्रियर्षभाः ।

हे तात ! उसने रण भूमि में कोई हीन की तरह व्यवहार तो नहीं किया। क्या यह शूरवीर उसी वीरता से नहीं मारा गया जिस तरह क्षत्रिय वीर मारे गए ॥२२॥

युधिष्ठिरस्य वचनं मा युध्यस्वेति सर्वदा ॥२३॥
दुर्योधनो नाभ्यगृह्णान्मूढः पथ्यमिवौषधम् ।

राजा युधिष्ठिर ने बार २ चेष्टा की, कि दुर्योधन ! युद्ध न कर, परन्तु मेरे मूर्ख पुत्र ने पथ्य औषध को मूर्ख रोगी की तरह उसे ग्रहण नहीं किया ॥२३॥

शरतल्पे शयानेन भीष्मेण सुमहात्मना ॥२४॥
पानीयं याचितः पार्थः सोऽविध्यन्मेदिनीतलम् ।

शरशय्या पर सोते हुए महारथी भीष्म ने अर्जुन से पानी मांगा। उस वीर ने बाण से पृथ्वी को भेद कर वहीं पानी निकाल दिया ॥२४॥

जलस्य धारां जनितां दृष्ट्वा पाण्डुसुतेन च ॥२५॥
अब्रवीत्स महाबाहुस्तात संशाम्य पाण्डवैः।

हे राजन्! पाण्डु-पुत्र अर्जुन द्वारा वहीं पर निकाली हुई जलधारा को देखकर महाबाहु, भीष्म ने कहा था-हे तात! दुर्योधन! तुम राजा युधिष्ठिर से सन्धि करलो ॥२५॥

प्रशमाद्धि भवेच्छान्तिर्मदन्तं युद्धमस्तु चः ॥२६॥
भ्रातृभावेन पृथिवीं भुंक्ष्व पाण्डुसुतैः सह।

यदि तुम लोगों में सन्धि होगई तो शान्ति हो जावेगी। मेरी मृत्यु पर इस युद्ध की समाप्ति हो जानी चाहिए। फिर तुम भ्रातृभाव पूर्वक अपने भाई पाण्डवों के साथ इस भूमि का उपभोग करना ॥२६॥

अकुर्वन्वचनं तस्य नूनं शोचति पुत्रकः ॥२७॥
तदिदं समनुप्राप्तं वचनं दीर्घदर्शिनः।

राजा दुर्योधन ने भीष्म के वचनों को नहीं माना। आज वही तुम्हारा दुर्मति-पुत्र चिन्ता कर रहा है। दीर्घदर्शी भीष्म के वचनों का ही आज यह परिणाम निकल रहा है ॥२७॥

अहं तु निहतामात्यो हतपुत्रश्च सञ्जय ॥२८॥
द्यूततः कृच्छ्रमापन्नो लूनपक्ष इव द्विजः।

हे सञ्जय ! अब हमारे तो मन्त्री और बहुत से पुत्र मारे जा चुके। उस द्यूत से ही यह सारी विपत्ति और दुःख इस तरह खड़ा हो गया, जैसे पक्ष काट देने पर पक्षी को दुःख खड़ा हो जाता है ॥२८॥

यथा हि शकुनिं गृह्य च्छित्वा पक्षौ च सञ्जय ॥२९॥
विसर्जयन्ति संहृष्टास्ताड्यमानाः कुमारकाः ।
लूनपक्षतया तस्य गमनं नोपपद्यते ॥३०॥
तथाहमपि संप्राप्तो लूनपक्ष इव द्विजः ।

हे सञ्जय ! बच्चे, किसी पक्षी को पकड़ कर उसके पर काट लेते हैं और फिर उसे ताड़ित करके छोड़ देते हैं और बड़े प्रसन्न होते हैं। उस पक्षी की पांख कट जाती है-इससे वह भाग नहीं सकता वही पक्ष कटे हुए पक्षी की भांति हमारी दशा हो रही है ॥२९-३०॥

क्षीणः सर्वार्थहीनश्च निर्ज्ञातिर्बन्धुवर्जितः ।
कां दिशं प्रतिपत्स्यामि दीनः शत्रुवशं गता ॥३१॥

मैं सब प्रयोजनों से हीन और क्षीण हो चुका हूं। मेरी जाति और बन्धु-बान्धव मारे जा चुके। अब शत्रु के वश में जा रहा हूं। न जाने मैं दीन होकर आगे किस दुर्दशा को प्राप्त करूंगा ॥

वैशम्पायन उवाच—

इत्येवं धृतराष्ट्रोऽथ विलप्य बहुदुःखितः ।
प्रोवाच सञ्जयं भूयः शोकव्याकुलमानसः ॥३२॥

वैशम्पायन बोले—हे जनमेजय ! इस प्रकार बहुत सी बातें और विलाप करके राजा धृतराष्ट्र बड़े दुःखी हुए। अब वे शोक से उद्विग्न मन होकर फिर सञ्जय से यह वचन बोले ॥३२॥

धृतराष्ट्र उवाच—

योऽजयत्सर्वकाम्बोजानम्बष्ठान्केकयैः सह।
गान्धारांश्च विदेहांश्च जित्वा कार्यार्थमाहवे ॥३३॥
दुर्योधनस्य वृद्धयर्थं योऽजयत्पृथिवीं प्रभुः।
स जितः पाण्डवैः शूरैः समरे बाहुशालिभिः ॥३४॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! जिस शक्तिशाली कर्ण ने सारे काम्बोज, अम्बष्ठ, केकय, गान्धार और विदेह क्षत्रियों को रण में जीत लिया और उसी विजय के द्वारा राजा दुर्योधन का प्रयोजन सिद्ध किया ! जिसने इस सारी पृथिवी को जीता ही केवल दुर्योधन की वृद्धि के लिए था। उसी कर्ण को बाहुबल से सम्पन्न, शूरवीर पाण्डवों ने रण में जीत लिया ॥३३-३४॥

तस्मिन्हते महेष्वासे कर्णे युधि किरीटिना।
के वीराः पर्यतिष्ठन्त तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥३५॥

हे सञ्जय ! उस महाधनुर्धर कर्ण के युद्ध में किरीटधारी अर्जुन द्वारा मारे जाने पर हमारी और के फिर भी कितने वीर युद्ध में डटे रहे-मुझे यह ठीक २ बताओ ॥३५॥

कच्चिन्नैकः परित्यक्तः पाण्डवैर्निहतो रणे।
उक्तं त्वया पुरा तात यथा वीरो निपातितः ॥३६॥

हे तात ! क्या अब कोई भी उत्तम महारथी रण में मारे जाने से नहीं बच रहा है । जिस प्रकार से वीरश्रेष्ठ कर्ण मारा गया-तुमने तो यह पूर्व में ही सुना दिया है ॥३६॥

भीष्ममप्रतियुद्धयन्तं शिखण्डी सायकोत्तमैः ।
पातयामास समरे सर्वशस्त्रभृतां वरम् ॥३७॥

भीष्मपितामह भी बेजोड़ के योद्धा थे, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ उन भीष्मपितामह को भी शिखण्डी ने अपने तीखे बाणों से रण में मार गिराया ॥३७॥

तथा द्रौपदिना द्रोणो न्यस्तसर्वायुधो युधि ।
युक्तयोगो महेष्वासः शरैर्बहुभिराचितः ॥३८॥
निहतः खड्गमुद्यम्य धृष्टद्युम्नेन सञ्जय ।

हे सञ्जय ! इसी तरह द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने भी जब आचार्य द्रोण ने रण में सारे शस्त्र छोड़ दिए और योग रीति के अनुसार ध्यान में निमग्न हो गए-तो उन महाधनुर्धर को भी धृष्टद्युम्न ने अपने अनेक बाणों से व्याप्त कर दिया और खड्ग उठाकर उनको मार डाला ॥३८॥

अन्तरेण हतावेतौ छलेन च विशेषतः ॥३९॥
अश्रौषमहमेतद्वै भीष्मद्रोणौ निपातितौ ।

अपना मौका निकालकर और विशेषकर इनके साथ छल करके पाण्डवों ने इन दोनों वीर भीष्म और द्रोण को रणभूमि में गिरा दिया-मैं यह सुन चुका हूं ॥३९॥

भीष्मद्रोणौ हि समरे न हन्याद्वज्रभृत्स्वयम् ॥४०॥
न्यायेन युध्यमानौ हि तद्वै सत्यं ब्रवीमि ते ।

यदि भीष्म और द्रोणाचार्य के साथ न्याय से युद्ध किया जाता-तो मैं सत्य कहता हूं, कि उनको वज्रधारी स्वयं इन्द्र भी नहीं मार सकता है ॥४०॥

कर्णं त्वस्यन्तमस्त्राणि दिव्यानि च बहूनि च ॥४१॥
कथमिन्द्रोपमं वीरं मृत्युर्युद्धे समस्पृशत् ।

जब कर्ण, रण में बहुत से दिव्य अस्त्र फैंक रहा था, तो उस इन्द्र के तुल्य पराक्रमी वीर पर भी मृत्यु ने कैसे आक्रमण कर दिया ॥४१॥

यस्य विद्युत्प्रभां शक्तिं दिव्यां कनकभूषणाम् ॥४२॥
प्रायच्छद् द्विषतां हन्त्रीं कुण्डलाभ्यां पुरन्दरः ।
यस्य सर्पमुखो दिव्यः शरः काञ्चनभूषणः ॥४३॥
अशेत निहतः पत्री चन्दनेष्वरिसूदनः ।

इसी कर्ण को कवच और दो कुण्डलों के मूल्य में इन्द्र ने बिजली की सी कान्ति रखने वाली, सुवर्ण से विभूषित एक दिव्यशक्ति प्रदान की थी । जिसका सुवर्ण से विभूषित, सर्पमुखधारी दिव्य बाण था । वह अरिसूदन, धनुर्धर, कर्ण भी आज चन्दन की चिता पर सो गया है ॥४२-४३॥

भीष्मद्रोणमुखान्वीरान्योऽवमन्ये महारथान् ॥४४॥
जामदग्न्यान्महाघोरं ब्राह्ममस्त्रमशिक्षत ।

इस कर्ण ने कभी भीष्म और द्रोण जैसे महारथियों की भी परवा नहीं की तथा जिसने जमदग्नि-पुत्र परशुराम से ब्रह्मास्त्र को सीखा था ॥४४॥

यश्च द्रोणमुखान्दृष्ट्वा विमुखानर्दिताञ्शरैः ॥४५॥
सौभद्रस्य महाबाहुर्व्यधमत्कार्मुकं शितैः ।

जब अभिमन्यु ने अपने बाणों से द्रोणाचार्य जैसे वीरों के छक्के छुटाकर उनको रण से विमुख कर दिया था-उसी समय सुभद्रा-पुत्र अभिमन्यु के धनुष को तीक्ष्ण बाणों से इसी महाबाहु कर्ण ने काट गिराया था ॥४५॥

यश्च नागायुतप्राणं वज्ररंहसमच्युतम् ॥४६॥
विरथं सहसा कृत्वा भीमसेनमथाहसत् ।

कर्ण ने दश हजार हाथियों के बल वाले, वज्र शरीरधारी रण से नहीं हटने वाले, भीमसेन को एक दम रथ हीन बना दिया था और इस दशा में वही था, जो भीमसेन का उपहास कर सका ॥४६॥

सहदेवं च निर्जित्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४७॥
कृपया विरथं कृत्वा नाहनद्धर्मचिन्तया ।

इसी कर्ण ने अपने नतपर्व वाले बाणों से सहदेव को जीत कर और उसे रथहीन बनाकर भी दया करके माता कुन्ती को दिये हुए वचनों के ध्यान से नहीं मारा ॥४७॥

यश्च मायासहस्राणि विकुर्वाणं जयैषिणम् ॥४८॥
घटोत्कचं राक्षसेन्द्रं शक्रशक्त्या निजघ्निवान् ।

इसी कर्ण ने सहस्रों प्रकार की माया करने वाले, विनयशील राक्षस राज घटोत्कच को इन्द्र की दी हुई शक्ति से मार गिराया था ॥४८॥

एतांश्च दिवसान्यस्य युद्धे भीतो धनञ्जयः ॥४९॥
नागमद् द्वैरथं वीरः स कथं निहतो रणे ।

इतने दिन तक जिसके साथ युद्ध करने से अर्जुन भी बचता रहा और कभी रण में पूर्ण रूप से सन्मुख नहीं आया-वही वीर कर्ण आज कैसे रण में मारा हुआ पड़ा है ॥४९॥

संशप्तकानां योधा ये आह्वयन्त सदाऽन्यतः ॥५०॥
एतान्हत्वा हनिष्यामि पश्चाद्वैकर्तनं रणे ।
इति व्यपदिशन्पार्थो वर्जयन्सूतजं रणे ॥५१॥
स कथं निहतो वीरः पार्थेन परवीरहा ।

मुझे संशप्तक वीर योधा दूसरी ओर युद्ध के लिये बुला रहे हैं। मैं प्रथम इनको मारलूं-फिर रण में सूर्य्य-पुत्र कर्ण को मारूंगा। इस प्रकार की बातें बनाकर अर्जुन सूत-पुत्र कर्ण से युद्ध को बचाता रहा। उसी शत्रुवीर नाशक वीर श्रेष्ठ कर्ण को आज अर्जुन ने कैसे मार लिया ॥५०-५१॥

रथभङ्गो न चेत्तस्य धनुर्वा न व्यशीर्यत ॥५२॥
न चेदस्त्राणि निर्णेशुः स कथं निहतः परैः ।

क्या कर्ण का रथ तो नहीं टूट गया था। इसका धनुष तो नहीं काट डाला गया। इसके सारे अस्त्र तो क्षीण नहीं हो गए यदि ये बातें नहीं हुई-तो फिर शत्रुओं द्वारा कैसे महावीर कर्ण मारा गया ॥५२॥

को हि शक्तो रणे कर्णं विधुन्वानं महद्धनुः ॥५३॥
विमुञ्चन्तं शरान्घोरान्दिव्यान्यस्त्राणि चाहवे।
जेतुं पुरुषशार्दूलं शार्दूलमिव वेगिनम् ॥५४॥

जब रण में कर्ण धनुष कँपा रहे हों और दिव्य अस्त्र तथा घोर बाण छोड़ रहे हों-तो उस समय सिंह के समान वेग धारी पुरुष प्रवीर कर्ण को रण में कौन जीतने में समर्थ हो सकता है ॥५३-५४॥

ध्रुवं तस्य धनुश्छिन्नं रथो वापि महीं गतः।
अस्त्राणि वा प्रणष्टानि यथा शंससि मे हतम् ॥५५॥
न ह्यन्यदपि पश्यामि कारणं तस्य नाशने।

जब तुम यह कह रहे हो-कि अङ्गराज कर्ण मारा गया-तो निश्चय या तो उसका धनुष कट गया या रथ पृथिवी में घुस गया या उसके शस्त्र व्यतीत हो गये थे। इसके सिवा मुझे तो उसके नाश होने में अन्य कोई कारण दिखाई नहीं देता है ॥५६॥

न हन्मि फाल्गुनं यावत्तावत्पादौ न धावये ॥५६॥
इति यस्य महाघोरं व्रतमासीन्महात्मनः।

जब तक मैं अर्जुन को नहीं मार लूंगा-तब तक पैर नहीं धोऊंगा-यही इस महावीर की घोर प्रतिज्ञा थी ॥५६॥

यस्य भीतो रणे निद्रां धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥५७॥

त्रयोदश समा नित्यं नाभजत्पुरुषर्षभः ।

इसी के भय से पुरुष श्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर को तेरह वर्ष तक वन में नींद न आ सकी थी ॥५७॥

यस्य वीर्यवतो वीर्यमुपाश्रित्य महात्मनः ॥५८॥

मम पुत्रः सभां भार्यां पाण्डूनां नीतवान्बलात् ।

तत्रापि च सभामध्ये पाण्डवानां च पश्यताम् ॥५६॥

दासभार्येति पाञ्चालीमब्रवीत्कुरुसन्निधौ ।

वह उसी महात्मा के पराक्रम की शक्ति थी, कि जिसके आश्रय से मेरे पुत्र पाण्डवों की भार्या द्रौपदी को बल-पूर्वक सभा में खैंच लाए और पाण्डवों के देखते २ सभा के बीच में सारे कौरवों के सामने यह कहा-कि अब तुम हमारी दास की भार्या हो चुकी हो ॥५८-५६॥

न सन्ति पतयः कृष्णे सर्वे षण्ढतिलैः समाः ॥६०॥

उपतिष्ठस्व भर्त्तारमन्यं वा वरवर्णिनि ।

इत्येवं यः पुरा वाचो रूक्षाः संश्रावयन्रुषा ॥६१॥

सभायां सूतजः कृष्णां स कथं निहतः परैः ।

हे कृष्णे ! अब ये तुम्हारे पति नहीं रहे-सब नपुंसकों के तुल्य हैं । हे सुन्दरी ? अब तुम दूसरा पति बनालो इस प्रकार की

रूक्ष और कठोर वाणी द्रौपदी को जिस कर्ण ने सभा में सुनाई-वही सूत-पुत्र कर्ण आज कैसे रण में मारा हुआ पड़ा है ॥६०-६१॥

यदि भीष्मो रणश्लाघी द्रोणो वा युधि दुर्मदः ॥६२॥
न हनिष्यति कौन्तेयान्पक्षपातात्सुयोधन ।
सर्वानेव हनिष्यामि व्येतु ते मानसो ज्वरः ॥६३॥

हे सुयोधन ! रण में प्रशंसा पाने वाला, भीष्म पितामह या युद्ध में दुर्मद द्रोणाचार्य, किसी पक्ष-पात के कारण कुन्ती-पुत्र धर्मराज आदि पाण्डवों का वध नहीं करते हैं-तो न सही-मैं इन सब को मार गिराऊंगा-तुम अपने मन से चिन्ता को निकाल डालो ॥६२-६३॥

किं करिष्यति गाण्डीवमक्षय्यौ च महेषुधी ।
स्निग्धचन्दनदिग्धस्य मच्छरस्याभिधावतः ॥६४॥
स नूनमृषभस्कन्धो ह्यर्जुनेन कथं हतः ।

जब गाढ़े गाढ़े चन्दन से लिप्त मेरे बाण रण में सन सनायेंगे-उस समय अर्जुनका गाण्डीव और उसका अक्षयतूणीर बाणों वाले क्या कर सकेंगे । उसी वृषभ स्कन्धधारी कर्ण को अर्जुन ने कैसे मार लिया ॥६४॥

यश्च गाण्डीवमुक्तानां स्पर्शमुग्रमचिन्तयन् ॥६५॥
अपतिर्ह्यसि कृष्णेति ब्रुवन्पार्थानवैक्षत ।

जिस कर्ण ने कभी अर्जुनके गाण्डवी धनुष से निकलने वाले बाणों की परवाह न की और द्रौपदी से कह ही दिया, कि द्रौपदि !

आज तू पतिहीन है और यह कहकर भी जिसने पाण्डवों की ओर देखा ॥६५॥

यस्य नासीद्भयं पार्थैः सपुत्रैः सजनार्दनैः ॥६६॥
स्वबाहुबलमाश्रित्य मुहूर्त्तमपि सञ्जय ।
तस्य नाहं वधं मन्ये देवैरपि सवासवैः ॥६७॥
प्रतीपमभिधावद्भिः किं पुनस्तात पाण्डवैः ।

हे सञ्जय ! जिसने अपने बाहुबल का आश्रय लेकर कभी श्रीकृष्ण और पुत्रों सहित पाण्डवों का थोड़ी देर भी भय नहीं माना-उसको इन्द्र के सहित देवता भी मारलें-मुझे इसपर भी विश्वास नहीं होता है। हे तात ! फिर दुर्दशा में घूमने वाले पाण्डव उसे कैसे मार सकते हैं ॥६५-६७॥

न हि ज्यां संस्पृशानस्य तलत्रे चापि गृह्णतः ॥६८॥
पुमानाधिरथेः स्थातुं कश्चित्प्रमुखतोऽर्हति ।

जब अधिरथ-पुत्र महारथी कर्ण, अपने धनुष की डोरी छूता और करतल त्राण पहन लेता था तब किस वीर को शक्ति थी, जो उसके सन्मुख आ सके ॥६८॥

अपि स्यान्मेदिनी हीना सोमसूर्यप्रभांशुभिः ॥६९॥
न वधः पुरुषेन्द्रस्य संयुगेष्वपलायिनः ।

यद्यपि सूर्य और चन्द्रमा की कान्ति से हीन पृथिवी हो सकती है, परन्तु रण से पीछे नहीं हटने वाले पुरुष प्रवीर कर्ण का मारा जाना सम्भव प्रतीत नहीं होता है ॥६९॥

येन मन्दः सहायेन भ्रात्रा दुःशासनेन च ॥७०॥
वासुदेवस्य दुर्बुद्धिः प्रत्याख्यानमरोचत ।
स नूनं वृषभस्कन्धं कर्णं दृष्ट्वा निपातितम् ॥७१॥
दुःशासनं च निहतं मन्ये शोचति पुत्रकः ।

मेरे मूर्ख पुत्र दुर्योधन ने जिस कर्ण की सहायता के बल और दुःशासन के बल पर वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण का सन्धि के समय तिरस्कार कर दिया था । आज उसी वृषभ के स्कन्धों के सदृश स्कन्धधारी कर्ण का रण में गिर जाना और दुःशासन का मारा जाना सुनकर मेरा दुर्बुद्धि-पुत्र दुर्योधन, अवश्य चिन्ता कर रहा होगा ॥७०-७१॥

हतं वैकर्त्तनं श्रुत्वा द्वैरथे सव्यसाचिना ॥७२॥
जयतः पाण्डवान्दृष्ट्वा किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

जब राजा दुर्योधन ने सूर्य-पुत्र कर्ण का सव्यसाची अर्जुन द्वारा घोर युद्ध में मारा जाना सुन लिया और पाण्डवों को जीतता देख लिया-तो उस समय उसने क्या कहा-मुझे यह सुनाओ ॥७२॥

दुर्मर्षणं हतं दृष्ट्वा वृषसेनं च संयुगे ॥७३॥
प्रभग्नं च बलं दृष्ट्वा वध्यमानं महारथैः ।
पराङ्मुखांश्च राज्ञस्तु पलायनपरायणान् ॥७४॥
विद्रुतान्रथिनो दृष्ट्वा मन्ये शोचति पुत्रकः ।

राजा दुर्योधन, अपने भ्राता दुर्मर्षण और कर्ण-पुत्र वृषसेन को रण में नष्ट तथा पाण्डव महारथियों से ताड़ित होकर भागती हुई अपनी सेना एवं भागने में तत्पर, युद्ध विमुख

राजाओं और भागते हुए ही रथियों को देखकर अवश्य चिन्तित हुआ होगा ॥७३-७४॥

अनेयश्चाभिमानी च दुर्बुद्धिरजितेन्द्रियः ॥७५॥
हतोत्साहं बलं दृष्ट्वा किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत ।

मेरा पुत्र दुर्योधन, अशिक्षित, अभिमानी दुर्बुद्धि और इन्द्रियलोलुप है। जब उसने अपनी सेना को हतोत्साह देखा-तो क्या कहा-यह बताओ ॥७५॥

स्वयं वैरं महत्कृत्वा वार्यमाणः सुहृद्गणैः ॥७६॥
प्रधने हतभूयिष्ठैः किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

यद्यपि दुर्योधन को उसके हित करने वाले मित्रों ने इस कलह से रोका-तो भी उसने यह झगड़ा स्वयं मोल लिया है। जब कौरव सेना के प्रधान वीर अधिकांश में मारे गए-तो उस समय राजा दुर्योधन क्या कहा ॥७६॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा भीमसेनेन संयुगे ॥७७॥
रुधिरे पीयमाने च किंस्विद्दुर्योधनोऽब्रवीत् ।

हे सञ्जय ! भीमसेन द्वारा अपने भाई दुःशासन का रण में मारा जाना और भीमसेन का रक्त पीना सुनकर राजा दुर्योधन ने क्या कहा ॥७७॥

सह गान्धरराजेन सभायां यदभाषत ॥७८॥
कर्णोऽर्जुनं रणे हन्ता हते तस्मिन्किमब्रवीत् ।

गान्धारराज शकुनि ने सभा के मध्य में कहा था, कि जब संग्राम होगा-तब कर्ण अवश्य अर्जुन को मार लेगा-परन्तु जब उलटा कर्ण ही मारा गया-तो वे क्या कहने लगे ॥७८॥

द्यूतं कृत्वा पुरा हृष्टो वञ्चयित्वा च पाण्डवान् ॥७९॥
शकुनिः सौबलस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।

हे तात ! सुबल-पुत्र शकुनि ने प्रथम द्यूत का खेल रचा और पाण्डवों को छल लिया तो इससे वह बड़ा प्रसन्न हुआ, परन्तु जब अर्जुन ने कर्ण को मार लिया-तो उस समय शकुनि ने क्या कहा ॥७९॥

कृतवर्मा महेष्वासः सात्वतानां महारथः ॥८०॥
हतं वैकर्त्तनं दृष्ट्वा हार्दिक्यः किमभाषत ।

सात्वतवंशोद्भव कृतवर्मा महारथी और महाधनुर्धर हैं। वे हृदिक-पुत्र कृतवर्मा सूर्य-पुत्र कर्ण को रण में मृत देखकर क्या बोले ॥८०॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या यस्य शिक्षामुपासते ॥८१॥
धनुर्वेदं चिकीर्षन्तो द्रोणपुत्रस्य धीमतः
युवा रूपेण सम्पन्नो दर्शनीयो महायशाः ॥८२॥
अश्वत्थामा हते कर्णे किमभाषत सञ्जय ।

हे सञ्जय ! ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य, जिस द्रोण-पुत्र बुद्धिमान् अश्वत्थामा से धनुर्वेद की शिक्षा ग्रहण करते हैं; जो

युवा, रूपसम्पन्न, सुन्दर और महायशस्वी है, उस अश्वत्थामा ने भी कर्ण की मृत्यु पर क्या भाव प्रकट किए ।।८१-८२।।

आचार्यो यो धनुर्वेदे गौतमो रथसत्तमः ।।८३।।
कृपः शारद्वतस्तात हते कर्णे किमब्रवीत् ।

हे तात ! गौतम गोत्रोत्पन्न, रथियों में श्रेष्ठ, धनुर्वेद के आचार्य शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने कर्ण के वीरगति पा जाने पर क्या कहा ।।८३।।

मद्रराजो महेष्वासः शल्यः समितिशोभनः ।।८४।।
दृष्ट्वा विनिहतं कर्णं सारथ्ये रथिनां वरः ।
किमभाषत सौवीरो मद्राणामधिपो बली ।।८५।।
दृष्ट्वा विनिहतं सर्वे योधा वा रणदुर्जयाः ।

महाधनुर्धर युद्ध में शोभापाने वाला रथियों में श्रेष्ठ, कर्ण के सारथि पद पर आरूढ़; सौवीर देशोत्पन्न मद्रदेश के अधिपति, महाबली मद्रराज शल्य ने कर्ण को रण भूमि में पड़ा देख कर क्या कहा तथा अन्य रणदुर्जय योद्धाओं ने कर्ण की मृत्यु पर क्या बात चीत की ।।८४-८५।।

ये च केचन राजानः पृथिव्यां योद्धुमागताः ।
वैकर्तनं हतं दृष्ट्वा कान्यभाषन्त सञ्जय ।।८६।।

हे सञ्जय ! जो पृथिवीपति राजा दूर दूर के देशों से युद्ध के लिए आए थे, उन्होंने जब महारथी कर्ण की मृत्यु देखी-तो क्या कहा ।।८६।।

द्रोणे तु निहते वीरे रथव्याघ्रे नरर्षभे ।
के वा मुखमनीकानामासन्सञ्जय भागशः ॥८७॥

हे सञ्जय ! रथियों में श्रेष्ठ, नरर्षभ द्रोणाचार्य के मारे जाने पर कौन २ नम्बर वार कौरव सेना के मुख्य २ सेनापति बने ॥८७॥

मद्रराजः कथं शल्यो नियुक्तो रथिनां वरः ।
वैकर्त्तनस्य सारथ्ये तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥८८॥

हे सञ्जय ! मद्रराज शल्य तो स्वयं रथियों में श्रेष्ठ थे, उसे सूर्य-पुत्र कर्ण के सारथि पद पर कैसे बैठाया गया-मुझे यह भी बताओ ॥८८॥

केऽरक्षन्दक्षिणं चक्रं सूतपुत्रस्य युध्यतः ।
वामं चक्रं ररक्षुर्वा के वा वीरस्य पृष्ठतः ॥८९॥

जब सूत-पुत्र कर्ण ने युद्ध के लिये गमन किया-तो उसके दांए चक्र के रक्षक कौन थे तथा वीर कर्ण के बांए चक्र और पीछे की ओर कौन रक्षक बन कर चल रहे थे ॥८९॥

के कर्णं न जहुः शूराः के क्षुद्राः प्राद्रवंस्ततः
कथं च वः समेतानां हतः कर्णो महारथाः ॥९०॥

हे तात ! इस युद्ध में किन शूरवीरों ने तो कर्ण का साथ नहीं छोड़ा और कौन क्षुद्र वीर साथ छोड़कर भाग निकले तथा तुम लोगों के इकट्ठे रहने पर भी कैसे महारथी कर्ण मारा गया ॥९०॥

पाण्डवाश्च स्वयं शूराः प्रत्युदीयुर्महारथाः ।
सृजन्तः शरवर्षाणि वारिधारा इवाम्बुदाः ॥९१॥

स च सर्पमुखो दिव्यो महेषुप्रवरस्तदा ।
व्यर्थः कथं समभवत्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥६२॥

हे सञ्जय ! पाण्डव लोग, बड़े शूरवीर हैं, वे महारथी गहरी धारा को मेघ के तुल्य बाण वर्षा करते हुए रण में आगे बढ़े होंगे-परन्तु कर्ण के पास भी तो सर्प के मुख वाले उत्तम २ बाण थे वे कैसे व्यर्थ हो गए यह सब मुझे बताओ ॥६१-६२॥

मामकस्यास्य सैन्यस्य हतोत्सेधस्य सञ्जय ।
अवशेषं न पश्यामि ककुदे मृदिते सति ॥६३॥

हे सञ्जय ! हमारी सेना का उत्साह नष्ट हो गया है । जब उसका प्रधान वीर ही मारा गया-तो रण के ककुद्मत (यूथपति वृषभ) के मारे जाने पर फिर कोई सेना नहीं बच पाती है ॥०३॥

तौ हि वीरौ महेष्वासौ मदर्थे त्यक्तजीवितौ ।
भीष्मद्रोणौ हतौ श्रुत्वा को न्वर्थो जीवितेन मे ॥६४॥

भीष्मपितामह और आचार्य द्रोण दोनों ही महा धनुर्धर और हमारे लिए प्राण देने को उद्यत थे । जब मैंने उन दोनों वीर भीष्म और द्रोण की मृत्यु सुन ली तो अब मेरे जीवन से क्या लाभ है ॥६४॥

पुनः पुनर्न मृष्यामि हतं कर्णं च पाण्डवैः ।
यस्य बाह्वोर्बलं तुल्यं कुञ्जराणां शतं शतैः ॥६५॥

जिस कर्ण की भुजाओं में सहस्रों हाथियों का वल था-उस कर्ण का पाण्डवों द्वारा मारा जाना,सुनकर मुझे बार २ भिचकी आती है और मुझ से सहन नहीं होता है ॥६५॥

द्रोणे हते च यद्वृत्तं कौरवाणां परैः सह ।
संग्रामे नरवीराणां तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥६६॥

हे सञ्जय! जब द्रोणाचार्य मारे गये तो कौरवों के उत्तम वीरों का पाण्डवों के साथ कैसा संग्राम हुआ मुझे यह सब कुछ वताओ ॥६६॥

यथा कर्णश्च कौन्तेयैः सह युद्धमयोजयत् ।
तथा च द्विषतां हन्ता रणे शान्तस्तदुच्यताम् ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि धृतराष्ट्रप्रश्ने नवमोऽध्यायः ॥९॥

हे तात ! जिस प्रकार कर्ण ने कुन्ती-पुत्रों के साथ युद्ध जुटाया तथा जिस प्रकार यह शत्रु विजयी स्वयं रण में शान्त हुआ-वह सब कुछ मुझे सुनाओ ॥६७॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में धृतराष्ट्र के प्रश्न का नौवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



दशवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हते द्रोणे महेष्वासे तस्मिन्नहनि भारत ।
कृते च मोघसङ्कल्पे द्रोणपुत्रे महारथे ॥१॥

द्रवमाणे महाराज कौरवाणां बलार्णवे ।
व्यूह्य पार्थः स्वकं सैन्यमतिष्ठद्भ्रातृभिर्वृतः ॥२॥

सञ्जय बोले—हे भरतवंशश्रेष्ठ! महाराज? युद्ध के पन्द्रहवें दिन महाधनुर्धर द्रोणाचार्य के मार लेने और महारथी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के सङ्कल्प को असफल कर देने तथा कौरवों के सेना समुद्र के भाग निकलने पर भी धर्मराज ने अपनी सेना का व्यूह बनाए रखा और वह अपने सारे भाइयों को साथ लिए हुए रणाङ्गण में खड़ा रहा ॥१-२॥

तमवस्थितमाज्ञायपुत्रस्ते भरतर्षभ ।
विद्रुतं स्वबलं दृष्ट्वा पौरुषेण न्यवारयत् ॥३॥

हे भरतर्षभ! जब तुम्हारे पुत्र ने राजा युधिष्ठिर को अपनी सेना सहित रण में उपस्थित और अपनी सेना को इधर उधर भागती देखा-तो उसने बड़ा पुरुषार्थ किया और अपनी भागती हुई सेना रोकली ॥३॥

स्वमनीकमवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
युद्ध्वा च सुचिरं कालं पाण्डवैः सह भारत ॥४॥

हे भारत ! अपने बाहु बल का आश्रय लेकर अपनी सेना को रण में रोक कर पाण्डवों के साथ बहुत देर तक युद्ध करता रहा ॥४॥

लब्धलक्षैः परैर्हृष्टैर्व्यायच्छद्भिश्चिरं तदा ।
सन्ध्याकालं समासाद्य प्रत्याहारमकारयत् ॥५॥

शत्रु लोग अपने लक्षों को बींधते हुए बड़े प्रसन्न हो रहे थे । उन्होंने बहुत देर तक युद्ध किया-अन्त में सायङ्काल प्राप्त हो गया-तो राजा दुर्योधन ने अपनी सेना को पीछे हटा लिया ॥५॥

कृत्वावहारं सैन्यानां प्रविश्य शिबिरं स्वकम् ।
कुरवः सुहितं मन्त्रं मन्त्रयाञ्चक्रिरे मिथः ॥६॥

अपनी २ सेना को पीछे हटाकर और अपने २ शिबिरों में पहुंच कर कौरव लोग इकट्ठे हुए और वे परस्पर अपने हित करने वाली मन्त्रणा करने लगे ॥६॥

पर्यङ्केषु परार्ध्येषु स्पर्ध्यास्तरणवत्सु च ।
वरासनेषूपविष्टाः सुखशय्यास्विवामराः ॥७॥

ये कौरव वीर, इस समय बहुत अधिक मूल्य वाले, उत्तम २ विस्तरों (गलीचे आदि) से सुसम्पन्न, उत्तम २ आसनों पर इस भांति बैठ गए-जैसे, अपनी २ सुख शय्या पर पर देवता बैठे हों ॥७॥

ततो दुर्योधनो राजा साम्ना परमवल्गुना ।
तानाभाष्य महेष्वासान्प्राप्तकालमभाषत ॥८॥

इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने अत्यन्त शुद्ध और स्पष्ट अक्षरों में उन महाधनुर्धर कौरवों को प्रतिबोधित करके समयानुसार यह वचन कहा ॥८॥

मतं मतिमतां श्रेष्ठाः सर्वे प्रब्रूत मा चिरम् ।
एवङ्गते तु किं कार्यं किं च कार्यतरं नृपाः ॥९॥

हे बुद्धिमानों में श्रेष्ठ राजाओं ! अब तुम सब लोग, अपना २ मत प्रकट करो, कि इस परिस्थिति में क्या करना चाहिए और सबसे अधिक आवश्यक क्या कार्य है ॥९॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्ते नरेन्द्रेण नरसिंहा युयुत्सवः ।
चक्रुर्नानाविधाश्चेष्टाः सिंहासनगतास्तदा ॥१०॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन् ! जब राजा दुर्योधन ने इतना कहा-तो युद्ध के अभिलाषी नरश्रेष्ठ राजा लोग, अपने २ सिंहासनों पर बैठे हुए अनेक प्रकार की चेष्टा करने लगे ॥१०॥

तेषां निशाम्येङ्गितानि युद्धे प्राणाञ्जुहूषताम् ।
समुद्वीक्ष्य मुखं राज्ञो बालार्कसमवर्चसम् ॥११॥
आचार्यपुत्रो मेधावी वाक्यज्ञो वाक्यमाददे ।
रागो योगस्तथा दाक्ष्यं नयश्चेत्यर्थसाधकाः ॥१२॥
उपायाः पण्डितैः प्रोक्तास्ते तु दैवमुपाश्रिताः ।

इस युद्ध में अपने प्राणों का हवन कर देने को तत्पर राजाओं की चेष्टा को देखकर राजा दुर्योधन का मुख प्रातःकाल के सूर्य की

तरह उद्भासित हो उठा। कुरुराज के इस प्रकार प्रफुल्लित मुख को देखकर बोलने में कुशल, मेधावी, आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा यह वचन बोला कि राजभक्ति, देशकाल का विचार, बल और नीति ये चार उपाय राजा के अर्थ के साधक पण्डितों ने बताए हैं-परन्तु इनकी सफलता दैव पर अवलम्बित है ॥११-१२॥

लोकप्रवीरा येऽस्माकं देवकल्पा महारथाः ॥१३॥
नीतिमन्तस्तथा युक्ता दक्षा रक्ताश्च ते हताः।
न त्वेव कार्यं नैराश्यमस्माभिर्विजयं प्रति ॥१४॥
सुनीतैरिह सर्वार्थैर्दैवमप्यनुलोम्यते।

लोक में प्रसिद्ध, देवों के समान पराक्रमी नीतिमान्, उपाय कुशल चतुर, अनुरक्त जो हमारे महारथी थे वे अधिकांश में मारे जा चुके तो भी हम लोगों को विजय के प्रति निराशा नहीं करनी चाहिए। यदि नीति के अनुसार कार्य का सम्पादन किया जावे-तो दैव भी सीधा हो जाता है ॥१३-१४॥

ते वयं प्रवरं नृणां सर्वैर्गुणगणैर्युतम् ॥१५॥
कर्णमेवाभिषेक्ष्यामः सैनापत्येन भारत।

हे भारत! अब हम सब गुणगणों से अलंकृत, वीरश्रेष्ठ, अङ्गराज कर्ण को इस सेनापति पद पर अभिषिक्त करना चाहते हैं ॥१५॥

कर्णं सेनापतिं कृत्वा प्रमथिष्यामहे रिपून् ॥१६॥

एष ह्यतिबलः शूरः कृतास्त्रो युद्धदुर्मदः ।

वैवस्वत इवासह्यः शक्तो जेतुं रणे रिपून् ॥१७॥

इस महारथी कर्ण को सेनापति बनाकर शत्रुओं को अवश्य मथ डालेंगे। यह अत्यन्त बलवान, शूरवीर, अस्त्रविद्या में कुशल और युद्ध दुर्मद है। यह तो युद्ध में यमराज के समान असह्य है, जो शत्रुओं को सब तरह जीत लेने में समर्थ है ॥१६-१७॥

एतदाचार्यतनयाच्छ्रुत्वा राजंस्तावात्मजः ।

आशां बहुमतीं चक्रे कर्णं प्रति स वै तदा ॥१८॥

हे राजन् ! आचार्य-पुत्र अश्वत्थामा के ये वचन सुनकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन कर्ण पर बहुत सी आशा लगाने लगा ॥१८॥

हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ।

तामाशां हृदये कृत्वा समाश्वस्य च भारत ॥१९॥

हे भारत ! राजा दुर्योधन को यह आशा होगई, कि यद्यपि भीष्म और द्रोण मारे गए-तो भी महारथी कर्ण अवश्य पाण्डवों को जीत लेगा। इस आशा के हृदय में धारण करने से राजा दुर्योधन को बहुत ही शान्ति प्राप्त हुई ॥१९॥

ततो दुर्योधनः प्रीतः प्रियं श्रुत्वाऽस्य तद्वचः ।

प्रीतिसत्कारसंयुक्तं तथ्यमात्महितं शुभम् ॥२०॥

स्वं मनः समवस्थाप्य बाहुवीर्यमुपाश्रितः ।
दुर्योधनो महाराज राधेयमिदमब्रवीत् ॥२१॥

हे महाराज ! राजा दुर्योधन, अत्यन्त प्रिय, अपने हितकारी, प्रीति और सत्कार से भरे हुए, शुभ और सत्य वचन सुनकर बड़ा प्रसन्न हुआ। उसने अपने मन में धैर्य धारण किया और अपने बाहुबल का आश्रय लिया। इसके अनन्तर वह फिर राधा-पुत्र कर्ण से इस प्रकार कहने लगा ॥२०-२१॥

कर्ण जानामि ते वीर्यं सौहृदं परमं मयि ।
तथापि त्वां महाबाहो प्रवक्ष्यामि हितं वचः ॥२२॥

हे कर्ण, मैं तुम्हारे पराक्रम को खूब पहचानता हूं और तुम्हारे प्रेम का भी मुझे अच्छी तरह परिचय है, तो भी हे महाबाहो ! मैं तुमसे कुछ हितकारी वचन कहना चाहता हूं ॥२२॥

श्रुत्वा यथेष्टं च कुरु वीर यत्तव रोचते ।
भवान्प्राज्ञतमो नित्यं मम चैव परा गतिः ॥२३॥

हे वीर ? प्रथम तुम मेरे वचन सुन लो और उनको सुनकर जो तुम्हारी इच्छा हो-वैसा करना। आप अत्यन्त बुद्धिमान् और सदा से मेरे अवलम्ब रहते आये हो ॥२३॥

भीष्मद्रोणावतिरथौ हतौ सेनापती मम ।
सेनापतिर्भवानस्तु ताभ्यां द्रविणवत्तरः ॥२४॥

भीष्मपितामह और आचार्य द्रोण दोनों अतिरथी वीर और मेरे सेनापति थे-अब वे मारे जा चुके। अब तुम हमारे सेनापति बनो, क्योंकि तुम उन दोनों में भी बलवान् हो ॥२४॥

वृद्धौ च तौ महेष्वासौ सापेक्षौ च धनञ्जये।
मानितौ च मया वीरौ राधेय वचनात्तव ॥२५॥

हे कर्ण! वे दोनों महाधनुर्धर सेनापति महात्मा भीष्म और द्रोणाचार्य, वृद्ध हो चुके थे और कुछ अर्जुनका लिहाज भी करते थे मैंने तो तुम्हारे कहने से ही उन दोनों को कौरवों के प्रतिष्ठित सेनापति पद पर उनको अभिषिक्त किया था ॥२५॥

पितामहत्वं सम्प्रेक्ष्य पाण्डुपुत्रा महारणे।
रक्षितास्तात भीष्मेण दिवसानि दशैव तु ॥२६॥
न्यस्तशस्त्रे च भवति हतो भीष्मः पितामहः।
शिखण्डिनं पुरस्कृत्य फाल्गुनेन महाहवे ॥२७॥

हे तात! अपने को कौरव और पाण्डव सबका पितामह समझ कर इस घोर संग्राम में भी उन्हों ने दश दिन तक पांडवों को बचाए रखा! तुमने भी उन दिनों में शस्त्र छोड़ रखे थे-इस से भीष्म को अर्जुन ने महा रण में शिखण्डी को आगे करके मार गिराया ॥२६-२७॥

हते तस्मिन्महेष्वासे शरतल्पगते तथा।
त्वयोक्ते पुरुषव्याघ्र द्रोणो ह्यासीत्पुरःसरः ॥२८॥

हे पुरुष व्याघ्र ! उन महाधनुर्धर भीष्म के मारे जाने या शरशय्या पर सोजाने पर तुम्हारे कहने से ही मैंने आचार्य द्रोण को सेनापति बनाकर प्रतिष्ठित किया ॥२८॥

तेनापि रक्षिताः पार्थाः शिष्यत्वादिति मे मतिः ।
स चापि निहतो वृद्धो धृष्टद्युम्नेन सत्वरम् ॥२९॥

मेरा ऐसा ख्याल है, कि शिष्यता के प्रेम से उसने भी पाण्डवों का वध नहीं किया, बस ? धृष्टद्युम्न ने झपट कर उस वृद्ध सेनापति द्रोणाचार्य को भी मार गिराया ॥२९॥

निहताभ्यां प्रधानाभ्यां ताभ्याममितविक्रमम् ।
त्वत्समं समरे योधं नान्यं पश्यामि चिन्तयन् ॥३०॥

हे कर्ण ! इन दोनों मुख्य वीरों के मारे जाने पर बहुत सोचने पर भी अत्यन्त विक्रमशाली तुम्हारे समान मैं अन्य किसी को योद्धा नहीं देख रहा हूं ॥३०॥

भवानेव तु नः शक्तो विजयाय न संशयः ।
पूर्वं मध्ये च पश्चाच्च तथैव विहितं हितम् ॥३१॥

इसमें सन्देह नहीं है, कि आप हमारी विजय के सम्पादन करने में अवश्य समर्थ हैं । तुमने पूर्व काल, वर्तमान काल में हमारे बड़े २ हित किए हैं और आपसे भविष्य में भी ऐसी ही आशा है ॥३१॥

स भवान्धुर्यवत्संख्ये धुरमुद्वोढुमर्हति ।
अभिषेचय सैनान्ये स्वयमात्मानमात्मना ॥३२॥

अब आप आगे चलने वाले बैल की भांति इस रण धुर को धारण करो-तुम अपने आपको आप ही सेनापति पद पर अभिषिक्त करो, क्योंकि तुम तो इस राज्य के स्वयं स्वामी हो ॥३२॥

देवतानां यथा स्कन्दः सेनानीः प्रभुरव्ययः ।
तथा भवानिमां सेनां धार्त्तराष्ट्रीं बिभर्तु वै ॥३३॥
जहि शत्रुगणान्सर्वान्महेन्द्रो दानवानिव ।

अत्यन्त शक्तिशाली, नष्ट न होने वाले स्कन्द जिस तरह देवोंके सेनापति हैं, अब आप भी इस कौरव सेना के वैसे ही सेनापति बनकर इसकी रक्षा करो। जिस तरह इन्द्र दानवों का वध करता है, उसी तरह तुम भी शत्रुगणों का वध कर दिखाओ ॥३३॥

अवस्थितं रणे दृष्ट्वा पाण्डवास्त्वां महारथाः ॥३४॥
द्रविष्यन्ति च पञ्चाला विष्णुं दृष्ट्वेव दानवाः ।

महारथी पाण्डव, तुम को जब रण में सेनापति पद पर स्थित देखेंगे-तो भगवान् विष्णु को देखकर दानवों की भांति पञ्चाल स्वयं भाग निकलेंगे ॥३४॥

तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र प्रकर्षैतां महाचमूम् ॥३५॥
भवत्यवस्थिते यत्ते पाण्डवा मन्दचेतसः ।
द्रविष्यन्ति सहामात्याः पञ्चालाः सृञ्जयाश्च ह ॥३६॥

हे पुरुष व्याघ्र ! अब तुम इस विशाल कौरव सेना का नेतृत्व स्वीकार करके इसका सञ्चालन करो। जब तुम सावधानी से युद्ध

में तत्पर होजावोगे-तो अल्प बुद्धि पाण्डव, अपने अमात्य, पञ्चाल और सृञ्जयों के साथ रण छोड़ कर भाग जावेंगे ॥३५॥

यथा ह्यभ्युदितः सूर्यः प्रतपन्स्वेन तेजसा ।
व्यपोहति तमस्तीव्रं तथा शत्रून्प्रतापय ॥३७॥

जिस प्रकार सूर्य उदित होकर अपने तेज से चमक उठता है और अन्धकार का नाश कर देता है, उसी तरह तुम भी शत्रुओं का नाश करो ॥३७॥

सञ्जय उवाच—

आशा बलवती राजन्पुत्रस्य तव या भवत् ।
हते भीष्मे च द्रोणे च कर्णो जेष्यति पाण्डवान् ॥३८॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इस समय तुम्हारे पुत्र दुर्योधन को बड़ी आशा हो रही थी कि यद्यपि भीष्म और द्रोण मारे जा चुके-तो भी महारथी कर्ण अवश्य पाण्डवों जीत लेगा ॥३८॥

तामाशां हृदये कृत्वा कर्णमेवं तदाब्रवीत् ।
सूतपुत्र न ते पार्थः स्थित्वाग्रे संयुयुत्सति ॥३६॥

इसी आशा को हृदय में रखकर कुरुराज, कर्ण से बोला—हे सूत-पुत्र ! कुन्ती-पुत्र अर्जुन, तुम्हारे सन्मुख युद्ध में स्थित होकर लड़ने में समर्थ नहीं है ॥३६॥

कर्ण उवाच—

उक्तमेतन्मया पूर्वं गान्धारे तव सन्निधौ ।
जेष्यामि पाण्डवान्सर्वान्सपुत्रान्सजनार्दनान् ॥४०॥

कर्ण ने कहा—हे गान्धारी-पुत्र ! मैंने तो तुम्हारे सन्मुख पूर्व में ही कहा था, कि मैं ही श्रीकृष्ण और पुत्रों सहित पाण्डवों के जीतने में समर्थ हूं ॥४०॥

सेनापतिर्भविष्यामि तवाहं नात्र संशयः ।
स्थिरो भव महाराज जितान्विद्धि च पाण्डवान् ॥४१॥

हे महाराज ! मैं तुम्हारी सेना का अवश्य सेनापति बनूंगा इसमें संशय न समझो। अब तुम धैर्य धारण करो और पाण्डवों को जीता हुआ ही समझो ॥४१॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तो महाराज ततो दुर्योधनो नृपः ।
उत्तस्थौ राजभिः सार्धं देवैरिव शतक्रतुः ॥४२॥
सैनापत्येन सत्कर्तुं कर्णं स्कन्दमिवामराः ।
ततोऽभिषिषिचुः कर्णं विधिदृष्टेन कर्मणा ॥४३॥

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! जब कर्ण ने राजा दुर्योधन से इतना कहा-तो वह अपने राजसमूह के साथ इस ढंग से उठा-जैसे देवों के साथ इन्द्र उठा हो, देवताओं ने जिस भांति कार्तिकेय का सेनापति पद पर सत्कार किया था, उसी तरह का सत्कार करने को, कुरुराज भी उठ खड़ा हुआ। हे राजन् ! इसके अनन्तर शास्त्र विधिके अनुसार अङ्गराज कर्ण को सेनापति पद पर अभिषिक्त कर दिया ॥४२-४३॥

दुर्योधनमुखा राजन्राजानो विजयैषिणः ।
शातकुम्भमयैः कुम्भैर्माहेयैश्चाभिमन्त्रितैः ॥४४॥
तोयपूर्णविषाणैश्च द्विपखड्गमहर्षभैः ।
मणिमुक्तायुतैश्चान्यैः पुण्यगन्धैस्तथौषधैः ॥४५॥
औदुम्बरे सुखासीनमासने क्षौमसंवृते ।
शास्त्रदृष्टेन विधिना सम्भारैश्च सुसम्भृतैः ॥४६॥

हे राजसत्तम ! विजयाभिलाषी अनेक राजाओं ने राजा दुर्योधन को साथ लेकर सुवर्ण मय और मृत्तिकामय कुम्भ लेकर मन्त्रों के साथ कर्ण को स्नान कराया । हाथी दांत के पात्रों में भी जल भर लिया गया । गैंडा नीलगाय इत्यादि जीवों के दांतों आदि से बने हुए पात्र भी काम लाये गए । बहुत से पात्रों में मणि और मुक्ता जड़े हुए थे । उनमें सुगन्धित द्रव्य और ओषध डाली हुई थी । इस समय कर्ण को उदम्बर के आसन पर रेशमी वस्त्र बिछाकर बैठा दिया गया । इस प्रकार की अभिषेक की बहुत सी सामग्री से शास्त्र दृष्टि के अनुसार कर्ण का अभिषेक किया गया ॥

ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्यास्तथा शूद्राश्च सम्मताः ।
तुष्टुवुस्तं महात्मानमभिषिक्तं वरासने ॥४७॥

जब अङ्गराज कर्ण का अभिषेक हो चुका तो बड़े २ माननीय ब्राह्मण क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र, महावीर कर्ण की प्रशंसा करने लगे ॥४७॥

ततोऽभिषिक्ते राजेन्द्र निष्कैर्गोभिर्धनेन च ।
वाचयामास विप्राग्र्यान्राधेयः परवीरहा ॥४८॥

हे राजेन्द्र ! जब महारथी कर्ण का अभिषेक हो चुका तो उस शत्रु विजयी राधा-पुत्र कर्ण ने सुवर्ण के हार गौ और बहुत से धन का दान करके उत्तम २ ब्राह्मणों से स्वस्तिवाचन करवाया ॥

जय पार्थान्सगोविन्दान्सानुगांस्तान्महामृधे ।
इति तं बन्दिनः प्राहुर्द्विजाश्च पुरुषर्षभम् ॥४९॥

अब बन्दी गण और द्विजाति, उस पुरुष प्रवीर कर्ण को आशीर्वाद देने लगे, कि तुम श्रीकृष्ण और सेना सहित पाण्डवों को इस महायुद्ध में जीत लो ॥४९॥

जहि पार्थान्सपञ्चालान्राधेय विजयाय नः ।
उद्यन्निव सदा भानुस्तमांस्युग्रैर्गभस्तिभिः ॥५०॥

हे राधेय ! जिस तरह उदय को प्राप्त होता हुआ सूर्य, अपनी उग्र किरणों से अन्धकार का नाश कर देता है. उसी तरह पञ्चालों के सहित पाण्डवों को मार गिराओ और हमारी विजय का सम्पादन करो ॥५०॥

न ह्यलं त्वद्विसृष्टानां शराणां वै सकेशवाः ।
उलूकाः सूर्यरश्मीनां ज्वलतामिव दर्शने ॥५१॥

जिस प्रकार प्रज्वलित सूर्य किरणों के देखने में उलूकगण समर्थ नहीं होता है, उसी तरह तुम्हारे छोड़े हुए बाणों के सहन करने में श्रीकृष्ण सहित पाण्डव समर्थ नहीं हो सकेंगे ॥५१॥

नहि पार्थाः सपञ्चालाः स्थातुं शक्तास्तवाग्रतः।
आत्तशस्त्रस्य समरे महेन्द्रस्येव दानवाः ॥५२॥

हे कर्ण! पञ्चालों के साथ भी पाण्डव, तुम्हारे सन्मुख इस तरह नहीं ठहर सकते हैं, जैसे-शस्त्रधारी इन्द्र के सन्मुख रण में दानव नहीं ठहर सकते हैं ॥५२॥

अभिषिक्तस्तु राधेयः प्रभया सोऽमितप्रभः।
अत्यरिच्यत रूपेण दिवाकर इवापरः ॥५३॥

जब अङ्गराज कर्ण का सेनापति पद पर अभिषेक हो चुका-तो वह इस कान्ति से इतना देदीप्यमान हो उठा, कि जैसे-तेज से दूसरा सूर्य चमक रहा हो ॥५३॥

सैनापत्ये तु राधेयमभिषिच्य सुतस्तव।
अमन्यत तदात्मानं कृतार्थं कालचोदितः ॥५४॥

हे राजन्! काल से प्रेरित तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, सेनापति पद पर राधा-पुत्र कर्ण को अभिषिक्त करके अपने को कृतार्थ मानने लगा ॥५४॥

कर्णोऽपि राजन्सम्प्राप्य सैनापत्यमरिन्दमः।
योगमाज्ञापयामास सूर्यस्योदयनं प्रति ॥५५॥

हे राजन्! अरिमर्दन कर्ण ने भी सेनापति पद पाकर सूर्य उदय होते ही वाहनों में अश्वादि के जोड़ देने की आज्ञा प्रदान की ॥५५॥

तव पुत्रैर्वृतः कर्णः शुशुभे तत्र भारत ।
देवैरिव यथा स्कन्दः संग्रामे तारकामये ॥५६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कर्णाभिषेके दशमोऽध्यायः ॥१०॥

हे भारत ! इस समय तुम्हारे पुत्रों से घिरे हुए कर्ण की ऐसी शोभा प्रतीत होने लगी-जैसे—तारकासुर संग्राम में जाते हुए देवों के सेनापति कार्तिकेय की देवों के साथ चलने से शोभा प्रतीत होती थी ॥ ५६ ॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में महारथी कर्ण को सेनापति पद पर अभिषिक्त करने के वर्णन का दसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



ग्यारहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

सैनापत्यं तु सम्प्राप्य कर्णो वैकर्त्तनस्तदा ।
तथोक्तश्च स्वयं राज्ञा स्निग्धं भ्रातृसमं वचः ॥१॥
योगमाज्ञाप्य सेनानामादित्येऽभ्युदिते तदा ।
अकरोत्किं महाप्राज्ञस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले-हे सञ्जय ! सूर्यपुत्र कर्ण को जब सेनापति पद प्राप्त हो गया। और राजा दुर्योधन ने जब उससे भ्राता के

समान प्रिय और मधुर वचन कहे-कर्ण ने भी सूर्य के उदय होने पर अपनी सेना को तय्यार होने की आज्ञा देदी, फिर प्रातःकाल होने पर महाबाहु बुद्धिमान् कर्ण ने क्या किया ? मुझे यह सुनाओ ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

कर्णस्य मतमाज्ञाय पुत्रास्ते भरतर्षभ ।
योगमाज्ञापयामासुर्नन्दितूर्यपुरःसरम् ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! महारथी कर्ण की आज्ञा पाकर तुम्हारे पुत्रों ने प्रातः काल सेना के तय्यार हो जाने की घोषणा नन्दी और तुरी नामक बाजे बजवाकर करवाई ॥३॥

महत्यपररात्रे च तव सैन्यस्य मारिष ।
योगो योगेति सहसा प्रादुरासीन्महास्वनः ॥४॥

हे आर्य ! जब उस रात का पिछला भाग बहुत सा शेष था, तभी से तुम्हारी सेना में यह चहल पहल सुनाई दी कि बाहनों को जोड़ो-तय्यारी करो-इस प्रकार का बहुत ही कोलाहल तुम्हारी सेना में उठ खड़ा हुआ ॥४॥

कल्पतां नागमुख्यानां रथानां च वरूथिनाम् ।
सन्नह्यतां नराणां च वाजिनां च विशाम्पते ॥५॥
क्रोशतां चैव योधानां त्वरितानां परस्परम् ।
बभूव तुमुलः शब्दो दिवस्पृक् सुमहांस्ततः ॥६॥

हे विशाम्पते ! उत्तम २ हाथियों के विभूषित करने, आवरणों वाले, रथोंके सजाने, अश्व और पैदलों के तय्यार होने, शीघ्रकारी योद्धाओं के परस्पर चिल्लाने से महा घोर कलकलाहट मच गया। वह विशाल शब्द आकाश में छा गया ॥५-६॥

ततः श्वेतपताकेन बलाकावर्णवाजिना ।
हेमपृष्ठेन धनुषा नागकक्षेण केतुना ॥७॥
तूणीरशतपूर्णेन सगदेन वरूथिना ।
शतघ्नीकिङ्किणीशक्तिशूलतोमरधारिणा ॥८॥
कार्मुकैरुपपन्नेन विमलादित्यवर्चसा ।
रथेनाभिपताकेन सूतपुत्रोऽभ्यदृश्यत ॥९॥
ध्मापयन्वारिजं राजन्हेमजालविभूषितम् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्त्तस्वरविभूषितम् ॥१०॥

इसके अनन्तर श्वेत पताका और बलाका (बुगली) के तुल्य श्वेत वर्ण धारी अश्वों से युक्त, सुवर्ण की पीठ वाले धनुष तथा हाथी की शृङ्खला के चिन्ह से युक्त ध्वजा से सुशोभित सैंकड़ों तूणीरों से सुसम्पन्न. शतघ्नी, किङ्किणी, शक्ति, शूल और तोमर आदि शस्त्रों से विभूषित, अनेक धनुषों को धारण करने वाले दिव्य सूर्य के तुल्य चमकने वाले, पताका-युक्त रथ के सहित सूत-पुत्र कर्ण दिखाई पड़े। हे राजन् ! सुवर्ण के जाल से विभूषित, शङ्ख को बजाते और सुवर्ण से ही समुज्ज्वल बड़े भारी धनुष को कंपाते हुए कर्ण रणाङ्गण में पहुंचे ॥७-१०॥

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं रथस्थं रथिनां वरम् ।
भानुमन्तमिवोद्यन्तं तमो निघ्नन्दुरासदम् ॥११॥
न भीष्मव्यसनं केचिन्नापि द्रोणस्य मारिष ।
नान्येषां पुरुषव्याघ्र मेनिरे तत्र कौरवाः ॥१२॥

हे आर्य पुरुष श्रेष्ठ ! रथियों में श्रेष्ठ, महा धनुर्धर रथ में स्थित कर्ण को अन्धकार को नाश करते हुए उदित होते हुए सूर्य के तुल्य देखकर किसी भी कौरव वीर को न तो भीष्म पितामह की मृत्यु का स्मरण रहा और न किसी ने मरे हुए द्रोणाचार्य को याद किया एवं न किसी अन्य मृत महारथी का ही स्मरण आया ॥

ततस्तु त्वरयन्योधाञ्शङ्खशब्देन मारिष ।
कर्णो निष्कर्षयामास कौरवाणां महद्बलम् ॥१३॥

हे आर्यगुणसम्पन्न ! अब महारथी कर्ण अपनी शङ्ख ध्वनि से योद्धाओं को शीघ्रता के साथ उत्साहित करते हुए, कौरवों की विशाल सेना को आगे बढ़ाने लगे ॥१३॥

व्यूहं व्यूह्य महेष्वासो मकरं शत्रुतापनः ।
प्रत्युद्ययौ तथा कर्णः पाण्डवान्विजिगीषया ॥१४॥

शत्रुतापी महाधनुर्धर कर्ण ने अपनी सेना का मकर नामक व्यूह बनाया और वह पाण्डवों के जीतने की इच्छा से आगे बढ़ा ॥१४॥

मकरस्य तु तुण्डे वै कर्णो राजन्व्यवस्थितः ।
नेत्राभ्यां शकुनिः शूर उलूकश्च महारथः ॥१५॥

द्रोणपुत्रस्तु शिरसि ग्रीवायां सर्वसोदराः ।
मध्ये दुर्योधनो राजा बलेन महता वृतः ॥१६॥
वामपादे तु राजेन्द्र कृतवर्मा व्यवस्थितः ।
नारायणबलैर्युक्तो गोपालैर्युद्धदुर्मदैः ॥१७॥
पादे तु दक्षिणे राजन्गौतमः सत्यविक्रमः ।
त्रिगर्तैः सुमहेष्वासैर्दाक्षिणात्यैश्च संवृतः ॥१८॥
अनुपादे तु यो वामस्तत्र शल्यो व्यवस्थितः ।
महत्या सेनया सार्द्धं मद्रदेशसमुत्थया ॥१९॥

हे राजन् ! इस मकरव्यूह के मुख पर तो स्वयं महारथी कर्ण थे और दोनों आंखों पर शकुनि और उसका पुत्र महारथी उलूकराज था । इस मकरव्यूह के शिर प्रदेश में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और ग्रीवा में सारे सहोदर भ्राता धार्तराष्ट्र लगाये गए ! इसके मध्य में बड़ी भारी सेना के साथ राजा दुर्योधन थे । हे राजेन्द्र ! इस व्यूह के वामपाद में कृतवर्मा उपस्थित हुआ । जिसके साथ, युद्ध दुर्मद नारायणी सेना के गोपाल थे । हे राजन् ! इसके दक्षिण पाद में सत्य पराक्रमी गौतम गोत्रोत्पन्न कृपाचार्य थे, जिनके साथ महाधनुर्धर त्रिगर्त और दाक्षिणात्य वीर लगे हुए थे । इस पाद के पीछे बांयी ओर राजा शल्य, मद्रदेश की विशाल सेना के साथ खड़े थे ॥१५-१९॥

दक्षिणे तु महाराज सुषेणः सत्यसङ्गरः ।
वृतो रथसहस्रेण दन्तिनां च त्रिभिः शतैः ॥२०॥

हे महाराज ! इस व्यूह के दांयी ओर सत्य प्रतिज्ञाधारी राजा, सुषेण, एक सहस्र रथ और तीनसौं हाथियों के साथ उपस्थित था ॥२०॥

पुच्छे ह्यास्तां महावीर्यौ भ्रातरौ पार्थिवौ तदा ।
चित्रश्च चित्रसेनश्च महत्या सेनया वृतौ ॥२१॥

इसी व्यूह की पुच्छ की ओर महापराक्रमी दोनों भ्राता राजा चित्र और चित्रसेन खड़े थे, जिनके पास भी विशाल सेना थी ॥२१॥

तथा प्रयाते राजेन्द्र कर्णे नरवरोत्तमे ।
धनञ्जयमभिप्रेक्ष्य धर्मराजोऽब्रवीदिदम् ॥२२॥

हे राजेन्द्र ! इस प्रकार नरप्रवीर कर्ण के चल देने पर धनञ्जय अर्जुन को देखकर धर्मराज यह वचन बोले ॥२२॥

पश्य पार्थ यथा सेना धार्त्तराष्ट्रीह संयुगे ।
कर्णेन विहिता वीर गुप्ता वीरैर्महारथैः ॥२३॥
हतवीरतमा ह्येषां धार्त्तराष्ट्री महाचमूः ।
फल्गुशेषा महाबाहो तृणैस्तुल्या मता मम ॥२४॥
एको ह्यत्र महेष्वासः सूतपुत्रो विराजते ।

हे अर्जुन ! आज तुम धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की सेना को देखो, जिसका व्यूह कर्ण ने बनाया है और जो बड़े २ महारथी वीरों से सुरक्षित है। हे महाबाहो ! वीर ! इस विशाल कौरव

सेना के प्रायः महारथी वीर मारे जा चुके-अब इसमें साधारण व्यक्ति बचे हुए हैं, इससे मुझे यह तृण तुल्य प्रतीत होती है, परन्तु इसमें एक महाधनुर्धर कर्ण, अत्यन्त देदीम्पमान हो रहा है ॥२३-२४॥

सदेवासुरगन्धर्वैः सकिन्नरमहोरगैः ॥२५॥
चराचरैस्त्रिभिर्लोकैर्योऽजय्यो रथिनां वरः ।
तं हत्वाद्य महाबाहो विजयस्तव फाल्गुन ॥२६॥
उद्धृतश्च भवेच्छल्यो मम द्वादशवार्षिकः ।
एवं ज्ञात्वा महाबाहो व्यूहं व्यूह यथेच्छसि ॥२७॥

यह रथिश्रेष्ठ कर्ण, देव, असुर, गन्धर्व, किन्नर, महोरग तथा तीनों लोकों के परस्पर प्राणियों से भी अजेय है। हे महाबाहो ! अर्जुन ! यदि तुमने आज इसको मार लिया तो तुम्हारा विजय ही समझो और मेरे हृदय में जो बारह वर्ष से बाण गड़ा हुआ है, वह आज उखड़ जावेगा। हे महाबाहो ! यह सब कुछ समझकर तुम जैसा व्यूह निर्माण करना चाहो करलो ॥२५-२७॥

भ्रातुरेतद्वचः श्रुत्वा पाण्डवः श्वेतवाहनः ।
अर्धचन्द्रेण व्यूहेन प्रत्यव्यूहत तां चमूम् ॥२८॥

हे राजन् ! अपने भ्राता धर्मराज के वचन सुनकर श्वेत अश्वों के वाहन वाले पाण्डुपुत्र अर्जुन ने अपनी सेना का अर्धचन्द्र नामक व्यूह बनाया ॥२८॥

वामपार्श्वे तु तस्याथ भीमसेनो व्यवस्थितः।
दक्षिणे च महेष्वासो धृष्टद्युम्नो व्यवस्थितः ॥२९॥
मध्ये व्यूहस्य राजा तु पाण्डवश्च धनञ्जयः।
नकुलः सहदेवश्च धर्मराजस्य पृष्ठतः ॥३०॥

इस अर्धचन्द्र व्यूह के वाम पार्श्व में भीमसेन स्थित हुए और दांये पार्श्व में महाधनुर्धर सेनापति धृष्टद्युम्न थे। व्यूह के विल्कुल मध्य में राजा युधिष्ठिर और पाण्डु पुत्र अर्जुन खड़े हुए धर्मराज के पीछे ही नकुल और सहदेव थे ॥२९-३०॥

चक्ररक्षौ तु पाञ्चाल्यौ युधामन्यूत्तमौजसौ।
नार्जुनं जहतुर्युद्धे पाल्यमानौ किरीटिना ॥३१॥

अर्जुन के चक्ररक्षक पाञ्चाल वीर युधामन्यु और उत्तमौजा थे-जो युद्ध में अर्जुन का साथ नहीं छोड़ते थे और अर्जुन भी इनकी रक्षा करता रहता था ॥३१॥

शेषा नृपतयो वीराः स्थिता व्यूहस्य दंशिताः।
यथाभागं यथोत्साहं यथायत्नं च भारत ॥३२॥

हे भारत! इसी तरह शेष महारथी वीर राजा भी, इस व्यूह में वड़ी सजधज के साथ, अपने २ भाग में यथाशक्ति प्रयत्न करते हुए उत्साह-पूर्वक खड़े थे ॥३२॥

एवमेतन्महाव्यूहं व्यूह्य भारत पाण्डवाः।
तावकाश्च महेष्वासा युद्धायैव मनो दधुः ॥३३॥

हे भरतवंश श्रेष्ठ ! इसी प्रकार पाण्डवों ने भी अपनी सेना का महाव्यूह निर्माण किया इसी समय तुम्हारे पक्ष के भी महा धनुषधारी वीर, युद्ध के लिए उतावले हो पड़े ॥२३॥

दृष्ट्वा व्यूढां तव चमूं सूतपुत्रेण संयुगे ।
निहतान्पाण्डवान्मेने धार्त्तराष्ट्रः सबान्धवः ॥२४॥

हे राजन् ! जब राजा दुर्योधन ने कर्ण द्वारा व्यूह में खड़ी हुई सेना को देखा-तो उसने आज बान्धवों सहित पाण्डवों को मारा हुआ ही समझ लिया ॥२४॥

तथैव पाण्डवीं सेनां व्यूढां दृष्ट्वा युधिष्ठिरः ।
धार्त्तराष्ट्रान्हतान्मेने सकर्णान्वै जनाधिपः ॥२५॥

इसी तरह राजा युधिष्ठिर ने भी जब पाण्डवी सेना के व्यूह निर्माण की कुशलता देखी-तो उसने भी कर्ण सहित कौरवों का मृतक ही समझा ॥२५॥

ततःशङ्खांश्च भेर्यश्च पणवानकदुन्दुभीः ।
डिण्डिमाश्चाप्यहन्यन्त झर्झराश्च समन्ततः ॥२६॥

इसके अनन्तर शङ्ख, भेरी, पणव, आनक, दुन्दुभि, डिण्डिम और झांझ आदि युद्ध के बाजे सब ओर बजने लगे ॥२६॥

सेनयोरुभयो राजन्प्रावाद्यन्त महास्वनाः ।
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणां जयगृद्धिनाम् ॥२७॥

हे राजन ! दोनों सेनाओं में इस समय बड़े २ बाजे बज रहे थे, जिससे महाध्वनि खड़ी हो रही थी । अपनी २ विजय के अभिलाषी शूरवीरों का सिंहनाद भी रणाङ्गण में छा रहा था ॥

हयहेषितशब्दाश्च वारणानां च बृंहताम् ।
रथनेमिस्वनाश्चोग्राः सम्बभूवुर्जनाधिप ॥३८॥

हे जनाधिप ! अश्वों की हिनहिनाहट, हाथियों की चिंघाड़ तथा रथों की नेमियों की उग्र ध्वनि, सब ओर बढ़ने लगी ॥३८॥

न द्रोणव्यसनं कश्चिज्जानीते तत्र भारत ।
दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं मुखे व्यूहस्य दंशितम् ॥३९॥

हे भारत ! इस समय कौरव सेना में किसी को भी द्रोणाचार्य की मृत्यु का क्लेश शेष नहीं रह गया, जब कि उन्होंने सेना के मुख पर बड़ी तैयारी के साथ महाधनुर्धर सूतपुत्र कर्ण को खड़ा देखा ॥३९॥

उभे सैन्ये महाराज प्रहृष्टनरसंकुले ।
योद्धुकामे स्थिते राजन्हन्तुमन्योन्यमोजसा ॥४०॥

हे महाराज ! इस समय दोनों सेनाओं के पुरुष प्रवीर, बड़े प्रसन्न और अपने २ बल के साथ एक दूसरे पर प्रहार की इच्छा से युद्ध के लिए उतावले हो रहे थे ॥४०॥

तत्र यत्तौ सुसंरब्धौ दृष्ट्वान्योन्यं व्यवस्थितौ ।
अनीकमध्ये राजेन्द्र चेरतुः कर्णपाण्डवौ ॥४१॥

हे राजेन्द्र ! जब बड़े आवेश में भरे हुए, सावधानी के साथ एक दूसरे पर प्रहार के अभिलाषी योद्धाओं को कर्ण और अर्जुन

देखा-तो उन्होंने एक २ बार अपनी २ सेना के मध्य में चक्कर लगाया ॥४१॥

नृत्यमाने च ते सेने समेयातां परस्परम् ।
तेषां पक्षैः प्रपक्षैश्च निर्जग्मुस्ते युयुत्सवः ॥४२॥

हे राजन्! वे दोनों कौरवी और पाण्डवी सेना नांच सा करती हुई, परस्पर भिड़ गई । उन सेनाओं के व्यूह के पक्ष और पक्षों से निकलकर युद्धाभिलाषी वीर आगे बढ़ने लगे ॥४२॥

ततः प्रववृते युद्धं नरवारणवाजिनाम् ।
रथानां च महाराज अन्योन्यमभिनिघ्नताम् ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि व्यूहनिर्माणे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

हे महाराज! अब मनुष्य, हाथी रथ और अश्वों का घोर संग्राम चल पड़ा, जो परस्पर एक दूसरे पर बुरी तरह प्रहार कर रहे थे ॥४३॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में दोनों ओर की सेना के
व्यूह निर्माण का ग्यारवां अध्याय समाप्त हुआ ।

बारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ते सेनेऽन्योन्यमासाद्य प्रहृष्टाश्वनरद्विपे ।
बृहत्यौ सम्प्रजह्राते देवासुरसमप्रभे ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! इस के अनन्तर दोनों सेना परस्पर भिड़ गईं, जिनके अश्व, नर और हाथी बड़े ही युद्धोत्साह में भरे हुए थे । ये दोनों सेना देव और असुर सेना के सदृश भीषण हुईं परस्पर प्रहार कर रही थी ॥१॥

ततो नररथाश्वेभैः पत्तयश्चोग्रविक्रमाः ।
सम्प्रहारान्भृशं चक्रुर्देहपाप्मासुनाशनान् ॥२॥

हे नृप ! अब नर, अश्व और हाथियों को साथ लिए हुए दोनों ओर के अत्यन्त पराक्रमी वीर सैनिक, देह के पाप और प्राणों के नाशक प्रहारों को अत्यन्त वेग के साथ एक दूसरे पर करने लगे ॥२॥

पूर्णचन्द्रार्कपद्मानां कान्तिभिर्गन्धतः समैः ।
उत्तमाङ्गैर्नृसिंहानां नृसिंहास्तस्तरुर्महीम् ॥३॥

हे राजन् ! पूर्ण चन्द्र, सूर्य और कमल के तुल्य कांति और गन्धधारी नर वीरों के मस्तकों से दोनों ओर के पुरुष प्रवीरों ने पृथिवी को पाट दिया ॥३॥

अर्धचन्द्रैस्तथा भल्लैः क्षुरप्रैरसिपट्टिशैः ।
परश्वधैश्चाप्यकृन्तन्नुत्तमाङ्गानि युध्यताम् ॥४॥

हे राजन्! अर्धचन्द्र, भल्ल, क्षुरप्र असि, पट्टिश और परश्वध आदि शस्त्रों से वीरों ने युद्ध करने वाले वीरों के मस्तक काट लिए ॥४॥

व्यायतायतबाहूनां व्यायतायतबाहुभिः ।
बाहवः पातिता रेजुर्धरण्यां सायुधाङ्गदैः ॥५॥

लम्बी, चौड़ी भुजाओं वाले वीरों द्वारा लम्बी चौड़ी भुजा वाले वीरों की बाहु काट कर पृथिवी में गिरा दी गई, जो आयुध और अङ्गद नामक आभूषण के साथ पड़ी हुई रण भूमि की शोभा बढ़ा रही है ॥५॥

तैः स्फुरद्भिर्मही भाति रक्तांगुलितलैस्तथा ।
गरुडप्रहितैरुग्रैः पञ्चास्यैरुरगैरिव ॥६॥

रक्त से भीगे हुए चमकीले अंगुलि त्राणसे पृथिवी इस तरह सुशोभित हो रही थी, जैसे गरुड़ से मारे हुए पांचफनवाले उग्र सर्प सुशोभित हो रहे हों ॥६॥

द्विरदस्यन्दनाश्वेभ्यः पेतुर्वीरा द्विषद्धताः ।
विमानेभ्यो यथा क्षीणे पुण्ये स्वर्गसदस्तथा ॥७॥

हे नृप! हाथी, रथ, और अश्वों से शत्रुओं द्वारा मारे वीर, इस तरह पड़ने लगे-जैसे पुण्य के क्षीण होने पर स्वर्ग निवासी प्राणी विमानों से गिर रहे हों ॥७॥

गदाभिरन्ये गुर्वीभि परिघैर्मुसलैरपि ।
पोथिताः शतशः पेतुर्वीरा वीरतरै रणे ॥८॥

हे राजन्! बड़ी भारी गदा, परिघ और मूसलों से मार २ कर अधमरा कर वीरों ने सैंकड़ों वीरों को रण में धराशायी कर दिया ॥८॥

रथा रथैर्विमथित मत्ता मत्तैर्द्विपा द्विपैः ।
सादिनः सादिभिश्चैव तस्मिन्परमसंकुले ॥९॥

रथियों ने रथो, मदोन्मत्त हाथियों ने हाथी, अश्वारोहियों ने अश्वारोहियों को उस घोर संग्राम में मार २ कर बिछा दिया ॥९॥

रथैर्नरा रथा नागैरश्वारोहाश्च पत्तिभिः ।
अश्वारोहैः पदाताश्च निहता युधि शेरते ॥१०॥

रथियों ने पैदल सैनिक, हाथियों के सवारों ने रथी, पैदलों ने अश्वारोही, अश्वारोहियों ने पैदल, मार २ कर रण भूमि में सुला दिए ॥१०॥

रथाश्वपत्तयो नागै रथाश्वेभाश्च पत्तिभिः ।
रथपत्तिद्विपाश्चाश्वै रथैश्चापि नरद्विपाः ॥११॥

रथी, अश्वारोही और पैदल, हाथियों के सवारों ने तथा रथी अश्व और हाथियों के सवारों को पैदलों ने नर और हाथियों के सवारों को रथियों ने नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥११॥

रथाश्वेभनराणां तु नराश्वेभरथैः कृतम् ।
पाणिपादैश्च शस्त्रैश्च रथैश्च कदनं महत् ॥१२॥

रथी, अश्वारोही, हाथियों के सवार और पैदल सैनिकों को नर, अश्वारोही रथो और हाथियों के सवारों ने मार डाला । इस

समय पाणिपाद शस्त्र और रथों के रण भूमि में गिरने से बहुत ही विनाश की सूचना मिल रही थी ॥१२॥

तथा तस्मिन्बले शूरैर्वध्यमाने हतेऽपि च ।
अस्मानभ्याययुः पार्था वृकोदरपुरोगमाः ॥१३॥

हे राजन्! इस प्रकार शूरवीरों द्वारा सेना के ताड़ित और नष्ट कर देने पर भीमसेन आदि पाण्डव, इस समय हमारी ओर दौड़े ॥१३॥

धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ।
सात्यकिश्चेकितानश्च द्राविडैः सैनिकैः सह ॥१४॥

दूसरी ओर से धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी-पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि और चेकितान, द्रविड़ सेना के साथ आगे बढ़े ॥१४॥

वृता व्यूहेन महता पाण्ड्याश्चालाः सकेरलाः ।
व्यूढोरस्का दीर्घभुजाः प्रांशवः पृथुलोचनाः ॥१५॥
आपीडिनो रक्तदन्ता मत्तमातङ्गविक्रमाः ।

पाण्ड्य, चाल, और केरल देशोत्पन्न वीर, बड़े भारी व्यूह को बनाकर सामने आए। इनकी विशाल और दृढ़ छाती थी, लम्बी २ भुजा के धारण करने वाले, मोटी २ आंखों से युक्त, लंबे चौड़े थे। इन्होंने माला धारण कर रखी थी। इनके लाल दांत और ये मदोन्मत्त हाथी के समान पराक्रमी थे ॥१५॥

नानाविरागवसना गन्धचूर्णावचूर्णिताः ॥१६॥
बद्धासयः पाशहस्ता वारणप्रतिवारणाः ।
समानमृत्यवो राजन्नात्यजन्त परस्परम् ॥१७॥

हे राजन्! इन वीरों ने अनेक रंग के वस्त्र, पहन रखे थे और ये गन्ध के चूर्ण से सुगन्धित थे। इन्होंने तलवार बांध रखी थी फांसी इनके हाथ में थी और यह हाथी के भी रोक देने में समर्थ थे। मान के साथ मर जाने में भी इनको कोई भय नहीं था ये जब सामने पड़ जाते थे—पीछे नहीं हटते थे ॥१६-१७॥

कलापिनश्चापहस्ता दीर्घकेशाः प्रियंवदाः।
पत्तयः सादिनश्चान्ये घोररूपपराक्रमाः ॥१८॥

लम्बे २ बाल समूह के धारण करने वाले, धनुषधारी, प्रिय बोलने में कुशल, अनेक पैदल सैनिक, और अश्वारोही, जत्थे बना बना कर आक्रमण करने लगे। इनका रूप और पराक्रम अत्यन्त भयानक था ॥१८॥

अथापरे पुनः शूराश्चेदिपश्चालकेकयाः।
कारूपाः कोसलाः काञ्च्या मागधाश्चापि दुद्रुवुः ॥१९
तेषां रथाश्वनागाश्च प्रवराश्चोग्रपत्तयः।
नानावाद्यधरैर्हृष्टा नृत्यन्ति च हसन्ति च ॥२०॥

इसी तरह अन्य चेदि, पञ्चाल, केकय, कारूष कोसल, काञ्च्य और मागध वीर भी बड़े वेग से हमारी ओर टूट पड़े। इनके रथ, अश्व और हाथी बड़े श्रेष्ठ और पैदल सैनिक बड़े उग्र थे। इन्हों ने अनेक प्रकार के बाजे ले रखे थे। ये नांचते और हंसते जाते थे ॥१९-२०॥

तस्य सैन्यस्य महतो महामात्रवरैर्वृतः ।
मध्ये वृकोदरोऽभ्ययायोस्त्वदीयान्नागधूर्गतः ॥२१॥

इस विशाल सेना के मध्य में हाथी पर बैठे हुए और बहुत महावतों (उत्तम योद्धा) से घिरे हुए, भीमसेन, तुम्हारे वीरों से युद्ध के लिए आगे आए ॥२१॥

स नागप्रवरोऽत्युग्रो विधिवत्कल्पितो बभौः ।
उदयाग्राद्रिभवनं यथाभ्युदित भास्करम् ॥२२॥

यह भीमसेन का उत्तम हाथी, युद्ध के ढंग पर सजाया हुआ था। इस पर बैठे हुए भीमसेन उदयचल पर उदित होते हुए सूर्य के सदृश प्रतीत होते थे ॥२२॥

तस्यायसं वर्मवरं वररत्नविभूषितम् ।
ताराव्याप्तस्य नभसः शारदस्य समत्विपम् ॥२३॥

भीमसेन का लोह का कवच था, जिसमें उत्तम २ रत्न जड़े थे। वह कवच ऐसा प्रतीत होता था, जैसे शरद् ऋतु में ताराओं से भरा हुआ नीला आकाश चमक रहा हो ॥२३॥

सः तोमरव्यग्रकरश्चारुमौलिः स्वलंकृतः ।
चरन्मध्यन्दिनार्काभस्तेजसा व्यदहद्रिपून ॥२४॥

भीमसेन के हाथ में तोमर नामक शस्त्र था। इसके मस्तक पर मुकुट और यह अलङ्कारों से अलंकृत था। मध्यान्ह काल के सूर्य की भांति अपने तेज से यह शत्रुओं को सन्तापित्त कर बना रहा था ॥२४॥

तं दृष्ट्वा द्विरदं दूरात्क्षेमधूर्त्तिर्द्विपस्थितः।
आह्वयन्नभिदुद्राव प्रमनाः प्रमनस्तरम् ॥२५॥

इस भीमसेन के हाथी को दूर से ही देखकर हाथी पर बैठा हुआ बड़ा प्रसन्न चित्त क्षेमधूर्ति उल्लासित मन वाले भीमसेन को ललकारता हुआ उसकी ओर दौड़ा ॥२५॥

तयोः समभवद्युद्धं द्विपयोरुग्ररूपयोः।
यदृच्छया द्रुमवतोर्महापर्वतयोरिव ॥२६॥

इन उग्र रूपधारी दोनों हाथियों का इस तरह युद्ध होने लगा जैसे वृक्षों से भरे हुए दो महापर्वत अचानक टकरा रहे हों ॥२६॥

संसक्तनागौ तौ वीरौ तोमरैरितरेतरम्।
बलवत्सूर्यरश्म्याभैर्भित्वान्योन्यं विनेदतुः ॥२७॥

अपने २ हाथी पर बैठे हुए वे दोनों वीर सूर्य किरण सदृश चमकीले अपने २ तोमर शस्त्र से, एक दूसरे को आहत करके गरजने लगे ॥२७॥

व्यपसृत्य तु नागाभ्यां मण्डलानि विचेरतुः।
प्रगृह्य चोभौ धनुषी जघ्नतुर्वै परस्परम् ॥२८॥

ये दोनों अपने हाथियों से आगे बढ़कर मण्डल बनाने लगे। इन, दोनों वीर भीमसेन और क्षेमधूर्ति ने धनुष उठाकर परस्पर प्रहार करना आरम्भ किया ॥२८॥

क्ष्वेडितास्फोटितरवैर्बाणशब्दैस्तु सर्वतः।
तौ जनं हर्षयन्तौ च सिंहनादं प्रचक्रतुः ॥२९॥

गर्जना ताल फटकारना तथा सब ओर से बाणों की सन सनाहट के साथ वीरों के चित्त में हर्ष भरते हुए दोनों ओर सिंह नाद करने लगे ॥२६॥

समुद्यतकराभ्यां तौ द्विपाभ्यां कृतिनावुभौ।
वातोद्धूतपताकाभ्यां युयुधाते महाबलौ ॥३०॥

ये दोनों युद्ध वीर, अस्त्र विद्या में कुशल और महाबली थे। इनके हाथियों ने सूंड उठा रखी थी और वायु से इनकी पताकाएं फड़-फड़ा रही थीं। इस आकार में युद्ध करते हुए ये बड़े ही सुंदर प्रतीत होते थे ॥३०॥

तावन्योन्यस्य धनुषी छित्वान्योन्यं विनेदतुः।
शक्तितोमरवर्षेण प्रावृण्मेघाविवाम्बुभिः ॥३१॥

भीमसेन ने क्षेमधूर्ति और क्षेमधूर्ति ने भीमसेन का धनुष काट डाला। ये वर्षा ऋतु के मेघ के सदृश शक्ति, तोमर आदि शस्त्रों की वर्षा करते हुए अत्यन्त गर्जना कर रहे थे ॥३१॥

क्षेमधूर्तिस्तदा भीमं तोमरेण स्तनान्तरे।
निर्बिभेदातिवेगेन षड्भिश्चाप्यपरैर्नदन् ॥३२॥

अब क्षेमधूर्ति ने तोमर शस्त्र से भीमसेन के वक्षस्थल में प्रहार किया। और गर्जना करके बड़े वेग से छः बाण मारकर उसे क्षत-विक्षत कर डाला ॥३२॥

स भीमसेनः शुशुभे तोमरैरङ्गमाश्रितैः।
क्रोधदीप्तवपुर्मेघैः सप्तसप्तिरिवांशुमान् ॥३३॥

अङ्ग में लगे हुए तोमर (वाण विशेष) शस्त्रों से भीमसेन, ऐसे प्रतीत होने लगे-जैसे मेघों से व्याप्त, किरणमालाधारी सूर्य प्रतीत होते हैं। इस समय भीमसेन, क्रोध से प्रदीप्त हो रहे थे ॥३३॥

ततो भास्करवर्णाभमञ्जोगतिमयस्मयम्।
ससर्ज तोमरं भीमः प्रत्यमित्राय यत्नवान् ॥३४॥

अब भीमसेन ने भी सूर्य के सदृश चमकीला, वायु के तुल्य वेगधारी सीधा जाने वाला लोह निर्मित तोमर वाण, शत्रु पर बड़े प्रयत्न के साथ प्रयुक्त किया ॥३४॥

ततः कुलूताधिपतिश्चापमानम्य सायकैः।
दशभिस्तोमरं भित्वा षष्ट्या विव्याध पाण्डवम् ॥३५॥

अब कुलूत देश के अधिपति क्षेमधूर्ति ने धनुष उठाकर दश बाण मारे और उनसे उस तोमर बाण को काट गिराया। इसके बाद साठ बाण छोड़कर पाण्डु-पुत्र भीमसेन को आहत कर दिया ॥३५॥

अथ कार्मुकमादाय भीमो जलदनिःस्वनम्।
रिपोरभ्यर्दयन्नागमुन्नदन्पाण्डवः शरैः ॥३६॥

अब गर्जना करते हुए भीमसेन ने मेघ के समान ध्वनि करने वाले धनुष को उठाकर बाणों से क्षेमधूर्ति के हाथी को अत्यन्त व्यथित कर दिया ॥३६॥

स शरौघार्दितो नागो भीमसेनेन संयुगे।
गृह्यमाणोऽपि नातिष्ठद्वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥३७॥

जब भीमसेन ने अपने बाण समूह से रण में उस हाथी को पीड़ित किया-तो राजा क्षेमधूर्ति ने उसे बहुत सम्हाला परन्तु वह वायु से उड़ाये हुए मेघ की तरह भाग निकला ॥३७॥

तमभ्यधावद् द्विरदं भीमो भीमस्य नागराट्।
महावातेरितं मेघं वातोद्धूत इवाम्बुदः ॥३८॥

इस हाथी के भागते ही भीमसेन का हाथी इसके पीछे इस तरह भागा, जैसे वायु से उड़ाये हुए मेघ के पीछे दूसरा मेघ भाग रहा हो ॥३८॥

सन्निवार्यात्मनो नागं क्षेमधूर्त्तिः प्रतापवान्।
विव्याधाभिद्रुतं बाणैर्भीमसेनस्य कुञ्जरम् ॥३९॥

महाप्रतापी क्षेमधूर्ति ने जैसे-तैसे अपने हाथी को रोक कर आक्रमण करने वाले भीमसेन के हाथी को अपने बाणों से बींध दिया ॥३९॥

ततः साधुविसृष्टेन क्षुरेणानतपर्वणा।
छित्त्वा शरासनं शत्रोर्नागमामित्रमार्दयत् ॥४०॥

क्षेमधूर्ति ने फिर एक नतपर्व वाले क्षुरे के तुल्य तेज, अच्छी तरह छोड़े हुए, बाण से अपने शत्रु भीमसेन का धनुष काट कर उसके हाथी को भी पीड़ित कर दिया ॥४०॥

ततः क्रुद्धो रणे भीमं क्षेमधूर्त्तिः पराभिनत् ।
जघान चास्य द्विरदं नाराचैः सर्वमर्मसु ॥४१॥

अब राजा क्षेमधूर्ति, रण में बड़ा ही कुपित हो रहा था। इसने भीमसेन को आहत करके अपने बाणों से सारे मर्म स्थानों में उसके साथी को भी बींध दिया ॥४१॥

स पपात महानागो भीमसेनस्य भारत ।
पुरा नागस्य पतनादवप्लुत्य स्थितो महीम् ॥४२॥

हे भारत! इन बाणों की वेदना से भीमसेन का वह हाथी पृथिवी में गिरने लगा। हाथी के गिरने से पूर्व ही भीमसेन कूदकर भूमि में स्थित हो गया ॥४२॥

तस्य भीमोऽपि द्विरदं गदया समपोथयत ।
तस्मात्प्रमथितान्नागात्क्षेमधूर्तिमवप्लुतम् ॥४३॥
उद्यतायुधमायान्तं गदयाहन्वृकोदरः ।
स पपात हतः सासिर्व्यसुस्तमभितो द्विपम् ॥४४॥
वज्रग्नभग्नमचलं सिंहो वज्रहतो यथा ।

भीमसेन ने भी क्षेमधूर्ति के हाथी के गदा मारी। राजा क्षेमधूर्ति भी अपने हाथी से कूद पड़ा। वह शस्त्र लेकर भीमसेन पर झपटा, परन्तु भीमसेन ने, उस पर गदा का प्रहार किया। इस प्रहार से राजा क्षेमधूर्ति के प्राण पखेरू उड़ गए और वह प्राणहीन होकर तलवार सहित गिर गया। इसके पास ही इसका

हाथी पड़ा। ये दोनों ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे वज्र से खण्डित पर्वत तथा शस्त्र से आहत सिंह पड़े हों ॥४३॥

तं हतं नृपतिं दृष्ट्वा कुलूतानां यशस्करम्।
प्राद्रवद्व्यथिता सेना त्वदीया भरतर्षभ ॥४५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि क्षेमधूर्तिवधे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

हे भरतर्षभ! कुलूत देश के अधिपति, महायशस्वी, राजा क्षेमधूर्ति को मृत देखकर तुम्हारी सेना व्याकुल हो उठी और और वह भाग निकली ॥४५॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में राजा क्षेमधूर्ति के
वध का बारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



तेरहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः कर्णः महेष्वासः पाण्डवानामनीकिनीम्।
जघान समरे शूरः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत! अब महाधनुर्धर शूरवीर कर्ण, अपने नतपर्व वाले बाणों से रण में पाण्डवों की सेना को नष्ट करने लगा ॥१॥

तथैव पाण्डवा राजंस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।

कर्णस्य प्रमुखे क्रुद्धा निजघ्नुस्ते महारथाः ॥२॥

हे राजन् ! इसी तरह महारथी पाण्डव भी क्रोध में भरे हुए तुम्हारे पुत्र की सेना को कर्ण के सामने ही मार २ कर बिछाने लगे ३२॥

कर्णोऽपि राजन्समरे व्यहनत्पाण्डवीं चमूम् ।

नाराचैरर्करश्म्याभैः कर्मारपरिमार्जितैः ॥३॥

हे राजन् महारथी कर्ण ने भी पाण्डव सेना को पर्याप्त संख्या में कारीगर द्वारा तीक्ष्ण किये हुए सूर्य की किरणों के तुल्य चमकीले बाणों से मार गिराई ॥३॥

तत्र भारत कर्णेन नाराचैस्ताडिता गजाः ।

नेदुः सेदुश्च मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥४॥

हे भारत ! कर्ण के बाणों से ताड़ित हुए, पाण्डवी सेना के हाथी, चिंघाड़ते हुए पीड़ित और उदास होकर दशों दिशाओं में चक्कर खाने लगे ॥४॥

वध्यमाने बले तस्मिन्सूतपुत्रेण मारिष ।

नकुलोऽभ्यद्रवत्तूर्णं सूतपुत्रं महारणे ॥५॥

हे आर्य ! जब सूत-पुत्र कर्ण ने पाण्डवों की सेना को इस तरह नष्ट-भ्रष्ट कर दिया-तो इस घोर युद्ध में सूत-पुत्र कर्ण के मुक़ाबिले पर पाण्डु-पुत्र नकुल आगे बढ़ा ॥५॥

भीमसेनस्तथा द्रौणिं कुर्वाणं कर्म दुष्करम् ।
विन्दानुविन्दौ कैकेयौ सात्यकिः समवारयत् ॥६॥

भीमसेन ने अत्यन्त दुष्कर कर्म करते हुए द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को और सात्यकि ने विन्दानुविन्द केकय राजकुमारों को आगे बढ़ने से रोका ॥६॥

श्रुतकर्माणमायान्तं चित्रसेनो महीपतिः ।
प्रतिविन्ध्यस्तथा चित्रं चित्रकेतनकार्मुकम् ॥७॥

आक्रमण करते हुए राजा श्रुतकर्मा को राजा चित्रसेन ने और विचित्र ध्वजा या धनुषधारी राजा चित्र को प्रतिविन्ध्य ने रोका ॥७॥

दुर्योधनस्तु राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
संशप्तकगणान्क्रुद्धो ह्यभ्यधावद्धनञ्जयः ॥८॥

राजा दुर्योधन ने धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया और क्रोधातुर अर्जुन संसप्तक गणों पर झपटा ॥८॥

धृष्टद्युम्नः कृपेणाथ तस्मिन्वीरवरक्षये ।
शिखण्डी कृतवर्माणं समासादयदच्युतम् ॥९॥

इस वीर के नाश करने वाले युद्ध में धृष्टद्युम्न, कृपाचार्य और शिखण्डी, युद्ध से पीछे नहीं हटने वाले कृतवर्मा से भिड़ गए ॥९॥

श्रुतकीर्तिस्तथा शल्यं माद्रीपुत्रः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज सहदेवः प्रतापवान् ॥१०॥

हे महाराज ! मद्रराज शल्य से राजा श्रुतकीर्ति, और तुम्हारे पुत्र दुःशासन से माद्री पुत्र प्रतापी सहदेव भिड़ गए ॥१०॥

कैकेयौ सात्यकिं युद्धे शरवर्षेण भास्वता ।
सात्यकिः केकयौ चापि च्छादयामास भारत ॥११॥

हे भारत ! इस युद्ध में दोनों कैकय राजकुमारों ने चमकीली बाण वर्षा करके सात्यकिको और सात्यकिने उन कैकय राजकुमारों को अपने २ बाणों से आच्छादित कर दिया ॥११॥

तावेनं भ्रातरौ वीरौ जघ्नतुर्हृदये भृशम् ।
विषाणाभ्यां यथा नागौ प्रतिनागं महावने ॥१२॥

उन दोनों कैकय राजकुमार भ्राताओं ने सत्यकि के हृदय में इस प्रकार तीक्ष्ण बाण मारे, कि जैसे महावनमें अपने २ दांतों से एक हाथी अपने दूसरे विरोधी हाथी के मारता है ॥१२॥

शरसम्भिन्नवर्माणौ तावुभौ भ्रातरौ रणे ।
सात्यकिं सत्यकर्माणं राजन्विव्यधतुः शरैः ॥१३॥

हे राजन् ! इस युद्ध में उन दोनों कैकय राजकुमारों के क़वच छिन्न भिन्न हो गए । तो भी इन दोनों ने सत्यकर्मा सात्यकि को अपने २ बाणों से बींध डाला ॥१३॥

तौ सात्यकिर्महाराज प्रहसन्सर्वतोदिशः ।
छादयञ्छरवर्षेण वारयामास भारत ॥१४॥

हे महाराज ! अब सात्यकि ने भी मुसकराते हुए सब ओर से भारी बाण वर्षा करके उन दोनों को रोक दिया ॥१४॥

वार्यमाणौ ततस्तौ हि शैनेयशरवृष्टिभिः ।
शैनेयस्य रथं तूर्णं छादयामासतुः शरैः ॥१५॥

हे भारत ! शिनिपौत्र सात्यकिकी बाण वर्षा से रोके हुए इन दोनों वीरोंने, सात्यकि के रथ को बड़े वेग से बाणों से पाट दिया ॥१५॥

तयोस्तु धनुषी चित्रे छित्त्वा शौरिर्महायशाः ।
अथ तौ सायकैस्तीक्ष्णैर्वारयामास संयुगे ॥१६॥

अब शूरसेन वंशोत्पन्न महायशस्वी सात्यकि ने भी रण में इन दोनों-वीरों के धनुष काट गिराए और तीक्ष्ण बाण मार कर उन दोनों को वहीं रोक दिया ॥१६॥

अथान्ये धनुषी चित्रे प्रगृह्य च महाशरान् ।
सात्यकिं छादयन्तौ तौ चेरतुर्लघु सुष्ठु च ॥१७॥

अब इन दोनों कैकय राजकुमारों ने विचित्र धनुष और लंबे लम्बे बाण उठाए। इन धनुष और बाणों से वे सात्यकि को छेदते हुए रण में बड़ी शीघ्रता और उत्तमता से घूमने लगे ॥१७॥

ताभ्यां मुक्ता महाबाणाः कङ्कबर्हिणवाससः ।
द्योतयन्तो दिशः सर्वाः सम्पेतुः स्वर्णभूषणाः ॥१८॥

कङ्क और मयूर पक्षी के पंखों से सुशोभित बड़े २ लम्बे सुवर्ण विभूषित बाण, सारी दिशाओं को चमकाकर सब ओर चलने लगे ॥१८॥

बाणान्धकारमभवत्तयो राजन्महामृधे।
अन्योन्यस्य धनुश्चैव चिच्छिदुस्ते महारथाः ॥१६॥

हे राजन्! इस समय इस महायुद्ध में बाणों के छा जाने से अन्धकार मच गया। इन महारथियों ने परस्पर एक दूसरे के धनुष को काट गिराया ॥१६॥

ततः क्रुद्धो महाराज सात्वतो युद्धदुर्मदः।
धनुरन्यत्समादाय सज्यं कृत्वा च संयुगे ॥२०॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन अनुविन्दशिरोऽहरत्।
अपतत्तच्छिरो राजन्कुण्डलोपचितं महत् ॥२१॥
शम्बरस्य शिरो यद्वन्निहतस्य महारणे।
शोचयन्केकयान्सर्वाञ्जगामाशु वसुन्धराम् ॥२२॥

हे महाराज! अब युद्ध दुर्मद सात्वत वंश श्रेष्ठ सात्यकि कुपित हो उठा। उसने दूसरा धनुष उठाया और उसे रण भूमि में खैंचकर उसपर तीक्ष्ण क्षुरे के सदृश तीक्ष्ण बाण चढ़ाया। उस बाण से उसने अनुविन्द का शिर काट लिया। हे राजन्! कुण्डलों से सुशोभित उसका विशाल मस्तक, भूमि में इस तरह गिर गया-जैसे महायुद्ध में मारे हुए शम्बर दैत्य का शिर गिर गया हो। यह बाण सब केकय देशोत्पन्न वीरों को चिन्ता में डालकर भूमि में घुस गया ॥२०-२२॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्राता तस्य महारथः।
सज्यमन्यद्धनुः कृत्वा शैनेयं पर्यवारयत् ॥२३॥

इसके अनन्तर अपने भाई अनुविन्द को मारा हुआ देखकर उसके महारथी भ्राता विन्द ने दूसरे धनुष को चढ़ाकर शिनिपौत्र सात्यकि पर आक्रमण कर दिया ॥२३॥

स षष्ट्या सात्यकिं विद्ध्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
ननाद बलवन्नादं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२४॥

इसने सुवर्ण मूलधारी शिला पर तीक्ष्ण किये हुए साठ बाण मारकर सात्यकि को बींध दिया और बड़े उच्च स्वर में गर्जना करके सात्यकि से कहा—कि ज़रा-ठहरा रह ॥२४॥

सात्यकिं च ततस्तूर्णं केकयानां महारथः ।
शरैरनेकसाहस्रैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥२५॥

अब केकय देशोत्पन्न वीर श्रेष्ठ महारथी विन्द ने कई हजार बाण, सात्यकि की बाहु और छाती को लक्ष्य करके छोड़े ॥२५॥

स शरैः क्षतसर्वाङ्गः सात्यकिः सत्यविक्रमः ।
रराज समरे राजन्सपुष्प इव किंशुकः ॥२६॥

हे राजन्! सत्य पराक्रमी सात्यकि का इन बाणों से सारा शरीर छिद गया-यह रण में लाल पुष्पों से भरे हुए किंशुक (ढाक) के वृक्ष के तुल्य प्रतीत होने लगा ॥२६॥

सात्यकिः समरे विद्धः कैकेयेन महात्मना ।
कैकेयं पञ्चविंशत्या विव्याध प्रहसन्निव ॥२७॥

महारथी केकय राजकुमार द्वारा क्षत विक्षत हुए सात्यकि ने भी हंसते २ केकय राजकुमार पर रण में पच्चीस बाण छोड़ कर उसे आहत कर दिया ॥२७॥

तावन्योन्यस्य समरे सञ्छिद्य धनुषी शुभे ।
हत्वा च सारथी तूर्णं हयांश्च रथिनां वरौ ॥२८॥
विरथावसियुद्धाय समाजग्मतुराहवे ।

इन दोनों वीरों ने रण में एक दूसरे के धनुष को काट गिराया। ये रथिश्रेष्ठ, बड़े वेग से एक दूसरे के सारथियों तथा अश्वों को मारकर रथ हीन हुए खड्ग युद्ध के लिए रण में आगे बढ़े ॥२८॥

शतचन्द्रचिते गृह्य चर्मणी सुभुजौ तथा ॥२९॥
विरोचेतां महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणौ ।
यथा देवासुरे युद्धे जम्भशक्रौ महाबलौ ॥३०॥

ये दोनों महाबाहु, पुरुष प्रवीर बड़ी लम्बी २ तलवार और सैंकड़ों चांदी के चन्द्रमाओं से जड़ी हुई ढ़ाल लेकर रणाङ्गण में देवासुर संग्राम में महाबली जम्भासुर और इन्द्र की भांति सुशोभित होने लगे ॥२९-३०॥

मण्डलानि ततस्तौ तु विचरन्तौ महारणे ।
अन्योन्यमभितस्तूर्णं समाजग्मतुराहवे ॥३१॥

इस महायुद्ध में घूमते हुए अब ये दोनों वीर, ढ़ाल तलवार के अनेक मण्डल (पैंतरें) बांध रहे थे। इन दोनों ने रण में एक दूसरे पर बड़े वेग से आक्रमण कर दिया ॥३१॥

अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ।
कैकेयस्य द्विधा चर्म ततश्चिच्छेद सात्वतः ॥३२॥

ये दोनों ही एक दूसरे के वध के निमित्त महा प्रयत्न कर रहे थे। अब सात्वतवंश श्रेष्ठ, सात्यकि ने केकय राजकुमार विन्द की ढ़ाल को काट डाला ॥३२॥

सात्यकेस्तु तथैवासौ चर्म चिच्छेद पार्थिवः ।
चर्म छित्वा तु कैकेयस्तारागणशतैर्वृतम् ॥३३॥
चचार मण्डलान्येव गतप्रत्यागतानि च ।

राजा बिन्द ने भी सात्यकि की ढ़ाल को काट डाला। केकय राजकुमार विन्द, सैंकड़ों जड़े हुए नक्षत्रों से युक्त सात्यकि की ढ़ाल के दो खण्ड करके उलट पलट मण्डल बांधने लगा ॥३३॥

तं चरन्तं महारङ्गे निस्त्रिंशवरधारिणम् ॥३४॥
अपहस्तेन चिच्छेद शैनेयस्त्वरयान्वितः ।
सवर्मा केकयो राजन्द्विधा छिन्नो महारणे ॥३५॥
निपपात महेष्वासो वज्राहत इवाचलः ।

उत्तम विशाल तलवार लिए हुए रणाङ्गण में उछटते हुए कैकय राजकुमार विन्द के ऊपर एक बांयें हाथ का प्रहार करके बड़े वेग से सात्यकि ने उसके दो टुकड़े कर डाले। हे राजन् ! कवच सहित दो भागों में कटकर केकय देशोत्पन्न महाधनुर्धर विन्द वज्राहत पर्वत की भांति रण भूमि में गिर गया ॥३४-३५॥

तं निहत्य रणे शूरः शैनेयो रथसत्तमः ॥३६॥
युधामन्युरथं तूर्णमारुरोह परन्तपः ।

रथियों में श्रेष्ठ, परन्तप शिनिपौत्र, शूरवीर सात्यकि, केकय राजकुमार को मारकर बड़े वेग से झपटकर युधामन्यु के रथ पर जा बैठा ॥३६॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ॥३७॥
केकयानां महत्सैन्यं व्यधमत्सात्यकिः शरैः ।

हे राजन्! थोड़ी देर में ही युद्ध की सामग्री से सुसज्जित दूसरा रथ आ गया और सात्यकि उसपर चढ़ गया। उसने अब अपने बाणों से केकय वीरों की विशाल सेना का विध्वंस उड़ा दिया ॥३७॥

सा वध्यमाना समरे केकयानां महाचमूः ।
तमुत्सृज्य रणे शत्रुं प्रदुद्राव दिशो दश ॥३८॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि विन्दानुविन्दवधे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

इस प्रकार सात्यकि द्वारा आहत हुई, केकय वीरों की विशाल सेना, रण में ही अपने शत्रु सात्यकि को छोड़कर दशों दिशाओं को भाग निकली ॥३८॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में विन्दानुविन्द की मृत्यु का तेरहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



चौदहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्रुतकर्मा ततो राजंश्चित्रसेनं महीपतिम् ।
आजघ्ने समरे क्रुद्धः पञ्चाशद्भिः शिलीमुखैः ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे राजन ! इसके अनन्तर श्रुतकर्मा ने रण में राजा चित्रसेन के शरीर में क्रोध के साथ पचीस बाण, मारे ॥१॥

अभिसारस्तु तं राजन्नवभिर्नतपर्वभिः ।
श्रुतकर्माणमाहत्य सूतं विव्याध पञ्चभिः ॥२॥

हे नृप ! राजा चित्रसेन ने भी नतपर्व वाले नौ बाण मारकर श्रुतकर्मा को आहत कर दिया और पांच बाण मार कर सूत को बींध लिया ॥२॥

श्रुतकर्मा ततः क्रुद्धश्चित्रसेनं चमूमुखे ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन मर्मदेशे समार्पयत् ॥३॥

राजा चित्रसेन के प्रहार से श्रुतकर्मा क्रोध से प्रज्वलित हो उठा-उसने सेना के आगे उपस्थित, राजा चित्रसेन के मर्म प्रदेश में एक अत्यन्त तीक्ष्ण बाण का प्रहार किया ॥३॥

सोऽतिविद्धो महाराज नाराचेन महात्मना ।
मूर्छामभिययौ वीरः कश्मलं चाविवेश ह ॥४॥

हे महाराज ! महावीर श्रुतकर्मा द्वारा अपने बाण से बींधा हुआ वीरश्रेष्ठ राजा चित्रसेन, मूर्च्छा को प्राप्त हो गया और उसको बहुत ही अचेतनता प्राप्त होगई ॥४॥

एतस्मिन्नन्तरे चैनं श्रुतकीर्तिर्महायशाः ।
नवत्या जगतीपालं छादयामास पत्रिभिः ॥५॥

इसी अवकाश में महायशस्वी श्रुतकर्मा ने राजा चित्रसेन पर नव्वे बाण मार कर उसे बाणों से आच्छादित कर दिया ॥५॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां चित्रसेनो महारथः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन तं च विव्याध सप्तभिः ॥६॥

जब महारथी राजा चित्रसेन को चेतनता प्राप्त हुई-तो उसने एक तीखा बाण छोड़ा, जिसने श्रुतकर्मा का धनुष काट डाला और सात बाण मार कर उसे बींध दिया ॥६॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय वेगघ्नं रुक्मभूषितम् ।
चित्ररूपधरं चक्रे चित्रसेनं शरोर्मिभिः ॥७॥

श्रुतकर्मा ने अब शत्रु के वेग का नाशक, सुवर्ण भूषित दूसरा धनुष उठाया, जिससे उसने बाणों की परम्परा छोड़कर राजा चित्रसेन को विचित्र रूपधारी बना दिया ॥७॥

स शरैश्चित्रितो राजा चित्रमाल्यधरो युवा ।
युवेव समरेऽशोभद्गोष्ठीमध्ये स्वलंकृतः ॥८॥

तरुणावस्था को धारण किये हुए विचित्र मालाधारी, राजा चित्रसेन, बाणों से रण में ऐसा विचित्र बन गया, जैसे-गोष्ठी के मध्य में आभूषणों से अलंकृत कोई नवयुवक बैठा हो ॥८॥

श्रुतकर्माणमथ वै नाराचेन स्तनान्तरे ।
बिभेद तरसा शूरस्तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥९॥

अब शूरवीर राजा चित्रसेन ने भी बड़े वेग से एक बाण से श्रुतकर्मा के वक्ष-स्थल को चीर दिया और कहा-तनक ठहर जा ? ॥९॥

श्रुतकर्मापि समरे नाराचेन समर्पितः ।
सुस्राव रुधिरं तत्र गैरिकार्द्र इवाचलः ॥१०॥

इस प्रकार राजा चित्रसेन द्वारा रण में बाण से जब श्रुतकर्मा घायल हो गया-तो उसके शरीर से इस प्रकार रक्त बहने लगा जैसे पर्वत से गैरिक आदि लाल धातु वह रहे हों ॥१०॥

ततः स रुधिराक्ताङ्गे रुधिरेण कृतच्छविः ।
रराज समरे वीरः सपुष्प इव किंशुकः ॥११॥

अब रुधिर से भीगे अङ्गों से तथा रुधिर से वीरश्रेष्ठ श्रुतकर्मा की रण में ऐसी शोभा हो गई-जैसे पुष्पों से भरे हुए किंशुक वृक्ष की शोभा हो जाती है ॥११॥

श्रुतकर्मा ततो राजञ्शत्रुणा समभिद्रुतः ।
शत्रुसंवारणं क्रुद्धो द्विधा चिच्छेद कार्मुकम् ॥१२॥

हे राजन ! अब शत्रु-भूत राजा चित्रसेन ने श्रुतकर्मा पर आक्रमण किया । इसने भी क्रोध में भर कर शत्रु के रोकने में समर्थ-उस के धनुष के दो टुकड़े कर डाले ॥१२॥

अथैनं छिन्नधन्वानं नाराचानां शतैस्त्रिभिः ।
छादयन्समरे राजन्विव्याध च सुपत्रिभिः ॥१३॥

हे नृपते ! जब इसका धनुष कट गया-तो इसने तीनसौ बाण छोड़े । उन उत्तम बाणों से आच्छादित करके उसने उसे अच्छी तरह वींध दिया ॥१३॥

ततोऽपरेण भल्लेन तीक्ष्णेन निशितेन च ।
जहार सशिरस्त्राणं शिरस्तस्य महात्मनः ॥१४॥

इसके बाद अत्यन्त तीक्ष्ण चमकीले बाण से श्रुतकर्मा ने उस महावीर राजा चित्रसेन के शिरस्त्राण सहित मस्तक को काट कर नीचे गिराया ॥१४॥

तच्छिरो न्यपतद्भूमौ चित्रसेनस्य दीप्तिमत् ।
यदृच्छया यथा चन्द्रश्च्युतः स्वर्गान्महीतलम् ॥१५॥

इस बाण से राजा चित्रसेन का देदीप्यमान शिर इस प्रकार से भूमि में गिर गया जैसे-आकाश से पृथिवी पर अचानक चन्द्रमा टूट पड़ा हो ॥१५॥

राजानं निहतं दृष्ट्वा तेऽभिसारं तु मारिष ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन चित्रसेनस्य सैनिकाः ॥१६॥

हे आर्य ! अपने राजा चित्रसेन को मरते हुए देखकर उसके सैनिक अत्यन्त वेग से श्रुतकर्मा पर टूट पड़े ॥१६॥

ततः क्रुद्धो महेष्वासस्तत्सैन्यं प्राद्रवच्छरैः ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धः सर्वभूतानि प्रेतराट् ॥१७॥

अब महाधनुर्धर श्रुतकर्मा भी क्रोध में भर गया और उसने अपने बाणों से इस सेना को इस तरह नष्ट कर दिया, जैसे प्रलयकाल में कुपित हुआ यमराज सारे प्राणियों को नष्ट कर देता है ॥१७॥

ते वध्यमानाः समरे तव पौत्रेण धन्विना ।
व्यद्रवन्त दिशस्तूर्णं दावदग्धा इव द्विपाः ॥१८॥

हे राजन् ! तुम्हारे पौत्र (पाण्डव-पुत्र) धनुषधारी श्रुतकर्मा द्वारा रण में आहत किये हुए सैनिक, वन की आग से जलते हुए हाथियों की तरह बड़े वेग से दशों दिशाओं में भाग निकले ॥१८॥

तांस्तु विद्रवतो दृष्ट्वा निरुत्साहान्द्विपज्जये ।
द्रावयन्निषुभिस्तीक्ष्णैः श्रुतकर्मा व्यरोचत ॥१९॥

जब श्रुतकर्मा ने निरुत्साह हुए शत्रुओं को इस तरह भागते देखा-तो शत्रु विजय से युक्त इस रण में अपने तीक्ष्ण बाणों से शत्रु सेना को भगाता हुआ श्रुतकर्मा बड़ा ही सुन्दर प्रतीत होने लगा ॥१९॥

प्रतिविन्ध्यस्ततश्चित्रं भित्त्वा पञ्चभिराशुगैः ।
सारथिं च त्रिभिर्विद्ध्वा ध्वजमेकेषुणापि च ॥२०॥

अब धर्मराज-पुत्र प्रतिविन्ध्य ने पांच बाण मारकर राजा चित्र को बींध कर तीन बाणों से सारथि और एक बाण से इसकी ध्वजा को बींध दिया ॥२०॥

तं चित्रो नवभिर्भल्लैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।
स्वर्णपुङ्खैः प्रसन्नाग्रैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ॥२१॥

अब राजा चित्र ने नौ बाण उसकी भुजा और छाती में मारे, जो बाण सुवर्ण पुङ्ख से सुशोभित, चमकीली नोक वाले और कङ्क तथा मोर पङ्खों से सुशोभित थे ॥२१॥

प्रतिविन्ध्यो धनुश्छित्त्वा तस्य भारत सायकैः ।
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैरथैनं स हि जघ्निवान् ॥२२॥

हे भारत ! धर्मराज-पुत्र प्रतिविन्ध्य ने अपने बाणों से इसके धनुष को छेदकर पांच तीखे बाणों से इस पर भी प्रहार किया ॥२२॥

ततः शक्तिं महाराज स्वर्णघण्टां दुरासदाम् ।
प्राहिणोत्तव पौत्राय घोरामग्निशिखामिव ॥२३॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर राजा चित्र ने तुम्हारे पौत्र प्रतिविन्ध्य पर सुवर्ण की घण्टाओं से युक्त, दुरासद अग्नि शिखा की भांति प्रज्वलित घोर शक्ति का प्रहार किया ॥२३॥

तामापतन्तीं सहसा महोल्काप्रतिमां तदा ।
द्विधा चिच्छेद समरे प्रतिविन्ध्यो हसन्निव ॥२४॥

महान् उलका पात के तुल्य गिरती हुई उस शक्ति को देखकर हँसते हुए प्रतिविन्ध्य ने रण में उसके दो टुकड़े करके उसे गिरा दिया ॥२४॥

सा पपात द्विधा छिन्ना प्रतिविन्ध्यशरैः शितैः ।

युगान्ते सर्वभूतानि त्रासयन्ती यथाशनिः ॥२५॥

हे भारत ! प्रतिविन्ध्य के तीक्ष्ण बाणों से दो भागों में खण्डित हुई वह शक्ति, इस तरह गिर गई-जैसे-प्रलयकाल में सारे भूतों को भयभीत करती हुई अशनि (विजली) गिरती है ॥२५॥

शक्तिं तां प्रहतां दृष्ट्वा चित्रो गृह्य महागदाम् ।

प्रतिविन्ध्याय चिक्षेप रुक्मजालविभूषिताम् ॥२६॥

जब चित्र ने अपनी शक्ति को नष्ट होता देखा तो एक विशाल गदा उठाई और सुवर्ण जाल से विभूषित उस गदा को प्रतिविन्ध्य पर फैंका ॥२६॥

सा जघान हयाँस्तस्य सारथिं च महारणे ।

रथं प्रमृद्य वेगेन धरणीमन्वपद्यत ॥२७॥

इस महायुद्ध में यह गदा उसके अश्व, सारथि और रथ को चकना चूर करके बड़े वेग के साथ धरती में धस गई ॥२७॥

एतस्मिन्नेव काले तु रथादाप्लुत्य भारत ।

शक्तिं चिक्षेप चित्राय स्वर्णदण्डामलंकृताम् ॥२८॥

हे भारत ! इसी समय प्रतिविन्ध्य ने सुवर्ण के दण्ड से विभूषित शक्ति को चित्र के ऊपर फैंका ॥२८॥

तामापतन्तीं जग्राह चित्रो राजन्महामनाः ।
ततस्तामेव चिक्षेप प्रतिविन्ध्याय पार्थिवः ॥२६॥

हे राजन् ! महामनस्वी, राजा चित्र ने उस आती हुई शक्ति को लपक कर पकड़ लिया और उसका वापिस प्रतिविन्ध्य पर ही प्रहार किया ॥२६॥

समासाद्य रणे शूरं प्रतिविन्ध्यं महाप्रभा ।
निर्भिद्य दक्षिणं बाहुं निपपात महीतले ।
पतिता भासयच्चैव तं देशमशनिर्यथा ॥३०॥

इस महाप्रभा के धारण करने वाली शक्ति ने रण में प्रतिविन्ध्य पर गिर कर उसकी दांयी भुजा को चीर डाला और फिर वह स्वयं पृथिवी में गिर गई । उसने गिर कर उस प्रदेश को इस तरह चमका दिया, जैसे पड़ी हुई अशनि (बिजली) अपने प्रदेश को चमका देती है ।३६॥

प्रतिविन्ध्यस्ततो राजंस्तोमरं हेमभूषितम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धश्चित्रस्य वधकांक्षया ॥३१॥

हे राजन ! अब प्रतिविन्ध्य ने सुवर्ण भूषित तोमर बाण क्रोध-पूर्वक राजा चित्र के वध के निमित्त फैंका ॥३१॥

स तस्य गात्रावरणं भित्त्वा हृदयमेव च ।
जगाम धरणीं तूर्णं महोरग इवाशयम् ॥३२॥

यह तोमर बाण, उसके शरीर के कवच और हृदय को बींध कर महासर्प जैसे बिल में घुस जाता है, ऐसे धरणी में घुस गया ॥३२॥

स पपात तदा राजा तोमरेण समाहतः ।
प्रसार्य विपुलौ बाहू पीनौ परिघसन्निभौ ॥२३॥

राजा चित्र, तोमर बाण से आहत हुआ, अपनी पुष्ट परिघ के समान विशाल भुजाओं को फैला कर रणभूमि में गिर गया ॥३३॥

चित्रं सम्प्रेक्ष्य निहतं तावका रणशोभिनः ।
अभ्यद्रवन्त वेगेन प्रतिविन्ध्यं समन्ततः ॥३४॥

जब तुम्हारे पक्ष के वीरों ने राजा चित्र को मरते देखा-तो वे रण शोभी योद्धा वेग से आगे बढ़े और उन्होंने सब ओर से प्रतिविन्ध्य को घेर लिया ॥३४॥

सृजन्तो विविधान्बाणाञ्शतघ्नीश्च सकिङ्किणीः
तमवच्छादयामासुः सूर्यमभ्रगणा इव ॥३५॥

ये वीर, अनेक प्रकार के बाणऔर किङ्किणी सहित शतघ्नी फैंक कर प्रतिविन्ध्य को इस तरह आच्छादित करने लगे-जैसे-सूर्य को मेघ समूह आच्छादित कर लेता है ॥३५॥

तान्विधम्य महाबाहुः शरजालेन संयुगे ।
व्यद्रावयत्तव चमूं वज्रहस्त इवासुरीम् ॥३६॥

महाबाहु, प्रतिविन्ध्य ने अपने बाण जाल से छिन्न-भिन्न करके वज्रधारी इन्द्र जैसे असुर सेना को भगा देता है-उसी तरह रण में तुम्हारी सेना को भगा दिया ॥३६॥

ते वध्यमानाः समरे तावकाः पाण्डवैर्नृप ।
विप्रकीर्यन्त सहसा वातनुन्ना घना इव ॥३७॥

हे नृप ! पाण्डवों द्वारा ताड़ित किये गए तुम्हारे वीर, रण में एक दम इस तरह बिखर गए जैसे-वायु ने मेघों को बखेर दिया हो ॥३७॥

विप्रद्रुते बले तस्मिन्वध्यमाने समन्ततः ।
द्रौणिरेकोऽभ्ययात्तूर्णं भीमसेनं महाबलम् ॥३८॥

सब ओर से आहत होने पर और कौरव सेना के भाग निकलने पर अकेला द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा महाबली भीमसेन की ओर बढ़ा ॥३८॥

ततः समागमो घोरो बभूव सहसा तयोः ।
यथा देवासुरे युद्धे वृत्रवासवयोरिव ॥३९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि चित्रवधे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

अब इन दोनों वीर अश्वत्थामा और भीमसेन का एक दम इतना तीव्र संग्राम होने लगा-जैसे देवासुर में वृत्रासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था ॥३९॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में राजा चित्र के वध का चौदहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

पन्द्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

भीमसेनं ततो द्रौणी राजन्विव्याध पत्रिणा।
परया त्वरया युक्तो दर्शयन्नस्त्रलाघवम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने बड़ी शीघ्रता से युक्त होकर अपने अस्त्र लाघव (फुर्ती) को दिखाते हुए एक बाण से भीमसेन को बींध दिया ॥१॥

अथैनं पुनराजघ्ने नवत्या निशितैः शरैः।
सर्वमर्माणि सम्प्रेक्ष्य मर्मज्ञो लघुहस्तवत् ॥२॥

इसके बाद फिर अश्वत्थामा ने नब्बे बाण भीमसेन के अङ्गों को ताक २ कर छोड़े। अश्वत्थामा मर्म स्थानों में प्रहार करना जानता था और बड़ी शीघ्रता से रण में हाथ चलाता था ॥२॥

भीमसेनः समाकीर्णो द्रौणिना निशितैः शरैः।
रराज समरे राजन्रश्मिवानिव भास्करः ॥३॥

हे राजन्! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने तीक्ष्ण बाणों से भीमसेन को रण में बुरी तरह व्याप्त कर दिया। अब वह किरणों से व्याप्त सूर्य के समान प्रतीत हो रहा था ॥३॥

ततः शरसहस्रेण सुप्रयुक्तेन पाण्डवः।
द्रोणपुत्रमवच्छाद्य सिंहनादममुञ्चत ॥४॥

अब पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने भी सहस्रों की संख्या में बड़े अच्छे ढङ्ग से बाण छोड़े। उनसे उसने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को आच्छादित करके फिर सिंहनाद किया ॥४॥

शरैः शरांस्ततो द्रौणिः संवार्य युधि पाण्डवम् ।
ललाटेऽभ्याहनद्राजन्नाराचेन स्मयन्निव ॥५॥

हे राजन् ! अश्वत्थामा ने अपने बाणों से भीमसेन के बाणों को रोक कर मुसकुराते हुए एक बाण भीमसेन के ललाट में मारा ॥५॥

ललाटस्थं ततो बाणं धारयोमास पाण्डवः ।
यथा शृङ्गं वने दृप्तः खड्गो धारयते नृप ॥६॥

हे नृप ! पाण्डु-पुत्र भीमसेन, उस ललाट में गड़े हुए बाण से ऐसा प्रतीत होने लगा—जैसे वन में एक शृङ्ग का धारण करने वाला उद्धत गैंडा हो ॥६॥

ततो द्रौणिं रणे भीमो यतमानं पराक्रमी ।
त्रिभिर्विव्याध नाराचैर्ललाटे विस्मयन्निव ॥७॥

अब भीमसेन ने भी रण में बड़ा प्रयत्न करने वाले अश्वत्थामा के ललाट में हंसते २ तीन बाण का प्रहार किया ॥७॥

ललाटस्थैस्ततो बाणैर्ब्राह्मणोऽसौ व्यशोभत ।
प्रावृषीव यथा सिक्तस्त्रिशृङ्गः पर्वतोत्तमः ॥८॥

इन तीनों ललाट स्थित बाणों से यह ब्राह्मण अश्वत्थामा इस तरह प्रतीत होने लगा जैसे-वर्षा काल में मेघधारा से सिक्त कोई तीन शिखर का पर्वत हो ॥८॥

ततः शरशतैर्द्रौणिरर्दयामास पाण्डवम् ।
न चैनं कम्पयामास मातरिश्वेव पर्वतम् ॥६॥

अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने सैंकड़ों बाण छोड़ कर भीमसेन को पीड़ित किया। परन्तु जिस तरह वायु, पर्वत के हिलाने में समर्थ नहीं हो पाता है, उसी तरह अश्वत्थामा भी भीमसेन को विकम्पित करने में समर्थ नहीं हो सका ॥६॥

तथैव पाण्डवो युद्धे द्रौणिं शरशतैः शितैः ।
नाकम्पयत संहृष्टो वार्योघ इव पर्वतम् ॥१०॥

इसी तरह पाण्डु-पुत्र भीमसेन भी, इस युद्ध में सैंकड़ों तीखे बाण छोड़ रहा था, परन्तु वह उत्साह सम्पन्न होकर भी अश्वत्थामा को, पर्वत को जल प्रवाह की भांति विचलित नहीं कर सका ॥१०॥

तावन्योन्यं शरैर्घोरैश्छादयानौ महारथौ ।
रथवर्यगतौ वीरौ शुशुभाते बलोत्कटौ ॥११॥

दोनों महारथी वीर अश्वत्थामा और भीमसेन, उत्कट बल में भरे हुए और उत्तम २ रथों पर सवार थे। ये दोनों वीर परस्पर एक दूसरे को घोर बाणों से आच्छादित करते हुए अत्यन्त सुशोभित हो रहे थे ॥११॥

आदित्याविव सन्दीप्तौ लोकक्षयकरावुभौ ।
स्वरश्मिभिरिवान्योन्यं तापयन्तौ शरोत्तमैः ॥१२॥

अपनी २ किरणों से सन्तापित करने वाले प्रलय काल में उदित प्रचण्ड सूर्यों की भांति, ये दोनों महारथी अपने २ बाणों से एक दूसरे को सन्तापित कर रहे थे ॥१२॥

ततः प्रतिकृते यत्नं कुर्वाणौ तौ महारणे ।
कृतप्रतिकृते यत्तौ शरसङ्घैरभीतवत् ॥१३॥

इस महायुद्ध में ये दोनों वीर एक दूसरे के प्रतीकार में बड़ा ही प्रयत्न कर रहे थे। एक के प्रहार में दूसरा बड़ी सावधानी से निर्भीक होकर अपने बाणों से उसका उत्तर दे रहा था ॥१३॥

व्याघ्राविव च संग्रामे चेरतुस्तौ नरोत्तमौ ।
शरदंष्ट्रौ दुराधर्षौ चापवक्त्रौ भयङ्करौ ॥१४॥

ये नर श्रेष्ठ अश्वत्थामा और भीमसेन; सिंह की भाँति रण भूमि में घूम रहे थे। इन के बाण सिंह की सी भीषण दंष्ट्रा और धनुष भयङ्कर मुख के तुल्य थे ॥१४॥

अभूतां तावदृश्यौ च शरजालैः समन्ततः ।
मेघजालैरिव च्छन्नौ गगने चन्द्रभास्करौ ॥१५॥

ये दोनों सब ओर से बाण जाल से इतने ढक गए कि आकाश में मेघ जाल से आच्छन्न सूर्य और चन्द्रमा के सदृश प्रतीत होने लगे ॥१५॥

चकाशेते मुहूर्तेन ततस्तावप्यरिन्दमौ ।
विमुक्तावभ्रजालेन अङ्गारकबुधाविव ॥१६॥

थोड़ी ही देर में वे दोनों अरिमर्दन वीर, मेघ समूह से छुटकारा पाये हुए मंगल और बुध के सदृश प्रकाशित होने लगे ॥१६॥

अथ तत्रैव संग्रामे वर्तमाने सुदारुणे ।
अपसव्यं ततश्चक्रे द्रौणिस्तत्र वृकोदरम् ॥१७॥
किरञ्छरशतैरुग्रैर्धाराभिरिव पर्वतम् ।

जब इस प्रकार घोर संग्राम चल रहा था-तो द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने भीमसेन को दांयी ओर कर लिया और फिर उसे बाणों की वर्षा करके उसे इस तरह पाट दिया जैसे जल धाराओं से पर्वत को पाट दिया हो ॥१७॥

न तु तन्ममृषे भीमः शत्रोर्विजयलक्षणम् ॥१८॥
प्रतिचक्रे ततो राजन्पाण्डवोऽप्यपसव्यतः ।

हे राजन ! भीमसेन से यह शत्रु की विजय सही न गई । अब पाण्डु-पुत्र भीमसेन भी दांयी ओर आकर उसका प्रतीकार करने लगे ॥१८॥

मण्डलानां विभागेषु गतप्रत्यागतेषु च ॥१९॥
बभूव तुमुलं युद्धं तयोः पुरुषसिंहयोः ।

इस समय युद्ध के मार्गों का विभाग करते और इधर उधर हटते और लड़ते हुए दोनों वीरों का घोर संग्राम प्रवृत्त हो गया ॥१९॥

चरित्वा विविधान्मार्गान्मण्डलस्थानमेव च ॥२०॥
शरैः पूर्णायतोत्सृष्टैरन्योन्यमभिजघ्नतुः ।

ये दोनों वीर अनेक युद्ध के पैंतरे और मण्डलस्थिति करके अत्यन्त लम्बाई के साथ खेंच कर धनुप से छोड़े हुए बाणों से एक दूसरे को आहत करने लगे ॥२०॥

अन्योन्यस्य वधे चैव चक्रतुर्यत्नमुत्तमम् ॥२१॥
ईषतुर्विरथं चैव कर्तुमन्योन्यमाहवे ।

इन्होंने एक दूसरे के मार देने का भी बहुत ही प्रयत्न किया। तथा रण में एक दूसरे को रथहीन बनादेने की चेष्टा में भी पर्याप्त प्रयत्न कर रहे थे ॥२१॥

ततो द्रौणिर्महास्त्राणि प्रादुश्चक्रे महारथः ॥२२॥
तान्यस्त्रैरेव समरे प्रतिजघ्नेऽथ पाण्डवः ।

अब महारथी अश्वत्थामा ने बड़े २ अस्त्रों का प्रादुर्भाव किया पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने भी अपने अस्त्रों से रण में उनका प्रतीकार कर दिया ॥२२॥

ततो घोरं महाराज अस्त्रयुद्धमवर्त्तत ॥२३॥
ग्रहयुद्धं यथा घोरं प्रजासंहरणे ह्यभूत् ।

हे महाराज ! अब घोर अस्त्र युद्ध होने लगा जैसे प्रजा के संहार के समय ग्रहों में युद्ध होने लगता है ॥२३॥

ते बाणाः समसज्जन्त मुक्तास्ताभ्यां तु भारत ॥२४॥
द्योतयन्तो दिशः सर्वास्तव सैन्यं समन्ततः ।

हे भारत ! उन दोनों वीरों द्वारा छोड़े हुए बाण सारी दिशाओं को चमकाते हुए सब ओर से तुम्हारी सेना और पाण्डवी सेना के चिपटने लगे ॥२४॥

बाणसङ्घैर्वृतं घोरमाकाशं समपद्यत ॥२५॥
उल्कापाताकृतं युद्धं प्रजानां संक्षये नृप ।

हे नृप ! इस बाण समूह से व्याप्त हुआ आकाश, बड़ा घोर प्रतीत होने लगा, जैसे-प्रजा के संहार के समय उल्कापात के साथ ग्रह युद्ध प्रतीत होता है ॥२५॥

बाणाभिघातात्सञ्जज्ञे तत्र भारत पावकः ॥२६॥
सविस्फुलिङ्गो दीप्तार्चिर्योऽदहद्वाहिनीद्वयम् ।

हे भारत ! बाण के परस्पर टकराने से चिनगारी और ज्वाला-ओं के साथ अग्नि उत्पन्न होने लगा, जिससे दोनों सेना दग्ध होने लगी ॥२६॥

तत्र सिद्धा महाराज सम्पतन्तोऽब्रुवन्वचः ॥२७॥
युद्धानामति सर्वेषां युद्धमेतदिति प्रभो ।
सर्वयुद्धानि चैतस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२८॥
नेदृशं च पुनर्युद्धं भविष्यति कदाचन ।

हे महाराज ! इस समय आकाशधारी सिद्ध गण विमानों में उड़ते हुए यह कह रहे थे, कि यह युद्ध सारे युद्धों को अतिक्रमण करके प्रवृत्त हो रहा है। इस युद्ध की बराबरी अन्य युद्ध सोलहवीं कला के समान भी नहीं कर सकते हैं और न ऐसा युद्ध आगे कभी होने की सम्भावना है ॥२७,२८॥

अहो ज्ञानेन सम्पन्नावुभौ ब्राह्मणक्षत्रियौ ॥२९॥
अहो शौर्येण सम्पन्नावुभौ चोग्रपराक्रमौ ।

ये दोनों ब्राह्मण और क्षत्रिय, के ज्ञान से बहुत ही सम्पन्न है तथा दोनों ही अत्यन्त पराक्रमी और वीरता से युक्त हैं ॥२६॥

अहो भीमबलो भीम एतस्य च कृतास्त्रता ॥३०॥
अहो वीर्यस्य सारत्वमहो सौष्ठवमेतयोः ।

भीमसेन का बड़ा ही भयानक बल है और अश्वत्थामा की भी बाण चलाने की कुशलता अद्भुत है। इन दोनों के पराक्रम की दृढ़ता और श्रेष्ठता बड़ी ही दर्शनीय है ॥३०॥

स्थितावेतौ हि समरे कालान्तकयमोपमौ ॥३१॥
रुद्रौ द्वाविव संभूतौ यथा द्वाविवभास्करौ ।
यमौ वा पुरुषव्याघ्रौ घोररूपावुभौ रणे ॥३२॥
इति वाचः स्म श्रूयन्ते सिद्धानां वै मुहुर्मुहुः ।

ये दोनों रण में काल और अन्त के तुल्य स्थित हैं। ये ऐसे प्रतीत होते हैं, जैसे-दो रुद्र उत्पन्न हो गए हों-या दो सूर्य उदय को प्राप्त हुए हों। ये दोनों वीर पुरुष भयङ्कर रूपधारी दो यमराज दिखाई देते हैं-इस प्रकार की सिद्धों की वाणी बार बार सुनाई देने लगी ॥३१-३२॥

सिंहनादश्च सञ्जज्ञे समेतानां दिवौकसाम् ॥३३॥
अद्भुतं चाप्यचिन्त्यं च दृष्ट्वा कर्म तयो रणे ।
सिद्धचारणसङ्घानां विस्मयः समपद्यत ॥३४॥

उन दोनों महारथियों का रण में अद्भुत और अचिन्त्य कर्म देखकर सारे देवता एक दम सिंहनाद करने लगे, इस समय सिद्ध और चारण आदि देवों को बड़ा ही आश्चर्य हो रहा था ॥२३-२४॥

प्रशंसन्ति तदा देवाः सिद्धाश्च परमर्षयः ।
साधु द्रौणे महाबाहो साधु भीमेति चाब्रुवन् ॥२५॥

हे महाबाहो ! द्रोण-पुत्र ! अश्वत्थामा ! तुमको धन्य है-हे महाबलिन् ! भीम तुमको धन्यवाद है-इस प्रकार सिद्ध, ऋषि और देवता इनकी स्तुति करने लगे ॥२५॥

तौ शूरौ समरे राजन्परस्परकृतागसौ ।
परस्परमुदीक्षेतां क्रोधादुद्वृत्य चक्षुषी ॥२६॥

हे राजन् ! इस घोर युद्ध में ये दोनों महारथी एक दूसरे पर प्रहार करके परस्पर अपराध कर रहे थे और क्रोध पूर्वक नेत्र खोल कर एक दूसरे को देखते जाते थे ॥२६॥

क्रोधरक्तेक्षणौ तौ तु क्रोधात्प्रस्फुरिताधरौ ।
क्रोधात्सन्दष्टदशनौ तथैव दशनच्छदौ ॥२७॥

इनकी क्रोध से आंखें लाल हो रही थीं और इनके होठ फड़क रहे थे । ये क्रोध से दाँत और होठ दोनों को चबा रहे थे ॥२७॥

अन्योन्यं छादयन्तौ स्म शरवृष्ट्या महारथौ ।
शराम्बुधारौ समरे शस्त्रविद्युत्प्रकाशिनौ ॥२८॥

ये दोनों महारथी मेघ के तुल्य हुए अपनी २ बाण वर्षा से दोनों को आच्छादित कर रहे थे । इनके बाण जलधारा और शस्त्र की चमक बिजली के प्रकाश के सदृश थी ॥२८॥

तावन्योन्यं ध्वजं विध्वा सारथिं च महारणे ।
अन्योन्यस्य हयान्विध्वा बिभिदाते परस्परम् ॥३९॥

इस महारण में इन दोनों वीर भीम और अश्वत्थामा ने एक दूसरे की ध्वजा सारथि और अश्वों को वींध कर परस्पर एक दूसरे को भी वींधने लगे ॥३९॥

ततः क्रुद्धौ महाराज बाणौ गृह्य महाहवे ।
उभौ चिक्षिपतुस्तूर्णमन्योन्यस्य वधैषिणौ ॥४०॥

हे महाराज ! इस भीषण रण में दोनों क्रोध में भर कर बाण चलाने लगे. ये दोनों एक दूसरे का वध कर देने की इच्छा से बाण प्रहार बड़ी शीघ्रता से कर रहे थे ॥४०॥

तौ सायकौ महाराज द्योतमानौ चमूमुखे ।
आजघ्नतुः समासाद्य वज्रवेगौ दुरासदौ ॥४१॥

हे महाराज ! सेना के प्रधान स्थान पर छोड़े हुए उनके चमकीले दो वज्रवेगधारी दुरासद बाण, एक दूसरे के समीप पहुंच कर आहत कर रहे थे ॥४१॥

तौ परस्परवेगाच्च शराभ्यां च भृशाहतौ ।
निपेततुर्महावीर्यौ रथोपस्थे तयोस्तदा ॥४२॥

इन दोनों ने अपने वल के वेग से दो बाण छोड़े, जिन बाणों से ये दोनों महापराक्रमी भीम और अश्वत्थामा आहत होकर अपने रथ के मध्य में गिर गए ॥४२॥

ततस्तु सारथिर्ज्ञात्वा द्रोणपुत्रमचेतनम् ।
अपोवाह रणाद्राजन्सर्वसैन्यस्य पश्यतः ॥४३॥

हे राजन् ! जब सारथि ने देखा, कि द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा मूर्च्छित हो गए-तो सारी सेना के देखते २ वह अश्वत्थामा को रण से बाहर ले गया ॥४३॥

तथैव पाण्डवं राजन्विह्वलन्तं मुहुर्मुहुः ।
अपोवाह रथेनाजौ सारथिः शत्रुतापनम् ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि अश्वत्थामाभीमसेनयोर्युद्धे पञ्चदशोऽध्यायः॥१५॥

हे राजन् ! इसी तरह शत्रुतापी पाण्डु-पुत्र भीमसेन को उसके सारथि ने जब बार २ तड़फड़ाते देखा-तो वह भी अपने रथ के द्वारा भीमसेन को रण से बाहर ले गया ॥४४॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अश्वत्थामा और
भीमसेन के युद्ध के वर्णन का पन्द्रहवां
अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सोलहवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

यथा संशप्तकैः सार्धमर्जुनस्या भवद्रणः ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद्ब्रवीहि मे ॥१॥
अश्वत्थाम्नस्तु यद्युद्धमर्जुनस्य च सञ्जय ।
अन्येषां च महीपानां पाण्डवैस्तद्ब्रवीहि मे ॥२॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय ! संशप्तक वीरों के साथ अर्जुन तथा अन्य राजाओं के साथ एवं अश्वत्थामा और अर्जुन और अन्य महीपतियों का युद्ध हुआ वह मुझे सुनाओ ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

शृणु राजन्यथा वृत्तं संग्रामं ब्रुवतो मम ।
वीराणां शत्रुभिः सार्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥३॥

सञ्जय बोला—हे राजन् ! जो तुम्हारे वीरों का शत्रुओं के साथ पाप और प्राण नाशक युद्ध हुआ । मैं उसके वृत्तान्त तुमको सुनाता हूं-तुम ध्यान से सुनो ॥३॥

पार्थः संशप्तकबलं प्रविश्यार्णवसन्निभम् ।
व्यक्षोभयदमित्रघ्नो महावात इवार्णवम् ॥४॥

हे भारत ! शत्रुनाशक अर्जुन समुद्र के तुल्य उलझती हुई संशप्तक सेना में घुस कर उसे इस प्रकार आलोडित करने लगा, जैसे महावत (आंधी) समुद्र को शोभित कर देती है ॥४॥

शिरांस्युन्मथ्य वीराणां शितैर्भल्लैर्धनञ्जयः ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्राणि स्वक्षिभ्रूदशनानि च ॥५॥
सन्तस्तार क्षितिं क्षिप्रं विनालैर्नलिनैरिव ।

अर्जुन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से पूर्णचन्द्रमा के सदृश सुन्दर और मनोहर नेत्र भ्रुकुटी और दांतों से युक्त, मस्तकों को काट २ कर पृथिवी को इस तरह भर दिया-जैसे-नाल रहित कमल पुष्पों से पृथिवी भरी हुई हो ॥५॥

सुवृत्तानायतान्पुष्टांश्चन्दनागुरुभूषितान् ॥६॥
सायुधान्सतलत्रांश्च पञ्चास्योरगसन्निभान् ।
बाहून्क्षुरैरमित्राणां चिच्छेद समरेऽर्जुनः ॥७॥

अर्जुन ने गोल और सुडोल, पुष्ट, चन्दन अगर से विभूषित, आयुध और करतलत्राण से युक्त, पांच मुख वाले सर्प के सदृश शत्रुओं की भुजाओं को काट २ कर रण में बिछा दिया ॥६-७॥

धुर्यान्धुर्येतरान्सूतान्ध्वजांश्चापानि सायकान् ।
पाणीन्सरत्नानसकृद्भल्लैश्चिच्छेद पाण्डवः ॥८॥

पाण्डु-पुत्र, अर्जुन ने रथ के अग्र भाग में जुड़ने वाले या उससे पीछे जुते हुए, वृषभ, सारथि, ध्वजा, धनुष, बाण और रत्नों से विभूषित हाथों को अपने बाणों से काट २ कर रणभूमि को आच्छादित कर दिया ॥८॥

रथान्द्विपान्हयांश्चैव सारोहानर्जुनो युधि ।
शरैरनेकसाहस्रैर्निन्ये राजन्यमक्षयम् ॥९॥

हे राजन्! अपने २ सवारों के साथ रथ, हाथी और अश्वों को अर्जुन ने अपने कई सहस्र बाणों से बींध २ कर यमलोक भेज दिया ॥६॥

तं प्रवीराः सुसंरब्धा नर्दमाना इवर्षभाः ।
वासितार्थमिव क्रुद्धमभिद्रुत्य मदोत्कटाः ॥१०॥
निघ्नन्तमभिजघ्नुस्ते शरैः शृङ्गैरिवर्षभाः ।

अब क्रोध में भरे हुए अर्जुन पर गर्भ धारण के निमित्त आई हुई गौ पर टूट पड़ने वाले वृषभों की तरह आवेश में भरे हुए मदोद्धत वीर गर्जते हुए टूट पड़े। ये सींगों से बेलों की तरह अपने २ बाणों से प्रहार करने वाले अर्जुन पर प्रहार करने लगे ॥१०॥

तस्य तेषां च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ॥११॥
त्रैलोक्यविजये यद्वद्दैत्यानां सह वज्रिणा ।

अब महारथी अर्जुन और तुम्हारे उन वीरों का लोम हर्षण युद्ध इस तरह होने लगा, जैसे-त्रिलोकी विजय के समय इन्द्र के साथ दैत्यों का हुआ था ॥११॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ॥१२॥
इषुभिर्बहुभिस्तूर्णं विध्वा प्राणाञ्जहार सः ।

इसके बाद अर्जुन ने अपने शत्रुओं के सारे अस्त्रों को अपने अस्त्रों से सब ओर से रोक कर तथा बहुत से बाण मार कर उनके प्राण हरने लगा ॥१२॥

छिन्नत्रिवेणुचक्राक्षान्हतयोधान्ससारथीन् ॥१३॥
विध्वस्तायुधतूणीरान्समुन्मथितकेतनान् ।
सञ्छिन्नयोक्त्ररश्मीकान्विवरूथान्विकूबरान् ॥१४॥
विस्रस्तबन्धुरयुगान्विस्रस्ताक्षप्रमण्डलान् ।
रथान्विशकलीकुर्वन्महाभ्राणीव मारुतः ॥१५॥

हे राजन् ! इस समय अर्जुन ने रथों के तीनों वांस, चक्र और धुरे नष्ट-भ्रष्ट कर डाले। रथों में स्थित योधा और सारथियों को मार दिया, आयुध और तूणीरों को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, उनकी पताकाओं को छिन्न-भिन्न कर डाला, रथों के जोते रस्सी, आवरण, कूबर (युगन्धर) रथतुल्य जुड़े और अक्षमण्डल इस तरह खण्डित कर दिए-जैसे-वायु बड़े२ मेघों को छिन्न-भिन्न कर देता है ॥१३-१५

विस्मापयन्प्रेक्षणीयं द्विषतां भयवर्धनम् ।
महारथसहस्रस्य समं कर्माकरोज्जयः ॥१६॥

अर्जुन ने अपने इस युद्ध से सबको चकित कर दिया। यह युद्ध बड़ा ही दर्शनीय और शत्रुओं के भय का बढ़ाने वाला था। इस समय अर्जुन ने हजारों महारथियों के बराबर कर्म कर दिखाया ॥१६॥

सिद्धदेवर्षिसङ्घाश्च चारणाश्चापि तुष्टुवुः ।
देवदुन्दुभयो नेदुः पुष्पवर्षाणि चापतन् ॥१७॥

अब सिद्ध देवर्षियों के समूह, और चारणगण, स्तुति करने देवता दुन्दुभि-बजाने और पुष्प वर्षा करने लगे ॥१७॥

केशवार्जुनयोर्मूर्ध्नि प्राह वाक्चाशरीरिणी ।
चन्द्राग्न्यनिलसूर्याणां कान्तिदीप्तिबलद्युतीः ॥१८॥
यौ सदा बिभ्रतुर्वीराविमौ तौ केशवार्जुनौ ।
ब्रह्मेशानाविवाजय्यौ वीरावेकरथे स्थितौ ॥१९॥
सर्वभूतवरौ वीरौ नरनारायणाविमौ ।

इस समय श्रीकृष्ण और अर्जुन के मस्तक पर आकाश वाणी सुनाई दी, कि जो सूर्य, चन्द्र, अग्नि और वायु की द्युति, कान्ति, दीप्ति और शक्ति को धारण करते थे-वे ही नर नारायण संज्ञक ये दोनों सर्व प्राणियों में श्रेष्ठ, वीर श्रीकृष्ण और अर्जुन हैं। ये अपने रथ में अकेले ही स्थित हुए ब्रह्मा और शिव की तरह अजेय हैं ॥१८-१९॥

इत्येतन्महदाश्चर्यं दृष्ट्वा श्रुत्वा च भारत ॥२०॥
अश्वत्थामा सुसंयत्तः कृष्णावभ्यद्रवद्रणे ।

हे भारत ! इस प्रकार बड़े से आश्चर्योत्पादक वृत्तान्त को देख और सुनकर भी रण में अश्वत्थामा, बड़ी सावधानी से श्रीकृष्ण और अर्जुन पर टूट पड़ा ॥२०॥

अथ पाण्डवमस्यन्तममित्रघ्नकराञ्शरान् ॥२१॥
सेषुणा पाणिनाहूय प्रहसन्द्रौणिरब्रवीत् ।

हे राजन् ! अब धनुष बाण लिये हुए, और शत्रु-नाशक बाणों को फेंकते हुए पाण्डु-पुत्र अर्जुन को ललकार कर हंसते हुए द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने कहा ॥२१॥

यदि मां मन्यसे वीर प्राप्तमर्हमिहातिथिम् ॥२२॥
ततः सर्वात्मना त्वद्य युद्धातिथ्यं प्रयच्छ मे ।

हे वीर ! यदि तुम मुझे आया हुआ योग्य अतिथि समझते हो-तो आज सब तरह से मुझे युद्ध की भिक्षा प्रदान करो ॥२२॥

एवमाचार्यपुत्रेण समाहूतो युयुत्सया ॥२३॥
बहु मेनेऽर्जुनोत्मानमिति चाह जनार्दनम् ।
संशप्तकाश्च मे वध्या द्रौणिराह्वयते च माम् ॥२४॥
यदत्रानन्तरं प्राप्तं शंस मे तद्धि माधव ।
आतिथ्यकर्माभ्युत्थाय दीयतां यदि मन्यसे ॥२५॥

इस प्रकार जब आचार्य पुत्र अश्वत्थामा ने युद्ध की इच्छा से अर्जुन को ललकारा-तो अर्जुन ने भी अपने को बहुत कुछ धन्य समझा और वह जनार्दन कृष्ण से बोला—हे माधव ! मैंने आज संशप्तकों के मारने का निश्चय कर रखा था-इधर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा मुझे ललकार रहा है। इसमें जो आवश्यक कर्तव्य हो-उसे मुझे बताइये। मेरी सम्मति में तो बड़े उत्साह से उठकर बाणों से अश्वत्थामा का अतिथि सत्कार करना चाहिए ॥२३-२५॥

एवमुक्तोऽवहत्पार्थं कृष्णो द्रोणात्मजान्तिके ।
जैत्रेण विधिनाहूतं वायुरिन्द्रमिवाध्वरे ॥२६॥

जब अर्जुन ने इतना कहा-तो श्रीकृष्ण, अर्जुन को जयशील विधि से अश्वत्थामा के समीप इस प्रकार ले गए-जैसे-यज्ञ में वायु, आहूत इन्द्र को ले जाता है ॥२६॥

तमामन्त्र्यैकमनसं केशवो द्रौणिमब्रवीत् ।
अश्वत्थामन्स्थिरो भूत्वा प्रहराशु सहस्व च ॥२७॥

अब श्रीकृष्ण ने एक मात्र युद्ध में मन लगाये हुए अश्वत्थामा को अपनी ओर अभिमन्त्रित करके कहा-हे अश्वत्थामा ! अब तुम स्थिर होकर प्रहार करो और फिर हमारे आघात को भी सहो ॥२७॥

निर्वेष्टुं भर्तृपिण्डं हि कालोऽयमुपजीविनाम् ।
सूक्ष्मो विवादो विप्राणां स्थूलौ क्षात्रौ जयाजयौ ॥२८॥

हे द्रौणे ! अब नौकरी से जीविका करने वालों का अपने स्वामी के अन्न सफल करने का समय आ गया है । ब्राह्मणों का विवाद तो सूक्ष्म होता है, उसमें जय पराजय का पता नहीं लगता, परन्तु क्षत्रियों का जय पराजय तो स्थूल (प्रत्यक्ष) है ॥२८॥

यामभ्यर्थयसे मोहाद्दिव्यां पार्थस्य सत्क्रियाम् ।
तामाप्तुमिच्छन्युध्यस्व स्थिरो भूत्वाऽद्य पाण्डवम् ॥

अब तुम जिस अर्जुन से युद्ध भिक्षा मांगकर दिव्य सत्कार पाना चाहते हो-आज तुम स्थिर होकर उस सत्कार पाने के लिए तय्यार हो जाओ और युद्ध करो ॥२६॥

इत्युक्तो वासुदेवेन तथेत्युक्त्वा द्विजोत्तमः ।
विव्याध केशवं षष्ट्या नाराचैरर्जुनं त्रिभिः ॥३०॥

हे राजन् ! जब वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण ने इतना कहा-तो द्विजोत्तम अश्वत्थामा ने स्वीकार करके श्रीकृष्ण पर साठ और अर्जुन पर तीन बाण छोड़कर उन्हें बींध दिया ॥३०॥

तस्यार्जुनः सुसंक्रुद्धस्त्रिभिर्बाणैः शरासनम् ।
चिच्छेद चान्यदादत्त द्रौणिर्घोरतरं धनुः ॥३१॥
सज्यं कृत्वा निमेषाच्च विव्याधार्जुनकेशवौ ।
त्रिभिः शतैर्वासुदेवं सहस्रेण च पाण्डवम् ॥३२॥

अब अर्जुन ने भी क्रोध में भरकर तीन बाण मारकर उसके धनुष को काट डाला-तो द्रोण-पुत्र अश्वत्थामाने फिर झटपट दूसरा अत्यन्त घोर धनुष उठा लिया और क्षण भर में उसे, खैंचकर उससे अर्जुन और श्रीकृष्ण को बींध दिया। इसने तीन सौ बाण तो श्रीकृष्ण और सहस्रों बाण अर्जुन पर छोड़े ॥३१-३२॥

ततः शरसहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
ससृजे द्रौणिरायस्तः संस्तभ्य च रणेऽर्जुनम् ॥३३॥

इसके अनन्तर सहस्रों, लाखों अरबों बाण, अश्वत्थामा ने परिश्रम के साथ छोड़े-जिन से रण में अर्जुन को आच्छादित कर दिया ॥३३॥

इषुधेर्धनुषश्चैव ज्यायाश्चैवाथ मारिष ।
बाह्वोः कराभ्यामुरसो वदनघ्राणनेत्रतः ॥३४॥
कर्णाभ्यां शिरसोऽङ्गेभ्यो लोमवर्मभ्य एव च ।
रथध्वजेभ्यश्च शरा निष्पेतुर्ब्रह्मवादिनः ॥३५॥

इस समय ब्रह्मवादी अश्वत्थामा के बाण, तूणीर धनुष, धनुष की डोरी, बाहु, हाथ, छाती, मुख, नासिका, नेत्र, कर्ण,

शिर, अङ्ग, लोम, कवच, और रथ की ध्वजा के समीप से गुजर रहे थे ॥३४-३५॥

शरजालेन महता विध्वा माधवपाण्डवौ ।
ननाद मुदितो द्रौणिर्महामेघौघनिःस्वनम् ॥३६॥

अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने प्रसन्न होकर अपने महान् बाण समूह से श्रीकृष्ण और अर्जुन को आच्छादित करके महामेघ की ध्वनि की गम्भीरता के तुल्य बड़ी गर्जना की ॥३६॥

तस्य तं निनदं श्रुत्वा पाण्डवोऽच्युतमब्रवीत् ।
पश्य माधव दौरात्म्यं गुरुपुत्रस्य मां प्रति ॥३७॥

वधं प्राप्तौ मन्यते नौ प्रावेश्य शरवेश्मनि ।
एपोऽस्मि हन्मि सङ्कल्पं शिक्षया च बलेन च ॥३८॥

हे राजन्! अश्वत्थामा की गर्जना सुनकर अर्जुन, श्रीकृष्ण से बोले—हे माधव! अब तुम गुरु-पुत्र अश्वत्थामा की दुरात्मता देखो कि हमको इसने बाण जाल में बांधकर मरा हुआ समझ लिया है। अब मैं भी अपनी युद्ध शिक्षा और बल से इस के सङ्कल्प का भङ्ग करता हूं ॥३७-३८॥

अश्वत्थाम्नः शरानस्तांश्छित्वैकैकं त्रिधा त्रिधा ।
व्यधमद्भरतश्रेष्ठो नीहारमिव मारुतः ॥३९॥

हे राजन्! इतना कहकर अर्जुन ने अश्वत्थामा के उन बाणों के तीन २ टुकड़े कर डाले और उस बाण वर्षा को इस तरह छिन्न भिन्न कर दिया, जैसे-वायु, कुहरे को उड़ा देती है ॥३९॥

ततः संशप्तकान्भूयः साश्वसूतरथद्विपान् ।
ध्वजपत्तिगणानुग्रैर्बाणैर्विव्याध पाण्डवः ॥४०॥

इसके अनन्तर पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने अश्व, सूत, रथ, हाथी, ध्वजा, और पैदलों के सहित संशप्तकों के गणों को फिर उग्र बाणों से बींधना आरम्भ किया ॥४०॥

ये ते ददृशिरे तत्र यद्यद्रूपास्तदा जनाः ।
ते ते तत्र शरैर्व्याप्तं मेनिरेत्मानमात्मना ॥४१॥

उस समय वहां पर जिस २ रूप में जो २ व्यक्ति थे, उन सबने-अपने आपको बाणों से व्याप्त ही समझा ॥४१॥

ते गाण्डीवप्रमुक्तास्तु नानारूपाः पतत्रिणः ।
क्रोशे साग्रे स्थितान्घ्नन्ति द्विपांश्च पुरुषान्रणे ॥४२॥

अब अर्जुन के गाण्डीव धनुष से निकले हुए अनेक ढंग के बाण, रण में कोश की दूरी से भी अधिक दूरी पर स्थित तुम्हारे हाथी या वीरों को बींधने लगे ॥४२॥

भल्लैश्छिन्नाः कराः पेतुः करिणां मदवर्षिणाम् ।
यथा वने परशुभिर्निकृत्ताः सुमहाद्रुमाः ॥४३॥

मद बरसाने वाले हाथियों की सूंड, तीक्ष्ण बाणों से कट कर इस तरह गिर गईं, जैसे वन में कुल्हाड़ी से काटे हुए बड़े वृक्ष गिर गए हों ॥४३॥

पश्चात्तु शैलवत्पेतुस्ते गजाः सह सादिभिः ।
वज्रिवज्रप्रमथिता यथैवाद्रिचयास्तथा ॥४४॥

इसके बाद सवारों के साथ पर्वतोपम महारथी इस तरह गिरने लगे-जैसे इन्द्र के वज्र से नष्ट हुए पर्वत समूह गिर रहे हों ॥४४॥

गन्धर्वनगराकारान्रथांश्चैव सुकल्पितान् ।
विनीतर्जवनैर्युक्तानास्थितान्युद्धदुर्मदैः ॥४५॥
शरैर्विशकलीकुर्वन्नमित्रानभ्यवीवृषत् ।
स्वलंकृतानश्वसादीन्पत्तींश्चाहन्धनञ्जयः ॥४६॥

गन्धर्वनगर के समान सुन्दर अच्छी तरह सजाए हुए युद्ध दुर्मद सुशिक्षित अश्वों से युक्त, रथों पर बैठे हुए शत्रुओं को बाणों से काटते हुए अर्जुन ने अपनी बाण वर्षा आरम्भ कर दी। आभूषणों से विभूषित अश्वों के सवारों और पैदल सैनिकों को अर्जुन ने मार २ कर बिछा दिया ॥४५-४६॥

धनञ्जययुगान्तार्कः संशप्तकमहार्णवम् ।
व्यशोषयत दुःशोषं तीक्ष्णैः शरगभस्तिभिः ॥४७॥

इस समय अर्जुन तो प्रलय-कालीन सूर्य, और उनके तीक्ष्ण बाण उसकी किरणों के तुल्य थे, इसने नहीं सूखने वाले, संशप्तक गणरूपी समुद्र को भी अच्छी तरह सुखा दिया ॥४७॥

पुनर्द्रौणिं महाशैलं नाराचैर्वज्रसन्निभैः ।
निर्बिभेद महावेगैस्त्वरन्वज्रीव पर्वतम् ॥४८॥

इसके अनन्तर बड़ी शीघ्रता से घूमते हुए अर्जुन ने, महावेग-धारी वज्र के समान बाणों से महापर्वत के तुल्य अश्वत्थामा को इस प्रकार बींध दिया-जैसे इन्द्र, पर्वत को बींध देता है ॥४८॥

तमाचार्यसुतः क्रुद्धः साधयन्तारमाशुगैः ।
युयुत्सुरागमद्योद्धुं पार्थस्तानच्छिनच्छरान् ॥४६॥

अब क्रोध में भरे हुए आचार्य-पुत्र ने अर्जुन के अश्व और सारथि पर आशुगामी बाण मारे और वह युद्ध की इच्छा करके युद्ध के निमित्त आगे बढ़ा, परन्तु अर्जुन ने उसके बाणों को काट गिराया ॥४६॥

ततः परमसंक्रुद्धः पाण्डवेऽस्त्राण्यवासृजत् ।
अश्वत्थामाभिरूपाय गृहानतिथये यथा ॥५०॥

अब अत्यन्त कुपित होकर अश्वत्थामा ने अर्जुन पर बहुत से बाण छोड़े-जैसे योग्य अतिथि पर धार्मिक लोग, आवश्यक वस्तुओं की वर्षा करते हैं ॥५०॥

अथ संशप्तकांस्त्यक्त्वा पाण्डवो द्रौणिमभ्ययात् ।
अपांक्तेयानिव त्यक्त्वा दाता पांक्तेयमर्थिनम् ॥५१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वण्यश्वत्थामार्जुनसंवादे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

इसके अनन्तर संशप्तकों को छोड़कर पाण्डु-पुत्र अर्जुन द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर इस तरह झपटे-जैसे पंक्ति में अयोग्य अतिथियों को छोड़कर दाता पंक्ति के योग्य अतिथियों पर जाता है ॥५१॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अश्वत्थामा और अर्जुन के युद्ध का सोलहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

सत्रहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः समभवद्युद्धं शुक्राङ्गिरसवर्चसोः ।
नक्षत्रमभितो व्योम्नि शुक्राङ्गिरसयोरिव ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतश्रेष्ठ ! शुक्र और बृहस्पति के समान तेजस्वी अश्वत्थामा और अर्जुन का इस ढंग से युद्ध हुआ जैसे नक्षत्रों के चारों ओर आकाश में शुक्र और बृहस्पति का होता है ॥१॥

सन्तापयन्तावन्योन्यं दीप्तैः शरगभस्तिभिः ।
लोकत्रासकरावास्तां विमार्गस्थौ ग्रहाविव ॥२॥

ये दोनों महारथी वक्री हुए ग्रहों की तरह अपने २ बाणों की किरणों से एक दूसरे को सन्तापित करते हुए संसार के उद्वेग के कारण बन रहे थे ॥२॥

ततोऽविध्यद् भ्रुवोर्मध्ये नाराचेनार्जुनो भृशम् ।
स तेन विबभौ द्रौणिरूर्ध्वरश्मिर्यथा रविः ॥३॥

अब अर्जुन ने एक तीखा बाण अश्वत्थामा की भ्रूव के मध्य में मारा-उससे अश्वत्थामा इस तरह शोभित हो उठे-जैसे ऊपर को किरण फैंकता हुआ सूर्य देदीप्यमान होता है ॥३॥

अथ कृष्णौ शरशतैरश्वत्थाम्नार्दितौ भृशम् ।
स्वरश्मिजालविकचौ युगान्तार्काविवासतुः ॥४॥

इसी तरह अश्वत्थामा ने भी अपने सैंकड़ों बाण छोड़कर श्रीकृष्ण और अर्जुन को आच्छादित कर दिया, जिससे वे किरण जाल से व्याप्त प्रलयकाल के सूर्य के सदृश प्रतीत होने लगे ॥४॥

ततोऽर्जुनः सर्वतोधारमस्त्रमवासृजद्वासुदेवेऽभिभूते ।
द्रौणायनिं चाभ्यहनत्पृषत्कैर्वज्राग्निवैवस्वतदण्डकल्पैः ॥५॥

हे राजन् ! श्रीकृष्ण के आहत होने से अर्जुन क्रोध से जल उठा उसने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर वज्र, अग्नि और यम दण्ड के तुल्य बाणों तथा सब ओर से धार वाले अस्त्र का प्रयोग किया ॥५॥

स केशवं चार्जुनं चातितेजा विव्याध मर्मस्वतिरौद्रकर्मा ।
बाणैः सुमुक्तैरतितीव्रवेगैर्यैराहतो मृत्युरपि व्यथेत ॥६॥

अत्यन्त रौद्र कर्म करने वाले, महातेजस्वी अश्वत्थामा ने भी श्रीकृष्ण और अर्जुन के मर्मों में उत्तमता के साथ छोड़े हुए, अत्यन्त तीव्र वेगधारी, बाणों से प्रहार किया, जिनसे मृत्यु भी व्यथित हो सकता था ॥६॥

द्रौणेरिषूनर्जुनः सन्निवार्य व्यायच्छतस्तद् द्विगुणैः सुपुङ्खैः
तं साश्वसूतध्वजमेकवीरमावृत्य संशप्तकसैन्यमार्च्छत् ॥७॥
धनूंषि बाणानिषुधीर्धनुर्ज्याः पाणीन्भुजान्पाणिगतं च शस्त्रम्
छत्राणि केतूंस्तुरगानरथेषां वस्त्राणि माल्यान्यथ भूषणानि ॥८॥

चर्माणि वर्माणि मनोरमाणि प्रियाणि सर्वाणि शिरांसि चैव
चिच्छेद पार्थो द्विषतां सुयुक्तैर्बाणैः स्थितानामपराङ्मुखानाम्

बाण वर्षा करते हुए अश्वत्थामा के बाणों को रोक कर अर्जुन ने उत्तम मूलधारी दुगुने बाणों से महावीर अश्वत्थामा उसके अश्व, सारथि और ध्वजा को आच्छादित करके संशप्तक सेना पर बाण छोड़ना आरम्भ किया अब अर्जुन ने युद्ध में सन्मुख स्थित, शत्रु वीरों के धनुष, बाण, तूणीर, धनुष की डोरी, करतल, भुजा, हाथ में लिए हुए शस्त्र, छत्र, ध्वजा, अश्व, रथकीईषा, वस्त्र, माला, आभूषण, ढाल, कवच, सुन्दर और प्रिय बहुत से शिर काट २ कर रण भूमि में बिछा दिए ॥७-६॥

सुकल्पिताः स्यन्दनवाजिनागाः समास्थिता यत्नकृतैर्नृवीरैः ।
पार्थेरितैर्बाणशतैर्निरस्तास्तैरेव सार्द्धं नृवरा निपेतुः ॥१०॥

अच्छी तरह युद्ध सामग्री से सजा २ कर प्रयत्न करते हुए वीरों से सामने लाकर खड़े किये हुए रथ, अश्व और हाथी, अर्जुन के सैंकड़ों बाणों से कट २ रणभूमि में गिरने लगे और उनके साथ ही उनके सवार योद्धा भी गिर गए ॥१०॥

पद्मार्कपूर्णेन्दुनिभाननानि किरीटमाल्याभरणोज्ज्वलानि ।
भल्लार्धचन्द्रक्षुरकर्त्तितानि प्रपेतुरुर्व्यां नृशिरांस्यजस्रम् ॥११॥

हे राजन् ! इस समय कमल के तुल्य कान्तिधारी, किरीट, माला और आभूषणों से उज्ज्वल, भल्ल, अर्धचन्द्र, क्षुर आदि

विशेष २ बाणों से काटे हुए, कौरव सैनिक वीरों के शिर, लगातार रणभूमि में गिरने लगे ॥११॥

अथ द्विपैर्दैत्यरिपुद्विपाभैर्देवारिदर्पापहमत्युदग्रम् ।
कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादवीरा जिघांसवः पाण्डवमभ्यधावन् ॥१२॥

हे भारत! कलिङ्ग वङ्ग अङ्ग देश के निषादवीर, अर्जुन के वध की इच्छा से इन्द्र के ऐरावत हाथी के तुल्य आकारधारी हाथियों को लेकर दैत्यों के अभिमान को चूर्ण करने वाले अत्यन्त बलशाली पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर टूट पड़े ॥१२॥

तेषां द्विपानां निचकर्त्त पार्थो वर्माणि चर्माणि करान्नियन्तॄन्
ध्वजान्पताकाश्च ततः प्रपेतुर्वज्राहतानीव गिरेः शिरांसि ॥१३॥

अर्जुन ने भी इन गजों के कवच, चर्म, सूंड, महावतों ध्वजा और पताकाओं को इस तरह काट फैंका-जैसे-वज्र से आहत हुए पर्वत के शिखर काट कर गिरा दिए हों ॥१३॥

तेषु प्रभग्नेषु गुरोस्तनूजं बाणैः किरीटी नवसूर्यवर्णैः ।
प्रच्छादयामास महाभ्रजालैर्वायुः समुद्यन्तमिवांशुमन्तम् ॥१४॥

जब संशप्तक वीर, भाग गए-तो किरीट धारी अर्जुन ने सूर्य के तुल्य चमकीले नौ बाणों से गुरु-पुत्र अश्वत्थामा को इस तरह आच्छादित कर दिया-जैसे वायु मेघजाल से उदित होते हुए सूर्य को आच्छादित कर देता है ॥१४॥

ततोऽर्जुनेषूनिषुभिर्निरस्य द्रौणिः शितैरर्जुनवासुदेवौ ।
प्रच्छादयित्वा दिवि चन्द्रसूर्यौ ननाद सोऽम्भोद इवातपान्ते

इसके अनन्तर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, अपने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन के बाणों को काटकर और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन को अपने बाणों से आच्छादित करके गर्जना करने लगा। श्रीकृष्ण और अर्जुन, वर्षा में मेघों से आच्छादित चन्द्र और सूर्य के समान प्रतीत होने लगे ॥१५॥

तमर्जुनस्तांश्च पुनस्त्वदीयानभ्यर्दितस्तैरभिसृत्य शस्त्रैः।
बाणान्धकारं सहसैव कृत्वा विव्याध सर्वानिषुभिः सुपुङ्खैः

हे राजन अब तुम्हारे वीरों ने अर्जुन पर फिर आक्रमण किया। उनसे पीड़ित हुए अर्जुन ने अपने शस्त्रों से अश्वत्थामा और तुम्हारे उन कौरव वीरों को आहत करके एक दम बाणों का अन्धकार कर दिया। तथा सुन्दर मूलधारी बाणों से सबको बींध दिया ॥१६॥

नाप्याददत्सन्दधन्नैव मुञ्चन्बाणान्रथेऽदृश्यत सव्यसाची।
रथांश्च नागांस्तुरगान्पदातीन्संस्यूतदेहान्ददृशुर्हतांश्च ॥१७॥

हे भरतर्षभ ! सव्यसाची, अर्जुन कब बाण निकालता, कब चढ़ाता और कब छोड़ देता था, यह किसी को भी नहीं दिखाई देता था। लोग तो रथ, हाथी, अश्व और पैदलों को बिंधे हुए और मरे हुए ही देख पाते थे ॥१७॥

सन्धाय नाराचवरान्दशाशु द्रौणिस्त्वरन्नेकमिवोत्ससर्ज।
तेषां च पञ्चार्जुनमभ्यविध्यन्पञ्चाच्युतं निर्बिभिदुः सुपुङ्खा ॥१८॥

हे भारत! अब द्रोण-पुत्र ने एक दम सुन्दर मूलधारी दश बाण धनुष पर चढ़ाए और बड़ी शीघ्रता से उनको छोड़ दिया। उनमें से पांच ने तो अर्जुन और पांच ने श्रीकृष्ण को क्षत विक्षत कर दिया ॥१८॥

तैराहतौ सर्वमनुष्यमुख्यावसृक्स्रवन्तौ धनदेन्द्रकल्पौ ।
समाप्तविद्येन तथाभिभूतौ हतौ रणे ताविति मेनिरेऽन्ये ॥१६॥

इन बाणों से आहत हुए सब मनुष्यों में उत्तम वीर, कुबेर और इन्द्र के समान पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन के शरीर से रक्त धारा बह निकली। युद्ध विद्या के पूर्ण ज्ञाता, अश्वत्थामा द्वारा आहत किये हुए श्रीकृष्ण और अर्जुन को इस समय कौरव वीरों ने रण में मार लिया हुआ ही समझा ॥१६॥

अथार्जुनं प्राह दशार्हनाथः प्रमाद्यसे किं जहि योधमेतम् ।
कुर्याद्धि दोषं समुपेक्षितोऽयं कष्टो भवेद्व्याधिरिवाक्रियावान् ॥

अब दशार्ह देश के अधिपति श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा— तुम क्यों प्रमाद कर रहे हो-इस योद्धा को मार गिराओ। यदि तुमने इसकी उपेक्षा की तो यह बहुत बुरा परिणाम खड़ा कर देगा जैसे-चिकित्सा न की हुई व्याधि मनुष्य को मार बैठती है ॥२०॥

तथेति चोक्त्वाच्युतमप्रमादी द्रौणिं प्रयत्नादिषुभिस्ततक्ष ।
भुजौ वरौ चन्दनसारदिग्धौ वक्षः शिरोऽथाप्रतिमौ तथोरू ॥
गाण्डीवमुक्तैः कुपितो विकर्णैर्द्रौणिं शरैः संयति निर्बिभेद ।

अर्जुन ने भगवान् कृष्ण से कहा-अच्छी बात है-इतना कह कर बड़ी सावधानी से प्रमाद नहीं करने वाले कुपित अर्जुन ने, अश्वत्थामा की बड़ी श्रेष्ठ चन्दन लिप्त भुजा, वक्षस्थल, शिर और अत्युत्तम जंघाओं को कान तक खैंचकर गाण्डीव से छोड़े हुए बाणों द्वारा वींध डाला और अनेक बाण छोड़कर इस तरह अश्वत्थामा को क्षत विक्षत कर दिया ॥२१॥

छित्त्वा तु रश्मींस्तुरगानविध्य ते तं रणादूहुरतीव दूरम् ॥२२॥
स तैर्हृतो वातजवैस्तुरङ्गैर्द्रौणिर्दृढं पार्थशराभिभूतः ।

अर्जुन ने अश्वत्थामा के अश्वों की रस्सी काट डाली और अश्वों को आहत कर दिया। अर्जुन के दृढ़ बाण से आहत अश्वत्थामा को वे वायु के तुल्य वेग वाले अश्व रण में बहुत दूर लेकर भाग गए ॥२२॥

इयेष नावृत्य पुनस्तु योद्धुं पार्थेन सार्द्धं मतिमान्विमृश्य ।
ज्ञात्वा जयं नियतं वृष्णिवीरे धनञ्जये चाङ्गिरसां वरिष्ठः ॥२३॥

हे नृप ! बुद्धिमान् अश्वत्थामा ने कुछ सोच विचार लिया, और फिर लौटकर अर्जुन से लड़ने का उसका साहस नहीं हुआ। अङ्गिरस गोत्री अश्वत्थामा ने यह समझ लिया, कि विजय तो वृष्णिवीर श्रीकृष्ण और अर्जुन के ही पक्ष में रहेगी ॥२३॥

नियम्य स हयान्द्रौणिः समाश्वास्य च मारिष ।
रथाश्वनरसम्बाधं कर्णस्य प्राविशद्बलम् ॥२४॥

हे आर्य ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अश्वों को रोककर उनको आश्वासन दिया और वह रथ, अश्व, और वीरों से भरे हुए, कर्ण की सेना में घुस गया ॥२४॥

प्रतीपकारिणि रणादश्वत्थाम्नि हृते हयैः ।
मन्त्रौषधिक्रियायोगैर्व्याधौ देहादिवाहृते ॥२५॥
संशप्तकानभिमुखौ प्रयातौ केशवार्जुनौ ।
वातोद्धूतपताकेन स्यन्दनेनौघनादिना ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वण्यश्वत्थामपराजये सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

जब विरुद्ध क्रिया करने वाले, अश्वत्थामा को रण से अश्व, देह से व्याधि के मन्त्र, औषध और क्रिया के योग की तरह ले भागे तो केशव और अर्जुन संशप्तक वीरों की ओर वायु से कम्पित पताका वाले, जल प्रवाह के समान ध्वनिकर्ता रथ से बड़े वेग के साथ झपटे ॥२५-२६॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अर्जुन और अश्वत्थामा के युद्ध का सत्रहवां अध्याय समाप्त हुआ ।

अट्ठारहवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अथोत्तरेण पाण्डूनां सेनायां ध्वनिरुत्थितः ।
रथनागाश्वपत्तीनां दण्डधारेण वध्यताम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इसके अनन्तर पाण्डवों की सेना के उत्तर की ओर राजा दण्डधार द्वारा भागी जाती हुई रथ, अश्व, हाथी और पैदलों की चतुरङ्गिणी सेना का महान कोलाहल खड़ा हो गया ॥१॥

निवर्त्तयित्वा तु रथं केशवोऽर्जुनमब्रवीत् ।
वाहयन्नेव तुरगान्गरुडानिलरंहसः ॥२॥

अब भगवान कृष्ण ने, गरुड़ और वायु के तुल्य वेग वाले अश्वों को चलाते हुए और रथ को दौड़ाते हुए अर्जुन से कहा ॥२॥

मागधोऽप्यतिविक्रान्तो द्विरदेन प्रमाथिना ।
भगदत्तादनवरः शिक्षया च बलेन च ॥३॥

एनं हत्वा निहन्तासि पुनः संशप्तकानिति ।
वाक्यान्ते प्रापयत्पार्थं दण्डधारान्तिकं प्रति ॥४॥

हे अर्जुन! यह दण्डधार नामक मगध देश का राजा है। इसके पास एक सेना को मथ देने वाला हाथी है। जिस से बड़ा विकराल हो रहा है। यह युद्ध शिक्षा और बल में राजा भगदत्त से कम नहीं है। तुम प्रथम इसको मार लो-उसके बाद संशप्तकों

को मारना। इतना वाक्य पूरा भी नहीं हो पाया था, कि श्रीकृष्ण ने अर्जुन को राजा दण्डधार के सन्मुख ले जा खड़ा किया ॥३-४॥

स मागधानां प्रवरोऽङ्कुशग्रहे ग्रहेऽप्रसह्यो विकचो यथा ग्रहः ।
सपत्नसेनां प्रममाथ दारुणो महीं समग्रां विकचो यथा ग्रहः ॥

हे राजन्! यह मगध देश का श्रेष्ठ महारथी; हाथी का बहुत उत्तम सवार था। यह इतना भयङ्कर हो रहा था, जैसे गृहों के मध्य में धूमकेतु होता है। इस भयङ्कर राजा ने शत्रु सेना को इस तरह मथ डाला जैसे-धूमकेतु गृह सारी पृथिवी को व्याकुल कर देता है ॥५॥

सुकल्पितं दानवनागसन्निभं महाभ्रनिर्ह्रादममित्रमर्दनम् ।
रथाश्वमातङ्गगणान्सहस्रशः समास्थितो हन्ति शरैर्नरानपि ॥

यह राजा दण्डधार दानवराज के हाथी के तुल्य भीषण महावेग के तुल्य गर्जना करने वाले, शत्रु नाशक, हाथी पर बैठकर अपने बाणों से रथ, अश्व, हाथी और सहस्रों वीरों को बाणों से मार २ कर बिछाने लगा ॥६॥

रथानधिष्ठाय स वाजिसारथीन्नरांश्च पादैर्द्विरदो व्यपोथयत् ।
द्विपांश्च पद्भ्यां ममृदे करेण द्विपोत्तमो हन्ति च कालचक्रवत्

इस राजा दण्डधार के गजराज ने, अपने पैरों से रथों को दावकर अश्व और सारथि सहित उसके वीरों को भी कुचल डाला। यह गजश्रेष्ठ, कालचक्र की भांति अपने पैरों से शत्रुओं के हाथियों को भी कुचल देता था ॥७॥

नरांस्तु कार्ष्णायसवर्मभूषणान्निपात्य साश्वानपि पत्तिभिः सह
व्यपोथयद्दन्तिवरेण शुष्मिणा स शब्दवत्स्थूलनलं यथा तथा

दृढ़ लोह के निर्मित कवचधारी, अश्वारोहियों को अश्वों तथा पैदलों के साथ इस महाबली हाथी ने कुचल २ कर इस तरह डाल दिया जैसे चटाचट शब्द करते हुए मोटे मोटे नल वाले वन को मथ दिया हो ॥८॥

अथार्जुनो ज्यातलनेमिनिःस्वने मृदङ्गभेरीबहुशङ्खनादिते ।
रथाश्वमातङ्गसहस्रसंकुले रथोत्तमेनाभ्यपतद् द्विपोत्तमम् ॥६

हे महीपते ! अब अर्जुन ने भी धनुष की डोरी, करतलत्राण और रथनेमि के शब्द से भरे हुए, मृदङ्ग भेरी और बहुत से शङ्खों से शब्दायमान, सहस्रों रथ, अश्व और हाथियों से व्याप्त, रणाङ्गण में उस गजराज पर अपने उत्तम रथ द्वारा आक्रमण किया ॥६॥

ततोऽर्जुनं द्वादशभिः शरोत्तमैर्जनार्दनं षोडशभिः समार्पयत् ।
स दण्डधारस्तुरगांस्त्रिभिस्त्रिभिस्ततो ननाद प्रजहास चासकृत्

अब राजा दण्डधार ने बड़े तीखे बारह बाण अर्जुन और सोलह बाण श्रीकृष्ण पर छोड़े तथा वह तीन २ बाण, अश्वों पर मार कर सिंहनाद करके बार २ हँसने लगा ॥१०॥

ततोऽस्य पार्थः सगुणेषुकार्मुकं चकर्त्त भल्लैर्ध्वजमप्यलंकृतम् ।
पुनर्नियन्तॄन्सहपादगोप्तृंस्ततः स चुक्रोध गिरिव्रजेश्वरः ॥११

हे भरतर्षभ ! अब अर्जुन ने इसके बाण डोरी सहित धनुष और सुशोभित ध्वजा को अपने चमकीले बाण से काट गिराया तथा गज के चलाने वाले और पाद रक्षकों को भी मार दिया, जिससे गिरव्रजेश्वर राजा दण्डधार बड़ा कुपित हुआ ॥११॥

ततोऽर्जुनं भिन्नकटेन दन्तिना घनोपमेनानिलतुल्यवर्चसा ।
अतीव चुक्षोभयिषुर्जनार्दनं धनञ्जयं चाभिजघान तोमरैः ॥१२॥

अग्नि के तुल्य तेजस्वी, मेघके सदृश विशाल, मदस्रावी हाथी के द्वारा अर्जुन को बाधित करते हुए राजा दण्डधार ने भी तोमर नामक बाणों से जनार्दन श्रीकृष्ण और धनञ्जय अर्जुन को अत्यन्त घायल कर दिया ॥१२॥

अथास्य बाहू द्वीपहस्तसन्निभौ शिरश्च पूर्णेन्दुनिभाननं त्रिभिः
क्षुरैः प्रचिच्छेद सहैव पाण्डवस्ततो द्विपं बाणशतैः समार्पयत्

इसके अनन्तर हाथी की सूंड के सदृश राजा दण्डधार, की भुजा, और पूर्व चन्द्रमा के तुल्य उसके मुख को तीन बाणों से एक दम पाण्डु-पुत्र ने काट गिराया तथा उसके हाथी के ऊपर सैंकड़ों बाण छोड़े ॥१३॥

स पार्थबाणैस्तपनीयभूषणैः समाचितः काञ्चनवर्मभृद् द्विपः
तथा चकाशे निशि पर्वतो यथा दावाग्निना प्रज्वलितौषधिद्रुमः

हे भारत ! सुवर्ण के कवच से आवृत वह गजराज सुवर्ण जटित अर्जुन के बाणों से व्याप्त हो गया । वह इस समय चमचमाती हुई ओषधि के वृक्षों से युक्त रात में दावाग्नि से जलते हुए पर्वत के समान दिखाई देने लगा ॥१४॥

स वेदनार्त्तोऽम्बुदनिःस्वनो नदंश्चरन्भ्रमन्प्रस्खलितान्तरोऽद्रवत्
पपात रुग्णः सनियन्तृकस्तथा यथा गिरिर्वज्रविदारितस्तथा ॥

यह गजराज, उन बाणों की वेदना से व्याकुल होकर मेघ के तुल्य ध्वनि में चीत्कार करने और कभी चक्कर खाकर घूमने तथा बीचमें २ गिरने के झटके खाने लगा। थोड़ी देर में व्याकुल होकर अपने महावत के साथ इस तरह गिर गया-जैसे वज्र से विदारित किया हुआ पर्वत गिर जाता है ॥१५॥

हिमावदातेन सुवर्णमालिना हिमाद्रिकूटप्रतिमेन दन्तिना ।
हते रणे भ्रातरि दण्ड आव्रजज्जिघांसुरिन्द्रवरजं धनञ्जयम् ॥

हे राजन्! राजा दण्डधार के रण में मारे जाने पर उसका भाई महाबलीदण्ड, श्रीकृष्ण और अर्जुन के मारने की इच्छा से हिम के समान श्वेत, सुवर्ण माला पहने हुए, हिमालय के तुल्य ऊंचे हाथी पर बैठकर आगे आया ॥१६॥

स तोमरैरर्ककरप्रभैस्त्रिभिर्जनार्दनं पञ्चभिरर्जुनं शितैः ।
समर्पयित्वा विननाद नर्दयंस्ततोऽस्य बाहू निचकर्त्त पाण्डवः

इसने सूर्य की किरणों के तुल्य तीन तोमर संज्ञक बाणों से जनार्दन कृष्ण और पांच तीखे बाणों से अर्जुन को बींध कर बड़ी गर्जना की । इसी बीच में पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने उसकी भुजा काट डाली ॥१७॥

क्षुरप्रकृत्तौ सुभृशं सतोमरौ शुभाङ्गदौ चन्दनरूषितौ भुजौ ।
गजात्पतन्तौ युगपद्विरेजतुर्यथाद्रिशृङ्गाद्रुचिरौ महोरगौ ॥१८

क्षुर के समान तीक्ष्ण बाणों से अच्छी तरह काटी हुई, तोमर सहित, सुन्दर अङ्गद नामक आभूषणधारी, चन्दन चर्चित इसकी भुजाएँ एक दम उस गजराज से पड़ती हुई इस प्रकार सुशोभित हुई-जैसे-पर्वत शिखर से दो अजगर सर्प गिर रहे हों ॥१८॥

तथार्धचन्द्रेण हतं किरीटिना पपात,
दग्धस्य शिरः क्षितिं द्विपात् ।
सशोणितार्द्रान्निपतन्विरेजे,
दिवाकरोऽस्तादिव पश्चिमां दिशम् ॥१६॥

इसके बाद अर्धचन्द्र नामक बाण से अर्जुन द्वारा काटा हुआ इस दुष्ट दण्ड का शिर रुधिर में भीगे हुए हाथी से पृथ्वी में इस प्रकार गिरा-जैसे-अस्ताचल से पश्चिम दिशा में सूर्य गिर रहा हो ॥१६॥

अथ द्विपं श्वेतवराभ्रसन्निभं दिवाकरांशुप्रतिमैः शरोत्तमैः ।
बिभेद पार्थः स पपात नादयन्हिमाद्रिकूटं कुलिशाहतं यथा ॥

हे राजन् ! श्वेत बादलों के समान उस गजराज को सूर्य किरणोंपम बाणों से अर्जुन ने छेद डाला । इस समय वह हाथी चिघाड़ मारता हुआ इस तरह गिर गया-जैसे-वज्र से मारा हुआ हिमालय पर्वत का कोई शिखर गिरा हो ॥२०॥

ततोऽपरे तत्प्रतिमा गजोत्तमा जिगीषवः संयति सव्यसाचिना
तथा कृतास्ते च यथैव तौ द्विपौ ततः प्रभग्नं सुमहद्रिपोर्बलम्

इसी तरह अन्य भी उसी तरह के गजराज, अर्जुन को जीत लेना चाहते थे, परन्तु किरीटधारी अर्जुन ने युद्ध में उनकी भी वही दशा करदी, जो इन दो हाथियों की थी। इसके बाद शत्रु की वह विशाल सेना भाग खड़ी हुई ॥२१॥

गजा रथाश्वाः पुरुषाश्च सङ्घशः परस्परघ्नाः परिपेतुराहवे ।
परस्परं प्रस्खलिताः समाहिता भृशं निपेतुर्बहुभाषिणो हताः

हे राजन्! अब गज, अश्व, रथ और पुरुषों के समूह, रण में एक दूसरे को कुचलते हुए भाग निकले। ये एक दूसरे से टकरा कर अत्यन्त आहत हो जाते और अत्यन्त चीत्कार करते हुए मारे जाते थे ॥२२॥

अथार्जुनं स्वे परिवार्य सैनिकाः
पुरन्दरं देवगणा इवाब्रुवन् ।
अभैष्म यस्मान्मरणादिव प्रजाः,
स वीर दिष्ट्या निहतस्त्वया रिपुः ॥२३॥

अब अर्जुन को इन्द्र को देवों की तरह उसके सैनिक घेर कर यह कहने लगे—हे वीर! काल से प्रजा की भांति जिससे हम डर रहे थे, बड़े हर्ष की बात है, कि उस उद्दण्ड शत्रु को तुमने मार गिराया ॥२३॥

न चेद्रक्षिष्य इमं जनं भयाद् द्विषद्भिरेवं बलिभिः प्रपीडितम्
तथा भविष्यद् द्विषतां प्रमोदनं यथा हतेष्वेष्विह नोऽरिसूदन

हे अरिसूदन ! यदि तुम भय से आतुर इस अपने जनसमूह की रक्षा नहीं करते-जो बलवान् शत्रुओं से पीड़ित था-तो इससे परिणाम में शत्रुओं को बड़ा आनन्द मिलता, जैसे-अब हम लोगों को इनके मारे जाने से मिला है ॥२४॥

इतीव भूयश्च सुहृद्भिरीडिता निशम्य वाचः सुमनास्ततोऽर्जुनः
यथानुरूपं प्रतिपूज्य तं जनं जगाम संशप्तकसङ्घहा पुनः ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि दण्डवधेऽष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

हे भरतर्षभ ! इस प्रकार अपने मित्र लोगों से कही हुई वाणी को सुनकर अर्जुन बड़ा प्रसन्न हुआ उसने यथा योग्य उस जनसमूह का आदर करके संशप्तक वीरों के मारने के लिए फिर यात्रा की ॥२५॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में राजा दण्डधार
और उसके भ्राता दण्ड के वध के वर्णन का
अट्ठारहवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



उन्नीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रत्यागत्य पुनर्जिष्णुर्जघ्ने संशप्तकान्बहून् ।
वक्रातिवक्रगमनादङ्गारक इव ग्रहः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! अब लौटकर अर्जुन ने फिर इस प्रकार संशप्तक गणों का मारना आरम्भ किया, जैसे-वक्र या अतिवक्र होकर मङ्गल नामक ग्रह प्रजा का संहार करता है ॥

पार्थबाणहता राजन्नराश्वरथकुञ्जराः ।
विचेलुर्बभ्रमुर्नेशुः पेतुर्मम्लुश्च भारत ॥२॥

हे भारत ! अर्जुन के बाण से आहत नर, अश्व, रथी और हाथी चक्कर खाकर घूमने, नष्ट होने, गिरने और निस्तेज होने लगे ॥२०॥

धुर्यान्धुर्यगतान्सूतान्ध्वजांश्चापानि सायकान् ।
पाणीन्पाणिगतं शस्त्रं बाहूनपि शिरांसि च ॥३॥
भल्लैः क्षुरैरर्धचन्द्रैर्वत्सदन्तैश्च पाण्डवः ।
चिच्छेदामित्रवीराणां समरे प्रतियुध्यताम् ॥४॥

हे भरतश्रेष्ठ ! क्षुर, अर्धचन्द्र, वत्सदन्त आदि विशेष २ बाणों से रण में सन्मुख युद्ध करने वाले, शत्रु वीरों के रथ में आगे जुड़े हुए अश्व और उनके पीछे के अश्व, सारथि ध्वजा, धनुष, बाण, हाथ और हाथ के शस्त्र, भुजा और शिरों को पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने काट २ कर गिरा दिया ॥३-४॥

वासितार्थे युयुत्सन्तो वृषभा वृषभं यथा ।
निपतन्त्यर्जुनं शूराः शतशोऽथ सहस्रशः ॥५॥

गर्भ ग्रहण करने आई हुई गाय के निमित्त अनेक वृषभ जैसे-एक वृषभ पर टूट पड़ते हैं, वैसे-ही सैंकड़ों हज़ारों शूरवीर अर्जुन पर टूट पड़े ॥५॥

तेषां तस्य च तद्युद्धमभवल्लोमहर्षणम् ।
त्रैलोक्यविजये यादृग्दैत्यानां सह वज्रिणा ॥६॥

अर्जुन और इन कौरव वीरों का वैसा ही लोमहर्षण युद्ध खड़ा हो गया-जैसे-त्रिलोकी के विजय में इन्द्र के साथ दैत्यों का होने लगा था ।६॥

तमविध्यत्त्रिभिर्बाणैर्दन्दशूकैरिवाहिभिः ।
उग्रायुधसुतस्तस्य शिरः कायादपाहरत् ॥७॥

अब राजा उग्रायुध के पुत्र ने तीक्ष्ण दांत मारने वाले सर्पों के समान तीन तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया, परन्तु अर्जुन ने एक बाण मारकर उसके शरीर से उसका शिर पृथक कर दिया ॥७॥

तेऽर्जुनं सर्वतः क्रुद्धा नानाशस्त्रैरवीवृषन् ।
मरुद्भिः प्रेरिता मेघा हिमवन्तमिवोष्णगे ॥८॥

अब बहुत से वीरों ने अर्जुन को घेर लिया, और अनेक शस्त्रों की उसपर इस तरह वर्षा करने लगे-जैसे वायु से प्रेरितमेघ, वर्षाकाल में हिमालय पर बरस पड़ते हैं ॥८॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य द्विषतां सर्वतोऽर्जुनः ।
सम्यगस्तैः शरैः सर्वानहितानहनद्बहून् ॥९॥

हे भारत ! अर्जुन ने अपने अस्त्रों द्वारा सब ओर से शत्रुओं के अस्त्र रोक दिए और अच्छी तरह छोड़े हुए शस्त्रों से बहुत से शत्रुओं को मार गिराया ॥९॥

छिन्नत्रिवेणुसङ्घातान्हताश्वान्पार्ष्णिसारथीन् ।
विस्रस्तहस्ततूणीरान्विचक्ररथकेतनान् ॥१०॥
सञ्छिन्नरश्मियोक्त्राक्षान्व्यनुकर्षयुगान्रथान् ।
विध्वस्तसर्वसन्नाहान्बाणैश्चक्रेऽर्जुनस्तदा ॥११॥

हे राजन् ! अब अपने बाणों से अर्जुन ने शत्रुओं के बहुत से बाण काट डाले, अश्व मार डाले, पृष्ठ रक्षक और सारथि क्षत-विक्षत कर दिए, रथियों के हाथ तूणीर छेद दिए, रथों के चक्र रथ केतन, रस्सी जोते, अक्ष, अनुकर्ष (ऊंचे नीचे काष्ठ) और जूड़े चकनाचूर कर दिए। सारे सैनिकों के सब तरह के कवच काट डाले ॥१०-११॥

ते रथास्तत्र विध्वस्ताः परार्ध्या भान्त्यनेकशः ।
धनिनामिव वेश्मानि हतान्यग्न्यनिलाम्बुभिः ॥१२॥

बहुत से मूल्य से बनाये हुए वे अनेक रथ रण भूमि में पड़े हुए ऐसे दिखाई देते थे-जैसे अग्नि, वायु और जल से नष्ट भ्रष्ट किये हुए धनियों के घर हों ॥१२॥

द्विपाः संभिन्नमर्माणो वज्राशनिसमैः शरैः ।
पेतुर्गिर्यग्रवेश्मानि वज्रपाताग्निभिर्यथा ॥१३॥

हे राजन्! इस समय वज्राशनि के तुल्य बाणों से भिन्न मर्म वाले हाथी इस तरह गिरने लगे-जैसे—वज्रपात या अग्नि से पर्वत की चोटी के भवन गिर रहे हों ॥१३॥

सारोहास्तुरगाः पेतुर्बहवोऽर्जुनताडिताः ।
निर्जिह्वान्त्राः क्षितौ क्षीणा रुधिरार्द्राः सुदुर्दृशः ॥

अर्जुन के बाण से पीड़ित होकर अपने सवारों के साथ बहुत से अश्व गिर गए जिनकी जिह्वा और आंतें निकल पड़ी और वे रुधिर में भीगे हुए बड़ी दुर्दशा में आंख निकाल कर पृथिवी में पड़े हैं ॥१४॥

नराश्वनागा नाराचैः संस्यूताः सव्यसाचिना ।
बभ्रमुश्चस्खलुः पेतुर्नेदुर्मम्लुश्च मारिष ॥१५॥

हे आर्य! सव्यसाची अर्जुन द्वारा नर हाथी और अश्व तीक्ष्ण बाणों से बींध लिये गए-वे चक्कर खाकर झूमने, गिरने, चीखने और प्राण विहीन होने लगे ॥१५॥

अनेकैश्च शिलाधौतैर्वज्राशनिविषोपमैः ।
शरैर्निजघ्निवान्पार्थो महेन्द्र इव दानवान् ॥१६॥

अब अर्जुन ने शिला पर तीक्ष्ण किए हुए वज्राशनि के तुल्य अनेक बाणों से शत्रुओं को इस तरह आहत कर दिया-जैसे-इन्द्र दानवों को घायल बना देता है ॥१६॥

महार्हवर्माभरणा नानारूपाम्बरायुधाः ।
सरथाः सध्वजा वीरा हताः पार्थेन शेरते ॥१७॥

अत्यन्त मूल्य के कवच और आभूषणधारी, अनेक रङ्ग के वस्त्र और शस्त्र धारण करने वाले वीर, रथ और ध्वजासहित अर्जुन से मारे हुए रण भूमि में सो रहे थे ॥१७॥

विजिताः पुण्यकर्माणो विशिष्टाभिजनश्रुताः ।
गताः शरीरैर्वसुधामूर्जितैः कर्मभिर्दिवम् ॥१८॥

जो पुण्यात्मा रण में मारे गए-वे कुलीन और शास्त्र के ज्ञाता थे । इनके ज्यों ही शरीर पृथिवी पर गिरे,त्यों ही वे अपने इन दिव्य कर्मों के द्वारा स्वर्ग में पहुंच गए ॥१८॥

यथार्जुनं रथवरं त्वदीयाः समभिद्रवन् ।
नानाजनपदाध्यक्षाः सगणा जातमन्यवः ॥१६॥

हे राजन ! अब तुम्हारे पक्ष के अनेक देशों के अध्यक्ष सामन्त अपनी २ सेना लेकर क्रोध के साथ महारथी अर्जुन पर टूट पड़े ॥१६॥

उह्यमाना रथाश्वेभैः पत्तयश्च जिघांसवः ।
समभ्यधावन्नस्यन्तो विविधं क्षिप्रमायुधम् ॥२०॥

बहुत से वीर, हाथी अश्व और रथों पर सवार थे और बहुत से पैदल सैनिक ही अर्जुन के मारने के दाव में दौड़ रहे थे। ये अनेक भांति के आयुधों को शीघ्रता के साथ छोड़ते हुए अर्जुन पर झपटे ॥२०॥

तदायुधमहावर्षं मुक्तं योधमहाम्बुदैः ।
व्यधमन्निशितैर्बाणैः क्षिप्रमर्जुनमारुतः ॥२१॥

कौरवों के योद्धा रूपी मेघों से छोड़ी हुई अनेक अस्त्रों की वर्षा को अपने तीक्ष्ण बाणों से अर्जुन रूपी वायु ने बड़ी शीघ्रता से छिन्न भिन्न कर डाला ।२१॥

साश्वपत्तिद्विपरथं महाशस्त्रौघसम्प्लवम् ।
सहसा सन्तितीर्षन्तं पार्थं शस्त्रास्त्रसेतुना ॥२२॥
अथाब्रवीद्वासुदेवः पार्थ किं क्रीडसेऽनघ ।
संशप्तकान्प्रमथ्यैनांस्ततः कर्णवधे त्वर ॥२३॥

हे राजन् ! अश्व, पैदल सैनिक, हाथी और रथों से व्याप्त, महान् शस्त्र समूह उफनते हुए सेना समूह को अपने अस्त्रास्त्र रूपी सेतु से तैरते हुए अर्जुन से वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण बोले—हे सर्व गुण सम्पन्न ! अर्जुन ! तुम क्या खेल सा कर रहे हो-इन संशप्तकों को मार कर कर्ण के वध के लिए शीघ्रता करो ॥२२-२३॥

तथेत्युक्त्वार्जुनः कृष्णं शिष्टान्संशप्तकांस्तदा ।
आक्षिप्य शस्त्रेण बलाद्दैत्यानिन्द्र इवावधीत् ॥२४॥

श्रीकृष्ण के इतना कहते ही अर्जुन ने कहा—अच्छा ? और इतना कह कर उसने शस्त्रों से दबाकर शेष रहे हुए संशप्तक वीरों को बल पूर्वक इस तरह मार गिराया-जैसे—दैत्यों को इन्द्र मार देता है ॥२४॥

आददत्सन्दधन्नेपून्दृष्टः कैश्चिद्रणेऽर्जुनः ।
विमुञ्चन्वा शराञ्शीघ्रं दृश्यतेऽत्रहितैरपि ॥२५॥

अब बाण निकालता और धनुष पर चढ़ाता हुआ अर्जुन किसी को दिखाई नहीं देता था। वह बड़ी शीघ्रता से बाण छोड़ रहा था, जिसे कोई बड़ी सावधानी से देख पाता था ॥२५॥

आश्चर्यमिति गोविन्दः सममन्यत भारत ।
हंसांशुगौरास्ते सेनां हंसाः सर इवाविशन् ॥२६॥

हे भारत ! इस प्रकार अर्जुन के बाण छोड़ने से श्रीकृष्ण को भी आश्चर्य होता था हंस के तुल्य श्वेत वर्ण वाले वे बाण अर्जुन के सरोवर में हँस की तरह कौरव सेना में घुसने लगे ॥२६॥

ततः संग्रामभूमिं च वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥२७॥
एष पार्थ महारौद्रो वर्त्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां पार्थिवानां वै दुर्योधनकृते महान् ॥२८॥

जब इस प्रकार जन संहार हो गया-तो संग्राम भूमि को देखते हुए भगवान् कृष्ण, सव्यसाची अर्जुन से बोले—हे पार्थ ! यह भरतवंश का महान् विनाश तथा पृथिवी के अनेक राजाओं का विध्वंस सब दुर्योधन के निमित्त से हो रहा है ॥२७-२८॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ।
महतां चापविद्धानि कलापानिषुधींस्तथा ॥२९॥

जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्च नतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान्विमुक्तानिव पन्नगान् ॥३०॥
आकीर्णांस्तोमरांश्चापि विचित्रान्हेमभूषितान् ।
चर्माणि चापविद्धानि रुक्मपृष्ठानि भारत ॥३१॥

हे भारत ! बड़े २ धनुषधारियों के सुवर्ण पीठ वाले टूटे-फूटे धनुषों को देखो तथा आभूषण और तूणीरों की ओर दृष्टि डालो। सुवर्ण से जड़ित मूलधारी, नत पर्व वाले बाण तैल से चमकाए हुए सर्पों की तरह छोड़े हुए नाराच बाण सुवर्ण से चित्रित बिखरे हुए तोमर बाण तथा सुवर्ण की पीठवाली खण्डित ढालों को देखो ॥२९-३१॥

सुवर्णविकृतान्प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषिताः ।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥३२॥
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान्हेमभूषितान् ।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान्परश्वधान् ॥३३॥
परिघान्भिन्दिपालांश्च भुशुण्डीः कुणपानपि ।
अयस्कुन्तांश्च पतितान्मुसलानि गुरूणि च ॥३४॥

हे अर्जुन ! सुवर्ण से निर्मित प्रास, कनक भूषित शक्ति, सुवर्ण के पत्रों में बन्धी हुई अनेक गदा, सुवर्ण जटित ऋष्टि, सुवर्ण मय पट्टिश, सुवर्ण से चित्रित दण्ड, खण्डित परश्वध, परिघ, भिन्दि-पाल भुशुण्डी, कुणप, अयस्कुन्त, तथा गिरे हुए बड़े २ भारी मुसलों को देखो ॥३२-३४॥

नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ।
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्वास्तरस्विनः ॥३५॥

जरा इधर तो देखो, कि विजयाभिलाषी वेगशाली वीर, अनेक शस्त्रों को हाथ में लिए हुए ही मरे पड़े हैं-जो अब तक जीवित से दिखाई देते हैं ॥३५॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ।
गजवाजिरथैः क्षुण्णान्पश्य योधान्सहस्रशः ॥३६॥

इन वीरों के गदाओं से गात्र मर्दित और मुसलों से मस्तक छिन्न भिन्न हो रहे हैं। तुम इन सहस्रों योद्धाओं को देखो, कि इन के शरीर, गज, अश्व और रथों से चकनाचूर हो रहे हैं ॥३६॥

मनुष्यगजवाजीनां शरशक्त्यृष्टितोमरैः ।
निस्त्रिंशैः पट्टिशैः प्रासैर्नखरैर्लगुडैरपि ॥३७॥
शरीरैर्बहुधा छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ।
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ॥३८॥

हे शत्रुघ्न ! शर, शक्ति, ऋष्टि, तोमर, तलवार, पट्टिश, प्रास, नखर, लट्ठ, आदि शस्त्रों से मनुष्य, अश्व और हाथियों के अनेक प्रकार से कटे हुए रुधिर समूह से व्याप्त, प्राणहीन शरीरों से रण भूमि संकीर्ण हो रही है ॥३७-३८॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैः शुभभूषणैः ।
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ॥३९॥

सांगुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ।
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ॥४०॥
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ।

हे भारत ! चन्दन चर्चित अङ्गद नामक आभूषण तथा अन्य आभूषणों से सुशोभित बाहु और करतलत्राण तथा केयूरों से व्याप्त एवं अंगुलित्राण सहित तथा अलङ्कारों से युक्त छिन्न-भिन्न हाथ एवं वेग शाली वीरों की हाथो की सूंड के तुल्य कटी हुई जंघा और बंधी हुई चूड़ामणियों तथा कुण्डलों सहित शिरों से समन्वित यह रण भूमि कैसी विचित्र दिखाई दे रही है ॥३६-४०॥

रथांश्च बहुधा भग्नान्हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥४१॥
अश्वांश्च बहुधा पश्य शोणितेन परिप्लुतान् ।

हे अर्जुन ! तुम सुवर्ण की किङ्किणियों से भरे हुए बहुत से रथ और रुधिर से व्याप्त बहुत से अश्वों को देखो ॥४१॥

अनुकर्षानुपासङ्गान्पताका विविधान्ध्वजान् ॥४२॥
योधानां च महाशङ्खान्पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान्
निरस्तजिह्वान्मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ॥४३॥
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजयोधिनः ।
वारणानां परिस्तोमान्संयुक्तानेककम्बलान् ॥४४॥
विपाटितविचित्राश्च रूपचित्राः कुथास्तथा ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टाः पतद्भिश्चूर्णिता गजैः ॥४५॥

वैदूर्यमणिदण्डांश्च पतितांश्चांकुशान्भुवि ।
अश्वानां च युगापीडान्रत्नचित्रानुरश्छदान् ॥४६॥

यह देखो ? रथ के अनुकर्ष, उपासङ्ग, पताका और अनेक ध्वजाएँ पड़ी हुई हैं । इधर योद्धाओं के अत्यन्त श्वेत वर्ण के बड़े २ शङ्ख बिखरे पड़े हैं । दूसरी ओर जिह्वा निकाले हुए पर्वत के तुल्य आकारधारी हाथी लेटे पड़े हैं । कहीं विचित्र २ ध्वजा पताका और मारे हुए गजारोही पड़े हैं । कहीं पर अनेक कम्बलों से बनी हुई हाथियों की झूल पड़ी है । कहीं पर अद्भुत २ कटी फटी विचित्र हाथियों की कुथा (गुदड़ी) दिखाई दे रही है । इधर उधर घूमते हुए हाथियों ने गिरी हुई बहुत सी घण्टाएँ चकनाचूर कर रखी हैं । नील मणियों से जटित दण्ड वाले अनेक अंकुश कहीं पर पड़े हैं । कहीं पर अश्वों के आभूषण और कहीं पर रत्न जटित उरश्छद दिखाई दे रहे हैं ॥४२-४६॥

विद्धाः सादिध्वजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कुथाः ।
विचित्रान्मणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ॥४७॥

अश्वास्तरपरिस्तोमान्राङ्कवान्पतितान्भुवि ।
चूडामणीन्नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ॥४८॥
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ।

अश्वारोहियों की ध्वजा के साथ सुवर्ण निर्मित अश्वों की जीन भी पड़ी है । मणियों से चित्रित विचित्र, सुवर्णोज्ज्वल अश्वों के ऊपर उढ़ाने की झूल और हिरन के चर्म भी जहां तहां

पड़े दिखाई देते हैं। राजाओं की चूड़ामणि और विचित्र २ सुवर्ण की माला, टूटे फूटे छत्र, चंवर और पंखे, सब ओर दिखाई दे रहे हैं ॥४७-४८॥

चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ॥४९॥
क्लृप्तश्मश्रुभिराकीर्णा पूर्णचन्द्रनिभैर्महीम् ।

उत्तम कुण्डलों से व्याप्त चन्द्र और नक्षत्रों की तरह चमकते हुए छोटी २ पूंछों से समन्वित, चन्द्रमा के समान सुन्दर मुखों से पृथिवी व्याप्त हो रही है ॥४९॥

कुमुदोत्पलपद्मानां खण्डैः फुल्लं यथा सरः ॥५०॥
तथा महीभृतां वक्त्रैः कुमुदोत्पलसन्निभैः ।

कुमुद, उत्पल और पद्मों के समूह से जैसे सरोवर सुन्दर प्रतीत होता है, उसी तरह कुमुद, उत्पल और पद्म के तुल्य राजाओं के मुख से रणभूमि भरी पड़ी है ॥५०॥

तारागणविचित्रस्य निर्मलेन्दुद्युतित्विषः ॥५१॥
पश्येमां नभसस्तुल्यां शरन्नक्षत्रमालिनीम् ।

हे पार्थ ! तारागण से विचित्र, निर्मल चन्द्रमा की कान्ति को धारण करने वाले आकाश के तुल्य, तथा शरद् ऋतु में नक्षत्रों की माला की भांति सुन्दर इस रणभूमि को देखो ॥५१॥

एतत्त्वैवानुरूपं कर्मार्जुन महाहवे ॥५२॥
दिवि वा देवराजस्य त्वया यत्कृतमाहवे ।

हे अर्जुन ! इस महायुद्ध में यह तेरे स्वरूप के अनुरूप ही कर्म हुआ है ऐसा कर्म तो स्वर्ग में इन्द्र ही कर सकता है ॥५२॥

एवं तां दर्शयन्कृष्णो युद्धभूमिं किरीटिने ॥५३॥
गच्छन्नेवाशृणोच्छब्दं दुर्योधनबले महत् ।
शङ्खदुन्दुभिनिर्घोषं भेरीपणवनिःस्वनम् ॥५४॥
रथाश्वगजनादांश्च शस्त्रशब्दांश्च दारुणान् ।

हे राजन् ! श्रीकृष्ण इस प्रकार अ न को रणभूमि का दर्शन करा रहे थे, कि, चलते २ उन्होंने राजा दुर्योधन की सेना में बड़ा भारी कोलाहल सुना, जो शंख, दुन्दुभि, भेरी, पणव, रथ, अश्व, गज, और शस्त्रों के दारुण शब्दों से उठाया हुआ था ॥५३-५४॥

प्रविश्य तद्बलं कृष्णस्तुरगैर्वातवेगितैः ॥५५॥
पाण्ड्येनाभ्यर्दितं सैन्यं त्वदीयं वीक्ष्य विस्मितः ।

अब श्रीकृष्ण, वायु के तुल्य वेग वाले अश्वों से इस दुर्योधन की सेना में घुस गए । वहां जाकर श्रीकृष्ण ने तुम्हारी सेना को पाण्डय देश के राजा द्वारा कुचली हुई देखा । जिसको देखकर श्रीकृष्ण को बड़ा ही अचम्भा हुआ ॥५५॥

स हि नानाविधैर्बाणैरिष्वस्त्रप्रवरो युधि ॥५६॥
न्यहनद् द्विषतां पूगान्गतासूनन्तको यथा ।

यह पाण्डयाधिपति, अस्त्र चलाने में बड़ा कुशल था । इसने मृत्यु को प्राप्त होने वाले मनुष्यों को अन्तक की तरह शत्रुसमूह को अपने बाण जाल से मार २ कर बिछा दिया ॥५६॥

गजवाजिमनुष्याणां शरीराणि शितैः शरैः ॥५७॥
भित्त्वा प्रहरतां श्रेष्ठो विदेहासूनपातयत् ।

प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ पाण्ड्याधिपति ने गज, अश्व और मनुष्यों के शरीरों को चीर २ कर प्राण विहीन कर दिया और रणभूमिमें गिरा दिया ॥५७॥

शत्रुप्रवीरैरस्त्राणि नानाशस्त्राणि सायकैः ।
छित्त्वा तानवधीच्छत्रून्पाण्ड्यः शक्र इवासुरान् ॥५८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

इस पाण्ड्य देश के राजा ने शत्रुओं के फैंके हुए अनेक अस्त्र और शस्त्रों को अपने बाणों से काट कर इस तरह शत्रुओं को मार गिराया-जैसे इन्द्र असुरों को मार मार कर बिछा देता है ॥५८॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन
को रणभूमि दिखाने का उन्नीसवां अध्याय पूरा हुआ ।

बीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

प्रोक्तस्त्वया पूर्वमेव प्रवीरो लोकविश्रुतः ।
न त्वस्य कर्म संग्रामे त्वया सञ्जय कीर्तितम् ॥१॥
तस्य विस्तरशो ब्रूहि प्रवीरस्याद्य विक्रमम् ।
शिक्षां प्रभावं वीर्यं च प्रमाणं दर्पमेव च ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! तुमने पहिले इस लोक प्रसिद्ध पुरुष प्रवीर पाण्ड्याधिपति का जिक्र किया था, परन्तु इसने रण में क्या कर दिखाया-यह नहीं सुनाया-अब तुम इसी वीर श्रेष्ठ के पराक्रम, शिक्षा प्रभाव, शक्ति, प्रमाण और अभिमान का वर्णन करो ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

भीष्मद्रोणकृपद्रौणिकर्णार्जुनजनार्दनान् ।
समाप्तविद्यान्धनुषि श्रेष्ठान्यान्मन्यसे रथान् ॥३॥
यो ह्यक्षिपति वीर्येण सर्वानेतान्महारथान् ।
न मेने चात्मना तुल्यं कञ्चिदेव नरेश्वरम् ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! तुम जिन भीष्मपितामह, द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कर्ण, और जनार्दन कृष्ण को सारी धनुर्विद्या पढ़े हुए और धनुर्धरों में श्रेष्ठ महारथी मानते हो । वह अपने पराक्रम को अधिक मान कर इन सब को फटकारता

है। यह तो-किसी भी महारथी को रण में अपने समान नहीं समझता है ॥३-४॥

तुल्यतां द्रोणभीष्माभ्यामात्मनो यो न मृष्यते।
वासुदेवार्जुनाभ्यां च न्यूनतां नैच्छतात्मनि ॥५॥
स पाण्ड्यो नृपतिश्रेष्ठः सर्वशस्त्रभृतां वरः।
कर्णस्यानीकमहनत्पराभूत इवान्तकः ॥६॥

यह तो भीष्मपितामह और द्रोणाचार्य को तो अपनो बराबर समझता ही नहीं है और श्रीकृष्ण और अर्जुन से अपने को न्यून नहीं मानता है। सर्वशस्त्रधारियों में श्रेष्ठ यह पाण्ड्यदेशाधिपति, झुंझलाये हुए काल की तरह महारथी कर्ण की सेना का संहार करने लगा ॥५-६॥

तदुदीर्णरथाश्वं च पत्तिप्रवरसंकुलम्।
कुलालचक्रवद्भ्रान्तं पाण्ड्येनाभ्याहतं बलात् ॥७॥

उत्तम २ रथ अश्व और पैदल सैनिकों से भरी हुई कौरव सेना पाण्ड्यदेश के राजा द्वारा बल-पूर्वक ताड़ित की हुई, कुम्हार के चाक की भांति घूमने लगी ॥७॥

व्यश्वसूतध्वजरथान्विप्रविधायुधद्विपान्।
सम्यगस्तैः शरैः पाण्ड्यो वायुर्मेघानिवाक्षिपत् ॥८॥

इस पाण्ड्य ने रथों के अश्व, सारथि और ध्वजाओं को अपने समीचीन रीति से फैंके हुए बाणों से छिन्न-भिन्न करके

कौरव के रथों तथा नष्ट आयुध वाले हाथियों को इस तरह फैंक दिया-जैसे-वायु बादलों को फैंक देता है ॥८॥

द्विरदान्द्विरदारोहान्विपताकायुधध्वजान् ।
सपादरक्षानहनद्वज्रेणाद्रीनिवाद्रिहा ॥९॥

इसने गजारोहियों के साथ गजों को पताका, आयुध और ध्वजाओं से हीन कर दिया। जिस तरह पर्वत नाशक इन्द्र अपने वज्र से पर्वतों का नाश कर देता है. उसी तरह इसने भी पाद रक्षकों सहित अनेक हाथियों को मार गिराया ॥९॥

सशक्तिप्रासतूणीरानश्वारोहान्हयानपि ।
पुलिन्दखसबाह्लीकनिषादान्ध्रककुन्तलान् ॥१०॥
दाक्षिणात्यांश्च भोजांश्च शूरान्संग्रामकर्कशान् ।
विशस्त्रकवचान्बाणैः कृत्वा चैवाकरोद्व्यसून् ॥११॥

इसने शक्ति, प्रास और तूणीरों से रहित अश्वारोही और अश्वों को बनाकर उनको मार डाला तथा, पुलिन्द, खस, बाल्हीक, निषाद, अन्धक, कुन्तल, दाक्षिणात्य, भोज, एवं अन्य संग्राम कर्कश वीरों को अपने बाणों द्वारा शस्त्र और कवच से रहित करके प्राणविहीन कर दिया ॥१०-११॥

चतुरङ्गं बलं बाणैर्निघ्नन्तं पाण्ड्यमाहवे ।
दृष्ट्वा द्रौणिरसम्भ्रान्तमसम्भ्रान्तस्ततोऽभ्ययात् ॥

जब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अपने बाणों से कौरवों की सेना को बिना घबराहट के नष्ट करते हुए उत्कट शक्तिधारी

पाण्ड्यदेशाधिपति को देखा-तो वह भी बिना किसी भय के उसकी ओर दौड़ा ॥१२॥

आभाष्य चैनं मधुरमभीतं तमभीतवत् ।
प्राह प्रहरतां श्रेष्ठः स्मितपूर्वं समाह्वयत् ॥१३॥

किसी भी प्रकार से भय नहीं मानने वाले, पाण्ड्यराज मलयध्वज को सम्बोधित करके प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ निर्भीक अश्वत्थामा ने मधुर वाणी द्वारा कहा और कुछ मुसकुराकर उसको युद्ध के लिए ललकारा ॥१३॥

राजन्कमलपत्राक्ष विशिष्टाभिजनश्रुत ।
वज्रसंहननप्रख्य प्रख्यातबलपौरुष ॥१४॥
मुष्टिश्लिष्टायतज्यं च व्यायताभ्यां महद्धनुः ।
दोर्भ्यां विस्फारयन्भासि महाजलदवच्छ्रम् ॥१५॥
शरवर्षैर्महावेगैरमित्रानभिवर्षतः ।
मदन्यं नानुपश्यामि प्रतिवीरं तवाहवे ॥१६॥

हे कमलपत्राक्ष, राजन् ! तुम उत्तम कुल में उत्पन्न और शास्त्र के ज्ञाता हो । तुम्हारा शरीर वज्रवत् दृढ़ और तुम्हारा बल पौरुष भी विख्यात है । तुम अपनी लम्बी २ भुजाओं से विशाल धनुष को खैंचते हुए महामेघ की भाँति गरजना कर रहे हो । अपनी दृढ़ मुट्ठी से अपने धनुष की विशाल डोरी को बड़ी गाढ़ी तरह पकड़ रखा है । इस धनुष से महावेग के साथ शत्रुओं पर बाण वर्षा करते हुए चढ़े चले आ रहे हो । मैं इस

घोर रण में तुमसे भटक लेने वाला मेरे सिवा अन्य वीर को नहीं समझता हूं ॥१४-१६॥

रथद्विरदपत्त्यश्वानेकः प्रमथसे बहून् ।

मृगसङ्घानिवारण्ये विभीर्भीमबलो हरिः ॥१७॥

हे राजन ! तुम अकेले ही बहुत से रथ, हाथी, पैदल और अश्वों को इस तरह मार मार कर बिछा रहे हो-जैसे निडर, भयङ्कर बलशाली सिंह वन में मृग समूह को मार २ कर डाल देता है ॥१७॥

महता रथघोषेण दिवं भूमिं च नादयन् ।

वर्षान्ते सस्यहा मेघो भासि ह्रादीव पार्थिव ॥१८॥

हे पार्थिव ! तुम अपने विशाल रथ की ध्वनि से आकाश और भूमि को इस तरह शब्दायमान् कर रहे हो-जैसे-वर्षा के अन्त में अन्न नाशकारी मेघ गर्जना करता दिखाई देता है ॥१८॥

संस्पृशानः शरांस्तीक्ष्णांस्तूणादाशीविषोपमान् ।

मयैवैकेन युध्यस्व त्र्यम्बकेनान्धको यथा ॥१९॥

अब तुम अपने तूणीर से आशीविष सर्प के तुल्य तीक्ष्ण बाणों को निकाल कर मुझ अकेले से इस तरह युद्ध करो-जैसे शङ्कर से अन्धकासुर ने किया था ॥१९॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा प्रहरेति च ताडितः ।

कर्णिना द्रोणतनयं विव्याध मलयध्वजः ॥२०॥

इतना कहने पर पाण्ड्य राज मलयध्वज ने अश्वत्थामा से युद्ध करना स्वीकार किया और कहा, कि अब तुम प्रहार करो-ज्यों ही अश्वत्थामा ने प्रहार किया तो उसने ताड़ित होकर और कान तक बाण खैंचकर उससे द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को बींध लिया ॥२०॥

मर्मभेदिभिरत्युग्रैर्बाणैरग्निशिखोपमैः ।

स्मयन्नभ्यहनद् द्रौणिः पाण्ड्यमाचार्यसत्तमः ॥२१॥

अब द्रोण-पुत्र आचार्य श्रेष्ठ, अश्वत्थामा ने भी मुसकुराकर अग्नि की शिखा के तुल्य भीषण, अत्यन्त उग्रमर्म भेदी बाणों से राजा मलयध्वज को आहत किया ॥२१॥

ततोऽपरान्सुतीक्ष्णाग्रान्नाराचान्मर्मभेदिनः ।

गत्या दशम्या संयुक्तानश्वत्थामाप्यवासृजत् ॥२२॥

अब अश्वत्थामा ने अन्य अनेक मर्म भेदी तीक्ष्ण बाणों को दशवीं गति से संयुक्त करके छोड़ा ॥२२॥

ताञ्शरानच्छिनत्पाण्ड्यो नवभिर्निशितैः शरैः ।

चतुर्भिरर्दयच्चाश्वानाशु ते व्यसवोऽभवन् ॥२३॥

उन सब बाणों को पाण्ड्य देशाधिपति मलयध्वज ने नौ बाण छोड़ कर काट गिराया तथा चार बाण छोड़ कर उसके अश्वों को इतना आहत किया कि वे प्राण विहीन हो गए ॥२३॥

अथ द्रोणसुतस्येषूंस्तांश्छित्त्वा निशितैः शरैः ।

धनुर्ज्यां विततां पाण्ड्यश्चिच्छेदादित्यतेजसः ॥२४॥

इस के अनन्तर द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा के सूर्य के सदृश चमकीले बाणों और विस्तृत धनुष की डोरी को पाण्ड्य राज ने काट डाला ॥२४।

दिव्यं धनुरथाधिज्यं कृत्वा द्रौणिरमित्रहा ।

प्रेक्ष्य चाशु रथे युक्तान्नरैरन्यान्हयोत्तमान् ॥२५॥

ततः शरसहस्राणि प्रेषयामास वै द्विजः ।

इषुसम्बाधमाकाशमकरोद्दिश एव च ॥२६॥

शत्रु नाशक द्रोण-पुत्र ने अब दिव्य धनुष पर फिर दूसरी डोरी चढ़ाई जब अपने रथ में दूसरे अश्व, अन्य पुरुषों द्वारा जोते हुए देखे तो अश्वत्थामा ने सहस्रों बाण छोड़ना आरम्भ किया इसने बाणों से आकाश और दिशाओं को भर दिया ॥२५-२६॥

ततस्तानस्यतः सर्वान्द्रौणेर्बाणान्महात्मनः ।

जानानोऽप्यक्षयान्पाण्ड्यो शातयत्पुरुषर्षभः ॥२७॥

महावीर अश्वत्थामा के फैंके हुए बाणों को सारे अक्षय जान कर भी पुरुष प्रवीर पाण्ड्य राज उनको काटने लगा ॥२७॥

प्रयुक्तांस्तान्प्रयत्नेन च्छित्त्वा द्रौणेरिषूनरिः ।

चक्ररक्षौ रणे तस्य प्राणुदन्निशितैः शरैः ॥२८॥

शत्रु विजयी राजा मलयध्वज ने अश्वत्थामा के प्रयुक्त किए हुए बाणों को प्रयत्न से काट कर अपने तीक्ष्ण बाणों से रण में उसके चक्र रक्षकों को भी घायल कर दिया ॥२८॥

अथारेर्लाघवं दृष्ट्वा मण्डलीकृतकार्मुकः ।
प्रास्य द्रोणसुतो बाणान्वृष्टिं पूषानुजो यथा ॥२६॥

जब अश्वत्थामा ने अपने शत्रु पाण्ड्य राज का यह हस्त लाघव देखा-तो उसने भी इस तरह बाण बरसाना आरम्भ किया जैसे-सूर्य के अनुज इन्द्र द्वारा वर्षा की जा रही हो ॥२६॥

अष्टावष्टगवान्यूहुः शकटानि यदायुधम् ।
अह्नस्तदष्टभागेन द्रौणिश्चिक्षेप मारिष ॥३०॥

हे आर्य! आठ बैलों से जुते हुए आठ छकड़ों में जितने बाण ले जाये सके-उतने बाण दिन के अष्टमांश में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने फैंक दिये ॥३०॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमन्तकस्यान्तकोपमम् ।
ये ये ददृशिरे तत्र विसंज्ञाः प्रायशोऽभवन् ॥३१॥

अन्तक के भी अन्तक के तुल्य, काल के तुल्य क्रोध में भरे हुए, अश्वत्थामा को जिसने देखा-वे प्रायः मूर्छित होकर गिर गए ॥३१॥

पर्जन्य इव घर्मान्ते वृष्टया साद्रिद्रुमां महीम् ।
आचार्यपुत्रस्तां सेनां बाणवृष्टया व्यवीवृषत् ॥३२॥

ग्रीष्म ऋतु के अन्त में वर्षा आ जाने पर पर्वत और वृक्षों सहित पृथिवी को जैसे-मेघ सींच देते हैं-उसी तरह आचार्य पुत्र अश्वत्थामा ने भी पाण्डव सेना को अपनी बाण वर्षा से आकुल कर दिया ॥३२॥

द्रौणिपर्जन्यमुक्तां तां बाणवृष्टिं सुदुःसहाम् ।
वायव्यास्त्रेण संक्षिप्य मुदा पाण्डयानिलोऽनुदत् ॥३३

अश्वत्थामा रूपी मेघ द्वारा की हुई बाणों की दुःसह वर्षा को वायव्यास्त्र का प्रयोग करके पाण्ड्य राज रूपी वायु ने बड़े आनंद से इधर-उधर फेंक दिया ॥३३॥

तस्य नानदतः केतुं चन्दनागुरुरूषितम् ।
मलयप्रतिमं द्रौणिश्छित्वाश्वांश्चतुरोऽहनत् ॥३४॥

जब राजा मलयध्वज गर्जना कर रहा था, तो चन्दन और अगर से लिप्त, उसकी मलय पर्वत के तुल्य ऊंची ध्वजा को काट कर अश्वत्थामा ने उसके चारों अश्वों को भी मार डाला ॥३४॥

सूतमेकेषुणा हत्वा महाजलदनिःस्वनम् ।
धनुश्छित्वार्धचन्द्रेण तिलशो व्यधमद्रथम् ॥३५॥

अश्वत्थामा ने एक बाण से उसके सारथी कोमार कर महा मेघ के तुल्य गर्जना करने वाले धनुष को काट डाला और फिर अर्ध चन्द्र बाण द्वारा उसके रथ के तिल २ के बराबर टुकड़े कर डाले ॥३५॥

अस्त्रैरस्त्राणि संवार्य च्छित्वा सर्वायुधानि च ।
प्राप्तमप्यहितं द्रौणिर्न जघान रणेप्सया ॥३६॥

अब अश्वत्थामा ने अपने अस्त्रों से पाण्ड्य राज के सारे अस्त्र काट दिए और शत्रु-भूत राजा मलयध्वज दाव पर भी चढ़

गया। परन्तु युद्ध की अभिलाषा से उसने उसे प्राण विहीन नहीं किया ॥३६॥

एतस्मिन्नन्तरे कर्णो गजानीकमुपाद्रवत् ।
द्रावयामास स तदा पाण्डवानां महद्बलम् ॥३७॥

इसी समय महारथी कर्ण ने गज सेना पर आक्रमण किया, और उसने पाण्डवों की विशाल सेना को इधर उधर बखेर दिया ॥३७॥

विरथान्रथिनश्चक्रे गजानश्वांश्च भारत ।
गजान्बहुभिरानर्छच्छरैः सन्नतपर्वभिः ॥३८॥

हे भारत ! महारथी कर्ण ने रथियों को रथ विहीन और अश्व और गजों को अपने सवारों से रहित कर दिया। उसने नत पर्व वाले बहुत से बाणों से गजों को घायल कर दिया ॥३८॥

अथ द्रौणिमहेष्वासः पाण्ड्यं शत्रुनिवर्हणम् ।
विरथं रथिनां श्रेष्ठं नाहनद्युद्धकांक्षया ॥३९॥

अब महा धनुर्धर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने शत्रु नाशक रथि श्रेष्ठ राजा मलयध्वज को रथ हीन करके भी युद्ध की अभिलाषा से उसे प्राण विहीन नहीं किया ॥३९॥

हतेश्वरो दन्तिवरः सुकल्पितस्त्वराभिसृष्टः प्रतिशब्दगो बली।
तमाद्रवद् द्रौणिशराहतस्त्वरञ्जवेन कृत्वा प्रतिहस्तिगर्जितम् ॥

रण की सामग्री से सुसज्जित, वेगशाली, प्रतिध्वनि के पीछे पीछे भागने वाला, महाबली, द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के बाण से

आहत अपने सवार के मरने से खाली; कोई गजराज, विरोधी हाथी की गर्जना के साथ गर्जना करके राजा मलयध्वज पर झपटा ॥४०॥

तं वारणंवारणयुद्धकोविदो द्विपोत्तमं पर्वतसानुसन्निभम् ।
समभ्यतिष्ठन्मलयध्वजस्त्वरन्यथाद्रिशृङ्गं हरिरुन्नदंस्तथा ॥४१॥

हस्ती युद्ध में कुशल, राजा मलयध्वज पर्वत के सानु के तुल्य उन्नत, उस उत्तम गजराज पर बड़ी शीघ्रता के साथ उछट कर इस तरह चढ़ गया-जैसे-गर्जता हुआ सिंह पर्वत शिखर पर चढ़ जाता है ॥४१॥

स तोमरं भास्कररश्मिवर्चसं बलास्त्रसर्गोत्तमयत्नमन्युभिः ।
ससर्ज शीघ्रं परिपीडयन्गजं गुरोः सुतायाद्रिपतीश्वरो नदन्

अब पाण्ड्य देशस्थ पर्वत के अधिपति, राजा मलयध्वज ने गर्जना करके बल पूर्वक अस्त्र के प्रयोग में प्रयत्न करने से अद्भुत कोप परम्परा द्वारा सूर्य के सदृश चमकीले तोमर संज्ञक बाण को अश्वत्थामा पर फैंका। वह शीघ्रता के साथ इस गज को भी पीड़ित करके आगे बढ़ता जा रहा था ॥४२॥

मणिप्रवेकोत्तमवज्रहाटकैरलंकृतं चांशुकमाल्यमौक्तिकैः ।
हतो हतोऽसीत्यसकृन्मुदा नदन्पराहनद् द्रौणिवराङ्गभूषणम् ॥

उत्तम २ मणि हीरे और सुवर्ण तथा वस्त्र, माला और मोतियों से अलंकृत, अश्वत्थामा के शिरोभूषण मुकुट को, इसने काट

गिराया। जब इसने तोमर शस्त्र का प्रयोग किया-तो कहा—यह बार २ चिल्लाया, कि ले अश्वत्थामा अत्र तू मारा गया ॥४३॥

तदर्कचन्द्रग्रहपावकत्विषं भृशातिपातात्पतितं विचूर्णितम् ।
महेन्द्रवज्राभिहतं महास्वनं यथाद्रिशृङ्गं धरणीतले तथा ॥४४

सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र और अग्नि के तुल्य चमकीला, तीव्र, प्रहार से चूर्ण होकर गिरा हुआ अश्वत्थामा का मुकुट, ऐसा प्रतीत होने लगा-जैसे इन्द्र के वज्र से खण्डित, महाध्वनि करता हुआ, पर्वत का शिखर पृथिवी पर गिर गया हो ॥४४॥

ततः प्रजज्वाल परेण मन्युना पादाहतो नागपतिर्यथा तथा ।
समाददे चान्तकदण्डन्निभानिषूनमित्रार्तिकरांश्चतुर्दश ॥४५॥

इस समय पैर से कुचले हुये सर्प के समान अश्वत्थामा अत्यन्त क्रोध से जल उठा। उसने अब शत्रु नाशक काल के दण्ड के तुल्य भीषण चौदह बाण धनुष पर चढ़ाए ॥४५॥

द्विपस्य पादाग्रकरान्स पञ्चभिर्नृपस्य,
बाहू च शिरोऽथ च त्रिभिः ।
जघान षड्भिः षडनुत्तमत्विषः,
स पाण्डयराजानुचरान्महारथान् ॥४६॥

अब अश्वत्थामा ने पांच बाणों से उस हाथी के चारों पाद और सूंड को बींध दिया, तीन बाणों से राजा मलयध्वज के दो बाहु और शिर काट दिया। इसी तरह शेष, छः बाणों से उसने

उत्तम कान्तिधारी, पाण्ड्यराज के अनुचर छः महारथियों को मार गिराया ॥४६॥

सुदीर्घवृत्तौ वरचन्दनोक्षितौ सुवर्णमुक्तमणिवज्रभूषणौ ।
भुजौ धरायां पतितौ नृपस्य तौ विचेष्टतुस्तार्क्ष्यहताविवोरगौ

हे राजन् ! इस समय राजा मलयध्वज की लम्बी २ गोल, उत्तम चन्दन से चर्चित, सुवर्ण, मुक्ता, मणि और वज्र (हीरे) से विभूषित, भुजाएँ रणभूमि में गिरते ही इस तरह तड़फड़ाने लगी-जैसे-गरुड़ से मारे हुए सर्प तड़फड़ाते हैं ॥४७॥

शिरश्च तत्पूर्णशशिप्रभाननं सरोषताम्रायतनेत्रमुन्नसम् ।
क्षितावपि भ्राजति तत्सकुण्डलं विशाखयोर्मध्यगतः शशी यथा

पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य सुन्दर, क्रोध से लाल बड़े २ आंखों वाले, ऊंची नासिका से युक्त राजा मलयध्वज का कुण्डलों सहित मस्तक, पृथिवी में भी इस तरह सुशोभित होने लगा-जैसे विशाखा नामक दो तारों के मध्य में चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥४८॥

स तु द्विपः पञ्चभिरुत्तमेषुभिः कृतः षडंशश्चतुरो नृपस्त्रिभिः ।
कृतो दशांशः कुशलेन युध्यता यथा हविस्तद्दशदैवतं तथा

अश्वत्थामा ने युद्ध विशारद पांच बाण मार कर हाथी के छः खण्ड और तीन बाण मार कर राजा मलयध्वज के चार टुकड़े इस तरह कर दिए-जैसे-कुशल ऋत्विक् दश देवताओं को हवि के दश भाग कर देता है ॥४९॥

स पादशो राक्षसभोजनान्बहून्प्रदाय पाण्डयोऽश्वमनुष्यकुञ्जरान्
स्वधामिवाप्य ज्वलनः पितृप्रियस्ततः प्रशान्तः सलिलप्रवाहतः

पाण्ड्यराज मलयध्वज, प्रत्येक पद पर अश्व, मनुष्य और कुञ्जरों का भोजन राक्षसों को प्रदान करके इस तरह शान्त हो गया, जैसे-पितरों को प्रिय अग्नि, स्वधा शब्द द्वारा आहुति लेकर स्वयं जल प्रवाह से शान्त हो जाता है ॥५०॥

समाप्तविद्यं तु गुरोः सुतं नृपः समाप्तकर्माणमुपेत्य ते सुतः ।
सुहृद्वृतोऽत्यर्थमपूजयन्मुदा जिते बलौ विष्णुमिवामरेश्वरः ॥५१

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि पाण्ड्यवधे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

हे नृप ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने युद्ध विद्या को समाप्त करने और अपने कर्म को भी पूरा सम्पादित कर देने वाले, गुरु-पुत्र अश्वत्थामा की पूजा अपने मित्रों को साथ लेकर इस प्रकार बड़े हर्ष के साथ दैत्य जैसे बलि के जीत लेने पर देवों ने विष्णु की पूजा की थी ॥५१॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में पाण्ड्यदेशाधिपति
राजा मलयध्वज के वध का बीसवां अध्याय पूरा हुआ ।



इक्कीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

पाण्ड्ये हते किमकरोदर्जुनो युधि सञ्जय ।
एकवीरेण कर्णेन द्रावितेषु परेषु च ॥१॥
समाप्तविद्यो बलवान्युक्तो वीरः स पाण्डवः ।
सर्वभूतेष्वनुज्ञातः शङ्करेण महात्मना ॥२॥
तस्मान्महद्भयं तीव्रममित्रघ्नाद्धनञ्जयात् ।
स यत्तत्राकरोत्पार्थस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥३॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! जब पाण्ड्यराज मलयध्वज मारा गया और अकेले महावीर कर्ण ने सारी सेना को भगा दिया तो उस समय सारी सेना शस्त्रविद्या के पारङ्गत, सुयोग्य वीर, बलवान् पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने क्या किया । भगवान शंकर ने उसे सारे प्राणियों पर विजय पाने का आशीर्वाद दे रखा बताया । उसी शत्रुधारी अर्जुन से हम लोगों को बहुत ही भय है ॥१-३॥

सञ्जय उवाच—

हते पाण्ड्येऽर्जुनं कृष्णस्त्वरन्नाह वचो हितम् ।
पश्यामि नाहं राजनमपयातांश्च पाण्डवान् ॥४॥
निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् ।
अश्वत्थाम्नश्च सङ्कल्पाद्धताः कर्णेन सृञ्जयाः ॥५॥
तथाश्वरथनागानां कृतं च कदनं महत् ।
सर्वमाख्यातवान्वीरो वासुदेवः किरीटिने ॥६॥

सञ्जय ने कहा जब पाण्ड्यराज मारा गया-तो बड़ी शीघ्रता से अर्जुन से श्रीकृष्ण ने यह हितकारी वचन कहा-कि मैं न तो राजा युधिष्ठिर को युद्ध में देख रहा हूं और अन्य पाण्डव भी युद्ध भूमि से खसक गए दिखाई देते हैं । यदि पाण्डव लौट आवें-तो यह शत्रुओं की विशाल सेना तितर वितर हो सकती है। अश्वत्थामा की इच्छा के अनुसार महारथी कर्ण ने बहुत से सृञ्जय वीर मार भगाए तथा अश्व, रथ और हाथियों का भारी विनाश कर दिया है । यह सारा वृत्तान्त महावीर वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण ने किरीटधारी अर्जुन को सुनाया ॥४-६॥

एतच्छ्रुत्वा च दृष्ट्वा च भ्रातुर्घोरं महद्भयम् ।
वाहयाश्वान्हृषीकेश क्षिप्रमित्याह पाण्डवः ॥७॥

इस वचन को सुनकर और सचमुच अपने भ्राता धर्मराज का महाअनिष्ट विचार कर अर्जुन ने कहा—हे हृषीकेश ! तुम मेरे अश्वों को शीघ्र आगे बढ़ाओ ॥७॥

ततः प्रायाद्धृषीकेशो रथेनाप्रतियोधिना ।
दारुणश्च पुनस्तत्र प्रादुरासीत्समागमः ॥८॥

अब भगवान् कृष्ण, अनुपम रथ द्वारा आगे बढ़े-जिससे फिर दारुण युद्ध का आरम्भ हुआ ॥८॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
भीमसेनमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥९॥

अर्जुन के आगे आते ही निर्भीक भीमसेन आदि पाण्डव और कर्ण आदि हम लोग भी फिर लौट पड़े ॥६॥

ततः प्रववृते भूयः संग्रामो राजसत्तम ।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥१०॥
धनूंषि बाणान्परिघानसिपट्टिशतोमरान्।
मुसलानि भुशुण्डीश्च सशक्त्यृष्टिपरश्वधान् ॥११॥
गदाः प्रासाञ्शितान्कुन्तान्भिन्दिपालान्महांकुशान् ।
प्रगृह्य क्षिप्रमापेतुः परस्परजिघांसया ॥१२॥

हे राजसत्तम ! अब कर्ण और पाण्डवों का फिर यमराज का बढ़ाने वाला महासंग्राम होने लगा । ये वीर, धनुष, बाण, परिघ, खड्ग, पट्टिश, तोमर, मुसल, भुशुण्डी, शक्ति, ऋष्टि, परश्वध, गदा, प्रास, तीक्ष्णकुन्त, भिन्दिपाल और बड़े २ अंकुश, ग्रहण करके एक दूसरे को मार देने की इच्छा से शीघ्रता-पूर्वक प्रयुक्त करने लगे ॥१०-१२॥

बाणज्यातलशब्देन द्यां दिशः प्रदिशो वियत् ।
पृथिवीं नेमिघोषेण नादयन्तोऽभ्ययुः परान् ॥१३॥

बाण, प्रत्यञ्चा, करतल आदि के शब्द से अन्तरिक्ष, आकाश, दिशा और विदिशा सबको शब्दायमान कर दिया और नेमि के शब्द से तो पृथिवी अत्यन्त भर गई, ये वीरवर, सिंहनाद करते हुए अपने २ शत्रुओं पर झपटे ॥१३॥

तेन शब्देन महता संहृष्टाश्चकुराहवम् ।
वीरा वीरैर्महाघोरं कलहान्तं तितीर्षवः ॥१४॥

इस महान् गर्जना से वीरों के चित्तों में उत्साह भर गया और वे वीर शत्रुवीरों के साथ इस कलह के अन्त को पहुंच जाने के निमित्त महाघोर युद्ध करने लगे ॥१४॥

ज्यातलत्रधनुःशब्दः कुञ्जराणां च बृंहताम् ।
पादातानां च पततां नृणां नादो महानभूत् ॥१५॥

धनुष की डोरी करतलत्राण, धनुष आदि का शब्द तथा हाथियों की चिंघाड़, पैदल सैनिकों की भाग दौड़ से रणभूमि में महान् कोलाहल होने लगा ॥१५॥

तालशब्दांश्च विविधाञ्शूराणां चाभिगर्जताम् ।
श्रुत्वा तत्र भृशं त्रेसुः पेतुर्मम्लुश्च सैनिकाः ॥१६॥

हे राजन् ! अत्यन्त वेग के साथ गर्जना करके ताल फटकारते हुए शूरवीरों के शब्दों को सुनकर कुछ सैनिक भयभीत होगए-कुछ गिर गए और कुछ मूर्च्छित होगए ॥१६॥

तेषां निनदतां चैव शस्त्रवर्षं च मुञ्चताम् ।
बहूनाधिरथिर्वीरः प्रममाथेषुभिः परान् ॥१७॥

जब ये सिंहनाद और बाणों की भीषण वर्षा कर रहे थे तो इसी समय अधिरथ-पुत्र महावीर कर्ण अपने बाणों से शत्रु सेना के संहार में लगा हुआ था ॥१७॥

पञ्च पञ्चालवीराणां रथान्दश च पञ्च च ।
साश्वसूतध्वजान्कर्णः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥१८॥

इस समय अङ्गराज कर्ण ने अपने बाणों से प्रथम पांच फिर दश और फिर पांच-यों मिलाकर पाञ्चालों के बीस महारथियों को अश्व, सारथि और ध्वजाओं के साथ छिन्न-भिन्न करके यमलोक पहुंचा दिया ॥१८॥

योधमुख्या महावीर्याः पाण्डूनां कर्णमाहवे ।
शीघ्रास्त्रास्तूर्णमावृत्य परिवव्रुः समन्ततः ॥१९॥

हे राजन् ! पाण्डवों की ओर जो २ महापराक्रमी, शीघ्र अस्त्र चलाने में कुशल, मुख्य २ योद्धा थे, उन्होंने सब ओर से महारथी कर्ण को घेर लिया ॥१९॥

ततः कर्णो द्विषत्सेनां शरवर्षैर्विलोडयन् ।
विजगाहाण्डजाकीर्णां पद्मिनीमिव यूथपः ॥२०॥

अब राजा कर्ण ने भी अपनी बाण वर्षा से शत्रु सेना इस तरह मथ डाली, जैसे-पक्षियों से व्याप्त कमलनी वन को यूथपति गजराज मसल डालता है ॥२०॥

द्विषन्मध्यमवस्कन्द्य राधेयो धनुरुत्तमम् ।
विधुन्वानः शितैर्बाणैः शिरांस्युन्मथ्य पातयत् ॥२१॥

राधा-पुत्र कर्ण, शत्रु सेना में कूदकर अपने उत्तम धनुष को कंपाता हुआ तीखे बाणों से शत्रुओं के मस्तक काट २ कर गिराने लगा ॥२१॥

चर्मवर्माणि संछिन्नान्यपतन्भुवि देहिनाम् ।
विषेहुर्नास्य संस्पर्शं द्वितीयस्य पतत्रिणः ॥२२॥

वीरों के ढाल और कवच, काट २ कर रणभूमि में गिरने लगे। कोई भी वीर कर्ण के दूसरे बाण का स्पर्श सह नहीं सकता था ॥२२॥

वर्मदेहासुमथनैर्धनुषः प्रच्युतैः शरैः ।
मौर्व्या तलत्रे न्यहनत्कशया वाजिनो यथा ॥२३॥
पाण्डुसृञ्जयपञ्चालाञ्शरगोचरमागतान् ।
ममर्द तरसा कर्णः सिंहो मृगगणानिव ॥२४॥

कवच, देह और प्राणों के मन्थन तथा अपनी धनुष की डोरी से छोड़े हुए बाणों से उनके करतलत्राण इस तरह आहत कर दिए-जैसे कशा (चाबुक) से अश्वों को ताड़ित कर दिया जाता है। महारथी कर्ण ने अपने बाण के लक्ष्य में आये हुए पाण्डव सेना के वीर, सृञ्जय और पञ्चालों, को अपने विक्रम से इस तरह कुचल दिया-जैसे सिंह मृग गणों को कुचल देता है ॥२४॥

ततः पाञ्चालराजश्च द्रौपदेयाश्च मारिष ।
यमौ च युयुधानश्च सहिताः कर्णमभ्ययुः ॥२५॥

हे आर्य ! अब पाञ्चालराज द्रुपद, द्रौपदी-पुत्र, नकुल सहदेव, और सात्यकि, एक साथ ही कर्ण पर टूट पड़े ॥२५॥

तेषु व्यायच्छमानेषु कुरुपञ्चालपाण्डुषु ।
प्रियानसून्रणे त्यक्त्वा योधा जघ्नुः परस्परम् ॥२६॥

जब इस प्रकार कौरव, पाञ्चाल और पाण्डव वीरों में घमसान युद्ध होने लगा-तो अन्य योधा भी अपने प्रिय प्राणों का मोह छोड़कर परस्पर एक दूसरे को मारने लगे ॥२६॥

सुसन्नद्धाः कवचिनः सशिरस्त्राणभूषणाः ।
गदाभिमुसलैश्चान्ये परिघैश्च महाबलाः ॥२७॥
समभ्यधावन्त भृशं कालदण्डैरिवोद्यतैः ।
नर्दन्तश्चाह्वयन्तश्च प्रवल्गन्तश्च मारिष ॥२८॥

हे सर्वगुणसम्पन्न ! इस समय कवच और शिरस्त्राण आदि युद्ध के भूषणों से भूषित और सुसज्जित हुए, गर्जते, ललकारते आह्वान करते हुए, महाबली योद्धा उठाये हुए काल दण्ड के तुल्य, गदा, मुसल, और परिघ आदि शस्त्र लेकर बड़े वेग से परस्पर झपटने लगे ॥२७-२८॥

ततो निजघ्नुरन्योन्यं पेतुश्चान्योन्यताडिताः ।
वमन्तो रुधिरं गात्रैर्विमस्तिष्केक्षणायुधाः ॥२९॥

ये अब एक दूसरे को मारने लगे और एक दूसरे के प्रहार से पीड़ित होकर रणभूमि में गिरने लगे। इनके शरीर से रुधिर की धारा वह रही थी और किसी के धड़ पर शिर नहीं, तो किसी की आंखें निकल रहीं थीं। इनके शस्त्र हाथ से छूट पड़े ॥२९॥

दन्तपूर्णैः सरुधिरैर्वक्त्रैर्दाडिमसन्निभैः ।
जीवन्त इव चाप्येके तस्थुः शस्त्रोपबृंहिताः ॥३०॥

इन वीरों के रक्त से भरे हुए दांतों वाला मुख ऐसा दिखाई देता था, जैसा चीरा हुआ अनार हो। कोई २ मृतक वीर शस्त्र लिए इस तरह पड़ा था, जैसे अभी जिवित हो ॥३०॥

परश्वधैश्चाप्यपरे पट्टिशैरसिभिस्तथा ।
शक्तिभिर्भिन्दिपालैश्च नखरप्रासतोमरैः ॥ ३१ ॥
ततक्षुश्चिच्छिदुश्चान्ये विभिदुश्चिक्षिपुस्तथा ।
सञ्चकर्तुश्च जघ्नुश्च क्रुद्धा रणमहार्णवे ॥३२॥

इस रण समुद्र में क्रोध में भरे हुए वीर, परशुपट्टिश, खड्ग, शक्ति, भिन्दिपाल, नखर, प्रास और तोमर आदि शस्त्रों से शत्रुओं को काटते, छेदते, भेदते, फैंकते, चीरते और मारतें हुए ही दिखाई दे रहे थे ॥३१-३२॥

पेतुरन्योन्यनिहता व्यसवो रुधिरोक्षिताः ।
क्षरन्तः सुरसं रक्तं प्रकृत्ताश्चन्दना इव ॥३३॥

ये वीर, एक दूसरे के प्रहार से पीड़ित हुए और रुधिर में भीगे हुए प्राण विहिन होकर रणभूमि में गिरने लगे। इनके शरीर से इस तरह ताजा रक्त धारा बह रही थी-जैसे-कटे हुए चन्दन से रस धारा बहती है ॥३३॥

रथै रथा विनिहता हस्तिभिश्चापि हस्तिनः ।
नरैर्नरा हताः पेतुरश्वाश्चाश्वैः सहस्रशः ॥३४॥

रथियों ने रथी और गजारोहियों ने गजों, पैदल वीरों ने पैदल सैनिकों को और अश्वारोहियों ने अश्वारोहियों को मार २ कर बिछा दिया ॥३४॥

ध्वजाः शिरांसि च्छत्राणि द्विपहस्ता नृणां भुजाः ।
क्षुरैर्भल्लार्धचन्द्रैश्च च्छिन्नाः पेतुर्महीतले ॥३५॥

इस समय क्षुर, भल्ल और अर्धचन्द्र संज्ञक भिन्न २ प्रकार के बाणों से ध्वजा, वीरों के मस्तक भुजा और हाथियों की सूंड और छत्र कट २ कर रण में गिरने लगे ॥३५॥

नरांश्च नागान्सरथान्हयान्ममृदुराहवे ।
अश्वारोहैर्हताः शूराश्छिन्नहस्ताश्च दन्तिनः ॥३६॥
सपताका ध्वजाः पेतुर्विशीर्णा इव पर्वताः ।

इस रण में वीरों ने अनेक वीर, हाथी, अश्वों सहित रथों को चकनाचूर कर डाला । अश्वारोहियों ने अनेक शूरवीर मार दिए और जिधर देखो उधर ही सूंडविहीन हाथी दिखाई देने लगे । तथा कहीं पर पताकाओं के सहित ध्वजा, पड़ी हुई है । ये गिरे हुए हाथी बिखरे हुए पर्वत से दिखाई देते थे ॥३६॥

पत्तिभिश्च समाप्लुत्य द्विरदाः स्यन्दनास्तथा ॥३७॥
हताश्च हन्यमानाश्च पतिताश्चैव सर्वशः ।

पैदल सैनिकों ने कूद २ कर हाथी और रथी मार गिराये । वे मारे हुए रथी और हाथी रणभूमि में सब ओर गिरे हुए दिखाई देने लगे ॥३७॥

अश्वारोहाः समासाद्य त्वरिताः पत्तिभिर्हताः ॥३८॥
सादिभिः पत्तिसङ्घाश्च निहता युधि शेरते ।

हे राजन् ! पैदल सैनिकों ने बड़ी शीघ्रता (फुर्ती) करके अश्वारोही मार गिराए तथा अश्वारोहियों द्वारा मारे हुए अनेक पैदल रणभूमि में सोते दिखाई देते थे ॥३८॥

मृदितानीव पद्मानि प्रम्लाना इव च स्रजः ॥
हतानां वदनान्यासन्गात्राणि च महाहवे ॥३९॥

इस महायुद्ध में मारे हुए वीरों के मुख और शरीर कुमलाये कमल और मसली हुई माला के तुल्य दिखाई देने लगे ॥३९॥

रूपाण्यत्यर्थकान्तानि द्विरदाश्वनृणां नृप ।
समुन्नानीव वस्त्राणि ययुर्दुर्दर्शतां पराम् ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

हे नृप ! अत्यन्त शोभा से युक्त, हाथी, अश्व और मनुष्यों के रूप, मैल में भरे हुए फटे वस्त्रों के सदृश भद्दे दिखाई देने लगे ॥४०॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण के घोर
संग्राम का इक्कीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



बाईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

हस्तिभिस्तु महामात्रास्तव पुत्रेण चोदिताः।
धृष्टद्युम्नं जिघांसन्तः क्रुद्धाः पार्षतमभ्ययुः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत ! तुम्हारे पुत्रों से प्रेरित, हाथियों के सवारों ने क्रोध में भरकर सेनापति धृष्टद्युम्न के वध की इच्छा से अपने २ हाथियों के द्वारा पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न पर आक्रमण किया ॥१॥

प्राच्याश्च दाक्षिणात्याश्च प्रवरा गजयोधिनः।
अङ्गा वङ्गाश्च पुण्ड्राश्च मागधास्ताम्रलिप्तकाः॥२॥
मेकलाः कोशला मद्रा दशार्णा निषधास्तथा।
गजयुद्धेषु कुशलाः कलिङ्गैः सह भारत ॥३॥
शरतोमरनाराचैर्वृष्टिमन्त इवाम्बुदाः।
सिषिचुस्ते ततः सर्वे पाञ्चालबलमाहवे ॥४॥

हे भरतर्षभ ! प्राच्य, दाक्षिणात्य, अङ्ग, वङ्ग, पुण्ड्र, मागध, ताम्रलिप्तक, मेकल, कोशल, मद्र, दशार्ण, निषध, और कलिङ्ग, देशों के वीर गज युद्ध में बड़े कुशल और बड़े उत्तम गजारोही वीर थे। इन्होंने बाण, तोमर और नाराचों की पाञ्चाल वीरों की सेना पर वर्षा करने वाले मेघों की तरह झड़ी लगा दी ॥२-४॥

तान्सम्मिमर्दिषून्नागान्पार्ष्ण्यंगुष्ठांकुशैर्भृशम् ।
चोदितान्पार्षतो बाणैर्नाराचैरभ्यवीवृषत् ॥५॥

पैरों की एड़ी, अंगुष्ठ और अंकुशों से प्रेरित किये हुए सबके कुचल देने की इच्छा वाले हाथियों को पर्षतवंशोद्भव, धृतद्युम्न ने अपने बाण और नाराचों से अत्यन्त आच्छादित कर दिया ॥५॥

एकैकं दशभिः षड्भिरष्टाभिरपि भारत ।
द्विरदानभिविव्याध क्षिप्तैर्गिरिनिभाञ्शरैः ॥६॥

हे भारत ! पर्वत के सदृश आकारधारी प्रत्येक हाथी को छः सात या आठ बाणों से पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न ने बींध दिया ॥

प्रच्छाद्यमानं द्विरदैर्मेघैरिव दिवाकरम् ।
प्रययुः पाण्डुपञ्चाला नदन्तो निशितायुधाः ॥७॥
तान्नागानभिवर्षन्तो ज्यातन्त्रीतलनादितैः ।
वीरनृत्यं प्रनृत्यन्तः शूरतालप्रचोदितैः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥८॥

जिस तरह मेघों से सूर्य ढक लिया जाता है, उसी तरह धृष्टद्युम्न को हाथियों ने घेर लिया। अब पाण्डव और पाञ्चालों के तीक्ष्ण आयुधधारी गर्जना करते हुए वीर, उन कौरव वीरों पर बाण वर्षा करते हुए धृष्टद्युम्न की रक्षा के लिए पहुंचे। ये लोग, धनुष की डोरी रूपी वीणा के शब्दों के साथ और शूरवीरों की ताल से युक्त होकर नाच से रहे थे ॥७॥

नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥८॥
सात्यकिश्च शिखण्डी च चेकितानश्च वीर्यवान् ।
समन्तात्सिषिचुर्वीरा मेघास्तोयैरिवाचलान् ॥९॥

हे राजन्! नकुल, सहदेव, द्रौपदी पुत्र, प्रभद्रक, सात्यकि, शिखण्डी, वीर्यवान् चेकितान आदि वीर, सब ओर से इस तरह बाण वर्षा करने लगे-जैसे मेघ पर्वतों पर जल धारा बरसाते हों ॥

ते म्लेच्छैः प्रेषिता नागा नरानश्वान्रथानपि ।
हस्तैराक्षिप्य ममृदुः पद्भिश्चाप्यतिमन्यवः ॥१०॥

अब म्लेच्छराजों से प्रेरित किये हुए तथा अत्यन्त क्रोध में भरे हुए हाथी, अपनी सूंडों में नर, अश्व और रथियों को लपेट २ कर पैरों से कुचलने लगे ॥१०॥

विभिदुश्च विषाणाग्रैः समाक्षिप्य च चिक्षिपुः ।
विषाणलग्नाश्चाप्यन्ये परिपेतुर्विभीषणाः ॥११॥

किन्हीं वीरों को हाथियों ने अपने दांतों के अगले भागों से चीर दिया, किन्हीं को ऊपर उठाकर फैंक दिया। कोई वीर, दांतों के लिपटे हुए भी भय हीन हुए बीच में ही कूद पड़े ॥११॥

प्रमुखे वर्त्तमानं तु द्विपमङ्गस्य सात्यकिः ।
नाराचेनोग्रवेगेन भित्त्वा मर्माण्यपातयत् ॥१२॥

हे राजन्! सामने आये हुए, किसी अङ्ग देश के वीर के हाथी को उग्र वेग वाले बाण से छेदकर सात्यकि ने उसके मर्मों को छेद डाला ॥१२॥

तस्यावर्जितकायस्य द्विरदादुत्पतिष्यतः ।
नाराचेनाहनद्वक्षः सात्यकिः सोऽपतद्भुवि ॥१३॥

अपने अङ्गों को सिकोड़कर उस गजराज से कूदते हुए, उस अङ्ग देश के सामन्त के वक्षस्थल को सात्यकि ने चीर डाला जिससे वह पृथिवी पर गिर गया ॥१३॥

पुण्ड्रस्यापततो नागं चलन्तमिव पर्वतम् ।
सहदेवः प्रयत्नास्तैर्नाराचैरहनत्त्रिभिः ॥१४॥

पुण्ड्र देश के राजा के झपटते हुए हाथी को सहदेव ने प्रयत्न पूर्वक फैंके हुए तीन बाणों से मार डाला । यह हाथी पर्वत की तरह उमड़ता चला आता था ॥१४॥

विपताकं वियन्तारं विवर्मध्वजजीवितम् ।
तं कृत्वा द्विरदं भूयः सहदेवोऽङ्गमभ्ययात् ॥१५॥

सहदेव ने पताका, सवार, कवच, ध्वजा और प्राणों से हीन उस हाथी को करके फिर अङ्ग देश के योद्धा पर आक्रमण किया ॥

सहदेवं तु नकुलो वारयित्वाङ्गमार्दयत् ।
नाराचैर्यमदण्डाभैस्त्रिभिर्नागं शतेन तम् ॥१६॥

नकुल ने अङ्ग देश के सामन्त के सन्मुख जाते हुए, सहदेव को रोक दिया, और आपने यमदण्ड के तुल्य तीन बाणों से उसे आहत करके सौ बाणों से उसके हाथी को छेद डाला ॥१६॥

दिवाकरकरप्रख्यानङ्गश्चिक्षेप तोमरान् ।
नकुलाय शतान्यष्टौ त्रिधैकैकं तु सोऽच्छिनत् ॥१७॥

अथ अङ्गदेश के वीर ने सूर्य किरण के तुल्य एक सौ तोमर बाण नकुल पर फैंके, परन्तु नकुल ने उनके तीन २ टुकड़े कर डाले ॥१७॥

तथार्धचन्द्रेण शिरस्तस्य चिच्छेद पाण्डवः ।
स पपात हतो म्लेच्छस्तेनैव सह दन्तिना ॥१८॥

पाण्डु-पुत्र नकुल ने अर्धचन्द्र द्वारा उसका शिर काट डाला। नकुल के द्वारा मरा हुआ, वह म्लेच्छराज अपने हाथी के साथ २ रण भूमिमें गिर गया ॥१८॥

अथाङ्गपुत्रे निहते हस्तिशिक्षाविशारदे ।
अङ्गाः क्रुद्धा महामात्रा नागैर्नकुलमभ्ययुः ॥१९॥

हाथियों के युद्ध में कुशल, अङ्गदेश के प्रधान राजपुत्र के मारे जाने पर अङ्गदेश के अनेक गजारोही वीर कुपित हो उठे और अपने हाथियों के साथ नकुल पर वेग से झपटे ॥१९॥

चलत्पताकैः सुमुखैर्हेमकक्षातनुच्छदैः ।
मिमर्दिषन्तस्त्वरिताः प्रदीप्तैरिव पर्वतैः ॥२०॥

फड़फड़ाती हुई पताका वाले, सुन्दर मुखधारी. सुवर्ण की शङ्खला और कवच से सुसम्पन्न, जाज्वल्यमान पर्वतों के तुल्य हाथियों से सबको कुचल देने की अभिलाषा से बड़े वेग के साथ अङ्गवीर दौड़े ॥२०॥

मेकलोत्कलकालिङ्गा निषधास्ताम्रलिप्तकाः ।
शरतोमरवर्षाणि विमुञ्चन्तो जिघांसवः ॥२१॥

अब, मेकल, उत्कल, कलिङ्ग, निषध, और ताम्रलिप्तक वीर, शर, तोमर आदि बाणों की वर्षा करते हुए, नकुल के मार देने की इच्छा से बड़े वेग से झपटे ॥२१॥

तैश्छाद्यमानं नकुलं दिवाकरमिवाम्बुदैः ।
परिपेतुः सुसंरब्धाः पाण्डुपञ्चालसोमकाः ॥२२॥

अब नकुल, उन वीरों से इस तरह आच्छादित हो गए-जैसे, मेघों से सूर्य ढक जाता है। यह देखकर आवेश में भरे हुए पाण्डव पाञ्चाल और सोमक वीर, बड़े वेग से दौड़े ॥२२॥

ततस्तदभवद्युद्धं रथिनां हस्तिभिः सह ।
सृजतां शरवर्षाणि तोमरांश्च सहस्रशः ॥२३॥

अब रथी और गजारोहियों के मध्य में घोर युद्ध होने लगा। ये सहस्रों तोमर और बाणों की वर्षा कर रहे थे ॥२३॥

नागानां प्रास्फुटन्कुम्भा मर्माणि विविधानि च ।
दन्ताश्चैवातिविद्धानां नाराचैर्भूषणानि च ॥२४॥

इस समय छोड़े हुए बाणों से हाथियों के मस्तक फट गए, मर्म स्थान छिन्न-भिन्न हो गए। अत्यन्त बिंधे हुए इन हाथियों के भूषण और दांत खण्डित हो गए ॥२४॥

तेषामष्टौ महानागांश्चतुःषष्ट्या सुतेजनैः ।
सहदेवो जघानाशु तेऽपतन्सह सादिभिः ॥२५॥

इन महागजों में आठ महागजों को अत्यन्त तेज चौसठ बाणों से बड़े वेग से आहत किया-वे गजराज अपने सवारों के साथ रणभूमि में गिर गए ॥२५॥

अजिह्मगैस्तिमिरायम्य प्रयत्नाद्धनुरुत्तमम् ।
नाराचैरहनन्नागान्नकुलः कुलनन्दनः ॥२६॥

अपने कुल को आनन्दित करने वाले नकुल ने प्रयत्न पूर्वक धनुष को अच्छी तरह खैंचकर छोड़े हुए सीधे जाने वाले बाणों से मार गिराया ॥२६॥

ततः पाञ्चालशैनेयौ द्रौपदेया प्रभद्रकाः ।
शिखण्डी च महानागान्सिषिचुः शरवृष्टिभिः ॥२७॥

इसके अनन्तर पाञ्चाल, शैनेय, द्रौपदेय, प्रभद्रक और शिखण्डी, अपनी अपनी बाण वर्षा से उन गजराजों को बींधने लगे ॥२७॥

ते पाण्डुयोधाम्बुधरैः शत्रुद्विरदपर्वताः ।
बाणवर्षैर्हताः पेतुर्वज्रवर्षैरिवाचलाः ॥२८॥

अब पाण्डवों के योद्धारूपी मेघों द्वारा, शत्रु हाथी रूपी पर्वत, बाण वर्षा से आहत हुए इस तरह गिरने लगे-जैसे बिजली गिरने से पर्वत शिखर गिर रहे हों ॥२८॥

एवं हत्वा तव गजांस्ते पाण्डुरथकुञ्जराः ।
द्रुतां सेनामवैक्षन्त भिन्नकूलामिवापगाम् ॥२९॥

हे राजन् ! इस प्रकार तुम्हारे पक्ष के हाथियों को मार कर पाण्डवों के रथी और हाथी, बड़ी शीघ्रता के साथ सेना को देखने लगे-जो छिन्न-भिन्न तट वाली नदी के तुल्य दिखाई देने लगी ॥२९॥

तां ते सेनां समालोड्य पाण्डुपुत्रस्य सैनिकाः ।
विक्षोभयित्वा च पुनः कर्णं समभिदुद्रुवुः ॥३०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

पाण्डवों के सैनिकों ने तुम्हारी सेना को आलोडित करके और उसे व्याकुल बनाकर फिर उन्होंने अङ्गराज कर्ण पर आक्रमण किया ॥३०॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में गजों के युद्ध का
बाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तेईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

सहदेवं तथा क्रुद्धं दहन्तं तव वाहिनीम् ।
दुःशासनो महाराज भ्राता भ्रातरमभ्ययात् ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! क्रोध में भर कर तुम्हारी सेना को भस्म करते हुए सहदेव को देखकर उसके भाई, तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने अपने भ्राता सहदेव पर आक्रमण किया ॥१॥

तौ समेतौ महायुद्धे दृष्ट्वा तत्र महारथाः ।
सिंहनादरवांश्चक्रुर्वासांस्यादुधुवुश्च ह ॥२॥

इस महायुद्ध में इनके दोनों वीरों को टकराते देखकर अन्य महारथी, सिंहनाद करने, हर्ष सूचक अपने वस्त्रों को उड़ाने लगे ॥२॥

ततो भारत क्रुद्धेन तव तत्रेण धन्विना ।
पाण्डुपुत्रस्त्रिभिर्बाणैर्वक्षस्यभिहतो बली ॥३॥

हे भारत ! क्रोध में भरे हुए तुम्हारे पुत्र धनुर्धर दुःशासन ने पाण्डु-पुत्र महाबली सहदेव की छाती में तीन बाणों से प्रहार किया ॥३॥

सहदेवस्ततो राजन्नाराचेन तवात्मजम् ।
विद्ध्वा विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥४॥

हे राजन् ! अब सहदेव ने एक बाण छोड़कर तुम्हारे पुत्र दुःशासन को वींध लिया और फिर सत्तर बाण छोड़कर उसे क्षत-विक्षत कर दिया तथा तीन बाण मार कर सारथि को आहत कर दिया ॥४॥

दुःशासनस्ततश्चापं छित्त्वा राजन्महाहवे ।
सहदेवं त्रिसप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥५॥

हे राजन् ! अब इस महायुद्ध में तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने सहदेव के धनुष को काट डाला और तेहत्तर बाण पाण्डु-पुत्र सहदेव की भुजा और छाती में मारे ॥५॥

सहदेवस्तु संक्रुद्धः खड्गं गृह्य महाहवे ।
आविध्य प्रासृजत्तूर्णं तव पुत्ररथं प्रति ॥६॥

इस घोर संग्राम में सहदेव क्रोध में भर गया और उसने खड्ग उठाकर और उसे खैंचकर बड़ी शीघ्रता से तुम्हारे पुत्र दुःशासन के रथ पर छोड़ा ॥६॥

समार्गणगुणं चापं छित्त्वा तस्य महानसिः ।
निपपात ततो भूमौ च्युतः सर्प इवाम्बरात् ॥७॥

इस विशाल खड्ग से प्रत्यञ्चा और बाणों के साथ दुःशासन का धनुष कट गया । इसके अन्तर वह तलवार, आकाश से गिरते हुए सर्प के तुल्य पृथिवी में गिर गई ॥७॥

अथान्यद्धनुरादाय सहदेवः प्रतापवान् ।
दुःशासनाय चिक्षेप बाणमन्तकरं ततः ॥८॥

अब प्रतापशाली सहदेव ने दूसरा धनुष उठाया और दुःशासन के अन्त कर देने का उसे उस पर वेग के साथ छोड़ा ॥८॥

तमापन्ततं विशिखं यमदण्डोपमत्विषम् ।
खड्गेन शितधारेण द्विधा चिच्छेद कौरवः ॥९॥

जब यम दण्ड के सदृश सहदेव के बाण को आता देखा-तो कुरुवंशोद्भव, दुःशासन ने अपनी तीक्ष्ण धार धारी, खड्ग से उसके दो टुकड़े कर दिए ॥९॥

ततस्तं निशितं खड्गमाविध्य युधि सत्वरः ।
धनुश्चान्यत्समादाय शरं जग्राह वीर्यवान् ॥१०॥

शीघ्रता करने वाले वीर्यवान् दुःशासन ने रण में इस तीक्ष्ण खड्ग का प्रहार करके दूसरा धनुष उठाया और इस पर बाण चढ़ाया ॥१०॥

तमापन्ततं सहसा निस्त्रिंशं निशितैः शरैः ।
पातयामास समरे सहदेवो हसन्निव ॥११॥

दुःशासन द्वारा चलाए हुए खड्ग को एक दम अपने ऊपर आता हुआ देखकर सहदेव ने हंसते हंसते रण में उसे काट गिराया ॥११॥

ततो बाणांश्चतुःषष्टिं तव पुत्रो महारणे ।
सहदेवरथं तूर्णं प्रेषयामास भारत ॥१२॥

हे भारत ! अब महायुद्ध में तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने चौसठ बाण बड़ी शीघ्रता से सहदेव के रथ की ओर छोड़े ॥१२॥

ताञ्शरान्समरे राजन्वेगेनापततो बहून् ।
एकैकं पञ्चभिर्बाणैः सहदेवो न्यकृन्तत ॥१३॥

हे राजन् ! वेग से आते हुए रण में उन बहुत से बाणों को सहदेव ने काट गिराया । उसनें एक २ बाण को पांच २ बाणों द्वारा खण्ड २ में कर दिया ॥१३॥

सन्निवार्य महाबाणांस्तव पुत्रेण प्रेषितान् ।
अथास्मै सुबहून्बाणान्प्रेषयामास संयुगे ॥१४॥

हे नृप ! तुम्हारे पुत्र के छोड़े हुए बड़े २ बाणों को निवृत्त करके, सहदेव ने उस पर रण में बहुत से बाण छोड़े ॥१४॥

तान्बाणांस्तव पुत्रोऽपि च्छित्वैकैकं त्रिभिः शरैः ।
ननाद महानादं दारयाणो वसुन्धराम् ॥१५॥

सहदेव के इन बाणों को तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने भी चूर २ कर दिया । उसने एक २ बाण को तीन २ बाणों से काट डाला । वह पृथिवी को खोदता हुआ वृषभ की तरह बड़े ऊंचे स्वर में गर्जना करने लगा ॥१५॥

ततो दुःशासनो राजन्विध्वा पाण्डुसुतं रणे ।
सारथिं नवभिर्बाणैर्माद्रेयस्य समार्पयत् ॥१६॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर दुःशासन ने रण में पाण्डु-पुत्र सहदेव को बींध कर माद्री-पुत्र सहदेव के सारथि के नौ बाणों का प्रहार किया ॥१६॥

ततः क्रुद्धो महाराज सहदेवः प्रतापवान् ।
समाधत्त शरं घोरं मृत्युकालान्तकोपमम् ॥१७॥
विकृष्य बलवच्चापं तव पुत्राय सोऽसृजत् ।

हे महाराज ! इस प्रकार का आक्रमण देखकर प्रतापी सहदेव ने भी क्रोध में भर कर मृत्यु, काल और अन्तक के समान घोर बाण का प्रयोग किया । हे राजन् ! अब सहदेव ने बलशाली धनुष को खैंचकर तुम्हारे पुत्र पर छोड़े ॥१७॥

स तं निर्भिद्य वेगेन भित्त्वा च कवचं महत् ॥१८॥
प्राविशद्धरणीं राजन्वल्मीकमिव पन्नगः ।

हे राजन् ! सहदेव का बाण, वेग के साथ उसके महान् कवच और उसको बींध कर वल्मीक में सर्प की तरह पृथिवी में घुस गया ॥१८॥

ततः संमुमुहे राजंस्तव पुत्रो महारथः ॥१९॥
मूढं चैनं समालोक्य सारथिस्त्वरितो रथम् ।
अपोवाह भृशं त्रस्तो वध्यमानः शितैः शरैः ॥२०॥

हे राजन् ! इस बाण से तुम्हारा महारथी पुत्र दुःशासन मोहित हो गया । इसको मूर्च्छित देखकर इसका सारथि, इसको रणभूमि से बाहर ले गया । इस समय तीक्ष्ण बाणों से यह भी अत्यन्त क्षत-विक्षत हो रहा था ॥१९-२०॥

पराजित्य रणे तं तु कौरव्यं पाण्डुनन्दनः ।
दुर्योधनबलं दृष्ट्वा प्रममाथ समन्ततः ॥२१॥

पाण्डुनन्दन सहदेव, कुरुवंशश्रेष्ठ दुःशासन को पराजित करके रण में राजा दुर्योधन की सेना को देखकर सब ओर से उसे मथने लगा ॥२१॥

पिपीलिकपुटं राजन्यथा मृद्नन्नरो रुषा ।
तथा सा कौरवी सेना मृदिता तेन भारत ॥२२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि सहदेवदुःशासनयुद्धे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

हे भरतवंशश्रेष्ठ ! राजन् ! क्रोध में भर कर जैसे कोई मनुष्य, पिपीलकपुट (वल्मीक) को तोड़ फोड़ देता है, उसी तरह सहदेव ने कौरव सेना को मथ डाला ॥२२॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में सहदेव और दुःशासन के युद्ध का तेईसवां अध्याय समाप्त हुआ ।



चौबीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

नकुलं रभसं युद्धे द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।
कर्णो वैकर्त्तनो राजन्वारयामास वै रुषा ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! बड़े वेग के साथ युद्ध में कौरव सेना को भागते हुए, नकुल पर क्रोध-पूर्वक सूर्य-पुत्र कर्ण ने आक्रमण किया ॥१॥

नकुलस्तु ततः कर्णं प्रहसन्निदमब्रवीत् ।
चिरस्य बत दृष्टोऽहं दैवतैः सौम्य चक्षुषा ॥२॥
पश्य मां त्वं रणे पाप चक्षुर्विषयमागतम् ।
त्वं हि मूलमनर्थानां वैरस्य कलहस्य च ॥३॥

अब कुछ हँसकर पाण्डु-पुत्र नकुल ने कर्ण से कहा—हे सौम्य ! आज मैं बहुत दिन में दैव की प्रेरणा से तेरे दृष्टिगोचर हुआ हूं ! हे पापी ! अब मैं रण में तेरी दृष्टि के सन्मुख उपस्थित

हूं, तू आंख खोलकर मुझे देख ले। तू इस सारे अनर्थ, वैर और कलह का मूल है ॥२-३॥

त्वद्दोषात्कुरवः क्षीणाः समासाद्य परस्परम् ।
त्वामद्य समरे हत्वा कृतकृत्योऽस्मि विज्वरः ॥४॥

हे कर्ण ! तेरे अपराध से ही कौरव, वंश के वीर, परस्पर टकराकर क्षीण हो रहे हैं। आज मैं युद्ध में तुझे मारकर और सारी चिन्ताओं से रहित होकर कृत कृत्य हो जाऊंगा ॥४॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच नकुलं सूतनन्दनः ।
सदृशं राजपुत्रस्य धन्विनश्च विशेषतः ॥५॥

जब नकुल ने इतना कहा—तो सूत-पुत्र कर्ण बोले—कि राज-पुत्र और विशेष कर धनुर्धर को ऐसा ही दर्प पूर्ण वचन कहना चाहिए ॥५॥

प्रहरस्व च मे वीर पश्यामस्तव पौरुषम् ।
कर्म कृत्वा रणे शूर ततः कत्थितुमर्हसि ॥६॥

हे वीर ! अब तू प्रहार कर-मैं तेरा पराक्रम देखना चाहता हूं। हे शूर ! प्रथम रण में कुछ करके दिखाओगे, तब यह प्रशंसा करना ठीक जचेगा ॥६॥

अनुक्त्वा समरे तात शूरा युध्यन्ति शक्तितः ।
प्रयुध्यस्व मया शक्त्या हनिष्ये दर्पमेव ते ॥७॥

हे तात ! सच्चा शूरवीर तो वही होता है, जो कुछ डींग न मारकर शक्ति के अनुसार युद्ध करते हैं। अब तुम मेरे साथ

अपना पूरा बल लगाकर युद्ध करो-मैं तुम्हारे घमण्ड को अभी निकाल देता हूं ॥७॥

इत्युक्त्वा प्राहरत्तूर्णं पाण्डुपुत्राय सूतजः ।
विव्याध चैनं समरे त्रिसप्तत्या शिलीमुखैः ॥८॥

हे राजन् ! इतना कहकर सूत-पुत्र कर्ण ने पाण्डु-पुत्र नकुल पर बड़ी शीघ्रता से प्रहार किया और तेइत्तर बाण छोड़कर रण में उसे क्षत विक्षत कर दिया ॥८॥

नकुलस्तु ततो विद्धः सूतपुत्रेण भारत ।
अशीत्याशीविषप्रख्यैः सूतपुत्रमविध्यत ॥९॥

हे भारत ! सूत-पुत्र कर्ण ने जब नकुल को घायल कर दिया तो उसने भी सर्प के सदृश अस्सी बाण मारकर सूत-पुत्र को आच्छादित कर दिया ॥९॥

तस्य कर्णो धनुश्छित्त्वा स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।
त्रिंशता परमेष्वासः शरैः पाण्डवमर्दयत् ॥१०॥
ते तस्य कवचं भित्त्वा पपुः शोणितमाहवे ।
आशीविषा यथा नागा भित्त्वा गां सलिलंपपुः ॥११॥

अब महाधनुर्धर कर्ण ने सुवर्ण मूलधारी शिला पर तीक्ष्ण किये हुए बाणों से नकुल के धनुष को काट डाला और तीस बाण छोड़कर पाण्डु-पुत्र नकुल को भी आहत कर दिया इन बाणों ने रण में उसका कवच बींधकर उसके शोणित को इस तरह

जा चाटा जैसे-आशीविष सर्प, पृथिवी को चीरकर पाताल में पानी जा पीते हैं ॥१०-११॥

अथान्यद्धनुरादाय हेमपृष्ठं दुरासदम् ।
कर्णं विव्याध सप्तत्या सारथिं च त्रिभिः शरैः ॥१२॥

अब नकुल ने सुवर्ण पीठधारी दूसरा दुरासद धनुष उठाया और उससे सत्तर बाण छोड़कर तीन बाण ऐसे छोड़े जिनसे सारथि घायल हो गया ॥१२॥

ततः क्रुद्धो महाराज नकुलः परवीरहा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कर्णस्य धनुराच्छिनत् ॥१३॥

हे महाराज ! शत्रु वीर नाशक, नकुल, क्रोध में उबल रहा था। उसने छुरे के सदृश अत्यन्त तीक्ष्ण बाण लेकर महारथी कर्ण का धनुष काट डाला ॥१३॥

अथैनं छिन्नधन्वानं सायकानां शतैस्त्रिभिः ।
आजघ्ने प्रहसन्वीरः सर्वलोकमहारथम् ॥१४॥

जब कर्ण का धनुष कट गया-तो नकुल कुछ मुसकुराया और उसने सारे लोक में श्रेष्ठ महारथी कर्णको तीन सौ बाण मारकर बुरी तरह आहत कर दिया ॥१४॥

कर्णमभ्यर्दितं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रेण मारिष ।
विस्मयं परमं जग्मू रथिनः सह दैवतैः ॥१५॥

हे आर्य ! पाण्डु-पुत्र नकुल द्वारा कर्ण को घायल देखकर देवता और सारे महारथी बड़े चकित हुए ॥१५॥

अथान्यद्धनुरादाय कर्णो वैकर्त्तनस्तदा ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्जत्रुदेशे समार्पयत् ॥१६॥

अब सूर्य-पुत्र कर्ण ने दूसरा धनुष उठाया और उसने उससे पांच बाण छोड़कर नकुल के जन्तु प्रदेश (गर्दन के समीप) में प्रहार किया ॥१६॥

तत्रस्थैरथ तैर्बाणैर्माद्रीपुत्रो व्यशोभत ।
स्वरश्मिभिरिवादित्यो भुवने विसृजन्प्रभाम् ॥१७॥

जन्तु प्रदेश में गड़े हुए उन बाणों से माद्री-पुत्र नकुल इस तरह सुशोभित होने लगे—जैसे-संसार में प्रकाश फैलाते हुए, सूर्य अपनी किरणों से सुशोभित होते हैं ॥१७॥

नकुलस्तु ततः कर्णं विद्ध्वा सप्तभिराशुगैः ।
अथास्य धनुषः कोटिं पुनश्चिच्छेद मारिष ॥१८॥

हे आर्य ! अब अङ्गराज कर्ण को नकुल ने सात आशुगामी बाणों से बींध लिया और फिर इसके धनुष की कोटि काट डाली ॥१८॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय समरे वेगवत्तरम् ।
नकुलस्य ततो बाणैः समन्ताच्छादयद्दिशः ॥१९॥

हे राजन् ! कर्ण ने रण में शीघ्रता के साथ बड़ा वेगशाली दूसरा धनुष उठाया और उससे इतने बाण छोड़े कि जिससे नकुल की सारी दिशा आच्छादित हो गई ॥१९॥

सञ्छाद्यमानः सहसा कर्णचापच्युतैः शरैः।
चिच्छेद स शरांस्तूर्णं शरैरेव महारथः ॥२०॥

इस प्रकार कर्ण के छोड़े हुए बाणों से एक दम आच्छादित हुआ महारथी नकुल, अपने बाणों से बड़ी शीघ्रता के साथ कर्ण के बाणों को काटने लगा ॥२०॥

ततो बाणमयं जालं विततं व्योम्नि दृश्यते।
खद्योतानामिव व्रातैः सम्पतद्भिर्यथा नभः ॥२१॥

हे राजन! बाणों का जाल इस तरह आकाश में छा गया, जैसे-खद्योतों (जुगनूं) का जाल, आकाश में छा रहा हो ॥२१॥

तैर्विमुक्तैः शरशतैश्छादितं गगनं तदा।
शलभानां यथा व्रातैस्तद्वदासीद्विशाम्पते ॥२२॥

हे विशाम्पते! शलभ पक्षियों के समूह से जैसे आकाश भर जाता है उसी तरह इनके छोड़े हुए बाण जाल से सारा आकाश भर गया ॥२२॥

ते शरा हेमविकृताः सम्पतन्तो मुहुर्मुहुः।
श्रेणीकृता व्यकाशन्त क्रौञ्चाः श्रेणीकृता इव ॥२३॥

सुवर्ण जटित ये बाण, श्रेणी बद्ध होकर बार २ इस तरह उड़ रहे थे, जैसे श्रेणी बांधे हुए सुनहरी हंस उड़ रहे हों ॥२३॥

बाणजालावृते व्योम्नि छादिते च दिवाकरे।
न स्म सम्पतते भूम्यां किञ्चिदप्यन्तरिक्षगम् ॥२४॥

जब बाण जाल से आकाश आवृत हो गया और सूर्य ढ़क गया-तो उस समय आकाश से कोई भी वस्तु नीचे नहीं गिर सकती थी ॥२४॥

निरुद्धे तत्र मार्गे च शर सङ्घैः समन्ततः ।

व्यरोचेतां महात्मानौ कालसूर्याविवोदितौ ॥२५॥

बाण समूह से सब ओर मार्ग के रुक जाने पर ये दोनों महारथी नकुल और कर्ण, प्रलय काल में उदित हुए सूर्य के तुल्य प्रतीत होते थे ॥२५॥

कर्णचापच्युतैर्बाणैर्वध्यमानास्तु सोमकाः ।

अवालीयन्त राजेन्द्र वेदनार्त्ता भृशार्दिताः ॥२६॥

हे राजसत्तम ! कर्ण के धनुष से निकले हुए बाणों से घायल हुए सोमकवीर, अत्यन्त पीड़ित और वेदना से व्याकुल होकर इधर उधर घूमने लगे ॥२६॥

नकुलस्य तथा बाणैर्हन्यमाना चमूस्तव ।

व्यशीर्यत दिशो राजन्वाततुन्ना इवाम्बुदाः ॥२७॥

हे राजन् ! नकुल के बाणों से भी आहत की हुई कौरव सेना, सारी दिशाओं में वायु से उड़ाये हुए मेघों की तरह बिखर गई ॥२७॥

ते सेने हन्यमाने तु ताभ्यां दिव्यैर्महाशरैः ।

शरपातमपाक्रम्य तस्थतुः प्रेक्षिके तदा ॥२८॥

उन भिन्न २ दिव्य बाणों से घायल हुई दोनों ओर की सेना, बाण की चोट से बचकर कौतुक देखने वाले की तरह खड़ी २ कौतुक (तमाशा) देखने लगी ॥२८॥

प्रोत्सारितजने तस्मिन्कर्णपाण्डवयोः शरैः ।
अविध्येतां महात्मानावन्योन्यं शरवृष्टिभिः ॥२९॥

जब कर्ण और नकुल के बाणों से दोनों सेना के वीर हटा दिए गए-तो फिर ये दोनों महारथी, अपनी २ बाण वर्षा से एक दूसरे को बींधने लगे ॥२९॥

विदर्शयन्तौ दिव्यानि शस्त्राणि रणमूर्धनि ।
छादयन्तौ च सहसा परस्परवधैषिणौ ॥३०॥

ये एक दूसरे के वध की लालसा से रणाङ्गण में दिव्य अस्त्रों के प्रयोग द्वारा बाण छोड़कर एक दूसरे को अत्यन्त आच्छादित करने लगे ॥३०॥

नकुलेन शरा मुक्ताः कङ्कबर्हिणवाससः ।
सूतपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्त यथाम्बरे ॥३१॥

कङ्क और मयूर पिच्छ से सुशोभित, नकुल द्वारा छोड़े हुए बाण, सूत-पुत्र को घेर कर आकाश में चकराने लगे ॥३१॥

तथैव सूतपुत्रेण प्रेपिताः परमाहवे ।
पाण्डुपुत्रमवच्छाद्य व्यतिष्ठन्ताम्बरे शराः ॥३२॥

इसी तरह इस महायुद्ध में सूत-पुत्र कर्ण द्वारा छोड़े हुए बाण, पाण्डु-पुत्र नकुल को आच्छादित करके आकाश में मँडरा रहे थे ॥३२॥

शरवेश्म प्रविष्टौ तौ ददृशाते न कैश्चन ।
सूर्याचन्द्रमसौ राजञ्छाद्यमानौ घनैरिव ॥३३॥

हे राजन् ! ये दोनों महारथी, बाणों के पींजरे में छुपे हुए इस प्रकार किसी को भी दिखाई नहीं देते थे, जैसे मेघ पटल में ढ़के हुए सूर्य और चन्द्रमा किसी को दिखाई नहीं देते ॥३३॥

ततः क्रुद्धो रणे कर्णः कृत्वा घोरतरं वपुः ।
पाण्डवं छादयामास समन्ताच्छरवृष्टिभिः ॥३४॥

इसके अनन्तर रण में महारथी कर्ण कुपित हो उठा और उसने अपना बड़ा भीषण रूप बनाया । इसने इतनी बाण वर्षा की, कि उससे नकुल बिल्कुल ही ढ़क गया ॥३४॥

सोऽतिच्छन्नो महाराज सूतपुत्रेण पाण्डवः ।
न चकार व्यथां राजन्भास्करो जलदैर्यथा ॥३५॥

हे महाराज ! सूत-पुत्र द्वारा छोड़े हुए बाणों से अत्यन्त आच्छादित होने पर भी नकुल ने कोई व्यथा इस तरह नहीं मानी जैसे मेघों से आच्छादित होकर सूर्य कोई पीड़ा नहीं मानता है ॥३५॥

ततः प्रहस्याधिरथिः शरजालानि मारिष ।
प्रेषयामास समरे शतशोऽथ सहस्रशः ॥३६॥

एकच्छायमभूत्सर्वं तस्य बाणैर्महात्मनः ।

अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे सम्पतद्भिः शरोत्तमैः ॥३७॥

हे उत्तम गुणधारी ! राजन् ! अब अधिरथ-पुत्र कर्ण ने कुछ हँसकर रण में सैंकड़ों हज़ारों की संख्या में बाण छोड़े। उस महारथी के बाणों का एक छाता सा छा गया। उन गिरते हुए बाणों से आकाश में मेघों की सी छाया छा गई ॥३६-३७॥

ततः कर्णो महाराज धनुश्छित्त्वा महात्मनः ।

सारथिं पातयामास रथनीडाद्धसन्निव ॥३८॥

हे महाराज ! इसके अनन्तर कुछ मुसकुराते हुए कर्ण ने महावीर नकुल के धनुष को काट कर उसके सारथि को रथ के आसन से नीचे गिरा दिया ॥३८॥

ततोऽश्वांश्चतुरश्चास्य चतुर्भिर्निशितैः शरैः ।

यमस्य भवनं तूर्णं प्रेपयामास भारत ॥३९॥

हे भारत ! अब चार तीक्ष्ण बाण छोड़ कर महारथी कर्ण ने नकुल के चारों अश्वों को बड़ी शीघ्रता से यमराज के भवन भेज दिया ॥३९॥

अथास्य तं रथं दिव्यं तिलशो व्यधमच्छरैः ।

पताकां चक्ररक्षांश्च गदां खड्गं च मारिष ॥४०॥

शतचन्द्रं च तच्चर्म सर्वोपकरणानि च ।

हे आर्य ! अब कर्ण ने नकुल के दिव्य रथ, पताका, चक्ररक्षक, गदा, खड्ग शतचन्द्रयुक्तढ़ाल, तथा युद्ध के साधनों को तिल २ में काट गिराया ॥४०॥

हताश्वो विरथश्चैव विवर्मा च विशाम्पते ॥४१॥

अवतीर्य रथात्तूर्णं परिघं गृह्य धिष्टितः ।

हे विशाम्पते ! अब वह अश्व, रथ और कवच से हीन होकर झटपट रथ से कूद पड़ा और परिघ नामक अस्त्र लेकर खड़ा हो गया ॥४१॥

तमुद्यतं महाघोरं परिघं तस्य सूतजः ॥४२॥

व्यहनत्सायकै राजन्स तीक्ष्णैर्भारसाधनैः ।

हे राजन् ! सूत-पुत्र ने अपने युद्ध के भार सहन करने में समर्थ तीक्ष्ण बाणों द्वारा नकुल के उठाये हुए महाघोर परिघ को काट गिराया ॥४२॥

व्यायुधं चैनमालक्ष्य शरैः सन्नतपर्वभिः ॥४३॥

आर्पयद्बहुभिः कर्णो न चैनं समपीडयत् ।

जब कर्ण ने नकुल को शस्त्रहीन-देखा-तो अपने नतपर्व वाले, बहुत से बाणों से नकुल को आहत किया, परन्तु नकुल को प्राण विहीन नहीं किया ॥४३॥

स हन्यमानः समरे कृतास्त्रेण बलीयसा ॥४४॥

प्राद्रवत्सहसा राजन्नकुलो व्याकुलेन्द्रियः ।

हे राजन् ! अस्त्र विद्या में कुशल, महाबलवान् कर्ण द्वारा रण में आहत हुआ नकुल बहुत व्याकुल होगया और वह एक दम रण से भाग निकला ॥४४॥

तमभिद्रुत्य राधेयः प्रहसन्वै पुनः पुनः ॥४५॥
सज्यमस्य धनुः कण्ठे व्यवासृजत भारत ।

हे भारत ! राधा-पुत्र कर्ण, बार २ कुछ मुसकुराकर एक दम दौड़ा और अपने चढ़े हुए धनुष को नकुल के गले में डाल दिया ॥४५॥

ततः स शुशुभे राजन्कण्ठासक्तमहाधनुः ॥४६॥
परिवेषमनुप्राप्तो यथा स्याद्व्योम्नि चन्द्रमाः ।
यथैव चासितो मेघः शक्रचापेन शोभितः ॥४७॥

हे राजसत्तम ! कण्ठ में गिरे हुए महा धनुष से नकुल इस तरह सुशोभित हुआ-जैसे आकाश मण्डल में घिरा हुआ चन्द्रमा तथा इन्द्र धनुष से व्याप्त नवीन नीला मेघ, सुन्दर दिखाई पड़ता है ॥४६-४७॥

तमब्रवीत्ततः कर्णो व्यर्थं व्याहृतवानसि ।
वदेदानीं पुनर्हृष्टो वध्यमानः पुनः पुनः ॥४८॥

अब कर्ण ने नकुल से कहा—हे तात ! तुमने प्रथम व्यर्थ ही बकवाद की थी । उसी तरह आनन्द में भरकर कुछ और तो कहो । अब बार २ ठोक पीट कर तुम्हें ठीक बना दिया गया है ॥४८॥

मा योत्सीः कुरुभिः सार्धं बलवद्भिश्च पाण्डव ।
सदृशैस्तात युध्यस्व व्रीडां मा कुरु पाण्डव ॥४६॥
गृहे वा गच्छ माद्रेय यत्र वा कृष्णफाल्गुनौ ।

हे पाण्डव ! तुम बलवान् कौरवों के साथ कभी युद्ध की इच्छा न करना । हे तात ! पाण्डु-पुत्र ! यदि युद्ध-करना हो-तो बराबर के वीरों से करना । तुम कुछ लज्जा न करो–हे माद्री-पुत्र अब तुम अपने शिविर में जाओ या जहां कृष्ण और अर्जुन हैं-वहां जा सकते हो ॥४६॥

एवमुक्त्वा महाराज व्यसर्जयत तं तदा ॥५०॥
वधप्राप्तं तु तं शूरो नाहनद्धर्मवित्तदा ।
स्मृत्वा कुन्त्या वचो राजंस्तत एनं व्यसर्जयत् ॥५१॥

हे महाराज ! यद्यपि नकुल मौत के पंजे में पड़ गया था-तो भी इतना ही कहकर धर्मात्मा शूरवीर कर्ण ने उसे छोड़ दिया और मारा नहीं । हे राजन् ! उसने कुन्ती को-अर्जुन को छोड़कर अन्य किसी पुत्र के नहीं मारने का वर दे दिया था । इसीसे उसने उसे निकल जाने दिया ॥५०-५१॥

विसृष्टः पाण्डवो राजन्सूतपुत्रेण धन्विना ।
व्रीडन्निव जगामाथ युधिष्ठिररथं प्रति ॥५२॥
आरुरोह रथं चापि सूतपुत्रप्रतापितः ।
निःश्वसन्दुःखसन्तप्तः कुम्भस्थ इव पन्नगः ॥५३॥

हे राजन ! धनुषधारी सूत-पुत्र कर्ण द्वारा छोड़ा हुआ पाण्डु-पुत्र नकुल, कुछ लज्जित होकर राजा युधिष्ठिर के रथ की ओर चला गया और वहां सूत-पुत्र कर्ण से सन्तापित हुआ, घर में बन्द सर्प की तरह श्वास मार कर दुःख के साथ धर्मराज के रथ पर चढ़ गया ॥५२-५३॥

तं निर्जित्याथ कर्णोऽपि पञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।
रथेनातिपताकेन चन्द्रवर्णहयेन च ॥५४॥

महारथी कर्ण भी नकुल को जीतकर फड़फड़ाती ध्वजा और चन्द्र तुल्य श्वेत अश्वों से युक्त रथ से बड़े वेग के साथ पञ्चालों पर झपटा ।५४॥

तत्राक्रन्दो महानासीत्पाण्डवानां विशाम्पते ।
दृष्ट्वा सेनापतिं यान्तं पाञ्चालानां रथव्रजान् ॥५५॥

हे विशाम्पते ! पञ्चालों के रथ समूह की ओर कौरव सेनापति कर्ण को जाता देखकर पाण्डवों की सेना में बड़ा ही कोलाहल मच गया ॥५५॥

तत्राकरोन्महाराज कदनं सूतनन्दनः ।
मध्यं प्राप्ते दिनकरे चक्रवद्विचरन्प्रभुः ॥५६॥

हे महाराज ! इस समय दोपहर दिन चढ़ा होगा। महा शक्तिशाली, कर्ण, चक्र की तरह घूम कर वहां पाण्डव सेना का विध्वंस उड़ाने लगा ॥५६॥

भग्नचक्रै रथैः कैश्चिच्छिन्नध्वजपताकिभिः ।
तथाश्वैर्हतसूतैश्च भग्नाक्षैश्चैव मारिष ॥५७॥
ह्रियमाणानपश्याम पाञ्चालानां रथव्रजान् ।

हे आर्य ! उस समय किसी रथ के तो चक्र टूट गए, किसी का सारथि मारा गया। किसी की ध्वजा पताका छिन्न-भिन्न होगई और किसी के धुरे नष्ट-भ्रष्ट हो गए । इस समय तो पञ्चालों के रथसमूह, जिधर देखो-उधर भागते ही दृष्टिगोचर होते थे ॥५७॥

तत्र तत्र च सम्भ्रान्ता विचेरुरथ कुञ्जराः ॥५८॥
दावाग्निपरिदग्धाङ्गा यथैव स्युर्महावने ।

इस महावीर युद्ध में इधर उधर हाथी घबराए हुए इस तरह दौड़ रहे थे, जैसे-दावाग्नि से दग्ध हुए गहन वन में हाथी भाग रहे हों ॥५८॥

भिन्नकुम्भार्द्ररुधिराश्छिन्नहस्ताश्च वारणाः ॥५९॥
छिन्नगात्रावराश्चैव च्छिन्नवालधयोऽपरे ।
छिन्नाभ्राणीव सम्पेतुर्हन्यमाना महात्मना ॥६०॥

बहुत से हाथियों के मस्तक फट गए, सूंड़ कट गई, जिससे उनके शरीर रक्त में भीग गए। किसी के पीछे के पैर कट गए और किसी की पूंछ कट गई। इस महात्मा कर्ण द्वारा आहत हुए हाथी छिन्न-भिन्न मेघों की तरह गिरने लगे ॥५९-६०॥

अपरे त्रासिता नागा नाराचशरतोमरैः ।
तमेवाभिमुखं जग्मुः शलभा इव पावकम् ॥६१॥

कर्ण के बाण और तोमरों से भयभीत हुए हाथी, उसी की ओर इस तरह भागने लगे-जैसे अग्नि की ओर पतंगे उड़ जाती हैं ॥६१॥

अपरे निष्टनन्तश्च व्यदृश्यन्त महाद्विपाः ।
क्षरन्तः शोणितं गात्रैर्नगा इव जलस्रवाः ॥६२॥

कुछ बड़े २ हाथी, आर्तनाद करते हुए दिखाई दिए और कुछ गजों के शरीर से रक्तधारा इस तरह बह रही थी-जैसे-पर्वतों से जलधारा बह रही हो ॥६२॥

उरश्छदैर्वियुक्तांश्च वालबन्धैश्च वाजिनः ।
राजतैश्च तथा कांस्यैः सौवर्णैश्चैव भूषणैः ॥६३॥
हीनांश्चाभरणैश्चैव खलीनैश्च विवर्जितान् ।
चामरैश्च कुथाभिश्च तूणीरैः पतितैरपि ॥६४॥
निहतैः सादिभिश्चैव शूरैराहवशोभितैः ।
अपश्याम रणे तत्र भ्राम्यमाणान्हयोत्तमान् ॥६५॥

हे राजन्! उरश्छद और पूंछ से हीन हुए, बहुत से अश्व, वहां दिखाई दे रहे थे। किसी के चांदी, कांसी, सुवर्णके आभूषण थे, किसी के आभूषण और लगाम नहीं थी। चाँमर, झूल और तूणीर तथा और युद्ध में शोभा पाने वाले रणवीरों से रहित हुए अनेक उत्तम २ अश्व, वहां घूमते दिखाई दे रहे थे ॥६३-६५॥

प्रासैः खड्गैश्च रहितानृष्टिभिश्चापि भारत ।
हयसादीनपश्याम कंचुकोष्णीषधारिणः ॥६६॥

हे भारत ! प्रास, खड्ग, ऋष्टि आदि शस्त्रों से रहित, केवल अंगरखा और पगड़ी पहने हुए, अश्वारोही रणभूमि में दिखाई देते थे ॥६६॥

निहतान्वध्यमानांश्च वेपमानांश्च भारत ।
नानाङ्गावयवैर्हीनांस्तत्रतत्रैव भारत ॥६७॥

हे भारत ! बहुत से अश्वारोही मारे जा चुके बहुत से मर रहे थे और बहुत से कांप रहे थे । अनेकों वीरों को उनके अङ्ग और अवयवों से रहित रणभूमि में पड़े देखा ॥६७॥

रथान्हेमपरिष्कारान्संयुक्ताञ्जवनैर्हयैः ।
भ्राम्यमाणानपश्याम हतेषु रथिषु द्रुतम ॥६८॥

हे भरतश्रेष्ठ ! सुवर्ण से समुज्ज्वल, वेग वाले अश्वों से युक्त, अपने रथियों के मारे जाने पर हमने वहां घूमते हुए अनेक रथों को देखा ॥६८॥

भग्नाक्षकूबरान्कांश्चिद्भग्नचक्रांश्च भारत ।
विपताकध्वजांश्चान्याञ्छिन्नेषादण्डवन्धुरान् ॥६९॥

हे भारत ! बहुत से रथों की पताका और ध्वजा नष्ट हो चुकी उनके ईर्षा, दण्ड, ऊंचे-नीचे काष्ट, धुरे, कूबर और चक्र, छिन्न-भिन्न हो गए ॥६९॥

विहतान्रथिनस्तत्र धावमानांस्ततस्ततः ।
सूतपुत्रशरैस्तीक्ष्णैर्हन्यमानान्विशाम्पते ॥७०॥
विशस्त्रांश्च तथैवान्यान्सशस्त्रांश्च हतान्बहून् ।

हे विशाम्पते ! सूत पुत्र के तीक्ष्ण बाणों से घायल हुए, और बहुतसे भरे हुए रथियों को लेकर रथ इधर उधर दौड़ रहे थे। उनमें बहुतों के पास शस्त्र थे और बहुतसे शस्त्रों से रहित मरे पड़े थे ॥७०॥

तारकाजालसंच्छन्नान्वरघण्टाविशोभितान् ॥७१॥
नानावर्णविचित्राभिः पताकाभिरलंकृतान् ।
वारणाननुपश्याम धावमानान्समन्ततः ॥७२॥

चांदी के तारकाओं के जालों से व्याप्त उत्तम २ घण्टाओं से सुशोभित, अनेक वर्ण को विचित्र पताकाओं से अलंकृत इधर उधर दौड़ते हुए हाथियों को भी हमने देखा ॥७१-७२॥

शिरांसि बाहूनूरूंश्च च्छिन्नानन्यांस्तथैव च ।
कर्णचापच्युतैर्बाणैरपश्याम समन्ततः ॥७३॥

हे राजन् ! जिधर देखो उधर शिर व बाहु, जंघा तथा कर्ण के धनुप से निकले हुए बाणों से कटे हुए, अन्य अनेक अङ्ग रण भूमि में दखाई दे रहे थे ॥७३॥

महान्व्यतिकरो रौद्रो योधानामन्वपद्यत ।
कर्णसायकनुन्नानां युध्यतां च शितैः शरैः ॥७४॥

हे नृप ! अङ्गराज कर्ण के बाणों से व्यथित किये तथा तीक्ष्ण शस्त्रों से युद्ध करते हुए, योद्धाओं का महान् घोर युद्ध चल पड़ा ॥७४॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
तमेवाभिमुखं यान्ति पतङ्गा इव पावकम् ॥७५॥

हे महीपते ! सूत पुत्र कर्ण के बाणों से रण में आहत हुए सृञ्जय वीर, इस तरहसे उसी की ओर दौड़े, जिस तरह पतङ्ग अग्नि की ओर जाते हैं ॥७५॥

तं दहन्तमनीकानि तत्र तत्र महारथम् ।

क्षत्रिया वर्जयामासुर्युगान्ताग्निमिवोल्बणम् ॥७६॥

हतशेषास्तु ये वीराः पाञ्चालानां महारथाः ।

इधर उधर दौड़कर पाण्डव सेना को भस्म करते हुए महारथी कर्ण को देखकर और उसे प्रलय काल की भीषण अग्नि समझ कर पाञ्चालों के मारने से बचे हुए महारथी, रण छोड़ कर भाग निकले ॥७६॥

तान्प्रभग्नान्द्रुतान्वीरः पृष्ठतो विकिरञ्छरैः ॥७७॥

अभ्यधावत तेजस्वी विशीर्णकवचध्वजान् ।

तापयामास तान्बाणैः सूतपुत्रो महाबलः ।

मध्यन्दिनमनुप्राप्तो भूतानीव तमोनुदः ॥७८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णयुद्धे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

हे नृप ! जिनकी ध्वजा और कवच छिन्न-भिन्न हो चुके ऐसे पाञ्चाल वीर जब भागे-तो उनके पीछे २ सूत पुत्र महाबली तेजस्वी कर्ण भी अपने बाणों से उन वीरों को व्यथित करता हुआ वेग से इस तरह झपटा-जैसे अन्धकार नाशक मध्यान्ह काल को प्राप्त

तथा प्राणियों को सन्तापित करता हुआ सूर्य आकाश में गमन करता है ॥७७-७८॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में नकुल पराजय का चौबीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



पच्चीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

युयुत्सुं तव पुत्रस्य द्रावयन्तं बलं महत्।
उलूको न्यपतत्तूर्णं तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! तुम्हारा एक पुत्र युयुत्सु जो पांडवों की ओर चला गया, बड़ी वीरता से कौरव सेना को विचलित कर रहा था। उसकी ओर शकुनि पुत्र उलूक बड़े वेग से झपटा और ठहर ठहर ! इस प्रकार कहने लगा ॥१॥

युयुत्सुश्च ततो राजञ्शितधारेण पत्रिणा।
उलूकं ताडयामास वज्रेणेव महाबलम् ॥२॥

हे राजन ! अब युयुत्सु ने भी अपने तीक्ष्ण धार वाले बाण से महाबली उलूक पर वज्रवत प्रहार किया ॥२॥

उलूकस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रस्य संयुगे।
क्षुरप्रेण धनुश्छित्वा ताडयामास कर्णिना ॥३॥

इसके बाद रण में तुम्हारे पुत्र युयुत्सु के ऊपर उलूक बड़ा ही कुपित हुआ। उसने क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाण से उसका धनुष काट कर कर्णि संज्ञक (कान तक खैंचे हुए) बाण से प्रहार किया ॥३॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं युयुत्सुर्वेगवत्तरम् ।
अन्यदादत्त सुमहच्चापं संरक्तलोचनः ॥४॥

युयुत्सु ने भी उस खण्डित धनुष को फैंक दिया और फिर विशाल वेग शाली दूसरा धनुष उठाया। इसकी आंखें क्रोध से लाल हो रही थी ॥४॥

शाकुनिं तु ततः षष्ट्या विव्याध भरतर्षभ ।
सारथिं त्रिभिरानर्छत्तं च भूयो व्यविध्यत ॥५॥

हे भरतर्षभ ! शकुनि पुत्र उलूक को साठ बाण मार कर युयुत्सु ने छेद दिया और तीन सारथि के मारे तथा फिर उलूक को आहत किया ॥५॥

उलूकस्तं तु विंशत्या विद्ध्वा स्वर्णविभूषितैः ।
अथास्य समरे क्रुद्धो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥६॥

अब उलूक ने भी सुवर्ण विभूषित बीस बाणों से युयुत्सु को वींध कर क्रोध के साथ उसकी सुवर्णमय ध्वजा को काट गिराया ॥६॥

स च्छिन्नयष्टिः सुमहान्शीर्यमाणो महाध्वजः ।
पपात प्रमुखे राजन्युयुत्सोः काञ्चनध्वजः ॥७॥

हे राजन ! जब उस महाध्वजा का सुवर्णमय दण्ड कट गया। तो वह सुनहरी ध्वजा, विशीर्ण होकर युयुत्सु के सन्मुख आ गिरी।

ध्वजमुन्मथितं दृष्ट्वा युयुत्सुः क्रोधमूर्च्छितः।
उलूकं पञ्चभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ॥८॥

अपनी ध्वजा को खण्डित देखकर युयुत्सु क्रोध से ज्वल उठा। इसने अब उलूक की छातीमें पांच बाणों का प्रहार किया॥८॥

उलूकस्तस्य समरे तैलधौतेन मारिष।
शिरश्चिच्छेद भल्लेन यन्तुर्भरतसत्तम ॥९॥
तच्छिन्नमपतद्भूमौ युयुत्सोः सारथेस्तदा।
तारारूपं यथा चित्रं निपपात महीतले ॥१०॥
जघान चतुरोऽश्वांश्च तं च विव्याध पञ्चभिः।
सोऽतिविद्धो बलवता प्रत्यपायाद्रथान्तरम् ॥११॥

हे भरतसत्तम ! इसके अनन्तर रण में उलूक ने तेल से उज्ज्वल किये हुये बाण से सारथि का शिर काट डाला। हे आर्य तुम्हारे पुत्र युयुत्सु के सारथि का कटा हुआ वह शिर विचित्र नक्षत्र के आकार में पृथिवी पर गिर पड़ा। उसने चारों अश्वों को मार डाला और उसे भी पांच बाण मार कर आहत किया। बलवान् उलूक द्वारा घायल होकर युयुत्सु दूसरे रथ पर चढ़ गया ॥९-११॥

तं निर्जित्य रणे राजन्नुलूकस्त्वरितो ययौ।
पञ्चालान्सृञ्जयांश्चैव विनिघ्नन्निशितैः शरैः ॥१२॥

हे राजन् ! इस महायुद्ध में युयुत्सू को जीत कर शकुनि-पुत्र उलूक, पञ्चाल और सृञ्जयों को तीक्ष्ण बाणों से मारता हुआ, आगे बढ़ा ॥१२॥

शतानीकं महाराज श्रुतकर्मा सुतस्तव।
व्यश्वसूतरथं चक्रे निमेषार्धादसम्भ्रमः ॥१३॥

हे महाराज ! तुम्हारा पुत्र श्रुतकर्मा, नकुलपुत्र शतानीक पर झपटा और उसने बिना किसी घबराहट के थोड़ी ही देर में उसे अश्व, सारथि और रथहीन बना दिया ॥१३॥

हताश्वे तु रथे तिष्ठन्शतानीको महारथः।
गदां चिक्षेप संक्रुद्धस्तव पुत्रस्य मारिष ॥१४॥
सा कृत्वा स्यन्दनं भस्म हयांश्चैवससारथीन्।
पपात धरणीं तूर्णं दारयन्तीव भारत ॥१५॥

हे आर्य ! यद्यपि अश्व मारे गए-तो भी महारथी शतानीक ने क्रोध में भरकर उसी रथ पर से तुम्हारे पुत्र पर गदा फैंकी इस गदा ने सारथि और अश्व सहित रथ को भस्म कर दिया। हे भारत ! वह गदा पृथिवी को चीरती हुई भूमिमें घुस गई ॥१४-१५॥

तावुभौ विरथौ वीरौ कुरूणां कीर्तिवर्धनौ।
व्यपाक्रमेतां युद्धात्तु प्रेक्षमाणौ परस्परम् ॥१६॥

वे दोनों रथहीन कौरवों की कीर्ति के बढ़ाने वाले वीर परस्पर एक दूसरे को देखते हुए रण से हट गए ॥१६॥

पुत्रस्तु तव सम्भ्रान्तो विविंशो रथमारुहत् ।
शतानीकोऽपि त्वरितः प्रतिविन्ध्यरथं गतः ॥१७॥

हे राजन् ! तुम्हारा पुत्र श्रुतकर्मा घबड़ा कर विविंशति के रथ पर जा चढ़ा और शतानीक भी शीघ्रता से धर्मराजपुत्र प्रतिविन्ध्य के रथ पर पहुंचा ॥१७॥

सुतसोमं तु शकुनिर्विद्ध्वा तु निशितैः शरैः ।
नाकम्पयत संक्रुद्धो वार्योघ इव पर्वतम् ॥१८॥

हे भारत ! अब शकुनि ने सुतसोम को तीक्ष्ण बाणों से बींध डाला परन्तु वह भी बिल्कुल कम्पित नहीं हुआ और वारिप्रवाह में पर्वत की तरह क्रोध के साथ अचल खड़ा रहा ॥१८॥

सुतसोमस्तु तं दृष्ट्वा पितुरत्यन्तवैरिणम् ।
शरैरनेकसाहस्रैश्छादयामास भारत ॥१९॥

हे भरतर्षभ ! सुत सोम ने भी अपने पिता के अत्यन्त वैरी शकुनि को देखकर कई सहस्र बाण छोड़ कर उसे आच्छादित कर दिया ॥१९॥

ताञ्शराञ्शकुनिस्तूर्णं चिच्छेदान्यैः पतत्रिभिः ।
लघ्वस्त्रश्चित्रयोधी च जितकाशी च संयुगे ॥२०॥

सुतसोम ने अन्य बाणों से बड़ी शीघ्रता के साथ उन बाणों को काट गिराया। यह बड़ी शीघ्रता से अस्त्र चलाने वाला, विचित्र युद्ध कर्ता और विजय में विश्वास रखने वाला था ॥२०॥

निवार्य समरे चापि शरांस्तान्निशितैः शरैः ।
आजघान सुसंक्रुद्धः सुतसोमं त्रिभिः शरैः ॥२१॥

शकुनिने युद्ध में इन वाणों को अपने तीक्ष्ण वाणों से काट कर क्रोद्ध-पूर्वक सुतसोम पर तीन वाणों का प्रहार किया ॥२१॥

तस्याश्वान्केतनं सूतं तिलशो व्यधमच्छरैः।
स्यालस्तव महाराज तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥२२॥

हे महाराज ! तुम्हारे साले शकुनि ने सुतसोम के अश्वों ध्वजा और सारथि को अपने वाणों से खण्ड २ विभक्त कर दिया जिसको देखकर कौरव वीर वड़े उच्चस्वर में हर्ष ध्वनि करने लगे ॥२२॥

हताश्वो विरथश्चैव च्छिन्नकेतुश्च मारिप ।
धन्वी धनुर्वरं गृह्य रथाद्भूमावतिष्ठत ॥२३॥
व्यसृजत्सायकांश्चैव स्वर्णपुङ्खाञ्छिलाशितान् ।
छादयामास समरे तव स्यालस्य तं रथम् ॥२४॥

हे आर्य ! जब इस धनुर्धर सुतसोम के अश्व मारे गए, ध्वजा कट गई और यह स्वयं रथहीन हो गया-तो यह अपने धनुष का सहारा लेकर रथ से उतर कर भूमि में खड़ा हो गया और वहां से ही सुवर्ण मूलधारी, शिलापर तीक्ष्ण किए हुये, वाणों को तुम्हारे साले शकुनि के रथ पर रण में छोड़ने लगा ॥२३॥

शलभानामिव व्रातान्शरव्रातान्महारथः ।
रथोपगान्समीक्ष्यैवं विव्यथे नैव सौवलः ॥२५॥

शलभ पक्षियों की भांति, शर समूह को अपने रथ के समीप उड़ते देखकर भी सुबल पुत्र महारथी शकुनि, कुछ भी विचलित नहीं हुआ ॥२५॥

प्रममाथ शरांस्तस्य शरव्रातैर्महायशाः ।

तत्रातुष्यन्त योधाश्च सिद्धाश्चापि दिवि स्थिताः ॥२६॥

महायशस्वी, शकुनि ने, शर समूह द्वारा, इसके बाणों को काट गिराया, जिसे देखकर सारे योद्धा और आकाश में स्थित सिद्धगण, बड़े प्रफुल्लित हुए ॥२६॥

सुतसोमस्य तत्कर्म दृष्ट्वाश्रद्धेयमद्भुतम् ।

रथस्थं शकुनिं यस्तु पदातिः समयोधयत् ॥२७॥

सुतसोम ने रथ में स्थित शकुनि से पैदल ही जो यह भीषण युद्ध किया, इस अद्भुत युद्ध को वीरों ने बड़ी श्रद्धा के साथ देखा ॥२७॥

तस्य तीक्ष्णैर्महावेगैर्भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।

व्यहनत्कार्मुकं राजन्तूणीरांश्चैव सर्वशः ॥२८॥

हे राजन ! अत्यन्त तीक्ष्ण, महावेग वाले, नतपर्वधारी बाणों से शकुनि ने सुतसोम के धनुष और तूणीर को काट डाला ॥२८॥

स च्छिन्नधन्वा विरथः खड्गमुद्यम्य चानदत् ।

वैदूर्योत्पलवर्णाभं दन्तिदन्तमयत्सरुम् ॥२९॥

सहदेव पुत्र सुतसोम का धनुष कट गया और वह रथ हीन हो गया-तो उसने हाथी दांत की मूंठवाली नीलमणि के तुल्य चमकीली तलवार उठाई ॥२६॥

भ्राम्यमाणं ततस्तं तु विमलाम्बरवर्चसम् ।
कालदण्डोपमं मेने सुतसोमस्य धीमतः ॥३०॥

श्वेत रेशमी वस्त्रों के तुल्य चमकीली, बुद्धिमान सुतसोम की घूमती हुई तलवार को देखकर लोगों ने उसे कालदण्ड के तुल्य समझा ॥३०॥

सोऽचरत्सहसा खड्गी मण्डलानि सहस्रशः ।
चतुर्दश महाराज शिक्षाबलसमन्वितः ॥३१॥
भ्रान्तमुद्भ्रान्तमाविद्धमाप्लुतं विप्लुतं सृतम् ।
सम्पातसमुदीर्णे च दर्शयामास संयुगे ॥३२॥

हे महाराज ! इस खड्गधारी सहदेव पुत्र सुतसोम ने सहस्रों खड्ग-मण्डल बनाए और चौदह प्रकार की गतियों के साथ युद्ध शिक्षा का प्रदर्शन करते हुए रणाङ्गण में घूमने लगे । इन्होंने भ्रान्त, उद्भ्रान्त, आविद्ध, आप्लुत, विप्लुत, सम्पात और समुदीर्ण आदि गतियों का रण में प्रदर्शन किया ॥३१-३२॥

सौबलस्तु ततस्तस्य शरांश्चिक्षेप वीर्यवान् ।
तानापतत एवाशु चिच्छेद परमासिना ॥३३॥

सुबल पुत्र वीर्यवान शकुनि ने बाण फैंकना आरम्भ किया । उनको आते देखकर ही अपनी बड़ी तलवार से सुतसोम ने उन्हें काट गिराया ॥३३॥

ततः क्रुद्धो महाराज सौबलः परवीरहा ।
प्राहिणोत्सुतसोमाय शरानाशीविषोपमान् ॥२४॥
चिच्छेद तांस्तु खड्गेन शिक्षया च बलेन च ।
दर्शयँल्लाघवं युद्धे तार्क्ष्यतुल्यपराक्रमः ॥२५॥

हे महाराज! शत्रु विजयी सुबल-पुत्र शकुनि ने क्रोध में भरकर आशीविष के सदृश, बाणों को सुतसोम पर छोड़ा परन्तु गरुड़ के तुल्य पराक्रमी सुतसोम ने अपनी युद्ध शिक्षा और बल का प्रदर्शन करते हुए बड़ी शीघ्रता के साथ खड्ग द्वारा काट गिराया ॥२४-२५॥

तस्य सञ्चरतो राजन्मण्डलावर्तने तदा ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन खड्गं चिच्छेद सुप्रभम् ॥२६॥

हे राजन्! मण्डल बांधकर घूमते हुए, सुतसोम के चमकीले खड्ग को शकुनि ने क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाण से काट डाला ॥२६॥

स च्छिन्नः सहसा भूमौ निपपात महानसिः ।
अर्धमस्य स्थितं हस्ते सुत्सरोस्तत्र भारत ॥२७॥

हे भारत! वह विशाल खड्ग, कटकर एक दम भूमि में गिर गया और उत्तम मूंठवाले उस खड्ग का आधा खण्ड सुतसोम के हाथ में ही रह गया ॥२७॥

छिन्नमाज्ञाय निस्त्रिंशमवप्लुत्य पदानि षट् ।
प्राविध्यत ततः शेषं सुतसोमो महारथः ॥२८॥

अपने खड्ग को खण्डित देखकर महारथी सुतसोम छः पद आगे बढ़े और उसी टुकड़े से शकुनि के प्रत्यञ्चा सहित धनुष को काट डाला ॥३८॥

तच्छित्वा सगुणं चापं रणे तस्य महात्मनः ।
पपात धरणीं तूर्णं स्वर्णवज्रविभूषितम् ॥३९॥

इस प्रकार महारथी शकुनि के डोरी सहित धनुष को काट डाला। वह सुवर्ण विभूषित धनुष कटकर भूमि में गिर गया ॥

सुतसोमस्ततोऽगच्छच्छ्रुतकीर्तेर्महारथम् ।
सौबलोऽपि धनुर्गृह्य घोरमन्यत्सुदुर्जयम् ॥४०॥

अब सुतसोम भी श्रुत कीर्ति के विशाल रथ पर जा चढ़ा और ऊपर सुबल-पुत्र ने दूसरा दुर्जय घोर धनुष उठाया ॥४०॥

अभ्ययात्पाण्डवानीकं निघ्नञ्शत्रुगणान्बहून् ।
तत्र नादो महानासीत्पाण्डवानां विशाम्पते ॥४१॥
सौबलं समरे दृष्ट्वा विचरन्तमभीतवत् ।

हे विशाम्पते ! अब शकुनि, शत्रु गणों को मारता हुआ आगे बढ़ा। सुबल-पुत्र शकुनि को रण में निर्भीक भाव से घूमता देख कर पाण्डवों की सेना में महान् हाहाकार मच गया ॥४१॥

तान्यनीकानि दृप्तानि शस्त्रवन्ति महान्ति च ॥४२॥
द्राव्यमाणान्यदृश्यन्त सौबलेन महात्मना ।

इस समय महावीर सुबल-पुत्र शकुनि के आक्रमण से बड़ी उद्धत विशाल, शस्त्र धारण करने वाली पाण्डवों की सेना भी भागती ही दिखाई दी ॥४२॥

यथा दैत्यचमूं राजन्देवराजो ममर्द ह।
तथैव पाण्डवीं सेनां सौबलेयो व्यनाशयत् ॥४३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि सुतसोमसौबलयुद्धे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

हे राजन्! जिस तरह दैत्य सेना को देवराज इन्द्र कुचल डालता है। उसी तरह पाण्डवों की सेना को सुबल-पुत्र शकुनि ने विध्वंस कर डाला ॥४३॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में शकुनि और सुतसोम के युद्ध के वर्णन का पच्चीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

छब्बीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

धृष्टद्युम्नं कृपो राजन्वारयामास संयुगे।
यथा दृष्ट्वा वने सिंहं शरभो वारयेद्युधि ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इस घोर युद्ध में कृपाचार्य ने सेनापति धृष्टद्युम्न को इस तरह घेर लिया, जैसे-वन में भगड़ते हुए सिंह को शरभ नामक जन्तु रोक देता है ॥१॥

निरुद्धः पार्षतस्तेन गौतमेन बलीयसा।
पदात्पदं विचलितुं नाशकत्तत्र भारत ॥२॥

हे भारत! गोतम गोत्रोत्पन्न बलवान कृपाचार्य द्वारा रोका हुआ पर्षत वंशोद्भव, धृष्टद्युम्न इस युद्ध में एक पद भी आगे नहीं बढ़ सकता ॥२॥

गौतमस्य रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नरथं प्रति ।

वित्रेसुः सर्वभूतानि क्षयं प्राप्तं च मेनिरे ॥३॥

ज्योंही कृपाचार्य का रथ, धृष्टद्युम्न के रथ की ओर बढ़ा-त्यों ही सारे प्राणी डर गए और उन्होंने धृष्टद्युम्न का अन्त ही समझा ॥३॥

तत्रावोचन्विमनसो रथिनः सादिनस्तथा ।

द्रोणस्य निधनान्नूनं संक्रुद्धो द्विपदां वरः ॥४॥

उस समय उदास मन होकर पाण्डवों के रथी और अश्वारोही यह कहने लगे-कि द्रोणाचार्य के मारे जाने से वीर श्रेष्ठ, कृपाचार्य क्रोध में भर रहे हैं ॥४॥

शारद्वतो महातेजा दिव्यास्त्रविदुदारधीः ।

अपि स्वस्ति भवेदद्य धृष्टद्युम्नस्य गौतमात् ॥५॥

शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य, महातेजस्वी, दिव्य अस्त्र के ज्ञाता, उदार बुद्धि वाले हैं। इन गोतम-गोत्री कृपाचार्य से भगवान् आज धृष्टद्युम्न को बचावे ॥५॥

अपीयं वाहिनी कृत्स्ना मुच्येत महतो भयात् ।

अप्ययं ब्राह्मणः सर्वान्न नो हन्यात्समागतान् ॥६॥

आज हमारी सारी पाण्डवी सेना किसी प्रकार इस महा भय से बची रहे और युद्ध में इकट्ठे हुए सब लोगों को यह ब्रह्म वंशोद्भव कृपाचार्य, मार न लेवें ॥६॥

यादृशं दृश्यते रूपमन्तकप्रतिमं भृशम् ।
गमिष्यत्यद्य पदवीं भारद्वाजस्य गौतमः ॥७॥

आज कृपाचार्य का आकार अन्तक के समान भीषण दिखाई देता है आज तो यही प्रतीत होता है, कि गौतम गोत्री यह कृपाचार्य, भरद्वाज गोत्रोत्पन्न द्रोणाचार्य के भीषण पद को प्राप्त होकर रहेगा ॥७॥

आचार्यः क्षिप्रहस्तश्च विजयी च सदा युधि ।
अस्त्रवान्वीर्यसम्पन्नः क्रोधेन च समन्वितः ॥८॥
पार्षतश्च महायुद्धे विमुखोऽद्याभिलक्ष्यते ।
इत्येवं विविधा वाचस्तावकानां परैः सह ॥९॥
व्यश्रूयन्त महाराज तयोस्तत्र समागमे ।

कृपाचार्य, अस्त्र-विद्या के शिक्षक, शीघ्र बाण चलाने वाले और सदा युद्ध में विजयी रहते हैं । ये अस्त्रधारी, महापराक्रमी और क्रोध से सम्पन्न हैं । पर्षत राजकुमार तो आज युद्ध से विमुख हुए बिना बचता दिखाई नहीं देता । हे महाराज ! इस प्रकार की बहुत सी बातें-तुम्हारे पक्ष के वीर और पाण्डव वीर में इस युद्ध में होती सुनाई दे रही थी ॥८-९॥

विनिःश्वस्य ततः क्रोधात्कृपः शारद्वतो नृप ॥१०॥
पार्षतं चार्दयामास निश्चेष्टं सर्वमर्मसु ।

हे नृप ! अब शरद्वान-पुत्र कृपाचार्य ने क्रोध पूर्णश्वास खैंचा और धृष्टद्युम्न की ओर देखकर बाणों का सारे मर्मों में प्रहार किया, जिसमें यह निश्चेष्ट सा हो गया ॥१०॥

स हन्यमानः समरे गौतमेन महात्मना ॥११॥
कर्त्तव्यं न स्म जानाति मोहेन महता वृतः ।

महावीर गोतम गोत्री कृपाचार्य द्वारा रण में घायल किया हुआ धृष्टद्युम्न, अपने कर्तव्य को भूल गया और महान् मोह से आवृत होकर मूर्च्छित हो गया ॥११॥

तमब्रवीत्ततो यन्ता कच्चित्क्षेमं तु पार्षत ॥१२॥
ईदृशं व्यसनं युद्धे न ते दृष्टं मया क्वचित् ।

अब धृष्टद्युम्न से उसका सारथि बोला—हे पार्षत ! तुम्हारा चित तो ठीक है-मैंने तो किसी भी युद्ध में तुम्हारी आज की सी दशा नहीं देखी ॥१२॥

दैवयोगात्तु ते बाणा नापतन्मर्मभेदिनः ॥१३॥
प्रेषिता द्विजमुख्येन मर्माण्युद्दिश्य सर्वतः ।

यद्यपि इस द्विजश्रेष्ठ कृपाचार्य ने तुम्हारे मर्मों को लक्षित करके बाण छोड़े थे-परन्तु दैव की कृपा से वे बाण तुम्हारे उन मर्मस्थानों में नहीं लगे ॥१३॥

व्यवर्तये रथं तूर्णं नदीवेगमिवार्णवात् ॥१४॥
अवध्यं ब्राह्मणं मन्ये येन ते विक्रमो हतः।

मैं समुद्र से वापिस नदी वेग की तरह बड़ी शीघ्रता से अपने रथ को लौटाता हूं। ब्राह्मण अवध्य होता है, इसीसे तुम्हारा पराक्रम क्षीण दिखाई दे रहा है ॥१४॥

धृष्टद्युम्नस्ततो राजञ्शनकैरब्रवीद्वचः ॥१५॥
मुह्यते मे मनस्तात गात्रस्वेदश्च जायते।
वेपथुश्च शरीरे मे रोमहर्षश्च सारथे ॥१६॥
वर्जयन्ब्राह्मणं युद्धे शनैर्याहि यतोऽर्जुनः।

हे राजन! अब धृष्टद्युम्न ने धीरे २ यह वचन कहा—हे तात! सारथि मेरे शरीर में कपकंपी हो रही है-और रोमाञ्च खड़े होते जा रहे हैं। मेरा मन मोहित होकर मैं पसीनों में भीगा जा रहा हूं। हे सारथे। अब तुम इस ब्राह्मण वीर कृपाचार्य को छोड़कर जहां अर्जुन हो-वहां धीरे चले-चलो ॥१५-१६॥

अर्जुनं भीमसेनं वा समरे प्राप्य सारथे ॥१७॥
क्षेममद्य भवेदेवमेषा मे नैष्ठिकी मतिः।

हे सूत! अब तो इस रण में अर्जुन या भीम के पास पहुंचने में ही कुशल हैं-यह मेरी निश्चय बुद्धि हो चुकी है ॥१७॥

ततः प्रायान्महाराज सारथिस्त्वरयन्हयान् ॥१८॥
यतो भीमो महेष्वासो युयुधे तव सैनिकैः।

हे महाराज ! इतना सुनते ही सारथि ने बड़े वेग से अश्वों को उधर की ओर हांका, जिधर महाधनुर्धर, भीमसेन, तुम्हारे सैनिकों से युद्ध कर रहा था ॥१८॥

प्रद्रुतं च रथं दृष्ट्वा धृष्टद्युम्नस्य मारिष ॥१९॥
किरञ्शरशतान्येव गौतमोऽनुययौ तदा ।
शङ्खं च पूरयामास मुहुर्मुहुररिन्दमः ॥२०॥
पार्षतं त्रासयामास महेन्द्रो नमुचिं यथा ।

हे आर्य ! ज्योंही धृष्टद्युम्न के रथ को भगाते हुए कृपाचार्य ने देखा-त्योंही वह अरिमर्दन सैंकड़ों बाण छोड़ता हुआ उसके पीछे २ चल दिया और बार बार शंख बजाने लगा । इसने पर्षतवंशश्रेष्ठ धृष्टद्युम्न को इस तरह दुःखी कर दिया-जैसे-इसने नमुचि दैत्य को पीड़ित किया था ॥१९-२०॥

शिखण्डिनं तु समरे भीष्ममृत्युं दुरासदम् ॥२१॥
हार्दिक्यो वारयामास स्मयन्निव मुहुर्मुहुः ।

हे राजन् ! भीष्म की मृत्यु के कारण शिखण्डि को हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने बार २ मुसकुराते हुए रोका ॥२१॥

शिखण्डी तु समासाद्य हृदिकानां महारथम् ॥२२॥
पञ्चभिर्निशितैर्भल्लैर्जत्रुदेशे समाहनत् ।

अब हृदिक वंश के वीर महारथी कृतवर्मा के पास शिखण्डी ने पहुंच कर पांच तीक्ष्ण बाणों से उसके जन्तु प्रदेश में प्रहार किया ॥२२॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो भित्त्वा षष्ट्या पतत्रिभिः॥२३॥
धनुरेकेन चिच्छेद हसन्राजन्महारथः ।

हे राजन् ! यद्यपि कृतवर्मा, क्रोध में भरे हुए थे, तो भी कुछ मुस्कुराकर साठ बाणों से शिखण्डी को बींध दिया और एक बाण से उसके धनुष को काट गिराया ॥२३॥

अथान्यद्धनुरादाय द्रुपदस्यात्मजो बली ॥२४॥
तिष्ठ तिष्ठेति संक्रुद्धो हार्दिक्यं प्रत्यभाषत ।

अब महाबली द्रुपद-पुत्र शिखण्डी ने दूसरा धनुष उठाया और क्रोध में भर कर ठहर ? ठहर ? इस प्रकार कृतवर्मा से कहा ॥२४॥

ततोऽस्य नवतिं बाणान्रुक्मपुङ्खान्सुतेजनान् ॥२५॥
प्रेषयामास राजेन्द्र तेऽस्याभ्रश्यन्त वर्मतः ।

हे राजेन्द्र । अब इसने सुवर्ण पुङ्खधारी, अत्यन्त तेज, नब्बे बाण छोड़े, जो इसके कवच में टकराकर नष्ट भ्रष्ट हो गए ॥२५॥

वितथांस्तान्समालक्ष्य पतितांश्च महीतले ॥२६॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन कार्मुकं चिच्छिदे भृशम् ।

शिखण्डी ने अपने बाणों को निष्फल और पृथिवी में गिरे हुए देखकर फिर एक क्षुर के सदृश तीन बाण छोड़ा, जिससे कृतवर्मा का धनुष काट डाला ॥२६॥

अथैनं छिन्नधन्वानं भग्नशृङ्गमिवर्षभम् ॥२७॥
अशीत्या मार्गणैः क्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

जब सींग टूटे हुए बैल की भांति धनुष कट जाने से अशक्त कृतवर्मा को देखकर क्रोध के साथ शिखण्डी ने अस्सी बाण उसकी भुजा और हृदय में मारे ॥२७॥

कृतवर्मा तु संक्रुद्धो मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥२८॥
ववाम रुधिरं गात्रैः कुम्भवक्त्रादिवोदकम् ।

इन बाणों से कृतवर्मा, बहुत क्षत-विक्षत हो गया उसके शरीर से रक्त इस प्रकार बह निकला जैसे-भरे हुए घड़े के मुख से जल बह निकलता है ॥२८॥

रुधिरेण परिक्लिन्नः कृतवर्मा त्वराजत ॥२९॥
वर्षेण क्लेदितो राजन्यथा गैरिकपर्वतः ।

हे राजन् ! रुधिर में भीगा हुआ, कृतवर्मा, इस तरह प्रतीत होने लगा-जैसे-वर्षा से भीगा हुआ, गैरिक आदि धातु से व्याप्त पर्वत दिखाई देता है ॥२९॥

अथान्यद्धनुरादाय समार्गणगुणं प्रभुः ॥३०॥
शिखण्डिनं बाणगणैः स्कन्धदेशे व्यताडयत् ।

अब शक्तिशाली कृतवर्मा ने बाण और प्रत्यञ्चा के साथ दूसरा धनुष उठाया और उससे बाण समूह छोड़कर शिखण्डी के स्कन्ध प्रदेश में प्रहार किया ॥३०॥

स्कन्धदेशस्थितैर्बाणैः शिखण्डी तु व्यराजत ॥३१॥
शाखाप्रशाखाविपुलः सुमहान्पादपो यथा ।

हे राजन ! स्कन्ध प्रदेश में लगे हुए बाणों से शिखण्डी इस तरह सुशोभित होने लगा-जैसे-शाखा प्रशाखाओं से युक्त विशाल कोई वृक्ष हो ॥३१॥

तावन्योन्यं भृशं विद्ध्वा रुधिरेण समुक्षितौ ॥३२॥
अन्योन्यशृङ्गाभिहतौ रेजतुर्वृषभाविव ।

वे एक दूसरे को अत्यन्त आहत करके रुधिर में भीग गए और ऐसे प्रतीत होने लगे जैसे-एक दूसरे के सींग से आहत हुए दो बैल दिखाई देते हैं ॥३२॥

अन्योन्यस्य वधे यत्नं कुर्वाणौ तौ महारथौ ॥३३॥
रथाभ्यां चेरतुस्तत्र मण्डलानि सहस्रशः ।

वे दोनों महारथी एक दूसरे के वध का प्रयत्न करते हुए सहस्रों प्रकार के मण्डल बनाकर रणाङ्गण में घूमने लगे ॥३३॥

कृतवर्मा महाराज पार्षतं निशितैः शरैः ॥३४॥
रणे विव्याध सप्तत्या स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

हे महाराज ! कृतवर्मा ने तीक्ष्ण बाण छोड़कर पर्षत वंशोद्भव शिखण्डी को सुवर्ण पुङ्ख से युक्त शिलापर तीक्ष्ण किये हुए सत्तर बाणों से रण में आहत कर दिया ॥३४॥

ततोऽस्य समरे बाणं भोजः प्रहरतां वरः ॥३५॥
जीवितान्तकरं घोरं व्यसृजत्त्वरयान्वितः ।

प्रहार करने वालों में श्रेष्ठ, भोजवंशी कृतवर्मा ने रण में बड़ी शीघ्रता के साथ इसके जीवन का अन्त कर देने वाला घोर बाण छोड़ा ॥३५॥

स तेनाभिहतो राजन्मूर्च्छामाशु समाविशत् ॥३६॥
ध्वजयष्टिं च सहसा शिश्रिये कश्मलावृतः ।

हे राजन् ! इस बाण से आहत हुआ शिखण्डी उसी समय मूर्च्छित हो गया और मोह से आकृत होकर वह ध्वजा के दण्ड को पकड़कर बैठ गया ॥३६॥

अपोवाह रणात्तूर्णं सारथी रथिनां वरम् ॥३७॥
हार्दिक्यशरसन्तप्तं निःश्वसन्तं पुनः पुनः ।

हृदिक-पुत्र कृतवर्मा के बाण से सन्तापित और हांफते हुए रथिश्रेष्ठ शिखण्डी को उसका सारथि, रण भूमि से झटपट दूर ले गया ॥३७॥

पराजिते ततः शूरे द्रुपदस्यात्मजे प्रभो ।
व्यद्रवत्पाण्डवी सेना व्यथमाना समन्ततः ॥३८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

हे प्रभो ! द्रुपद-पुत्र महावीर शिखण्डी के पराजित हो जाने पर सब ओर से छिन्न-भिन्न की हुई पाण्डव सेना एक दम भाग निकली ॥३८॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में धृष्टद्युम्न और कृपाचार्य तथा कृतवर्मा और शिखण्डी के घोर युद्ध के वर्णन का छब्बीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

सत्ताईसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्वेताश्वोऽथ महाराज व्यधमत्तावकं बलम्।
यथा वायुः समासाद्य तूलराशिं समन्ततः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! श्वेत अश्वों के वाहन में स्थित अर्जुन ने तुम्हारी सेना का इस तरह विनाश उड़ा दिया, जैसे वायु, सब ओर से रूई की ढेरी को उड़ा देता है ॥१॥

प्रत्युद्ययुस्त्रिगर्त्तास्तं शिबयः कौरवैः सह।
शाल्वाः संशप्तकाश्चैव नारायणबलं च तत् ॥२॥
सत्यसेनश्चन्द्रदेवो मित्रदेवः सुतञ्जयः।
सौश्रुतिश्चित्रसेनश्च मित्रवर्मा च भारत ॥३॥
त्रिगर्त्तराजः समरे भ्रातृभिः परिवारितः।
पुत्रैश्चैव महेष्वासैर्नानाशस्त्रविशारदैः ॥४॥
व्यसृजन्त शरव्रातान्किरन्तोऽर्जुनमाहवे।
अभ्यवर्त्तन्त सहसा वार्योघा इव सागरम् ॥५॥

हे भारत ! अब अर्जुन की ओर, त्रिगर्त, शिवि, कौरव, शाल्व संशप्तक, नारायणी सेना, सत्यसेन, चन्द्रदेव, मित्रदेव, सुतञ्जय, सौश्रुति, चित्रसेन, मित्रवर्मा, और त्रिगर्तराज अपने महाधनुर्धर अनेक शस्त्र विशारद, भाई और पु से युक्त होकर शर समूह छोड़ते हुए रण में अर्जुन पर इस तरह झपटे-जैसे जल प्रवाह एक दम समुद्र की ओर उमड़ पड़ता है ।।२-५।।

ते त्वर्जुनं समासाद्य योधाः शतसहस्रशः ।
अगच्छन्विलयं सर्वे तार्क्ष्यं दृष्ट्वेव पन्नगाः ।।६।।

ये सैंकड़ों हज़ारों योधा, अर्जुन के पास पहुंचकर इस तरह नष्ट हो गए-जैसे गरुड़ से टकराकर सर्प नष्ट हो जाते हैं ।।६।।

ते हन्यमानाः समरे नाजहुः पाण्डवं रणे ।
हन्यमाना महाराज शलभा इव पावकम् ।।७।।

हे महाराज ! यद्यपि अर्जुन ने उनको बहुत ही व्यथित कर दिया-तो भी उन्होंने रण में अर्जुन का पीछा इस तरह नहीं छोड़ा जैसे पतङ्ग अग्नि से व्यथित होकर भी उसका पीछा नहीं छोड़ते हैं ।।७।।

सत्यसेनस्त्रिभिर्बाणैर्विव्याध युधि पाण्डवम् ।
मित्रदेवस्त्रिषष्ट्या तु चन्द्रसेनस्तु सप्तभिः ।।८।।
मित्रवर्मा त्रिसप्तत्या सौश्रुतिश्चापि सप्तभिः ।
शत्रुञ्जयस्तु विंशत्या सुशर्मा नवभिः शरैः ।।९।।

इस घोर युद्ध में सत्यसेन ने तीन मित्र देव ने तरेसठ, चन्द्रसेन ने सात, मित्रवर्मा ने तेहत्तर, सौश्रुति ने सात, शत्रुञ्जय ने बीस, सुशर्मा ने नौ, बाणों से पाण्डु-पुत्र अर्जुन को क्षत विक्षत कर दिया ॥८-९॥

स विद्धो बहुभिः सङ्ख्ये प्रतिविव्याध तान्नृपान् ।
सौश्रुतिं सप्तभिर्विध्वा सत्यसेनं त्रिभिः शरैः ॥१०॥
शत्रुञ्जयं च विंशत्या चन्द्रदेवं तथाष्टभिः ।
मित्रदेवं शतेनैव श्रुतसेनं त्रिभि शरैः ॥११॥
नवभिर्मित्रवर्माणं सुशर्माणं तथाष्टभिः ।

इन बहुत से बाणों से रण में विंधे हुए अर्जुन ने भी उन सारे राजाओं को बींध दिया । सौश्रुति के सात, सत्यसेन के तीन, शत्रुञ्जय के बीस, चन्द्रदेव के आठ, मित्रदेव के सौ, श्रुतसेन के तीन, मित्रवर्मा के नौ, सुशर्मा के आठ बाण मारकर उनको घायल किया ॥१०-११॥

शत्रुञ्जयं च राजानं हत्वा तत्र शिलाशितैः ॥१२॥
सौश्रुतेः सशिरस्त्राणं शिरः कायादपाहरत् ।
त्वरितश्चन्द्रदेवं च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥१३॥

इसके अनन्तर अर्जुन ने शिलापर तीक्ष्ण किये हुए बाणों से राजा शत्रुञ्जय को मारकर शिरस्त्राण के साथ राजा सौश्रुति के मस्तक को काट गिराया । और शीघ्रता के साथ राजा चन्द्रदेव को भी अपने बाणों से यमराज के घर भेजा दिया ॥१२-१३॥

तथेतरान्महाराज यतमानान्महारथान् ।
पञ्चभिः पञ्चभिर्बाणैरेकैकं प्रत्यवारयत् ॥१४॥

हे महाराज ! फिर अर्जुन ने प्रयत्न करने वाले अन्य महारथियों के शरीर में पांच पांच बाण मारकर प्रत्येक को वहीं रोक दिया ॥१४॥

सत्यसेनस्तु संक्रुद्धस्तोमरं व्यसृजन्महत् ।
समुद्दिश्य रणे कृष्णं सिंहनादं ननाद च ॥१५॥

राजा सत्यसेन ने क्रोध में भरकर तोमर नामक महान् शस्त्र श्रीकृष्ण को लक्ष्य करके छोड़ा और उसी के साथ बड़ी भारी सिंह गर्जना की ॥१५॥

स निर्भिद्य भुजं सव्यं माधवस्य महात्मनः ।
अयस्मयो हेमदण्डो जगाम धरणीं तदा ॥१६॥

महात्मा कृष्ण, की बांयी भुजा को चीरकर वह सुवर्ण का दण्ड वाला लोहमय तोमर शस्त्र फिर धरणी में घुसता चला गया ॥१६॥

माधवस्य तु विद्धस्य तोमरेण महारणे ।
प्रतोदः प्रापतद्धस्ताद्रश्मयश्च विशाम्पते ॥१७॥

हे विशाम्पते ! इस महायुद्ध में जब श्रीकृष्ण इस तोमर अस्त्र से आहत हो गए तो चाबुक और घोड़ों की रास उनके हाथ से छुट पड़ी ॥१७॥

वासुदेवं विभिन्नाङ्गं दृष्ट्वा पार्थो धनञ्जयः ।
क्रोधमाहारयत्तीव्रं कृष्णं चेदमुवाच ह ॥१८॥

जब कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने देखा, कि श्रीकृष्ण का शरीर क्षत विक्षत हो गया है, तो उनको बहुत तीव्र क्रोध चढ़ आया और वे श्रीकृष्ण से ये वचन बोले ॥१८॥

प्रापयाश्वान्महाबाहो सत्यसेनं प्रति प्रभो ।
यावदेनं शरैस्तीक्ष्णैर्नयामि यमसादनम् ॥१९॥

हे महाबाहो ! अब आप मेरे रथ को जरा राजा सत्यसेन की ओर ले चलो। हे प्रभो ! मैं अभी इसे अपने तीक्ष्ण बाणों से यमपुरी पहुंचा देता हूं ॥१९॥

प्रतोदं गृह्य सोऽन्यत्तु रश्मीनपि यथा पुरा ।
वाहयामास तानश्वान्सत्यसेनरथं प्रति ॥२०॥

अब श्रीकृष्ण ने दूसरा प्रतोद (सांटा) और उसी तरह अश्वों की रास को हाथ में उठाया और उन अश्वों को राजा सत्यसेन के रथ के प्रति चलता कर दिया ॥२०॥

विष्वक्सेनं तु निर्भिन्नं दृष्ट्वा पार्थो धनञ्जयः ।
सत्यसेनं शरैस्तीक्ष्णैर्वारयित्वा महारथः ॥२१॥
ततः सुनिशितैर्भल्लै राज्ञस्तस्य महच्छिरः ।
कुण्डलोपचितं कायाच्चकर्त्त पृतनान्तरे ॥२२॥

कुन्ती-पुत्र महारथी अर्जुन ने जब श्रीकृष्ण को बाण से बिंधा देखा-तो राजा सत्यसेन को तीक्ष्ण बाणों से वहीं रोक कर अन्य

भल्ल संज्ञक तीक्ष्ण बाण से उस राजा का विशाल कुण्डलों से सुशोभित, मस्तक, सेना के मध्य में ही शरीर से काट कर पृथक् कर दिया ॥२१-२२॥

तन्निकृत्य शितैर्बाणैर्मित्रवर्माणमाक्षिपत् ।
वत्सदन्तेन तीक्ष्णेन सारथिं चास्य मारिष ॥२३॥

हे आर्य ! इसको इस तरह तीक्ष्ण बाणों से काटकर अर्जुन ने मित्र वर्मा पर आक्रमण किया और तीक्ष्ण वत्सदन्त संज्ञक बाण से उसके सारथि को आहत कर दिया ॥२३॥

ततः शरशतैर्भूयः संशप्तकगणान्बली ।
पातयामास संक्रुद्धः शतशोऽथ सहस्रशः ॥२४॥

इसके अनन्तर महाबली अर्जुन ने सैंकड़ों बाण क्रोध के साथ छोड़कर सैंकड़ों हजारों की संख्या में वीर मार डाले ॥२४॥

ततो रजतपुङ्खेन राजञ्शीर्षं महात्मनः ।
मित्रसेनस्य चिच्छेद क्षुरप्रेण महारथः ॥२५॥
सुशर्माणं सुसंक्रुद्धो जत्रुदेशे समाहनत् ।

हे राजन् ! अब महारथी, अर्जुन ने चांदी के मूल वाले, क्षुर के सदृश बाण से महावीर मित्रसेन के शिर को काट गिराया। और क्रोध-पूर्वक राजा के सुशर्मा के जत्रु-प्रदेश में प्रहार किया ॥२५॥

ततः संशप्तकाः सर्वे परिवार्य धनञ्जयम् ॥२६॥
शस्त्रौघैर्ममृदुः क्रुद्धा नादयन्तो दिशो दश ।

अब सारे संशप्तकों ने धनञ्जय अर्जुन को घेर कर शस्त्र के समूह से व्याकुल कर दिया और अपनी गर्जना से दशों दिशाओं को भर दिया ॥२६॥

अभ्यर्दितस्तु तज्जिष्णुः शक्रतुल्यपराक्रमः ॥२७॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे महारथः ।
ततः शरसहस्राणि प्रादुरासन्विशाम्पते ॥२८॥

इन्द्र के तुल्य पराक्रमी, अर्जुन, जब इस तरह उन वीरों ने घेर लिया तो अत्यन्त पराक्रमी महारथी अर्जुन ने ऐन्द्रास्त्र का प्रादुर्भाव किया। हे विशाम्पते ! अब इस ऐन्द्र अस्त्र से सहस्रों बाण निकलने लगे ॥२७-२८॥

ध्वजानां छिद्यमानानां कार्मुकाणां च मारिष ।
रथानां सपताकानां तूणीराणां युगैः सह ॥२९॥
अक्षाणामथ चक्राणां योक्त्राणां रश्मिभिः सह ।
कूबराणां वरूथानां पृषत्कानां च संयुगे ॥३०॥
अश्वानां पततां चापि प्रासानामृष्टिभिः सह ।
गदानां परिघाणां च शक्तितोमरपट्टिशैः ॥३१॥
शतघ्नीनां सचक्राणां भुजानां चोरुभिः सह ।
कण्ठसूत्राङ्गदानां च केयूराणां च मारिष ॥३२॥
हाराणामथ निष्काणां तनुत्राणां च भारत ।
छत्राणां व्यजनानां च शिरसां मुकुटैः सह ॥३३॥
अश्रूयत महाञ्छब्दस्तत्र तत्र विशाम्पते ।

हे आर्य ! कटती हुई ध्वजा, धनुप, रथ, पताका, तूणीर, रथ के जूड़े, अक्ष, (धुरे) जोते, रास, कूबर रूथ (आवरण) बाण, गिरे हुए अश्व, प्रास, ऋष्टि, गदा, परिघ, शक्ति, तोमर, पट्टिश, शतघ्नी, चक्र, भुजा, ऊरु, कण्ठसूत्र, अङ्गद केयूर, हार, निष्क (मोती माला) कवच, छत्र, व्यजन और शिर के मुकुट, छिन्न-भिन्न होकर रणभूमि में पड़े थे। हे भारत ! उस समय वहां पर महान् कोलाहल सुनाई दे रहा था ॥२६-३३॥

सकुण्डलानि स्वक्षीणि पूर्णचन्द्रनिभानि च ॥३४॥
शिरांस्युर्व्यामदृश्यन्त ताराजालमिवाम्बरे ।

जिस तरह आकाश में तारा समूह दिखाई देता है, इसी तरह पृथिवी में कुण्डलों से युक्त, सुन्दर अक्षिवाले, पूर्णचन्द्रमा के सदृश सुन्दर मस्तक कट २ कर रणभूमि में बिखरे पड़े हैं ॥

सुस्रग्वीणि सुवासांसि चन्दनेनोक्षितानि च ॥३५॥
शरीराणि व्यदृश्यन्त निहतानां महीतले ।

इस समय रणाजिर में सुन्दर माला, वस्त्र तथा चन्दन चर्चित योद्धाओं के मृतकशरीर ही सारी रणभूमि में जहां तहां दिखाई देते थे ॥३५॥

गन्धर्वनगराकारं घोरमायोधनं तदा ॥३६॥
निहतै राजपुत्रैश्च क्षत्रियैश्च महाबलैः ।
हस्तिभिः पतितैश्चैव तुरङ्गैश्चाभवन्मही ॥३७॥
अगम्यरूपा समरे विशीर्णैरिव पर्वतैः ।

महाबली क्षत्रिय और राजपुत्रों के हनन से यह युद्धक्षेत्र गन्धर्व नगर के तुल्य शून्य प्रतीत होने लगा, रण में हाथी और अश्वों के गिरने से रणभूमि ऐसी अगम्य होगई थी-जैसे कोई पर्वतों के बिखर जाने से मानो अगम्य होगई हो ॥३६-३७॥

नासीच्चक्रपथस्तत्र पाण्डवस्य महात्मनः ॥३८॥
निघ्नतः शात्रवान्भल्लैर्हस्त्यश्वं चास्यतो महत् ।
स्वानुगा इव सीदन्ति रथचक्राणि मारिष ॥३९॥

हाथी और अश्वों को छेदते तथा शत्रुओं को भल्ल नामक बाणों से मारते हुए महावीर पाण्डु-पुत्र अर्जुन को किसी रथ के मार्ग की आवश्यकता नहीं रह गई थी। हे आर्य! इस समय तो अनुचरों की भांति रथों के साथ रथ के चक्र भी चकनाचूर हो रहे थे ॥३८-३९॥

चरतस्तस्य संग्रामे तस्मिँल्लोहितकर्दमे ।
सीदमानानि चक्राणि समूहुस्तुरगा भृशम् ॥४०॥
श्रमेण महता युक्ता मनोमारुतरंहसः ।

रक्त से कीचड़ युक्त संग्राम भूमि में घूमते हुए अर्जुन के रथ के पहिए, धसकने लगे-जिससे अश्व, बड़े क्लेश से उन पहियों को खींच पाते थे। यद्यपि इन अश्वों का मन और वायु के सदृश वेग था, तो भी वे बड़े श्रम से युक्त हो रहे थे ॥४०॥

वध्यमानं तु तत्सैन्यं पाण्डुपुत्रेण धन्विना ॥४१॥
प्रायशो विमुखं सर्वं नावतिष्ठत भारत ।

हे भारत ! धनुर्धर पाण्डु-पुत्र अर्जुन द्वारा क्षत-विक्षत की हुई सारी कौरव सेना अधिकांस में विमुख होगई और कोई सन्मुख नहीं ठहर सकी ॥४१॥

ताञ्जित्वा समरे जिष्णुः संशप्तकगणान्बहून् ।
विरराज तदा पार्थो विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संशप्तकजये सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

हे राजन् ! विजयी अर्जुन, उन बहुत से संशप्तक गणों को रण में जीतकर इस तरह देदीप्यमान हो गया-जैसे धूम रहित अग्नि प्रज्वलित हो उठती है ॥४२॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अर्जुन द्वारा
संशप्तकों के विजय के वर्णन का
सत्ताईसवां अध्याय पूरा हुआ।



अट्ठाईसवां अध्याय

सञ्जय-उवाच—

युधिष्ठिरं महाराज विसृजन्तं शरान्बहून् ।
स्वयं दुर्योधनो राजा प्रत्यगृह्णादभीतवत् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! इस समय बहुत प्रकार से बाण वर्षा करते हुए राजा युधिष्ठिर से निर्भीक भाव से स्वयं राजा दुर्योधन जाकर भिड़ गया ॥१॥

तमापतन्तं सहसा तव पुत्रं महारथम् ।
धर्मराजो द्रुतं विद्ध्वा तिष्ठ तिष्ठेति चाब्रवीत् ॥२॥

जब धर्मराज ने तुम्हारे महारथी पुत्र दुर्योधन को अपनी ओर एक दम झपटता देखा-तो उसे शीघ्रता से बींध कर कहा—ज़रा ठहरा रह ॥२॥

स तु तं प्रतिविव्याध नवभिर्निशितैः शरैः ।
सारथिं चास्य भल्लेन भृशं क्रुद्धोऽभ्यताडयत् ॥३॥

राजा दुर्योधन ने भी उसके उत्तर में नौ तीखे बाण छोड़कर धर्मराज को बींध दिया और एक भल्ल नामक बाण क्रोध-पूर्वक छोड़कर इसके सारथि को अत्यन्त घायल कर दिया ॥३॥

ततो युधिष्ठिरो राजन्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलीमुखान् ।
दुर्योधनाय चिक्षेप त्रयोदश शिलाशितान् ॥४॥

हे राजन् ! अब राजा युधिष्ठिर ने सुवर्ण के पुङ्ख वाले शिला (शाण) पर तीक्ष्ण किये हुए तेरह बाण राजा दुर्योधन पर फैंके ॥४॥

चतुर्भिश्चतुरो वाहांस्तस्य हत्वा महारथः ।
पञ्चमेन शिरः कायात्सारथेश्च समाक्षिपत् ॥५॥

षष्ठेन तु ध्वजं राज्ञः सप्तमेन तु कार्मुकम् ।
अष्टमेन तथा खड्गं पातयामास भूतले ॥६॥
पञ्चभिर्नृपतिं चापि धर्मराजोऽर्दयद्भृशम् ।

महारथी धर्मराज ने चार बाण से उसके चारों अश्वों को मार दिया और पांचवें बाण से सारथि का शिर धड़ से पृथक् उड़ा दिया । छठे बाण से राजा दुर्योधन की ध्वजा, सातवें से धनुष, और आठवें से उसका खड्ग काटकर भूमि पर गिरा दिया तथा पांच बाण से स्वयं राजा दुर्योधन को आहत किया ॥५-६॥

हताश्वात्तु रथात्तस्मादवप्लुत्य सुतस्तव ॥७॥
उत्तमं व्यसनं प्राप्तो भूमावेवावतिष्ठत ।

हे राजन्! जब तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के रथ के अश्व मारे गए-तो वह उस रथ से नीचे उतर पड़ा । इस समय यह बड़ी ही विपत्ति में फंस गया और (अकिंचन की तरह) भूमि में खड़ा हो गया ॥७॥

तं तु कृच्छ्रगतं दृष्ट्वा कर्णद्रौणिकृपादयः ॥८॥
अभ्यवर्त्तन्त सहसा परीप्सन्तो नराधिपम् ।

राजा दुर्योधन को इस संकट की परिस्थिति में उलझा देखकर कर्ण, अश्वत्थामा और कृपाचार्य आदि वीर राजा दुर्योधन की रक्षा के निमित्त एक दम दौड़े ॥८॥

अथ पाण्डुसुताः सर्वे परिवार्य युधिष्ठिरम् ॥९॥
अन्वयुः समरे राजंस्ततो युद्धमवर्त्तत ।

हे राजन् ! दूसरी ओर पाण्डु के समस्त पुत्र भीम आदि ने राजा युधिष्ठिर को घेर कर उसकी रक्षा का प्रबन्ध किया। अब रणभूमि में घोर युद्ध होने लगा ॥६॥

ततस्तूर्यसहस्राणि प्रावाद्यन्त महामृधे ॥१०॥
ततः किलकिलाशब्दाः प्रादुरासन्महीपते ।

हे महीपते ! इस समय इस महायुद्ध में सहस्रों तुरी नामक बाजे बजने लगे और रणाङ्गण में बड़ा भारी कल-कलाहट खड़ा हो गया ॥१०॥

यत्राभ्यगच्छन्समरे पञ्चालाः कौरवैः सह ॥११॥
नरा नरैः समाजग्मुर्वारणा वरवारणैः ।
रथाश्च रथिभिः सार्धं हयाश्च हयसादिभिः ॥१२॥
द्वन्द्वान्यासन्महाराज प्रेक्षणीयानि संयुगे ।
विविधान्यप्यचिन्त्यानि शस्त्रवन्त्युत्तमानि च ॥१३॥

जिस स्थान पर पञ्चालों का कौरव वीरों के साथ युद्ध हो रहा था, वहां वीर से वीर, हाथियों से हाथी रथियों से रथी, अश्वारोहियों से अश्वारोहियों का युद्ध होने लगा। ये जोटे इस युद्ध में बड़ी ही दर्शनीय हो रही थीं, जो अनेक प्रकार के अभिनय उत्तम २ शस्त्रधारण किये हुए थीं ॥११-१३

ते शूराः समरे सर्वे चित्रं लघु च सुष्ठु च ।
अयुध्यन्त महावेगाः परस्परवधैषिणः ॥१४॥

बड़े वेग के धारण करने वाले, परस्पर वध के अभिलाषी ये सारे शूरवीर, रण में बड़ी शीघ्रता से बड़ा विचित्र और श्रेष्ठ युद्ध करने लगे ॥१४॥

अन्योन्यं समरे जघ्नुर्योधव्रतमनुष्ठिताः ।
नहि ते समरं चक्रुः पृष्ठतो वै कथञ्चन ॥१५॥

ये शूरवीर, योद्धाओं के व्रत में तत्पर होकर रण में एक दूसरे का वध करने लगे । इन्होंने रण में कभी किसी प्रकार से भी पीठ नहीं दिखाई ॥१५॥

मुहूर्त्तमेव तद्युद्धमासीन्मधुरदर्शनम् ।
तत उन्मत्तवद्राजन्निर्मर्यादमवर्त्तत ॥१६॥

हे राजन् ! थोड़ी देर तक यह युद्ध में सुन्दरता के साथ देखा गया और फिर पागलों की तरह मर्यादाहीन होकर चल पड़ा ॥१६॥

रथी नागं समासाद्य दारयन्निशितैः शरैः ।
प्रेषयामास कालाय शरैः सन्नतपर्वभिः ॥१७॥

रथी वीर गजारोही के पास पहुंचकर उसे तीक्ष्ण बाणों से आहत करके फिर नतपर्व वाले बाणों से उन्हें यमराज के यहाँ भेजने लगे ॥१७॥

नागा हयान्समासाद्य विक्षिपन्तो बहून्रणे ।
दारयामासुरत्युग्रं तत्र तत्र तदा तदा ॥१८॥

गजारोही, अश्वारोहियों के पास पहुंचकर रण में बहुत से बाण मारकर जहां तहां सबको चीर फाड़ रहे थे ॥१८॥

हयारोहाश्च बहवः परिवार्य हयोत्तमान् ।
तलशब्दरवांश्चक्रुः सम्पतन्तस्ततस्ततः ॥१९॥

बहुतसे अश्वारोही उत्तम २ अश्वारोहियों को घेर कर इधर उधर से बाण छोड़ते हुए अपने करतलत्राण की ध्वनि कर रहे थे ॥१९॥

धावमानांस्ततस्तांस्तु द्रवमाणन्महागजान् ।
पार्श्वतः पृष्ठतश्चैव निजघ्नुर्हयसादिनः ॥२०॥

इन बाणों से वेग के साथ भागते हुए बड़े २ हाथियों को अश्वारोही आगे और पीछे से वींधने लगे ॥२०॥

विद्राव्य च बहूनश्वान्नागा राजन्मदोत्कटाः ।
विषाणैश्चापरे जघ्नुर्ममृदुश्चापरे भृशम् ॥२१॥

हे राजन ! मदोत्कट हाथी, बहुत से अश्वों को आहत करके उनको अपने दांतों से मार डालते या पैरों से अच्छी तरह कुचल देते थे ॥२१॥

साश्वारोहांश्च तुरगान्विषाणैर्विव्यधू रुषा ।
अपरे चिक्षिपुर्वेगात्प्रगृह्यातिबलास्तदा ॥२२॥

क्रोध में भरे हुए ये हाथी, अपने दांतों से अश्वारोहियों सहित अश्वों को चीर डालते थे और अन्य अत्यन्त वेग वाले हाथी अश्वारोहियों समेत अश्वों को उठाकर वेग से दूर फैंक देते थे ॥२२॥

पादातैराहता नागा विवरेषु समन्ततः ।
चक्रुरार्त्तस्वरं घोरं दुद्रुवुश्च दिशो दश ॥२३॥

जब मौका पाकर पैदल सैनिक हाथियों पर प्रहार कर देते थे, तो घोर आर्तस्वर करते हुए हाथी, सब ओर भागते ही दिखाई देते थे ॥२३॥

पदातीनां तु सहसा प्रद्रुतानां महाहवे ।
उत्सृज्याभरणं तूर्णमवब्रू रणाजिरे ॥२४॥
निमित्तं मन्यमानास्तु परिणाम्य महागजाः ।
जगृहुर्बिभिदुश्चैव चित्राण्याभरणानि च ॥२५॥

जब इस महायुद्ध में पैदल सैनिक, किसी मृतक वीरों के आभूषण उतार कर भागने लगे-तो रणाजिर में उनको घेर लिया बड़े गजारोही वीरों ने इसी बात को निमित्त बनाकर और झपट कर उनको पकड़ लिया। तथा उनके ही विचित्र आभूषणों को छीन लिया ॥२४-२५॥

तांस्तु तत्र प्रसक्तान्वै परिवार्य पदातयः ।
हस्त्यारोहान्निजघ्नुस्ते महावेगा बलोत्कटाः ॥२६॥

आभूषण उतारने में लगे हुए इन गजारोहियों को अन्य महा वेगधारी बलवान् पैदल सैनिकों ने घेर कर मार दिया ॥२६॥

अपरे हस्तिभिर्हस्तैः खं विक्षिप्ता महाहवे ।
निपतन्तो विषाणाग्रैर्भृशं निद्धाः सुशिक्षितैः ॥२७॥

इस महा रण में दूसरे हाथियों ने अपनी सूंड से अनेक वीरां को आकाश में फेंक दिया और जब वे गिरने लगे-तो उन सीखे हुए हाथियों ने उन्हें अपने दांतों से चीर डाला ॥२७॥

अपरे सहसा गृह्य विषाणैरेव सूदिताः ।
सेनान्तरं समासाद्य केचित्तत्र महागजैः ॥२८॥

दूसरी सेना के मध्य में पहुंचे हुए बड़े २ हाथियों ने अन्य वीरां को पकड़ कर अपने दांतों से मार डाला ॥२८॥

क्षुण्णगात्रा महाराज विक्षिप्य च पुनः पुनः ।
अपरे व्यजनानीव विभ्राम्य निहता मृधे ॥२६॥

हे महाराज ! बहुत से वीरों के शरीर बार २ पटकने से विशीर्ण कर दिए और बहुत से वीरों को पंखे की तरह घुमा कर रण में मार गिराया ॥२६॥

पुरःसराश्च नागानामपरेषां विशाम्पते ।
शरीराण्यतिविद्धानि तत्रतत्र रणाजिरे ॥३०॥

हे विशाम्पते ! रणाङ्गण में जहां तहां बहुत से हाथियों के आगे चलते वीर मारे गये और उनके शरीर भी बहुत ही जीर्ण शीर्ण कर दिए गये ॥३०॥

प्रतिमानेषु कुम्भेषु दन्तवेष्टेषु चापरे ।
निगृहीता भृशं नागाः प्रासतोमरशक्तिभिः ॥३१॥

बहुत से हाथियों को प्रास, तोमर और शक्ति से अत्यन्त आहत किया गया और बहुतों के विशाल मस्तक तथा होठों में अनेक व्रण कर दिए गए ॥३१॥

निगृह्य च गजाः केचित्पार्श्वस्थैर्भृशदारुणैः ।
रथाश्वसादिभिस्तत्र सम्भिन्नान्यपतन्भुवि ॥३२॥

कोई २ हाथी अपने समीप से निकलने वाले अत्यन्त दारुण रथी और अश्वारोही द्वारा आहत किये गए, जो घायल होकर भूमि में गिर गये ॥३२॥

सहयाः सादिनस्तत्र तोमरेण महामृधे ।
भूमावमृद्नन्वेगेन सचर्माणं पदातिनम् ॥३३॥

तोमर शस्त्र के प्रहार से बहुत से अश्वों सहित वेग से भूमि में गिरते हुए अश्वारोहियों ने ढ़ाल वाले पदाति युवक को कुचल दिया ॥३३॥

तथा सावरणान्कांश्चित्तत्रतत्र विशाम्पते ।
रथान्नागाः समासाद्य परिगृह्य च मारिष ॥३४॥
व्याक्षिपन्सहसा तत्र घोररूपे भयानके ।
नाराचैर्निहताश्चापि गजाः पेतुर्महाबलाः ॥३५॥

हे विशाम्पते ! कहीं २ पर आवरण सहित रथों के पास हाथी पहुँचकर और उन्हें उठा कर एक दम इस घोर भीषण युद्ध में फैंक देते थे। नाराच संज्ञक बाणों से महाबली हाथी भी मारे हुए रणाङ्गण में गिर रहे थे ॥३४-३५॥

पर्वतस्येव शिखरं वज्ररुग्णं महीतले ।
योधा योधान्समासाद्य मुष्टिभिर्व्यहनन्युधि ॥३६॥

वज्र से तोड़े हुए पर्वत के शिखर सदृश एक योधा दूसरे योधा को मुष्टिका मार कर युद्ध भूमि में गिरा रहा था ॥३६॥

केशेष्वन्योन्यमाक्षिप्य चिच्छिपुर्बिभिदुश्च ह ।
उद्यम्य च भुजानन्ये निक्षिप्य च महीतले ॥३७॥

कोई किसी के वाल पकड़ कर खैंचता था । कोई किसी को चीर देता था कोई किसी की भुजा उखाड़ लेता और भूमि में फैंक देता था ॥३७॥

पदा चोरः समाक्रम्य स्फुरतोऽपाहरच्छिरः ।
पततश्चापरो राजन्विजहारासिना शिरः ॥३८॥

हे राजन् ! कोई वीर दूसरे वीर की छाती पर पैरों से चढ़ गया और वह जब अपने को छुड़ाने को तड़फड़ाने लगा-तो उसका शिर काट लिया । तथा जो कोई पास से भाग कर निकला उसका भी उसने शिर तलवार से काट डाला ॥३८॥

जीवतश्च तथैवान्यः शस्त्रं काये न्यमज्जयत् ।
मुष्टियुद्धं महच्चासीद्योधानां तत्र भारत ॥३९॥

हे भारत ! किसी दूसरे वीर ने जीते हुए किसी वीर की देह में शस्त्र घुसेड़ दिया और कहींपर योद्धाओं का मुष्टि युद्ध होने लगा ॥३९॥

तथा केशग्रहश्चोग्रो बाहुयुद्धं च भैरवम् ।
समासक्तस्य चान्येन अविज्ञातस्तथापरः ॥४०॥
जहार समरे प्राणान्नानाशस्त्रैरनेकधा ।

वहां पर योद्धाओं के बाल पकड़ कर भीषण बाहु युद्ध होने लगा। कोई बिना जानकारी में अचानक आकर दूसरे से भिड़ गया। इस तरह अनेक शस्त्रों के प्रहार से अनेक ढङ्ग से रण में लोगों ने विरोधी वीरों के प्राणों का अपहरण किया ॥४०॥

संसक्तेषु च योधेषु वर्तमाने च संकुले ॥४१॥
कबन्धान्युत्थितानि स्युः शतशोऽथ सहस्रशः ।

हे राजन्! जब एक दूसरे से आसक्त होकर ये वीर युद्ध कर रहे थे और घोर युद्ध हो रहा था तो इस समय सैंकड़ों हज़ारों, कवन्ध रण भूमि में घूमने लगे ॥४१॥

शोणितैः सिच्यमानानि शस्त्राणि कवचानि च ॥४२॥
महारागानुरक्तानि वस्त्राणीव चकाशिरे ।

रक्त से भीगे हुए शस्त्र और कवच, इतने रंग में रंग गये जैसे वस्त्र रंग में रंग दिए हों ॥४२॥

एवमेतन्महद्युद्धं दारुणं शस्त्रसंकुलम् ॥४३॥
उन्मत्तगङ्गाप्रतिमं शब्देनापूरयज्जगत् ।

इस प्रकार महादारुण, शस्त्रों का भीषण युद्ध हो रहा था! इस समय उछलती हुई गङ्गा की ध्वनि के सदृश भीषण ध्वनि, रण भूमि में हो रही थी, जिससे सारा जगत् भर गया ॥४३॥

नैव स्वे न परे राजन्विज्ञायन्ते शरातुराः ॥४४॥
योद्धव्यमिति युध्यन्ते राजानो जयगृद्धिनः ।

हे राजन ! जिसके बाण लग गया-उसके लग गया-किसी को अपना और पराया दिखाई नहीं देता था। अपनी २ विजय के अभिलाषी राजा. युद्ध करता है बस ? इसी ध्यान से युद्ध में जुटे हुए थे ॥४४॥

स्वान्स्वे जघ्नुर्महाराज परांश्चैव समागतान् ॥४५॥
उभयोः सेनयोर्वीरैर्व्याकुलं समपद्यत ।

हे महाराज ! वीर लोग, अपने वीरों को ही शीघ्रता में मार डालते थे। यदि शत्रु सन्मुख आ गया-तो शत्रु को उड़ा देते थे। इस प्रकार दोनों सेना के मध्य में बड़ी चहल-पहल हो रही थी ॥४५॥

रथैर्भग्नैर्महाराज वारणैश्च निपातितैः ॥४६॥
हयैश्च पतितैस्तत्र नरैश्च विनिपातितैः ।
अगम्यरूपा पृथिवी क्षणेन समपद्यत ॥४७॥
क्षणेनासीन्महीपाल क्षतजौघप्रवर्तिनी ।

हे महाराज ! टूटे हुए रथ, गिराये हुए हाथी, गिरे हुए घोड़े और गिराये हुए वीरों, से क्षण मात्र में पृथिवी अगम्य हो गई। हे महीपाल ! थोड़ी ही देर में व्रणों से निकलने वाले रक्त से रण भूमि में नदी बह निकली ॥४६-४७॥

पञ्चालानहनत्कर्णस्त्रिगर्त्तांश्च धनञ्जयः ॥४८॥
भीमसेनः कुरून्राजन्हस्त्यनीकं च सर्वशः ।

हे राजन्! अङ्गराज कर्ण ने पञ्चाल, महारथी अर्जुन ने त्रिगर्तों तथा भीम ने कौरव, और हाथियों की सेना मार २ कर बिछा दी ॥४८॥

एवमेष क्षयो वृत्तः कुरुपाण्डवसेनयोः ।
अपराह्णे गते सूर्ये कांक्षतां विपुलं यशः ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽष्टाविंशोध्यायः । २८॥

हे भरतर्षभ! दोपहर के अनन्तर अपने २ यश के चाहने वाले योद्धाओं का बहुत ही बड़ा संग्राम होने लगा, जिससे कौरव और पाण्डव सेना का महान् विनाश हो गया ॥४९॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में घोर युद्ध के वर्णन
का अट्ठाईसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

उनतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

अतितीव्राणि दुःखानि दुःसहानि बहूनि च ।
त्वत्तोऽहं सञ्जयाश्रौषं पुत्राणां चैव संक्षयम् ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! मैंने अत्यन्त तीव्र बहुत से दुःसह दुःख और पुत्रों के विनाश के समाचार तुमसे सुने हैं ॥१॥

यथा त्वं मे कथयसे यथा युद्धमवर्त्तत।
न सन्ति सूत कौरव्या इति मे निश्चिता मतिः ॥२॥

हे सूत! तुमने जो समाचार सुनाए और जिस तरह युद्ध हो रहा है-उससे तो यही पता लगता है-कि अब कौरव नहीं बचेंगे॥

दुर्योधनश्च विरथः कृतस्तत्र महारथः।
धर्मपुत्रः कथं चक्रे तस्य वा नृपतिः कथम् ॥३॥

इस युद्ध में महारथी दुर्योधन को रथ विहीन बना दिया। धर्मराज युधिष्ठिर ने फिर क्या किया और राजा दुर्योधन ने उसका क्या प्रतीकार किया ॥३॥

अपराह्णे कथं युद्धमभवल्लोमहर्षणम्।
तन्ममाचक्ष्व तत्त्वेन कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥४॥

हे सञ्जय! तुम चतुर मनुष्य हो और तुमको सारे समाचार विदित हैं। अब तुम यह बताओ, कि दोपहर के पीछे किस तरह युद्ध हुआ ॥४॥

सञ्जय उवाच—

संसक्तेषु तु सैन्येषु वध्यमानेषु भागशः।
रथमन्यं समास्थाय पुत्रस्तव विशाम्पते ॥५॥
क्रोधेन महता युक्तः सविषो भुजगो यथा।

सञ्जय बोले—हे विशाम्पते ! जब दोनों सेना एक दूसरी से भिड़ गई और उसका बहुत बड़ा भाग मारा गया, तो दूसरे रथ में बैठकर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन, बड़े भारी क्रोध में विषधारी सर्प की भांति ज्वल उठा ॥५॥

दुर्योधनः समालक्ष्य धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥६॥
प्रोवाच सूतं त्वरितो याहि याहीति भारत ।
तत्र मां प्रापय क्षिप्रं सारथे यत्र पाण्डवः ॥७॥
ध्रियमाणातपत्रेण राजा राजति दंशितः ।

हे भारत ! राजा दुर्योधन ने धर्मराज युधिष्ठिर को देखकर कहा—हे सूत ! तुम जल्दी २ गमन करो । हे सारथे ! तुम मुझे शीघ्र वहां पहुंचा दो, जहां पर श्वेत छत्र से युक्त, सब तरह सुसज्जित पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर स्थित हैं ॥६-७॥

स सूतश्चोदितो राज्ञा राज्ञः स्यन्दनमुत्तमम् ॥८॥
युधिष्ठिरस्याभिमुखं प्रेषयामास संयुगे ।

हे राजन् ! इस प्रकार राजा दुर्योधन द्वारा प्रेरित किया हुआ सारथि, राजा के उत्तम रथ को लेकर रण में चल दिया और वहां पहुंचा, जहां पर राजा युधिष्ठिर थे ॥८॥

ततो युधिष्ठिरः क्रुद्धः प्रभिन्न इव कुञ्जरः ॥९॥
सारथिं चोदयामास याहि यत्र सुयोधनः ।

अब मदोन्कट गजराज की भांति राजा युधिष्ठिर बिगड़ उठे । उसने भी सारथि से कहा—मुझे तुम वहीं पहुंचाओ—जहां राजा दुर्योधन उपस्थित हैं ॥९॥

तौ समाजग्मतुर्वीरौ भ्रातरौ रथसत्तमौ ॥१०॥
समेत्य च महावीरौ संरब्धौ युद्धदुर्मदौ।
ववर्षतुर्महेष्वासौ शरैरन्योन्यमाहवे ॥११॥

ये दोनों रथिश्रेष्ठ वीर भ्राता, राजा दुर्योधन और युधिष्ठिर परस्पर भिड़ गए। इन दोनों युद्ध दुर्मद, आवेश में भरे हुए, महाधनुर्धर रण में एक दूसरे पर बाणों की वर्षा करने लगे॥

ततो दुर्योधनो राजा धर्मशीलस्य मारिष।
शिलाशितेन भल्लेन धनुश्चिच्छेद संयुगे ॥१२॥

हे आर्य! अब राजा दुर्योधन ने धर्मराज युधिष्ठिर के धनुष को शिलापर तीक्ष्ण किये हुए बाण से रण में काट गिराया ॥१२॥

तं नामृष्यत संक्रुद्धो ह्यवमानं युधिष्ठिरः।
अपविध्य धनुश्छिन्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१३॥
अन्यत्कार्मुकमादाय धर्मपुत्रश्चमूमुखे।
दुर्योधनस्य चिच्छेद ध्वजं कार्मुकमेव च ॥१४॥

राजा दुर्योधन द्वारा किये गए इस अपमान को क्रोधातुर धर्मराज नहीं सह सके। धर्मपुत्र युधिष्ठिर ने क्रोध से आंखें लाल बनाकर अपने कटे हुए धनुष को रण में फैंक दिया और दूसरा धनुष उठाया तथा उस धनुष से राजा दुर्योधन की ध्वजा और धनुष को भी काट डाला ॥१३-१४॥

अथान्यद्धनुरादाय प्राविध्यत युधिष्ठिरम्।
तावन्योन्यं सुसंक्रुद्धौ शस्त्रवर्षाण्यमुञ्चताम् ॥१५॥

अथ राजा दुर्योधन ने भी दूसरा धनुष उठाकर धर्मराज युधिष्ठिर को बींध डाला ये दोनों परस्पर एक दूसरे पर क्रुद्ध हुए शस्त्र वर्षा करने लगे ॥१५॥

सिंहाविव सुसंरब्धौ परस्परजिगीषया ।

जघ्नतुस्तौ रणेऽन्योन्यं नर्दमानौ वृषाविव ॥१६॥

अन्तरं मार्गमाणौ च चेरतुस्तौ महारथौ ।

राजा दुर्योधन और धर्मराज, परस्पर विजय की अभिलाषा से प्रेरित होकर सिंह की भांति आवेश में भरे हुए थे। ये गर्जते हुए वृषों की तरह, रण में एक दूसरे पर प्रहार करने लगे। ये दोनों महारथी अपने २ प्रहार का मौका देखते हुए रण भूमि में घूमने लगे ॥१६॥

ततः पूर्णायतोत्सृष्टैः शरैस्तौ तु कृतव्रणौ ॥१७॥

विरेजतुर्महाराज किंशुकाविव पुष्पितौ ।

हे महाराज ! बड़ी लम्बाई के साथ खैंचे हुए बाणों से दोनों वीर, अत्यन्त घायल हो गए। अब ये दोनों ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे पुष्पों से लदे हुए दो ढाक के वृक्ष दिखाई देते हैं ॥१७॥

ततो राजन्विमुञ्चतौ सिंहनादान्मुहुर्मुहुः ॥१८॥

तलयोश्च तथा शब्दान्धनुषश्च महाहवे ।

हे राजन् ! ये दोनों बार २ सिंहनाद तथा करतलत्राण और धनुष के शब्दों का रणभूमि में विस्तार कर रहे थे ॥१८॥

शङ्खशब्दरवांश्चैव चक्रतुस्तौ नरेश्वरौ ॥१६॥
अन्योन्यं तौ महाराज पीडयाञ्चक्रतुभृ शम् ।

हे महाराज ! इन दोनों पुरुष प्रवीरों ने शंखों के शब्द किए और एक दूसरे को परस्पर आहत कर दिया ॥१६॥

ततो युधिष्ठिरो राजा पुत्रं तव शरैस्त्रिभिः ॥२०॥
आजघानोरसि क्रुद्धो वज्रवेगैर्दुरासदैः ।

हे राजन् ! अब राजा युधिष्ठिर ने तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के वक्षःस्थल में तीन बाणों का प्रहार किया, जो बाण, वज्र के तुल्य वेगधारी बड़े दुःसह थे ॥२०॥

प्रतिविव्याध तं तूर्णं तव पुत्रो महीपतिः ॥२१॥
पञ्चभिर्निशितैर्बाणैः स्वर्णपुङ्खैः शिलाशितैः ।

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने सुवर्ण पुङ्ख वाले, शिला पर तीक्ष्ण किये हुए, नुकीले पांच बाणों से धर्मराज को बींध डाला ॥२१॥

ततो दुर्योधनो राजा शक्तिं चिक्षेप भारत ॥२२॥
सर्वपारसवीं तीक्ष्णां महोल्काप्रतिमां तदा ।

हे भारत ! अब राजा दुर्योधन ने उल्का समान अत्यन्त चमकती हुई तीक्ष्ण लोह निर्मित शक्ति को धर्मराज पर फैंका ॥

तामापतन्तीं सहसा धर्मराजः शितैः शरैः ॥२३॥
त्रिभिश्चिच्छेद सहसा तं च विव्याध पञ्चभिः ।

निपपात ततः साथ स्वर्णदण्डा महास्वना ॥२४॥
निपतन्ती महोल्केव व्यराजच्छिखिसन्निभा ।

उस शक्ति को एक दम अपने ऊपर गिरती हुई देखकर धर्मराज ने तीक्ष्ण तीन बाणों से उसे काट गिराया और फिर अचानक पांच बाण छोड़कर उसे बींध डाला, अत्यन्त शब्द करती हुई सुवर्ण दण्ड वाली वह शक्ति वहां इस तरह गिरी जैसे-अग्नि की लपटों के तुल्य, बहुत बड़ी उल्का पृथिवी में गिरी हो ॥२३-२४॥

शक्तिं विनिहतां दृष्ट्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥२५॥
नवभिर्निशितैर्भल्लैर्निजघान युधिष्ठिरम् ।

हे विशाम्पते ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने अपनी शक्ति को नष्ट हुई देखकर राजा दुर्योधन पर नौ तीक्ष्ण बाण मारे ॥२५॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुतापनः ॥२६॥
दुर्योधनं समुद्दिश्य बाणं जग्राह सत्वरः ।

शत्रुतापी धर्मराज, जब बलवान् शत्रु द्वारा बींध लिया गया-तो उसने बड़ी शीघ्रता से राजा दुर्योधन को लक्ष्य करके बाण का ग्रहण किया ॥२६॥

समाधत्त च तं बाणं धनुर्मध्ये महाबलः ॥२७॥
चिक्षेप च महाराज ततः क्रुद्धः पराक्रमी ।

हे महाराज ! महाबली, अत्यन्त पराक्रमी धर्मराज ने उस बाण को धनुष पर चढ़ाया और क्रोध में भर कर उसे दुर्योधन पर छोड़ दिया ॥२७॥

स तु बाणः समासाद्य तव पुत्रं महारथम् ॥२८॥

व्यामोहयत राजानं धरणीं च ददार ह ।

हे राजन्! इस बाण ने तुम्हारे महारथी पुत्र, राजा दुर्योधन के शरीर में प्रविष्ट होकर उसे मूर्च्छित कर दिया और फिर धरती को चीर कर उसमें घुस गया ॥२८॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो गदामुद्यम्य वेगितः ॥२६॥

विधित्सुः कलहस्यान्तं धर्मराजमुपाद्रवत् ।

अब युद्ध का सारा झगड़ा ही मिटा देने के निमित्त, राजा दुर्योधन, बड़ा क्रुद्ध हुआ और वह गदा लेकर वेग के साथ धर्मराज पर झपटे ॥२६॥

तमुद्यतगदं दृष्ट्वा दण्डहस्तमिवान्तकम् ॥३०॥

धर्मराजो महाशक्तिं प्राहिणोत्तव सूनवे ।

दीप्यमानां महावेगां महोल्कां ज्वलितामिव ॥३१॥

दण्डधारी काल के तुल्य हाथ में गदा लिए हुए, राजा दुर्योधन को देखकर धर्मराज ने एक महाशक्ति तुम्हारे पुत्र के ऊपर फेंकी, जो अत्यन्त वेगशाली, दीप्यमान, प्रज्वलित और बड़ी उल्का सी दिखाई देती थी ॥३०-३१॥

रथस्थः स तया विद्धो वर्म भित्वा स्तनान्तरे ।

भृशं संविग्नहृदयः पपात च मुमोह च ॥३२॥

उसके कवच और वक्ष-स्थल को बींध उस महाशक्ति से रथ में स्थित, कुरुराज को ही बींध लिया। वह अत्यन्त से विघ्न हृदय हो रहा था। वह गिर गया और मोहित हो गया ॥३२॥

भीमस्तमाह च ततः प्रतिज्ञामनुचिन्तयन् ।
नायं वध्यस्तव नृप इत्युक्तः स न्यवर्तत ॥३३॥

भीमसेन ने अपनी प्रतिज्ञा को स्मरण करते हुए कहा—हे राजन् ! यह तुम्हारे मारने योग्य नहीं है । जब भीम ने इतना कहा-तो धर्मराज वहां से हटगए ॥३३॥

ततस्त्वरितमागम्य कृतवर्मा तवात्मजम् ।
प्रत्यपद्यत राजानं निमग्नं व्यसनार्णवे ॥३४॥

अब बड़ी शीघ्रता से कृतवर्मा ने आकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को इस विपत्ति से निकाल कर बाहर किया ॥३४॥

गदामादाय भीमोऽपि हेमपट्टपरिष्कृताम् ।
अभिदुद्राव वेगेन कृतवर्माणमाहवे ॥३५॥

सुवर्ण के पत्र से समुज्ज्वल गदा लेकर भीम ने भी इस घोर संग्राम में बड़े वेग के साथ कृतवर्मा पर आक्रमण किया ॥३५॥

एवं तदभवद्युद्धं त्वदीयानां परैः सह ।
अपराह्णे महाराज कांक्षतां विजयं युधि ॥३६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

हे महाराज ! इस प्रकार तुम्हारे पुत्रों का शत्रुओं के साथ दोपहर पीछे युद्ध हुआ, जिस में ये दोनों परस्पर अपनी २ विजय चाह रहे थे ॥२६॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में घोर युद्ध वर्णन का उनतीसवां अध्याय हुआ।



तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः कर्णं पुरस्कृत्य त्वदीया युद्धदुर्मदाः ।
पुनरावृत्य संग्रामं चक्रुर्देवासुरोपमम् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! इसके अनन्तर तुम्हारे पक्ष के युद्ध दुर्मद योद्धा, महारथी कर्ण को आगे करके और लौटकर देवासुर संग्राम के तुल्य भीषण युद्ध करने लगे ॥१॥

द्विरदनररथाश्वशङ्खशब्दैः परिहृषिता विविधैश्च शस्त्रपातैः ।
द्विरदरथपदातिसादिसङ्घाः परिकुपिताभिमुखाः प्रजह्रिरे ते ॥

हाथी, नर, रथ, अश्व और शङ्ख आदि के शब्द तथा विविध-प्रकार शस्त्रों के पातों से उत्तेजित हुए हाथी, रथ, पैदल और अश्वारोही वीरों के सङ्घ, कुपित होकर सामने आये और प्रहार करने लगे ॥२॥

शितपरश्वधसासिपट्टिशैरिपुभिरनेकविधैश्च सूदिताः ।
द्विरदरथहया महाहवे वर पुरुषैः पुरुषाश्च वाहनैः ॥३॥

चमकीली धार वाले, परशु, खड्ग, पट्टिश और अनेक प्रकार के बाणों से बड़े २ वीरों द्वारा रण में हाथी, रथ और अश्व मारे गए तथा इन हाथी आदि वाहनों से पुरुषों का नाश कर दिया ॥३॥

कमलदिनकरेन्दुसन्निभैः सितदशनैः सुमुखाक्षिनासिकैः ।
रुचिरमुकुटकुण्डलैर्मही पुरुषशिरोभिरुपस्तृता बभौ ॥४॥

कमल, सूर्य और चन्द्रमा के समान, चमकीले श्वेत दांतों वाले, सुन्दर, मुख, नेत्र और नासिकाधारी, रुचिर मुकुट और कुण्डल पहने हुए वीरों के शिरों से पृथिवी भरती चली गई ॥४॥

परिघमुसलशक्तितोमरैर्नखरभुशुण्डिगदाशतैर्हताः ।
द्विरदनरहयाः सहस्रशो रुधिरनदीप्रवहास्तदाभवन् ॥५॥

हे नृप ! वहां सैंकड़ों परिघ, मुसल, शक्ति, तोमर, नखर, भुशुण्डी और गदाओं से मारे गए सहस्रों हाथी मनुष्य और अश्व, रुधिर की नदी बहाने लगे ॥५॥

प्रहतरथनराश्वकुञ्जरं प्रतिभयदर्शनमुल्वणव्रणम् ।
तदहितहतमाबभौ बलं पितृपतिराष्ट्रमिव प्रजाक्षये ॥६॥

मारे हुए रथी, पैदल, अश्व, और गजों से भरी हुई महा भय के दिखाने वाली उत्कट व्रणों से युक्त शत्रुओं की सेना, प्रजा के नाश के समय प्रेतपुरी के तुल्य दिखाई देने लगी ॥६॥

अथ तव नरदेव सैनिकास्तव च सुताः सुरसूनुसन्निभाः ।
अमितबलपुरःसरा रणे कुरुवृषभाः शिनिपुत्रमभ्ययुः ॥७॥

हे नरदेव ! तुम्हारे सैनिक और देवों के पुत्रों के तुल्य सुन्दर तुम्हारे पुत्र, तथा अत्यन्त बल से सम्पन्न हुए कौरव वीर, रण में एक साथ शिनि-पुत्र सात्यकि पर झपटे ॥७॥

तदतिरुधिरभीममाबभौ पुरुषवराश्वरथद्विपाकुलम् ।
लवणजलसमुद्धतस्वनं बलमसुरामरसैन्यसप्रभम् ॥८॥

अत्यन्त रुधिर प्रवाह से व्याप्त, पुरुष प्रवीर, अश्व रथ और हाथियों से भरे हुए, समुद्र के उछलने से होने वाली ध्वनि के सदृश कोलाहलकारी, असुर और देवों की सेना के सदृश, भारतीय सेना हो रही थी ॥८॥

सुरपतिसमविक्रमस्ततस्त्रिदशवरावरजोपमं युधि ।
दिनकरकिरणप्रभैः पृषत्कै रवितनयोऽभ्यहनच्छिनिप्रवीरम् ॥

इन्द्र के समान पराक्रमी सूर्य पुत्र कर्ण ने विष्णु के तुल्य पराक्रम वाले शिनिप्रवीर सात्यकि पर सूर्य किरण के सदृश चमकीले बाणों से गाढ़ा प्रहार किया ॥९॥

तमपि सरथवाजिसारथिं शिनिवृषभो विविधैः शरैस्त्वरन् ।
भुजगविषसमप्रभै रणे पुरुषवरं समवास्तृणोत्तदा ॥१०॥

शिनिवंशश्रेष्ठ, सात्यकि ने भी रथ, अश्व और सारथि से युक्त महारथी कर्ण को अपने सर्प समान भीषण बाणों से आच्छादित कर दिया ॥१०॥

शिनिवृषभशरैर्निपीडितं तव सुहृदो वसुषेणमभ्ययुः ।
त्वरितमतिरथा रथर्षभं द्विरदरथाश्वपदातिभिः सह ॥११॥

सात्यकि के बाणों से पीड़ित रथियों में श्रेष्ठ, वसुषेण कर्ण को अत्यन्त वेग पूर्वक तुम्हारे मित्र महावीरों ने हाथी, रथ, अश्व और पैदलों के साथ सहायता करते हुए घेर लिया ॥११॥

तदुदधिनिभमाद्रवद्बलं त्वरिततरैः समभिद्रुतं परैः ।
द्रुपदसुतमुखैस्तदाभवत्पुरुषरथाश्वगजक्षयो महान् ॥१२॥

बड़े वेग वाले शत्रु वीरों के आक्रमण करने पर कौरव सेना समुद्र की भांति उछलने लगी । इस समय उसमें द्रुपद के धृष्टद्युम्न आदि पुत्रों द्वारा कौरव सेना के धनुष, रथ अश्व और गजों का महान् विनाश हो गया ॥१२॥

अथ पुरुषवरौ कृताह्निकौ भवमभिपूज्य यथाविधि प्रभुम् ।
अरिवधकृतनिश्चयौ द्रुतं तव बलमर्जुनकेशवौ सृतौ ॥१३॥

इसके अनन्तर पुरुष प्रवीर श्रीकृष्ण और अर्जुन ने संध्या की तथा भगवान् शङ्कर का पूजन करके वे शत्रु वध के निश्चय के साथ, बड़े वेग से कौरव सेना में घुसे ॥१३॥

जलदनिनदनिःस्वनं रथं पवनविधूतपताककेतनम् ।
सितहयमुपयान्तमन्तिकं कृतमनसो ददृशुस्तदारयः ॥१४॥

इनके रथ की ध्वनि, मेघ ध्वनि के तुल्य भीषण थी । पवन से पताका और ध्वजाएँ नांच रहीं थीं । इस प्रकार श्वेत

अश्वों वाले अर्जुन के रथ को पास आते देखकर शत्रुभूत कौरव वीर, कौतुक से उसे देखने लगे ॥१४॥

अथ विस्फार्य गाण्डीवं रथे नृत्यन्निवार्जुनः ।
शरसम्बाधमकरोत्खं दिशः प्रदिशस्तथा ॥१५॥

हे राजन् ! अब अर्जुन ने गाण्डीव धनुष को फैला कर रथ में नांचना सा आरम्भ किया । उन्होंने आकाश, दिशा और विदिशाओं को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया ॥१५॥

रथान्विमानप्रतिमान्मज्जयन्सायुधध्वजान् ।
ससारथींस्तदा बाणैरभ्राणीवानिलोऽवधीत् ॥१६॥

विमानों (सात मंजिल के भवनों) के समान ऊंचे, आयुध, ध्वजा और सारथियों से युक्त रथों को मेघों को वायु की तरह अर्जुन, नष्ट करने लगे ॥१६॥

गजान्गजप्रयन्तॄंश्च वैजयन्त्यायुधध्वजान् ।
सादिनोऽश्वांश्च पत्तींश्च शरैर्निन्ये यमक्षयम् ॥१७॥

गज, गजारोही, पताका आयुध, ध्वजा, अश्व, अश्वारोही तथा पैदलों को अर्जुन ने मार २ कर यमलोक भेज दिया ॥१७॥

तमन्तकमिव क्रुद्धमनिवार्यं महारथम् ।
दुर्योधनोऽभ्ययादेको निघ्नन्बाणैरजिह्मगैः ॥१८॥

हे राजन् ! काल के समान कुपित, पीछे नहीं हटाये जाने वाले महारथी अर्जुन पर सीधे जाने वाले बाणों से प्रहार करते हुए अकेले राजा दुर्योधन आगे बढ़े ॥१८॥

तस्यार्जुनो धनुः सूतमश्वान्केतुं च सायकैः ।
हत्वा सप्तभिरेकेन च्छत्रं चिच्छेद पत्रिणा ॥१९॥

अर्जुन ने राजा दुर्योधन के ऊपर सात बाण छोड़कर उसके धनुष, सारथि और चार अश्वों को मार कर एक बाण से उसकी ध्वजा को काट डाला। तथा आठवें बाण से उसके छत्र को भी छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१९॥

नवमं च समाधाय व्यसृजत्प्राणघातिनम् ।
दुर्योधनायेषुवरं तं द्रौणिः सप्तधाच्छिनत् ॥२०॥

अर्जुन ने फिर प्राणघाती नौवां तीक्ष्ण बाण धनुष पर चढ़ा कर राजा दुर्योधन पर छोड़ा, जिसके अश्वत्थामा ने सात टुकड़े कर दिए ॥२०॥

ततो द्रौणेर्धनुश्छित्त्वा हत्वा चाश्वरथाञ्शरैः ।
कृपस्यापि तदत्युग्रं धनुश्चिच्छेद पाण्डवः ॥२१॥

अब पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने अपने बाणों से अश्वत्थामा का धनुष काट कर उसके अश्व और रथ का नाश कर दिया तथा कृपाचार्य का अत्यन्त उग्र धनुष भी काट गिराया ॥२१॥

हार्दिक्यस्य धनुश्छित्त्वा ध्वजं चाश्वांस्तदावधीत् ।
दुःशासनस्येष्वसनं छित्त्वा राधेयमभ्ययात् ॥२२॥

इसके बाद अर्जुन ने हृदिक-पुत्र कृतवर्मा का धनुष, और ध्वजा काट कर उसके अश्वों को भी मार गिराया तथा दुःशासन के धनुष को छिन्न-भिन्न करके राधा-पुत्र कर्ण पर आक्रमण किया ॥

अथ सात्यकिमुत्सृज्य त्वरन्कर्णोऽर्जुनं त्रिभिः ।
विद्ध्वा विव्याध विंशत्या कृष्णं पार्थं पुनः पुनः ॥

अब महारथी कर्ण ने सात्यकि को तो छोड़ा और शीघ्रता के साथ अर्जुन पर आक्रमण किया । इसने तीन बाणों से अर्जुन को बींधकर बीस बाणों से बार २ फिर अर्जुन और श्रीकृष्ण को बींध डाला ॥२३॥

न ग्लानिरासीत्कर्णस्य क्षिपतः सायकान्बहून् ।
रणे विनिघ्नतः शत्रून्क्रुद्धस्येव शतक्रतोः ॥२४॥

बहुत से बाण फेंकते हुए कर्ण को रण में शत्रुओं का वध करते हुए क्रोधातुर इन्द्र की भांति कोई थकावट ही प्रतीत नहीं होती थी ॥२४॥

अथ सात्यकिरागत्य कर्णं विद्ध्वा शितैः शरैः ।
नवत्या नवभिश्चोग्रैः शतेन पुनरार्पयत् ॥२५॥

अब सात्यकि ने आकर और तीक्ष्ण बाणों से कर्ण पर उग्र निन्यानवें बाण मार कर उसे बींध लिया और फिर सौ बाणों से प्रहार किया ॥२२॥

ततः प्रवीराः पार्थानां सर्वे कर्णमपीडयन् ।
युधामन्युः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥२६॥
उत्तमौजा युयुत्सुश्च यमौ पार्षत एव च ।
चेदिकारूषमत्स्यानां कैकयानां च यद्बलम् ॥२७॥

चेकितानश्च बलवान्धर्मराजश्च सुव्रतः ।
एते रथाश्वद्विरदैः पत्तिभिश्चोग्रविक्रमैः ॥२८॥
परिवार्य रणे कर्णं नानाशस्त्रैरवाकिरन् ।
भाषन्तो वाग्भिरुग्राभिः सर्वे कर्णवधे धृताः ॥२९॥

इसके अनन्तर पाण्डवों के युधामन्यु, शिखण्डी, द्रौपदेय, प्रभद्रक, उत्तमौजा, युयुत्सु, नकुल, सहदेव, धृष्टद्युम्न, चेदि; कारूष मत्स्य और केकयवीर, बलवान् चेकितान, व्रतधारी धर्मराज आदि सारे वीरों ने रथ, अश्व, हाथी और अत्यन्त पराक्रमी पैदल सैनिकों द्वारा रण में कर्ण को घेर लिया और उसे अनेक प्रकार के शस्त्रों से आहत करने लगे। ये अपनी वाणी से बड़े उग्र वचन कहते जा रहे थे और सारे ही कर्ण के मारने की घात में थे ॥२६-२९॥

तां शस्त्रवृष्टिं बहुधा कर्णश्छित्त्वा शितैः शरैः ।
अपोवाहास्त्रवीर्येण द्रुमं भंक्त्वेव मारुतः ॥३०॥

महारथी कर्ण भी अपने तीक्ष्ण बाणों से उस बाण वर्षा को अनेक प्रकार से काट कर अपनी अस्त्र विद्या के प्रभाव से इस तरह निकल गया जैसे वायु, वृक्षों को चीर कर निकल जाता है ॥३०॥

रथिनः समहामात्रान्गजानश्वान्ससादिनः ।
पत्तिव्रातांश्च संक्रुद्धो निघ्नन्कर्णो व्यदृश्यत ॥३१॥

इस समय तो कर्ण, रथी गजारोहियों समेत गज और अश्वारोहियों सहित अश्व तथा पैदल सैनिक समूह को क्रोध के साथ मार २ कर रणभूमि में बिछाते हुए ही दिखाई दे रहे थे ॥३१॥

तद्वध्यमानं पाण्डूनां बलं कर्णास्त्रतेजसा ।
विशस्त्रपत्रदेहासु प्राय आसीत्पराङ्मुखम् ॥३२॥

कर्ण के अस्त्र के तेज से छिन्न-भिन्न किया हुआ पाण्डव दल, शस्त्र, वाहन देह और प्राणों से विहीन होकर अधिकांश में भाग निकला ॥३२॥

अथ कर्णास्त्रमस्त्रेण प्रतिहत्यार्जुनः स्मयन् ।
दिशः खं चैव भूमिं च प्रावृणोच्छरवृष्टिभिः ॥३३॥

इसके बाद, हँसते २ अर्जुन ने कर्ण के अस्त्रों को अपने अस्त्रों से काट कर दिशा, आकाश और भूमि को अपनी बाण वर्षा से आच्छादित कर दिया ॥३३॥

मुसलानीव सम्पेतुः परिघा इव चेषवः ।
शतघ्न्य इव चाप्यन्ये वज्राण्युग्राणि चापरे ॥३४॥

कोई बाण मुसल, कोई परिघ, कोई शतघ्नी और कोई उग्र वज्र की तरह आघात कर रहे थे ॥३४॥

तैर्वध्यमानं तत्सैन्यं सपत्त्यश्वरथद्विपम् ।
निमीलिताक्षमत्यर्थं बभ्राम च ननाद च ॥३५॥

अर्जुन के बाणों से आहत हुई पैदल, अश्व, रथ और हाथियों से युक्त कौरव सेना, आंख मीचकर चक्कर सा काटने और आर्तनाद करने लगी ॥३५॥

निष्कैवल्यं तदा युद्धं प्रापुरश्वनरद्विपाः ।
हन्यमानाः शरैरार्त्तास्तदा भीताः प्रदुद्रुवुः ॥३६॥

अश्व, नर और हाथी, इस युद्ध में इस तरह फंस गए, कि उनको मृत्यु के सिवा कुछ नहीं प्राप्त होता था। ये शरों से आहत हुए दीन होकर भय के साथ रण से भागने लगे ॥३६॥

त्वदीयानां तदा युद्धे संसक्तानां जयैषिणाम् ।
गिरिमस्तं समासाद्य प्रत्यपद्यत भानुमान् ॥३७॥

विजय की अभिलाषा से जब तुम्हारे वीर बहुत घोर युद्ध कर रहे थे, उस समय सूर्य भी अस्ताचल पर पहुंचकर अस्त होने को हो गया ॥३७॥

तमसा च महाराज रजसा च विशेषतः ।
न किञ्चित्प्रत्यपश्याम शुभं वा यदि वाशुभम् ॥३८॥

हे महाराज ! इस समय कुछ तो अप्रकाश और कुछ धूलि उठी हुई थी-इससे अच्छा बुरा कुछ भी दृष्टि गोचर नहीं होता था ॥३८॥

ते त्रस्यन्तो महेष्वासा रात्रियुद्धस्य भारत ।
अपयानं ततश्चक्रुः सहिताः सर्वयोधिभिः ॥३९॥

हे भारत ! ये महाधनुर्धर वीर रात के युद्ध से तंग आये हुए थे-इससे इन्होंने सारे योद्धाओं के साथ अपनी २ सेना को पीछे हटा लिया ॥३६॥

कौरवेष्वपयातेषु तदा राजन्दिनक्षये ।
जयं सुमनसः प्राप्य पार्थाः स्वशिबिरं ययुः ॥४०॥

हे राजन् ! सायंकाल होने पर जब कौरवों की सेना पीछे हट गई-तो अपने को विजयी मानते हुए बड़े हर्ष के साथ, पाण्डव भी अपने शिविर को लौट गए ॥४०॥

वादित्रशब्दैर्विविधैः सिंहनादैः सगर्जितैः ।
परानुपहसन्तश्च स्तुवन्तश्चाच्युतार्जुनौ ॥४१॥

इनके साथ अनेक बाजे बज रहे थे और गर्जना के साथ सिंहनाद करते तथा शत्रुओं को हंसते और श्रीकृष्ण तथा अर्जुन की प्रशंसा करते हुए पाण्डव वीर भी लौट पड़े । ४१॥

कृतेऽवहारे तैर्वीरैः सैनिकाः सर्व एव ते ।
आशीर्वाचः पाण्डवेषु प्रयुञ्जन्त नरेश्वराः ॥४२॥

जब सेनाओं को अपने सेनापतियों ने पीछे हटा लिया-तो पाण्डव पक्ष के सारे सैनिक और राजा लोग पाण्डवों को आशीर्वाद देने लगे ॥४२॥

ततः कृतेऽवहारे च प्रहृष्टास्तत्र पाण्डवाः
निशायां शिबिरं गत्वा न्यवसन्त नरेश्वराः ॥४३॥

सेनाओं के पीछे हट जाने पर पाण्डव लोग बड़े ही प्रसन्न चित्त दिखाई देते थे। ये राजा लोग, रात में अपने शिविरों में जाकर सो रहे ॥४३॥

ततो रक्षःपिशाचाश्च श्वापदाश्चैव सङ्घशः ।
जग्मुरायोधनं घोरं रुद्रस्याक्रीडसन्निभम् ॥४४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि प्रथमे युद्धदिवसे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

अब राक्षस, पिशाच, और जङ्गली जन्तु अपने समूह बना कर रण भूमि में पहुंचे। जिससे युद्ध स्थल, रुद्र का क्रीड़ास्थल सा प्रतीत होने लगा ॥४४॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में प्रथम दिन के युद्ध
वर्णन का तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

इकतीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

स्वेन च्छन्देन नः सर्वानवधीद्व्यक्तमर्जुनः ।
न ह्यस्य समरे मुच्येदन्तकोऽप्याततायिनः ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! यदि अर्जुन इच्छा कर ले-तो एक बार में ही सारे हमारे वीरों को मार बैठे, क्योंकि इस घातक से तो काल भी बचकर नहीं निकल सकता है ॥१॥

पार्थश्चैकोऽहरद्भद्रामेकश्चाग्निमतर्पयत् ।
एकश्चेमां महीं जित्वा चक्रे बलिभृतो नृपान् ॥२॥

अर्जुन ने अकेली ही सुभद्रा का अपहरण कर लिया, खाण्डव वन में अग्नि को तृप्त किया तथा सारे राजाओं को जीतकर उन्हें धर्मराज को कर देने वाला बना दिया ॥२॥

एको निवातकवचानहनद्दिव्यकार्मुकः ।
एकः किरातरूपेण स्थितं शर्वमयोधयत् ॥३॥
एको ह्यरक्षद्भरतानेको भवमतोषयत् ।
तेनैकेन जिताः सर्वे महीपा ह्युग्रतेजसा ॥४॥

इसने अकेले ही किरात रूपधारी भगवान् शंकर से युद्ध किया तथा भरतवंश की रक्षा की और शंकर को सन्तुष्ट किया। इसी अकेले अर्जुन ने महातेजस्वी अनेक राजा अपने उग्र तेज से जीत लिए ॥३-४॥

ने ते निन्द्याः प्रशस्यास्ते यत्ते चक्रुर्ब्रवीहि तत् ।
ततो दुर्योधनः सूत पश्चात्किमकरोत्तदा ॥५॥

ये पाण्डव कोई निन्दनीय व्यक्ति नहीं है, इनकी जितनी प्रशंसा की जावे, उतनी ही थोड़ी है। तुम अब उनके कार्यों को सुनाओ। हे सूत! इसके अनन्तर दुर्योधन ने क्या किया, मुझे यह भी बताओ ॥५॥

सञ्जय उवाच—

हतप्रहतविध्वस्ता विवर्मायुधवाहनाः ।
दीनस्वरा दूयमाना मानिनः शत्रुनिर्जिताः ॥६॥
शिबिरस्थाः पुनर्मन्त्रं मन्त्रयन्ति स्म कौरवाः ।
भग्नदंष्ट्रा हतविषाः पादाक्रान्ता इवोरगाः ॥७॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! क्षत विक्षत और व्याकुल किये हुए, कवच, आयुध और वाहनों से रहित दीन स्वर संयुक्त, पीड़ित, मानी होकर भी शत्रु से पराजित, कौरव अपने शिविर में पहुंचे और वहां फिर मन्त्रणा करने लगे । ये इस समय दांत टूटे हुए विष रहित पैर से कुचले हुए सर्प के सदृश हो रहे थे ॥

तानब्रवीत्ततः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।
करं करेण निष्पीड्य प्रेक्षमाणस्तवात्मजम् ॥८॥

हे राजन् ! क्रोध में भरे हुए सर्प के समान श्वास लेते हुए कर्ण ने तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की ओर देखकर और हाथ मलकर उन वीरों से कहा ॥८॥

यत्तो दृढश्च दक्षश्च धृतिमानर्जुनस्तदा ।
सम्बोधयति चाप्येनं यथाकालमधोक्षजः ॥९॥

हे वीरों ! अर्जुन बड़ा सावधान, दृढ़, और सुचतुर, धैर्यशाली योद्धा है तथा समय २ पर इनको अधोक्षज कृष्ण सुझाते भी रहते हैं ॥९॥

सहसास्त्रविसर्गेण वयं तेनाद्य वञ्चिताः ।
श्वस्त्वहं तस्य सङ्कल्पं सर्वं हन्ता महीपते ॥१०॥

हे महीपते! आज तो उसने अचानक अस्त्र प्रयोग करके हमको पराजित सा कर दिया है, परन्तु कल उसके सारे सङ्कल्पों को मैं नष्ट करके छोड़ूंगा ॥१०॥

एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा सोऽनुजज्ञे नृपोत्तमान् ।
तेऽनुज्ञाता नृपाः सर्वे स्वानि वेश्मानि भेजिरे ॥११॥
सुखोपितास्तां रजनीं हृष्टा युद्धाय निर्ययुः ।

इस तरह की बातें करके कर्ण ने सब राजाओं को जाने की इजाजत दी। वे भी-अच्छी बात है-इतना कहकर चल दिए। वे आज्ञा पाये हुए राजा लोग, अपने २ शिविर में पहुंचे। और रात भर सुख से सोकर प्रातःकाल बड़ी प्रसन्नता के साथ युद्ध के लिए निकल पड़े ॥११॥

तेऽपश्यन्विहितं व्यूहं धर्मराजेन दुर्जयम् ॥१२॥
प्रयत्नात्कुरुमुख्येन बृहस्पत्युशनोमते ।

इन कौरव वीरों ने बृहस्पति और शुक्राचार्य के मत के अनुसार कुरुवंश श्रेष्ठ धर्मराज द्वारा प्रयत्न से बनाये हुए, सेना के व्यूह को देखा ॥१२॥

अथ प्रतोपकर्त्तारं प्रवीरं परवीरहा ॥१३॥
सस्मार वृषभस्कन्धं कर्णं दुर्योधनस्तदा ।

इस व्यूह को देखकर शत्रु वीर नाशक, राजा दुर्योधन ने विरोधी व्यूह के बनाने में समर्थ, अत्यन्त वीर, वृषभ के स्कन्धों

के समान पुष्ट कर्ण का स्मरण किया अर्थात् कर्ण को अपने पास बुलाया ॥१३॥

पुरन्दरसमं युद्धे मरुद्गणसमं बले ॥१४॥

कार्त्तवीर्यसमं वीर्ये कर्णं राज्ञोऽगमन्मनः ।

यह कर्ण, युद्ध में इन्द्र के समान और बल में मरुद्गण के तुल्य तथा पराक्रम में कार्तवीर्य अर्जुन के सदृश था, इसी से सब से प्रथम राजा दुर्योधन का मन कर्ण की ओर गया ॥१४॥

सर्वेषां चैव सैन्यानां कर्णमेवागमन्मनः ।

सूतपुत्रं महेष्वासं बन्धुमात्ययिकेष्विव ॥१५॥

सारी सेना को छोड़कर महाधनुर्धर सूत-पुत्र कर्ण की ओर राजा दुर्योधन का मन इस तरह गया, जैसे विपत्ति काल में अपने बन्धुओं पर मनुष्यों का मन जाता है ॥१५॥

धृतराष्ट्र उवाच—

ततो दुर्योधनः सूत पश्चात्किमकरोत्तदा ।

यद्वोऽगमन्मनो मन्दाः कर्णं वैकर्त्तनं प्रति ॥१६॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सूत ! इसके अनन्तर राजा दुर्योधन ने क्या किया। मेरे मूर्ख पुत्र और तुम्हारा मन जो सूर्य-पुत्र कर्ण की ओर गया उसका क्या परिणाम हुआ ॥१६॥

अप्यपश्यत राधेयं शीतार्त इव भास्करम् ।

कृतेऽवहारे सैन्यानां प्रवृत्ते च रणे पुनः ॥१७॥

कथं वैकर्तनः कर्णस्तत्रायुध्यत सञ्जय ।
कथं च पाण्डवाः सर्वे युयुधुस्तत्र सूतजम् ॥१८॥

जब सेना युद्ध से हट गई और प्रातःकाल फिर युद्ध हुआ-तो सूर्य की ओर शीतातुर मनुष्य की भांति राजा दुर्योधन का मन तो बार २ कर्ण की ओर ही जा रहा था। हे संजय! सूर्य-पुत्र कर्ण ने वहां किस प्रकार युद्ध किया और पाण्डवों ने सूत-पुत्र कर्ण से किस ढंग से युद्ध किया ॥१७-१८॥

कर्णो ह्येको महाबाहुर्हन्यात्पार्थान्ससृञ्जयान् ।
कर्णस्य भुजयोर्वीर्यं शक्रविष्णुसमं युधि ॥१९॥

महाबाहु कर्ण इतने पराक्रमी हैं, कि वे अकेले ही सृञ्जयों के साथ पाण्डवों का नाश कर सकते हैं। युद्ध में कर्ण के बाहुओं का बल इन्द्र और विष्णु के तुल्य है ॥१९॥

तस्य शस्त्राणि घोराणि विक्रमश्च महात्मनः ।
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मत्तो दुर्योधनो नृपः ॥२०॥

इस महावीर कर्ण का महान् पराक्रम और उसके घोर शस्त्रास्त्र हैं। राजा दुर्योधन तो कर्ण के आधार पर ही संग्राम में उन्मत्त हो रहा है ॥२०॥

दुर्योधनं ततो दृष्ट्वा पाण्डवेन भृशार्दितम् ।
पराक्रान्तान्पाण्डुसुतान्दृष्ट्वा चापि महारथः ॥२१॥
कर्णमाश्रित्य संग्रामे मन्दो दुर्योधनः पुनः ।
जेतुमुत्सहते पार्थान्सपुत्रान्सहकेशवान् ॥२२॥

पाण्डु-पुत्र धर्मराज द्वारा अत्यन्त पीड़ित राजा दुर्योधन और अत्यन्त पराक्रम परायण पाण्डवों को देखकर भी महारथी कर्ण कुछ नहीं कर सका, परन्तु मूर्ख दुर्योधन फिर भी रण में कर्ण का आश्रय मानकर श्रीकृष्ण और पुत्रों सहित पाण्डवों के जीतने की अभिलाषा कर रहा है ॥२१-२२॥

अहो बत महद्दुःखं यत्र पाण्डुसुतान्रणे ।
नातरद्रभसः कर्णो दैवं नूनं परायणम् ॥२३॥
अहो द्यूतस्य निष्ठेयं घोरा सम्प्रति वर्तते ।

हे सञ्जय ! यह बड़े कष्ट और दुःख की बात है, जो रण में पाण्डु-पुत्रों को बड़ा वेगशाली कर्ण भी नहीं जीत सका-इसमें मुझे तो दैव का हाथ ही दिखाई पड़ता है। बड़े दुःख के साथ कहना पड़ता है, कि यह सब कुछ घोर दशा द्यूत के कारण उपस्थित हुई है ॥२३॥

अहो तीव्राणि दुःखानि दुर्योधनकृतान्यहम् ॥२४॥
सोढा घोराणि बहुशः शल्यभूतानि सञ्जय ।

हे सञ्जय ! बड़े तीव्र, दुर्योधन द्वारा उत्पादित बहुत से घोर कांटे की भांति खटकने वाले, दुःख मुझे सहने पड़ेंगे ॥२४॥

सौबलं च तदा तात नीतिमानिति मन्यते ॥२५॥
कर्णश्च रभसो नित्यं राजा तं चाप्यनुव्रतः ।

हे तात ! वेगधारी कर्ण, शकुनि को उस समय बड़ा नीतिमान् समझते थे और राजा दुर्योधन भी शकुनि तथा कर्ण के ही पीछे २ चलता था ॥२५॥

यदेवं वर्तमानेषु महायुद्धेषु सञ्जय ॥२६॥
अश्रौषं निहतान्पुत्रान्नित्यमेव विनिर्जितान् ।

हे सञ्जय ! अब जब महायुद्ध चल पड़ा तो मैं नित्य किसी पुत्र की मृत्यु और किसी को जीता हुआ सुन रहा हूं ॥२६॥

न पाण्डवानां समरे कश्चिदस्ति निवारकः ॥२७॥
स्त्रीमध्यमिव गाहन्ते दैवं तु बलवत्तरम् ।

कोई भी वीर ऐसा दिखाई नहीं देता जो पाण्डवों को युद्ध में रोक सके । वे रण में स्त्रियों के मध्य में घुसने की तरह घुस जाते हैं ॥२७॥

सञ्जय उवाच—

राजन्पूर्वनिमित्तानि धर्मिष्ठानि विचिन्तय ॥२८॥
अतिक्रान्तं हि यत्कार्यं पश्चाच्चिन्तयते नरः ।
तच्चास्य न भवेत्कार्यं चिन्तया च विनश्यति ॥२९॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! तुम अपने पूर्व में किये हुए धर्मों अधर्मों के कर्मों का तो विचार करो कि तुमने क्या २ पाण्डवों के साथ किया है । मनुष्य, काम के समय के निकल जाने पर उस पर विचार करता है । इस चिन्ता से उसके कोई कार्य बनते नहीं हैं प्रत्युत चिन्ता से तो कार्य बिगड़ जाते हैं ॥२८-२९॥

तदिदं तव कार्यं तु दूरप्राप्तं विजानता ।
न कृतं यत्त्वया पूर्वं प्राप्ताप्राप्तविचारणम् ॥३०॥

तुम सब कुछ समझते हो अब तुम्हारा कार्य का समय बहुत दूर निकल गया, क्योंकि तुमने अपने कार्य और अकार्य का समय पर विचार नहीं किया ॥३०॥

उक्तोऽसि बहुधा राजन्मा युध्यस्वेति पाण्डवैः ।
गृह्णीषे न च तन्मोहाद्वचनं च विशाम्पते ॥३१॥

हे राजन ! तुमसे बार २ कहा गया कि तुम पाण्डवों के साथ युद्ध की इच्छा न करो । हे विशाम्पते ! तुमने अपने मोह से उस समय किसी के वचन को नहीं सुना ॥३१॥

त्वया पापानि घोराणि समाचीर्णानि पाण्डुषु ।
त्वत्कृते वर्तते घोरः पार्थिवानां जनक्षयः ॥३२॥

तुमने पाण्डवों के साथ बड़े घोर पाप किये हैं तुम्हारे कर्तव्यों का ही यह परिणाम है, जो राजाओंका यह विनाश हो रहा है ॥३२॥

तत्त्विदानीमतिक्रान्तं मा शुचो भरतर्षभ ।
शृणु सर्वं यथा वृत्तं घोरं वैशसमुच्यते ॥३३॥

हे भरतर्षभ ! अब वह समय निकल गया-तुम शोक क्यों कर रहे हो । अब मैं तुमको उस घोर विनाश को सुनाता हूं । तुम ध्यान से सुनो ॥३३॥

प्रभातायां रजन्यां तु कर्णो राजानमभ्ययात् ।
समेत्य च महाबाहुर्दुर्योधनमथाब्रवीत् ॥३४॥

जब रात समाप्त हुई-तो अङ्गराज महाबाहु, कर्ण, राजा दुर्योधन के पास पहुंचा और उससे कहने लगा ॥३४॥

कर्ण उवाच—

अद्य राजन्समेष्यामि पाण्डवेन यशस्विना।
निहनिष्यामि तं वीरं स वा मां निहनिष्यति ॥३५॥

कर्ण बोले—हे राजन् ! आज मैं यशस्वी पाण्डु-पुत्र अर्जुन से भिड़ जाऊंगा। यातो में उस वीर को मार लूंगा या वह मुझे मार लेगा ॥३५॥

बहुत्वान्मम कार्याणां तथा पार्थस्य भारत।
नाभूत्समागमो राजन्मम चैवार्जुनस्य च ॥३६॥

हे भारत ! मुझे और अर्जुन को बहुत कुछ पृथक् कार्य करने थे-इसीसे आज तक अर्जुन का और मेरा समागम नहीं हो सका ॥

इदं तु मे यथाप्रज्ञं शृणु वाक्यं विशाम्पते।
अनिहत्य रणे पार्थं नाहमेष्यामि भारत ॥३७॥

हे विशाम्पते ! अब तुम मेरी बुद्धि के अनुसार कहे हुए वचन को सुनलो-कि आज मैं रण में अर्जुन को मारे बिना लौटकर नहीं आऊंगा ॥२७॥

हतप्रवीरे सैन्येऽस्मिन्मयि चावस्थिते युधि।
अभियास्यति मां पार्थः शक्रशक्तिविनाकृतम् ॥३८॥

जब मैं उनकी सेना के वीरों को मारूंगा और युद्ध स्थल में डटा दिखाई दूंगा-तो मुझे इन्द्र की दी हुई शक्ति से रहित जानकर अर्जुन मुझ से लड़ने आवेगा ॥३८॥

ततः श्रेयस्करं यच्च तन्निबोध जनेश्वर ।
आयुधानां च मे वीर्यं दिव्यानामर्जुनस्य च ॥३६॥

हे जनेश्वर ! उस समय तुम मेरे शस्त्रों के उत्तम पराक्रम और अर्जुन के दिव्य शस्त्रों के पराक्रम के भेद का पता लगा सकोगे ॥३६॥

कार्यस्य महतो भेदे लाघवे दूरपातने ।
सौष्ठवे चास्त्रपाते च सव्यसाची न मत्समः ॥४०॥

हे राजन् ! महान् लक्ष्य के भेदने, शस्त्रों के शीघ्र चलाने-दूर तक बाण फेंकने, उत्तमता से प्रयोग करने तथा शस्त्र के मारने में मेरी बराबर अर्जुन नहीं है, इसका तुमको पता लग जावेगा ॥४०॥

प्राणे शौर्येऽथ विज्ञाने विक्रमे चापि भारत ।
निमित्तज्ञानयोगे च सव्यसाची न मत्समः ॥४१॥

हे भारत ! प्राण वायु की शक्ति, पराक्रम, विज्ञान, युद्ध विद्या और शकुन आदि के ज्ञान में भी अर्जुन मेरे सदृश नहीं निकलेगा ॥४१॥

सर्वायुधमहामात्रं विजयं नाम तद्धनुः ।
इन्द्रार्थं प्रियकामेन निर्मितं विश्वकर्मणा ॥४२॥

येन दैत्यगणान्राजञ्जितवान्वै शतक्रतुः ।
यस्य घोषेण दैत्यानां व्यामुह्यन्त दिशो दश ॥४३॥

तद्भार्गवाय प्रायच्छच्छक्रः परमसम्मतम् ।
तद्दिव्यं भार्गवो मह्यमदद्धनुरुत्तमम् ॥४४॥
तेन योत्स्ये महाबाहुमर्जुनं जयतां वरम् ।
यथेन्द्रः समरे सर्वान्दैतेयान्वै समागतान् ॥४५॥

हे भरतर्षभ ! सारे आयुधों से विशाल, विजय नामक धनुष, इन्द्र के प्रिय करने के निमित्त विश्वकर्मा ने बनाया था। इसी धनुष से शतक्रतु इन्द्र ने दैत्य गणों को जीता था तथा जिसके घोष से ही दैत्य लोग दशों दिशाओं में चौकड़ी चूक हो गए। इस परममाननीय विजय धनुष को भृगुवंशोद्भव परशुराम के लिए इन्द्र ने दिया था। उसी दिव्य उत्तम धनुष को परशुराम ने मुझे प्रदान कर दिया है। मैं उसी धनुष से विजयशील अर्जुन से इस तरह युद्ध करूंगा-जैसे-इन्द्र ने रण में आये हुए सारे दैत्यों से युद्ध किया था ॥४२-४५॥

धनुर्घोरं रामदत्तं गाण्डीवात्तद्विशिष्यते ।
त्रिस्सप्तकृत्वः पृथिवी धनुषा येन निर्जिता ॥४६॥

यह विजय नामक धनुप मुझे परशुराम ने दिया है, जो गाण्डीव धनुष से भी श्रेष्ठ है। इसी धनुष से इक्कीस वार पृथिवी को उसने जीत लिया था ॥४६॥

धनुषो ह्यस्य कर्माणि दिव्यानि प्राह भार्गवः ।
तद्रामो ह्यददन्मह्यं तेन योत्स्यामि पाण्डवम् ॥४७॥

भृगुवंशोत्पन्न परशुराम बार २ इस धनुष की प्रशंसा करते थे। उसी धनुष को परशुराम ने मुझे दे दिया है। आज मैं उसी धनुष से अर्जुन से लड़ूंगा ॥४७॥

अद्य दुर्योधनाहं त्वां नन्दयिष्ये सबान्धवम् ।
निहत्य समरे वीरमर्जुनं जयतां वरम् ॥४८॥

हे दुर्योधन ! आज मैं विजयशील वीर अर्जुन को रण में मार कर तुझे बन्धु-बान्धवों सहित आनन्दित करूंगा ॥४८॥

सपर्वतवनद्वीपा हतवीरा ससागरा ।
पुत्रपौत्रप्रतिष्ठा ते भविष्यत्यद्य पार्थिव ॥४९॥

हे पृथिवीपते ! इस वीर अर्जुन के मार लेने पर समुद्र, पर्वत, वन और द्वीपों के सहित सारी पृथिवी पर तुम्हारी ही क्या ? तुम्हारे पुत्र और पौत्रों तक की सदा के लिए स्थिति हो जावेगी ॥४९॥

नाशक्यं विद्यते मेऽद्य त्वत्प्रियार्थं विशेषतः ।
सम्यग्धर्मानुरक्तस्य सिद्धिरात्मवतो यथा ॥५०॥

मुझे आज कुछ भी अशक्य नहीं है और तुम्हारे प्रिय के लिए मैं क्या कुछ करने को तय्यार नहीं हूं । अच्छी तरह धर्म के अनुष्ठान करने वाले जितेन्द्रिय पुरुष को जैसे सिद्धि प्राप्त होती है-उसी तरह मुझे सिद्धि प्राप्त होने वाली है ॥५०॥

नहि मां समरे सोढुं संशक्तोऽग्निं तरुर्यथा ।
अवश्यं तु मया वाच्यं येन हीनोऽस्मि फाल्गुनात् ॥

हे राजन् ! वृक्ष जिस तरह अग्निकी मार को नहीं सह सकता-उसी तरह मुझे युद्ध में कोई नहीं जीत सकता है। मैं तुमको यह भी बता देना चाहता हूं मैं जिन बातों में अर्जुन से कम हूं ॥५१॥

ज्या तस्य धनुषो दिव्या तथाक्षय्ये महेषुधी ।
सारथिस्तस्य गोविन्दो मम तादृङ् न विद्यते ॥५२॥

अर्जुन के धनुष को डोरी दिव्य है और उसके पास उसके तूणीर भी अक्षय हैं। उसका सारथि कृष्ण बहुत उत्तम है-मेरे पास ऐसा सारथि नहीं है ॥५२॥

तस्य दिव्यं धनुः श्रेष्ठं गाण्डीवमजितं युधि ।
विजयं च महद्दिव्यं ममापि धनुरुत्तमम् ॥५३॥

उसके पास युद्ध में पराजित नहीं होने वाला गाण्डीव दिव्य धनुप है और मेरे पास भी विजय नाम का दिव्य उत्तम धनुप है ॥५३॥

तत्राहमधिकः पार्थाद्धनुषा तेन पार्थिव ।
येन चाप्यधिको वीरः पाण्डवस्तन्निबोध मे ॥५४॥

हे नृपते ! इस धनुष के कारण मैं अर्जुन से अधिक हूं जिस बात में वह अधिक है-वह भी सुनो ॥५४॥

रश्मिग्राहश्च दाशार्हः सर्वलोकनमस्कृतः ।
अग्निदत्तश्च वै दिव्यो रथः काञ्चनभूषणः ॥५५॥
अच्छेद्यः सर्वतो वीर वाजिनश्च मनोजवाः ।
ध्वजश्च दिव्यो द्युतिमान्वानरो विस्मयङ्करः ॥५६॥

कृष्णश्च स्रष्टा जगतो रथं तमभिरक्षति ।
एतैर्द्रव्यैरहं हीनो योद्धुमिच्छामि पाण्डवम् ॥५७॥

दशार्ह वंश श्रेष्ठ सम्पूर्ण जगत्पूज्य श्री कृष्ण उनके सारथि हैं। सुवर्ण निर्मित अग्नि का दिया हुवा उनका दिव्य रथ है। हे वीर! वह रथ सब ओर से अछेद्य है, तथा अश्व भी मन के तुल्य वेग शाली हैं। उसकी ध्वजा में आश्चर्यकारी कपि है और जगत् का संचालक कृष्ण उसके रथ का रक्षक बना हुआ है। मैं इन युद्ध की सामग्री से रहित हुआ भी उससे युद्ध की अभिलाषा कर रहा हूं ॥५५-५७॥

अयं तु सदृशः शौरेः शल्यः समितिशोभनः ।
सारथ्यं यदि मे कुर्याद् ध्रुवस्ते विजयो भवेत् ॥५८॥

श्री कृष्ण के समान पराक्रमी यह युद्ध में शोभित होने वाले राजा शल्य हैं। यदि ये मेरे सारथि बन जावें-तो निश्चय तेरा विजय हो सकता है ॥५८॥

तस्य मे सारथिः शल्यो भवत्वसुकरः परैः ।
नाराचान्गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु मे ॥५९॥

शत्रु के जीतने में नहीं आने वाला राजा शल्य मेरा सारथि होना चाहिए तथा मेरे गृद्ध पक्षी के पंखों से सुशोभित बाणों को बड़ी गाड़ी में साथ २ ले चलें ॥५९॥

रथाश्च मुख्या राजेन्द्र युक्ता वाजिभिरुत्तमैः ।
आयान्तु पश्चात्सततं मामेव भरतर्षभ ॥६०॥

एवमभ्यधिकः पार्थाद्भविष्यामि गुणैरहम् ।

शल्योऽप्यभ्यधिकः कृष्णादर्जुनादपि चाप्यहम् ॥६१॥

हे भरतर्षभ ! राजेन्द्र ! मुख्य २ रथी, उत्तम २ अश्वों के साथ सदा मेरे पीछे चले आवें । इन सब बातों से मैं अर्जुन से अधिक गुणों में हो जाऊंगा । राजा शल्य श्री कृष्ण से अधिक है और अर्जुन से मैं अधिक हो हूं ॥६०-६१॥

यथाश्वहृदयं वेद दाशार्हः परवीरहा ।

तथा शल्यो विजानीते हयज्ञानं महारथः ॥६२॥

जिस तरह अश्वों के हृदय को दशार्ह वंश श्रेष्ठ श्री कृष्ण जानते हैं, उसी तरह महारथी शल्य अश्व ज्ञान में कुशल हैं ॥६२॥

बाहुवीर्ये समो नास्ति मद्रराजस्य कश्चन ।

तथास्त्रे मत्समो नास्ति कश्चिदेव धनुर्धरः ॥६३॥

तथा शल्यसमो नास्ति हयज्ञाने हि कश्चन ।

सोऽयमभ्यधिकः कृष्णाद्भविष्यति रथो मम ॥६४॥

मद्रराज शल्य के समान कोई बाहु युद्ध में नहीं है तथा अस्त्र सञ्चालन में युद्ध धनुर्धर के तुल्य कोई नहीं है । जब राजा शल्य के तुल्य कोई भी अश्वों के सञ्चालन का ज्ञान नहीं रखता है, तो फिर मेरा रथ कृष्ण के रथ से स्वयं उत्तम हो जावेगा ॥६३-६४॥

एवं कृते रथस्थोऽहं गुणैरभ्यधिकोऽर्जुनात् ।

भवे युधि जयेयं च फाल्गुनं कुरुसत्तम ॥६५॥

हे कुरुसत्तम ! इस प्रकार जब मैं अर्जुन से गुणों में अधिक होकर रथ में स्थित होऊंगा तो मैं संसार के प्रधान इस युद्ध में अवश्य अर्जुन को जीत लूंगा ॥६५॥

समुद्यातुं न शक्ष्यन्ति देवा अपि सवासवाः।
एतत्कृतं महाराज त्वयेच्छामि परन्तप ॥६६॥

हे परन्तप! महाराज! मेरे सन्मुख इन्द्र सहित देव गण भी स्थित होने में समर्थ नहीं है। मैं तो इन पूर्वोक्त बातों को तुम से पूरी करवाना चाहता हूँ ॥६६॥

क्रियतामेष कामो मे मा वः कालोऽत्यगादयम्।
एवं कृतेकृतं सह्यं सर्वकामैर्भविष्यति ॥६७॥

अब तुम मेरी इस इच्छा को पूर्ण करो-और इस में समय का यापन न करो इतना करदेने पर सारा युद्ध सह्य होगा और सारी कामना पूरी हो जावेगी ॥६७॥

ततो द्रक्ष्यसि संग्रामे यत्करिष्यामि भारत।
सर्वथा पाण्डवान्सङ्ख्ये विजेष्ये वै समागतान् ॥६८॥

हे भारत! इसके बाद तुम देख सकोगे, कि मैं युद्ध में क्या कर दिखाऊंगा। में अब सामने आते ही पाण्डवों को एक दम रण में जीत लूंगा ॥६८॥

न हि मे समरे शक्ताः समुद्यातुं सुरासुराः।
किमु पाण्डुसुता राजन्रणे मानुषयोनयः ॥६९॥

हे राजन्! मेरे सन्मुख युद्ध में आने को सुर या असुर कोई भी समर्थ नहीं है, फिर मनुष योनि में उत्पन्न पाण्डु पुत्रों की तो क्या चलाई है ॥६९॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्तस्तव सुतः कर्णेनाहवशोभिना ।
सम्पूज्य सम्प्रहृष्टात्मा ततो राधेयमब्रवीत् ॥७०॥

सञ्जय बोले हे राजन् ! युद्ध में सुशोभित होने वाले कर्ण ने जब इतना कहा तो तुम्हारा पुत्र दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ । उसने राधा-पुत्र कर्ण का बहुत आदर सत्कार करके उससे कहा ॥७०॥

दुर्योधन उवाच—

एवमेतत्करिष्यामि यथा त्वं कर्ण मन्यसे ।
सोपासङ्गा रथाः साश्वाः स्वनुयास्यन्ति संयुगे ॥७१॥

दुर्योधन बोले—हे कर्ण ! जैसा तुम कह रहे हो-मैं वैसा ही करवा दूंगा । तूणीर और अश्वों से सजे हुए रथ, तुम्हारे साथ २ रण में चलते रहेंगे ॥७१॥

नाराचान्गार्ध्रपत्रांश्च शकटानि वहन्तु ते ।
अनुयास्याम कर्ण त्वां वयं सर्वे च पार्थिवाः ॥७२॥

गृद्ध पक्षी के पङ्खों से सुशोभित नाराच नामक बाण गाड़ियों में साथ २ रहेंगे । हे कर्ण ! हम सब राजा लोग, तुम्हारे पीछे २ चलेंगे ॥७२॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा महाराज तव पुत्रः प्रतापवान् ।
अभिगम्याब्रवीद्राजा मद्रराजमिदं वचः ॥७३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कर्णदुर्योधनसंवादे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! इतना कहकर तुम्हारा पुत्र प्रतापी दुर्योधन, राजा शल्य के समीप जाकर उससे यह वचन कहने लगा ॥७३॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और दुर्योधन के सम्वाद का इकतीसवां अध्याय पूरा हुआ ।



बत्तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

पुत्रस्तव महाराज मद्रराजं महारथम् ।
विनयेनोपसङ्क्रम्य प्रणयाद्वाक्यमब्रवीत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज ! तुम्हारा पुत्र दुर्योधन महारथी मद्रराज के पास पहुंचा और विनय के साथ मिलकर उनसे प्रेमपूर्वक यह वचन कहा ॥१॥

सत्यव्रत महाभाग द्विषतां तापवर्धन ।
मद्रेश्वर रणे शूर परसैन्यभयङ्कर ॥२॥

हे महाराज ! आप सत्य-प्रतिज्ञाधारी और शत्रुओं के ताप बढ़ाने वाले हैं । हे मद्रेश्वर ! तुम्हारे समान रण में शूरवीर और शत्रु सेना को भय दायी अन्य नहीं है ॥२॥

श्रुतवानसि कर्णस्य ब्रुवतो वदतां वर ।
यथा नृपतिसिंहानां मध्ये त्वां वरये स्वयम् ॥३॥

हे वाग्मिन्! तुमने जो कुछ कर्ण ने कहा—वह सुन लिया। अब मैं इन सारे वीर राजाओं के मध्य में स्वयं तुम से प्रार्थना करता हूं ॥३॥

तस्त्वामप्रतिवीर्याद्य शत्रुपक्षक्षयावह।
मद्रेश्वर प्रयाचेऽहं शिरसा विनयेन च ॥४॥

हे मद्रेश्वर! तुम्हारे पराक्रम की समानता कोई नहीं कर सकता है। तुम शत्रु पक्ष के नाश करने में बड़े कुशल हो। आज मैं शिर झुकाकर तुम से विनय-पूर्वक याचना करता हूं ॥४॥

तस्मात्पार्थविनाशार्थं हितार्थं मम चैव हि।
सारथ्यं रथिनां श्रेष्ठ प्रणयात्कर्तुमर्हसि ॥५॥

हे रथियों में श्रेष्ठ, अब तुम अर्जुन के नाश और मेरे हित के निमित्त कर्ण का सारथि बनना स्वीकार करलो। यह सब कुछ मेरे प्रणय के निमित्त समझो ॥५॥

त्वयि यन्तरि राधेयो विद्विषो मे विजेष्यते।
अभीषूणां हि कर्णस्य ग्रहीतान्यो न विद्यते ॥६॥
ऋते हि त्वां महाभाग वासुदेवसमं युधि।
स पाहि सर्वथा कर्णं यथा ब्रह्मा महेश्वरम् ॥७॥

जब तुम महारथी कर्ण के सारथि बन जाओगे-तो राधा-पुत्र कर्ण अवश्य मेरे शत्रुओं को जीत लेगा। कर्ण के अश्वों की रास पकड़ने वाला दूसरा कोई तुम्हारे सदृश उत्तम सारथि नहीं है। हे महाभाग! तुम ही युद्ध में वसुदेव-पुत्र श्री कृष्ण के सदृश हो।

अब तुम कर्ण की इस तरह रक्षा करो-जैसे ब्रह्मा महेश्वर की करते हैं ॥६-७॥

यथा च सर्वथापत्सु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा मद्रेश्वराद्य त्वं राधेयं प्रतिपालय ॥८॥

हे मद्रेश्वर ! वृष्णि वंश श्रेष्ठ, श्री कृष्ण जैसे सारी आपत्तियों में पाण्डु-पुत्र अर्जुन की रक्षा करते हैं-उसी तरह तुम राधापुत्र कर्ण की रक्षा करो ॥८॥

भीष्मो द्रोणः कृपः कर्णो भवान्भोजश्च वीर्यवान् ।
शकुनिः सौबलो द्रौणिरहमेव च नो बलम् ॥६॥
एवमेष कृतो भागो नवधा पृथिवीपते ।
न च भागोऽत्र भीष्मस्य द्रोणस्य च महात्मनः ॥१०॥
ताभ्यामतीत्य तौ भागौ निहता मम शत्रवः ।
वृद्धौ हि तौ महेष्वासौ छलेन निहतौ युधि ॥११॥

हे पृथिवीपते महाबली भीष्म द्रोण, कृप, कर्ण, आप (शल्य) भोजराज कृत वर्मा सुबल-पुत्र, शकुनि, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और मैं दुर्योधन-इस प्रकार हमने पाण्डव सेना के मारने के नौ भाग किये थे । अब महात्मा द्रोण और भीष्म का भाग नहीं रहा उन्हों ने अपनी (अपने भाग में आये हुए) सेना से मेरे शत्रुओं का नाश उड़ा दिया । वे दोनों महाधनुर्धर वृद्ध हो चुके थे-तो भी पाण्डवों ने उन्हें छल से मारा है ॥६-११॥

कृत्वा न सुकरं कर्म गतौ स्वर्गमितोऽनघ ।
तथान्ये पुरुषव्याघ्राः परैर्विनिहता युधि ॥१२॥

हे अनघ ! वे रणाङ्गण में घड़ा जुटकर युद्ध करके स्वर्ग चले गए। उसी तरह कुछ अन्य पुरुष श्रेष्ठ हमारे वीर भी पाण्डवों ने मार गिराए हैं ॥१२॥

असमदीयाश्च बहवः स्वर्गायोपगता रणे।
त्यक्त्वा प्राणान्यथाशक्ति चेष्टां कृत्वा च पुष्कलाम् ॥

हे मद्रेश्वर ! हमारे पक्ष के बहुत से वीर, अपनी शक्ति से भी अधिक लड़कर और अत्यन्त प्रयत्न करके तथा प्राण त्यागकर स्वर्ग को चले गए हैं ॥१३॥

तदिदं हतभूयिष्ठं बलं मम नराधिप।
पूर्वमप्यल्पकैः पार्थैर्हतं किमुत साम्प्रतम् ॥१४॥

हे नराधिप, अब हमारी सेना का बहुत कुछ भाग मारा गया है। पाण्डवों की सेना पूर्व में थोड़ी थी और फिर भी उन्होंने हमारी सेना मार कर अपनी की संख्या अधिक करली है। अब उनका हमको नष्ट कर देना कौन बड़ी बात है ॥१४॥

बलवन्तो महात्मानः कौन्तेयाः सत्यविक्रमाः।
बलं शेषं न हन्युर्मे यथा तत्कुरु पार्थिव ॥१५॥

कुन्ती पुत्र, पाण्डव, बलवान महावीर और सत्य पराक्रमी हैं हे पार्थिव ! अब वे इस बची हुई सेना का नाश न कर सकें-तुम वही करो ॥१५॥

हतवीरमिदं सैन्यं पाण्डवैः समरे विभो।
कर्णो ह्येको महाबाहुरस्मत्प्रियहिते रतः ॥१६॥

भवांश्च पुरुषव्याघ्र सर्वलोकमहारथः ।
शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धुमिच्छति संयुगे ॥१७॥

हे विभो ! इस रण में पाण्डवों ने हमारी सेना के वीर चुन चुन कर मार लिए हैं । अब तो एक महा बाहु कर्ण ही हमारे हित में तत्पर होकर नेता बनने को तय्यार हों ! हे पुरुषव्याघ्र ! शल्य ! आप भी सारे योद्धाओं में श्रेष्ठ महारथी हैं । आप यह जान रहे हैं कि आज कर्ण अर्जुन से रण में लड़ने जाना चाहते हैं ॥१६-१७॥

तस्मिञ्जयाशा विपुला मद्रराज नराधिप ।
तस्याभीषुग्रहवरो नान्योऽस्ति भुवि कश्चन ॥१८॥

हे मद्रराज ! नराधिप ! हमको कर्ण के आश्रय से विजयी हो जाने की बड़ी आशा है, परन्तु उनके अश्वों की रास पकड़ने वाला पृथिवी पर तुम्हारे सदृश अन्य कोई नहीं है ॥१८॥

पार्थस्य समरे कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि कर्णस्य रथेऽभीषुग्रहो भव ॥१९॥

हे राजन् ! जिस प्रकार अर्जुन के अश्वों की श्री कृष्ण ने रास पकड़ रखी है, उसी तरह तुम भी रण में कर्ण के रथ की रास पकड़ने को स्वीकार करलो ॥१९॥

तेन युक्तो रणे पार्थो रक्ष्यमाणश्च पार्थिव ।
यानि कर्माणि कुरुते प्रत्यक्षाणि तथैव तत् ॥२०॥

हे पार्थिव ! श्री कृष्ण से युक्त और सुरक्षित होकर जिन कामों को अर्जुन कर डालता है-वह सब तुम्हारा प्रत्यक्ष है ॥२०॥

पूर्वं न समरे ह्येवमवधीदर्जुनो रिपून् ।
इदानीं विक्रमो ह्यस्य कृष्णेन सहितस्य च ॥२१॥

पूर्व काल में अर्जुन कभी इस तरह शत्रुओं को नहीं मारता देखा गया है। अब तो यह पराक्रम करके दिखा रहा है-वह कृष्ण के सारथि होने का ही फल है ॥२१॥

कृष्णेन सहितः पार्थो धार्त्तराष्ट्रीं महाचमूम् ।
अहन्यहनि मद्रेश द्रावयन्दृश्यते युधि ॥२२॥

हे मद्रेश ! कृष्ण की सहायता से ही अर्जुन, इस विशाल कौरव सेना को प्रति दिन युद्ध में नष्ट करता दिखाई दे रहा है ॥२२॥

भागोऽवशिष्टः कर्णस्य तव चैव महाद्युते ।
तं भागं सह कर्णेन युगपन्नाशयाद्य हि ॥२३॥

हे महाद्युते ! अब तो तुम्हारा और कर्ण का भाग शेष है। पाण्डव सेना मारने को जो तुम्हारे भाग में आई है-आज कर्ण के साथ होकर उस भाग को नष्ट कर डालो ॥२३॥

अरुणेन यथा सार्द्धं तमः सूर्यो व्यपोहति ।
तथा कर्णेन सहितो जहि पार्थं महाहवे ॥२४॥

अरुण को साथ लेकर जैसे—सूर्य, अन्धकार का नाश कर देता है। उसी तरह उस महा रण में कर्ण को साथ लेकर तुम अर्जुन को मार गिराओ ॥२४॥

उद्यन्तौ च यथा सूर्यौ बालसूर्यसमप्रभौ ।
कर्णशल्यौ रणे दृष्ट्वा विद्रवन्तु महारथाः ॥२५॥

बाल सूर्य के समान कान्ति धारी तुम दोनों सूर्य के सदृश जब उदय को प्राप्त होओगे-तो तब कर्ण और शल्य को देखकर रण में सारे पाण्डव महारथी भाग निकलेंगे ॥२५॥

सूर्यारुणौ यथा दृष्ट्वा तमो नश्यति मारिष ।
तथा नश्यन्तु कौन्तेयाः सपञ्चालाः ससृञ्जयाः ॥२६॥

हे आर्य ! जिस तरह सूर्य और अरुण को देखकर अन्धकार का नाश हो जाता है, उसी तरह पञ्चाल और सृञ्जयों के साथ पाण्डव सेना नष्ट हो जावेगी ॥२६॥

रथिनां प्रवरः कर्णो यन्तॄणां प्रवरो भवान् ।
संयोगो युवयोर्लोके नाभून्न च भविष्यति ॥२७॥

हे महेश्वर ! रथियों में श्रेष्ठ आप हो जावेंगे । तुम दोनों का सा संयोग न तो लोक में कभी हुआ और न हो सकेगा ॥२७॥

यथा सर्वास्ववस्थासु वार्ष्णेयः पाति पाण्डवम् ।
तथा भवान्परित्रातु कर्णं वैकर्त्तनं रणे ॥२८॥

जिस तरह सारी अवस्थाओं में वृष्णि वीर कृष्ण पाण्डु पुत्र अर्जुन की रक्षा करते हैं, उसी तरह आप भी रण में सूर्य-पुत्र कर्ण की रक्षा करें ॥२८॥

त्वया सारथिना ह्येष अप्रधृष्यो भविष्यति ।
देवतानामपि रणे सशक्राणां महीपते ।
किं पुनः पाण्डवेयानां मा विशङ्कीर्वचो मम ॥२९॥

हे महीपते ! यदि तुम इसके सारथि बन गये-तो यह इन्द्र सहित देवों का भी अजेय हो जावेगा-फिर पाण्डवों की तो क्या चलाई है। तुम मेरे वचन में संदेह न करो ॥२६॥

सञ्जय उवाच—

दुर्योधनवचः श्रुत्वा शल्यः क्रोधसमन्वितः।
त्रिशिखां भ्रुकुटिं कृत्वा धुन्वन्हस्तौ पुनः पुनः ॥३०॥
क्रोधरक्ते महानेत्रे परिवृत्य महाभुजः।
कुलैश्वर्यश्रुतबलैर्दृप्तः शल्योऽब्रवीदिदम् ॥३१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! राजा दुर्योधन के वचन सुन कर महाभुजधारी शल्य, क्रोध से युक्त होकर मस्तक में तीन भिवली डालकर और बार २ अपने हाथों को मलकर यह वचन बोला। इसकी बड़ी आंखें क्रोध से लाल हुई चढ़ी हुई थी, क्योंकि इसे भी तो अपने कुल, ऐश्वर्य, शास्त्र और वीरता का अभिमान था ॥३०-३१॥

शल्य उवाच—

अवमन्यसि गान्धारे ध्रुवं च परिशङ्कसे।
यन्मां ब्रवीषि विश्रब्धं सारथ्यं क्रियतामिति ॥३२॥

शल्य कहने लगे—हे दुर्योधन ! तुम हमारा अपमान् कर रहे हो-और मेरे आचरण पर अविश्वास करते हो-जो निःशङ्क होकर कह रहे हो-कि तुम सारथि बन जाओ ॥३२॥

अस्मत्तोऽभ्यधिकं कर्णं मन्यमानः प्रशंससि।
न चाहं युधि राधेयं गणये तुल्यमात्मनः ॥३३॥

तुम इनसे अधिक कर्ण को मानकर उसकी प्रशंसा करते हो, परन्तु मैं तो अपने बराबर युद्ध में कर्ण को गिनता ही नहीं हूं ॥२३॥

आदिश्यतामभ्यधिको ममांशः पृथिवीपते ।
तमहं समरे जित्वा गमिष्यामि यथागतम् ॥२४॥

हे पृथिवीपते ! तुम अधिक से अधिक पाण्डव सेना का भाग मेरे हिस्से में करदो-मैं उसे रण में मारकूट कर अपने घर जैसे आया वैसे ही चला जाऊंगा ॥२४॥

अथवाप्येक एवाहं योत्स्यामि कुरुनन्दन ।
पश्य वीर्यं ममाद्य त्वं संग्रामे दहतो रिपून् ॥२५॥

हे कुरुनन्दन ! चलो-इन बातों को जाने दो-अकेला ही पाण्डवों से लड़ लूंगा । जब मैं आज की तरह शत्रुओं का नाश करूं-तब तुम मेरे पराक्रम को खड़े २ देखते रहना ॥२५॥

यथाभिमानं कौरव्य निधाय हृदये पुमान् ।
अस्मद्विधः प्रवर्त्तेत मा मां त्वमभिशङ्किथाः ॥२६॥
युधि चाऽप्यवमानो मे न कर्त्तव्यः कथञ्चन ।

हे कौरव्य ! हमारे सदृश पुरुष कुछ अभिमान रखकर ही युद्ध में प्रवृत्त होते हैं- तुम को हमारे ऊपर सन्देह नहीं करना चाहिए । इस युद्ध के समय पर तुम को मेरा कुछ भी अपमान नहीं करना चाहिए ॥२६॥

पश्य पीनौ मम भुजौ वज्रसंहननोपमौ ॥२७॥
धनुः पश्य च मे चित्रं शरांश्चाशीविषोपमान् ।

रथं पश्य च मे क्लृप्तं सदश्वैर्वातवेगितैः ॥३८॥

गदां च पश्य गान्धारे हेमपट्टविभूषिताम् ।"

तुम जरा मेरी वज्र के समान पुष्ठ भुजाओं को तो देखो। इसी तरह मेरे विचित्र धनुप और आशीविष सर्प के तुल्य वाणों की ओर दृष्टि डालो, वायु के समान वेगशाली उत्तम २ अश्वों से सुसम्पन्न मेरे सुसज्जित रथ को तो देखो। हे गान्धारे! मेरी गदा की ओर दृष्टि उठाओ, कि किस तरह सुवर्ण के पत्रे से मढ़ी हुई है ॥३५-३८॥

दारयेयं महीं कृत्स्नां विकिरेयं च पर्वतान् ॥३९॥

शोषयेयं समुद्रांश्च तेजसा स्वेन पार्थिव ।

हे नराधिप! मैं तो अपने तेज से समुद्र को सुखा सकता हूँ और सारी पृथिवी को चीर कर पर्वतों को इधर-उधर फैंक सकता हूँ ॥३९॥

तं मामेवंविधं राजन्समर्थमरिनिग्रहे ॥४०॥

कस्माद्युनक्ति सारथ्ये नीचस्याधिरथे रणे ।

हे राजन! जव मैं स्वयं शत्रु के निग्रह में इस तरह शक्ति रखता हूँ-तो फिर इस संग्राम में नीच अधीरथ-पुत्र कर्ण के सारथि वनने की बात मुझसे कैसे कह रहे हो ॥४०॥

न मामधुरि राजेन्द्र नियोक्तुं त्वमिहार्हसि ॥४१॥

नहि पापीयसः श्रेयान्भूत्वा प्रेष्यत्वमुत्सहे ।

हे राजेन्द्र ! तुम्हें मुझे अयोग्य काम में नहीं लगाना चाहिए मैं उत्तम कोटि का वीर होकर कैसे अधम सूत-पुत्र का दास वन सकता हूँ ॥४१॥

यो ह्यभ्युपगतं प्रीत्या गरीयांसं वशे स्थितम् ॥४२॥
वशे पापीयसो धत्ते तत्पापमधरोत्तरम् ।

जो उच्च कुल का व्यक्ति, अपने वश में हो, और प्रीति के कारण आया हो, उसको यदि नीच के वश में डाल दिया जावे- तो इस से अधिक क्या पाप हो सकता है ॥४२॥

ब्रह्मणा ब्राह्मणाः सृष्टा मुखात्क्षत्रं च बाहुतः ॥४३॥
ऊरुभ्यामसृजद्वैश्याञ्शूद्रान्पद्भ्यामिति श्रुतिः ।
तेभ्यो वर्णविशेषाश्च प्रतिलोमानुलोमजाः ॥४४॥
अथान्योन्यस्य संयोगाच्चातुर्वर्ण्यस्य भारत ।

ब्रह्मा ने मुख से ब्राह्मण, बाहु से क्षत्रिय, ऊरुओं से वैश्य और पैरों से शूद्रों को उत्पन्न किया-ऐसा वेद में लिखा है। हे भारत ! चारों वर्ण के एक दूसरे के संयोग से अनुलोमज प्रतिलोमज अनेक प्रकार की जातियां वन गईं ॥४३-४४॥

गोप्तारः संगृहीतारो दातारः क्षत्रियाः स्मृताः ॥४५॥
याजनाध्यापनैर्विप्रा विशुद्धैश्च प्रतिग्रहैः ।
लोकस्यानुग्रहार्थाय स्थापिता ब्राह्मणा भुवि ॥४६॥

गोप्ता, करग्रहीता और दाता क्षत्रिय होते हैं और यजन अध्ययन तथा विशुद्ध प्रतिग्रह से ब्राह्मण अपना निर्वाह चलावें।

संसार के उपकार के लिए पृथिवी पर ब्राह्मण स्थापित किए गए ॥४५-४६॥

कृषिश्च पाशुपाल्यं च विशां दानं च धर्मतः ।
ब्रह्मक्षत्रविशां शूद्रा विहिताः परिचारकाः ॥४७॥

कृषि, पशुपालन और दान वैश्यों का धर्म है। ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों की सेवा करना शूद्रों का कार्य है ॥४७॥

ब्रह्मक्षत्रस्य विहिताः सूता वै परिचारकाः ।
न क्षत्रियो वै सूतानां शृणुयाच्च कथञ्चन ॥४८॥

ब्राह्मण और क्षत्रिय वर्ण का सेवक सूत वर्ण माना है। क्षत्रिय को सूत की आज्ञा मानना आवश्यक नहीं है ॥४८॥

अहं मूर्धाभिषिक्तो हि राजर्षिकुलजो नृपः ।
महारथः समाख्यातः सेव्यः स्तुत्यश्च बन्दिनाम् ॥४९॥

मैं राजर्षि कुल में उत्पन्न उत्तम क्षत्रिय हूं। मेरी भी महारथियों में गणना है और वन्दीगण मेरी भी स्तुति तथा सेवा में तत्पर रहते हैं ॥४९॥

सोऽहमेतादृशो भूत्वा नेहारिबलसूदनः ।
सूतपुत्रस्य संग्रामे सारथ्यं कर्तुमुत्सहे ॥५०॥

जब मैं स्वयं शत्रु सेना का नाशक हूँ, तो फिर संग्राम में सूत पुत्र का सारथि कैसे बन सकता हूँ ॥५०॥

अवमानमहं प्राप्य न योत्स्यामि कथञ्चन ।
आपृच्छे त्वाद्य गान्धारे गमिष्यामि गृहाय वै ॥५१॥

मैं अपमान् पाकर कैसे युद्ध कर सकता हूँ। हे दुर्योधन! अब मैं तुम से घर जाने की आज्ञा चाहता हूँ ॥५१॥

सञ्जय उवाच—

एवमुक्त्वा महाराज शल्यः समितिशोभनः ।
उत्थाय प्रययौ तूर्णं राजमध्यादमर्षितः ॥५२॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! इस प्रकार कहकर युद्ध में शोभा पाने वाला राजा शल्य, क्रोध में भरा हुआ, उठकर राजाओं के मध्य से चल दिया ॥५२॥

प्रणयाद्बहुमानाच्च तं निगृह्य सुतस्तव ।
अब्रवीन्मधुरं वाक्यं साम्ना सर्वार्थसाधकम् ॥५३॥

हे राजन्! अब तुम्हारे पुत्र ने बड़े प्रेम और आदर के साथ राजा शल्य को पकड़ लिया और वह सब अर्थ का साधक मधुर वाक्य शान्ति के साथ उससे इस प्रकार कहने लगा ॥५३॥

यथा शल्य विजानीषे एवमेतदसंशयम् ।
अभिप्रायस्तु मे कश्चित्तं निबोध जनेश्वर ॥५४॥

हे शल्य! जो तुम कह रहे हो-वह ठीक है, इसमें संशय नहीं है। हे जनेश्वर! मेरा जो अभिप्राय है-तुम उस को जरा समझो ॥५४॥

न कर्णोऽभ्यधिकस्त्वत्तो न शङ्के त्वां च पार्थिव ॥
नहि मद्रेश्वरो राजा कुर्याद्यदनृतं भवेत् ॥५५॥

हे नराधिप ! यह ठीक है कि कर्ण तुम से अधिक नहीं है, और न मुझे आपके व्यवहार पर कोई शङ्का है। मद्रेश्वर राजा कभी मिथ्या व्यवहार नहीं कर सकता है ॥५५॥

ऋतमेव हि पूर्वास्ते वदन्ति पुरुषोत्तमाः ।
तस्मादार्तायनिः प्रोक्तो भवानिति मतिर्मम ॥५६॥

पूर्वज पुरुष श्रेष्ठ, तुमको ऋत अर्थात् सत्यवादी कहते हैं। इसी से तुम भी आर्तायनि कहाते हो ऐसा मेरा ख्याल है ॥५६॥

शल्यभूतस्तु शत्रूणां यस्मात्त्वं युधि मानद ।
तस्माच्छल्यो हि ते नाम कथ्यते पृथिवीतले ॥५७॥

हे मानद ! तुम युद्ध में शत्रुओं के शल्य बन जाते हो-इसी से तुम्हारा शल्य यह अन्वर्थ नाम पृथिवी पर प्रसिद्ध हो गया है ॥५७॥

यदेतद्व्याहृतं पूर्वं भवता भूरिदक्षिण ।
तदेव कुरु धर्मज्ञ मदर्थं यद्यदुच्यते ॥५८॥

हे यज्ञ में अधिक दक्षिणा देने वाले धर्मात्मन् ! तुमने मुझसे जो २ प्रथम कह रखा है उन सब बातों को मुझे पूरा करके दिखाओ ॥५८॥

न च त्वत्तो हि राधेयो न चाहमपि वीर्यवान् ।
वृणेऽहं त्वां हयाग्र्याणां यन्तारमिह संयुगे ॥५९॥

हे राजन् ! तुम से प्रसिद्ध न तो राधा-पुत्र कर्ण ही बलवान् है और न मैं ही इतना पराक्रमी हूँ। मैं तो तुम को इस युद्ध में उत्तम अश्वों का सारथि बनाकर इस युद्ध को जीतना चाहता हूँ ॥५९॥

मन्ये चाभ्यधिकं शल्य गुणैः कर्णं धनञ्जयात् ।
भवन्तं वासुदेवाच्च लोकोऽयमिति मन्यते ॥६०॥

हे शल्य ! मैं धनञ्जय अर्जुन से कर्ण को अधिक मानता हूँ। और वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण से आपको उत्तम योद्धा या सारथि समझता हूँ और यही सारे संसार का मत है ॥६०॥

कर्णो ह्यभ्यधिकः पार्थादस्त्रैरेव नरर्षभ ।
भवानभ्यधिकः कृष्णादश्वज्ञाने बले तथा ॥६१॥

हे नरर्षभ ! अस्त्र विद्या में अर्जुन से कर्ण बहुत अधिक है इसी तरह आप भी अश्वज्ञान और बल में श्रीकृष्ण से अधिक हैं ॥६१॥

यथाश्वहृदयं वेद वासुदेवो महामनाः ।
द्विगुणं त्वं तथा वेत्सि मद्रराजेश्वरात्मज ॥६२॥

हे मद्रेश्वर ! अत्यन्त मनस्वी वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण जिस तरह अश्वों के हृदय को जानते हैं, उसी तरह तुम भी उससे दुगुना अश्वों का ज्ञान रखते हो ॥६२॥

शल्य उवाच—

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे मध्ये सैन्यस्य कौरव ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात्प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥६३॥
एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥६४॥

शल्य बोले—हे गान्धारी-पुत्र ! कुरुराज, तुम ने जो सेना के मध्य में मुझे श्रीकृष्ण के साथ मिलाकर उनसे अधिक बताया-इससे मैं तुमसे प्रसन्न हो गया हूँ अब मैं यशस्वीराधा-पुत्र कर्ण का अर्जुन से युद्ध करने के समय सारथि बन जाऊंगा जैसी कि तुम्हारी अभिलाषा है ॥६३-६४॥

समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य सन्निधौ॥६५॥

हे वीर ! मेरी सूर्य-पुत्र कर्ण के साथ यह प्रतिज्ञा होगी कि जैसा मुझे जंचेगा मैं उस के पास वह सब कुछ कह सकूंगा ॥६५॥

सञ्जय उवाच—

तथेति राजन्पुत्रस्ते सह कर्णेन भारत ।
अब्रवीन्मद्रराजस्य मतं भरतसत्तम ॥६६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि शल्यसारथ्येद्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

सञ्जय बोले हे भरतसत्तम ! तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन और कर्ण ने एक मत होकर मद्रराज के मत को मान लिया-कि जैसा उसे जचे-वह उसके कहने में स्वतन्त्र होगा ॥६६॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में मद्रराज शल्य के
सारथि बनाने का बत्तीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



तेतीसवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

भूय एव तु मद्रेश यत्ते वक्ष्यामि तच्छृणु ।
यथा पुरावृत्तमिदं युद्धे देवासुरे विभो ॥१॥
यदुक्तवान्पितुर्मह्यं मार्कण्डयो महानृषिः ।
तदशेषेण ब्रुवतो मम राजर्षिसत्तम ॥२॥
निबोध मनसा चात्र न ते कार्या विचारणा ।

दुर्योधन बोले—हे मद्रेश ! अब मैं तुमको एक वृत्तान्त सुनाता हूं-तुम उसको ध्यान से सुनो । यह वृत्तान्त, पूर्वकाल में देवासुर संग्राम में हुआ था, महर्षि मार्कण्डेयने यह बात मेरे पिता को सुनाई थी । हे राजर्षिसत्तम ! मैं तुमको वह सारा वृत्तान्त सुनाता हूं । तुम इसे मन लगाकर समझो । इसमें अधिक विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥१-२॥

देवानामसुराणां च परस्परजिगीषया ॥३॥
बभूव प्रथमो राजन्संग्रामस्तारकामयः ।
निर्जिताश्च तदा दैत्या दैवतैरिति नः श्रुतम् ॥४॥

हे राजन् ! एक समय देव और असुरों का परस्पर विजय की अभिलाषा में युद्ध होने लगा । यह युद्ध तारकासुर के युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है । उस समय देवों ने दैत्यों को जीत लिया ऐसा मैंने सुना है ॥३-४॥

निर्जितेषु च दैत्येषु तारकस्य सुतास्त्रयः ।
ताराक्षः कमलाक्षश्च विद्युन्माली च पार्थिव ॥५॥
तप उग्रं समास्थाय नियमे परमे स्थिताः ।
तपसा कर्षयामासुर्देहान्स्वाञ्शत्रुतापन ॥६॥
दमेन तपसा चैव नियमेन समाधिना ।
तेषां पितामहः प्रीतो वरदः प्रददौ वरम् ॥७॥
अवध्यत्वं च ते राजन्सर्वभूतस्य सर्वदा ।
सहिता वरयामासुः सर्वलोकपितामहम् ॥८॥

जब दैत्य जीते जा चुके-तो तारकासुर के तीन पुत्र ताराक्ष, कमलाक्ष और विद्युन्माली ने बड़ा उग्रतप किया और अत्यन्त नियम में उपस्थित हुए । हे शत्रुतापन! उन्होंने अपनी देह को तप से सुखा डाला । इनके इन्द्रिय दमन तप, नियम और समाधि से पितामह ब्रह्मा प्रसन्न हो गए और वरदायी ब्रह्माजी ने उनको यह वर दिया, कि तुम कुछ ही मांग लो । हे राजन्! उन सबने एक दम ब्रह्माजी से यही मांगा, कि हम सब प्राणियों से अवध्य हो जावें ॥५-८॥

तानब्रवीत्तदा देवो लोकानां प्रभुरीश्वरः ।
नास्ति सर्वामरत्वं वै निवर्त्तध्वमितोऽसुराः ॥६॥
अन्यं वरं वृणीध्वं वै यादृशं सम्प्ररोचते ।

लोकों के स्वामी ऐश्वर्यशाली ब्रह्माजीने उनसे कहा-हे असुरो! तुम सब लोग, अमर नहीं हो सकते-इससे तुम्हें निष्फल ही

लौट जाना चाहिए या जो कुछ अच्छा लगे-वह अन्य वर मांग लो ॥९॥

ततस्ते सहिता राजन्सम्प्रधार्यासकृत्प्रभुम् ॥१०॥
सर्वलोकेश्वरं वाक्यं प्रणम्येदमथाब्रुवन् ।

हे राजन् ! अब उन सब दैत्यों ने एक साथ सम्मति करके और शक्तिशाली, सब लोक के ईश्वर, ब्रह्माजी को हृदय में रखकर प्रणाम-पूर्वक यह वचन कहा ॥१०॥

अस्मभ्यं त्वं वरं देव संप्रयच्छ पितामह ॥११॥
वयं पुराणि त्रीण्येव समास्थाय महीमिमाम् ।
विचरिष्याम लोकेऽस्मिंस्त्वत्प्रसादपुरस्कृताः ॥१२॥

हे पितामहदेव ! यदि तुम वर देना चाहते हो-तो यह वर दो, कि हम तीनों अपने २ पुर बसा कर उनमें रहते हुए इस सारी पृथिवी पर आपकी कृपा से घूमते रहें ॥११-१२॥

ततो वर्षसहस्रे तु समेष्यामः परस्परम् ।
एकीभावं गमिष्यन्ति पुराण्येतानि चानघ ॥१३॥

हे अनघ ! एक सहस्र वर्ष के अनन्तर हम सब मिलें और हमारे तीनों नगर मिल जाया करें ॥१३॥

समागतानि चैतानि यो हन्याद्भगवंस्तदा ।
एकेषुणा देववरः स नो मृत्युर्भविष्यति ॥१४॥
एवमस्त्विति तान्देवः प्रत्युक्त्वा प्राविशद्दिवम् ।

हे भगवन ! जब ये तीनों पुर मिल जावें-तो उस समय जो उत्तम देव एक ही बाण में इन तीनों पुरों को वींध देवे-वही हमारी मृत्यु होवे । ब्रह्माजी, उनको वरदान देकर अपने लोक चले गए ॥१४॥

ते तु लब्धवराः प्रीताः संप्रधार्य परस्परम् ॥१५॥
पुरत्रयविसृष्ट्यर्थं मयं वव्रुर्महासुरम् ।
विश्वकर्माणमजरं दैत्यदानवपूजितम् ॥१६॥

अब वर प्राप्ति से प्रसन्न हुए इन्होंने परस्पर विचार करके तीनों पुरों की रचना के निमित्त मय नामक असुर को बुलाया । यह दैत्य और दानवों में पूजित अजर अमर विश्वकर्मा था ॥

ततो मयः स्वतपसा चक्रे धीमान्पुराणि च ।
त्रीणि काञ्चनमेकं वै रौप्यं कार्ष्णायसं तथा ॥१७॥

अब बुद्धिमान् मय दैत्य ने अपने तप से तीन पुर बनाए, जिनमें एक सुवर्ण, एक रजत (चांदी) और एक लोहे का पुर था ॥१७॥

काञ्चनं दिवि तत्रासीदन्तरिक्षे च राजतम् ।
आयसं चाभवद्भौमं चक्रस्थं पृथिवीपते ॥१८॥

हे राजन् ! द्युलोक में तो काञ्चन, अन्तरिक्ष में राजत और भूलोक में चक्र पर तीसरा लोहे का नगर था ॥१८॥

एकैकं योजनशतं विस्तारायामतः समम् ।
गृहाट्टालकसंयुक्तं बहुप्राकारतोरणम् ॥१९॥

इन पुरों में प्रत्येक पुर सौ २ योजन लम्बे चौड़े थे, जिनमें उत्तम भवन अटारी, और बहुत से प्राकार (नगरभित्ति) और तोरण (द्वार) थे ॥१६॥

गृहप्रवरसम्बाधमसम्बाधमहापथम् ।
प्रासादैर्विविधैश्चापि द्वारैश्चैवोपशोभितम् ॥२०॥

ये नगर उत्तम २ घरों से व्याप्त, लम्बी चौड़ी सड़कों वाले तथा अनेक महल और द्वारों से सुशोभित थे ॥२०॥

पुरेषु चाभवन्राजन्राजानो वै पृथक् पृथक् ।
काञ्चनं तारकाक्षस्य चित्रमासीन्महात्मनः ॥२१॥
राजतं कमलाक्षस्य विद्युन्मालिन आयसम् ।
त्रयस्ते दैत्यराजानस्त्रीँल्लोकानस्त्रतेजसा ॥२२॥
आक्रम्य तस्थुरूचुश्च कश्च नाम प्रजापतिः ।

हे राजन् ! इन तीनों पुरों के पृथक् २ राजा थे। महाबली तारकाक्ष का सुवर्णमय विचित्र, कमलाक्ष का राजत और विद्युन्माली का लोहमय नगर था। इन तीनों दैत्यराजों ने अपने अस्त्र के तेज से तीनों लोकों को जीत कर अधिकार कर लिया। वे कहते थे, कि प्रजापत्ति कौन होता था ॥२१-२२॥

तेषां दानवमुख्यानां प्रयुतान्यर्बुदानि च ॥२३॥
कोट्यश्चाप्रतिवीराणां समाजग्मुस्ततस्ततः ।

इन दानव वीरों की लाखों करोड़ों और अरबों की संख्या में सेना इधर उधर से आकर इकट्ठी हो गई ॥२३॥

मांसाशिनः सुदृप्ताश्च सुरैर्विनिकृताः पुरा ॥२४॥
महदैश्वर्यमिच्छन्तस्त्रिपुरं दुर्गमाश्रिताः ।

ये दानव, देवों से जीते हुए थे। जो मांस भोजन करते हुए और बड़े अभिमान में भरे हुए महान् ऐश्वर्य के अभिलाषी त्रिपुर नामक दुर्ग के आश्रय में रह रहे थे ॥२४॥

सर्वेषां च पुनश्चैषां सर्वयोगवहो मयः ॥२५॥
तमाश्रित्य हि ते सर्वे वर्तयन्तेऽकुतोभयाः ।

इन सारे दैत्यों की रक्षा में मयनामक प्रधान असुर भी उपस्थित था जिसका आश्रय लेकर ये निर्भीक भाव से घूमते थे ॥

यो हि यन्मनसा कामं दध्यौ त्रिपुरसंश्रयः ॥२६॥
तस्मै कामं मयस्तं तं विदधे मायया तदा ।

जिस २ कामना को ये अपने त्रिपुरों में रहते हुए करते थे। मयनामक दैत्य अपनी माया से उस कामना को वहीं पूरी कर देता था ॥२६॥

तारकाक्षसुतो वीरो हरिर्नाम महाबलः ॥२७॥
तपस्तेपे परमकं येनातुष्यत्पितामहः ।

तारकाक्ष नामक दानव का पुत्र महाबली हरि था, जिसने बड़ा घोर तप किया। पितामह ब्रह्मा इस पर प्रसन्न हो गए ॥२७॥

सन्तुष्टमवृणोद्देवं वापी भवतु नः पुरे ॥२८॥
शस्त्रैर्विनिहता यत्र क्षिप्ताः स्युर्बलवत्तराः ।

इसने प्रसन्न हो ब्रह्मा जी से वर मांगा, कि हमारे पुर में एक ऐसी बावड़ी बन जावे, कि शस्त्र से आहत हुए वीर यदि उसमें डाल दिए जावें तो वे बलवान् बन जावें ॥२८॥

स तु लब्ध्वा वरं वीरस्तारकाक्षसुतो हरिः ॥२९॥
ससृजे तत्र वापीं तां मृतानां जीविनीं प्रभो ।

हे प्रभो ! तारकाक्ष असुर का पुत्र हरि बड़ा वीर था । उसने वर पाकर वह बावड़ी बनवा डाली जिसमें डालने से मृतक भी जीवित हो उठते थे ॥२९॥

येन रूपेण दैत्यस्तु येन वेषेण चैव ह ॥३०॥
मृतस्तस्यां परिक्षिप्तस्तादृशेनैव जज्ञिवान् ।

जो दैत्य जिस रूप और वेष में मरे यदि उस बावड़ी में डाल दिया जावे-तो वह वैसा ही होकर उत्पन्न हो जाता था ॥३०॥

तां प्राप्य ते पुनस्तांस्तु लोकान्सर्वान्बबाधिरे ॥३१॥
महता तपसा सिद्धाः सुराणां भयवर्धनाः ।
न तेषामभवद्राजन्क्षयो युद्धे कदाचन ॥३२॥

इस बावड़ी को पाकर इन दानवों ने सारे लोकों को पीड़ित करना आरम्भ किया । ये महान तप से सिद्ध हुए देवों के भय के कारण बनाए । हे राजन् ! उनका युद्ध में कभी भी क्षय नहीं होता था ॥३१-३२॥

ततस्ते लोभमोहाभ्यामभिभूता विचेतसः ।
निर्ह्रीकाः संस्थिताः सर्वे स्थापिताः समलूलुपन् ॥३३॥

अब ये लोभ और मोह से व्याप्त होकर मदोद्धत हो गए। ये सब कुछ लज्जा छोड़कर रहने लगे। जब ये स्थापित होगए-तो इन्होंने देवों को वहां भगा दिया ॥३३॥

विद्राव्य सगणान्देवांस्तत्र तत्र तदा तदा।
विचेरुः स्वेन कामेन वरदानेन दर्पिताः ॥३४॥

उन २ स्थानों से अपने २ गणों के साथ देवों को भगा कर वरदान से उद्धत हुए दानव, अपनी कामनानुसार सर्वत्र घूमने लगे ॥३४॥

देवोद्यानानि सर्वाणि प्रियाणि च दिवौकसाम्।
ऋषीणामाश्रमान्पुण्यान्रम्याञ्जनपदांस्तथा ॥३५॥
व्यनाशयन्नमर्यादा दानवा दुष्टचारिणः।

इन मर्यादाहीन दुष्ट आचरण वाले, दानवों ने देवों के प्रिय, सारे देवोद्यान, ऋषियों के पवित्र आश्रय और सुन्दर २ देशों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥३५॥

पीड्यमानेषु लोकेषु ततः शक्रो मरुद्वृतः ॥३६॥
पुराण्यायोधयाञ्चक्रे वज्रपातैः समन्ततः।

जब इस प्रकार इन्होंने तीनों लोकों को पीड़ित कर दिया-तो देवों से आवृत हुए इन्द्र ने अपने वज्र के प्रहारों द्वारा तीनों पुरों से युद्ध करना आरम्भ किया ॥३६॥

नाशकत्तान्यभेद्यानि यदा भेत्तुं पुरन्दरः ॥३७॥
पुराणि वरदत्तानि धात्रा तेन नराधिप।

हे नराधिप ! इन्द्र अभेद्य उन पुरों को नहीं भेद सका, क्योंकि उन पुरों को विधाता का पूर्व में वरदान मिल चुका था ॥३७॥

तदा भीतः सुरपतिर्मुक्त्वा तानि पुराण्यथ ॥३८॥
तैरेव विबुधैः सार्धं पितामहमरिन्दम ।
जगामाथ तदाख्यातुं विप्रकारं सुरेतरैः ॥३९॥

हे अरिन्दम ! अब सुरपति, इन्द्र, भयभीत होगया-वह उन पुरों को छोड़कर और देवों को साथ लेकर पितामह ब्रह्मा के पास दानवों के अत्याचार सुनाने को पहुंचा ॥३८-३९॥

ते तत्त्वं सर्वमाख्याय शिरोभिः सम्प्रणम्य च ।
वधोपायमपृच्छन्त भगवन्तं पितामहम् ॥४०॥

सारे देवों ने अपना शिर झुकाकर प्रणाम पूर्वक सारा वृत्तान्त ठीक २ सुनाया और इसके अनन्तर भगवान् ब्रह्मा से उनके वध का उपाय पूछा ॥४०॥

श्रुत्वा तद्भगवान्देवो देवानिदमुवाच ह ।
ममापि सोऽपराध्नोति यो युष्माकमसौम्यकृत् ॥४१॥

भगवान् ब्रह्मा, यह सुनकर देवों से यह वचन बोले-जो तुम्हारे विरुद्ध कार्य कर रहा है-वह मेरा अपराध करता है ॥४१॥

असुरा हि दुरात्मानः सर्व एव सुरद्विषः ।
अपराध्यन्ति सततं ये युष्मान्पीडयन्त्युत ॥४२॥

असुर लोग बड़े दुरात्मा होते हैं और सारे ही देवों से द्वेष करते रहते हैं। ये तुमको पीड़ित करके महान् अपराध कर रहे हैं ॥४२॥

अहं हि तुल्यः सर्वेषां भूतानां नात्र संशयः ।
अधार्मिकास्तु हन्तव्या इति मे व्रतमाहितम् ॥४३॥

मेरी दृष्टि में सारे प्राणी बराबर हैं, यह ठीक है, परन्तु अधार्मिकों का मुझे नाश करना है-यह भी मेरा व्रत है ॥४३॥

एकेषुणा विभेद्यानि तानि दुर्गाणि नान्यथा ।
न च स्थाणुमृते शक्तो भेत्तुमेकेषुणा पुरः ॥४४॥

हे देवो ! ये दुर्ग तो एक ही बाण में भेदे जा सकेंगे और भगवान् शङ्कर के सिवा इनको कोई एक बाण से भेद भी नहीं सकता है ॥४४॥

ते यूयं स्थाणुमीशानं जिष्णुमक्लिष्टकारिणम् ।
योद्धारं वृणुतादित्याः स तान्हन्ता सुरेतरान् ॥४५॥

हे देवो ! अब तुम सब लोग, उत्तम कर्मकारी, विजयी, सर्व शक्तिमान् शङ्कर को अपना वीर बनाओ-वही इन असुरों का विनाश करने में समर्थ है ॥४५॥

इति तस्य वचः श्रुत्वा देवाः शक्रपुरोगमाः ।
ब्रह्माणमग्रतः कृत्वा वृषाङ्कं शरणं ययुः ॥४६॥

इन्द्र आदि देव, ब्रह्मा के ये वचन सुनकर ब्रह्मा को आगे करके वृषध्वज शङ्कर की शरण में पहुंचे ॥४६॥

तपोनियममास्थाय गृणन्तो ब्रह्म शाश्वतम् ।
ऋषिभिः सह धर्मज्ञा भवं सर्वात्मना गताः ॥४७॥

ये तप और नियम में स्थित होकर सनातन ब्रह्म की उपासना करने लगे। ये धर्मात्मा, ऋषिमुनियों को साथ लेकर सब तरह से शङ्कर की शरण में पहुंचे ॥४७॥

तुष्टुवुर्वाग्भिरुग्राभिर्भयेष्वभयदं नृप।
सर्वात्मानं महात्मानं येनाप्तं सर्वमात्मना ॥४८॥

हे नृप ! भय के समय अभय देने वाले सब की आत्मा शङ्कर की इन देवों ने बड़ी उत्तम स्तुतियों से स्तुति की। इस ने सारे ब्रह्माण्ड को अपनी सत्ता से व्याप्त कर रखा है ॥४८॥

तपोविशेषैर्विविधैर्योगं यो वेद चात्मनः।
यः साङ्ख्यमात्मनो वेत्ति यस्य चात्मा वशे सदा ॥४६॥

ये भगवान् शङ्कर, अनेक प्रकार के पृथक् २ तपों से योग विधि को जानते थे। ये आत्मा के सम्बन्ध के ज्ञान को भी जानते थे, जिससे आत्मा को वश में किया जाता है ॥४६॥

तं ते ददृशुरीशानं तेजोराशिमुमापतिम्।
अनन्यसदृशं लोके भगवन्तमकल्मषम् ॥५०॥
एकं च भगवन्तं ते नानारूपमकल्पयन्।
आत्मनः प्रतिरूपाणि रूपाण्यथ महात्मनि ॥५१॥

उन तेजो राशि, उमापति, सर्वशक्तिमान्, ईश्वर माया रहित, भगवान् शङ्कर को देखा, जिनके समान अन्य कोई नहीं है। इन्होंने एक भगवान् की अनेक रूप से स्तुति करना आरम्भ किया। इन महात्मा में उन्होंने अपनी २ भावना के अनुसार अनेक रूपों की कल्पना की ॥५०-५१॥

परस्परस्य चापश्यन्सर्वे परमविस्मिताः ।
सर्वभूतमयं दृष्ट्वा तमजं जगतः पतिम् ॥५२॥
देवा ब्रह्मर्षयश्चैव शिरोभिर्धरणीं गताः ।

इन जगत् के पति, सब भूतमय, अजन्मा भगवान् शङ्कर को देखकर देवता बड़े चकित हुए और परस्पर एक दूसरे को देखने लगे। इनके दर्शन करके देव और ब्रह्मर्षियों ने मस्तक पृथिवी पर टेक कर प्रणाम किया ॥५२॥

तान्स्वस्तिवादेनाभ्यर्च्य समुत्थाप्य च शङ्करः ॥५३॥
ब्रूत ब्रूतेति भगवान्स्मयमानोऽभ्यभाषत ।

भगवान् शङ्कर ने उनसे कल्याण प्रश्न करके उनका आदर किया और उनको उठाकर मुसकराते हुए कहा—बोलो ! बोलो ! क्या इच्छा है ? ॥५३॥

त्र्यम्बकेणाभ्यनुज्ञातास्ततस्ते स्वस्थचेतसः ॥५४॥
नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रभो इत्यब्रुवन्वचः ।

जब भगवान् शंकर ने उनको बोलने की आज्ञा दी, तो उनके स्वस्थ चित्त हुए । वे कहने लगे-हे भगवन् ! आपको नमस्कार हो ॥५४॥

नमो देवाधिदेवाय धन्विने वनमालिने ॥५५॥
प्रजापतिमखघ्नाय प्रजापतिभिरीड्यते ।
नमः स्तुताय स्तुत्याय स्तूयमानाय शम्भवे ॥५६॥
विलोहिताय रुद्राय नीलग्रीवाय शूलिने ।

अमोघाय मृगाक्षाय प्रवरायुधयोधिने ॥५७॥
अर्हाय चैव शुद्धाय क्षयाय क्रथनाय च ।
दुर्वारणाय क्राथाय ब्रह्मणे ब्रह्मचारिणे ॥५८॥
ईशानायाप्रमेयाय नियन्त्रे चर्मवाससे ।
तपोरथाय पिङ्गाय व्रतिने कृत्तिवाससे ॥५९॥
कुमारपित्रे त्र्यक्षाय प्रवरायुधधारिणे ।
प्रपन्नार्तिविनाशाय ब्रह्मद्विट्सङ्घघातिने ॥६०॥
वनस्पतीनां पतये नराणां पतये नमः ।
गवां च पतये नित्यं यज्ञानां पतये नमः ॥६१॥
नमोऽस्तु ते ससैन्याय त्र्यम्बकायामितौजसे ।
मनोवाक्कर्मभिर्देव त्वां प्रपन्नान्भजस्व नः ॥६२॥

देवों के स्वामी, धनुर्धर, वनमालाधारी, दक्ष प्रजापति के यज्ञ के नाशक, प्रजापतियों से पूजित, सब से सर्वदा स्तुति किए हुए और स्तुति करने योग्य, कल्याण स्वरूप, विलोकित, रुद्र, नील-ग्रीव, शूलधारी, अमोघ, मृगाक्ष, उत्तम आयुधधारी, सब तरह संयोग्य, शुद्ध, सर्व व्यापक, सब के संहार कर्ता, दुर्वार शक्ति के सहित, शत्रु नाशक, ब्रह्म और ब्रह्मचारी रूपधारी, सर्व शक्तिमान् अप्रमेय, सबके नियन्त्रः गज चर्मधारी, तपस्वी पीत वर्ण वाले, वृति, मृग चर्मधारी, कुमार के पिता, तीन नेत्रों वाले, उत्तम आयु से सम्पन्न, शरणागत के दुःख के नाशक, ब्रह्मद्वेषी राक्षसों के नाशक, वनस्पति और मनुष्यों के पति, वृषपति और यज्ञपति,

आपके लिए नमस्कार है। हे त्र्यम्बक देव ! आप अत्यन्त ओजस्वी हैं आपको गणों के सहित नमस्कार है। हे देव ! हम लोग मन वचन और कर्म से आपकी शरण में हैं। आप हम शरणागतों की रक्षा करो ॥५५-६२॥

ततः प्रसन्नो भगवान्स्वागतेनाभिनन्द्य च ।
प्रोवाच व्येतु वस्त्रासो ब्रूत किं करवाणि वः ॥६३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि त्रिपुराख्याने त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

अब भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गए और उनका स्वागत करके उन्हें आनन्दित किया और कहा—कि तुम्हारे दुःख नष्ट हों-कहिए क्या करवाना चाहते हो ॥६३॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में त्रिपुरा रचना
का तेतीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



चौंतीसवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

पितृदेवर्षिसङ्घेभ्योऽभये दत्ते महात्मना ।
सत्कृत्य शङ्करं प्राह ब्रह्मा लोकहितं वचः ॥१॥

दुर्योधन ने कहा—हे राजन् ! महात्मा शङ्कर द्वारा पितृ देवर्षि संघ के, अभय दे देने पर ब्रह्मा भगवान् शङ्कर का आदर करके यह लोक हितकारी वचन बोले ॥१॥

तवातिसर्गाद्देवेश प्राजापत्यमिदं पदम् ।
मयाधितिष्ठता दत्तो दानवेभ्यो महान्वरः ॥२॥

हे देवेश ! हम आप के दिए हुए इस प्रजापति पद को भोगते हैं। मैंने ही अपने अधिकार से दानवों को यह महान् वरदान दे दिया ॥२॥

तानतिक्रान्तमर्यादान्नान्यः संहर्तुमर्हति ।
त्वामृते भूतभव्येश त्वं ह्येषां प्रत्यरिर्वधे ॥३॥

हे भूत और भविष्य के स्वामी ! अब इन मर्यादाहीन दैत्यों का संहार आपके बिना कौन कर सकता है । आप इनके वध करने वाले शत्रु हैं ॥३॥

स त्वं देव प्रपन्नानां याचतां च दिवौकसाम् ।
कुरु प्रसादं देवेश दानवाञ्जहि शङ्कर ॥४॥

हे देवों के स्वामी भगवान ! शङ्कर ! तुम हम शरणागत देवों की याचना पर ध्यान दो और इन दानवों का नाश कर डालो ॥४॥

त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं सुखमैधत मानद ।
शरण्यस्त्वं हि लोकेश ते वयं शरणं गताः ॥५॥

हे मानद ! तुम्हारी कृपा से यह सारा जगत आनन्द प्राप्त करे हे लोकेश ! तुम सब शरणागतों के रक्षक हो-इससे हम आपकी शरण में उपस्थित हुए ॥५॥

स्थाणुरुवाच—

हन्तव्याः शत्रवः सर्वे युष्माकमिति मे मतिः ।
न त्वेक उत्सहे हन्तुं बलस्था हि सुरद्विषः ॥६॥

भगवान् शङ्कर बोले—यह तो मेरा व्रत है, कि मैं तुम देवों के शत्रुओं का नाश करता रहूँ परन्तु मैं अकेला उनके मारने में समर्थ नहीं हूँ, क्योंकि ये सुरों के द्वेषी बड़े बलवान् हैं ॥६॥

ते यूयं संहताः सर्वे मदीयेनार्धतेजसा ।
जयध्वं युधि ताञ्शत्रून्संहता हि महाबलाः ॥७॥

अब तुम मेरे आधे तेज को ग्रहण करके संगठित हो जाओ और इस तरह युद्ध में उन शत्रुओं को जीत लो । संघ ही महा बल सम्पन्न माना जाता है ॥७॥

देवा ऊचुः—

अस्मत्तेजोबलं यावत्तावद् द्विगुणमाहवे ।
तेषामिति हि मन्यामो दृष्टतेजोबला हि ते ॥८॥

देव बोले—हे भगवान् ! जितना हमारा तेज का बल है, उतना ही रण में दानवों का दुगुना बल हो जाता है-हमने उनका तेज और बल अपनी आंखों से देख लिया है ॥८॥

श्रीभगवानुवाच—

वध्यास्ते सर्वतः पापा ये युष्मास्वपराधिनः ।
मम तेजोबलार्धेन सर्वान्निघ्नत शात्रवान् ॥९॥

श्री भगवान् बोले—हे देवों ! जो तुम्हारे अपराध करने वाले पापी असुर हैं, उनको अवश्य मारना है । तुम मेरे तेज के आधे बल से ही उन सारे शत्रुओं का मारना कर सकोगे ॥९॥

देवा ऊचुः—

बिभर्तुं भवतोऽर्धं तु न शक्ष्यामो महेश्वर ।
सर्वेषां नो बलार्धेन त्वमेव जहि शात्रवान् ॥१०॥

देव बोले—हे महेश्वर! हमतो आपके आधे बल के धारण करने में भी असमर्थ हैं। हमतो यह चाहते हैं कि आप हमारे आधे बल से उन शत्रुओं को मार दीजिए ॥१०॥

श्रीभगवानुवाच—

यदि शक्तिर्न वः काचिद्बिभर्तुं मामकं बलम्।
अहमेतान्हनिष्यामि युष्मत्तेजोर्धबृंहितः ॥११॥

श्री भगवान बोले—हे देवों! यदि तुम में मेरे बल के धारण करने की शक्ति नहीं है, तो तुम्हारे आधे बल को लेकर मैं इनको मार लूंगा ॥११॥

ततस्तथेति देवेशस्तैरुक्तो राजसत्तम।
अर्धमादाय सर्वेषां तेजसाभ्यधिकोऽभवत् ॥१२॥

हे राजसत्तम! अब देवों ने कहा—अच्छी बात है, इतना कहकर भगवान् शङ्कर ने उन सब का आधा तेज धारण कर लिया जिस तेज से वह चमक उठा ॥१२॥

स तु देवो बलेनासीत्सर्वेभ्यो बलवत्तरः।
महादेव इति ख्यातस्ततःप्रभृति शङ्करः ॥१३॥

अब भगवान शङ्कर, इस बल से सबसे अधिक बलवान् हो गए। तब से ही भगवान् शंकर, महादेव कहलाने लगे ॥१३॥

ततोऽब्रवीन्महादेवो धनुर्बाणधरो ह्यहम्।
हनिष्यामि रथेनाजौ तान्रिपून्वो दिवौकसः ॥१४॥

हे देवों! मैं महादेव होकर धनुष धारण कर चुका हूँ। अब मैं तुम्हारे शत्रुओं को रण में मार गिराऊंगा ॥१४॥

ते यूयं मे रथं चैव धनुर्बाणं तथैव च।
पश्यध्वं यावदद्यै तान्पीतयामि महीतले ॥१५॥

अब तुम लोग मेरे रथ, धनुष और बाण को देखो, जिन के द्वारा आज ही मैं उनको रण भूमि में मार गिराऊंगा ॥१५॥

देवा ऊचुः—

मूर्तीः सर्वाः समाधाय त्रैलोक्यस्य ततस्ततः।
रथं ते कल्पयिष्यामो देवेश्वर सुवर्चसम् ॥१६॥
तथैव बुद्ध्या विहितं विश्वकर्मकृतं शुभम्।

देव बोले—हे देवेश्वर! हम सब त्रिलोकी के हित के लिये किसी भी तरह सारी मूर्ति धारण करेंगे। इस तरह तुम्हारे रथ को अत्यन्त तेजस्वी बना डालेंगे। इतना कहकर विश्वकर्मा को साथ लेकर उन्होंने उसी बुद्धि के अनुसार रथ की कल्पना कर डाली ॥१६॥

ततो विबुधशार्दूलास्ते रथं समकल्पयन् ॥१७॥
विष्णुं सोमं हुताशं च तस्येषुं समकल्पयन्।
शृङ्गमग्निर्बभूवास्य भल्लः सोमो विशाम्पते ॥१८॥
कुड्मलश्चाभवद्विष्णुस्तस्मिन्निषुवरे तदा ॥१९॥

उन देवों श्रेष्ठों ने रथ की रचना की, विष्णु, सोम और अग्नि उसके बाण बनाए गए। हे विशाम्पते! उनमें अग्नि बाण की सींग और सोम बाण का भल्ल और विष्णु बाण की नोक बने ॥१७-१९॥

रथं वसुन्धरां देवीं विशालपुरमालिनीम् ।
सपर्वतवनद्वीपां चक्रुर्भूतधरां तदा ।
मन्दरः पर्वतश्चाक्षो जङ्घा तस्य महानदी ॥२०॥

दिशश्च प्रदिशश्चैव परिवारो रथस्य तु ।
ईषा नक्षत्रवंशश्च युगः कृतयुगोऽभवत् ॥२१॥

कूबरश्च रथस्यासीद्वासुकिर्भुजगोत्तमः ।
अपस्करमधिष्ठाने हिमवान्विन्ध्यपर्वतः ॥
उदयास्तावधिष्ठाने गिरी चक्रुः सुरोत्तमाः ॥२२॥

विशाल २ पुरों से संयुक्त पर्वत, वन और द्वीपों से समन्वित भूतों के धारण करने वाली, पृथिवी देवी-रथ बनी। मन्दर पर्वत उस रथ के धुरे, महानदी उसकी जंघा तथा दिशा और प्रदिशाएँ उस रथ की अन्य सामग्री बन गईं। नक्षत्र समूह उस रथ की ईषा (पेटी) कृतयुग उसका युग (जूड़ा) और भुजगराज वसुकि उसका कूबर (जूड़े का धारक) बनगया अधिष्ठान में लगाने वाले अपस्कर उसके हिमालय और विन्ध्याचल पर्वत थे। उन देवों ने उदय और अस्त चल को अधिष्ठान बनाया ॥२०-२२॥

समुद्रमक्षमसृजन्दानवालयमुत्तमम् ।
सप्तर्षिमण्डलं चैव रथस्यासीत्परिष्करः ॥२३॥

दानवों का उत्तम निवास स्थान समुद्र उसके अक्ष थे। रथ का परिष्कार सप्तर्षि मण्डल था ॥२३॥

गङ्गा सरस्वती सिन्धुर्धुरमाकाशमेव च ।
उपस्करो रथस्यासन्नापः सर्वाश्च निम्नगाः ॥२४॥
अहोरात्रं कलाश्चैव काष्ठाश्च ऋतवस्तथा ।
अनुकर्षं ग्रहा दीप्ता वरूथं चापि तारकाः ॥२५॥

गङ्गा सरस्वती, सिन्धु और आकाश धुर और जल तथा सारी नदी, उसके स्त्रर थे। अहोरात्र कला काष्ठा और ऋतु भी उपस्त्रर ही थे। दीप्तग्रह अनुकर्ष और अन्य तारे उसके वरूथ (आवरण) माने गए ॥२४-२५॥

धर्मार्थकामसंयुक्तं त्रिवेणुं दारु बन्धुरम् ।
ओषधीर्वीरुधश्चैव घण्टाः पुष्पफलोपगाः ॥२६॥
सूर्याचन्द्रमसौ कृत्वा चक्रे रथवरोत्तमे ।
पक्षौ पूर्वापरौ तत्र कृते रात्र्यहनी शुभे ॥२७॥
दशनागपतीनीषां धृतराष्ट्रमुखांस्तदा ।
योक्त्राणि चक्रुर्नागांश्च निःश्वसन्तो महोरगान् ॥२८॥
द्यां युगं युगचर्माणि संवर्तकबलाहकान् ।
कालपृष्ठोऽथ नहुषः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥२९॥
इतरे चाभवन्नागा हयानां वालबन्धनाः ।
दिशश्च प्रदिशश्चैव रश्मयो रथवाजिनाम् ॥३०॥

धर्म, अर्थ और काम संयुक्त तीन बांस, ऊंचे नीचे काष्ठ पुष्प और फलों से संयुक्त औषधि और लता उस रथ की घण्टा बनी। इस उत्तम रथ के सूर्य और चन्द्रमा दो पहिए माने गए। रात

और दिन, सुन्दर पूर्व और अपर पक्ष थे। धृतराष्ट्र संज्ञक दश सर्पों की ईषा (जूड़े और अक्ष का धारक काष्ठ) बनाई गई। श्वास लेते हुए उरग, और नाग जोते थे, संवर्तक मेघ जूड़े के नीचे के चर्म और अन्तरिक्ष लोक जूड़ा था। काल पृष्ठ नहुष कर्कोटक धनञ्जय नाम के सर्पों की जातियां तथा अन्य सर्प उस रथ के अश्वों के बाल बने। रथ के अश्वों की दिशा और प्रदिशा अश्वों की रस्सी बनाई गई ॥२६-३०॥

सन्ध्यां धृतिं च मेधां च स्थितिं सन्नतिमेव च ।
ग्रहनक्षत्रताराभिश्चर्म चित्रं नभस्तलम् ॥३१॥
सुराम्बुप्रेतवित्तानां पतीँल्लोकेश्वरान्हयान् ।
सिनीवालीमनुमतिं कुहूं राकां च सुव्रताम् ॥३२॥
योक्त्राणि चक्रुर्वाहानां रोहकांस्तत्र कण्टकान् ।
धर्मः सत्यं तपोऽर्थश्च विहितास्तत्र रश्मयः ॥३३॥
अधिष्ठानं मनश्चासीत्परिरथ्या सरस्वती ।
नानावर्णाश्च चित्राश्च पताकाः पवनेरिताः ॥३४॥
विद्युदिन्द्रधनुर्नद्धं रथं दीप्तं व्यदीपयन् ।
वषट्कारः प्रतोदोऽभूद्गायत्री शीर्षबन्धना ॥३५॥

सन्ध्या, धृति, मेधा, स्थिति, सन्नति तथा ग्रह, नक्षत्र, और ताराओं से व्याप्त आकाश उसकी विचित्र ढाल बनी। इन्द्र, वरुण यम और कुबेर, ये चारों अश्व बनाए गए। कृष्ण पक्ष और शुक्ल पक्ष की चतुर्दशी और अमावस्या तथा व्रतवाली पूर्णिमा उन

अश्वों के जोते बने। रोइक आदि पितर कण्टक, धर्म सत्य, तप और अर्थ उनकी रस्सी हुए, मन रथ की धारक भूमि सरस्वती रथ की लीक, अनेक विचित्र वर्ण पवन से कम्पित पताका समझनी चाहिए। बिजली, इन्द्र, धनुष, आदि बांधने के चर्म से बन्धे हुए रथ को चमकाते हुए प्रतोद (चाबुक) वषट्कार थे। गायत्री शिर के बन्धन थीं ॥३१-३५॥

यो यज्ञे विहितः पूर्वमीशानस्य महात्मनः।
संवत्सरो धनुस्तद्वै सावित्री ज्या महास्वना ॥३६॥
दिव्यं च वर्म विहितं महार्हं रत्नभूषितम्।
अभेद्यं विरजस्कं वै कालचक्रबहिष्कृतम् ॥३७॥
ध्वजयष्टिरभून्मेरुः श्रीमान्कनकपर्वतः।
पताकाश्चाभवन्मेघास्तडिद्भिः समलंकृताः ॥३८॥

महात्मा शंकर का बताया हुआ जो संवत्सर था वही धनुष और सावित्री (गायत्री) अत्यन्त शब्द करने वाली धनुष की डोरी बनी। काल चक्र से नष्ट नहीं होने वाला, अमूल्य, रत्न, विभूषित दिव्य, नहीं भेदे जाने वाला चमकीला कवच बताया गया। मेरु पर्वत ध्वजा की यष्टिट बनी। शोभायुक्त सुवर्ण पर्वत पताका, मेघ से प्रतीत होती थी ॥३६-३८॥

रेजुरध्वर्युमध्यस्था ज्वलन्त इव पावकाः।
क्लृप्तं तु तं रथं दृष्ट्वा विस्मिता देवताभवन् ॥३९॥

उसके मध्य में जलते हुए अग्नि के तुल्य तेजस्वी अध्वर्यु थे। इस प्रकार सुसज्जित रथ को देखकर देवता विस्मित हो गए ॥३९॥

सर्वलोकस्य तेजांसि दृष्ट्वैकस्थानि मारिप ।
युक्तं निवेदयामासुर्देवास्तस्मै महात्मने ॥४०॥
एवं तस्मिन्महाराज कल्पिते रथसत्तमे ।
देवैर्मनुजशार्दूल द्विपतामभिमर्दने ॥४१॥
स्वान्यायुधानि मुख्यानि न्यदधाच्छङ्करो रथे ।
ध्वजयष्टिं वियत्कृत्वा स्थापयामास गोवृपम् ॥४२॥

हे आर्य ! सारे लोकों के तेज को एक स्थान पर सञ्चित देख कर देवों ने महात्मा शंकर से यह योग्य वचन कहा—हे महाराज पुरुष श्रेष्ठ ! यह शत्रुओं का अभिमर्दन कर देने वाला रथ देवों से सजा दिया है। इतना सुनकर भगवान् शंकर ने भी उस रथ में अपने मुख्य २ अस्त्र रख दिए। शंकर ने आकाश को ध्वजा की यष्टि बना कर उसपर अपने वृषभ को बैठा दिया ॥४०-४२॥

ब्रह्मदण्डः कालदण्डो रुद्रदण्डस्तथा ज्वरः ।
परिस्कन्दा रथस्यासन्सर्वतोदिशमुद्यताः ॥४३॥
अथर्वाङ्गिरसावास्तां चक्ररक्षौ महात्मनः ।
ऋग्वेदः सामवेदश्च पुराणं च पुरःसराः ॥४४॥
इतिहासयजुर्वेदौ पृष्ठरक्षौ बभूवतुः ।
दिव्या वाचश्च विद्याश्च परिपार्श्वचराः स्थिताः ॥४५॥
स्तोत्रादयश्च राजेन्द्र वषट्कारस्तथैव च ।
ओङ्कारश्च मुखे राजन्नतिशोभाकरोऽभवत् ॥४६॥

ब्रह्मदण्ड, कालदण्ड, रुद्रदण्ड, तथा ज्वर, उस रथ के पार्श्व रक्षक बने, जो सब ओर चौकस होकर उस रथ की रक्षा कर रहे थे। अथर्वा और अङ्गिरा शंकर के चक्र रक्षक बने। ऋग्वेद, सामवेद और पुराण आगे चलने वाले और इतिहास तथा यजुर्वेद पृष्ठ रक्षक हुए। दिव्य वाणी और विद्या, समीपधारी योद्धा हुए। हे राजेन्द्र! स्तोत्र, वषट्कार और ओङ्कार आदि भगवान् के मुख में सुशोभित होने लगे ॥४३-४६॥

विचित्रमृतुभिः षड्भिः कृत्वा संवत्सरं धनुः।
छायामेवात्मनश्चक्रे धनुर्ज्यामक्षयां रणे ॥४७॥

छःओं ऋतुओं से सुन्दर संवत्सर को विचित्र धनुष दिया गया और छाया को अपने धनुष की अक्षय प्रत्यञ्चा दी गई ॥४७॥

कालो हि भगवान्रुद्रस्तस्य संवत्सरो धनुः।
तस्माद्रौद्री कालरात्रिर्ज्या कृता धनुषोऽजरा ॥४८॥

भगवान रुद्रकाल स्वरूप है। उसका धनुष संवत्सर हुआ, इसीसे कालरात्रि, रुद्रात्रि कहाती है, जिसको धनुष की नहीं क्षीण होने वाली डोरी बनाया गया ॥४८॥

इषुश्चाप्यभवद्विष्णुर्ज्वलनः सोम एव च।
अग्नीषोमौ जगत्कृत्स्नं वैष्णवं चोच्यते जगत् ॥४९॥

विष्णु, ज्वलन और सोम शङ्कर के बाण थे। इसीसे जगत् को अग्निषोम या वैष्णव कहते हैं ॥४९॥

विष्णुश्चात्मा भगवतो भवस्यामिततेजसः।
तस्माद्धनुर्ज्यासंस्पर्शं न विषेहुर्हरस्य ते ॥५०॥

अत्यन्त तेजस्वी भगवान् शङ्कर के विष्णु आत्मा हैं इसीसे महादेवजी के धनुष की डोरी का स्पर्श कोई नहीं सह सकता है ॥

तस्मिञ्शरे तिग्ममन्युं मुमोचासह्यमीश्वरः ।
भृग्वङ्गिरोमन्युभवं क्रोधाग्निमतिदुःसहम् ॥५१॥

इस बाण में भगवान् शङ्कर ने अपना असह्य तीव्र क्रोध छोड़ा। यह क्रोधाग्नि अत्यन्त दुःसह थी, जो भृगु और अङ्गिरा के क्रोध के साथ उत्पन्न हुई थी। ॥५१॥

स नीललोहितो धूम्रः कृत्तिवासा भयङ्करः ।
आदित्यायुतसङ्काशस्तेजोज्वालावृतो ज्वलन् ॥५२॥

अब धूम्रवर्णधारी, गज चर्म संयुक्त, नीललोहित शङ्कर हजारों सूर्यों के सदृश तेजो ज्वाला से व्याप्त हुए अत्यन्त भयङ्कर प्रतीत होते थे ॥५२॥

दुश्च्यावच्यावनो जेता हन्ता ब्रह्मद्विषां हरः ।
नित्यं त्राता च हन्ता च धर्माधर्माश्रितान्नरान् ॥५३॥

भगवान् शङ्कर जो रण से न हटें-उन्हें हटा देने में समर्थ, ब्रह्मद्वेषियों के जीतने और मारने वाले तथा धर्मात्माओं के रक्षक और अधार्मिकों के नाशक हैं ॥५३॥

प्रमाथिभिर्भीमबलैर्भीमरूपैर्मनोजवैः ।
विभाति भगवान्स्थाणुस्तैरेवात्मगणैर्वृतः ॥५४॥

सबके मथ देने वाले, भयानक बल और रूपधारी, मन के समान वेग वाले अपने गणों से युक्त हुए भगवान् शङ्कर चमकने लगे ॥५४॥

तस्याङ्गानि समाश्रित्य स्थितं विश्वमिदं जगत् ।
जङ्गमाजङ्गमं राजञ्शुशुभेऽद्भुतदर्शनम् ॥५५॥

हे राजन् ! भगवान् के अङ्गों का आश्रय लेकर ही यह सारा चराचर जगत व्याप्त हो रहा है और जिससे ही अद्भुत दिखाई देता है ॥५५॥

दृष्ट्वा तु तं रथं युक्तं कवची सशरासनी ।
बाणमादाय तं दिव्यं सोमविष्ण्वग्निसम्भवम् ॥५६॥

इस प्रकार सुसज्जित रथ को देखकर भगवान् शङ्कर ने कवच पहन कर धनुष धारण किया और सोम, विष्णु और अग्नि से उत्पन्न उस दिव्य बाण को ग्रहण किया ॥५६॥

तस्य राजंस्तदा देवाः कल्पयाञ्चक्रिरे प्रभो ।
पुण्यगन्धवहं राजञ्श्वसनं देवसत्तमम् ॥५७॥

हे राजन् ! अब देवताओं ने देवों में उत्तम सबके श्वासरूप पुण्य गन्धधारी वायु को शिव की सहायता में समर्थ किया ॥५७॥

तमास्थाय महादेवस्त्रासयन्दैवतान्यपि ।
आरुरोह तदा यत्तः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥५८॥

हे नृप ! महादेव, देवताओं को भी भयभीत करते हुए उस रथ को पकड़कर उस पर बड़ी सावधानी से चढ़ गए, जिससे सारी पृथिवी कांप निकली ॥५८॥

तमारुरुक्षुं देवेशं तुष्टवुः परमर्षयः ।
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ॥५९॥

जब महादेव, उस रथ पर चढ़ रहे थे-तो उस समय बड़े २ ऋषि, गन्धर्व, देव संघ, और अप्सराओं के गण, उनकी स्तुति करने लगे ॥५६॥

ब्रह्मर्षिभिः स्तूयमानो वन्द्यमानश्च वन्दिभिः ।
तथैवाप्सरसां वृन्दैर्नृत्यद्भिर्नृत्यकोविदैः ॥६०॥

स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ।
हसन्निवाब्रवीद्देवान्सारथिः को भविष्यति ॥६१॥

ब्रह्मर्षियों से स्तुति प्राप्त करके वन्दियों से वन्द्यमान हुए तथा नृत्य में कुशल नाचते हुए अप्सराओं के गण से सुशोभित हुए वरदायी भगवान शङ्कर ने खड्ग, धनुष बाण धारण किया। अब भगवान् कुछ मुसकुराते हुए बोले-कि बताओ मेरा सारथि कौन होगा ॥६०-६१॥

तमब्रुवन्देवगणा यं भवान्संनियोक्ष्यते ।
स भविष्यति देवेश सारथिस्ते न संशयः ॥६२॥

देवों ने उनसे कहा—हे देवेश ! जिसको आप इस कार्य के लिए आज्ञा दोगे-वही आपका सारथि हो जावेगा-इसमें सन्देह नहीं है ॥६२॥

तानब्रवीत्पुनर्देवो मत्तः श्रेष्ठतरो हि यः ।
तं सारथिं कुरुध्वं मे स्वयं सञ्चिन्त्य मा चिरम् ॥६३॥

अब महादेव ने फिर कहा-जो मुझसे श्रेष्ठ हो-उसको तुम स्वयं विचार कर सारथि बनाओ देर न करो ॥६३॥

एतच्छ्रुत्वा ततो देवा वाक्यमुक्तं महात्मना ।
गत्वा पितामहं देवाः प्रसाद्य दं वचोऽब्रुवन् ॥६४॥

महात्मा शङ्कर द्वारा कहे हुए इस वचन को सुनकर देवता, ब्रह्माजी के पास जाकर और उन्हें प्रसन्न करके यह बोले ॥

यथा त्वत्कथितं देव त्रिदशारिविनिग्रहे ।
तथा च कृतमस्माभिः प्रसन्नो नो वृषध्वजः ॥६५॥
रथश्च निहितोऽस्माभिर्विचित्रायुधसंवृतः ।
सारथिं च न जानीमः क स्यात्तस्मिन्रथोत्तमे ॥६६॥
तस्माद्विधीयतां कश्चित्सारथिर्देवसत्तम ।
सफलां तां गिरं देव कर्तुमर्हसि नो विभो ॥६७॥

हे भगवन् ! देवों के शत्रुओं के विनाश में तुमने जो शङ्कर को प्रसन्न करने की बात कही वे वृषध्वज शङ्कर हमने प्रसन्न कर लिए हैं । हमने विचित्र २ आयुधों से युक्त, रथ भी तय्यार कर लिया, परन्तु उस सर्वश्रेष्ठ रथ में सारथि कौन बनाया जावे-यह हमको पता नहीं है । हे देवसत्तम ! अब आप कोई उस रथ के योग्य सारथि बताओ । हे विभो ! आप अपनी उस पूर्वोक्तवाणी को इस तरह सत्य करो ॥६५-६७॥

एवमस्मासु हि पुरा भगवन्नुक्तवानसि ।
हितकर्तास्मि भवतामिति तत्कर्तुमर्हसि ॥६८॥

हे भगवन् ! आपने प्रथम यह कहा था, कि मैं तुम्हारे हित में तत्पर हूं-अब उसको पूरा करो ॥६८॥

स देव युक्तो रथसत्तमो नो दुराधरो द्रावणः शात्रवाणाम् ।
पिनाकपाणिर्विहितोऽत्र योद्धा विभीषयन्दानवानुद्यतोऽसौ ॥

हे देव ! हमारा यह उत्तम रथ जुड़ा हुआ खड़ा है जिसके वेग को कोई नहीं सह सकता । यह सारे शत्रुओं के भगा देने में समर्थ है इसका योद्धा पिनाक पाणि भगवान् शङ्कर हैं, जो दानवों को भयभीत करते हुए उद्यत हैं ॥६६॥

तथैव वेदाश्चतुरो हयाग्रया धरा सशैला च रथो महात्मनः ।
नक्षत्रवंशानुगतो वरूथो हरो योद्धा सारथिर्नाभिलक्ष्यः ॥

इसके चारों वेद, उत्तम अश्व और पर्वतों सहित पृथिवी इस महात्मा का रथ बना दिया गया है। नक्षत्र समूह इसका वरूथ (रथगुप्ति छतरी) और स्वयं भगवान् शङ्कर इसके योद्धा रथी हैं, परन्तु अभी तक सारथि निश्चित नहीं हो पाया है ॥७०॥

तत्र सारथिरेष्टव्यः सर्वैरेतैर्विशेषवान् ।
तत्प्रतिष्ठो रथो देव हया योद्धा तथैव च ॥७१॥
कवचानि सशस्त्राणि कार्मुकं च पितामह ।
त्वामृते सारथिं तत्र नान्यं पश्यामहे वयम् ॥७२॥

हे देव ! यह सारी युद्ध सामग्री से सुसज्जित, रथ खड़ा है इसके अश्व और योद्धा भी बता दिए गए, हे पितामह ! इसके शस्त्रों सहित कवच और धनुष का भी वर्णन कर दिया गया। अब हमको तुम्हारे सिवा अन्य कोई इसका सारथि नहीं दिखाई देता है ॥७१-७२॥

त्वं हि सर्वगुणैर्युक्तो दैवतेभ्योऽधिकः प्रभो ।
स रथं तूर्णमारुह्य संयच्छ परमान्हयान् ॥७३॥
जयाय त्रिदिवेशानां वधाय त्रिदशद्विषाम् ।
इति ते शिरसा गत्वा त्रिलोकेशं पितामहम् ।
देवाः प्रसादयामासुः सारथ्यायेति नः श्रुतम् ॥७४॥

हे प्रभो ! तुम सब गुणों से संयुक्त और देवताओं से भी अधिक हो । अब आप इस रथ पर शीघ्रता से चढ़ जाइए और अश्वों का नियन्त्रण कीजिए जिससे देवों की विजय और दैत्यों की पराजय हो जावे । हे राजन् ! इस प्रकार देवों ने शिर झुका-कर सारथि बनाने के निमित्त त्रिलोक स्वामी पितामह ब्रह्मा को सारथि बनने को तय्यार करना चाहा ॥७३-७४॥

पितामह उवाच—

नात्र किञ्चिन्मृषा वाक्यं यदुक्तं त्रिदिवौकसः ।
संयच्छामि हयानेष युध्यतो वै कपर्दिनः ।
ततः स भगवान्देवो लोकस्रष्टा पितामहः ॥७५॥
सारथ्ये कल्पितो देवैरीशानस्य महात्मनः ।

पितामह बोले—हे देवों ! आपने जो कुछ कहा है-वह मिथ्या नहीं है । मैं कपर्दी शङ्कर के युद्ध करने पर उसके अश्वों का नियमन कर दूंगा । हे राजन् ! इस प्रकार लोक निर्माता पितामह, भगवान् ब्रह्मा को महात्मा शङ्कर का देवों ने सारथि बना ही तो दिया ॥७५॥

तस्मिन्नारोहति क्षिप्रं स्यन्दने लोकपूजिते ॥७६॥
शिरोभिरगमन्भूमिं ते हया वातरंहसः ।

इस लोक पूजित रथ पर शीघ्र ब्रह्मा चढ़ गए। इनके चढ़तेही वेदरूपी अश्वों ने भूमि में मस्तक टेक कर उनको प्रणाम किया ॥

आरुह्य भगवान्देवो दीप्यमानः स्वतेजसा ॥७७॥
अभीषून्हि प्रतोदं च सञ्जग्राह पितामहः ।

भगवान ब्रह्मा इस रथ पर चढ़ गए और अपने तेज से देदीप्यमान हो उठे और जो अश्वों की रास और प्रतोद (चाबुक) माने गए हैं, उनको ग्रहण किया ॥७७॥

तत उत्थाय भगवांस्तान्हयाननिलोपमान् ॥७८॥
बभाषे च तदा स्थाणुमारोहेति सुरोत्तमः ।

अब भगवान् ब्रह्मा ने उन वायु के सदृश अश्वों को चेतन किया-महात्मा शंकर से कहा-अब आप भी इस रथ में बैठ जाइए ॥७८॥

ततस्तमिषुमादाय विष्णुसोमाग्निसम्भवम् ॥७६॥
आरुरोह तदा स्थाणुर्धनुषा कम्पयन्परान् ।

विष्णु, सोम और अग्नि से बने हुए बाण को शङ्कर ने धनुष पर चढ़ाया और इस धनुष बाण से शत्रुओं को कम्पित करते हुए आप रथ पर चढ़ गए ॥७६॥

तमारूढं तु देवेशं तुष्टुवुः परमर्षयः ॥८०॥
गन्धर्वा देवसङ्घाश्च तथैवाप्सरसां गणाः ।

स शोभमानो वरदः खड्गी बाणी शरासनी ॥८१॥
प्रदीपयन्रथे तस्थौ त्रीँल्लोकान्स्वेन तेजसा ।

जब भगवान् शङ्कर रथ पर चढ़ गए तो महर्षि गन्धर्व, देवसङ्घ, तथा अप्सराओं के गणों ने स्तुति करना आरम्भ किया। यह वरदायी शङ्कर खड्ग, धनुष और बाण लेकर उस रथ में बड़े सुशोभित हुए जो अपने तेज से तीनों लोकों को प्रदीप्त कर रहे थे ॥८०-८१॥

ततो भूयोऽब्रवीद्देवो देवानिन्द्रपुरोगमान् ॥८२॥
न हन्यादिति कर्त्तव्यो न शोको वः कथश्चन ।
हतानित्येव जानीत बाणेनानेन चासुरान् ॥८३॥

अब भगवान् शङ्कर ने इन्द्र आदि देवों से कहा-हे देवो! तुम यह चिन्ता न करो कि अभी तक त्रिपुरासुर नहीं मारा गया। इस बाण से असुरों को मारा हुआ ही समझो ॥८२-८३॥

ते देवाः सत्यमित्याहुर्निहता इति चाब्रुवन् ।
न च तद्वचनं मिथ्या यदाह भगवान्प्रभुः ॥८४॥
इति सञ्चिन्त्य वै देवाः परां तुष्टिमवाप्नुवन् ।

इन देवों ने सचमुच यह समझ लिया, कि असुर मारे गए वे कहने लगे—हां ? अब असुर मारे ही गए क्योंकि जो भगवान् ब्रह्मा ने कहा है, वह कभी मिथ्या नहीं हो सकता। इस प्रकार विचार कर देवता, बड़े सन्तुष्ट हुए ॥८४॥

ततः प्रयातो देवेशः सर्वैर्देवगणैर्वृतः ॥८५॥
रथेन महता राजन्नुपमा नास्ति यस्य ह ।

हे राजन् ! सारे देव गणों से व्याप्त होकर इस रथ के द्वारा महादेवजी चल दिए, जिसकी शोभा की उपमा नहीं बताई जा सकती ॥८५॥

स्वैश्च पारिषदैर्देवः पूज्यमानो महायशाः । ८६॥
नृत्यद्भिरपरैश्चैव मांसभक्षैर्दुरासदैः ।
धावमानैः समन्ताच्च तर्जमानैः परस्परम् ॥८७॥

महायशस्वी महादेव, अपने पारिषदों (गणों) से पूज्यमान हो रहे थे। इनके साथ अन्य मांस भोजी दुरासद जीव भी नाचते हुए दौड़ रहे और परस्पर गर्जना करते जाते थे ॥८६-८७॥

ऋषयश्च महाभागास्तपोयुक्ता महागुणाः ।
आशंसुर्वै जना देवा महादेवस्य सर्वशः ॥८८॥

महाभाग तपोयुक्त, महागुणी, ऋषि लोग, सब ओर से महादेव की प्रशंसा करने लगे ॥८८॥

एवं प्रयाते देवेशे लोकानामभयङ्करे ।
तुष्टमासीज्जगत्सर्वं देवताश्च नरोत्तम ॥८९॥

हे राजन् ! जब लोकों के अभय करने वाले भगवान् शंकर ने चढ़ाई की-तो तीनों लोक प्रसन्न हो उठे ॥८९॥

ऋषयस्तत्र देवेशं स्तुवन्तो बहुभिः स्तवैः ।
तेजश्चास्मै वर्धयन्तो राजन्नासन्पुनः पुनः ॥९०॥

हे राजन् ! इस समय ऋषियों ने देवेश्वर महादेव की बड़ी स्तुति की और हर तरह से वार २ इनका तेज बढ़ाने लगे ॥६०॥

गन्धर्वाणां सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
वादयन्ति प्रयाणेऽस्य वाद्यानि विविधानि च ॥६१॥

जब भगवान् शङ्कर ने चढ़ाई की, तो सहस्रों लाखों अरबों गन्धर्व, अनेक प्रकार के बाजे बजाने लगे ॥६१॥

ततोऽधिरूढे वरदे प्रयाते चासुरान्प्रति ।
साधुसाध्विति विश्वेशः स्मयमानोऽभ्यभाषत ॥६२॥

याहि देव यतो दैत्याश्चोदयाश्वानतन्द्रितः ।
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य निघ्नतः शात्रवान्रणे ॥६३॥

जब वरदायी ब्रह्मा, सारथि वनकर उस रथ पर बैठ गए तो विश्वेश्वर शङ्कर मुसकुराकर बोले—हे देव ! जहां पर दैत्य हैं-वहां पर तुम सावधानी से हमारे अश्वों को ले चलो और इस रण में शत्रुओं को मारते हुए मेरी बाहुओं का बल देखना ॥६२-६३॥

ततोऽश्वांश्चोदयामास मनोमारुतरंहसः ।
येन तत्त्रिपुरं राजन्दैत्यदानवरक्षितम् ॥६४॥

हे राजन् ! अब ब्रह्मा ने, मन और वायु के तुल्य वेग वाले वेदरूपी अश्वों को उधर की ओर चलाया, जिधर दैत्य और दानवों से युक्त त्रिपुर थे ॥६४॥

पिबद्भिरिव चाकाशं तैर्हयैर्लोकपूजितैः ।
जगाम भगवान्क्षिप्रं जयाय त्रिदिवौकसाम् ॥६५॥

इन लोक पूजित अश्वों द्वारा मानो ये आकाश को पी रहे थे। इस प्रकार भगवान् शङ्कर देवों के विजय के निमित्त शीघ्रता से चल दिए ॥६५॥

प्रयाते रथमास्थाय त्रिपुराभिमुखे भवे ।
ननाद सुमहानादं वृषभः पूरयन्दिशः ॥६६॥

त्रिपुरासुर की ओर महादेव के रथ ले चलने पर रथ की ध्वजा में बैठकर वृषभ बड़ा भारी नाद करने लगा, जिससे दिशाएँ भर गई ॥६६॥

वृषभस्यास्य निनदं श्रुत्वा भयकरं महत् ।
विनाशमगमंस्तत्र तारकाः सुरशत्रवः ॥६७॥
अपरेऽवस्थितास्तत्र युद्धायाभिमुखास्तदा ।
ततः स्थाणुर्महाराज शूलधृक् क्रोधमूर्छितः ॥६८॥

इस प्रकार वृषभ की महाभयङ्कर गर्जना सुनकर सुरों के शत्रु कुछ तारकासुर, नष्ट हो गए और कुछ युद्ध के लिए खड़े हो गए। हे महाराज! इस समय शूलधारी महादेव, क्रोध में भरे हुए थे ॥६७-६८॥

त्रस्तानि सर्वभूतानि त्रैलोक्यं भूः प्रकम्पते ।
निमित्तानि च घोराणि तत्र सन्दधतः शरम् ॥६९॥

इस समय सारे प्राणी भयभीत होगए और भूमि कांपने लगी तथा बाण चढ़ाते ही घोर निमित्त खड़े होगए ॥६९॥

तस्मिन्सोमाग्निविष्णूनां क्षोभेण ब्रह्मरुद्रयोः ।
स रथो धनुषः क्षोभादतीव ह्यवसीदति ॥१००॥

अब सोम, अग्नि और विष्णु तथा ब्रह्मा और रुद्र एवं धनुष के क्षोभ से वह रथ बहुत ही चमकने लगा ॥१००॥

ततो नारायणस्तस्माच्छरभागाद्विनिःसृतः ।
वृषरूपं समास्थाय उज्जहार महारथम् ॥१०१॥

अब भगवान् विष्णु उस बाण से निकले और वृष का रूप बनाकर उस महारथ को ले चलने लगे ॥१०१॥

सीदमाने रथे चैव नर्दमानेषु शत्रुषु ।
स सम्भ्रमात्तु भगवान्नादं चक्रे महाबलः ॥१०२॥

जब कुछ रथ गड़ा जा रहा था और इससे शत्रु प्रसन्न थे, तो महाबली विष्णु ने बड़े वेग से गर्जना की ॥१०२॥

वृषभस्य स्थितो मूर्ध्नि हयपृष्ठे च मानद ।
तदा स भगवान्रुद्रो निरैक्षद्दानवं पुरम् ॥१०३॥

हे मानद ! इस वृषभ के मस्तक और अश्व की पृष्ठ पर स्थित होकर भगवान् शंकर नें दानवों के तीनों पुरों को देखा ॥१०३॥

वृषभस्यास्थितो रुद्रो हयस्य च नरोत्तम् ।
स्तनांस्तदाशातयत खुरांश्चैव द्विधाकरोत् ॥१०४॥

हे नरोत्तम ! भगवान् शंकर वृषभ के मस्तक और अश्वों की पीठ पर बैठे थे । तभी से उन्होंने अश्वों के स्तनों को काट और वृषभ के पैरों को चीर दिया ॥१०४॥

ततः प्रभृति भद्रं ते गवां द्वैधीकृताः खुराः ।
हयानां च स्तना राजंस्तदाप्रभृति नाभवन् ॥१०५॥
पीडितानां बलवता रुद्रेणाद्भुतकर्मणा ।

हे राजन् ! तभी से ये गौवों के पैरों के खुर चिरे आते हैं । और अश्वों के भी तभी से स्तन नहीं होते । ये बलवान अद्भुत कर्मकारी भगवान् कर ने ही पीड़िव कर दिए ॥१०५॥

अथाधिज्यं धनुः कृत्वा शर्वः सन्धाय तं शरम् ॥१०६॥
युक्त्वा पाशुपतास्त्रेण त्रिपुरं समचिन्तयत् ।

अब महादेव ने धनुष खैंच कर उसपर बाण चढ़ाया और पाशुपतास्त्र पर चढ़ा कर त्रिपुरासुर का चिन्तन किया ॥१०६॥

तस्मिंस्थिते महाराज रुद्रे विधृतकार्मुके ॥१०७॥
पुराणि तानि कालेन जग्मुरेकैकतां तदा ।

हे महाराज ! भगवान् शंकर ने धनुष धारण करके उन पुर का विचार किया-तो वे तीनों पुर एक होगए ॥१०७॥

एकीभावं गते चैव त्रिपुरत्वमुपागते ॥१०८॥
बभूव तुमलो हर्षो देवतानां महात्मनाम् ।

जब वे तीनों पुर एक होगए-तो महात्मा देवों को बड़ा भारी हर्ष होने लगा ॥१०८॥

ततो देवगणाः सर्वे सिद्धाश्च परमर्षयः ॥१०९॥
जयेति वाचो मुमुचुः संस्तुवन्तो महेश्वरम् ।

अब सारे देवगण और बड़े ऋषि और सिद्ध, महेश्वर की प्रशंसा करते हुए जय जय की ध्वनि छोड़ने लगे ॥१०९॥

ततोऽग्रतः प्रादुरभूत्त्रिपुरं निघ्नतोऽसुरान् ॥११०॥
अनिर्देश्योग्रवपुषो देवस्यासह्यतेजसः ।

असुरों को मारते हुए, असहनीय तेजधारी, कथन में नहीं आने वाले उग्र शरीर से सम्पन्न महादेव के सन्मुख अब वह त्रिपुरासुर उपस्थित हुआ ॥११०॥

स तद्विकृष्य भगवान्दिव्यं लोकेश्वरो धनुः ॥१११॥
त्रैलोक्यसारं तमिषुं मुमोच त्रिपुरं प्रति ।

अब लोकेश्वर भगवान् शंकर ने उस दिव्य धनुष को चढ़ाया और त्रिलोकी में सार उस बाण को त्रिपुरासुर के प्रति छोड़ा ॥१११॥

उत्सृष्टे वै महाभाग तस्मिन्निषुवरे तदा ॥११२॥
महानार्तस्वरो ह्यासीत्पुराणां पततां भुवि ।

हे महाभाग ! उस श्रेष्ठ बाण के छोड़ने पर तीनों पुर गिरने लगे-उनके गिरने के समय महान् आर्तनाद उपस्थित हो गया ॥

तान्सोऽसुरगणान्दग्ध्वा प्राक्षिपत्पश्चिमार्णवे ॥११३॥
एवं तु त्रिपुरं दग्धं दानवाश्चाप्यशेषतः ।
महेश्वरेण क्रुद्धेन त्रैलोक्यस्य हितैषिणा ॥११४॥

अब भगवान् शंकर ने उन तीनों पुरों को दग्ध करके पश्चिम के समुद्र में फेंक दिया । त्रिलोकी के हित चाहने वाले महेश्वर ने क्रोध में भर कर तीनों पुर दग्ध कर दिए और सारे दानव मार डाले ॥११३-११४॥

स चात्मक्रोधजो वह्निर्हाहेत्युक्त्वा निवारितः ।
मा कार्षीर्भस्मसाल्लोकानिति त्र्यक्षोऽब्रवीच्च तम् ॥११५॥

अपने क्रोध से उत्पन्न हुई अग्नि को तीन नेत्रधारी शिव ने निषेध करके रोक दिया और कहा—हे अग्ने ! तुम लोकों को भस्म सात् न करो ॥११५॥

ततः प्रकृतिमापन्ना देवा लोकास्त्वथर्षयः ।
तुष्टुवुर्वाग्भिरग्र्याभिः स्थाणुमप्रतिमौजसम् ॥११६॥

अब देवता सारे लोक और ऋषिगण, अपने २ स्वभाव को प्राप्त हुए तथा अनेक उत्तम वाणियों से अत्यन्त तेजस्वी शंकर की स्तुति करने लगे ॥११६॥

तेऽनुज्ञाता भगवता जग्मुः सर्वे यथागतम् ।
कृतकामाः प्रयत्नेन प्रजापतिमुखाः सुराः ॥११७॥

अब भगवान् शंकर ने देवों को जाने की आज्ञा दी, वे प्रजापति आदि देव, उनकी आज्ञा पाकर अपने २ अभीष्ट स्थान को चले गए । उनकी सारी कामनाएँ पूर्ण प्रयत्न के साथ होगईं ॥११७॥

एवं स भगवान्देवो लोकस्रष्टा महेश्वरः ।
देवासुरगणाध्यक्षो लोकानां विदधे शिवम् ॥११८॥

लोकों के रचयिता, महेश्वर भगवान शङ्कर, देव और असुरों के अध्यक्ष हैं, उन्होंने इस तरह सारे लोक का कल्याण कर दिया ॥११८॥

यथैव भगवान्ब्रह्मा लोकधाता पितामहः ।
सारथ्यमकरोत्तत्र रुद्रस्य परमोऽव्ययः ॥११९॥

लोकनिर्माता सर्वदा एक रूप रहने वाले, भगवान् पितामह ब्रह्मा ने अब महादेव का सारथिपन का निर्वाह किया ॥११९॥

तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ।
संयच्छतु हयानस्य राधेयस्य महात्मनः ॥१२०॥

हे मद्रेश्वर ! आज आप भी रुद्र के सारथिपन के करने वाले ब्रह्मा की भांति आप भी महावीर राधा-पुत्र कर्ण के अश्वों की रास पकड़ो ॥१२०॥

त्वं हि कृष्णाच्च कर्णाच्च फाल्गुनाच्च विशेषतः ।
विशिष्टो राजशार्दूल नास्ति तत्र विचारणा ॥१२१॥

हे राजशार्दूल ! आप तो कृष्ण, कर्ण और अर्जुन से सब तरह श्रेष्ठ हैं । इसमें कोई सन्देह या विचार की बात नहीं है ॥१२१॥

युद्धे ह्ययं रुद्रकल्पस्त्वं च ब्रह्मसमो नये ।
तस्माच्छक्तो भवाञ्जेतुं मच्छत्रूंस्तानिवासुरान् ॥१२२॥

ये कर्ण तो रुद्र के तुल्य और आप रथ के ले जाने में ब्रह्मा के सदृश हो। अब आप असुरों की भांति मेरे शत्रुओं को मार गिराइये ॥१२२॥

यथा शल्याद्य कर्णोऽयं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
प्रमथ्य हन्यात्कौन्तेयं तथा शीघ्रं विधीयताम् ॥१२३॥

हे शल्य ! आज कर्ण, जैसे भी हो सके-श्वेत अश्वधारी, कृष्ण को सारथि बनाने वाले, कुन्ती-पुत्र अर्जुन को रण में पछाड़ ले-आप वैसा ही प्रयत्न करो ॥१२३॥

त्वयि मद्रेश राज्याशा जीविताशा तथैव च ।
विजयश्च तथैवाद्य कर्णसाचिव्यकारितः ॥१२४॥

हे मद्रेश ! हमारी तो राज्य प्राप्ति की आशा और जीवन की आशा आप पर ही अवलम्बित है। अबतो कर्ण के सारथि बनने से आपके ही आधीन सारी विजय रह गई है ॥१२४॥

त्वयि कर्णश्च राज्यं च वयं चैव प्रतिष्ठिताः ।
विजयश्चैव संग्रामे संयच्छाद्य हयोत्तमान् ॥१२५॥

हे मद्रेश्वर ! अबतो आपके सहारे पर ही कर्ण, राज्य और हमारी स्थिति तथा संग्राम में विजय है। आप कृपा कर अश्वों का नियमन स्वीकार करलो ॥१२५॥

इमं चाप्यपरं भूय इतिहासं निबोध मे ।
पितुर्मम सकाशे यद्ब्राह्मणः प्राह धर्मवित् ॥१२६॥

अब तुम एक और इतिहास सुनो-जिसे भी मेरे पिता के पास किसी धर्म प्रचारक ब्राह्मण ने सुनाया था ॥१२६॥

श्रुत्वा चैतद्वचश्चित्रं हेतुकार्यार्थसंहितम् ।
कुरु शल्य विनिश्चित्य मा भूदत्र विचारणा ॥१२७॥

हे शल्य ! हेतु और कार्य के विचार से सम्पन्न मेरे इन अद्भुत वचनों को सुनकर और उनका निश्चय करके उन्हें पूरा करो-इसमें विचार करने की आवश्यकता नहीं है ॥१२७॥

भार्गवाणां कुले जातो जमदग्निर्महायशाः ।
तस्य रामेति विख्यातः पुत्रस्तेजोगुणान्वितः ॥१२८॥

महायशस्वी, जमदग्नि, भृगुवंश में उत्पन्न हुए हैं । उनके तेजस्वी तथा अन्य अनेक गुणों से सम्पन्न परशुराम नामक पुत्र हुए ॥१२८॥

स तीव्रं तप आस्थाय प्रसादयितवान्भवम् ।
अस्त्रहेतोः प्रसन्नात्मा नियतः संयतेन्द्रियः ॥१२९॥
तस्य तुष्टो महादेवो भक्त्या च प्रशमेन च ।
हृद्गतं चास्य विज्ञाय दर्शयामास शङ्करः ॥१३०॥

उन प्रसन्न आत्मा, जितेन्द्रिय, नियम शील परशुराम ने अस्त्र प्राप्ति के निमित्त भगवान् शङ्कर की उपासना की । उनकी शक्ति और भक्ति से भगवान् प्रसन्न होगए । परशुराम के हृदय के विचार को जान कर भगवान् ने उन्हें दर्शन दिया ॥

महेश्वर उवाच—

राम तुष्टोऽस्मि भद्रं ते विदितं मे तवेप्सितम् ।
कुरुष्व पूतमात्मानं सर्वमेतदवाप्स्यसि ॥१३१॥
दास्यामि ते तदास्त्राणि यदा पूतो भविष्यसि।
अपात्रमसमर्थं च दहन्त्यस्त्राणि भार्गव ॥१३२॥

महादेवजी बोले—हे राम ! मैं तुम पर सन्तुष्ट हो गया हूं। तुम्हारा अभिप्राय मुझे विदित हो चुका। तुम अपनी आत्मा को पवित्र करलो-यह सब कुछ तुमको प्राप्त हो जावेगा। जब तुम अपनी आत्मा को पवित्र कर लोगे-तब मैं तुमको अस्त्र प्रदान करूंगा। हे भार्गव ! यदि अपात्र और असमर्थ को शस्त्र प्रदान कर दिए जावेंगे-तो उलटे दग्ध कर देंगे ॥१३१-१३२॥

इत्युक्तो जामदग्न्यस्तु देवदेवेन शूलिना ।
प्रत्युवाच महात्मानं शिरसावनतः प्रभुम् ॥१३३॥

जब देवों के देव शूलधारी, शङ्कर ने परशुराम से इतना कहा-तो शिर झुकाकर महात्मा शङ्कर से परशुराम कहने लगे ॥

यदा जानाति देवेशः पात्रं मामस्त्रधारणे ।
तदा शुश्रूषवेऽस्त्राणि भवान्मे दातुमर्हति ॥१३४॥

हे भगवान्, जब आप मुझे शस्त्र धारण के योग्य पात्र समझें-तब मुझ श्रद्धालु को आप अस्त्र विद्या प्रदान कर देना ॥१३४॥

दुर्योधन उवाच—

ततः स तपसा चैव दमेन नियमेन च ।
पूजोपहारबलिभिर्होममन्त्रपुरस्कृतैः ॥१३५॥

आराधयितवाञ्शर्वं बहून्वर्षगणांस्तदा ।
प्रसन्नश्च महादेवो भार्गवस्य महात्मनः ॥१३६॥

दुर्योधन ने कहा—हे राजन्। इसके अनन्तर तप, इन्द्रिय विजय, नियम, पूजा, उपहार, (भेंट) बलि तथा होम मन्त्रों के द्वारा बहुत वर्षों तक शिवजी की पूजा की। अब भृगु वंशोत्पन्न महात्मा परशुराम पर महादेव प्रसन्न हो गए ॥१३५-१३६॥

अब्रवीत्तस्य बहुशो गुणान्देव्याः समीपतः ।
भक्तिमानेष सततं मयि रामो दृढव्रतः ॥१३७॥

महादेव ने परशुराम के बहुत से गुणों की चर्चा पार्वती के समीप में की। देखो ? यह परशुराम, मेरा कितना दृढ़ व्रत धारी भक्त है ॥१३७॥

एवं तस्य गुणान्प्रीतो बहुशोऽकथयत्प्रभुः ।
देवतानां पितॄणां च समक्षमरिसूदन ॥१३८॥

हे अरिसूदन ! भगवान् शंकर ने उसके गुण बार २ देवता और पितरों को सुनाए ॥१३८॥

एतस्मिन्नेव काले तु दैत्या ह्यासन्महाबलाः ।
तैस्तदा दर्पमोहान्धैरबाध्यन्त दिवौकसः ॥१३९॥

इसी समय दैत्यों का जोर बढ़ गया। उन्होंने दर्प और मोह में फंसकर देवताओं को पीड़ा पहुंचाना आरम्भ किया ॥१३९॥

ततः सम्भूय विबुधास्तान्हन्तुं कृतनिश्चयाः ।
चक्रुः शत्रुवधे यत्नं न शेकुर्जेतुमेव तान् ॥१४०॥

अब सारे देवों ने मिलकर दैत्यों का नाश करना चाहा-इन्होंने शत्रु के वध में बड़ा प्रयत्न किया, परन्तु वे उनको जीत नहीं सके ।।१४०।।

अभिगम्य ततो देवा महेश्वरमुमापतिम् ।
प्रासादयंस्तदा भक्त्या जहि शत्रुगणानिति ।।१४१।।

अब देवता उमापति महादेव के पास पहुंचे और उनकी भक्ति पूर्वक स्तुति करके कहा-कि—आप कृपा करके हमारे शत्रुगण का नाश कीजिए ।।१४१।।

प्रतिज्ञाय ततो देवो देवतानां रिपुक्षयम् ।
रामं भार्गवमाहूय सोऽभ्यभाषत शङ्करः ।।१४२।।
रिपून्भार्गव देवानां जहि सर्वान्समागतान् ।
लोकानां हितकामार्थं मत्प्रीत्यर्थं तथैव च ।।१४३।।

इसके अनन्तर महादेव जी ने देवों से राक्षसों के वध की प्रतिज्ञा की । भगवान् शंकर ने भृगु वंश श्रेष्ठ, परशुराम को बुला कर कहा—हे भार्गव ! तुम संगठित हुए देवों के शत्रु असुरों का विनाश करो । यह सब कुछ लोक के हित की कामना तथा मेरी प्रीति से कर दीजिए ।।१४२-१४३।।

राम उवाच—

एवमुक्तः प्रत्युवाच त्र्यम्बकं वरदं प्रभुम् ।
का शक्तिर्मम देवेश अकृतास्त्रस्य संयुगे ।।१४४।।
निहन्तुं दानवान्सर्वान्कृतास्त्रान्युद्धदुर्मदान् ।

जब महादेव जी ने इतना कहा-तो वे सर्व शक्तिमान् वरदायी शंकर से बोले। हे देवेश! बिना अस्त्र प्राप्त किये युद्ध में दुर्मद, अस्त्र विद्या में कुशल, सारे दानवों के मारने में मैं कैसे समर्थ हो सकता हूं ॥१४४॥

महेश्वर उवाच—

गच्छ त्वं मदनुज्ञातो निहनिष्यसि शात्रवान् ॥१४५॥
विजित्य च रिपून्सर्वान्गुणान्प्राप्स्यसि पुष्कलान् ।

महेश्वर बोले—हे भार्गव! तुम मेरी आज्ञा से जाओ-वहां जाते ही शत्रुओं को मार लोगे। जब तुम शत्रुओं को जीत लोगे-तो तुमको बहुत अधिक गुणों को प्राप्ति होगी ॥१४५॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं प्रतिगृह्य च सर्वशः ॥१४६॥
रामः कृतस्वस्त्ययनः प्रययौ दानवान्प्रति ।
अब्रवीद्देवशत्रूंस्तान्महादर्पबलान्वितान् ॥१४७॥

हे राजन्! परशुराम, इस प्रकार महादेव जी के वचन सुनकर और उनको सब तरह से मानकर और स्वस्ति वाचन करके दानवों पर चढ़ दौड़ा और वहां जाकर अत्यन्त घमण्ड में चूर देव शत्रुओं से कहने लगा ॥१४६-१४७॥

मम युद्धं प्रयच्छध्वं दैत्या युद्धमदोत्कटाः ।
प्रेषितो देवदेवेन वो विजेतुं महासुराः ॥१४८॥

हे युद्ध के मद में भरे हुए दानवो! तुम मुझ से युद्ध करो। हे महासुरो! मुझे तुम्हारे जीतने को देवाधिदेव शङ्कर ने भेजा है ॥१४८॥

इत्युक्ता भार्गवेणाथ दैत्या युद्धं प्रचक्रमुः ।
स तान्निहत्य समरे दैत्यान्भार्गवनन्दनः ॥१४६॥
वज्राशनिसमस्पर्शैः प्रहारैरेव भार्गवः ।

जब भृगुवंश श्रेष्ठ परशुराम ने इतना कहा—तो दैत्य युद्ध करने लगे। भार्गव नन्दन परशुराम ने रण में उन दैत्यों को वज्राशनि के तुल्य स्पर्श वाले प्रहारों से मार गिराया ॥१४६॥

स दानवैः क्षततनुर्जामदग्न्यो द्विजोत्तमः ॥१५०॥
संस्पृष्टः स्थाणुना सद्यो निर्व्रणः समजायत ।

द्विज श्रेष्ठ जमदग्नि पुत्र परशुराम के शरीर में दानवों ने बहुत से घाव लगा दिए, परन्तु भगवान शङ्कर के छूते ही वह फौरन हीं व्रण रहित हो गया ॥१५०॥

प्रीतश्च भगवान्देवः कर्मणा तेन तस्य वै ॥१५१॥
वरान्प्रादाद्बहुविधान्भार्गवाय महात्मने ।

भगवान् शङ्कर उनके इस कर्म से बड़े प्रसन्न हुए और उन्होंने महात्मा परशुराम को बहुत प्रकार के वर प्रदान किए ॥१५१॥

उक्तश्च देवदेवेन प्रीतियुक्तेन शूलिना ॥१५२॥
निपातात्तव शस्त्राणां शरीरे याभवद्रुजा ।
तया ते मानुषं कर्म व्यपोढं भृगुनन्दन ॥१५३॥
गृहाणास्त्राणि दिव्यानि मत्सकाशाद्यथेप्सितम् ।

अब प्रीति से युक्त हुए शूलधारी, देवों के देव शङ्कर ने कहा—हे राम ! शस्त्रों के प्रहार से तुम्हारे शरीर में जो व्यथा

उत्पन्न हो गई है। उससे तुम्हारे अमानुष कर्म की प्रतीति होती है। अब तुम मेरे पास से भी इच्छानुसार दिव्य अस्त्रों को ग्रहण करो ॥१५२-५३॥

दुर्योधन उवाच—

ततोऽस्त्राणि समस्तानि वरांश्च मनसेप्सितान् ॥१५४॥
लब्ध्वा बहुविधान्रामः प्रणम्य शिरसा भवम् ।
अनुज्ञां प्राप्य देवेशाज्जगाम स महातपाः ॥१५५॥

दुर्योधन ने कहा—हे मद्रेश्वर ! इस प्रकार सारे अस्त्र और मन के अनुसार बहुत से वर पाय परशुराम ने शिर झुकाकर भगवान् शङ्कर को प्रणाम किया और उन देवेश्वर से आज्ञा पाकर महा तपस्वी राम, वहां से चल दिए ॥१५४-१५५॥

एवमेतत्पुरावृत्तं तदा कथितवानृषिः ।
भार्गवोऽपि ददौ दिव्यं धनुर्वेदं महात्मने ॥१५६॥
कर्णाय पुरुषव्याघ्र सुप्रीतेनान्तरात्मना ।

हे पुरुष व्याघ्र ! ऋषि ने पिता जी के सन्मुख यह सारी व्यथा सुनाई थी। उन्हीं परशुराम ने महात्मा कर्ण के लिए प्रसन्न अन्तरात्मा द्वारा इस दिव्य धनुर्वेद की शिक्षा प्रदान की है ॥१५६॥

वृजिनं हि भवेत्किञ्चिद्यदि कर्णस्य पार्थिव ॥१५७॥
नास्मै ह्यस्त्राणि दिव्यानि प्रादास्यद्भृगुनन्दनः ।

हे नराधिप ! यदि महारथी कर्ण में कोई दोष होता—तो भृगुनन्दन इसके लिए दिव्य अस्त्र प्रदान नहीं करते ॥१५७॥

नापि सूतकुले जातं कर्णं मन्ये कथञ्चन ॥१५८॥
देवपुत्रमहं मन्ये क्षत्रियाणां कुलोद्भवम् ।
विसृष्टमवबोधार्थं कुलस्येति मतिर्मम ॥१५६॥

मैं तो कर्ण को सूत कुल में उत्पन्न नहीं मानता हूं । ये तो देवों द्वारा क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए हैं । इसकी उत्पत्ति तो स्वयं इसके कुल को सूचना रही है—ऐसी मेरी मति है ॥१५८-१५६॥

सर्वथा न ह्ययं शल्य कर्णः सूतकुलोद्भवः ।
सकुण्डलं सकवचं दीर्घबाहुं महारथम् ॥१६०॥
कथमादित्यसदृशं मृगी व्याघ्रं जनिष्यति ।

हे शल्य ! किसी भी तरह कर्ण, सूत कुल में उत्पन्न हुआ प्रतीत नहीं होता है । कुण्डल, कवचों से संयुक्त, दीर्घ-बाहु, सूर्य सदृश तेजस्वी, महारथी कर्ण को सूत कुल कैसे उत्पन्न कर सकता है॥ मृगी से सिंह के बच्चे पैदा नहीं हुआ करते ॥१६०॥

यथा ह्यस्य भुजौ पीनौ नागराजकरोपमौ ॥१६१॥
वक्षः पश्य विशालं च सर्वशत्रुनिवर्हणम ।
नत्वेष प्राकृतः कश्चित्कर्णो वैकर्त्तनो वृषः ॥१६२॥
महात्मा ह्येष राजेन्द्र रामशिष्यः प्रतापवान् ॥१६३॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि त्रिपुरवधोपाख्याने चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

इसकी भुजा नागराज वासुकि के तुल्य पुष्ट हैं और सारे शत्रुओं को रोकने में समर्थ हैं, इसके विकराल वक्षस्थल को तो

देखो। यह सूर्यपुत्र वृष, कर्ण, साधारण व्यक्ति नहीं है। हे राजेन्द्र! यह तो परशुराम का महात्मा प्रतापी शिष्य है॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में त्रिपुर वध के उपाख्यान में चौतीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

पैंतीसवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

एवं स भगवान्देवः सर्वलोकपितामहः।
सारथ्यमकरोत्तत्र ब्रह्मा रुद्रोऽभवद्रथी॥१

दुर्योधन ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार सब लोक पितामह भगवान् ब्रह्मदेव ने सारथिपन स्वीकार किया और भगवान् शङ्कर उस समय रथी बनकर चले॥१॥

रथिनोऽभ्यधिको वीर कर्त्तव्यो रथसारथिः।
तस्मात्त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान्युधि॥२॥

हे वीर! सारथि तो रथी से भी अधिक वीर बनाना चाहिए। हे पुरुष व्याघ्र! आप कर्ण से बलवान् हैं, इसी से आप को सारथि बनाया जा रहा है। अब इस संग्राम में अश्वों का संचालन करो॥२॥

यथा देवगणैस्तत्र वृत्तो यत्नात्पितामहः।
तथास्माभिर्भवान्यत्नात्कर्णादभ्यधिको वृतः॥३॥

जिस तरह देवों ने बड़े प्रयत्न के साथ पितामह ब्रह्मा को सारथि बनाया—उसी तरह हम भी बड़े आग्रह से कर्ण से अधिक मानकर आप को सारथि बनाते हैं ॥३॥

यथा देवैर्महाराज ईश्वरादधिको वृतः ।
तथा भवानपि क्षिप्रं रुद्रस्येव पितामहः ॥४॥
नियच्छ तुरगान्युद्धे राधेयस्य महाद्युते ।

हे महाराज ! जैसे देवों ने भगवान शङ्कर से अधिक ब्रह्मा जी को सारथि के लिए चुना—और वे पितामह रुद्र से अधिक माने गए—उसी तरह हम आप को भी महारथी कर्ण से अधिक मानकर ही सारथि बना रहे हैं । हे महाद्युते ! अब आप राधा पुत्र कर्ण के अश्वों का इस रण में संचालन करो ॥४॥

मयाप्येतन्नरश्रेष्ठ बहुशो नरसिंहयोः ॥५॥
कथ्यमानं श्रुतं दिव्यमाख्यानमतिमानुषम् ।

हे नरश्रेष्ठ ! मैंने कई बार उन उत्तम वीर ब्रह्मा और रुद्र के रथी और सारथिपन की कथा को सुना है । जो मनुष्यातिशायी दिव्य चरित है ॥५॥

यथा च चक्रे सारथ्यं भवस्य प्रपितामहः ॥६॥
यथासुराश्च निहता इषुणैकेन भारत ।
कृष्णस्य चापि विदितं सर्वमेतत्पुरा ह्यभूत ॥७॥
यथा पितामहो जज्ञे भगवान्सारथिस्तदा ।

हे भारत ! भगवान् रुद्र का पितामह ब्रह्मा ने जिस तरह सारथिपन ग्रहण किया तथा जिस प्रकार एक बाण से असुर

मारे गए-यह मैंने सब सुन रखा है। वसुदेव-पुत्र कृष्ण भी इस सारे वृत्तान्त को जानते हैं कि भगवान् ब्रह्मा किस तरह रुद्र के सारथि बन गए ॥६-७॥

अनागतमतिक्रान्तं वेद कृष्णोऽपि तत्त्वतः ॥८॥
एतदर्थं विदित्वापि सारथ्यमुपजग्मिवान् ।
स्वयम्भूरिव रुद्रस्य कृष्णः पार्थस्य भारत ॥९॥

यह कृष्ण भूत भविष्य सब कुछ जानता मालूम होता है-इसी बात को जानकर उसने भी अर्जुन का सारथि बनना स्वीकार किया है। हे भारत! रुद्र का जिस तरह स्वयम्भू ब्रह्मा सारथि बना उसी तरह अर्जुन के श्रीकृष्ण बने हैं ॥८-९॥

यदि हन्याच्च कौन्तेयं सूतपुत्रः कथञ्चन ।
दृष्ट्वा पार्थं हि निहतं स्वयं योत्स्यति केशवः ॥१०॥
शङ्खचक्रगदापाणिर्धक्ष्यते तव वाहिनीम् ।

यदि सूत-पुत्र कर्ण ने किसी प्रकार अर्जुन को मार लिया-तो अर्जुन को मृत देखकर कृष्ण स्वयं युद्ध करने लगेंगे। वे शङ्खचक्र गदा आदि शस्त्रों के धारण करने वाले हैं। वे तुम्हारी सेना को भस्म करके ही छोड़ेंगे ॥१०॥

न चापि तस्य क्रुद्धस्य वार्ष्णेयस्य महात्मनः ॥११॥
स्थास्यते प्रत्यनीकेषु कश्चिदत्र नृपस्तव ।

जब वृष्णिवंशश्रेष्ठ महावीर श्रीकृष्ण कुपित हो उठे-तो तुम विरोधियों की सेना में कोई राजा उनका सामना करने वाला दिखाई नहीं देता है ॥११॥

सञ्जय उवाच—

तं तथा भाषमाणं तु मद्रराजमरिन्दमः ॥१२॥

प्रत्युवाच महाबाहुरदीनात्मा सुतस्तव ।

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार कहते हुए मद्रराज शल्य से अरिमर्दन, महाबाहु, उदारआत्मा, तुम्हारा पुत्र, राजा दुर्योधन यह बोला ॥१२॥

मावमंस्था महाबाहो कर्णं वैकर्त्तनं रणे ॥१३॥

सर्वशस्त्रभृतां श्रेष्ठं सर्वशास्त्रार्थपारगम् ।

यस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वा भयकरं महत् ॥१४॥

पाण्डवेयानि सैन्यानि विद्रवन्ति दिशो दश ।

हे महाबाहो ! आप रण में सूर्य-पुत्र कर्ण का कोई अपमान न करो यह सारे शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ और सारे शास्त्रों का पारङ्गत पण्डित है। जिसके धनुष की प्रत्यञ्चा का भयङ्कर महाघोष सुनकर पाण्डवों की सारी सेना दशों दिशाओं को इधर उधर भाग निकलती है ॥१३-१४॥

प्रत्यक्षं ते महाबाहो यथा रात्रौ घटोत्कचः ॥१५॥

मायाशतानि कुर्वाणो हतो मायापुरस्कृतः ।

हे महाबाहो ! तुमने अपनी आंखों के सामने तो देखा कि, रात में घटोत्कच कितनी माया फैला रहा था, परन्तु उस मायावी को भी कर्ण ने मार गिराया ॥१५॥

न चातिष्ठत बीभत्सुः प्रत्यनीके कथञ्चन ॥१६॥
एतांश्च दिवसान्सर्वान्भयेन महतावृत्तः ।

तुमने देखा नहीं कि इतने दिन होगए-महान् भय से आकुल हुआ अर्जुन कभी कर्ण के सन्मुख नहीं ठहर पाया है ॥१६॥

भीमसेनश्च बलवान्धनुष्कोट्याभिचोदितः ॥१७॥
उक्तश्च संज्ञया राजन्मूढ औदरिको यथा ।

हे राजन् ! भीमसेन भी महाबलवान् अपने को मानता है; परन्तु उसको भी अपने धनुष की कोटि से कस तरह अपमानित किया और मूढ़ ! औदरिक ! आदि सम्बोधनों से उसे कितना फटकारा ॥१७॥

माद्रीपुत्रौ तथा शूरौ येन जित्वा महारणे ॥१८॥
कमप्यर्थं पुरस्कृत्य न हतौ युधि मारिष ।

हे आर्य ! इसी कर्ण ने महारण में शूरवीर माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव को भी जीत लिया, परन्तु किसी कारण से उसने रण में इनको मार नहीं गिराया ॥१८॥

येन वृष्णिप्रवीरस्तु सात्यकिः सात्वतां वरः ॥१६॥
निर्जित्य समरे शूरो विरथश्च बलात्कृतः ।

इसीने वृष्णिप्रवीर, सात्वत वंशश्रेष्ठ, शूरवीर सात्यकि को रण में जीतकर बल-पूर्वक विरथ कर दिया ॥१६॥

सृञ्जयाश्चेतरे सर्वे धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ॥२०॥
असकृन्निर्जिताः सङ्ख्ये स्मयमानेन संयुगे ।

इसी तरह धृष्टद्युम्न आदि पञ्चाल और सृञ्जय वीरों को इस महाभीषण संग्राम में बार २ जीत रखा है ॥२०॥

तं कथं पाण्डवा युद्धे विजेष्यन्ति महारथम् ॥२१॥
यो हन्यात्समरे क्रुद्धो वज्रहस्तं पुरन्दरम् ।

उसी महारथी कर्ण को पाण्डव युद्ध में कैसे जीत लेंगे, जो कर्ण यदि युद्ध में कुपित हो जावे-तो वज्रधारी इन्द्र को भी मार सकता है ॥२१॥

त्वं च सर्वास्त्रविद्वीरः सर्वविद्यास्त्रपारगः ॥२२॥
बाहुवीर्येण ते तुल्यः पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
त्वं शल्यभूतः शत्रूणामविषह्यः पराक्रमे ॥२३॥
ततस्त्वमुच्यसे राजञ्शल्य इत्यरिसूदन ।

तुम भी सारी युद्ध वद्या के जानने वाले और सारी विद्या तथा अस्त्रों के प्रयोगों में कुशल वीर हो। पृथिवी पर बाहुओं के पराक्रम में भी तुम्हारे समान कोई नहीं है। हे अरिसूदन ! तुम शत्रुओं के हृदय में शल्य की तरह गड़े रहते हो। तुम्हारे पराक्रम को कोई नहीं सह सकता हे राजन् ! इसीसे तुमको शल्य कहते हैं ॥२२-२३॥

तव बाहुबलं प्राप्य न शेकुः सर्वसात्वताः ॥२४॥
तव बाहुबलाद्राजन्किं तु कृष्णो बलाधिकः ।

हे राजन् ! तुम्हारे बाहुबल के सामने वृष्णि वीरों की भी नहीं चलती है, तुम्हारे बल के सामने कृष्ण भी कुछ अधिक बल नहीं रखता है ॥२४॥

यथा हि कृष्णेन बलं धार्यं वै फाल्गुने हते ॥२५॥
तथा कर्णात्ययीभावे त्वया धार्यं महद्बलम् ।

यदि अर्जुन मारे गए-तो सारी सेना का सञ्चालन कृष्ण करेंगे-इसी तरह यदि कर्ण का कुछ बिगाड़ होगया-तो तुम हमारी इस विशाल सेना की डोर अपने हाथ में लेना ॥२५॥

किमर्थं समरे सैन्यं वासुदेवो न्यवारयत् ॥२६॥
किमर्थं च भवान्सैन्यं न हनिष्यति मारिष ।

हे आर्य ! क्या कारण है, कि समय आने पर श्रीकृष्ण तो अपनी सेना के सञ्चालन करने को तय्यार हैं, परन्तु आप फिर क्यों सेनापति पद स्वीकार करके पाण्डवों की सेना का नाश नहीं करेंगे ॥२६॥

त्वत्कृते पदवीं गन्तुमिच्छेयं युधि मारिष ।
सोदराणां च वीराणां सर्वेषां च महीक्षिताम् ॥२७॥

हे आर्यगुणसम्पन्न ! मैं तो अपने सहोदर भ्राता और सारे राजाओं के मध्य में इस युद्ध में विजय ही इसलिए चाहता हूँ कि आप लोगों का यश और पद बढ़ जावे ॥२७॥

शल्य उवाच—

यन्मां ब्रवीषि गान्धारे अग्रे सैन्यस्य मानद ।
विशिष्टं देवकीपुत्रात्प्रीतिमानस्म्यहं त्वयि ॥२८॥
एष सारथ्यमातिष्ठे राधेयस्य यशस्विनः ।
युध्यतः पाण्डवाग्र्येण यथा त्वं वीर मन्यसे ॥२९॥

शल्य कहने लगे—हे गान्धारी-पुत्र ! मान देने वाले दुर्योधन ! तुमने जो भारी सेना के सन्मुख देवकी-पुत्र श्रीकृष्ण से अधिक हमें बताया-इससे हम तुम पर सन्तुष्ट होगए। अब में अर्जुन के साथ युद्ध के समय सारथिपन स्वीकार करने को तय्यार हूं। क्योंकि वीर ! दुर्योधन ! तुम्हारी यही इच्छा मालूम होती है ॥२८-२६

समयश्च हि मे वीर कश्चिद्वैकर्तनं प्रति ।
उत्सृजेयं यथाश्रद्धमहं वाचोऽस्य सन्निधौ ॥३०॥

हे वीर ! सूर्य-पुत्र कर्ण से मुझे कुछ समय (शर्त) निश्चित कर लेना है-और वह यही, कि जैसा मुझे प्रतीत होगा-मैं इसके सन्मुख वैसी ही वाणी मुझे स्वतन्त्रता से कह देने का अधिकार होगा ॥३०॥

सञ्जय उवाच—

तथेति राजन्पुत्रस्ते सह कर्णेन मारिष ।
अब्रवीन्मद्रराजानं सर्वक्षत्रस्य सन्निधौ ॥३१॥

सञ्जय बोले—हे राजन ! कर्ण से सम्मति करके सारे राजाओं के सन्मुख मद्रराज शल्य से यह प्रतिज्ञा करली गई, कि तुम अपनी बात को स्वतन्त्रता से कह सकोगे ॥

सारथ्यस्याभ्युपगमाच्छल्येनाश्वासितस्तदा ।
दुर्योधनस्तदा हृष्टः कर्णं तमभिषस्वजे ॥३२॥

जब राजा शल्य ने कर्ण का सारथि बनना स्वीकार कर लिया-तो राजा दुर्योधन को कुछ आश्वासन (तसल्ली) मिला। उसने बड़ी प्रसन्नता से कर्ण का आलिङ्गन किया॥३२॥

अब्रवीच्च पुनः कर्णं स्तूयमानः सुतस्तव।
जहि पार्थान्रणे सर्वान्महेन्द्रो दानवानिव ॥३३॥

प्रशंसा प्राप्त हुए तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने कर्ण से कहा—हे वीर ! अब दानवों को इन्द्र की भांति सारे पाण्डवों को तुम भी रण में मार गिराओ ॥३३॥

स शल्येनाभ्युपगते हयानां संनियच्छने।
कर्णो हृष्टमना भूयो दुर्योधनमभाषत ॥३४॥

जब राजा शल्य ने अश्वों के सञ्चालन का भार स्वीकार कर लिया-तो कर्ण बड़ा प्रफुल्लित हुआ और वह दुर्योधन से कहने लगा ॥३४॥

नातिहृष्टमना ह्येष मद्रराजोऽभिभाषते।
राजन्मधुरया वाचा पुनरेनं ब्रवीहि वै ॥३५॥

हे राजन् ! अभी तक मद्रराज शल्य अत्यन्त प्रसन्न नहीं दिखाई पड़ते। आप मधुर वाणी से फिर इनका सत्कार कीजिए ॥३५॥

ततो राजा महाप्राज्ञः सर्वास्त्रकुशलो बली।
दुर्योधनोऽब्रवीच्छल्यं मद्रराजं महीपतिम् ॥३६॥
पूरयन्निव घोषेण मेघगम्भीरया गिरा।

इसके बाद, महाबुद्धिमान, सब अस्त्र विद्या में कुशल, महाबली राजा दुर्योधन, मद्रराज शल्य से मेघ के समान गम्भीर वाणी द्वारा दिशाओं को भरते हुए यह वचन बोले ॥३६॥

शल्य कर्णोऽर्जुनेनाद्य योद्धव्यमिति मन्यते ॥३७॥
तस्य त्वं पुरुषव्याघ्र नियच्छ तुरगान्युधि ।

हे राजन्! शल्य! आज कर्ण का अर्जुन के साथ युद्ध होगा। हे पुरुषव्याघ्र! आपके युद्ध में कर्ण के अश्वों का नियमन करना है ॥३६॥

कर्णो हत्वेतरान्सर्वान्फाल्गुनं हन्तुमिच्छति ॥३८॥
तस्याभीषुग्रहे राजन्प्रयाचे त्वां पुनः पुनः ।

हे राजन्! आज कर्ण, सब पाञ्चाल वीरों को मार देना चाहते हैं। उन्हीं के अश्वों की रास पकड़ने को हमने तुमसे बार २ यह याचना की है और कर रहे हैं ॥३८॥

पार्थस्य सचिवः कृष्णो यथाभीषुग्रहो वरः ।
तथा त्वमपि राधेयं सर्वतः परिपालय ॥३९॥

अर्जुन के अश्वों की रास पकड़ने वाले, जैसे उत्तम सारथि श्रीकृष्ण हैं-उसी तरह तुम भी सब तरह से राधा-पुत्र कर्ण की रक्षा करते रहना ॥३९॥

सञ्जय उवाच—

ततः शल्यः परिष्वज्य सुतं ते वाक्यमब्रवीत् ।
दुर्योधनममित्रघ्नं प्रीतो मद्राधिपस्तदा ॥४०॥

सञ्जय बोले—हे गान्धारी-पुत्र ! सर्व सुन्दर ! राजन् ! दुर्योधन ! यदि तुम्हारी यही इच्छा है, तो हमें क्या है ? हमतो सब तरह तुम्हारे हित करने को उद्यत हैं ॥४०॥

शल्य उवाच—

एवं चेन्मन्यसे राजन्गान्धारे प्रियदर्शन ।
तस्मात्ते यत्प्रियं किञ्चित्तत्सर्वं करवाण्यहम् ॥४१॥

हे भरतश्रेष्ठ ! मैं जिस २ भी कार्य करने में योग्य हूं । उसी कार्य में तुम सर्वथा मुझे लगादो । मैं उसका सारा भार अच्छी तरह धारण करूंगा ॥४१॥

यत्रास्मि भरतश्रेष्ठ योग्यः कर्मणि कर्हिचित् ।
तत्र सर्वात्मना युक्तो वक्ष्ये कार्यं परन्तप ॥४२॥

हां ? बस ? यही एक बात है, कि मैं हित की कामना से जो कुछ प्रिय या अप्रिय वचन कह दूंगा-वे तुम और कर्ण को क्षमा करने पड़ेंगे ॥४२॥

यत्तु कर्णमहं ब्रूयां हितकामः प्रियाप्रिये ।
मम तत्क्षमतां सर्वं भवान्कर्णश्च सर्वशः ॥४३॥

कर्ण ने कहा—हे मद्रराज ! भगवान् रुद्र के ब्रह्मा, अर्जुन के कृष्ण, जैसे सारथि बने उसी तरह हमारे हित में तत्पर होकर आप हमारे सारथि बने, क्योंकि आप हमसे बड़े और हमारा हित करने वाले हैं ॥४३॥

कर्ण उवाच—

ईशानस्य यथा ब्रह्मा यथा पार्थस्य केशवः ।
तथा नित्यं हिते युक्तो मद्रराज भवस्व नः ॥४४॥

शल्य बोले—आर्य पुरुषों का यह आचरण है, कि वे अपनी निन्दा या स्तुति नहीं करते और न शत्रु की ही निन्दा या स्तुति करते हैं । यह सर्वश्रेष्ठ चार प्रकार का आर्यों का चरित है ॥४४॥

शल्य उवाच—

आत्मनिन्दात्मपूजा च परनिन्दा परस्तवः ।
अनाचरितमार्याणां वृत्तमेतच्चतुर्विधम् ॥४५॥

हे विद्वन् ! तो भी मैं अपना विश्वास उत्पन्न करने के निमित्त अपनी स्तुति से समन्वित वचन सुनाता हूं-तुम उसका तत्व समझना ॥४५॥

यत्तु विद्वन्प्रवक्ष्यामि प्रत्ययार्थमहं तव ।
आत्मनः स्तवसंयुक्तं तन्निबोध यथातथम् ॥४६॥
अहं शक्रस्य सारथ्ये योग्यो मातलिवत्प्रभो ।
अप्रमादात्प्रयोगाच्च ज्ञानविद्याचिकित्सनैः ॥४७॥

हे प्रभो ! मैं इन्द्र के सारथि मातलि की भांति सारथि के कार्य की योग्यता रखता हूं । मैं इसमें प्रमाद नहीं करता और बहुत बार प्रयोग (अभ्यास) करके इसमें कुशलता प्राप्त कर रखी है अश्वों के ज्ञान विद्या और चिकित्सा में मुझे बहुत कुछ परिचय है ॥४६-४७॥

ततः पार्थेन संग्रामे युध्यमानस्य तेऽनघ ।
वाहयिष्यामि तुरगान्विज्वरो भव सूतज ॥४८॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि शल्यसारथ्यस्वीकारे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

हे अनघ ! सूत-पुत्र ! जब तुम्हारा अर्जुन के साथ संग्राम होगा-तो मैं तुम्हारे अश्वों को चलाऊंगा तुम निश्चित हो जाओ। किसी बात की चिन्ता मत करो ॥४८॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में राजा शल्य का
कर्ण के सारथि बनने का पैंतीसवां अध्याय पूरा हुआ।



छत्तीसवां अध्याय

दुर्योधन उवाच—

अयं ते कर्ण सारथ्यं मद्रराजः करिष्यति ।
कृष्णादभ्यधिको यन्ता देवेशस्येव मातलिः ॥१॥

दुर्योधन बोले—हे कर्ण ! ये मद्रराज आपके सारथिपन करने को तय्यार होगए हैं, जो कृष्ण से भी अधिक इन्द्र के सारथि मातलि के सदृश उत्तम सारथि हैं ॥१॥

यथा हरिहयैर्युक्तं संगृह्णाति स मातलिः ।
शल्यस्तथा तवाद्यायं संयन्ता रथवाजिनाम् ॥२॥

मातलि नामक इन्द्र का सारथि, इन्द्र के अश्व से युक्त रथ को जिस तरह हो सकता है, आज राजा शल्य भी तुम्हारे रथके अश्वों की रास उसी तरह ग्रहण करेंगे ॥२॥

योधे त्वयि रथस्थे च मद्रराजे च सारथौ ।
रथश्रेष्ठो ध्रुवं सङ्ख्ये पार्थानभिभविष्यति ॥३॥

हे कर्ण ! जब तुम तो रथी होकर रथ में बैठ जाओगे और मद्रराज शल्य सारथि बन जायेंगे उस समय तुम्हारा यह उत्तम रथ, सारे पाण्डवों को भगाता ही दिखाई देगा ॥३॥

सञ्जय उवाच—

ततो दुर्योधनो भूयो मद्रराजं तरस्विनम् ।
उवाच राजन्संग्रामेऽभ्युषिते पर्युपस्थिते ॥४॥
कर्णस्य यच्छ संग्रामे मद्रराज हयोत्तमान् ।
त्वयाभिगुप्तो राधेयो विजेष्यति धनञ्जयम् ॥५॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! राजा दुर्योधन ने वेग शाली मद्रराज शल्य से प्रातः काल संग्राम के प्रवृत्त होने पर यह वचन कहा हे मद्रराज ! तुम अङ्गराज कर्ण के अश्वों का रण में निमन्त्रण करो क्योंकि तुम से अभिरक्षित राधा-पुत्र कर्ण, धनञ्जय अर्जुन को अवश्य जीत लेंगे ॥४-५॥

इत्युक्तो रथमास्थाय तथेति प्राह भारत ।
शल्येऽभ्युपगते कर्णः सारथिं सुमनाब्रवीत् ॥६॥
त्वं सूत स्यन्दनं मह्यं कल्पयेत्यसकृत्त्वरन् ।

हे भारत! जब राजा दुर्योधन ने यह आज्ञा दी तो उसने कहा—अच्छी बात है इतना कहकर राजा शल्य रथ पर बैठ कर वहां उपस्थित हो गए। सारथि बने हुए राजा शल्य से कर्ण ने बड़ी प्रसन्नता के साथ यह वचन कहा—हे सारथे! तुम मेरे युद्ध के निमित्त बड़ी शीघ्रता से रथको सुसज्जित करके ले आओ ॥६॥

ततो जैत्रं रथवरं गन्धर्वनगरोपमम् ॥७॥
विधिवत्कल्पितं भद्रं जयेत्युक्त्वा न्यवेदयत् ।

इसके बाद, गन्धर्व नगर के तुल्य, विजय चिन्हों से समन्वित कल्याणकारी रथ को विधि पूर्वक सजाकर जय ध्वनि करते हुए मद्रराज ने लाकर उपस्थित कर दिया ॥७॥

तं रथं रथिनां श्रेष्ठः कर्णोऽभ्यर्च्य यथाविधि ॥८॥
सम्पादितं ब्रह्मविदा पूर्वमेव पुरोधसा ।
कृत्वा प्रदक्षिणं यत्नादुपस्थाय च भास्करम् ॥९॥
समीपस्थं मद्रराजमारोह त्वमथाब्रवीत् ।

रथियों में श्रेष्ठ कर्ण ने उस रथ की विधि पूर्वक पूजा की जिस को वेद के ज्ञाता पुरोहित ने पूर्व से ही पूजा के योग्य बना रखा था। कर्ण ने यत्न के साथ उसकी प्रदक्षिणा की और सूर्य का उपस्थान किया और पास में स्थित मद्रराज शल्य से कहा-तुम रथ पर चढ़ो ॥८-९॥

ततः कर्णस्य दुर्धर्षं स्यन्दनप्रवरं महत् ॥१०॥
आरुरोह महातेजाः शल्यः सिंह इवाचलम् ।

राजा कर्ण के दुर्धर्ष उत्तम रथ पर महा तेजस्वी शल्य इस तरह चढ़ गए जैसे सिंह पर्वत पर चढ़ जाता है ॥१०॥

ततः शल्याश्रितं दृष्ट्वा कर्णः स्वं रथमुत्तमम् ॥११॥
अध्यतिष्ठद्यथाम्भोदं विद्युद्वन्तं दिवाकरः ।

जब महारथी कर्ण ने देखा, कि राजा शल्य इस उत्तम रथ पर चढ़ गए-तो स्वयं कर्ण बिजली से देदीप्यमान मेघ पर सूर्य की भाँति आप भी चढ़ गए ॥११॥

तावेकरथमारूढावादित्याग्निसमत्विषौ ॥१२॥
अभ्राजेतां यथा मेघं सूर्याग्नी सहितौ दिवि ।

सूर्य और अग्नि के समान कान्ति वाले, वे दोनों एक रथ पर चढ़े हुए इस तरह चमकने लगे-जैसे-सूर्य और अग्नि इकट्ठे ही मेघ पर पहुँचे हुए चमकते हैं ॥१२॥

संस्तूयमानौ तौ वीरौ तदास्तां द्युतिमत्तमौ ॥१३॥
ऋत्विक्सदस्यैरिन्द्राग्नी स्तूयमानाविवाध्वरे ।

इन कान्तिमान् दोनों वीरों की सब ने इस तरह स्तुति की, जैसे ऋत्विक और सदस्य, यज्ञ में इन्द्र और अग्नि की स्तुति करते हैं ॥१३॥

स शल्यसंगृहीताश्वे रथे कर्णः स्थितो बभौ ॥१४॥
धनुर्विस्फारयन्घोरं परिवेषीव भास्करः ।

जब शल्य ने अश्वों की रास पकड़ ली, तो रण में रथ में स्थित धनुष खैंचते हुए अङ्गराज कर्ण, इस तरह प्रतीत होने लगे-जैसे-मण्डल बनाए हुए सूर्य दिखाई देता है ॥१४॥

आस्थितः स रथश्रेष्ठं कर्णः शरगभस्तिमान् ॥१५॥
प्रबभौ पुरुषव्याघ्रो मन्दरस्थ इवांशुमान् ।

इस उत्तम रथ में स्थित, बाणरूपी किरणों से युक्त, पुरुष श्रेष्ठ कर्ण इस तरह सुशोभित हुए जैसे-मन्दराचल पर स्थित किरणधारी सूर्य सुशोभित होता है ॥१५॥

तं रथस्थं महाबाहुं युद्धायामिततेजसम् ॥१६॥
दुर्योधनस्तु राधेयमिदं वचनमब्रवीत् ।

युद्ध के निमित्त रथ में बैठे हुए अत्यन्त तेजस्वी, महाबाहु, राधा-पुत्र कर्ण से राजा दुर्योधन यह वचन बोले ॥१६॥

अकृतं द्रोणभीष्माभ्यां दुष्करं कर्म संयुगे ॥१७॥
कुरुष्वाधिरथे वीर मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

हे अधिरथ पुत्र वीर ! कर्ण, आज तुम सारे धनुषधारियों के आगे वह दुष्कर कर्म कर दिखाओ जो द्रोणाचार्य और भीष्म पितामह भी नहीं कर सके हैं ॥१७॥

मनोगतं मम ह्यासीद्भीष्मद्रोणौ महारथौ ॥१८॥
अर्जुनं भीमसेनं च निहन्तारावितिि ध्रुवम् ।

मेरे तो मन में यह विचार था कि महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य इस युद्ध में निश्चय अर्जुन और भीम को मारे विना नहीं छोड़ेंगे ॥१८॥

ताभ्यां यदकृतं वीर वीरकर्म महामृधे ॥१९॥
तत्कर्म कुरु राधेय वज्रपाणिरिवापरः ।

हे वीर ! राधेय ! इस महायुद्ध में जिस भीम और अर्जुन के मारण रूप वीर कर्म को भीष्म और द्रोण दोनों नही कर पाये उसी कर्म को दूसरे वज्रपाणि इन्द्र की भाँति तुम आज कर दिखाओ ॥१९॥

गृहाण धर्मराजं वा जहि वा त्वं धनञ्जयम् ॥२०॥
भीमसेनं च राधेय माद्रीपुत्रौ यमावपि ।

जहां तक हो सके धर्मराज को पकड़ लेना, और अर्जुन को मार गिराना तथा भीमसेन माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव को भी यमराज के अतिथि बना देना ॥२०॥

जयश्च तेऽस्तु भद्रं ते प्रयाहि पुरुषर्षभ ॥२१॥
पाण्डुपुत्रस्य सैन्यानि कुरु सर्वाणि भस्मसात् ।

हे पुरुषर्षभ ! तुम्हारी विजय और कल्याण हो । अब तुम विजय यात्रा को चलो । आज तो पाण्डु-पुत्र धर्मराज की सारी सेनाओं को भस्म कर डालो ॥२१॥

ततस्तूर्यसहस्राणि भेरीणामयुतानि च ॥२२॥
वाद्यमानान्यरोचन्त मेघशब्दो यथा दिवि ।

इस समय सहस्रों तुरी, दशो हजार भेरी, बजते हुए ऐसे प्रतीत होते थे-जैसे आकाश में मेघ का शब्द हो रहा हो ॥२२॥

प्रतिगृह्य तु तद्वाक्यं रथस्थो रथसत्तमः ॥२३॥
अभ्यभाषत राधेयः शल्यं युद्धविशारदम् ।

रथ में स्थित रथी श्रेष्ठ, राधा-पुत्र कर्ण, उसके वचनों को ग्रहण करके युद्ध विशारद राजा शल्य से बोले ॥२३॥

चोदयाश्वान्महाबाहो यावद्धन्मि धनञ्जयम् ॥२४॥
भीमसेनं यमौ चोभौ राजानं च युधिष्ठिरम् ।

हे महा बाहो ! तुम अश्वों को उधर ही ले चलो-जहांपर माद्री पुत्र अर्जुन, नकुल, सहदेव, भीमसेन, धर्मराज युधिष्ठिर और धनञ्जय अर्जुन हो-मुझे आज अर्जुन को युद्ध में मार गिराना है ॥२४॥

अद्य पश्यतु मे शल्य बाहुवीर्यं धनञ्जयः ॥२५॥
अस्यतः कङ्कपत्राणां सहस्राणि शतानि च ।

हे शल्य ! आज धनञ्जय (अर्जुन) मेरे बाहुओं के बल देख लेगा। जब कि मैं कङ्कपत्रधारी सैंकड़ों हजारों बाण फैंकूंगा ॥२५॥

अद्य क्षेप्स्याम्यहं शल्य शरान्परमतेजनान् ॥२६॥
पाण्डवानां विनाशाय दुर्योधनजयाय च ।

हे शल्य, आज मैं अत्यन्त तेज बाणों को पाण्डवों के विनाश और राजा दुर्योधन की विजय के लिए फैंकना आरम्भ करूंगा ॥२६॥

शल्य उवाच—

सूतपुत्र कथं नु त्वं पाण्डवानवमन्यसे ॥२७॥
सर्वास्त्रज्ञान्महेष्वासान्सर्वानेव महाबलान् ।

शल्य ने कहा—हे सूत-पुत्र ! तुम कैसे पाण्डवों को क्षुद्र समझ कर उनकी उपेक्षा कर रहे हो। वे सारे अस्त्रों के जानने वाले महा धनुर्धर और सारे ही महा बली हैं ॥२७॥

अनिवर्तिनो महाभागानजय्यान्सत्यविक्रमान्॥२८॥
अपि सन्तनयेयुर्ये भयं साक्षाच्छतक्रतोः।

ये महावीर, कभी युद्ध से पीछा हटना नहीं जानते हैं। ये किसी से भी नहीं जीते जाने वाले सच्चे पराक्रमी हैं। ये तो साक्षात् शतक्रतु इन्द्र को भी भय उत्पन्न कर देते हैं॥२८॥

यदा श्रोष्यसि निर्घोषं विस्फूर्जितमिवाशनेः॥२९॥
राधेय गाण्डिवस्याजौ तदा नैवं वदिष्यसि।

हे राधेय! जब बिजली की कड़कके तुल्य भीषण गाण्डीव धनुष की रण में ध्वनि सुनेगा-उस समय यह सब कुछ कहना सुनना भूल जावेगा॥२९॥

यदा द्रक्ष्यसि भीमेन कुञ्जरानीकमाहवे॥३०॥
विशीर्णदन्तं निहतं तदा नैवं वदिष्यसि।

जब तुम रण में भीम द्वारा हाथियों की सेना को नष्ट भ्रष्ट दांतों से ही देखोगे तब यह सब कुछ कहना याद नहीं रहेगा॥३०॥

यदा द्रक्ष्यसि संग्रामे धर्मपुत्रं यमौ तथा॥३१॥
शितैः पृषत्कैः कुर्वाणानभ्रच्छायामिवाम्बरे।
अस्यतः क्षिण्वतश्चारीॅल्लघुहस्तान्दुरासदान्।
पार्थिवानपि चान्यांस्त्वं तदा नैवं वदिष्यसि॥३२॥

जब तुम धर्मराज और नकुल सहदेव को अपने चमकीले बाणों से आकाश में बादलों की छत सी छवाये तथा बाण फैंकते

और शीघ्र हाथ फेंकने वाले अन्य दुरासद शत्रु राजाओं को नष्ट होते देखोगे-तब यह कुछ भी नहीं बोल सकोगे ॥३१-३२॥

सञ्जय उवाच—

अनादृत्य तु तद्वाक्यं मद्रराजेन भाषितम् ।
याहीत्येवाब्रवीत्कर्णो मद्रराजं तरस्विनम् ॥३३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि शल्यसंवादे षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! मद्रराज के कहे हुए वाक्यों की कुछ परवा न करके तेजस्वी मद्रराज से कर्ण ने कहा-अच्छी बात है। तुम आगे चलो ॥३३॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में कर्ण और शल्य सम्वादका छत्तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।



सैंतीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा कर्णं महेष्वासं युयुत्सुं समवस्थितम् ।
चुक्रुशुः कुरवः सर्वे हृष्टरूपाः समन्ततः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! महाधनुर्धर युद्ध के लिए तय्यार महारथी कर्ण को देखकर सारे कौरव बड़ी प्रसन्नता से कोलाहल करने लगे ॥१॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषैर्भेरीणां निनदेन च ।
बाणशब्दैश्च विविधैर्गर्जितैश्च तरस्विनाम् ॥२॥
निर्ययुस्तावका युद्धे मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

हे राजन् ! अब तुम्हारे पक्ष के वीर, दुन्दुभियों के घोष, भेरियों के निनाद, बाणों के विविध शब्द, तथा वेगशाली योद्धाओं की गर्जना के साथ मृत्यु का भय छोड़कर युद्ध के लिए निकल पड़े ॥२॥

प्रयाते तु ततः कर्णे योधेषु मुदितेषु च ॥३॥
चचाल पृथिवी राजन्ववाश च सुविस्तरम् ।

हे राजन् ! जब कर्ण युद्ध के लिए निकल पड़े-तो योद्धा लोग, बड़े प्रसन्न हुए । पृथिवी कांपने लगी और उसमें बड़े विस्तार के साथ शब्द होने लगा ॥३॥

निःसरन्तो व्यदृश्यन्त सूर्यात्सप्त महाग्रहाः ॥४॥
उल्कापाताश्च सञ्जज्ञुर्दिशां दाहास्तथैव च ।
शुष्काशन्यश्च सम्पेतुर्ववुर्वाताश्च भैरवाः ॥५॥

इस समय सात महाग्रह, सूर्य से निकलते हुए दिखाई पड़े उल्कापात होने लगे और दिशाओं में आग जल उठी । विना वर्षा के बिजली गिरने लगी और भीषण वायु चल पड़ा ॥४-५॥

मृगपक्षिगणाश्चैव पृतनां बहुशस्तव ।
अपसव्यं तदा चक्रुर्वेदयन्तो महाभयम् ॥६॥

बहुत से मृग और पक्षी, सेना के दांयी ओर जाने लगे, जिनसे भी भय की सूचना मिल रही थी ॥६॥

प्रस्थितस्य च कर्णस्य निपेतुस्तुरगा भुवि ।
अस्थिवर्षं च पतितमन्तरिक्षाद्भयानकम् ॥७॥
जज्वलुश्चैव शस्त्राणि ध्वजाश्चैव चकम्पिरे ।
अश्रूणि च व्यमुञ्चन्त वाहनानि विशाम्पते ॥८॥

जब कर्ण ने युद्ध के लिए प्रथम पैर उठाया-तो उसके घोड़े पृथिवी में बैठ पड़े । इसी समय आकाश से भयानक अस्थि वर्षा होने लगी । हे विशाम्पते ! शस्त्र जलने, ध्वजा कांपने और वाहनों की आंखों से आंसू पड़ने लगे ॥७-८॥

एते चान्ये च बहव उत्पातास्तत्र दारुणाः ।
समुत्पेतुर्विनाशाय कौरवाणां सुदारुणाः ॥९॥

हे नराधिप ! ये पूर्वोक्त तथा अन्य भी बहुत से दारुण उत्पात हुए । ये सब दारुण, उत्पात कौरवों के विनाश की सूचना दे रहे थे ॥९॥

न च तान्गणयामासुः सर्वे दैवेन मोहिताः ।
प्रस्थितं सूतपुत्रं च जयेत्यूचुर्नराधिपाः ।
निर्जितान्पाण्डवांश्चैव मेनिरे तत्र कौरवाः ॥१०॥

सारे कौरव वीरों ने दैव की माया से मोहित होकर इन उत्पातों की कुछ भी परवा नहीं की । ज्योंही सूत-पुत्र कर्ण, युद्ध यात्रा को चले-तो अन्य राजाओं ने उनकी जय ध्वनि का उच्चारण

किया, उस समय कौरवों ने यही समझा कि बस ? अब जीत ही लिये गए ॥१०॥

ततो रथस्थः परवीरहन्ता भीष्मद्रोणावतिवीर्यौ समीक्ष्य ।
समुज्ज्वलन्भास्करपावकाभो वैकर्तनोऽसौ रथकुञ्जरो नृप ॥
स शल्यमाभाष्य जगाद वाक्यं पार्थस्य कर्मातिशयं विचिन्त्य ।
मानेन दर्पेण विदह्यमानः क्रोधेन दीप्यन्निव निःश्वसंश्च ॥१२॥

हे नृप ! शत्रुओं का नाश करने वाला, अत्यन्त वीर्यशाली भीष्म और द्रोण की पदवी की ओर देखता हुआ, भास्कर और अग्नि के समान जाज्वल्यमान महारथियों में श्रेष्ठ, रथ में स्थित हुआ, सूर्य-पुत्र कर्ण, राजा शल्य को सम्बोधित करके और अर्जुन के वीरता पूर्ण कर्मों का विचार करके बोला । यह इस समय वीरता के अभिमान और घमण्ड में चूर क्रोध से देदीप्यमान हुआ निःश्वास ले रहा था ॥११-१२॥

नाहं महेन्द्रादपि वज्रपाणेः क्रुद्धाद्बिभेम्यायुधवान्रथस्थः ।
दृष्ट्वा हि भीष्मप्रमुखाञ्शयानानतीव मां ह्यस्थिरता जहाति ॥

हे शल्य ! जब मैं शस्त्र लेकर रथ में बैठ जाता हूं-तब क्रोध में भरे हुए वज्रधारी इन्द्र से भी नहीं डरता हूं । इस युद्ध में भीष्म द्रोण जैसे महारथियों को रणभूमि में सोते देखकर मुझे युद्ध के लिए और भी दृढ़ता होती है ॥१३॥

महेन्द्रविष्णुप्रतिमावनिन्दतौ रथाश्वनागप्रवरप्रमाथिनौ ।
अवध्यकल्पौ निहतौ यदा परैस्ततो न मेऽप्यस्ति रणेऽद्यसाध्वसम्

हे मद्रेश्वर ! इन्द्र और विष्णु के तुल्य पराक्रमी, सर्वथा प्रशंसनीय, उत्तम २ रथ, अश्व और हाथियों को भी मथ देने वाले, किसी प्रकार भी नहीं मारने जाने वाले, भीष्म और द्रोणाचार्य, शत्रुओंने मारलिए-तो भी मुझे आज कुछ रणमें घबराहट नहीं होती है ॥१४॥

समीक्ष्य सङ्ख्येऽतिबलान्नराधिपान्ससूतमातङ्गरथान्परैर्हतान् ।
कथं न सर्वानहितान्रणेऽवधीन्महास्त्रविद्ब्राह्मणपुङ्गवो गुरुः ॥

हे राजन् ! मेरी तो यह समझ में ही नहीं आता, कि जब महान् अस्त्रों के ज्ञाता ब्राह्मण श्रेष्ठ द्रोणाचार्य ने सारथि हाथी और रथों के साथ शत्रु द्वारा अत्यन्त बलवान् अपने अपने पक्ष के अनेक राजाओं को नष्ट होते देखा-तो उसने क्यों नहीं इन सब शत्रुओं को रण में मार लिया ॥१५॥

स संस्मरन्द्रोणमहं महाहवे ब्रवीमि सत्यं कुरवो निबोधत ।
न वा मदन्यः प्रसहेद्रणेऽर्जुनं समागतं मृत्युमिवोग्ररूपिणम् ॥

हे कौरव वीरों ! द्रोणाचार्य के इन कामों का विचार कर मैं इस महारण में तुमसे एक सत्य बात कह देता हूं, कि रण में सन्मुख आये हुए मृत्यु के तुल्य उग्र रूपधारी, अर्जुन को मेरे सिवा रोकने में कोई समर्थ नहीं है ॥१६॥

शिक्षाप्रसादश्च बलं धृतिश्च द्रोणे महास्त्राणि च संनतिश्च ।
स चेदगान्मृत्युवशं महात्मा सर्वानन्यानातुरानद्य मन्ये ॥१७॥

जिस द्रोणाचार्य के पास अस्त्र विद्या की शिक्षा का विकास, बल, धैर्य, नम्रता और बड़े २ अस्त्रों का समूह था, वह महावीर भी यदि मृत्यु को प्राप्त होगया-तो फिर मैं तो अन्य सब राजाओं को सारहीन ही समझता हूं ॥१७॥

नेह ध्रुवं किञ्चिदपि प्रचिन्तयन्विद्यां लोके कर्मणो दैवयोगात्
सूर्योदये को हि विमुक्तसंशयो भावं कुर्वीताद्य गुरौ निपातिते ॥

हे नराधिप ! शल्य ! दैव योग से वह दशा उपस्थित होगई है, कि इस युद्ध कर्म को पूरा कर देने वाला योद्धा सोचने पर भी मुझे नहीं दिखाई देता है । जब आचार्य द्रोण ही रण में गिर गए तो प्रातःकाल होते ही संशय छोड़कर आज कौन युद्ध के लिए निकल सकेगा ॥१८॥

न नूनमस्त्राणि बलं पराक्रमः क्रियाः सुनीतं परमायुधानि वा ।
अलं मनुष्यस्य सुखाय वर्तितुं तथा हि युद्धे निहतः परैर्गुरुः ॥

हे सारथे ! अस्त्र, बल, पराक्रम, क्रिया, सुनीति और उत्तम शस्त्र, ये सब कुछ मनुष्य के सुख के साधन बन जाय-यह कोई आवश्यक बात नहीं है । यही बात है, कि युद्ध में द्रोण जैसा अस्त्र विद्या का आचार्य भी शत्रुओं द्वारा मारा गया ॥१९॥

हुताशनादित्यसमानतेजसं पराक्रमे विष्णुपुरन्दरोपमम् ।
नये बृहस्पत्युशनोः सदा समं न चैनमस्त्रं तदुपास्तदुःसहम् ॥

आचार्य द्रोण का अग्नि, आदित्य, के समान तेज था और पराक्रम में वे विष्णु और इन्द्र के तुल्य थे । नीति में बृहस्पति

और उशना के तुल्य थे-इन पर दुःसह शस्त्र अपना काम कर गए और ये उन्हें अस्त नहीं कर सके ॥२०॥

सम्प्राकुष्टे रुदितस्त्रीकुमारे पराभूते पौरुषे धार्तराष्ट्रे।
मया कृत्यमिति जानामि शल्य प्रयाहि तस्माद् द्विषतामनीकम्॥

हे शल्य ! इस समय कौरव स्त्री और बच्चे रो रहे हैं। धृतराष्ट्र-पुत्र कौरवों का पुरुषार्थ क्षीण होगया है । अतः मुझे क्या करना चाहिए यह मैं सब कुछ समझता हूं अब तुम इन सब बातों को सोचकर शीघ्रता से शत्रु सेना की ओर चलो ॥२१॥

यत्र राजा पाण्डवः सत्यसन्धो व्यवस्थितो भीमसेनार्जुनौ च।
वासुदेवः सात्यकिः सृञ्जयाश्च यमौ च कस्तान्विषहेन्मदन्यः॥

जिस सेना में पाण्डु-पुत्र सत्य प्रतिज्ञाधारी, राजा युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, सात्यकि, सृञ्जय, नकुल और सहदेव स्थित हैं, उस सेना के वेग को मेरे सिवा अन्य कौन सह सकता है ॥२२॥

तस्मात्क्षिप्रं मद्रपते प्रयाहि रणे पञ्चालान्पाण्डवान्सृञ्जयांश्च।
तान्वा हनिष्यामि समेत्य सङ्ख्ये यास्यामि वा द्रोणपथा यमाय॥

हे मद्रपते ! अब तुम इस रण में शीघ्रता के साथ पञ्चाल, पाण्डव और सृञ्जयों की ओर बढ़ो । आज या तो मैं उनको मार ही लेता हूं या द्रोण की तरह मैं भी यमराज के घर का अतिथि बन जाता हूं ॥२३॥

नत्वेवाहं न गमिष्यामि मध्ये तेषां शूराणामिति मां शल्य विद्धि।
मित्रद्रोहो मर्षणीयो न मेऽयं त्यक्त्वा प्राणाननुयास्यामि द्रोणम्

हे शल्य ! मैं उन शूरवीरों के मध्य में नहीं पहुंचूंगा-यह तुम न समझ लेना। मैं कभी अपने मित्र दुर्योधन के साथ विश्वासघात नहीं करूंगा। मैं तो अपने प्राणों को द्रोण की तरह अर्पण करके भी आज युद्ध करूंगा ॥२४॥

प्राज्ञस्य मूढस्य च जीवितान्ते नास्ति प्रमोक्षोऽन्तकसत्कृतस्य।
अतो विद्वन्नभियास्यामि पार्थान्दिष्टं न शक्यं व्यतिवर्तितुं वै ॥

हे विद्वन् ! चाहे मूर्ख हो या पण्डित-सबको जीवन के अन्त में यम के यहां पहुंचना है। काल के अतिथि सत्कार से कोई छुटकारा नहीं पा सकता। इन सब बातों को सोचकर मैं आज पाण्डवों की ओर बढ़ रहा हूं। जो होना हो-सो होवे-कोई भी होनहार को नहीं हटा सकता है ॥२५॥

कल्याणवृत्तः सततं हि राजा वैचित्रवीर्यस्य सुतो ममासीत्।
तस्यार्थसिद्ध्यर्थमहं त्यजामि प्रियान्भोगान्दुस्त्यजं जीवितं च ॥

विचित्र वीर्य के पुत्र राजा धृतराष्ट्र के पुत्र राजा दुर्योधन सदा हमारे सुख का प्रयत्न करते रहे हैं। उसकी अर्थ सिद्धि के निमित्त, मैं अपने प्रियभोग और दुस्त्यज जीवन को भी छोड़ दूंगा ॥२६॥

वैयाघ्रचर्माणमकूजनाक्षं हेमत्रिकोशं रजतत्रिवेणुम्।
रथप्रवहं तुरगप्रवर्हैर्युक्तं प्रादान्मह्यमिमं हि रामः ॥२७॥

हे राजन ! परशुराम ने सिंह के चर्म से आवृत, धुरे के शब्दों से रहित, सुवर्ण की तीन छतरी और चांदी की बनी हुई बांसों की सी चपेट वाले, उत्तम अश्वों से युक्त, उत्तम रथ को प्रदान किया है ॥२७॥

धनूंषि चित्राणि निरीक्ष्य शल्य ध्वजान्गदाः सायकांश्चोग्ररूपान्
असिं च दीप्तं परमायुधं च शङ्खं च शुभ्रं स्वनवन्तमुग्रम् ॥२८॥

हे शल्य ! चमकते हुए खड्ग, विचित्र धनुष, ध्वजा, गदा, उग्र रूपधारी बाण, बड़े २ आयुध और शुभ्र तथा अत्यन्त ध्वनि करने वाले इस शङ्ख, को तो तुम देखो ॥२८॥

पताकिनं वज्रनिपातनिःस्वनं सिताश्वयुक्तं शुभतूणशोभितम् ।
इमं समास्थाय रथं रथर्षभं रणे हनिष्याम्यहमर्जुनं बलात् ॥२६॥

हे राजन ! पताकाओं से युक्त, वज्र के गिरने के तुल्य शब्द करने वाले, श्वेत अश्वों से युक्त, सुन्दर तूणीरधारी, अन्य रथों में श्रेष्ठ, इस पर बैठकर आज हम अपने बल के द्वारा रण में अर्जुन को अवश्य मार गिरावेंगे ॥२६॥

तं चेन्मृत्युः सर्वहरोऽभिरक्षेत्सदाप्रमत्तः समरे पाण्डुपुत्रम् ।
तं वा हनिष्यामि रणे समेत्य यास्यामि वा भीष्ममुखो यमाय ॥

हे नृपते ! यदि सब के नाश करने वाले कालने मेरी सहायता की-तो मैं बड़ी सावधानी से रण में पाण्डु-पुत्र अर्जुन को मार गिराऊंगा । यदि आज वह नहीं मारा गया-तो भीष्म की तरह मैं भी यमलोक को चला जाऊंगा ॥३०॥

यमवरुणकुबेरवासवा वा यदि युगपत्सगणा महाहवे।
जुगुपिषव इहाद्य पाण्डवं किमु बहुना सह तैर्जयामि तम् ॥२१॥

यम, वरुण, कुबेर और इन्द्र भी, यदि इस महायुद्ध में अपने अपने गणों के साथ एक दम अर्जुन की रक्षा के निमित्त आजावें-तो भी अधिक क्या कहना है- मैं आज उनके साथ ही अर्जुन को जीते विना न छोड़ूंगा ॥२१॥

सञ्जय उवाच—

इति रणरभसस्य कत्थतस्तदुत निशम्य वचः स मद्रराट्।
अवहसदवमन्य वीर्यवान्प्रतिमिषिधे च जगाद चोत्तरम् ॥२२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! रण की शीघ्रता करने वाले और अपनी प्रशंसा में लगे हुए कर्ण के वचन सुनकर उसपर अपमान के साथ हंसते हुए, वीर्यवान् मद्रेश्वर शल्य, कर्ण की बात को काटकर उसे इस तरह उत्तर देने लगे ॥२२॥

शल्य उवाच—

विरम विरम कर्ण कत्थनादतिरभसोऽप्यतिवाचमुक्तवान्।
क्व च हि नरवरो धनञ्जयः क्व पुनरहो पुरुषाधमो भवान् ॥२३॥

शल्य ने कहा—हे कर्ण ! तुम अपनी प्रशंसा की डींग मत मारो। तुम यद्यपि युद्ध में वेग वाले हो-तोभी तुमने अपने पराक्रम की अतिशयोक्ति की है। कहां तो पुरुष प्रवीर अर्जुन और कहां अपनी प्रशंसा करने वाले क्षुद्र पुरुष तुम हो ॥२३॥

यदुसदनमुपेन्द्रपालितं त्रिदशमिवामरराजरक्षितम् ।
प्रसभमतिविलोड्य को हरेत्पुरुषवरावरजामृतेऽर्जुनात् ॥३४॥

हे कर्ण! इन्द्र से रक्षित स्वर्ग की भांति यादवोंका नगर श्रीकृष्ण से सुरक्षित था । उसी श्रीकृष्ण की छोटी बहन सुभद्रा को अपने बलसे सारे यादवों को जीतकर अर्जुन के सिवा कौन अपहरण करके लासकता था ॥३४॥

त्रिभुवनविभुमीश्वरेश्वरं क इह पुमान्भवमाह्वयेद्युधि ।
मृगवधकलहे ऋतेऽर्जुनात्सुरपतिवीर्यसमप्रभावतः ॥३५॥

त्रिभुवनपति, ईश्वरों के भी ईश्वर भगवान शङ्कर से कौन युद्ध करसकता है परन्तु सुरपति इन्द्र के समान पराक्रमी अर्जुन ने किसी वनैले जन्तु की मृगया के कलह में यह भी कर दिखाया। अर्जुन के विना इसे कौन कर सकता है ॥३५॥

असुरसुरमहोरगान्नरान्गरुडपिशाचसयक्षराक्षसान् ।
इषुभिरजयदग्निगौरवात्स्वभिलषितं च हविर्ददौ जयः ॥३६॥

हे कर्ण ! असुर, सुर, महोरग, नर, गरुड़ पिशाच, यक्ष, और राक्षसों को अपने बाणों से जीत कर अर्जुन ने अग्नि को अपनी इच्छानुकूल हवि का प्रदान किया ॥३६॥

स्मरसि ननु यदा परैर्हृतः स च धृतराष्ट्रसुतोऽपि मोक्षितः ।
दिनकरसदृशैः शरोत्तमैर्युधा कुरुषु बहून्विनिहत्य तानरीन् ॥

क्या तुमको स्मरण नहीं है, कि जब धृतराष्ट्र, पुत्र राजा दुर्योधन का गन्धर्व अपहरण करके लेगए—तो उस समय

सूर्य किरणों के तुल्य अपने बाणों से इन गन्धर्व शत्रुओं को मारकर बहुत से कौरव वीर और राजा दुर्योधन को अर्जुन ने ही छुड़ाया ॥३७॥

प्रथममपि पलायिते त्वयि प्रियकलहा धृतराष्ट्रसूनवः ।
स्मरसि ननु यदा प्रमोचिताः खचरगणानवजित्य पाण्डवैः ॥

हे सूतपुत्र ! कलह से प्रेम करने वाले, धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादिकों को इन पाण्डवों ने ही आकाशचारी गन्धर्वों को जीत कर छुड़ाया था, उस समय तो तुम सबसे प्रथम भाग निकले थे। क्या तुमको कुछ याद नहीं है ॥३८॥

समुदितबलवाहनाः पुनः पुरुषवरेण जिताः स्थ गोग्रहे ।
सगुरुगुरुसुताः सभीष्मकाः किमु न जितः स तदा त्वयार्जुनः

जब तुमने विराट के यहाँ गौओं का अपहरण किया—तो उस समय तुम्हारे साथ बहुत सी सेना और वाहन थे, उस समय भीष्म, द्रोणाचार्य और अश्वत्थामा कहीं नहीं चले गए थे तब पुरुष प्रवीर अर्जुन ने तुम सबको जीत लिया था। उस समय तुमने अर्जुन को क्यों नहीं जीता ॥३९॥

इदमपरमुपस्थितं पुनस्तव निधनाय सुयुद्धमद्य वै ।
यदि न रिपुभयात्पलायसे समरगतोऽद्य हतोऽसि सूतज ॥४०॥

आज वह फिर तुम्हारी मृत्यु के निमित्त यह युद्ध उपस्थित हुआ है। हे सूत पुत्र ! यदि तुम शत्रु के भय से भागे नहीं तो आज के युद्ध में तुम्हारे प्राणों की बचत नहीं है ॥४०॥

सञ्जय उवाच—

इति बहुपरुषं प्रभापति प्रमनसि मद्रपतौ रिपुस्तवम् ।
भृशमभिरुषितः परन्तपः कुरुपृतनापतिराहमद्रपम् ॥४१॥

सञ्जय ने कहा हे राजन्! इस प्रकार शत्रुभूत अर्जुन की प्रशंसा युक्त बहुतसा कठोर वचन उदासीन मन वाले मद्रपति शल्य के कहने पर परन्तप कौरव सेनापति कर्ण, अत्यन्त कुपित होगया और वह मद्रपति शल्य से बोला ॥४०॥

कर्ण उवाच—

भवतु भवतु किं विकत्थसे ननु मम तस्य हि युद्धमुद्यतम् ।
यदि स जयति मामिहाहवे तत इदमस्तु सुकत्थितं तव ॥४२॥

हे शल्य! रहने दो-रहने दो! क्यों शत्रु की व्यर्थ प्रशंसा के पुल बांधते हो। आज हमारा और अर्जुन का युद्ध उपस्थित है—यदि उसने आज मुझे मार लिया तो तुम्हारी यह प्रशंसा सत्य समझी जावेगी ॥४२॥

सञ्जय उवाच—

एवमस्त्विति मद्रेश उक्त्वा नोत्तरमुक्तवान् ।
याहि शल्येति चाप्येनं कर्णः प्राह युयुत्सया ॥४३॥

सञ्जय ने कहा हे राजन! मद्रराज शल्य ने कहा-अच्छी बात है। फिर वे चुप होगए। और कुछ न बोले। अब कर्ण ने युद्ध की इच्छा से कहा-हे शल्य! तुम अब आगे बढ़ो ॥४३॥

स रथः प्रययौ शत्रूञ्श्वेताश्वः शल्यसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान्समरे तमो घ्नन्सविता यथा ॥४४॥

हे राजन्! अन्धकार नाशकारी सूर्य की भांति शत्रुओं को नाश करते हुए श्वेताश्वों से संयुक्त रथवाले शल्य को सारथि बनाए हुए महारथी कर्ण, रण में आगे बढ़े ॥४४॥

ततः प्रायात्प्रीतिमान्वै रथेन वैयाघ्रेण श्वेतयुजाथ कर्णः।
स चालोक्य ध्वजिनीं पाण्डवानां धनञ्जयं त्वरया पर्यपृच्छत् ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥३७॥

हे राजन! सिंह के चर्म से आवृत, श्वेत अश्वों से युक्त, रथ से आगे बढ़ते हुए और हर्ष में भरे हुए कर्ण, आगे बढ़े। उन्होंने पाण्डवों की सेना को देखकर बड़ी शीघ्रता से अर्जुन के विषय में पूछ ताछ की कि वह कहां लड़ रहा है।

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और शल्य
के सम्वाद का सैंतीसवां अध्याय पूरा हुआ।



अड़तीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रयाणे च ततः कर्णो हर्षयन्वाहिनीं तव।
एकैकं समरे दृष्ट्वा पाण्डवान्पर्यपृच्छत ॥१॥

सञ्जय कहने लगे-हे राजन्! इसके अनन्तर कर्ण ने तुम्हारी सेना को हर्षित करते हुए युद्ध के लिए प्रयाण किया। अब यह एक २ को रण में देखकर पाण्डवों की खोज करने लगा ॥१॥

योमामद्य महात्मानं दर्शयेच्छ्वेतवाहनम् ।
तस्मै दद्यामभिप्रेतं धनं यन्मनसेच्छति ॥२॥

कर्ण ने कहा-आज जो महावीर, श्वेत वाहन वाले अर्जुन को मुझे इस वक्त बता देगा-वह जितना धन मन से चाहेगा-उतना मैं उसको प्रदान करूंगा ॥२॥

न चेत्तदभिमन्येत तस्मै दद्यामहं पुनः ।
शकटं रत्नसम्पूर्णं यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥३॥

यदि कोई साधारण धन की अभिलाषा न रखेगा-तो मैं उस को रत्न पूर्ण शकट प्रदान करदूंगा ॥३॥

न चेत्तदभिन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
शतं दद्यां गवां तस्मै नैत्यकं कांस्यदोहनम् ॥४॥

अर्जुन के बताने वाले को यदि इनकी इच्छा नहीं है, तो नित्य दूध दोहने के कांसी के पात्र के साथ उसको सौ गायें प्रदान करदूंगा ॥४॥

शतं ग्रामवरांश्चैव दद्यामर्जुनदर्शिने ।
तथा तस्मै पुनर्दद्यां श्वेतमश्वतरीरथम् ॥५॥
युक्तमञ्जनकेशीभिर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।

यदि कोई अर्जुन की सूचना देने वाला सौ गांव चाहेगा तो मैं यह भी प्रदान करदूंगा. अथवा अञ्जन वा काले बालों वाली उत्तम २ घोड़ियों से सजे हुए चांदी का रथ उसे भेंट करूंगा। जो मुझे अर्जुन को इस वक्त बतायेगा ॥५॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥६॥
अन्यं वास्मै पुनर्दद्यां सौवर्णं हस्तिपङ्गवम् ।

अर्जुन का सूचक पुरुष, यदि इसे भी पसन्द न करे तो मैं हाथी के तुल्य ऊंचे २ बैलों से युक्त एक सुवर्ण का छकड़ा भर कर उसे दे दूंगा ॥६॥

तथाप्यस्मै पुनर्दद्यां स्त्रीणां शतमलंकृतम् ॥७॥
श्यामानां निष्ककण्ठीनां गीतवाद्यविपश्चिताम् ।

मुझे जो अर्जुन की सूचना देगा-उसे मैं सोलह वर्ष की हार पहने हुई, गाने बजाने में कुशल, सौ स्त्री प्रदान करूंगा ॥७॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥८॥
तस्मै दद्यां शतं नागाञ्शतं ग्रामाञ्शतं रथान् ।
सुवर्णस्य च मुख्यस्य हयाग्र्याणां शतं शतान् ॥९॥
ऋद्ध्या गुणैः सुदान्तांश्च धुर्यवाहान्सुशिक्षितान् ।

यदि इतना भी कोई प्रसन्नता से न लेगा-तो आज मैं उसे एक द्रम, सौ गांव, सौ हाथी, सौ रथ सुवर्ण से सजे हुए सौ अश्व, और सौ सुवर्ण श्रेष्ठ अश्व प्रदान करदूंगा जो अपनी कांति और गुणों से उदार तथा रथ के ले जाने में सुशिक्षित होंगे ॥८-९॥

तथा सुवर्णशृङ्गीणां गोधेनूनां चतुःशतम् ॥१०॥
दद्यां तस्मै सवत्सानां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।

इस तरह सुवर्ण के सींगों से युक्त, बछड़ों सहित, चारसौ गायें उसे दूंगा-जो मुझे धनञ्जय अर्जुन की सूचना देगा ॥१०॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥११॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां श्वेतान्पञ्चशतान्हयान् ।

यदि अर्जुन का दिखाने वाला पुरुष, मेरी इस भेंट को भी स्वीकार नहीं करेगा तो पांच सौ श्वेत अश्व देदूंगा ॥११॥

हेमभाण्डपरिच्छन्नान्सुमृष्टमणिभूषणान् ॥१२॥
सुदान्तानपि चैवाहं दद्यामष्टादशापरान् ।
रथं च शुभ्रं सौवर्णं दद्यां तस्मै स्वलंकृतम् ॥१३॥
युक्तं परमकाम्बोजैर्यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ।

यदि इनसे भी अर्जुन का सूचक न मानेगा-तो सुवर्ण के भूषणों से विभूषित, चमकती हुई मणियों से अलंकृत, उछलने वाले अट्ठारह अश्व और सुवर्ण का चमकता हुआ सुसज्जित रथ भेंट करूंगा इस रथ में काम्बोज देश के उत्तम २ अश्व जुते होंगे ॥१२-१३॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥१४॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां कुञ्जराणां शतानि षट् ।
काञ्चनैर्विविधैर्भाण्डैराच्छन्नान्हेममालिनः ॥१५॥
उत्पन्नानपरान्तेषु विनीतान्हस्तिशिक्षकैः ।

यदि अर्जुन के बताने वाले को यह भी पसन्द नहीं है-तो उस को मैं छःसौ हाथी भेंट करूंगा जिनके शरीर में सुवर्ण के आभूषण और सुवर्ण माला पड़ी होंगी। जो अपरान्त देश में उत्पन्न और हस्ति-शिक्षकों से सिखाए हुए होंगे ॥१४-१५॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ॥१६॥
अन्यदस्मै वरं दद्यां वैश्यग्रामांश्चतुर्दश ।
सुस्फीतान्धनसंयुक्तान्प्रत्यासन्नवनोदकान् ॥
अकुतोभयान्सुसम्पन्नान्राजभोज्यांश्चतुर्दश ॥१७॥

इसी तरह इनसे भी जो प्रसन्न नहीं होगा-उसको मैं लम्बे चौड़े धन से संयुक्त, समीप ही पशुओं के चरने के वन और जल से सुसम्पन्न, कृषि करने वाले वैश्यों से युक्त चौदह गांव दे दूंगा इन चौदह गांवों में किसी प्रकार का भय न होगा-जो बड़े ऐश्वर्य शाली और राज के उपभोग के योग्य होंगे ॥१६-१७॥

दासीनां निष्ककण्ठीनां मागधीनां शतं तथा ।
प्रत्यग्रवयसां दद्यां यो मे ब्रूयाद्धनञ्जयम् ॥१८॥

जो मुझे धनञ्जय अर्जुन की सूचना देगा-उसे हार धारण किए हुए सौ मगध देश की नव युवती दासी प्रदान करूंगा ॥१८॥

न चेत्तदभिमन्येत पुरुषोऽर्जुनदर्शिवान् ।
अन्यं तस्मै वरं दद्यां यमसौ कामयेत्स्वयम् ॥१९॥

इन सब बातों से भी अर्जुन का बताने वाला राजी न होगा-तो मैं उसे वही दे दूंगा-जो वह मांगेगा ॥१९॥

पुत्रदारान्विहारांश्च यदन्यद्वित्तमस्ति मे ।
तच्च तस्मै पुनर्दद्यां यद्यच्च मनसेच्छति ॥२०॥

वह पुरुष जो २ मन से अभिलाषा करेगा-मैं वही पुत्र, स्त्री विहार स्थल तथा अन्य धन धान्य समर्पण करूंगा ॥२०॥

हत्वा च सहितौ कृष्णौ तयोर्वित्तानि सर्वशः ।
तस्मै दद्यामहं यो मे प्रब्रूयात्केशवार्जुनौ ॥२१॥

जो आज श्री कृष्ण और अर्जुन की सूचना देगा, मैं कृष्णार्जुन को मार कर उसको उनका सारा धन दे डालूंगा ॥२१॥

एता वाचः सुबहुशः कर्ण उच्चारयन्युधि ।
दध्मौ सागरसम्भूतं सुस्वरं शङ्खमुत्तमम् ॥२२॥

हे राजन् ! इस प्रकार की बहुत सी बातें रण भूमि में कर्ण ने कही-इसके अनन्तर उसने समुद्र में उत्पन्न, सुन्दर ध्वनि करने वाले, उत्तम शङ्ख को बजाया ॥२२॥

ता वाचः सूतपुत्रस्य तथा युक्ता निशम्य तु ।
दुर्योधनो महाराज संहृष्टः सानुगोऽभवत् ॥२३॥

हे महाराज ! इस प्रकार की सूत-पुत्र की वाणी सुनकर राजा दुर्योधन बड़ा प्रसन्न हुआ और वह स्वयं महारथी कर्ण के साथ हो लिया ॥२३॥

ततो दुन्दुभिनिर्घोषो मृदङ्गानां च सर्वशः ।
सिंहनादः सवादित्रः कुञ्जराणां च निःस्वनः ॥२४॥
प्रादुरासीत्तदा राजन्सैन्येषु पुरुषर्षभ ।
योधानां सम्प्रहृष्टानां तथा समभवत्स्वनः ॥२५॥

हे पुरुषर्षभ ! अब दुन्दुभियों का घोष, मृदङ्गों की ध्वनि, बाजों के साथ सिंहनाद, हाथियों की गर्जना सेना में सब ओर होने लगी

इसी तरह उत्साह में भरे हुए योद्धाओं की कलकलाहट भी सर्वत्र छा गई ॥२४-२५॥

तथा प्रहृष्टे सैन्ये तु प्लवमानं महारथम् ।
विकत्थमानं च तदा राधेयमरिकर्षणम् ॥
मद्रराजः प्रहस्येदं वचनं प्रत्यभाषत ॥२६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कर्णावलेपेऽष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

हे राजन्! जब महारथी कर्ण इस तरह उछल रहा था और सेना प्रसन्न हो रही थी और अरिविजयी कर्ण अपनी डींग मार रहा था-तो उसी समय कुछ मुसकराकर मद्रराज शल्य यह वचन बोले ॥२६॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण के गर्व पूर्वक
वचन कहने का अड़तीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनचालीसवां अध्याय

शल्य उवाच—

मा सूतपुत्र दानेन सौवर्णं हस्तिपङ्गवम् ।

प्रयच्छ पुरुषायाद्य द्रक्ष्यसि त्वं धनञ्जयम् ॥१॥

शल्य ने कहा—हे सूत पुत्र ! तुम को हाथी के तुल्य छः वृषों से युक्त, सुवर्ण के रथ को किसी पुरुष के देने की आवश्यकता नहीं है-तुम अभी अर्जुन को अपने सन्मुख देख लेते हो ॥१॥

बाल्यादिह त्वं त्यजसि वसु वैश्रवणो यथा ।

अयत्नेनैव राधेय द्रष्टास्यद्य धनञ्जयम् ॥२॥

हे कर्ण ! वैसे तो तुम बचपन से ही कुबेर के तुल्य दान देते रहते हो-परन्तु आज इतने प्रयत्न की आवश्यकता नहीं है-तुम स्वयं ही शीघ्र अर्जुन को अपने सन्मुख देख लोगे ॥२॥

परान्सृजसि यद्वित्तं किञ्चित्त्वं बहु मूढवत् ।

अपात्रदाने ये दोषास्तान्मोहान्नावबुध्यसे ॥३॥

तुम मूर्ख की तरह प्रत्येक व्यक्ति को इतना धन दान देने की बात कर रहे हो-परन्तु अपात्र के दान में जो दोष हैं, क्या अज्ञान से उन्हें जान रहे हो ॥३॥

यत्त्वं प्रेरयसे वित्तं बहु तेन खलु त्वया ।

शक्यं बहुविधैर्यज्ञैर्यष्टुं सूत यजस्व तैः ॥४॥

हे सूत ! तुम जो इस समय बहुत सा धन देने की बात कर रहे हो-इस धन से तो अनेक प्रकार से यज्ञ किया जा सकता है-तुम इस धन से उन यज्ञों को कर डालो ॥४॥

यच्च प्रार्थयसे हन्तुं कृष्णौ मोहाद्वृथैव तत् ।
नहि शुश्रुम सम्मर्दे क्रोष्ट्रा सिंहौ निपातितौ ॥५॥

तुम अज्ञान से यह वृथा समझ रहे हो, कि मैं उन दोनों सिंह श्रीकृष्ण और अर्जुन को मार डालूंगा-परन्तु हमने कहीं नहीं देखा, कि किसी गीदड़ ने युद्ध में दो सिंह पछाड़ लिए हों ॥५॥

अप्रार्थितं प्रार्थयसे सुहृदो नहि सन्ति ते ।
ये त्वां निवारयन्त्याशु प्रपतन्तं हुताशने ॥६॥

हे सूत-पुत्र ! तुम अनहोनी बात की अभिलाषा कर रहे हो मुझे तो तुम्हारा कोई हितकारी पुरुष भी दिखाई नहीं देता, जो इस अग्नि में पड़ते हुए तुम को उस से निवृत्त करदे ॥६॥

कार्याकार्यं न जानीषे कालपक्कोऽस्यसंशयम् ।
बह्वबद्धमकर्णीयं को हि ब्रूयाज्जिजीविषुः ॥७॥

तुम को अपने अकर्तव्य या कर्तव्य का कुछ पता नहीं है। तुम तो काल पक फल की तरह टूट पड़ना चाहते हो। जिसको जीने की इच्छा हो, वह कैसे तुम्हारी सी बे सिर पैर की बातें कह सकता है, जिनको समझदार सुनना भी पसन्द नहीं करता ॥७॥

समुद्रतरणं दोर्भ्यां कण्ठे बद्ध्वा यथा शिलाम् ।
गिर्यग्राद्वा निपतनं तादृक्तव चिकीर्षितम् ॥८॥

हे कर्ण ! कण्ठ में शिला बांधकर भुजाओं से समुद्र तैरने के तुल्य या पर्वत की चोटी से कूद पड़ने के सदृश यह तुम्हारी चेष्टा है ॥८॥

सहितः सर्वयोधैस्त्वं व्यूढानीकैः सुरक्षितः ।
धनञ्जयेन युध्यस्व श्रेयश्चेत्प्राप्तुमिच्छसि ॥६॥
हितार्थं धार्तराष्ट्रस्य ब्रवीमि त्वां न हिंसया ।
श्रद्धस्वैवं मया प्रोक्तं यदि तेऽस्ति जिजीविषा ॥१०॥

हे सूत पुत्र ! यदि तुम कल्याण की इच्छा करते हो-तो व्यूह रचना से युक्त, सारे योद्धाओं को साथ लेकर अर्जुन से युद्ध करो मैं तो धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन के हित की वाञ्छा से यह सब कुछ कह रहा हूं-मुझे तुम से कोई द्वेष नहीं है। यदि तुम्हें अपने जीने की अभिलाषा है तो मेरे कथन पर विश्वास करना चाहिए ॥६-१०॥

कर्ण उवाच—

स्वबाहुवीर्यमाश्रित्य प्रार्थयाम्यर्जुनं रणे ।
त्वं तु मित्रमुखः शत्रुर्मां भीषयितुमिच्छसि ॥११॥

कर्ण ने कहा—हे शल्य ! मैं तो अपने बाहुबल का आश्रय लेकर अर्जुन से लड़ने चला हूं-तुम मेरे बनावटी मित्र बने हुए मुझे डरा देना चाहते हो ॥११॥

न मामस्मादभिप्रायात्कश्चिदद्य निवर्तयेत् ।
अपीन्द्रो वज्रमुद्यम्य किमु मर्त्यः कथञ्चन ॥१२॥

हे राजन् ! मैंने जो आज सोच लिया-उस निश्चय से मुझे वज्र धारी इन्द्र भी नहीं हटा सकता है-फिर साधारण मनुष्य की तो क्या शक्ति है ॥१२॥

सञ्जय उवाच—

इति कर्णस्य वाक्यान्ते शल्यः प्राहोत्तरं वचः ।
चुकोपयिषुरत्यर्थं कर्णं मद्रेश्वरः पुनः ॥१३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! महावीर कर्ण के इतने कहने पर मद्रेश्वर शल्य ने कर्ण को अत्यन्त कुपित करदेने के लिए यह उत्तर दिया ॥१३॥

यदा वै त्वां फाल्गुनवेगयुक्ता ज्याचोदिता हस्तवता विसृष्टाः
अन्वेतारः कङ्कपत्राः शिताग्रास्तदा तप्स्यस्यर्जुनस्यानुयोगात्

हे कर्ण ! जब तुम लम्बे २ हाथों वाले अर्जुन के द्वारा गाण्डीव धनुष की मत्यञ्चा से छोड़े हुए अर्जुन के वेग से युक्त, कङ्क-पत्रधारी, तीक्ष्ण नोक वाले बाण तुम्हारे पासआकर पहुँचेंगे तब तुम अर्जुनसे युद्ध करने की अभिलाषा पर पश्चाताप करोगे ॥१४॥

यदा दिव्यं धनुरादाय पार्थः प्रतापयन्पृतनां सव्यसाची ।
त्वां मर्दयिष्यन्निशितैः पृषत्कैस्तदा पश्चात्तप्स्यसे सूतपुत्र ॥१५॥

हे सूत-पुत्र ! जब सव्यसाची अर्जुन, अपना गाण्डीव धनुष उठाकर तीक्ष्ण बाणों से कौरव सेना और तुम्हें व्याकुल करदेगा तब तुम इस बात पर पछतावा करोगे ॥१५॥

बालश्चन्द्रं मातुरङ्के शयानो यथा कश्चित्प्रार्थयतेऽपहर्तुम् ।
तद्वन्मोहाद् द्योतमानं रथस्थं सम्प्रार्थयस्यर्जुनं जेतुमद्य ॥१६॥

हे कर्ण ! माता की गोद में सोता हुआ बालक ! जैसे चांद के पकड़ने की इच्छा करता है वैसे ही तुम, अपने अज्ञान से

रथ में स्थित, तेज से देदीप्यमान् अर्जुन को आज जीतना चाहते हो ॥१६॥

त्रिशूलमाश्रित्य सुतीक्ष्णधारं सर्वाणि गात्राणि विघर्षसि त्वम्
सुतीक्ष्णधारोपमकर्मणा त्वं युयुत्ससे योऽर्जुनेनाद्य कर्ण ॥१७॥

हे कर्ण! आज तुम तीक्ष्ण धार के त्रिशूल को लेकर अपने सारे शरीर को उस से रगड़ देना चाहते हो-जो तीक्ष्ण धारा के तुल्य युद्ध में प्रवृत्त होकर अर्जुन से युद्ध की अभिलाषा कर रहे हो ॥१७॥

क्रुद्धं सिंहं केसरिणं बृहन्तं बालो मूढः क्षुद्रमृगस्तरस्वी ।
समाह्वयेत्तद्वदेतत्तवाद्य समाह्वानं सूतपुत्रार्जुनस्य ॥१८॥

हे सूत-पुत्र! विशाल कायधारी क्रुद्ध सिंह से जैसे मूर्ख, क्षुद्र हिरन का बच्चा, वेग से जा भिड़े-वही दशा आज तुम्हारी प्रतीत होती है-जो तुम अर्जुन को युद्ध-आह्वान कर रहे हो ॥१८॥

मा सूतपुत्राह्वय राजपुत्रं महावीर्यं केसरिणं यथैव ।
वने शृगालः पिशितेन तृप्तो मा पार्थमासाद्य विनंक्ष्यसि त्वम् ॥

हे सूत-पुत्र! महा पराक्रमी सिंह के तुल्य शक्ति वाले राज-पुत्र अर्जुन का तुम युद्ध के लिए आह्वान न करो, तुम मांस से तृप्त गीदड़ की भांति चुप-चाप पड़े रहो-नहीं तो अर्जुन से भिड़ते ही नष्ट हो जाओगे ॥१९॥

ईषादन्तं महानागं प्रभिन्नकरटामुखम् ।
शशकोऽऽह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥२०॥

हे कर्ण ! ईषा (रथ का अग्रभाग)के समान विशाल दांत वाले मदस्रावी महा गज को जैसे युद्ध के लिए शशक (खरगोश) बुलावे-उसी तरह युद्ध में अर्जुन का यह तुम्हारा आह्वान है ॥२०॥

बिलस्थं कृष्णसर्पं त्वं बाल्यात्काष्ठेन विध्यसि ।
महाविषं पूर्णकोपं यत्पार्थं योद्धुमिच्छसि ॥२१॥

हे कर्ण ! अत्यन्त विषधारी, कोप में भरे हुए और बिल में घुसते हुए काले सांप को तू मूर्खता से काष्ठ द्वारा ताड़न करता है जो अर्जुन से लड़ना चाहता है ॥२१॥

सिंहं केशरिणं क्रुद्धमतिक्रम्याभिनर्दसे ।
शृगाल इव मूढस्त्वं नृसिंहं कर्ण पाण्डवम् ॥२२॥

हे कर्ण ! तुम पुरुष सिंह पाण्डु पुत्र अर्जुन से जो लड़ने की इच्छा प्रकट कर रहे हो-वह ऐसी ही है-जैसे क्रोध में भरे हुए सिंह से गीदड़ लड़ना चाहता हो ॥२२॥

सुपर्णं पतगश्रेष्ठं वैनतेयं तरस्विनम् ।
भोगी वाह्वयसे पाते कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥२३॥

हे कर्ण ! पक्षियों में श्रेष्ठ, अत्यन्त वेग से झपटने वाले, गरुड़ से जैसे कोई सर्प लड़ बैठे, वही कुन्ती-पुत्र अर्जुन से युद्ध करने पर तुम्हारी दशा होगी ॥२३॥

सर्वाम्भसां निधिं भीमं मूर्तिमन्तं झषायुतम् ।
चन्द्रोदये विवर्धन्तमप्लवः संतितीर्षसि ॥२४॥

हे सूत्र-पुत्र ! तुम तो चन्द्रोदय से उछलते हुए, भयानक मूर्ति धारी, जलजन्तुओं से व्याप्त, समुद्र को आज विना नौका के ही तैर जाना चाहते हो ॥२४॥

ऋषभं दुन्दुभिग्रीवं तीक्ष्णशृङ्गं प्रहारिणम् ।
वत्स आह्वयसे युद्धे कर्ण पार्थं धनञ्जयम् ॥२५॥

हे कर्ण, दुन्दुभि के समान ग्रीवाधारी, तीक्ष्ण सींगों वाले, प्रहार परायण, सांड से जैसे बछड़ा लड़ना चाहता हो-उसी तरह युद्ध में तुम कुन्ती-पुत्र अर्जुन से भिड़जाना चाहते हो ॥२५॥

महामेघं महाघोरं दर्दुरः प्रतिनर्दसि ।
कामतोयप्रदं लोके नरपर्जन्यमर्जुनम् ॥२६॥

हे कर्ण ! महा घोर महा मेघ की ओर जैसे मेंडक टर्राने लगे-उसी तरह मनुष्यों में मेघ के तुल्य अपने भ्राताओं की कामना की पूर्ति रूपी जल को वरसाने वाले अर्जुन से तुम्हारा यह युद्ध प्रयास है ॥२६॥

यथा च स्वगृहस्थः श्वा व्याघ्रं वनगतं भषेत् ।
तथा त्वं भषसे कर्ण नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥२७॥

हे कर्ण ! अपने घर में बैठा हुआ कुत्ता, वन में स्थित सिंह को भूसता रहे-उसी तरह नर व्याघ्र अर्जुन के विना सन्मुख आये भूस रहे हो ॥२७॥

शृगालोऽपि वने कर्ण शशैः परिवृतो वसन् ।
मन्यते सिंहमात्मानं यावत्सिंहं न पश्यति ॥२८॥

तथा त्वमपि राधेय सिंहमात्मानमिच्छसि ।
अपश्यञ्शत्रुदमनं नरव्याघ्रं धनञ्जयम् ॥२९॥

हे कर्ण ! शशकों से व्याप्त गीदड़ अपने को तभी तक सिंह समझता है जब तक सन्मुख उसके सिंह दृष्टि में न पड़ जावे । हे राधेय ! उसी तरह तुम भी शत्रुओं के देखे बिना अपने आपको सिंह समझ रहे हो ॥२८-२९॥

व्याघ्रं त्वं मन्यसेऽऽत्मानं यावत्कृष्णौ न पश्यसि ।
समास्थितावेकरथे सूर्याचन्द्रमसाविव ॥३०॥

हे कर्ण ! तुम तभी तक अपने को सिंह समझते रहोगे-जब तक श्रीकृष्ण और अर्जुन तुम्हारे दृष्टि गोचर न होंगे । जो एक रथ में सूर्य और चन्द्रमा की भांति देदीप्यमान हो रहे होंगे ॥३०॥

यावद्गाण्डीवघोषं त्वं न शृणोषि महाहवे ।
तावदेव त्वया कर्ण शक्यं वक्तुं यथेच्छसि ॥३१॥

हे कर्ण ! तुम इस महाघोर युद्ध में जब तक गाण्डीव धनुष की ध्वनि नहीं सुनते हो-तभी तक जो कुछ तुमको कहना हो-वह निःशङ्क कहलो ॥३१॥

रथशब्दधनुःशब्दैर्नादयन्तं दिशो दश ।
नर्दन्तमिव शार्दूलं दृष्ट्वा क्रोष्टा भविष्यसि ॥३२॥

जब अर्जुन के रथ और उसके गाण्डीव धनुष की ध्वनि तुम्हारे कान में पड़ेगी, जिससे दशो दिशाएँ गूंज उठेगी-उस समय सिंह की सी गर्जना को सुनकर तू स्वयं गीदड़ बन जावेगा ॥३२॥

नित्यमेव शृगालस्त्वं नित्यं सिंहो धनञ्जयः ।
वीरप्रद्वेषणान्मूढ तस्मात्क्रोष्टेव लक्ष्यसे ॥२३॥

हे मूढ़ ! तुमतो नित्य गीदड़ की सी चेष्टा करते हो और अर्जुन को चेष्टा सर्वदा सिंह के तुल्य हैं । तुम तो वीरों से द्वेष के अभिप्राय से इतना वक रहे हो-इसीसे तो तुम गीदड़ माने जाते हो ॥२३॥

यथाखुः स्याद्बिडालश्च श्वा व्याघ्रश्च बलाबले ।
यथा शृगालः सिंहश्च यथा च शशकुञ्जरौ ॥२४॥
यथानृतं च सत्यं च यथा चापि विषामृते ।
तथा त्वमपि पार्थश्च प्रख्यातावात्मकर्मभिः ॥२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णशल्याधिक्षेपे एकोनचत्वारिंशोऽध्यायः

हे कर्ण ! बल और निर्बलता में जैसे बिडाल और चूहा, कुत्ता और बघेरा गीदड़ और सिंह, शशक और हाथी, झूंठ और सत्य, विष और अमृत हैं-इसी तरह अपने २ कामों से तुम्हारी और अर्जुन की समानता है अर्थात तुमतो चूहे और अर्जुन बिडाल आदि के समान है ॥२४-२५॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में कर्ण और शल्य के वार्तालाप का उनचालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



चालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अधिक्षिप्तस्तु राधेयः शल्येनामिततेजसा ।
शल्यमाह सुसंक्रुद्धो वाक्शल्यमवधारयन् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन् ! राधा-पुत्र कर्ण इस प्रकार अत्यन्त तेजस्वी राजा शल्य द्वारा फटकारा हुआ, क्रोध में भर गया और इस वाणी के वज्र से व्याकुल होकर यह बोला ॥१॥

कर्ण उवाच—

गुणान्गुणवतां शल्य गुणवान्वेत्ति नागुणः ।
त्वं तु शल्य गुणैर्हीनः किं ज्ञास्यसि गुणागुणम् ॥२॥

कर्ण ने कहा—हे शल्य ! गुणवानों के गुणों को गुणवान् जान पाता है, निर्गुण नहीं ! हे शल्य ! तुम स्वयं गुणों से हीन हो-इससे किसी के गुण और अवगुणों को क्या समझो ॥२॥

अर्जुनस्य महास्त्राणि क्रोधं वीर्यं धनुः शरान् ।
अहं शल्याभिजानामि विक्रमं च महात्मनः ॥३॥
तथा कृष्णस्य माहात्म्यमृषभस्य महीक्षिताम् ।
यथाहं शल्य जानामि न त्वं जानामि तत्तथा ॥४॥

हे शल्य ; महावीर अर्जुन के बड़े २ अस्त्र, क्रोध, शक्ति, धनुष, बाण और पराक्रम इन सबको मैं जानता हूं इसी तरह राजाओं में श्रेष्ठ, श्रीकृष्ण के महत्व, को, शल्य ? जितना मैं जानता हूं, उतना तू क्या जान सकता है ॥३-४॥

एवमेवात्मनो वीर्यमहं वीर्यं च पाण्डवे ।
जानन्नेवाह्वये युद्धे शल्य गाण्डीवधारिणम् ॥५॥

हे शल्य ! इस तरह मैं अपनी शक्ति और गाण्डीवधारी अर्जुन की शक्ति को जान कर ही युद्ध के लिए उसको ललकार रहा हूं ॥५॥

अस्ति वायमिषुः शल्य सुपुङ्खो रक्तभोजनः ।
एकतूणीशयः पत्री सुधौतः समलंकृतः ॥६॥
शेते चन्दनचूर्णेषुः पूजितो बहुलाः समाः ।
आहेयो विषवानुग्रो नराश्वद्विपसङ्घहा ॥७॥
घोररूपो महारौद्रस्तनुत्रास्थिविदारणः ।
निर्भिद्यां येन रुष्टोऽहमपि मेरुं महागिरिम् ॥८॥
तमहं जातु नास्येयमन्यस्मिन्फाल्गुनादृते ।
कृष्णाद्वा देवकीपुत्रात्सत्यं चापि शृणुष्व मे ॥९॥

हे शल्य ! सुन्दर मूलधारी, शत्रु के रक्त का चाटने वाला तूणीर में रखा हुआ, कङ्कपत्रयुक्त, तेल से चमकाया हुआ, बहुत दिन चन्दन चूर्ण द्वारा पूजित, यह एक बाण, मेरे पास रखा है। यह विषधारी सर्प के बच्चे की तरह उग्र और शत्रु के नर, अश्व और हाथियों के सङ्घ का नाशक है । इसका घोर आकार महाभीषण रूप है, जो कवच और अस्थि तक को विदीर्ण कर देता है। मैं क्रोध करूं तो इस बाण से मेरु नामक महापर्वत को भी भेद

सकता हूं। मैं इस वाण को अर्जुन को या देवकी-पुत्र कृष्ण को छोड़कर अन्य पर नहीं छोड़ता हूं। यह तुम सत्य समझो ॥६-९॥

तेनाहमिषुणा शल्य वासुदेवधनञ्जयौ।
योत्स्ये परमसंक्रुद्धस्तत्कर्म सदृशं मम ॥१०॥

हे शल्य ! मैं उसी वाण से वसुदेव-पुत्र कृष्ण और धनञ्जय अर्जुन से लड़कर अपने योग्य भीषण युद्ध करके दिखाऊंगा ॥१०॥

सर्वेषां वृष्णिवीराणां कृष्णे लक्ष्मीः प्रतिष्ठिता।
सर्वेषां पाण्डुपुत्राणां जयः पार्थे प्रतिष्ठितः ॥११॥

सारे वृष्णि वंशजों में तो कृष्ण के आश्रित विजय लक्ष्मी है और पाण्डवों में अर्जुन के आधार पर है-इन दोनों के जीत लेने पर-कुछ भी नहीं बचता है ॥११॥

उभयं तु समासाद्य को निवर्तितुमर्हति।
तावेतौ पुरुषव्याघ्रौ समेतौ स्यन्दने स्थितौ ॥१२॥
मामेकमभिसंयातौ सुजातं पश्य शल्य मे।
पितृष्वसामातुलजौ भ्रातरावपराजितौ ॥१३॥
मणी सूत्र इव प्रोतौ द्रष्टासि निहतौ मया।

इन दोनों के समेट लेने पर कौन युद्ध के लिए आ सकता है, ये पुरुष श्रेष्ठ, इकट्ठे ही रथ पर स्थित रहते हैं। हे शल्य ! यह तो मेरे सौभाग्य की बात है, जो वे दोनों एक दम मेरे सन्मुख आ जावेंगे। ये दोनों मामा फूफी के भ्राता सूत में पिरोई हुई दो मणियों की तरह एकत्र रहते हैं। अब तुम एक दम मेरे द्वारा मारे हुए इनको देखोगे ॥१२-१३॥

अर्जुने गाण्डिवं कृष्णे चक्रं तार्क्ष्यकपी ध्वजौ ॥१४॥
भीरूणां त्रासजननं शल्य हर्षकरं मम ।

अर्जुन तो गाण्डीव धारण करता है और कृष्ण चक्रधारी है। इनकी ध्वजा में गरुड़ और कपि का चिन्ह है। ये डरपोकों के भय जनक और मुझे हर्षोत्पादक हैं ॥१४॥

त्वं तु दुष्प्रकृतिर्मूढो महायुद्धेष्वकोविदः ॥१५॥
भयावदीर्णः सन्त्रासादबद्धं बहु भाषसे ।

हे शल्य ! तू तो बड़ा दुष्प्रकृति और महायुद्ध के ज्ञान में मूर्ख है। तू उनके भय से भीत हो रहा है-इससे बहुत सी बे सिर पैर की बातें करता है ॥१५॥

संस्तौषि तौ तु केनापि हेतुना त्वं कुदेशज ॥१६॥
तौ हत्वा समरे हन्ता त्वामद्य सहबान्धवम् ।

हे कुदेशोत्पन्न, तू तो किसी स्वार्थ से उनकी प्रशंसा करता है! मैं आज उन दोनों को मार कर फिर बन्धु-बान्धवों के सहित तेरा भी बल देख लूंगा। मैं आज तुझे भी मारे बिना नहीं छोड़ूंगा ॥१६॥

पापदेशज दुर्बुद्धे क्षुद्र क्षत्रियपांसन ॥१७॥
सुहृद्भूत्वा रिपुः किं मां कृष्णाभ्यां भीषयिष्यसि ।

हे दुर्बुद्धे ! पापी ! क्षत्रिय कुल कलङ्क ! शल्य, तू कहां तो मेरा मित्र बनकर चला है और कहां उन कृष्ण और अर्जुन की प्रशंसा करके शत्रु बन रहा है ॥१७॥

तौ वा ममाद्य हन्तारौ हनिष्ये वापि तावहम् ॥१८॥
नाहं बिभेमि कृष्णाभ्यां विजानन्नात्मनो बलम् ।

आज या तो वे दोनों मुझे मार लेंगे या मैं ही उन दोनों को मार लूंगा। मैं अपने बल को पहचानता हूं-इससे कृष्ण या अर्जुन से मुझे भय नहीं होता है ॥१८॥

वासुदेवसहस्रं वा फाल्गुनानां शतानि वा ॥१६॥
अहमेको हनिष्यामि जोपमास्व कुदेशज ।

हे कुत्सित देशोत्पन्न ! शल्य ! चाहे सहस्रों कृष्ण आ जावें या सैकड़ों अर्जुन इकट्ठे हो जावें-उन सबको मैं अकेला ही मार ंगा-तुम चुप बैठे रहो ॥१६॥

स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च प्रायः क्रीडागता जनाः ॥२०॥
या गाथाः सम्प्रगायन्ति कुर्वन्तोऽध्ययनं यथा ।
ता गाथाः शृणु मे शल्य मद्रकेषु दुरात्मसु ॥२१॥
ब्राह्मणैः कथिताः पूर्वं यथावद्राजसन्निधौ ।

स्त्री, बालक, वृद्ध या क्रीड़ा में लगे हुए लोग, नीच बुद्धि मद्रदेश वासियों की जो कथा अध्ययन करने वाले विद्यार्थी की भांति रहते हैं । तुम उन गाथाओं को तो मुझ से सुनो। इन कथाओं को राजदरबार में कभी वहां से आने वाले ब्राह्मणों ने सुनाई थीं ॥२०-२१॥

श्रुत्वा चैकमना मूढ क्षम वा ब्रूहि चोत्तरम् ॥२२॥
मित्रध्रुङ् मद्रको नित्यं यो नो द्वेष्टि स मद्रकः ।

हे मूढ़ ! तुम जरा ध्यान से मेरी बात सुनो, फिर यदि तुम को बुरी लगे-तो क्षमा करना और उसका कोई उत्तर हो तो बताना। मद्रदेशवासी मित्र द्रोही होते हैं। मद्रदेशवासी हमारे तो बड़े ही द्वेषी होते हैं ॥२२॥

मद्रके सङ्गतं नास्ति क्षुद्रवाक्ये नराधमे ॥२३॥
दुरात्मा मद्रको नित्यं नित्यमानृतिकोऽनृजुः।
यावदन्त्यं हि दौरात्म्यं मद्रकेष्विति नः श्रुतम् ॥२४॥

क्षुद्र वाक्य बोलने वाले, नीच मद्रदेशवासियों की तो संगति ही नहीं करनी चाहिए। मद्रदेशोत्पन्न मनुष्य, बड़ा दुरात्मा, झूंठा और कुटिल होता है। दुरात्मापन की अन्तिम सीमा मद्रदेश-वासियों में पूर्ण रूप से देखी जाती है ॥२३-२४॥

पिता पुत्रश्च माता च श्वश्रूश्वशुरमातुलाः।
जामाता दुहिता भ्राता नप्तान्ये ते च बान्धवाः॥
वयस्याभ्यागताश्चान्ये दासीदासं च सङ्गतम्।
पुम्भिर्विमिश्रा नार्यश्च ज्ञाताज्ञाताः स्वयेच्छया ॥२६॥
येषां गृहेष्वशिष्टानां सक्तुमत्स्याशिनां तथा।
पीत्वा सीधुसगोमांसं क्रन्दन्ति च हसन्ति च ॥२७॥
गायन्ति चाप्यबद्धानि प्रवर्त्तन्ते च कामतः।
कामप्रलापिनोऽन्योन्यं तेषु धर्मः कथं भवेत् ॥२८॥

पिता, पुत्र, माता, सास, ससुर, मातुल, जामाता, पुत्री, भ्राता, नप्ता (पोता) तथा अन्य बान्धव, अपनी युवावस्था के प्राप्त होने

पर दासी और दासों से सट जाते हैं। पुरुषों से प्रायः स्त्रियां फंसी हुई हैं-जो बहुत सी तो खुलमखुल्ला व्यभिचार करती हैं और और बहुत सी छुपे व्यभिचार में रत हैं। मद्रवासियों के घरों में सत्तू और मछली का मांस खाने वाले, अशिष्ट पुरुषों की अधिकता है। ये लोग, गोमांस के साथ शराब पीकर हँसते चिल्लाते हैं। अश्लील वेतुके गीत गाना और काम चेष्टा में प्रवृत्त होना इनका साधारण काम है। काम की चेष्टा के साथ वार्तालाप करतेहैं-भला इनमें धर्म कहां हो सकता है ॥२५-२८॥

मद्रकेष्ववलिप्तेषु प्रख्याताशुभकर्मसु।
नापि वैरं न सौहार्दं मद्रकेण समाचरेत् ॥२९॥

मद्रवासी बड़े मदोद्धत और अशुभ कर्म करने में प्रसिद्ध हैं इनसे न तो वैर करें और न इनके साथ कोई मित्रता का व्यवहार करे ॥२९॥

मद्रके सङ्गतं नास्ति मद्रको हि सदामलः।
मद्रकेषु च संसृष्टं शौचं गान्धारकेषु च ॥३०॥

मद्रदेशवासी सदा दोषों से लिप्त होते हैं, उनकी सङ्गति अच्छी नहीं है। मद्र और गान्धारदेशवासियों की शौच क्रिया में बहुत कुछ समानता है ॥३०॥

राजयाजकयाज्ये च नष्टं दत्तं हविर्भवेत्।
शूद्रसंस्कारको विप्रो यथा याति पराभवम् ॥३१॥
यथा ब्रह्मद्विषो नित्यं गच्छन्तीह पराभवम्।
तथैव सङ्गतं कृत्वा नरः पतति मद्रकैः ॥३२॥

जिस तरह राजा के यज्ञ कराने वाले ब्राह्मण को दिया हुआ अन्न आदि का दान निरर्थक हो जाता है-शूद्र का संस्कार कराने वाला, ब्राह्मण जैसे पराभव को प्राप्त होता है । जैसे-ब्राह्मण से द्वेष करने वाला, पराजित होता है-इसी तरह मद्रवासी पुरुषों का सहवास करके मनुष्य पतित हो जाता है ॥३१-३२॥

मद्रके सङ्गतं नास्ति हतं वृश्चिक ते विषम् ।
आथर्वणेन मन्त्रेण यथा शान्तिः कृता मया ॥३३॥
इति वृश्चिकदष्टस्य विषवेगहतस्य च ।
कुर्वन्ति भेषजं प्राज्ञाः सत्यं तच्चापि दृश्यते ॥३४॥

मद्रवासी के साथ सङ्गति करना उचित नहीं है । हे बिच्छू ! तेरा अब विष इस तरह झड़ गया होगा-जैसे अथर्व वेद के मन्त्रों से बिच्छू के विष की शक्ति क्षीण हो जाती है । बिच्छू के काटे हुए और विष वेग से क्लेशित, व्यक्ति की जो चिकित्सा की जाती है, वही तेरी होगी-वह आज विष उतारने की मन्त्र क्रिया सत्य दिखाई देती है, जो इस मन्त्र से तेरी जिह्वा बन्द होगई ॥३३-३४॥

एवं विद्वञ्जोषमास्व शृणु चात्रोत्तरं वचः ।
वासांस्युत्सृज्य नृत्यन्ति स्त्रियो या मद्यमोहिताः ॥३५॥
मैथुनेऽसंयताश्चापि यथाकामवराश्च ताः ।
तासां पुत्रः कथं धर्मं मद्रको वक्तुमर्हति ॥३६॥

हे विद्वन् ! अब तुम चुप हो जाओ और कुछ आगे भी सुनो । यदि कुछ हिम्मत हो तो उत्तर देना । तुम्हारे देश की स्त्रियाँ

सुरा पीकर कपड़े फेंक देती हैं और नंगी नाचती हैं। उनके मैथुन की कोई रुकावट नहीं है। जिसको वे वर लेती हैं। उन स्त्रियों से उत्पन्न मद्रदेशवासी पुरुष कैसे धार्मिक हो सकता है॥

यास्तिष्ठन्त्यः प्रमेहन्ति यथैवोष्ट्रदशेरकाः ।
तासां विभ्रष्टधर्माणां निर्लज्जानां ततस्ततः ॥३७॥
त्वं पुत्रस्तादृशीनां हि धर्मं वक्तुमिहेच्छसि ।

ये मद्रदेश की स्त्रियां, जैसे ऊंट का बच्चा मूत्रोत्सर्ग करता है-वैसे ही खड़ी २ मूतती हैं। उन धर्म से भ्रष्ट, निर्लज्ज स्त्रियों की तुम लोग सन्तान हो-और फिर धर्म के प्रवचन करने की इच्छा करते हो ॥३७॥

सुवीरकं याच्यमाना मद्रिका कर्षति स्फिचौ ॥३८॥
अदातुकामा वचनमिदं वदति दारुणम् ।
मा मां सुवीरकं कश्चिद्याचतां दयितं मम ॥३९॥
पुत्रं दद्यां पतिं दद्यां न तु दद्यां सुवीरकम् ।

यदि मद्रिकादेश की स्त्रियों से कोई सुवीरक (कांजी) मांगने चला जावे-तो वे अपने चूतड़ मटकाने लगती हैं और कांजी देने की इच्छा न रखती हुई-यह दारुण वचन बोलती हैं, कि कोई भी पुरुष हमसे कांजी न मांगो-हम पुत्र और पति तक दे देंगी-परन्तु कांजी नहीं देंगी ॥३८-३९॥

गौर्यो बृहत्यो निर्ह्रीका मद्रिकाः कम्बलावृताः ॥४०॥
घस्मरा नष्टशौचाश्च प्राय इत्यनुशुश्रुम ।

मद्रदेश की स्त्रियां कम्बल ओढ़े रहती हैं। वे लम्बी चौड़ी निर्लज्ज और गोरी चिट्टी होती हैं। ये बहुत खाती हैं और शौचाचार की विधि नहीं जानती-यह सुना जाता है ॥४०॥

एवमादि मयान्यैर्वा शक्यं वक्तुं भवेद्बहु ॥४१॥

आकेशाग्रान्नखाग्राच्च वक्तव्येषु कुकर्मसु ।

मद्रकाः सिंधुसौवीरा धर्मं विद्युः कथन्विह ॥४२॥

इस तरह की बहुत ही बातें मैं या अन्य मुझ जैसा अनुभवी पुरुष कह सकता है। ये तो नख से लेकर चोटी तक कुकर्म में फंसे हुए हैं। मद्रक, सिन्धु और सौवीर लोगों की यह दशा है-तो ये धर्म के तत्व को क्या जान सकते हैं ॥४१-४२॥

पापदेशोद्भवा म्लेच्छा धर्माणामविचक्षणाः ।

एष मुख्यतमो धर्मः क्षत्रियस्येति नः श्रुतम् ॥४३॥

यद्राजो निहतः शेते सद्भिः समभिपूजितः ।

तुम लोग पापी देशों में उत्पन्न हुए एक प्रकार के म्लेच्छ हो-तुम धर्म की चर्चा क्या जानों। क्षत्रियों का तो यही सर्वश्रेष्ठ मुख्य धर्म माना जाता है, जो यह शस्त्रों से आहत होकर रण में सो जाता है- जिसकी सज्जन वीर प्रशंसा करते हैं ॥४३॥

आयुधानां साम्पराये यन्मुच्येयमहं ततः ॥४४॥

ममैष प्रथमः कल्पो निधने स्वर्गमिच्छतः ।

जब शस्त्रों की झड़ा पड़ी हो, रही हो-उस समय प्राणों का छोड़ना ही मेरा दृढ़ सङ्कल्प है। इस प्रकार मरने से स्वर्ग की प्राप्ति होती है ॥४४॥

सोऽयं प्रियः सखा चास्मि धार्त्तराष्ट्रस्य धीमतः ॥४५॥
तदर्थे हि मम प्राणा यच्च मे विद्यते वसु ।

मैं बुद्धिमान् धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन का प्रिय सखा हूं। मेरे प्राण और सारा धन उसी के निमित्त अर्पित है ॥४५॥

व्यक्तं त्वमप्युपहितः पाण्डवैः पापदेशज ॥४६॥
यथा चामित्रवत्सर्वं त्वमस्मासु प्रवर्त्तसे ।

हे पापदेशज ! शल्य ! पता चलता है, तुझे भी पाण्डवों ने गुपचुप अपनी ओर मिला रखा है जो तुम आज शत्रु की भांति हमसे व्यवहार कर रहे हो ॥४६॥

कामं न खलु शक्योऽहं त्वद्विधानां शतैरपि ॥४७॥
संग्रामाद्विमुखः कर्त्तुं धर्मज्ञ इव नास्तिकैः ।

हे शल्य ! मैं तुम जैसे सैकड़ों से भी संग्राम से इस तरह विमुख नहीं किया जा सकता, जैसे-नास्तिकों से धर्मात्मा विचलित नहीं किया जा सकता है ॥४७॥

सारङ्ग इव घर्मार्त्तः कामं विलप शुष्य च ॥४८॥
नाहं भीषयितुं शक्यः क्षत्रवृत्ते व्यवस्थितः ।

धूप से व्याकुल मयूर की भांति, तुम कितना ही पुकारो और कण्ठ सुखालो, परन्तु मैं क्षत्रिय धर्म में स्थित हूं-तुम से भयभीत नहीं किया जा सकता हूं ॥४८॥

तनुत्यजां नृसिंहानामाहवेष्वनिवर्तिनाम् ॥४९॥
या गतिर्गुरुणा प्रोक्ता पुरा रामेण तां स्मरे ।

युद्ध से नहीं हटने वाले प्राणों के मोह से रहित, नरश्रेष्ठों की जो गति, मुझे मेरे गुरु परशुराम ने बताई है, मुझे याद है ४६॥

तेषां त्राणार्थमुद्यन्तं वधार्थं द्विषतामपि ॥५०॥

विद्धि मामास्थितं वृत्तं पौरूरवसमुत्तमम् ।

मैं धृतराष्ट्र पुत्रों के उद्धार और पाण्डवों के वध के लिए, पुरुरवा वंशोत्पन्न क्षत्रियों के आचरण को ही प्रमाण मान कर उसमें स्थित हूं ॥५०॥

न तद्भूतं प्रपश्यामि त्रिषु लोकेषु मद्रप ॥५१॥

यो मामस्मादभिप्रायाद्वारयेदिति मे मतिः ।

हे मद्रपति ! मैं तो तीनों लोकों में ऐसा कोई प्राणी नहीं देखता हूं-जो मुझे मेरे इस दृढ़ निश्चय से निवृत्त कर सके ॥५१॥

एवं विद्वञ्जोषमास्व त्रासात्किं बहु भाषसे ॥५२॥

न त्वां हत्वा प्रदास्यामि क्रव्याद्भ्यो मद्रकाधम ।

हे विद्वन् ! शल्य ! तुम चुप रहो-डर से अधिक न बको। हे नीच मद्रक, ! यदि अधिक बातें बनाई तो मैं प्रथम तुझे ही मार कर मांस भोजी जन्तुओं को तेरी पेशी २ (बोटी २) फैंक दूंगा ॥५२॥

मित्रप्रतीक्षया शल्य धृतराष्ट्रस्य चोभयोः ॥५३॥

अपवादतितिक्षाभिस्त्रिभिरेतैर्हि जीवसि ।

हे शल्य ! मैं तुझे मित्र समझता हूं-राजा धृतराष्ट्र और दुर्योधन का मुझे संकोच है और निन्दा होने का डर तथा युद्ध में क्षमाशीलता है इन्हीं तीन बातों से तू जी रहा है ।।५३।।

पुनश्चेदीदृशं वाक्यं मद्रराज वदिष्यसि ।।५४।।
शिरस्ते पातयिष्यामि गदया वज्रकल्पया ।

हे मद्रराज ! यदि फिर तुमने ऐसे वचन कहे-तो इस वज्र तुल्य गदा से तेरा शिर चकनाचूर कर दूंगा ।।५४।।

श्रोतारस्त्विदमद्येह द्रष्टारो वा कुदेशज ।।५५।।
कर्णं वा जघ्नतुः कृष्णौ कर्णो वा निजघान तौ ।

हे कुदेशज ! ये सुनने वाले सारे वीर आज यह देख लेंगे-कि मैं (कर्ण) या तो उन दोनों कृष्णार्जुन को मार लूंगा या वे दोनों मुझे मार लेंगे ।।५५।।

एवमुक्त्वा तु राधेयः पुनरेव विशाम्पते ।
अब्रवीन्मद्रराजानं याहियाहीत्यसम्भ्रमम् ।।५६।।

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णमद्राधिपसंवादे चत्वारिंशोऽध्यायः ।।४०।।

हे विशाम्पते ! इतना कहकर राधा-पुत्र कर्ण मद्रराज शल्य से फिर कहने लगा—हे मद्रेश्वर ! चलो वेग से आगे बढ़ो ।।५६।।

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और मद्राधिप शल्य के सम्वाद का चालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

इकतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

मारिषाधिरथेः श्रुत्वा वाचो युद्धाभिनन्दिनः ।
शल्योऽब्रवीत्पुनः कर्णं निदर्शनमिदं वचः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे आर्यगुणसम्पन्न ! राजन् ! युद्ध के लिए उत्साहित अधिरथ-पुत्र कर्ण के वचन सुनकर राजा शल्य ने उत्तर रूप में यह वचन कहा ॥१॥

जातोऽहं यज्वनां वंशे संग्रामेष्वनिवर्तिनाम् ।
राज्ञां मूर्धाभिषिक्तानां स्वयं धर्मपरायणः ॥२॥
यथैव मत्तो मद्येन त्वं तथा लक्ष्यसे वृष ।
तथाद्य त्वां प्रमाद्यन्तं चिकित्सेयं सुहृत्तया ॥३॥
इमां काकोपमां कर्ण प्रोच्यमानां निबोध मे ।
श्रुत्वा यथेष्टं कुर्यास्त्वं निहीनकुलपांसन ॥४॥

हे कर्ण ! हम, यज्ञकर्ता, संग्राम से नहीं लौटने वाले, सर्वश्रेष्ठ क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुए हैं और स्वयं भी धर्म परायण रहते हैं। तुम आज ऐसे दिखाई दे रहे हो-जैसे मदिरा के मद में डूबा हुआ मनुष्य बातें करता है। तुम जो यह बहकी २ बातें कर रहे हो-इनकी मित्रता के साथ यह चिकित्सा करता हूं। हे नीचकुलोत्पन्न ! कर्ण ! मैं तुमको यह काक का इतिहास सुनाता हूं। उसको सुनकर जो तुमको करना हो-वह कर लेना ॥२-४॥

नाहमात्मनि किञ्चिद्वै किल्बिषं कर्ण संस्मरे ।
येन मां त्वं महाबाहो हन्तुमिच्छस्यनागसम् ॥५॥

हे कर्ण ! मैंने स्वयं कोई दुराचार या पाप किया हो-ऐसा मुझे याद नहीं है। हे महाबाहो ! मैंने तो तुमसे यह बात करके भी कोई बुराई की बात नहीं की, फिर तुम क्यों मुझ निर्दोष को मारने की धमकी दे रहे हो ॥५॥

अवश्यं तु मया वाच्यं बुद्ध्यता त्वद्धिताहितम् ।
विशेषतो रथस्थेन राज्ञश्चैव हितैषिणा ॥६॥

यदि तुम्हारा कुछ हित या अहित मेरी समझ में आवे-तो मुझे अवश्य कहना चाहिए । इस पर तो तुम रथी हो और मैं सारथि हूं । सारथि को रथी के हित की आकांक्षा से सब कुछ कहने का अधिकार है ॥६॥

समं च विषमं चैव रथिनश्च बलाबलम् ।
श्रमः खेदश्च सततं हयानां रथिना सह ॥७॥
आयुधस्य परिज्ञानं रुतं च मृगपक्षिणाम् ।
भारश्चाप्यतिभारश्च शल्यानां च प्रतिक्रिया ॥८॥
अस्त्रयोगश्च युद्धं च निमित्तानि तथैव च ।
सर्वमेतन्मया ज्ञेयं रथस्यास्य कुटुम्बिना ॥९॥
अतस्त्वां कथये कर्ण निदर्शनमिदं पुनः ।

सम और विषम परिस्थिति, रथी और अश्वों का बल और अबल, श्रम, खेद, आयुधों का परिज्ञान, मृग और पक्षियों का

शब्द, युद्ध का भार या अतिभार, बाणों की प्रतिक्रिया, अस्त्रयोग, युद्ध और निमित्ति, (शकुन) आदि सारी बातें मुझे अपने रथी को बतानी ही चाहिये, क्योंकि सारथि रथी का कुटुम्बी हो जाता है। हे कर्ण! इसीसे मैं तुमसे यह सब कुछ कहने लगा ॥७-६॥

वैश्यः किल समुद्रान्ते प्रभूतधनधान्यवान् ॥१०॥
यज्वा दानपतिः क्षान्तः स्वकर्मस्थोऽभवच्छुचिः ।
बहुपुत्रः प्रियापत्यः सर्वभूतानुकम्पकः ॥११॥
राज्ञो धर्मप्रधानस्य राष्ट्रे वसति निर्भयः ।

हे कर्ण! समुद्र के तट पर बहुत से धन धान्य से सम्पन्न, दानकर्ता, यज्ञशील, क्षमापरायन, अपने कर्म में तत्पर पवित्राचार वाला एक वैश्य था । इसके बहुत से पुत्र थे, जिनसे इसका बड़ा प्रेम था। यह सारे प्राणियों के साथ दया का व्यवहार करता था। यह एक किसी धर्मात्मा राजा के राष्ट्र में निर्भयता के साथ निवास कर रहा था ॥१०-११॥

पुत्राणां तस्य बालानां कुमाराणां यशस्विनाम् ॥१२॥
काको बहूनामभवदुच्छिष्टकृतभोजनः ।
तस्मै सदा प्रयच्छन्ति वैश्यपुत्राः कुमारकाः ॥१३॥
मांसोदनं दधि क्षीरं पायसं मधुसर्पिषी ।

इसके पुत्र सर्वाङ्ग सुन्दर बालक कुमारों की उच्छिष्ट खाकर एक काक अपना जीवन चलाता था । ये वैश्य कुमार भी उस

कव्वे को सदा मांस, ओदन, दही, दूध, खीर, मधु और घृतमय भोजन देते रहते थे ॥१२-१३॥

स चोच्छिष्टभृतः काको वैश्यपुत्रैः कुमारकैः ॥१४॥
सदृशान्पक्षिणो दृप्तः श्रेयसश्चाधिचिक्षिपे ।

इन वैश्य पुत्रों की उच्छिष्ट से पुष्ट वह कव्वा अपने साथी पक्षियों का अनादर करने लगा। वह इतना उद्धत हुआ कि उनकी उत्तमताओं पर भी आक्षेप करने लगा ॥१४॥

अथ हंसाः समुद्रान्ते कदाचिदतिपातिनः ॥१५॥
गरुडस्य गतौ तुल्याश्चक्राङ्गा हृष्टचेतसः ।

उस समुद्र के तट पर कभी कोई गरुड़ की चाल से उड़ते हुए हंस आ निकले। जो हंस बड़े प्रसन्न चित्त थे ॥१५॥

कुमारकास्तदा हंसान्दृष्ट्वा काकमथाब्रुवन् ॥१६॥
भवानेव विशिष्टो हि पतत्रिभ्यो विहङ्गम ।

जब वैश्य कुमारों ने उन हंसों को देखा-तो वे कव्वे से कहने लगे ! हे काक ! आज ये पक्षी आए हैं, परन्तु हमको तो इनमें तुम ही श्रेष्ठ दिखाई देते हो ॥१६॥

प्रतार्यमाणस्तैः सर्वैरल्पबुद्धिभिरण्डजः ॥१७॥
तद्वचः सत्यमित्येव मौर्ख्याद्दर्पाच्च मन्यते ।
तान्सोऽभिपत्य जिज्ञासुः क एषां श्रेष्ठभागिति ॥१८॥
उच्छिष्टदर्पितः काको बहूनां दूरपातिनाम् ।

इन मूर्ख बुद्धि बालकों से धोखे में डाला हुए उस काक पक्षी ने, उनका वचन मूर्खता और घमण्ड के कारण, वचन सत्य समझ लिया। यह उड़कर उनके पास पहुंचा और वहां उच्छिष्ट से परिपुष्ट इस काक ने बहुत दूर तक उड़ जाने वाले, इन पक्षियों में कौन श्रेष्ठ है-यह जानने की इच्छा की ॥१७-१८॥

तेषां यं प्रवरं मेने हंसानां दूरपातिनाम् ॥१९॥
तमाह्वयत दुर्बुद्धिः पताव इति पक्षिणम्।
तच्छ्रुत्वा प्राहसन्हंसा ये तत्रासन्समागताः ॥२०॥

इन दूर तक उड़ जाने वाले हंसों में उस काक ने जिसको सर्वश्रेष्ठ समझा-उसीसे इस दुर्बुद्धि ने कहा-लो? हम और तुम उड़ें। यह सुनकर वे हंस जो वहां आये हुए थे, सारे मुसकुराने लगे ॥१९-२०॥

भाषतो बहु काकस्य बलिनः पततां वराः।
इदमूचुः स्म चक्राङ्गा वचः काकं विहङ्गमाः ॥२१॥

हे कर्ण! वे चक्राङ्ग (हंस) उत्तम पक्षी, बहुत कुछ बकवाद करने वाले इस कव्वे से यह वचन बोले ॥२१॥

हंसा ऊचुः—

वयं हंसाश्चरामेमां पृथिवीं मानसौकसः।
पक्षिणां च वयं नित्यं दूरपातेन पूजिताः ॥२२॥

हंस कहने लगे—हे काक! मानसरोवर पर रहने वाले पक्षी हैं और इस सारी पृथिवी पर घूमते हैं। हम सबसे अधिक उड़ जाते हैं-इसीसे पक्षी गण हमारा आदर करते हैं ॥२२॥

कथं हंसं नु बलिनं चक्राङ्गं दूरपातिनम् ।
काको भूत्वा निपतने समाह्वयसि दुर्मते ॥२३॥
कथं त्वं पतिता काक सहास्माभिर्ब्रवीहि तत्।

हे दुर्मते ! चक्र के समान अङ्ग वाले, दूर तक उड़ने में समर्थ इस हंस को तुमने कैसे उड़ने के लिए ललकार दिया। तुमतो स्वयं काक हो। हे काक ! तुम हमारे साथ कैसे उड़ सकते हो-यह कुछ सोचो तो सही ॥२३॥

अथ हंसवचो मूढः कुत्सयित्वा पुनः पुनः ।
प्रजगादोत्तरं काकः कत्थनो जातिलाघवात् ॥२४॥

अब हंस के वचन सुनकर कव्वे ने उसकी बार २ प्रशंसा की और अपनी जाति की क्षुद्रता के कारण अपनी बड़ाई मारते हुए, यह उत्तर प्रदान किया ॥२४॥

काक उवाच—

शतमेकं च पातानां पतितास्मि न संशयः ।
शतयोजनमेकैकं विचित्रं विविधं तथा ॥२५॥

काक ने कहा—अरे मूर्खों ! मैं एक सौ एक उड़ने की सारी चालों को जानता हूं । उन चालों से प्रत्येक के द्वारा विचित्र के साथ मैं सौ योजन तक उड़ सकता हूँ ॥२५॥

उड्डीनमवडीनं च प्रडीनं डीनमेव च ।
निडीनमथ सण्डीनं च तिर्यग्डीनगतानि च ॥२६॥

विडीनं परिडीनं च पराडीनं सुडीनकम् ।
अभिडीनं महाडीनं निर्डीनमतिडीनकम् ॥२७॥
अवडीनं प्रडीनं च सण्डीनं डीनडीनकम् ।
सण्डीनोड्डीनडीनं च पुनर्डीनविडीनकम् ॥२८॥
सम्पातं समुदीपं च ततोऽन्यद्व्यतिरिक्तकम् ।
गतागतं प्रतिगतं बह्वीश्च निकुलीनकाः ॥२९॥
कर्त्तास्मि मिषतां वोऽद्य ततो द्रक्ष्यथ मे बलम् ।
तेषामन्यतमेनाहं पतिष्यामि विहायसम् ॥३०॥

उड्डीन, अवडीन, प्रडीन, डीन, निडीन सण्डीन, तिर्यग्डीन विडीन, परिडीन, पराडीन, सुडीन, अभिडीन, महाडीन, निर्डीन, अतिडीन अवडीन, प्रडीन, सण्डीन, डीनडीन, सण्डीनोड्डीनडीन, डीन विडीनक, सम्पात, समुदीप, व्यतिरिक्त, गतागत, प्रतिगत, तथा बहुत सी निकुलीनक आदि गतियों से उड़ना जानता हूं। मैं इन को तुम्हें अभी दिखाता हूँ-तुम अपनी आंखों से मेरे बल को देख लोगे, इससे मैं तुम में सर्व श्रेष्ठ, पक्षी के साथ उड़ना चाहता हूं ॥२६-३०॥

प्रदिशध्वं यथान्यायं केन हंसाः पताम्यहम् ।
ते वै ध्रुवं विनिश्चित्य पतध्वं न मया सह ॥३१॥
पातैरेभिः खलु खगाः पतितुं खे निराश्रये ।

हे हंसो! अब तुम ही बताओ मैं किस गति से उड़ान मारूं। तुम लोग निश्चय मेरे साथ इन गतियों में नहीं उड़ सकोगे। यह आकाश निराश्रय है, तुम उड़ते २ गिर जाओगे ॥३१॥

एवमुक्ते तु काकेन प्रहस्यैको विहङ्गमः ॥३२॥

उवाच काकं राधेय वचनं तन्निबोध मे।

हे कर्ण! जब इतना कव्वे ने कहा—तो उनमें से वह पक्षिराज हंस ने त्यागा और उसने जो कव्वे से कहा—वह तुम सुनो ॥३२॥

हंस उवाच—

शतमेकं च पातानां त्वं काक पतिता ध्रुवम् ॥३३॥

एकमेव तु यं पातं विदुः सर्वे विहङ्गमाः।

तमहं पतिता काक नान्यं जानामि कञ्चन ॥३४॥

पत त्वमपि ताम्राक्ष येन पातेन मन्यसे।

हंस बोले—हे काक! तुम तो निश्चय एक सौ एक चाल से उड़ना जानते हो-परन्तु यह सारे पक्षी तो एक ही चाल से उड़ते हैं। हे काक! मैं भी एक चाल के सिवा दूसरी चाल नहीं जानता हूँ। परन्तु हे ताम्राक्ष! तुम जिस उड़ान से उड़ना चाहो-उड़ो ॥३३-३४॥

अथ काकाः प्रजहसुर्ये तत्रासन्समागताः ॥३५॥

कथमेकेन पातेन हंसः पातशतं जयेत्।

इस समय जो कव्वे वहां पर थे, वे हंसने लगे कि यह हंस कैसे एक गति से सैंकड़ों गतियों को जीत सकता है ॥३५॥

एकेनैव शतस्यैष पातेनाभिपतिष्यति ॥३६॥
हंसस्य पतितं काको बलवानाशुविक्रमः।

हमको तो यही मालूम होता है कि यह कव्वा बड़ा बलवान् और शीघ्र गमन करने वाला है-यह तो सौ गतियों में से एक गति से ही हंस की उड़ान को जीत लेगा ॥३६॥

प्रपेततुः स्पर्धया च ततस्तौ हंसवायसौ ॥३७॥
एकपाती चक्राङ्ग काकः पातशतेन च।
पतिता वाथ चक्राङ्गः पतिता वाथ वायसः ॥३८॥
विसिस्मापयिषुः पातैराचक्षाणोऽऽत्मनः क्रियाः।

अब हंस और कव्वे दोनों उड़ने लगे-एक गति से हंस उड़ रहा था और कौवा अपनी सैंकड़ों उड़ान मार रहा था। चक्र के समान अङ्गधारी हंस आगे उड़ जावेगा या कव्वा उड़ेगा यह सब देखने की चेष्टा में लगे हैं। यह दोनों अपनी २ क्रिया कुशलता दिखाते हुए अपनी २ गतियों से सबको अचम्भे में डालते हुए उड़ने लगे ॥३७-३८॥

अथ काकस्य चित्राणि पतितानि मुहुर्मुहुः ॥३९॥
दृष्ट्वा प्रमुदिताः काका विनेदुरधिकैः स्वरैः।

अब कव्वे की वार २ विचित्रता के साथ उड़ानों को देखकर सारे कव्वे प्रफुल्लित हो गए और उच्च स्वर में पुकारने लगे ॥३९॥

हंसांश्चावहसन्ति स्म प्रावदन्नप्रियाणि च ॥४०॥
उत्पत्योत्पत्य च मुहुर्मुहूर्तमिति चेति च।

इन कव्वों ने हंसों की बड़ी हंसी उड़ाई और उनको बड़े प्रय शब्द सुनाये। उन्हों ने थोड़ी देर बार २ उड़ कर अपनी अपनी कला का प्रदर्शन किया ॥४०॥

वृक्षाग्रेभ्यः स्थलेभ्यश्च निपतन्त्युत्पतन्ति च ॥४१॥
कुर्वाणा विविधान्रावानाशंसन्तो जयं यथा ।

ये वृक्षों की चोटी और स्थलों पर उड़ते और गिरते थे। ये अनेक प्रकार के शब्द करते और अपनी विजय की सूचना दे रहे थे ॥४१॥

हंसस्तु मृदुनैकेन विक्रान्तुमुपचक्रमे ॥४२॥
प्रत्यहीयत काकाच्च मुहूर्तमिव मारिष ।

हे आर्य! हंस तो अपनी एक ही कोमल गति से उड़ रहा था। वह थोड़ी देर के लिए कव्वे से पीछे पड़ गया ॥४२॥

अवमन्य च हंसांस्तानिदं वचनमब्रुवन् ॥४३॥
योऽसावुत्पतितो हंसः सोऽसावेवं प्रहीयते ।

इन कव्वों ने हंसों का तिरस्कार करके यह वचन कहा-कि देख? यह हंस उड़ने चला था और अब कितना पीछे रह गया है ॥४३॥

अथ हंसः स तच्छ्रुत्वा प्रापयत्पश्चिमां दिशम् ॥४४॥
उपर्युपरि वेगेन सागरं मकरालयम् ।

हंस ने जब इनका वचन सुना-तो वह पश्चिम दिशा को चल दिया और मकरादि जल जन्तुओं के स्थान समुद्र पर बड़े वेग से उड़ने लगा ॥४४॥

ततो भीः प्राविशत्काकं तदा तत्र विचेतसम् ॥४५॥
द्वीपद्रुमानपश्यन्तं निपातार्थे श्रमान्वितम् ।

इस समय कव्वे को भय उपस्थित हुआ और वह चौकड़ीचूक गया। वह थक चुका था इससे किसी पर उतरने के निमित्त द्वीपों के वृक्षों की ओर देखने लगा परन्तु उसको कहीं वृक्ष दिखाई नहीं दिए ॥४५॥

निपतेयं क नु श्रान्त इति तस्मिञ्जलार्णवे ॥४६॥
अविषह्यः समुद्रो हि बहुसत्वगणालयः ।

अब मैं थक चुका, किस स्थान पर विश्राम करूं। इस समुद्र में तो बड़े भयङ्कर जन्तु रहते हैं, इसमें कैसे उतरा जा सकता है ॥४६

महासत्वशतोद्भासी नभसोऽपिविशिष्यते ॥४७॥
गाम्भीर्याद्धि समुद्रस्य न विशेषं ही सूतज ।

यह समुद्र तो सैंकड़ों भीषण जल जन्तुओं से भरा पड़ा है-इसकी लम्बाई चौड़ाई तो आकाश से भी बड़ी दिखाई देती है। हे सूत-पुत्र ! समुद्र की इतनी गहराई थी, कि आकाश और समुद्र में उसे कोई भेद नहीं दिखाई दिया ॥४७॥

दिगम्बराम्भसः कर्ण समुद्रस्था विदुर्जनाः॥४८॥
विदूरपातात्तोयस्य किं पुनः कर्ण वायसः

हे कर्ण ! समुद्र में स्थित रहने वाले मनुष्य भी समुद्र के जल को दिशाओं के अन्त तक देखते हैं, कि दूर तक जल की लहरें

चल रहीं हैं। फिर कव्वे को तो जल में संसार दिखाई दे इस में कहना ही क्या है ॥४८॥

अथ हंसोऽप्यतिक्रम्य मुहूर्तमिति चेति च ॥४९॥
अवेक्षमाणस्तं काकं नाशकद्व्यपसर्पितुम्।

हे राजन! अब हंस ने थोड़ी दूर उड़ कर देखा-कि कव्वा कहां है। जब उसने कव्वे को देखा तो वह उसको निकालने में समर्थ न हो सका ॥४९॥

अतिक्रम्य च चक्राङ्गः काकं तं समुदैक्षत ॥५०॥
यावद्गत्वा पतत्येष काको मामिति चिन्तयन्।
ततः काको भृशं श्रान्तो हंसमभ्यागमत्तदा ॥५१॥

जब वापिस लौटकर हंस गया-तो उसने कव्वे को देखा कि इस में जितनी शक्ति थी वह मेरे साथ उड़ा-और इस को मेरे जीतने की इच्छा रही। कव्वा बहुत थक चुका था वह जैसे तैसे हंस के समीप तक आया ॥५०-५१॥

तं तथा हीयमानं तु हंसो दृष्ट्वाब्रवीदिदम्।
उज्जिहीर्षुर्निमज्जन्तं स्मरन्सत्पुरुषव्रतम् ॥५२॥

जब हंस ने कव्वे को इस तरह डूबते देखा तो सत्पुरुषों के व्रत का स्मरण करके उसने उस डूबते हुए कव्वे को बचा लेना चाहा ॥५२॥

हंस उवाच—

बहूनि पतितानि त्वमाचक्षाणो मुहुर्मुहुः।
पातस्य व्याहरंश्चेदं न नो गुह्यं प्रभाषसे ॥५३॥

हंस बोला:—हे कव्वे ! तुमने बार २ हमको अपनी गतियों के गीत सुनाए परन्तु अपनी गतियों में तुमने हमको यह गुप्त चाल नहीं बताई ॥५३॥

किं नाम पतितं काक यत्त्वं पतसि साम्प्रतम् ।
जलं स्पृशसि पक्षाभ्यां तुण्डेन च पुनः पुनः ॥५४॥

हे काक ! यह कौनसी गति है, जिससे तू जल में गिरा हुआ है। अपने पक्षों से जल में फड़फड़ाता है और चोंच को डुबोता है ॥५४॥

प्रब्रूहि कतमे तत्र पाते पतसि वायस ।
एह्येहि काक शीघ्रं त्वमेष त्वां प्रतिपालये ॥५५॥

हे वायस ! यह तो बता-यह तुम किस गति में चल रहे हो। हे काक ! अब तुम शीघ्र आओ। मैं तुम्हें निकालने के लिए प्रतीक्षा कर रहा हूँ ॥५५॥

शल्य उवाच—

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्त्तस्तुण्डेन जलं तदा ।
दृष्टो हंसेन दुष्टात्मन्निदं हंसं ततोऽब्रवीत् ॥५६॥

शल्य ने कहा—हे दुष्टात्मन् ! पक्षों से जल को पीटता हुआ और चोंच से जल को दबाता हुआ कव्वा हंस ने देखा। अब वह काक हंस से यह वचन बोला ॥५६॥

अपश्यन्नंभसः पारं निपतंश्च श्रमान्वितः ।
पातवेगप्रमथितो हंसं काकोऽब्रवीदिदम् ॥५७॥

गिरने की चोट से व्याकुल होकर कव्वे ने इस प्रकार हंस से कहा—कि हे हंस! मैं आकाश का पार न पाकर श्रम से थक गया और यहां गिर गया हूँ ॥५७॥

वयं काकाः कुतो नाम चरामः काकवाशिकाः ।
हंस प्राणैः प्रपद्ये त्वामुदकान्तं नयस्व माम् ॥५८॥

हम तो कव्वे हैं, हम अपनी कव्वों की कां कां को कैसे पूरा कर सकते हैं। हे हंस! अब हम तुम्हारी शरण में हैं-तुम हमें जल से बाहर पहुँचाओ ।५८॥

स पक्षाभ्यां स्पृशन्नार्त्तस्तुण्डेन च महार्णवे ।
काको दृढपरिश्रान्तः सहसा निपपात ह ॥५६॥

इस समय कव्वा अपने पक्षों से पानी को पीट रहा था और उस समुद्र में चोंच मार रहा था। कव्वा बहुत ही थक गया था वह सहसा गिर गया ॥५६॥

सागराम्भसि तं दृष्ट्वा पतितं दीनचेतसम् ।
म्रियमाणमिदं काकं हंसो वाक्यमुवाच ह ॥६०॥

समुद्र के जल में गिरे हुए दीन चित्त वाले कव्वे को देख कर मृत प्रायः उस कव्वे से हंस ने यह वचन कहा ॥६०॥

शतमेकं च पातानां पताम्यहमनुस्मर ।
श्लाघमानस्त्वमात्मानं काक भाषितवानसि ॥६१॥
स त्वमेकशतं पातं पतन्नभ्यधिको मया ।
कथमेवं परिश्रान्तः पतितोऽसि महार्णवे ॥६२॥

हे काक ! तुमने तो यह कहा था, कि मैं एक सौ एक चाल से उड़ता हूँ। तुमने अपनी प्रशंसा करके ही यह सब कुछ कहा था। हे काक ! तुम्हारी तो मुझ से एक सौ एक चाल अधिक थी। अब तुम इतने थक कर कैसे इस महा समुद्र में गिर गए हो ॥६२॥

प्रत्युवाच ततः काकः सीदमान इदं वचः ।
उपरिष्ठं तदा हंसमभिवीक्ष्य प्रसादयन् ॥६३॥

इतना सुनकर क्लेशातुर कव्वे ने अपने ऊपर उड़ते हुए हँस को प्रसन्न करते हुए यह वचन कहा ॥६३॥

काक उवाच—

उच्छिष्टदर्पितो हंस मन्येऽऽत्मानं सुपर्णवत् ।
अवमन्य बहूंश्चाहं काकानन्यांश्च पक्षिणः ॥६४॥

कव्वा बोला—मैं तो वैश्य कुमारों की उच्छिष्ट से पुष्ट होकर अपने को गरुड़ के तुल्य वेग शाली मानने लगा था, इसी से मैंने बहुत से कव्वे और अन्य पक्षियों का भी तिरस्कार कर दिया था ॥६४॥

प्राणैर्हंस प्रपद्ये त्वां द्वीपान्तं प्रापयस्व माम् ।
यद्यहं स्वस्तिमान्हंस स्वं देशं प्राप्नुयां विभो ॥६५॥

हे हँस ! मैं सब तरह तेरी शरण में हूँ मेरे प्राणों पर आ बनी है। अब तुम मुझे जल से बाहर द्वीप (तट पर) ले चलो। हे हँस यदि मैं राजी-खुशी तट पर पहुँच गया-तो अपने देश को चला जाऊँगा ॥६५॥

न कञ्चिदवमन्येऽहमापदो मां समुद्धर ।
तमेवंवादिनं दीनं विलपन्तमचेतनम् ॥६६॥
काकाकाकेति वाशन्तं निमज्जन्तं महार्णवे ।
कृपयादाय हंसस्तं जलक्लिन्नं सुदुर्दशम् ॥६७॥
पद्भ्यामुत्क्षिप्य वेगेन पृष्ठमारोपयच्छनैः ।

अब आगे में किसी का अपमान न करूंगा-तुम इस आपत्ति से मेरा उद्धार करो। इस प्रकार दीनता के साथ विलाप करते हुए अचेतन कां ? कां ? चिल्लाते हुए और समुद्र में डूबते हुए जल से क्लिन्नदुर्दशापन्न, उस कव्वे को अनुग्रह करके हँस ने अपने पंजों से उठा लिया और वेग के साथ धीरे से अपनी पीठ पर चढ़ा लिया ॥६६-६७॥

आरोप्य पृष्ठं हंसस्तं काकं तूर्णं विचेतनम् ॥६८॥
आजगाम पुनर्द्वीपं स्पर्धया पेततुर्यतः ।

अचेत हुए कव्वे को शीघ्रता पूर्वक अपनी पीठ पर बैठाकर हंस उसी स्थान पर पहुंचा। जहां से वे दोनों स्पर्धा के साथ उड़े थे ॥६८॥

संस्थाप्य तं चापि पुनः समाश्वास्य च खेचरम् ॥
गतो यथेप्सितं देशं हँसो मन इवाशुगः ।

हंस ने कव्वे को वहां लाकर बैठा दिया और उसे सान्त्वना प्रदान की। इसके अनन्तर मन के तुल्य वेगशाली हंस अपने अभीष्ट प्रदेश को चला गया ॥६९॥

एवमुच्छिष्टपुष्टः स काको हंसपराजितः ॥७०॥
बलं वीर्यं महत्कर्ण त्यक्त्वा क्षान्तिमुपागतः ।

इस प्रकार उच्छिष्ट से परिपुष्ट उस कव्वे को हंस ने पराजित कर दिया। हे कर्ण! उसने अपने बल वीर्य और पराक्रम का अभिमान् छोड़ दिया ॥७०॥

उच्छिष्टभोजनः काको यथा वैश्यकुले पुरा ॥७१॥
एवं त्वमुच्छिष्टभृतो धार्त्तराष्ट्रैर्न संशयः ।

उच्छिष्ट का भोजन करने वाला, कव्वा जैसे वैश्य कुल में अपनी डींग मार रहा था, वैसे ही तुम भी धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन आदि की उच्छिष्ट से परिपुष्ट हो ॥७१॥

सदृशाञ्श्रेयसश्चापि सर्वान्कर्णावमन्यसे ॥७२॥
द्रोणद्रौणिकृपैर्गुप्तो भीष्मेणान्यैश्च कौरवैः ।
विराटनगरे पार्थमेकं किं नावधीस्तदा ॥७३॥

हे कर्ण! तुम अपने सदृश या श्रेष्ठों का भी सर्वदा अपमान करते रहे हो! द्रोण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, भीष्म, तथा अन्य कौरव वीरों से सुरक्षित होकर भी विराट नगर में तुमने अकेले अर्जुन को क्यों नहीं मार दिखाया ॥७२-७३॥

यत्र व्यस्ताः समस्ताश्च निर्जिताः स्थ किरीटिना ।
शृगाला इव सिंहेन क्व ते वीर्यमभूत्तदा ॥७४॥

उस समय तुमको पृथक् २ और इकट्ठे ही किरीटधारी अर्जुन ने गीदड़ को सिंह की भांति जीत लिया था, तब तेरा पराक्रम कहां चला गया था ॥७४॥

भ्रातरं निहतं दृष्ट्वा समरे सव्यसाचिना ।
पश्यतां कुरुवीराणां प्रथमं त्वं पलायितः ॥७५॥

हे कर्ण ! रण में सव्यसाची अर्जुन ने जब तुम्हारा भ्राता मार गिराया और कौरव वीर देखते रहे-तो उस समय सबसे प्रथम तुम ही भाग गए थे ॥७५॥

तथा द्वैतवने कर्ण गन्धर्वैः समभिद्रुतः ।
कुरून्समग्रानुत्सृज्य प्रथमं त्वं पलायितः ॥७६॥

हे कर्ण ! जब द्वैत वन में गन्धर्वों ने आकर तुम सबको पराजित किया-तो सारे कौरवों को छोड़कर सबसे प्रथम तुमही भागे थे ॥७६॥

हत्वा जित्वा च गन्धर्वांश्चित्रसेनमुखान्रणे ।
कर्ण दुर्योधनं पार्थः सभार्यं सममोक्षयत् ॥७७॥

हे कर्ण ! फिर अर्जुन ने रण में चित्रसेन आदि गन्धर्वों को मारकर या जीतकर अपनी भार्या के साथ राजा दुर्योधन को छुड़ाया था ॥७७॥

पुनः प्रभावः पार्थस्य पौराणः केशवस्य च ।
कथितः कर्ण रामेण सभायां राजसंसदि ॥७८॥

हे कर्ण ! फिर अर्जुन के पुराने प्रभाव और श्रीकृष्ण के महत्व को परशुराम ने राजसभा के मध्य में सुनाया था ॥७८॥

सततं च त्वमश्रौषीर्वचनं द्रोणभीष्मयोः ।

अवध्यौ वदतः कृष्णौ सन्निधौ च महीक्षिताम् ॥७६॥

हे कर्ण ! तुमने सर्वदा द्रोण और भीष्म के ये वचन सारे राजाओं के सन्मुख कहे हुए सुने हैं, कि श्रीकृष्ण और अर्जुन, तुमसे अवध्य हैं ॥७६॥

कियत्तत्तत्प्रवक्ष्यामि येन येन धनञ्जयः ।

त्वत्तोऽतिरिक्त सर्वेभ्यो भूतेभ्यो ब्राह्मणो यथा ॥८०॥

मैं उन बातों को पृथक् २ करके कैसे गिना सकता हूं कि इन इन बातों में अर्जुन तुमसे श्रेष्ठ है अर्थात् वे बहुत से गुण हैं-जिनमें तुमसे अर्जुन उत्तम माना गया है। वह उतना ही तुमसे श्रेष्ठ है, जितना सारे प्राणियों से ब्राह्मण श्रेष्ठ है ॥८०॥

इदानीमेव द्रष्टासि प्रधाने स्यन्दने स्थितौ ।

पुत्रं च वसुदेवस्य कुन्तीपुत्रं च पाण्डवम् ॥८१॥

तुम अब ही थोड़ी देर में प्रधान रथ में स्थित, वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण और कुन्ती पुत्र अर्जुन को देख लोगे ॥८१॥

यथाश्रयंत चक्राङ्गं वायसो बुद्धिमास्थितः ।

तथाश्रयस्व वार्ष्णेयं पाण्डवं च धनञ्जयम् ॥८२॥

बुद्धि के ठिकाने आने पर जैसे कव्वे ने अन्त में हंस का आश्रय ले लिया-वैसे ही तुम भी वृष्णिवीर और पाण्डु-पुत्र अर्जुन की शरणागति ग्रहण करो ॥८२॥

यदा त्वं युधि विक्रान्तौ वासुदेवधनञ्जयौ ।
द्रष्टास्येकरथे कर्ण तदा नैर्वं वदिष्यसि ॥८३॥

हे कर्ण! जब तुम रण में महा पराक्रमी श्रीकृष्ण और अर्जुन को एक रथ में देखोगे-तब यह तुम्हारी वाणी कुछ भी नहीं निकलेगी ॥८३॥

यदा शरशतैः पार्थो दर्पं तव वधिष्यति ।
तदा त्वमन्तरं द्रष्टा आत्मनश्चार्जुनस्य च ॥८४॥

जब अर्जुन, सैंकड़ों बाणों से तेरे घमण्ड को चकनाचूर करेगा। तब तुम अपने और अर्जुन में अन्तर को देख सकोगे ॥

देवासुरमनुष्येषु प्रख्यातौ यौ नरोत्तमौ ।
तौ मावमंस्था मौर्ख्यात्त्वं खद्योत इव रोचनौ ॥८५॥

देव, असुर और मनुष्यों में ये दोनों नरश्रेष्ठ, बड़े प्रख्यात हैं। तुम सूर्य चन्द्रमा को खद्योत की भांति इन दोनों का अपनी मूर्खता से अपमान न करो ॥८५॥

सूर्याचन्द्रमसौ यद्वत्तद्वदर्जुनकेशवौ ।
प्राकाश्येनाभिविख्यातौ त्वं तु खद्योतवन्नृषु ॥८६॥

सूर्य और चन्द्रमा की भांति अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं। वे अपनी कान्ति में प्रसिद्ध हैं। हे कर्ण! उनके सन्मुख मनुष्य लोक में तुमतो खद्योत (जुगनूं) की भांति चमकते हो ॥८६॥

एवंविद्वन्मावमंस्थाः सूतपुत्राच्युतार्जुनौ ।
नरसिंहौ तौ महात्मानौ जोषमास्स्व विकत्थने ॥८७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे हंसकाकीयोपाख्याने एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

हे विद्वन्! सूत-पुत्र! तुम ऐसा जानकर श्रीकृष्ण और अर्जुन की निन्दा न करो। वे दोनों पुरुष प्रवीर बड़े वीर हैं। तुम्हें अपनी प्रशंसा आप नहीं करनी चाहिए-ऐसी परिस्थिति में तो तुम्हें चुप ही रहना अच्छा है ॥८७॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में हंस काकीयो पाख्यान और कर्ण शल्य के सम्वाद का इकतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।



बयालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

मद्राधिपस्याधिरथिर्महात्मा वचो निशम्याप्रियमप्रतीतः।
उवाच शल्यं विदितं ममैतद्यथाविधावर्जुनवासुदेवौ ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! इस प्रकार मद्रदेशाधिपति, राजा शल्य के अप्रिय वचन सुनकर अधिरथ-पुत्र महात्मा कर्ण, बड़ा अप्रसन्न हुआ। उसने शल्य से कहा-कि जैसे-अर्जुन और श्रीकृष्ण हैं, वह हमको सब कुछ विदित है। ॥१॥

शौरे रथं वाहयतोऽर्जुनस्य बलं महास्त्राणि च पाण्डवस्य।
अहं विजानामि यथावदद्य परोक्षभूतं तव तत्तु शल्य ॥२॥

हे शल्य ! अर्जुन के रथ के हांकने वाले श्रीकृष्ण, का बल और पाण्डु-पुत्र अर्जुन के महास्त्रों को मैं अच्छी तरह जानता हूं-इनके विषय में तुमको कुछ पता नहीं है ॥२॥

तौ चाप्यहं शस्त्रभृतां वरिष्ठौ व्यपेतभीर्योधयिष्यामि कृष्णौ।
सन्तापयत्यभ्यधिकं तु रामाच्छापोऽद्य मां ब्राह्मणसत्तमाच्च ॥

यद्यपि कृष्णार्जुन, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ हैं, तो भी मैं, भय छोड़कर उनसे युद्ध करूंगा। इनका तो मुझे कुछ भय नहीं है, परन्तु ब्राह्मण श्रेष्ठ परशुराम से जो मुझे शाप हो गया है, उसका मुझे बड़ा सन्ताप है ॥३॥

अवसं वै ब्राह्मणच्छद्मनाहं रामे पुरा दिव्यमस्त्रं चिकीर्षुः।
तत्रापि मे देवराजेन विघ्नो हितार्थिना फाल्गुनस्यैव शल्य ॥४॥
कृतो विभेदेन ममोरुमेत्य प्रविश्य कीटस्य तनुं विरूपाम्।
ममोरुमेत्य प्रविभेद कीटः सुप्ते गुरौ तत्र शिरो निधाय ॥५॥

हे शल्य ! मैंने ब्राह्मणका वेष बनाकर छल-पूर्वक परशुराम से दिव्य अस्त्र सीखने को उनके आश्रम में निवास किया। वहां अर्जुन के हितेच्छु इन्द्र ने मेरे अस्त्र सीखने में विघ्न उपस्थित कर दिया। इन्द्र किसी विषैले कीट के भीषण शरीर में घुस गया और उसने मेरी जंघा में आकर काट खाया। आचार्य परशु-

राम मेरी जंघा पर शिर रखकर सो रहे थे-उसी समय उस कीट ने मेरी जंघा में काटा ॥४-५॥

ऊरुप्रभेदाच्च महान्बभूव शरीरतो मे घनशोणितौघः।
गुरोर्भयाच्चापि न चेलितवानहं ततो विबुद्धो ददृशे स विप्रः ॥६॥

मेरी जंघा में घाव हो जाने से उसके मार्ग से शरीर से बहुत अधिक गाढ़ा २ रक्त निकला, परन्तु अपने गुरु परशुराम के भय से मैं कुछ भी विचलित नहीं हुआ-तो थोड़ी देर में जाग कर उस ब्राह्मण ने मेरी रक्त की धारा देखी ॥६॥

स धैर्ययुक्तं प्रसमीक्ष्य मां वै न त्वं विप्रः कोऽसि सत्यं वदेति
तस्मै तदात्मानमहं यथावदाख्यातवान्सूतवदेत्य शल्य ॥७॥

हे शल्य! परशुराम ने मुझे धैर्य युक्त देखकर कहा-कि तुम विप्र दिखाई नहीं देते-सत्य बताओ कौन हो, उस समय मैंने उनको सारी परिस्थिति सत्य २ बतादी, कि मैं सूत जैसी जाति का हूं-और आपके समीप आकर शस्त्र ग्रहण कर रहा हूं ॥७॥

स मां निशम्याथ महातपस्वी संशप्तवान्रोषपरीतचेताः।
सूतोपधावाप्तमिदं तवास्त्रं न कर्मकाले प्रतिभास्यति त्वाम् ॥
अन्यत्र तस्मात्तव मृत्युकालादब्राह्मणे ब्रह्म नहि ध्रुवं स्यात्।

वे महातपस्वी परशुराम, इतना सुनकर क्रोध में भरगये और इन्होंने यह शाप दे डाला कि तुमने सूत का रूप छिपाकर मुझ से यह अस्त्र विद्या प्राप्त की है-यह अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के समय तुमको उपस्थित न हो सकेगी यह सब कुछ तभी होगा-जब तुम्हारी

मृत्यु उपस्थित होगी । अब्राह्मण में विद्या स्थिर नहीं हो सकती है ॥८॥

तदद्य पर्याप्तमतीव चास्त्रमस्मिन्संग्रामे तुमुलेऽतीव भीमे ॥९॥
योऽयं शल्य भरतेषूपपन्नः प्रकर्षणः सर्वहरोऽतिभीमः ।
सोऽभिमन्ये क्षत्रियाणां प्रवीरान्प्रतापिता बलवान्वै विमर्दः ॥

हे शल्य ! मैंने जो परशुराम से अनेक अस्त्र सीखे थे, वे इस घोर भयङ्कर संग्राम में उपस्थित नहीं हो रहे हैं । इससे प्रतीत होता है, कि अब कौरवों के संहार का यह अत्यन्त भयानक, सर्व नाशक समय आ उपस्थित हुआ है मुझे तो यह निश्चय है, कि यह बलवान संग्राम, क्षत्रिय वीरों का सन्तप्त करने वाला है ॥९-१०॥

शल्योग्रधन्वानमहं वरिष्ठं तरस्विनं भीममसह्यवीर्यम् ।
सत्यप्रतिज्ञं युधि पाण्डवेयं धनञ्जयं मृत्युमुखं नयिष्ये ॥११॥

हे शल्य ! आज मैं उग्र धनुषधारी, शूरवीर श्रेष्ठ, अत्यन्त वेगशाली, भयानक, असहनीय बल पराक्रमशाली, सत्य प्रतिज्ञ पाण्डु-पुत्र अर्जुन को रण में मृत्यु के मुख में अवश्य पहुंचा दूंगा ॥११॥

अस्त्रं ततोऽन्यत्प्रतिपन्नमद्य येन क्षेप्स्ये समरे शत्रुपूगान् ।
प्रतापिनं बलवन्तं कृतास्त्रं तमुग्रधन्वानममितौजसं च ॥१२॥
क्रूरं शूरं रौद्रममित्रसाहं धनञ्जयं संयुगेऽहं हनिष्ये ।

उन परशुराम के अस्त्रों के सिवा, मुझे एक ऐसा अस्त्र मिला है. जिसके द्वारा रण में शत्रु समूह का नाश कर सकता हूं। उसी अस्त्र से, महाप्रतापी, बलवान्, अस्त्र विद्या में कुशल, उग्र धन्वा, अत्यन्त ओजस्वी, क्रूर, शूरवीर, भीषण आकारधारी, शत्रुओं से युद्ध करने में समर्थ, अर्जुन को आज अवश्य नष्ट कर दूंगा ॥१२॥

अपाम्पतिर्वेगवानप्रमेयो निमज्जयिष्यन्बहुलाः प्रजाश्च ॥१३॥
महावेगं संकुरुते समुद्रो वेला चैनं धारयत्यप्रमेयम् ।

जलका पति, वेगवान्, विचार में नहीं आने वाला, बहुत सी प्रजा के एक साथ डुबोने में समर्थ, समुद्र, बड़ी उछल कूद लगता है, परन्तु वेला उस उछलते हुए समुद्र को भी धारण कर लेती है ॥१३॥

प्रमुञ्चन्तं बाणसङ्घानमेयान्मर्मच्छिदो वीरहणः सुपत्रान् ॥१४॥
कुन्तीपुत्रं यत्र योत्स्यामि युद्धे ज्याकर्षतामुत्तममद्य लोके ।

मर्मों को छेदने में समर्थ, वीर नाशक, सुन्दर पंखों से युक्त, असङ्ख्य बाणों को छोड़ने वाले, संसार के धनुर्धरों में श्रेष्ठ, कुन्ती-पुत्र अर्जुन से आज मैं युद्ध अवश्य करूंगा ॥१४॥

एवं बलेनातिबलं महास्त्रं समुद्रकल्पं सुदुरापमुग्रम् ॥१५॥
शरौघिणं पार्थिवान्मज्जयन्तं वेलेव पार्थमिषुभिः संसहिष्ये ।

इस प्रकार के बल से अत्यन्त बली, अद्भुत २ अस्त्रधारी, बाणों के प्रवाह से युक्त, दुष्प्राप्य समुद्र की भांति बढ़ते हुए अर्जुन को मैं वेला की तरह अपने बाणों से वहीं रोक दूंगा ॥१५॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥१६
सुरासुरान्युधि वै यो जयेत तेनाद्य मे पश्य युद्धं सुघोरम् ।

हे शल्य ! धनुषधारियों में जिसके सदृश अन्य किसी वीर को मैं नहीं मानता हूं । वह देव और दानवों को एक साथ जीत सकता है, आज उसीके साथ रणाङ्गण में मेरा घोर युद्ध होगा-उसे चुपचाप देखते रहना ॥१६॥

अतीव मानी पाण्डवो युद्धकामो ह्यमानुषैरेष्यति मे महास्त्रैः
तस्यास्त्रमस्त्रैः प्रतिहत्य सङ्ख्ये बाणोत्तमैः पातयिष्यामि पार्थम्

पाण्डु-पुत्र अर्जुन, युद्ध का अभिलाषी, और अत्यन्त अभिमानी है । वह मनुष्यों को दुर्लभ अस्त्रों से मेरे ऊपर आक्रमण करेगा, परन्तु मैं भी अपने अस्त्रों से उसके अस्त्र को काटकर अपने उत्तम २ बाणों से अर्जुन को रण में अवश्य गिरा दूंगा ॥१७॥

सहस्ररश्मिप्रतिमं ज्वलन्तं दिशश्च सर्वाः प्रतपन्तमुग्रम् ॥
तमोनुदं मेघ इवातिमात्रं धनञ्जयं छादयिष्यामि बाणैः ।

सारी दिशाओं को तपाते हुए अन्धकार नाशक प्रचण्ड सूर्य के तुल्य जाज्वल्यमान, अर्जुन को मैं मेघों के तुल्य बनकर अपने बाणों से अच्छी तरह आच्छादित कर दूंगा ॥१८॥

वैश्वानरं धूमशिखं ज्वलन्तं तेजस्विनं लोकमिमं दहन्तम् ॥
पर्जन्यभूतः शरवर्षैर्यथाग्निं तथा पार्थं शमयिष्यामि युद्धे ।

इस लोक को दग्ध करते हुए, धूमशिखधारी तेजो युक्त प्रदीप्त अग्नि के तुल्य अर्जुन की स्थिति है। जिस तरह मेघ धारा प्रचण्ड अग्नि को शान्त कर देती है-उसी तरह मैं शान्त कर दूंगा ॥१९॥

आशीविषं दुर्धरमप्रमेयं सुतीक्ष्णदंष्ट्रं ज्वलनप्रभावम् ॥२०॥
क्रोधप्रदीप्तं त्वहितं महान्तं कुन्तीपुत्रं शमयिष्यामि भल्लैः।

विचार में भी नहीं आने वाले, अग्नि के तुल्य प्रभाव वाले तीक्ष्ण दंष्ट्राधारी, दुर्धर सर्प के तुल्य भीषण, क्रोध से प्रदीप्त महान् शत्रु, अर्जुन को आज बाणों से नष्ट करूंगा ॥२०॥

प्रमाथिनं बलवन्तं प्रहारिणं प्रभञ्जनं मातरिश्वानमुग्रम् ॥२१॥
युद्धे सहिष्ये हिमवानिवाचलो धनञ्जयं क्रुद्धममृष्यमाणम्।

सबके भय देने वाले, प्रहार करने में कुशल, बलवान्, आकाशचारी वायु के तुल्य वेगशाली, असहिष्णु क्रोध युक्त अर्जुन को युद्ध में हिमालय पर्वत की तरह रोक कर खड़ा हो जाऊंगा ॥२१॥

विशारदं रथमार्गेषु शक्तं धुर्यं नित्यं समरेषु प्रवीरम् ॥२२॥
लोके वरं सर्वधनुर्धराणां धनञ्जयं संयुगे संसहिष्ये।

रथ के मार्गों में विशारद, शक्तिशाली, युद्ध में प्रवीर, अग्रगामी, संसार के सारे धनुषधारियों में श्रेष्ठ, अर्जुन को मैं रण में आगे नहीं बढ़ने दूंगा ॥२२॥

अद्याहवे यस्य न तुल्यमन्यं मन्ये मनुष्यं धनुराददानम् ॥
सर्वामिमां यः पृथिवीं विजिग्ये तेन प्रयोद्धास्मि समेत्य सङ्ख्ये।

आज संसार में जिसके बराबर दूसरा धनुर्धर योद्धा नहीं है। तथा जिसने सारी पृथिवी को जीत लिया है-उस से भिड़कर मैं आज रण में अपना युद्ध कौशल दिखाऊंगा ॥२३॥

यः सर्वभूतानि सदैवकानि प्रस्थेऽजयत्खाण्डवे सव्यसाची ॥
को जीवितं रक्षमाणो हि तेन युयुत्सेद्वै मानुषो मामृतेऽन्यः ।

जिस सव्यसाची अर्जुन ने खाण्डव प्रथम में देवों के सहित सारे प्राणियों को पराजित कर दिया, जीवन का अभिलाषी मेरे सिवा अन्य कौन पुरुष होगा-जो उसके साथ युद्ध करने खड़ा हो जावे ॥२४॥

मानो कृतास्त्रः कृतहस्तयोगो दिव्यास्त्रविच्छ्वेतहयः प्रमाथी ॥
तस्याहमद्यातिरथस्य कायाच्छिरो हरिष्यामि शितैः पृषत्कैः ।

युद्ध का बड़ा अभिमान रखने वाला, अस्त्र विद्या में कुशल, सिद्ध हस्त, दिव्य अस्त्रों का ज्ञाता, श्वेत अश्वों का वाहन वाला, युद्ध में शत्रुओं के मथ देने में समर्थ जो अर्जुन है, आज मैं अपने तीक्ष्ण शरों से उस महारथी अर्जुन के शिर को शरीर से पृथक् कर दूंगा ॥२५॥

योत्स्याम्येनं शल्य धनञ्जयं वै मृत्युं पुरस्कृत्य रणे जयं वा ॥
अन्यो हि न ह्येकरथेन मर्त्यो युध्येत यः पाण्डवमिन्द्रकल्पम् ।

हे शल्य ! आज मैं मृत्यु की परवा न करके अर्जुन से अवश्य युद्ध करूंगा, इस में जय हो या पराजय-इसकी कुछ चिंता नहीं है। अन्य किस मनुष्य की शक्ति है, जो इन्द्र के तुल्य अर्जुन से युद्ध करने में समर्थ हो सके ॥२६॥

तस्याहवे पौरुषं पाण्डवस्य ब्रूयां हृष्टः समितौ क्षत्रियाणाम् ॥
किं त्वं मूर्खः प्रसभं मूढचेता ममावोचः पौरुषं फाल्गुनस्य ।

हे शल्य ! पाण्डु पुत्र अर्जुन का आज तू इस रण में सारे क्षत्रिय वीरों की मण्डली के समक्ष पुर्षार्थ की प्रशंसा कर रहा है । क्या सच-मुच तू मूर्ख है ? जो मेरे सामने भी अर्जुन के पुरुषार्थ की डींग मारता है ॥२७॥

अप्रियो यः पुरुषो निष्ठुरो हि क्षुद्रः क्षेप्ता क्षमिणश्चाक्षमावान् ॥
हन्यामहं त्वादृशानां शतानि क्षमाम्यहं क्षमया कालयोगात् ।

तुम बड़े अप्रिय और कठोर भाषण करने वाले हो तथा क्षुद्र प्रकृति होने से सदा आक्षेप करते हो । मैं क्षमा कर रहा हूं और तुम चुप नहीं होते हो । मैं तो तुम जैसे सैकड़ों पुरुषों के मार देने में समर्थ हूं परन्तु मैंतो काल की परिस्थिति को देख कर तुम को क्षमा कर रहा हूं ॥२८॥

अवोचस्त्वं पाण्डवार्थे प्रियाणि प्रधर्षयन्मां मूढवत्पापकर्मन् ॥
मयार्जवे जिह्ममतिर्हतस्त्वं मित्रद्रोही सासपदं हि मैत्रम् ।

हे पाप कर्मन् ! मेरी निन्दा करते हुए तूने अर्जुन की प्रशंसा की है यह केवल तेरी मूढ़ता है । यद्यपि तू मित्र द्रोही है । मैं जितनी सरलता करता हूं तू उतना ही टेढ़ा होता जा रहा है । मैं तुझे अभी मार देता परन्तु क्या करूं-रथ पर साथ चलकर तू मेरा मित्र हो चुका है ॥२६॥

कालस्त्वयं प्रत्युपयाति दारुणो दुर्योधनो युद्धमुपागमद्यत् ॥
अस्यार्थसिद्धिं त्वभिकांक्षमाणास्तन्मन्यसे यत्र नैकान्त्यमस्ति ।

यह समय बड़ा दारुण उपस्थित हुआ है, जो राजा दुर्योधन को स्वयं युद्ध में आना पड़ा है। हम लोग तो इसी की विजय का प्रयत्न कर रहे हैं। परन्तु विजय किसी ओर निश्चय रूप से नहीं मानी जा सकती है इसे तू भी खूब समझता है ॥२०॥

मित्रं मिन्देर्नन्दतेः प्रीयतेर्वा सन्त्रायतेर्मिनुतेर्मोदतेर्वा ॥२१॥
ब्रवीमि ते सर्वमिदं ममास्ति तच्चापि सर्वं मम वेत्ति राजा ।

मित्र शब्द ञिमिदा-स्नेहने-धातु से बनता है जिसका अर्थ स्नेह करना, आनन्द देना, प्रेम करना, रक्षा करना, मिलना मिलाना और प्रमुदित बनाना है, ये सब गुण मुझ में विद्यमान हैं और राजा दुर्योधन इन बातों को खूब समझता है ॥२१॥

शत्रुः शदेः शासतेर्वा श्यतेर्वा शृणातेर्वा श्वसतेः सीदतेर्वा ॥
उपसर्गाद्बहुधा सूदतेश्च प्रायेण सर्वं त्वयि तच्च मह्यम् ।

शत्रु-शल्लृ-शातने-धातु से बनता है। जिसका अर्थ काटना-छेदना, चीरना, मारना और पीड़ा पहुँचाना है। सूद-धातु के दन्त्यसकार को तालव्य शकार कर देने पर शत्रु शब्द की सिद्धि है, इसका सारा हमारे विषय में तुम पर घटता है ॥२२॥

दुर्योधनार्थं तव च प्रियार्थं यशोर्थमात्मार्थमपीश्वरार्थम् ॥२३॥
तस्मादहं पाण्डववासुदेवौ योत्स्ये यत्नात्कर्म तत्पश्य मेऽद्य ।

आज मैं दुर्योधन और तुम लोगों के हित अपने मन की सन्तुष्टि, यश प्राप्ति, और ईश्वर की इच्छा पूर्ण करने के लिए श्री कृष्ण और अर्जुन से बड़े प्रयत्न के साथ युद्ध करूंगा तुम मेरे पराक्रम को चुप-चाप देखते रहना ॥२३॥

अस्त्राणि पश्याद्य ममोत्तमानि ब्राह्माणि दिव्यान्यथ मानुषाणि
आसादयिष्याम्यहमुग्रवीर्यं द्विपो द्विपं मत्तमिवातिमत्तः ।

आज तुम मेरे दिव्य उत्तम ब्रह्मास्त्रादि तथा अन्य मनुष्यों को भी उपलब्ध अस्त्रों के विचित्र कार्यों को देखना। मैं आज शक्तिशाली मदोन्मत्त हाथी के सन्मुख अत्यन्त मदोन्मत्त हाथी की तरह टक्कर लेने को पहुँच जाऊँगा ॥२४॥

अस्त्रं ब्राह्मं मनसा युद्धयजेयं क्षेप्स्ये पार्थायाप्रमेयं जयाय ।
तेनापि मे नैव मुच्येत युद्धे न चेत्पतेद्विषमे मेऽद्य चक्रम् ॥२५॥

मेरे पास अप्रमेय ब्रह्मास्त्र है, जिसको अर्जुन के जीतने के निमित्त मन से अभिमन्त्रित करके युद्ध में छोड़ूंगा। यदि मेरे रथ के चक्र किसी विषम स्थान पर फँस न गए-तो उस अस्त्र से अर्जुन बच नहीं सकेगा ॥२५॥

वैवस्वताद्दण्डहस्ताद्वरुणाद्वापि पाशिनः ।
सगदाद्वा धनपतेः सवज्राद्वापि वासवात् ।
अन्यस्मादपि कस्माच्चिदमित्रादाततायिनः ॥२६॥
इति शल्य विजानीहि यथा नाहं बिभेम्यतः ।
तस्मान्न मे भयं पार्थान्नापि चैव जनार्दनात् ॥२७॥

हे शल्य ! मैं दण्डधारी यमराज, पाशधारी वरुण, गदाधारी कुबेर, वज्रधारी, इन्द्र तथा अन्य भी किसी घातक शत्रु से नहीं डरता हूं-तुम यह ठीक २ समझ लो। इसी से मुझे न तो अर्जुन से भय है और न जनार्धन कृष्ण से मैं डरता हूं। आज-घोर युद्ध में मेरी उनकी एक साथ झपट होगी ॥३६-३७॥

सह युद्धं हि मे ताभ्यां साम्पराये भविष्यति ।
कदाचिद्विजयस्याहमस्त्रहेतोरटन्नृप ॥३८॥
अज्ञानाद्धि क्षिपन्बाणान्घोररूपान्भयानकान् ।
होमधेन्वा वत्समस्य प्रमत्त इषुणाहनम् ॥३९॥
चरन्तं विजने शल्य ततोऽनुव्याजहार माम् ।
यस्मात्त्वया प्रमत्तेन होमधेन्वा हतः सुतः ॥४०॥
श्वभ्रे ते पततां चक्रमिति मां ब्राह्मणोऽब्रवीत् ।
युध्यमानस्य संग्रामे प्राप्तस्यैकायनं भयम् ॥४१॥
तस्माद्बिभेमि बलवद्ब्राह्मणव्याहृतादहम् ।
एते हि सोमराजान ईश्वराः सुखदुःखयोः ॥४२॥

हे नृप ! एक बार मैं अपने विजय नामक धनुष के अभ्यास के लिए बिना ध्यान लगातार घोर रूप भयानक बाण छोड़ने लगा उसी बेखबरी में किसी ऋषि की होमधेनु के वन में घूमते हुए बछड़े को मैंने बाण से बींध दिया। उस समय मुझे उस ऋषि ने शाप दिया, कि तू ने प्रमत्त होकर होमधेनु के बछड़े को मार दिया, इससे युद्ध के समय तेरे चक्र गड्ढे में गिर जावेंगे। मुझे

बड़ी भय खड़ा हो रहा है। मैं उस ब्राह्मण के शापसे बहुत ही भय-भीत हूँ, क्योंकि ये लोग, सुख दुःख के देने में समर्थ हैं-इनका राजा सोम है ॥३८-४२॥

अदां तस्मै गोसहस्रं बलीवर्दांश्च षट्शतान् ।
प्रसादं न लभे शल्य ब्राह्मणान्मद्रकेश्वर ॥४३॥
ईषादन्तान्सप्तशतान्दासीदासशतानि च ।
ददतो द्विजमुख्यो मे प्रसादं न चकार सः ॥४४॥

हे मद्रेश्वर शल्य ! मैंने उस ब्राह्मण को एक सहस्र गौ और छः सौ बैल दिए परन्तु वह ब्राह्मण सन्तुष्ट नहीं हुआ। मैंने रथ की ईषा (अग्र भाग) के समान दांतों वाले सातसौ हाथी और सैंकड़ों दास और दासी उत्तम २ ब्राह्मणों को दान में दिए-तो भी वह ब्राह्मण सन्तुष्ट नहीं हुआ ॥४३-४४॥

कृष्णानां श्वेतवत्सानां सहस्राणि चतुर्दश ।
आहरं न लभे तस्मात्प्रसादं द्विजसत्तमात् ॥४५॥

इसके अनन्तर चौदह हजार श्वेत बछड़े वाली काली गांए ब्राह्मणों को दी, तो भी उस तपस्वी ब्राह्मण ने शाप के उद्धार की कृपा नहीं की ॥४५॥

ऋद्धं गृहं सर्वकामैर्यच्च मे वसु किञ्चन ।
तत्सर्वमस्मै सत्कृत्य प्रयच्छामि न चेच्छति ॥४६॥

धन धान्य से भरे हुए ऐश्वर्यशाली घर तथा मेरे पास जो भी धन था, वह भी मैंने उसे प्रदान करना चाहा-परन्तु उस ब्राह्मण ने लेना स्वीकार नहीं किया ॥४६॥

ततोऽब्रवीन्मां याचन्तमपराधं प्रयत्नतः ।
व्याहृतं यन्मया सूत तत्तथा न तदन्यथा ॥४७॥
अनृतोक्तं प्रजां हन्यात्ततः पापमवाप्नुयाम् ।
तस्माद्धर्माभिरक्षार्थं नानृतं वक्तुमुत्सहे ॥४८॥
मा त्वां ब्रह्मगतिं हिंस्याः प्रायश्चित्तं कृतं त्वया ।
मद्वाक्यं नानृतं लोके कश्चित्कुर्यात्समाप्नुहि ॥४६॥

जब मैं अपराध की क्षमा याचना कर रहा था तो उस समय उसने कहा—हे सूत ! मैंने जो कह दिया वह विपरीत नहीं हो सकता है। झूंठ बोलने से प्रजा का नाश होता है जिस से हम को पाप लगता है, इस से धर्म की रक्षा के लिए हम लोग सत्य वचन ही बोला करते हैं झूंठ नहीं बोलते। तुम ब्राह्मणों के मार्ग को मिथ्या करने की चेष्टा न करो। यह तो तुम्हारा गौ वध का प्रायश्चित हुआ। मेरे वाक्य को कोई मिथ्या करने में कोई समर्थ नहीं है ॥४७-४६॥

इत्येतत्ते मया प्रोक्तं क्षिप्तेनापि सुहृत्तया ।
जानामि त्वां विक्षिपन्तं जोषमास्स्वोत्तरं शृणु ॥५०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे द्वाचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

यद्यपि मैं तुम से असन्तुष्ट था, तो भी मैंने तुमको संसार मात्र का मित्र होने के कारण यह सारी बात सुनादी। मैं जानता हूं कि तुम असन्तुष्ट हो, परन्तु अब चुप-चाप मेरे इन वचनों को सुन लो ॥५०॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में कर्ण शाप होने की कथा सुनाने का बयालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

तेतालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः पुनर्महाराज मद्रराजमरिन्दमः।
अभ्यभाषत राधेयः संनिवार्योत्तरं वचः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे महाराज! इसके अनन्तर अरिमर्दन राधा-पुत्र कर्ण ने बोलने को उद्यत शल्य को चुप करके फिर यह वचन कहा ॥१॥

यत्त्वं निदर्शनार्थं मां शल्य जल्पितवानसि।
नाहं शक्यस्त्वया वाचा विभीषयितुमाहवे ॥२॥

हे शल्य! जो तुमने अर्जुन का पराक्रम दिखाने को मेरे सामने अड़बड़ मारा, मैं इस रण में वाणी मात्र से डरने को समर्थ नहीं हूं ॥२॥

यदि मां देवताः सर्वा योधयेयुः सवासवाः ।
तथापि मे भयं नस्यात्किमु पार्थात्सकेशवात ॥३॥

हे मद्रेश्वर ! यदि मुझसे सारे देवता इन्द्र के सहित भी युद्ध करने आवें-तो भी भय नहीं होगा, फिर कृष्ण सहित अर्जुन से तो मैं डर ही क्या सकता हूं ॥३॥

नाहं भीषयितुं शक्यो वाङ्मात्रेण कथञ्चन ।
अन्यं जानीहि यः शक्यस्त्वया भीषयितुं रणे ॥४॥

मैं वाणी की लपालपी से नहीं डरा करता । जिसको तुम रण में वाणी मात्र से भयभीत कर दो-वह कोई अन्य होगा ॥४॥

नीचस्य बलमेतावत्पारुष्यं यत्त्वमात्थ माम् ।
अशक्तो मद्गुणान्वक्तुं वल्गसे बहु दुर्मते ॥५॥

नीच मनुष्य का बल ही यह है, कि वह कठोर से कठोर भाषण करदे-जो तुम मुझ से कर चुके हो । हे दुर्मते ! तुम मेरे गुण कहने में हिचकिचाते हो-इससे ऐसा बक रहे हो ॥५॥

नहि कर्णः समुद्भूतो भयार्थमिह मद्रक ।
विक्रमार्थमहं जातो यशोर्थं च तथात्मनः ॥६॥

हे मद्रेश्वर ! कर्ण तो भय ग्रहण करने को उत्पन्न ही नहीं हुआ । मैं तो पराक्रम करना और अपना यश बढ़ाना-इन दो बातों के लिए ही उत्पन्न हुआ हूं ॥६॥

सखिभावेन सौहार्दान्मित्रभावेन चैव हि ।
कारणैस्त्रिभिरेतैस्त्वं शल्य जीवसि साम्प्रतम् ॥७॥

हे शल्य ! तुम मित्र, पक्षपाती और सहचारी हो। इनही तीन कारणों से मैंने तुमको अब तक जीवित छोड़ा है ॥७॥

राज्ञश्च धार्तराष्ट्रस्य कार्यं सुमहदुद्यतम् ।
मयि तच्चाहितं शल्य तेन जीवसि मे क्षणम् ॥८॥
कृतश्च समयः पूर्वं क्षन्तव्यं विप्रियं तव ।

हे शल्य ! धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन का आज बड़ा भारी कार्य उपस्थित है इसके अतिरिक्त तुमसे मैंने शर्त भी करली है। इससे तू जितना अप्रिय कहेगा-मैं सब कुछ क्षमा कर दूंगा ॥८॥

ऋते शल्यसहस्रेण विजयेयमहं परान् ।
मित्रद्रोहस्तु पापीयानिति जीवसि साम्प्रतम् ॥९॥

इति श्रीमहाभारते 'शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

मैं सहस्रों शल्यों को मार कर शत्रुओं को जीत सकता हूं-परन्तु मित्र द्रोह करना अच्छा नहीं-इसी विचार के कारण तुम्हारा जीवन बच रहा है ॥९॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण शल्य के सम्वाद का तेतालीसवां अध्याय समाप्त हुआ

चवालीसवां अध्याय

शल्य उवाच—

ननु प्रलापाः कर्णं ते यान्ब्रवीषि परान्प्रति ।
ऋते कर्णसहस्रेण शक्या जेतुं परे युधि ॥१॥

शल्य ने कहा—हे कर्ण ! यह जो तुम दूसरे के प्रति कह रहे थे-यह तुम्हारी वृथा बकवाद है । मैं भी सहस्रों कर्णों को निःशेष करके शत्रुओं को जीत सकता हूं ॥१॥

सञ्जय उवाच—

तथा ब्रुवन्तं परुषं कर्णो मद्राधिपं तदा ।
परुषं द्विगुणं भूयः प्रोवाचाप्रियदर्शनम् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! इस प्रकार कठोर वचन बोलते देखकर कर्ण ने भी मद्रराज शल्य को उससे दुगुने बहुत ही अप्रिय कठोर वचन सुनाए ॥२॥

कर्ण उवाच—

इदं तु मे त्वमेकाग्रः शृणु मद्रजनाधिप ।
सन्निधौ धृतराष्ट्रस्य प्रोच्यमानं मया श्रुतम् ॥३॥

कर्ण कहने लगे—हे मद्रजनाधिप ! राजा धृतराष्ट्र के दरबार में जो मैंने सुना है-वह तुमसे कहता हूं-तुम ध्यान से सुनो । यह वृत्तान्त आने वाले लोगों ने वहां सुनाया था ॥३॥

देशांश्च विविधांश्चित्रान्पूर्ववृत्तांश्च पार्थिवान् ।
ब्राह्मणाः कथयन्ति स्म धृतराष्ट्रनिवेशने ॥४॥

राजा धृतराष्ट्र की सभा में अनेक देश विदेशों के वृत्तान्त और राजाओं के पूर्व चरित्र बहुत से ब्राह्मण आकर सुनाया करते थे ॥४॥

तत्र वृद्धः पुरावृत्ताः कथाः कश्चिद् द्विजोत्तमः ।
वाहीकदेशं मद्रांश्च कुत्सयन्वाक्यमब्रवीत् ॥५॥
वहिष्कृता हिमवता गङ्गया च ब्रहिष्कृताः ।
सरस्वत्या यमुनया कुरुक्षेत्रेण चापि ये ॥६॥
पञ्चानां सिन्धुषष्ठनां नदीनां येऽन्तराश्रिताः ।
तान्धर्मबाह्यानशुचीन्वाहीकानपि वर्जयेत् ॥७॥

वहां पर किसी वृद्ध ब्राह्मण ने वाहीक देश और मद्रदेश के आचार की बहुत निन्दा की-और यह वचन कहा—कि हिमालय, गङ्गा, सरस्वती, यमुना और कुरुक्षेत्र से भी जो दूर रहते हैं, पञ्जाब की पांच नदियों (झेलम रावी आदि) और सिन्धु से भी जो फ़ासले पर स्थित हैं-उन धर्म से बहिभूत, वाहीक देश के लोगों को सर्व को अपवित्र समझना चाहिए ॥५-७॥

गोवर्धनो नाम वटः सुभद्रं नाम चत्वरम् ।
एतद्राजकुलद्वारमाकुमारात्स्मराम्यहम् ॥८॥

गोवर्धन नामक वट और सुभद्र नामक चत्वर वहां के राज द्वार पर बना है । यह मुझे बचपन की बात याद है ॥८॥

कार्येणात्यर्थगूढेन वाहीकेषूषितं मया ।
तत एषां समाचारः संवासाद्विदितो मम ॥९॥

मैं वाहीक देश में एक अत्यन्त गूढ़ कार्य के निमित्त जाकर रहा था उस समय वहां निवास करने से मैंने यह सब कुछ वहां का पता लगाया है ॥९॥

शाकलं नाम नगरमापगा नाम निम्नगा ।

जर्त्तिका नाम वाहीकास्तेषां वृत्तं सुनिन्दितम् ॥१०॥

वहां सबसे बड़ा शाकल नामक नगर और आपगा नाम की नदी है । उस जगह जर्तिका नामक वाहीक जाति बसती है, जिनका आचार, बहुत ही निन्दित है ॥१०॥

धानागौड्यासवं पीत्वा गौमांसं लशुनैः सह ।

अपूपमांसवाट्यानामाशिनः शीलवर्जिताः ॥११॥

वे सब धान और गुड़ की सुरा बनाकर पीते हैं और लशुन के साथ गौ मांस खाते हैं । वे आचार छोड़कर मांस का नित्य कबाब बनाकर चट कर जाते हैं ॥११॥

गायन्त्यथ च नृत्यन्ति स्त्रियो मत्ता विवाससः ।

नगरागारवप्रेषु बहिर्माल्यानुलेपनाः ॥१२॥

इनकी स्त्रियां सुरापान से मस्त होकर नंगी हो जाती हैं और नाचती गाती हैं । वे माला पहन कर नगर, घर और नगर के बाहर कहीं भी नाचती हुई लज्जित नहीं होती ॥१२॥

मत्तावगीतैर्विविधैः खरोष्ट्रनिनदोपमैः ।

अनावृता मैथुने ताः कामचाराश्च सर्वशः ॥१३॥

ये उन्मत्त होकर इस तरह गाती बजाती हैं, जैसे गधा और ऊंट रेंकता हो। इनके मैथुन की भी रोक-टोक नहीं है। सब जगह अपनी इच्छानुसार मैथुन करा बैठती हैं ॥१३॥

आहुरन्योन्यसूक्तानि प्रब्रुवाणा मदोत्कटाः।
हे हते हे हतेत्येवं स्वामिभर्तृहतेति च ॥१४॥

ये मद में भरी हुई एक दूसरे को गाली सुनाती हैं, कि अरी! तू, अमुक से व्यभिचरित है, तुझे मेरे स्वामी या भर्ता ने भोगा है। ये बातें उपहास या क्रोध में होती हैं ॥१४॥

आक्रोशन्त्यः प्रनृत्यन्ति व्रात्याः पर्वस्वसंयताः।
तासां किलावलिप्तानां निवसन्कुरुजाङ्गले ॥१५॥
कश्चिद्बाहीकदुष्टानां नातिहृष्टमना जगौ।
सा नूनं बृहती गौरी सूक्ष्मकम्बलवासिनी ॥१६॥

ये गाती चिल्लाती नाचती हैं और पर्वों पर तो बहुत ही खुल जाती हैं। ये स्त्रियां प्रायः पतित आचार की हैं। इन उद्धत स्त्रियों में से किसी एक का पति कुरु जाङ्गल प्रदेश में चला आया। अन्य तो वाहीक दुष्ट होते हैं, परन्तु इसने भी न तो हर्षित और न उदासीन होकर यह बात सुनाई, कि गौरी, विशाल शरीर धारण करने वाली, सूक्ष्म वस्त्र और कम्बल धारिणी, मेरी भार्या मुझे कुरुजाङ्गल प्रदेश में रहता हुआ जानकर नित्य व्याकुल हुई जैसे तैसे दिन काट रही होगी ॥१६॥

मामनुस्मरती शेते वाहीकं कुरुजाङ्गले ।

शतद्रुकामहं तीर्त्वा तां च रम्यामिरावतीम् ॥१७॥

गत्वा स्वदेशं द्रक्ष्यामि स्थूलशङ्खाः शुभाः स्त्रियः ।

मैं सतलज और सुन्दर रावी को उलांघ कर अपने देश में पहुंचूंगा-और वहां पहुंच कर बड़े २ मस्तक प्रान्त वाली स्त्रियों को देख सकूंगा ॥१७॥

मनःशिलोज्ज्वलापाङ्ग्यो गौर्यस्त्रिककुदाञ्जनाः ॥१८॥

कम्बलाजिनसंवीताः क्रन्दन्त्यः प्रियदर्शनाः ।

उनके नेत्र प्रान्त, मन, शिला के तुल्य उज्ज्वल हैं, ये तीन जगह से उठी हुई आंखों में अञ्जन लगाये रहती हैं, गौर वर्ण वाली होती हैं । वे कम्बल और चर्म पहने रहती हैं और गुल गपाड़ा मचाती हुई बड़ी सुन्दर जान पड़ती हैं ॥१८॥

मृदङ्गानकशङ्खानां मर्दलानां च निःस्वनैः ॥१९॥

खरोष्ट्राश्वतरैश्चैव मत्ता यास्यामहे सुखम् ।

वह पुरुष कहता था, कि हम मृदङ्ग, आनक, शङ्ख और मर्दल आदि बाजे बजाते तथा गधे, ऊंट और खच्चरों पर चढ़े हुए तथा सुरापान से मत्त हुए कब अपनी स्त्रियों के साथ सुख से चलेंगे ॥१९॥

शमीपीलुकरीराणां वनेषु सुखवर्त्मसु ॥२०॥

अपूपान्सक्तुपिण्डांश्च प्राश्नन्तो मथितान्वितान् ।

पथिसु प्रबला भूत्वा कदा सम्पततोऽध्वगान् ॥२१॥
चेलापहारं कुर्वाणास्ताडयिष्याम भूयसः।

हम शमीपीलु और करीरों के वन में सीधे साधे मार्गों से चलते हुए, अपूप (मोटी तंदूर की सी रोटी) सत्तू के पिण्ड और छाछ आदि को खावेंगे। तथा शस्त्र आदि धारण करके प्रबल हुए, मार्ग में चलते हुए पथिकों के कव वस्त्र छीन कर उनपर आघात-प्रहार करेंगे ॥२०-२१॥

एवंशीलेषु व्रात्येषु वाहिकेषु दुरात्मसु ॥२२॥
कश्चेतयानो निवसेन्मुहूर्त्तमपि मानवः।

हे शल्य ! वाहीक देश के लोगों के इस तरह के व्यवहार हैं, जो धर्म से पतित कराने वाले हैं। कौन ऐसा मनुष्य है, जो थोड़ी भी समझ रखता हो-वह उस देश में निवास करे ॥२२॥

ईदृशा ब्राह्मणेनोक्ता वाहीका मोघचारिणः ॥२३॥
येषां षड्भागहर्ता त्वमुभयोः शुभपापयोः।

इस प्रकार वाहीक देश के लोगों का उस वृद्ध पुरुष ने आचार बताया। या इन लोगों के ऊपर तुम शासन करने वाले पुण्य और पाप सबमें से उनका छठा भाग करकी भांति ग्रहण करते हो ॥२३॥

इत्युक्त्वा ब्राह्मणः साधुरुत्तरं पुनरुक्तवान् ॥२४॥
वाहीकेष्वविनीतेषु प्रोच्यमानं निबोध तत्।

इसके अनन्तर उस ब्राह्मण ने फिर कहा-वाहीक देश के लोग बड़े अशिक्षित होते हैं-तुम उनके आचार सुनो ॥२४॥

तत्र स्म राक्षसी गीतिः सदा कृष्णचतुर्दशीम् ॥२५॥
नगरे शाकले स्फीते आहत्य निशि दुन्दुभिम् ।
कदा वाहेयिका गाथाः पुनर्गास्यामि शाकले ॥२६॥

वहां कृष्ण पक्ष को चतुर्दशी को राक्षसी गान होता है। वह कुरुजाङ्गल वासी पुरुष, कहने लगा कि विशाल शाकल नगर में रात को, दुन्दुभि-बजाकर कब मैं अपने नगर के उत्सव में गाना गाऊंगा ॥२५-२६॥

गव्यस्य तृप्ता मांसस्य पीत्वा गौडं सुरासवम् ।
गौरीभिः सह नारीभिर्बृहतीभिः स्वलंकृता ॥२७॥

उस राक्षसी उत्सव में प्रत्येक नारी गौ मांस से तृप्त होती है और गुड़ की सुरा पीती है। बहुत सी गोरी २ स्त्रियों के साथ प्रत्येक प्रधान स्त्री अलङ्कारों से लदी रहती है ॥२७॥

पलाण्डुगण्डूषयुतान्खादन्ती चैडकान्बहून् ।
वाराहं कौक्कुटं मांसं गव्यं गार्दभमौष्ट्रिकम् ॥२८॥

ये स्त्रियां प्याज, गंट्ठे आदि से युक्त भेड़ बकरी सूकर, मुर्गे, गौ, ऊंट, गधे आदि का मांस चट कर जाती हैं ॥२८॥

ऐडं च ये न खादन्ति तेषां जन्म निरर्थकम् ।
इति गायन्ति ये मत्ताः सीधुना शाकलाश्च ये ॥२९॥
सबालवृद्धाः क्रन्दन्तस्तेषु धर्मः कथं भवेत् ।
इति शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥३०॥
यदन्योऽप्युक्तवानस्मान्ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।

ये सुरा में मत्त हुए शाल देश के स्त्री पुरुष, कहते हैं कि जो मेंढे का मांस नहीं खाता-उसका जन्म निरर्थक ही समझना चाहिए। हे शल्य ! इस तरह क्या बालक और क्या वृद्ध सभी कहते हैं-फिर उनमें धर्म की जागृति कहां से हो सकती है। यह तुम समझ चुके-अब तुमको और भी सुनाता हूं, जो कुछ कौरव सभा में उस ब्राह्मण ने सुनाया था ॥२९-३०॥

पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र पीलुवनान्युत ॥३१॥
शतद्रुश्च विपाशा च तृतीयैरावती तथा।
चन्द्रभागा वितस्ता चसिन्धुषष्ठा वहिर्गिरेः ॥३२॥
आरट्टा नाम ते देशा नष्टधर्मा न तान्व्रजेत्।

वहां पर पांच नदी बहती हैं, और पीलुओं के वृक्ष बहुत हैं। सतलज, व्यास, रावी, चनाव और झेलम तथा छठी सिन्धु नदी प्रवाहित हो रही है। इनसे आगे पर्वत से पार आरट्ट नामक देश है, जहां पर सारे धर्मों का नाश है-वहां भी धार्मिक पुरुष को नहीं जाना चाहिए ॥३१-३२॥

व्रात्यानां दासमीयानां वाहीकानामयज्वनाम् ॥३३॥
न देवाः प्रतिगृह्णन्ति पितरो ब्राह्मणास्तथा।
तेषां प्रणष्टधर्माणां वाहीकानामिति श्रुतिः ॥३४॥

संस्कारहीन, घर के नौकरों से उत्पन्न, यज्ञ के अनधिकारी वाहीक देश के मनुष्यों के दिये हुए दान को देव, पितर और ब्राह्मण ग्रहण नहीं करते हैं। यह सब कुछ नष्ट धर्म वाले बाहीकों की चर्चा है ॥३३-३४॥

ब्राह्मणेन तथा प्रोक्तं विदुषा साधु संसदि ।
काष्ठकुण्डेषु वाहीका मृन्मयेषु च भुञ्जते ॥२५॥
सक्तुमद्यावलिप्तेषु श्वावलीढेषु निर्घृणाः ।
आविकं चौष्ट्रिकं चैव क्षीरं गार्दभमेव च ॥२६॥
तद्विकारांश्च वाहीकाः खादन्ति च पिबन्ति च ।

उसी विद्वान् ब्राह्मण ने उस राज सभा में कहा था, ये शौचाचारहीन वाहीक, सत्तू मद्य आदि से लिपटे हुए और कुत्तों के चाटे हुए काठ की कूंडी और मिट्टी के वर्तनों में खाते रहते हैं। उन्हीं बर्तनों में भेड़ बकरी, ऊंटनी और गधी के दूध को दुह लेते और इससे बने हुए भोजनों को खाते पीते हैं ॥२५-२६॥

पुत्रसङ्करिणो जाल्माः सर्वान्नक्षीरभोजनाः ॥३७॥
आरट्टा नाम वाहीकाः वर्जनीया विपश्चिता ।

ये आचारहीन वर्ण संकर सन्तान उत्पन्न करने वाले, और सबके अन्न और दूध का भोजन कर लेते हैं । शौचाचार सम्पन्न पुरुष को आरट्ट या वाहीक नामक देश को कभी नहीं जाना चाहिए ॥३७॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ॥३८॥
यदन्योऽप्युक्तवान्मह्यं ब्राह्मणः कुरुसंसदि ।

हे शल्य ! तुम अच्छी तरह समझ गए होगे-में इससे भी अधिक तुमसे कहता हूं, जोकि उसी ब्राह्मण ने उस कौरव राज में सुनाया था ॥३८॥

युगन्धरे पयः पीत्वा प्रोष्य चाप्यच्युतस्थले ॥३९॥
तद्वद्भूतिलये स्नात्वा कथं स्वर्गं गमिष्यति ।
पञ्च नद्यो वहन्त्येता यत्र निःसृत्य पर्वतात् ॥४०॥

युगन्धर नामक नगर में जो दूध पीता है, उसे ऊंटनी आदि का दूध पीना पड़ेगा क्योंकि सब दूध मिले रहते हैं। अच्युत स्थल में रहने से व्यभिचार का सुभीता प्राप्त हो जाता है तथा भूतिलय नगर में चाण्डाल और ब्राह्मण समान माने गए हैं-इससे उन जलाशयों में स्नान करने से फिर मनुष्य को कैसे स्वर्ग प्राप्ति हो सकती है । इन स्थानों में पर्वतों से निकल कर पांचों नदी बहती हैं ॥३९-४०॥

आरट्टा नाम वाहीका न तेष्वार्यो द्व्यहं वसेत् ।
वहिश्च नाम हीकश्च विपाशायां पिशाचकौ ॥४१॥
तयोरपत्यं वाहीका नैषा सृष्टिः प्रजापतेः ।
ते कथं विविधान्धर्माञ्ज्ञास्यन्ते हीनयोनयः ॥४२॥

आरट्ट या वाहीक नामक देश में जो आर्य पुरुष, दो दिन और एक रात रह लेता है वह पतित हो जाता है । विपाशा (व्यास) नदी के ऊपर वहि और हीक नाम के दो पिशाच रहते थे । उनही पिशाचों की यह सन्तान हैं-ये प्रजापति ब्रह्मा की सन्तान प्रतीत नहीं होती हैं। ये हीन योनि, फिर अनेक प्रकार के धर्मों को कैसे जान सकते हैं ॥४१-४२॥

कारस्करान्माहिषकान्कालिङ्गान्केरलांस्तथा ।
कर्कोटकान्वीरकांश्च दुर्धर्मांश्च विवर्जयेत् ॥४३॥

कारस्कर, माहिषक, कालिङ्ग, केरल, कर्कोटक, वीरक, और दुर्धर्म देश के लोगों का सहवास छोड़ देना चाहिए ॥४३॥

इति तीर्थानुसर्त्तारं राक्षसी काचिदब्रवीत् ।
एकरात्रशयी गेहे महोलूखलमेखला ॥४४॥

तीर्थों में घूमते हुए उस ब्राह्मण से किसी राक्षसी ने कहा—इस राक्षसी ने ऊखल की मेखला बना रखी थी और किसी के घर पर एक रात रहती थी ॥४४॥

आरट्टा नाम ते देशा वाहीकं नाम तज्जलम् ।
ब्राह्मणापसदा यत्र तुल्यकालाः प्रजापतेः ॥४५॥

आरट्टनाम के देश में वाहीक नाम के जल हैं। प्रजापति के समय से ही नीच ब्रह्माण वहां उत्पन्न होते चले आ रहे हैं ॥४५॥

वेदा न तेषां वेद्यश्च यज्ञा यजनमेव च ।
व्रात्यानां दासमीयानामन्नं देवा न भुञ्जते ॥४६॥

न तो इनके यहां वेद का पठन पाठन है न उसका आचार ही चलता है। न यज्ञ है और न पूजा पाठ ही होता है। इन संस्कार हीन दासों की सन्तानों के अन्न को देवता नहीं ग्रहण करते हैं ॥४६॥

प्रस्थला मद्रगान्धारा आरट्टा नामतः खशाः ।
वसातिसिन्धुसौवीरा इति प्रायोऽतिकुत्सिताः ॥४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

मत्स्थल मद्र, गान्धार, आरट्ट, खश, वसाति, सिन्धु और सौवीर देश के मनुष्य अत्यन्त ही नीच माने जाते हैं ॥४९॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में वहीक आदि देशों के आचार हीन होने के वर्णन का चवालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

पैंतालीसवां अध्याय

कर्ण उवाच—

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
उच्यमानं मया सम्यक्त्वमेकाग्रमनाः शृणु ॥१॥

कर्ण कहने लगे—हे शल्य ! तुम, इस बात को समझ चुके अब और तुम को सुनाता हूं । जिन २ बातों को मैं तुमको सुनाता जाऊं-उन २ को तुम एकाग्र मन से सुनो ॥१॥

ब्राह्मणः किल नो गेहमध्यगच्छत्पुरातिथिः ।
आचारं तत्र सम्प्रेक्ष्य प्रीतो वचनमब्रवीत् ॥२॥

हे राजन् ! एक बार हमारे घर पर कोई ब्राह्मण अतिथि के रूप में आया । उसने हमारा सदाचार देखकर प्रसन्नता-पूर्वक यह वचन कहा ॥२॥

मया हिमवतः शृङ्गमेकेनाध्युषितं चिरम् ।
दृष्टाश्च बहवो देशा नानाधर्मसमावृताः ॥३॥

हे महाबाहो ! मैंने अकेले हिमालय की चोटी पर बहुत काल तक निवास किया। तथा अनेक देशों में घूमकर अनेक प्रकार के धर्माचरण करने वाले, लोग देखे हैं ॥३॥

न च केन च धर्मेण विरुध्यन्ते प्रजा इमाः ।
सर्वं हि तेऽब्रुवन्धर्मं यदुक्तं वेदपारगैः ॥४॥

संसार के सारे मनुष्य, किसी न किसी प्रकार के धर्म को जानते ही हैं। वेद के पारगामी ब्राह्मणों ने जो उनको सिखा रखा है-उसको किसी न किसी प्रकार से वे कहते रहते हैं ॥४॥

अटता तु ततो देशान्नानाधर्मसमाकुलान् ।
आगच्छता महाराज वाहीकेषु निशामितम् ॥५॥
तत्र वै ब्राह्मणो भूत्वा ततो भवति क्षत्रियः ।
वैश्यः शूद्रश्च वाहीकस्ततो भवति नापितः ॥६॥
नापितश्च ततो भूत्वा पुनर्भवति ब्राह्मणः ।
द्विजो भूत्वा च तत्रैव पुनर्दासोऽभिजायते ॥७॥

हे महाराज ! अनेक धर्मों से व्याप्त, इन देशों में घूमते हुए मैंने वाहीक देशों में आकर सुना, कि वाहीक जाति में ब्राह्मण बनकर मनुष्य, क्षत्रिय बन जाता है। उसके बाद वैश्य, फिर वह शूद्र भी हो सकता है। इसके अनन्तर वह नाई बनता है। नाई से फिर ब्राह्मण तथा द्विज बनकर फिर भी दास हो जाता है ॥५-७॥

भवन्त्येककुले विप्राः प्रसृष्टाः कामचारिणः ।
गान्धारा मद्रकाश्चैव वाहीकाश्चाल्पचेतसः ॥८॥
एतन्मया श्रुतं तत्र धर्मसङ्करकारकम् ।
कृत्स्नामटित्वा पृथिवीं वाहीकेषु विपर्ययः ॥९॥

एक ब्राह्मण कुल में उत्पन्न होकर भी वे लोग, इच्छानुसार आचरण करते हुए, सब जगह फैल जाते हैं। गान्धार मद्रक और वाहीक बड़े क्षुद्र विचार के होते हैं। मैंने वाहीक देश के वर्ण संकर कारक धर्मों को इस तरह सुना है। मैंने सारी पृथिवी घूम कर देखी, परन्तु वाहीकों में ही आचार की विपरीतता दृष्टिगोचर हुई ॥८-९॥

हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।
यदप्यन्योऽब्रवीद्वाक्यं वाहीकानां च कुत्सितम् ॥१०॥

हे शल्य ! तुम बहुत कुछ सुन चुके अब थोड़ी बहुत कुत्सित बातें फिर कहता हूं जो किसी ब्राह्मण ने आकर सुनाई थीं ॥१०॥

सती पुरा हृता काचिदारट्टात्किल दस्युभिः ।
अधर्मतश्चोपयाता सा तानभ्यशपत्ततः ॥११॥
बालां बन्धुमतीं यन्मामधर्मेणोपगच्छथ ।
तस्मान्नार्यो भविष्यन्ति बन्धक्यो वै कुलस्य च ॥१२॥

एक कोई सती स्त्री थी, उसका आरट्ट देश से डाकुओं ने अपहरण किया। उन्होंने अधर्म पूर्वक उसके साथ उपभोग किया तो उसने उनको इस प्रकार शाप दे डाला। कि तुम लोगों ने

भुक्त युवति को अपने पति और बन्धु कुल से वियुक्त कर दिया है और अधर्म पूर्वक मेरे साथ गमन करते हो। इस पाप से तुम्हारे कुल की सारी स्त्रियां व्यभिचारिणी हो जावेंगी ॥११-१२॥

न चैवास्मात्प्रमोक्तध्वं घोरात्पापान्नराधमाः ।
तस्मात्तेषां भागहरा भागिनेया न सूनवः ॥१३॥

हे नराधमो! तुम इस घोर पाप से मेरा छुटकारा नहीं कर रहे हो-इससे तुम्हारे धन के लेने वाले भगिनी पुत्र होंगे-अपने नहीं होंगे ॥१३॥

कुरवः सहपाञ्चालाः शाल्वा मत्स्याः सनैमिषाः ।
कोसलाः काशपौण्ड्राश्च कालिङ्गा मागधास्तथा ॥१४॥
चेदयश्च महाभागा धर्मं जानन्ति शाश्वतम् ।
नानादेशेषु सन्तश्च प्रायो बाह्यालयादृते ॥१५॥

कौरव, पाञ्चाल, शाल्व, मत्स्य, नैमिष, कोसल, काश, पौण्ड्र कलिङ्ग, चेदि और महानुभाव मागध सनातनधर्म को जानते रहते हैं। अन्य देशों में बहुत से साधुजन रहते हैं, परन्तु बाहीक देश में तो दुष्टों ही का निवास है ॥१२-१५॥

आमत्स्येभ्यः कुरुपाञ्चालदेश्या आनैमिषाच्चेदयो ये विशिष्टाः
धर्मं पुराणमुपजीवन्ति सन्तो मद्रादृते पाञ्चनदांश्च जिह्मान् ॥

मत्स्य, कौरव, पाञ्चाल, नैमिष और चेदि देश के मनुष्य अपने प्राचीन धर्म का पालन करते आ रहे हैं। परन्तु पञ्चनद से पार के कुटिल, मद्र लोग, अपना २ धर्म छोड़ बैठे हैं ॥१६॥

एवं विद्वान्धर्मकथासु राजंस्तूष्णींभूतो जडवच्छल्य भूयः।
त्वं तस्य गोप्ता च जनस्य राजा षड्भागहर्त्ता शुभदुष्कृतस्य।

हे राजन्! धर्म के विषय में ये सब कथा सुनकर राजा शल्य जड़की तरह चुप-चाप हो गये। कर्ण ने फिर कहा—हे शल्य! तुम उस देश के मनुष्यों के रक्षक हो-इस से वहां के कर ग्रहण की तरह तुमको अपनी प्रजा का पाप पुण्य भी भोगना पड़ेगा॥१७॥

अथवा दुष्कृतस्य त्वं हर्त्ता तेषामरक्षिता।
रक्षिता पुण्यभाग्राजा प्रजानां त्वं ह्यपुण्यभाक्॥१८॥

यदि तुम उनको धर्म को शिक्षा नहीं दे सकते-तो तुम केवल उनसे पाप ही प्राप्त करते हो। जो राजा प्रजा के धर्म की रक्षा करता है, वही पुण्यात्मा होता है, परन्तु जो प्रजा की रक्षा नहीं करता-वह पापी है॥१८॥

पूज्यमाने पुरा धर्मे सर्वदेशेषु शाश्वते।
धर्मं पाञ्चनदं दृष्ट्वा धिगित्याह पितामहः॥१९॥

सब देशों में सनातन धर्म की प्रतिष्ठा और पञ्चनद में धर्म का अभाव देखकर पितामह ब्रह्माने इनको धिक्कार दिया है॥१९॥

व्रात्यानां दासमीयानां कृतेऽप्यशुभकर्मणाम्।
ब्राह्मणा निन्दिते धर्मे स त्वं लोके किमब्रवीः॥२०॥

संस्कार हीन होने से पतित, सेवकों की सन्तान तथा अशुभ कर्म करने वाले इन लोगों की जब ब्रह्मा ने ही निन्दा कर दी है तो फिर तू क्या कर सकता है॥२०॥

इति पाञ्चनदं धर्ममवमेने पितामहः ।
स्वधर्मस्थेषु वर्णेषु सोऽप्येतान्नाभ्यपूजयत् ॥२१॥
हन्त शल्य विजानीहि हन्त भूयो ब्रवीमि ते ।

जब पितामह ब्रह्मा ने पञ्चनद (पञ्जाब) नामक देश का अपमान किया है और वहां अपने २ धर्म में लोग स्थित भी हों तो भी उन्होंने उनका कोई आदर नहीं किया। हे शल्य ! तुम इसे जान लो फिर मैं अन्य बात कहने वाला हूँ ॥२१॥

कल्माषपादः सरसि निमज्जन्राक्षसोऽब्रवीत् ॥२२॥
क्षत्रियस्य मलं भैक्ष्यं ब्राह्मणस्याव्रतं मलम् ।
मलं पृथिव्या वाहीकाः स्त्रीणां मद्रस्त्रियो मलम् ॥२३॥

एक बार कल्माष पाद नामक राक्षस ने सरोवर में स्नान करते २ कहा था, कि क्षत्रिय का मल, ब्राह्मण का मल, व्रत का पालन न करना है। इस पृथिवी का मल वाहीक देश की स्त्रियां हैं ॥२२-२३॥

निमज्जमानमुद्धृत्य कश्चिद्राजा निशाचरम् ।
अपृच्छत्तेन चाख्यातं प्रोक्तवांस्तन्निबोध मे ॥२४॥
मानुषाणां मलं म्लेच्छा म्लेच्छानामौष्ट्रिका मलम् ।
औष्ट्रिकाणां मलं षण्ढाः षण्ढानां राजयाजकाः ॥२५॥

हे राजन् ! उस तालाब से किसी राजा ने उस राक्षस को निकाला-उसने जब उस से उसका वृत्तान्त पूछा-तो उसने जो उत्तर दिया-वह मैं तुम को सुनाता हूँ तुम ध्यान से सुनो कि मनुष्य का

गण म्लेच्छ, म्लेच्छों का मल औष्ट्रिक (तेली) और औष्ट्रिकों का मल पण्ड और पण्डों के मल राजा के याजक होते हैं ॥२४-२५॥

राजयाजकयाज्यानां मद्रकाणां च यन्मलम् ।
तद्भवेद्वै तव मलं यद्यस्मान्न विमुञ्चसि ॥२६॥

राजा के याजकों के यजमान और मद्रक देश के वीरों का जो मल होता है-वह मल तुम को प्राप्त हो-जो तुम हमको छोड़ नहीं रहे हो ॥२६॥

इति रक्षोपसृष्टेषु विषवीर्यहतेषु च ।
राक्षसं भेषजं प्रोक्तं संसिद्धवचनोत्तरम् ॥२७॥

यह राक्षसों के उपद्रव और विष द्वारा वीर्य के नष्ट हो जाने पर राक्षसों की पीड़ा का नाश करने वाला मन्त्री है। यह वचन किसी सिद्ध के वचन के उपरान्त सुनाया जा रहा है ॥२७॥

ब्राह्मं पाञ्चालाः कौरवेयास्तु धर्म्यं,
सत्यं मत्स्याः शूरसेनाश्च यज्ञम् ।
प्राच्या दासा वृषला दाक्षिणात्याः,
स्तेना वाहीकाः सङ्करा वै सुराष्ट्राः ॥२८॥

पञ्चाल क्षत्रिय वेद परायण, कौरव धर्म के आचरण करने वाले मत्स्य देश वासी सत्यवादी, शूरसेन यज्ञ करने वाले, प्राच्य सेवक, दाक्षिणात्य धर्म युक्त, वाहीक चोर और सुराष्ट्र देश के वर्ण शङ्कर होते हैं ॥२८॥

कृतघ्नता परवित्तापहारो मद्यपानं गुरुदारावमर्दः ।
वाक्पारुष्यं गोवधो रात्रिचर्या बहिर्गेहं परवस्त्रोपभोगः ॥२९॥

येषां धर्मस्तान्प्रति नास्त्यधर्मो ह्यारट्टानां पञ्चनदान्धिगस्तु
अथोदीच्याश्चाङ्गका मागधाश्च शिष्टान्धर्मानुपजीवन्ति वृद्धाः ॥

कृतघ्नता, दूसरे के द्रव्य का अपहरण, मद्यपान, पूज्य स्त्रियों के साथ सम्भोग, कठोर भाषण, गो वध, घर के बाहर रात में व्यभिचार आदि के निमित्त घूमना, दूसरे के वस्त्र धारण कर लेना-ये बातें जिन के धर्म हैं और इनको जो अधर्म नहीं मानते हैं, उन आरट्ट और पञ्चनद वासी मनुष्यों को धिक्कार है, उदीच्य, अङ्ग और मगध देश के वृद्ध मनुष्य बड़े २ उत्तम धर्मों का पालन कर रहे हैं ॥२९-३०॥

प्राचीं दिशं श्रिता देवा जातवेदःपुरोगमाः ।
दक्षिणां पितरो गुप्तां यमेन शुभकर्मणा ॥३१॥
प्रतीचीं वरुणः पाति पालयानः सुरान्बली ।
उदीचीं भगवान्सोमो ब्राह्मणैः सह रक्षति ॥३२॥

जात वेद आदि देव, प्राची दिशा में निवास करते हैं, पितर दक्षिण में जो शुभ कर्म कर्ता यमराज से सुरक्षित हैं। महा बलवान् वरुण देवों की रक्षा करते हुए पश्चिम दिशा में निवास करते हैं और ब्राह्मणों के साथ भगवान् सोम, उत्तर में निवास करते हैं ॥३१-३२॥

तथा रक्षःपिशाचाश्च हिमवन्तं नगोत्तमम् ।
गुह्यकाश्च महाराज पर्वतं गन्धमादनम् ॥३३॥
ध्रुवः सर्वाणि भूतानि विष्णुः पाति जनार्दनः ।

हे महाराज ! इसी तरह राक्षस और पिशाच हिमालय नामक उत्तम पर्वत पर और गुह्यक और ध्रुव (यक्ष) गन्ध मादन पर्वत पर निवास करते हैं। वहां भगवान् विष्णु सारे प्राणियों की रक्षा करते हैं ॥३३॥

इङ्गितज्ञाश्च मगधाः प्रेक्षितज्ञाश्च कोसलाः ॥३४॥

अर्धोक्ताः कुरुपाञ्चालाः शाल्वाः कृत्स्नानुशासनाः ।

मगध देश वासी, संकेत से समझने वाले हैं, कोशल देश वासी देखने से समझते हैं। कुरु और पञ्चाल आधा बता देने पर समझ लेते हैं और शाल्व तो सारा बताने पर समझते हैं ॥३४॥

पार्वतीयाश्च विषमा यथैव शिवयस्तथा ॥३५॥

सर्वज्ञा यवना राजञ्शूराश्चैव विशेषतः ।

हे राजन ! पर्वत प्रान्त के निवासी और शिबि बड़े विषम कष्ट से जीतने योग्य हैं। यवन (यूनानी) सब कुछ जानने वाले और विशेष कर शूरवीर हैं ॥३५॥

म्लेच्छाः स्वसंज्ञानियता नानुक्तमितरे जनाः ॥३६॥

प्रतिरब्धास्तु वाह्लीका न च केचन मद्रकाः ।

म्लेच्छ लोग अपनी ही भाषा में बोलते हैं। और वैदिक धर्म का अनुष्ठान नहीं करते। इतर जन अनुक्त वचन (भाषा) नहीं बोलते। या हित को नहीं पहचानते, वाह्लीक हितकारी के भी विरुद्ध रहने वाले होते हैं और मद्र देश वासियों में कुछ भी गुण नहीं हैं ॥३६॥

स त्वमेतादृशः शल्य नोत्तरं वक्तुमर्हसि ॥
पृथिव्यां सर्वदेशानां मद्रको मलमुच्यते ॥३७॥

हे शल्य ! तुम इसी तरह के मनुष्य हो-इसका कुछ उत्तर दे सकते हो । पृथिवी पर सारे देशों में मद्र देश वासी सब का मल कहाता है ॥३७॥

सीधोः पानं गुरुतल्पावमर्दो भ्रूणहत्या परवित्तापहारः ।
येषां धर्मस्तान्प्रति नास्त्यधर्म आरट्टजान्पाञ्चनदान्धिगस्तु ॥

सुरापान, गुरु स्त्री के साथ गमन, बच्चे मार देना और दूसरे के धन का छीन लेना-जिन का धर्म है । जो इन बातों को अधर्म ही नहीं मानते-उन आरट्ट देश वासी और पञ्चनदों को धिक्कार है ॥३८॥

एतज्ज्ञात्वा जोपमास्स्व प्रतीपं मा स्म वै कृथाः ।
मा त्वां पूर्वमहं हत्वा हनिष्ये केशवार्जुनौ ॥३९॥

यह सब कुछ जानकर तुम चुप हो रहो । अब विरोध करने की आवश्यकता नहीं है । यदि ऐसा न हो तो प्रथम तुमको मार कर फिर कृष्ण अर्जुन का वध करूंगा ॥३९॥

शल्य उवाच—

आतुराणां परित्यागः स्वदारसुतविक्रयः ।
अङ्गे प्रवर्तते कर्ण येषामधिपतिर्भवान् ॥४०॥

शल्य ने कहा—हे कर्ण ! शरणागत का त्याग और स्त्री-पुत्र का बेचना-यह अङ्ग देश का व्यवहार है, जिस देश के तुम राजा हो ॥४०॥

रथातिरथसंख्यायां यत्त्वां भीष्मस्तदाब्रवीत् ।
तान्विदित्वात्मनो दोषान्निर्मन्युर्भव मा क्रुधः ॥४१॥

हे कर्ण ! जब भीष्म ने रथी और अतिरथियों की गणना की थी और उस समय तुम में जो दोष गिनाए थे उनको सोच कर चुप हो जाओ और क्रोध न करो ॥४१॥

सर्वत्र ब्राह्मणाः सन्ति सन्ति सर्वत्र क्षत्रियाः ।
वैश्याः शूद्रास्तथा कर्ण स्त्रियः साध्व्यश्च सुव्रताः ॥४२

हे कर्ण ! सब जगह सच्चे ब्राह्मण भी हैं सब जगह क्षत्रिय भी पड़े हैं । वैश्य और शूद्र भी कहीं नहीं चले गये और साध्वी स्त्रियां भी होती ही हैं ॥४२॥

रमन्ते चोपहासेन पुरुषाः पुरुषैः सह ।
अन्योन्यमवरक्षन्तो देशे देशे समैथुनाः ॥४३॥

प्रत्येक देश में हँसी मजाक करके स्त्री पुरुष आनन्द से रहते हैं और एक दूसरे की रक्षा करते हैं । वह कौनसा देश है, जिस में स्त्री पुरुष व्यभिचार नहीं करते प्रत्येक देश में परस्पर मैथुन करने वाले होते हैं ॥४३॥

परवाच्येषु निपुणः सर्वो भवति सर्वदा ।
आत्मवाच्यं न जानीते जानन्नपि च मुह्यति ॥४४॥

दूसरे के दोष कहने में दुष्ट जन सर्वदा निपुण होते हैं, परन्तु अपनी निन्दा की बात को नहीं देखते और कभी २ देख कर भी उसमें भूला रहता है ॥४४॥

सर्वत्र सन्ति राजानः स्वं स्वं धर्ममनुव्रताः ।
दुर्मनुष्यान्निगृह्णन्ति सन्ति सर्वत्र धार्मिकाः ॥४५॥

अपने २ धर्म का पालन करने वाले राजा भी सब देशों में होते रहते हैं, जो दुष्ट मनुष्यों का निग्रह करते रहते हैं। तथा धार्मिक होते हैं ॥४५॥

न कर्ण देशसामान्यात्सर्वः पापं निषेवते ।
यादृशाः स्वस्वभावेन देवा अपि न तादृशाः ॥४६॥

हे कर्ण ! किसी देश में उत्पन्न हो जाने से कोई मनुष्य पापी नहीं होता। जो होता है, वह अपने २ स्वभाव से ही होता है। तुम देवता बनते हो परन्तु वैसे दिखाई नहीं देते हो ॥४६॥

सञ्जय उवाच—

ततो दुर्योधनो राजा कर्णशल्याववारयत् ।
सखिभावेन राधेयं शल्यं स्वाञ्जल्यकेन च ॥४७॥

सञ्जय ने कहा—हे भरत श्रेष्ठ, राजा दुर्योधन ने आकर झगड़ते हुए कर्ण और शल्य को वहीं रोक दिया। राधा पुत्र कर्ण को अपने सखाभाव और शल्य को हाथ जोड़कर समझाया ॥४७॥

ततो निवारितः कर्णो धार्तराष्ट्रेण मारिष ।
कर्णोऽपि नोत्तरं प्राह शल्योऽप्यभिमुखः परान् ।
ततः प्रहस्य राधेयः पुनर्याहीत्यचोदयत् ॥४८॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४५॥

हे आर्य ! धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन द्वारा शान्त किया हुआ कर्ण भी चुप हो गया और शल्य भी अपने रथ को लेकर शत्रुओं की ओर आगे बढ़ा। अब राधा-पुत्र कर्ण कुछ मुसकुराया और बोला-हे शल्य ! शीघ्र शत्रुओं की ओर बढ़ चलो।

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और मद्राधिप
शल्य के सम्वाद का पैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।

छियालीसवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः परानीकसहं व्यूहमप्रतिमं कृतम्।
समीक्ष्य कर्णः पार्थानां धृष्टद्युम्नाभिरक्षितम् ॥१॥
प्रययौ रथघोषेण सिंहनादरवेण च।
वादित्राणां च निनदैः कम्पयन्निव मेदिनीम् ॥२॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! शत्रु सेना के आक्रमण के सहने में समर्थ, अद्भुत, धृष्टद्युम्न से सुरक्षित पाण्डव सेना का व्यूह देखकर कर्ण, अपने रथ की ध्वनि के साथ सिंह नाद करता हुआ और बाजों की ध्वनि से पृथिवी को कंपाता हुआ आगे बढ़ा ॥१-२॥

वेपमान इव क्रोधाद्युद्धशौण्डः परन्तपः।
प्रतिव्यूह्य महातेजा यथावद्भरतर्षभ ॥३॥

हे भरतर्षभ! यह युद्ध दुर्मद परन्तप कर्ण क्रोध में काँप रहा था। इस महा तेजस्वी कर्ण ने भी उनके मुक़ाबिले पर वैसा अपनी सेना का व्यूह बनाया ॥३॥

व्यधमत्पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ।
युधिष्ठिरं चाभ्यहनदपसव्यं चकार ह ॥४॥

अब यह असुर सेना को इन्द्र की तरह पाण्डव सेना का विनाश करने लगे । इसने राजा युधिष्ठिर को दांयी ओर करके उसपर प्रहार किया ॥४॥

धृतराष्ट्र उवाच—

कथं सञ्जय राधेयः प्रत्यव्यूहत पाण्डवान् ।
धृष्टद्युम्नप्रमुखान्सर्वान्भीमसेनाभिरक्षितान् ॥५॥
सर्वानेव महेष्वासानजय्यानमरैरपि ।
के च प्रपक्षौ पक्षौ वा मम सैन्यस्य सञ्जय ॥६॥
प्रविभज्य यथान्यायं कथं वा समवस्थिताः ।

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय! राधापुत्र कर्ण ने किस तरह व्यूह बनाया। जिसके विरोध में धृष्टद्युम्न जैसे पञ्चाल वीर थे और जिनके व्यूह की भीमसेन रक्षा कर रहे थे । इन धनुर्धरों को तो देवता भी जीतने में समर्थ नहीं थे। हे सञ्जय! हमारी सेना के पक्ष और प्रपक्ष में किन किन महारथियों को लगाया गया। वे अपनी २ योग्यता के अनुसार विभाग करके किस तरह खड़े हुए ॥५-६॥

कथं पाण्डुसुताश्चापि प्रत्यव्यूहन्त मामकान् ॥७॥

कथं चैव महद्युद्धं प्रावर्तत सुदारुणम् ।

पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिरादि ने भी हमारे पुत्रों के विरोध में कैसा प्रतिव्यूह बनाया और किस प्रकार फिर दारुण आगे चला ॥७॥

क्व च बीभत्सुरभवद्यत्कर्णोऽयाद्युधिष्ठिरम् ॥८॥

को ह्यर्जुनस्य सान्निध्ये शक्तोऽभ्येतुं युधिष्ठिरम् ।

कर्ण ने राजा युधिष्ठिर पर जब आक्रमण कर दिया-तब अर्जुन कहां थे, क्योंकि अर्जुन के रहते २ कौन राजा युधिष्ठिर पर आक्रमण कर सकता है ॥८॥

सर्वभूतानि यो ह्येकः खाण्डवे जितवान्पुरा ।

कस्तमन्यस्तु राधेयात्प्रतियुद्ध्येज्जिजीविषुः ॥९॥

खाण्डवप्रस्थ में जिसने सारे व्यक्तियों को जीत लिया था, उस अर्जुन से जीवन का अभिलाषी कर्ण को छोड़कर कौन वीर युद्ध के लिए आगे बढ़ सकता है ॥९॥

सञ्जय उवाच—

शृणु व्यूहस्य रचनामर्जुनश्च यथा गतः ।

परिवार्य नृपं स्वं स्वं संग्रामश्चाभवद्यथा ॥१०॥

सञ्जय बोले—हे नराधिप! अब तुम पाण्डवों की व्यूह रचना और अर्जुन का धर्मराज के समीप से हटजाने का वृत्तान्त सुनो तथा अपने राजा को सुरक्षित करके जैसे २ युद्ध हुआ वह भी सुनते जाओ ॥१०॥

कृपः शारद्वतो राजन्मागधाश्च तरस्विनः ।
सात्वतः कृतवर्मा च दक्षिणं पक्षमाश्रिताः ॥११॥
तेषां प्रपक्षे शकुनिरुलूकश्च महारथः ।
सादिभिर्विमलप्रासैस्तवानीकमरक्षताम् ॥१२॥
गान्धारिभिरसम्भ्रान्तैः पार्वतीयैश्च दुर्जयैः ।
शलभानामिव व्रातैः पिशाचैरिव दुर्दृशैः ॥१३॥

हे राजन्! शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य वेगशाली, मगध देश के वीर, सात्वत वंशोद्भव, कृतवर्मा, कौरवों के व्यूह के दक्षिण पक्ष में थे। उसके सन्मुख उत्तर की ओर प्रपक्षमें गान्धार राज शकुनि और महारथी उलूक, चमकीले भाले धारण करने वाले किसी तरह भी नहीं घबड़ाने वाले अश्वारोही तथा पर्वत प्रदेश के दुर्जय वीर और शलभ पक्षियों के झुण्ड के समान प्रतीत होने वाले भयङ्कर पिशाचों को साथ लिए हुए तुम्हारी सेना की रक्षा में तत्पर थे ॥११-१३॥

चतुर्विंशत्सहस्राणि रथानामनिवर्तिनाम् ।
संशप्तका युद्धशौण्डा वामं पार्श्वमपालयन् ॥१४॥
समन्वितास्तव सुतैः कृष्णार्जुनजिघांसवः ।

युद्ध से पीछे नहीं हटने वाले चौबीस हजार रथों को लेकर युद्ध कुशल संशप्तक वीर वामपार्श्व की रक्षा कर रहे थे। ये तुम्हारे पुत्रों के साथ इकट्ठे होकर श्रीकृष्ण और अर्जुन को मार देने की घात में थे ॥१४॥

तेषां प्रपक्षाः काम्बोजाः शकाश्च यवनैः सह ॥१५॥
निर्देशात्सूतपुत्रस्य सरथाः साश्वपत्तयः ।
आह्वयन्तोऽर्जुनं तस्थुः केशवं च महाबलम् ॥१६॥

उसके प्रपक्ष में काम्बोज, यवन और शक, अश्वारोहियों और रथियों के साथ कर्ण की आज्ञा से महाबली अर्जुन और कृष्ण को ललकारते हुए स्थित हुए ॥१५-१६॥

मध्ये सेनामुखे कर्णोऽप्यवातिष्ठत दंशितः ।
चित्रवर्माङ्गदः स्रग्वी पालयन्वाहिनीमुखम् ॥१७॥

सेना के मध्य भाग में विचित्र कवचधारी अङ्गद और माला पहने हुए, और सेना के मुख की रक्षा करते हुए महारथी कर्ण, स्थित थे ॥१७॥

रक्षमाणैः सुसंरब्धैः पुत्रैः शस्त्रभृतां वरः ।
वाहिनीं प्रमुखे वीरः सम्प्रकर्षन्नशोभत ॥१८॥
अभ्यवर्तन्महाबाहुः सूर्यवैश्वानरप्रभः ।

बड़े भारी आवेश में भरे हुए, तुम्हारे पुत्रों से सुरक्षित, शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ महारथी कर्ण, अपनी सेना का नेतृत्व करता हुआ सेना के प्रमुख स्थान पर बड़ा ही सुशोभित हो रहा था। इस समय कर्ण का तेज सूर्य और अग्नि के तुल्य देदीप्यमान था ॥१८॥

महाद्विपस्कन्धगतः पिङ्गाक्षः प्रियदर्शनः ॥१९॥
दुःशासनो वृतः सैन्यैः स्थितो व्यूहस्य पृष्ठतः ।

बड़े भारी गजराज पर सवार, पीली २ आंखों वाला, सुन्दर मुखधारी, बड़ी भारी सेना से आवृत महारथी दुःशासन, सेना के पीछे था ॥१९॥

तमन्वयान्महाराज स्वयं दुर्योधनो नृपः ॥२०॥

चित्रास्त्रैश्चित्रसन्नाहैः सोदर्यैरभिरक्षितः ।

हे महाराज ! दुःशासन के पीछे स्वयं कुरुराज दुर्योधन थे । ये विचित्र अस्त्र और विचित्र कवचधारी अपने भाइयों से अभिरक्षित थे ॥२०॥

रक्ष्यमाणो महावीर्यैः सहितैर्मद्रकेकयैः ॥२१॥

अशोभत महाराज देवैरिव शतक्रतुः ।

हे महाराज ! महा पराक्रमी मद्र और केकय वीरों से सुरक्षित हुए कुरुराज देवों से सुरक्षित शतक्रतु इन्द्र के तुल्य सुशोभित हो रहे थे ॥२१॥

अश्वत्थामा कुरूणां च ये प्रवीरा महारथाः ॥२२॥

नित्यमत्ताश्च मातङ्गाः शूरैर्म्लेच्छैः समन्विताः ।

अन्वयुस्तद्रथानीकं क्षरन्त इव तोयदाः ॥२३॥

इसके पीछे अश्वत्थामा तथा अन्य कौरव पक्ष के अत्यन्त वीर महारथी एवं शूरवीर म्लेच्छों से युक्त बड़े २ मदोन्मत्त, हाथी, मेघों की तरह मद वरसाते हुए इस रथ सेना के पीछे २ हो लिए ॥२२-२३॥

ते ध्वजैर्वैजयन्तीभिर्ज्वलद्भिः परमायुधैः ।

सादिभिश्चास्थिता रेजुर्द्रुमवन्त इवाचलाः ॥२४॥

वे हाथी, ध्वजा, बड़े २ झण्डे, चमकीले उत्तम २ शस्त्र और अपने २ सवारों से ऐसे प्रतीत होते थे, जैसे वृक्षों से सुसम्पन्न पर्वत सुशोभित हों ॥२४॥

तेषां पदातिनागानां पादरक्षाः सहस्रशः ।
पट्टिशासिधराः शूरा बभूवुरनिवर्तिनः ॥२५॥

उन हाथियों के साथ सहस्रों युद्ध से नहीं हटने वाले पाद रक्षक वीर, पट्टिश और खड्गधारी होकर चल रहे थे ॥२५॥

सादिभिः स्यन्दनैर्नागैरधिकं समलंकृतैः ।
स व्यूहराजो विबभौ देवासुरचमूपमः ॥२६॥

अश्वारोही, रथ, अत्यन्त विभूषित हाथियों से अलंकृत वह सर्वश्रेष्ठ कौरव सेना का व्यूह देव और असुरों की सेना के तुल्य प्रतीत होता था ॥२६॥

बार्हस्पत्यः सुविहितो नायकेन विपश्चिता ।
नृत्यतीव महाव्यूहः परेषां भयमादधत् ॥२७॥

युद्ध विद्या के ज्ञाता, सेनापति कर्ण ने, इस महा व्यूह को बनाया, जिसका नाम बार्हस्पत्य व्यूह था, जो शत्रुओं को भय उत्पन्न करता हुआ चक्कर लगा रहा था ॥२७॥

तस्य पक्षप्रपक्षेभ्यो निष्पतन्ति युयुत्सवः ।
हस्त्यश्वरथमातङ्गा प्रावृषीव बलाहकाः ॥२८॥

इस महा व्यूह के पक्ष और प्रपक्ष से युद्ध करने के अभिलाषी रथी अश्वारोही, गजारोही और मातङ्गारोही वीर वर्षा ऋतु में मेघ की भांति उमड़ २ पड़ते थे ॥२८॥

ततः सेनामुखे कर्णं दृष्ट्वा राजा युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयममित्रघ्नमेकवीरमुवाच ह ॥२६॥

अब कौरव सेना के मुख पर कर्ण को देखकर राजा युधिष्ठिर ने शत्रु नाशक, एक मात्र वीर धनञ्जय अर्जुन से यह वचन कहा ॥

पश्यार्जुन महाव्यूहं कर्णेन विहितं रणे ।
युक्तं पक्षैः प्रपक्षैश्च परानीकं प्रकाशते ॥३०॥

हे अर्जुन ! कर्ण द्वारा बनाए हुए इस महाव्यूह को देखो, जो पक्ष और प्रपक्ष से शत्रु सेना को गौरवान्वित कर रहा है ॥३०॥

तदेतद्वै समालोक्य प्रत्यमित्रं महद्बलम् ।
यथा नाभिभवत्यस्मांस्तथा नीतिर्विधीयताम् ॥३१॥
एवमुक्तोऽर्जुनो राज्ञा प्राञ्जलिर्नृपमब्रवीत् ।

अब तुम इस शत्रु की प्रबल सेना को देख लो और यह जिस तरह हमारा विनाश न कर सके-वैसी नीति बनाओ । जब धर्मराज ने इतना कहा-तो हाथ जोड़कर अर्जुन कहने लगे ॥३१॥

यथा भवानाह तथा तत्सर्वं न तदन्यथा ॥३२॥
यस्त्वस्य विहितो घातस्तं करिष्यामि भारत ।
प्रधानवध एवास्य विनाशस्तं करोम्यहम् ॥३३॥

हे भारत ! आप जैसा कह रहे हैं, वैसा ही हो जावेगा । जिस ढंग से कर्ण का नाश होगा-वही उपाय करूंगा । इस व्यूह का वध तो इस प्रधान वीर कर्ण के मार देने पर ही अवलम्बित है ॥

युधिष्ठिरउवाच—

तस्मात्त्वमेव राधेयं भीमसेनः सुयोधनम् ।
वृषसेनं च नकुलः सहदेवोऽपि सौबलम् ॥३४॥
दुःशासनं शतानीको हार्दिक्यं शिनिपुङ्गवः ।
धृष्टद्युम्नो द्रोणसुतं स्वयं योत्स्याम्यहं कृपम् ॥३५॥
द्रौपदेया धार्त्तराष्ट्राञ्शिष्टान्सह शिखण्डिना ।
ते ते च तांस्तानहितानस्माकं घ्नन्तु मामकाः ॥३६॥

युधिष्ठिर बोले—हे अर्जुन ! राधा-पुत्र कर्ण से तुम, दुर्योधन से भीमसेन, वृषसेन से नकुल, सुबल-पुत्र शकुनि से सहदेव दुःशासन से शतानीक, कृतवर्मा से सात्यकि, अश्वत्थामा से धृष्टद्युम्न, और कृपाचार्य से मैं स्वयं युद्ध करूंगा। धृतराष्ट्र के अन्य अवशिष्ट पुत्रों से द्रौपदी पुत्र, शिखण्डी को साथ लेकर युद्ध करें। ये हमारे बताये हुए वीर हमारे पूर्वोक्त शत्रुओं का नाश कर दें-यही उपाय करना चाहिए ॥३४-३६॥

सञ्जय उवाच—

इत्युक्तो धर्मराजेन तथेत्युक्त्वा धनञ्जयः ।
व्यादिदेश स्वसैन्यानि स्वयं चागाच्चमूमुखम् ॥३७॥

सञ्जय ने कहा—जब धर्मराज ने इतना कहा—तो अर्जुन ने कहा-अच्छी बात है। अर्जुन ने अपनी सेना को आज्ञा दी और आप उसके प्रधान स्थान पर स्थित होकर आगे बढ़े ॥३७॥

अग्निर्वैश्वानरः पूर्वो ब्रह्मेन्दुः समितां गतः ।
तस्माद्यः प्रथमं जातस्तं देवा ब्राह्मणा विदुः ॥३८॥
ब्रह्मेशानेन्द्रवरुणान्क्रमशो योऽवहत्पुरा ।
तमाद्यं रथमास्थाय प्रयातौ केशवार्जुनौ ॥३९॥

सब का नेता अग्नि, और वरुण पूर्वकाल में रथ के अश्व बन चुके-यह रथ सबसे प्रथम बना-इस बात को देवता और ब्राह्मण जानते हैं। ब्रह्मा, ईशान, इन्द्र, वरुण, इस पर क्रम से चढ़ चुके हैं। उसी आद्य रथ पर चढ़कर केशवार्जुन चल दिए ॥३८-३९॥

अथ तं रथमायान्तं दृष्ट्वात्यद्भुतदर्शनम् ।
उवाचाधिरथिं शल्यः पुनस्तं युद्धदुर्मदम् ॥४०॥

अत्यन्त अद्भुत दिखाई देने वाले, आते हुए अर्जुन के रथ को देखकर युद्ध दुर्मद अधिरथ पुत्र कर्ण से फिर राजा शल्य ने कहा ॥४०

अयं स रथ आयातः श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
दुर्वारः सर्वसैन्यानां विपाकः कर्मणामिव ॥४१॥
निघ्ननमित्रान्कौन्तेयो यं कर्ण परिपृच्छसि ।
श्रूयते तुमुलः शब्दो यथा मेघस्वनो महान् ॥४२॥
ध्रुवमेतौ महात्मानौ वासुदेवधनञ्जयौ ।

हे कर्ण ! देखो ? श्वेत अश्वों वाला कृष्ण को सारथि बनाये हुए सारी सेना से नहीं रुकने वाला कर्मों के विपाक के समान

अर्जुन का रथ चढ़ा चला आता है। इसमें बैठा हुआ कुन्ती-पुत्र अर्जुन कौरव सेना का नाश कर रहा है, जिसको तुम पूछ रहे थे। इस रथ की इतनी घोर ध्वनि सुनाई दे रही है, जैसे कोई मेघ गरज रहा हो। ये दोनों कृष्ण और अर्जुन ही हैं-इसमें सन्देह नहीं समझना ॥४१-४२॥

एष रेणुः समुद्भूतो दिवमावृत्य तिष्ठति ॥४३॥
चक्रनेमिप्रणुन्नेव कम्पते कर्ण मेदिनी ।

हे कर्ण! यह देखो? कितनी रेणु उठी हुई है जिसने आकाश को भी आच्छादित कर दिया है। अब तो चक्र की नेमि से टकराई हुई मानो भूमि कांप रही है ॥४३॥

प्रवात्येष महावायुरभितस्तव वाहिनीम् ॥४४॥
क्रव्यादा व्याहरन्त्येते मृगाः क्रन्दन्ति भैरवम् ।

हे कर्ण! देखो? यह महावायु (आंधी) तुम्हारी सेना में चल रहा है और मांस भोजी जन्तु चिल्लाते हैं तथा अन्य वन के जीव, भीषण शब्द कर रहे हैं ॥४४॥

पश्य कर्ण महाघोरं भयदं लोमहर्षणम् ॥४५॥
कबन्धं मेघसङ्काशं भानुमावृत्य संस्थितम् ।

हे कर्ण! देखो? कितना महाघोर, भयदायी लोम हर्षण दृश्य दिखाई दे रहा है, कि मेघ के सदृश राहु आकाश में सूर्य को ग्रसित करके स्थित है ॥४५॥

पश्य यूथैर्बहुविधैर्मृगाणां सर्वतोदिशम् ॥४६॥
बलिभिर्द्दप्तशार्दूलैरादित्योऽभिनिरीक्ष्यते ।

इधर देखो ? अनेक प्रकार बनैले जीव, रण भूमि में सब ओर फैले हैं और बलयुक्त उद्धत शार्दूल, सूर्य की ओर देख रहे हैं ॥४६॥

पश्य कङ्कांश्च गृध्रांश्च समवेतान्सहस्रशः ॥४७॥
स्थितानभिमुखान्घोरानन्योन्यमभिभाषतः ।

यह देखो ? कङ्क और गीध पक्षी सहस्रों की संख्या में सन्मुख ही इकट्ठे होकर स्थित हैं जो एक दूसरे की ओर देखकर बोल रहे हैं ॥४७॥

रञ्जिताश्चामरायुक्तास्तव कर्ण महारथे ॥४८॥
प्रवराः प्रज्वलन्त्येते ध्वजश्चैव प्रकम्पते ।

हे कर्ण ! तुम्हारे इस महारथ में रथ की रंगी हुई उत्तम झालरें चक्रों से उठी हुई आग से जल गई हैं। और ध्वजा कांपने लगी ॥४८॥

सवेपथून्हयान्पश्य महाकायान्महाजवान् ॥४९॥
प्लवमानान्दर्शनीयानाकाशे गरुडानिव ।

इन महावेगशाली विशाल काय कांपते हुए अश्वों को देखो, जो आकाश में उड़ते हुए गरुड़ के समान दिखाई रहे ॥४९॥

ध्रुवमेषु निमित्तेषु भूमिमाश्रित्य पार्थिवाः ५०॥
स्वप्स्यन्ति निहताः कर्ण शतशोऽथ सहस्रशः ।

हे कर्ण ! इन शकुनों के होने पर निश्चय है, कि सैंकड़ों हज़ारों राजा मारे जाकर पड़े हुए लौटे लगावेंगे ॥५०॥

शङ्खानां तुमुलः शब्दः श्रूयते लोमहर्षणः ॥५१॥
आनकानां च राधेय मृदङ्गानां च सर्वशः।

हे राधेय ! शङ्खों की घोर, लोम हर्षकारी, शब्द, सुनाई दे रहा है तथा सब ओर आनक और मृदङ्गों की ध्वनि सुनाई देती है ॥५१॥

बाणशब्दान्बहुविधान्नराश्वगजवाजिनाम् ॥५२॥
ज्यातलत्रेषुशब्दांश्च शृणु कर्ण महात्मनाम्।

हे कर्ण ! महावीरों के अनेक प्रकार के बाण, नर, अश्व, गज, अश्व, प्रत्यञ्चा, करतलत्राण तथा अन्य शस्त्रों के शब्दों को सुनो ॥५२॥

हेमरूप्यप्रसृष्टानां वाससां शिल्पिनिर्मिताः ॥५३॥
नानावर्णा रथे भान्ति श्वसनेन प्रकम्पिताः।

सुनहरी रूपहरी तारों से गुथे हुए, शिल्पियों से निर्मित वस्त्रों के अनेक रंग, रथ में सुशोभित हो रहे हैं, जिन वस्त्रों को वायु प्रकम्पित कर रही थी ॥५३॥

सहेमचन्द्रतारार्काः पताकाः किङ्किणीयुताः ॥५४॥
पश्य कर्णार्जुनस्यैताः सौदामिन्य इवाम्बुदे।

हे कर्ण ! सुवर्ण के चन्द्र, तारा और सूर्यों से युक्त, किङ्किणी जाल से समन्वित, यह अर्जुन की पताकाएँ देखो ? जो मेघों में बिजली के तुल्य दिखाई देती हैं ॥५४॥

ध्वजाः कणकणायन्ते वातेनाभिसमीरिताः ॥५५॥
विभ्राजन्ति रथे कर्ण विमाने देवते यथा ।
सपताका रथाश्चैते पञ्चालानां महात्मनाम् ॥५६॥

हे कर्ण ! वायु से कंपायी हुई ध्वजाएँ कण कण रही हैं। इस रथ में ये दोनों वीर कृष्णार्जुन ऐसे सुशोभित हो रहे हैं, जैसे विमानों में दो देव बैठे हों। जिन रथोंमें पताकाएँ लगी हुई हैं, वे पञ्चाल महावीरों के रथ हैं ॥५५-५६॥

पश्य कुन्तीसुतं वीरं बीभत्सुमपराजितम् ।
प्रधर्षयितुमायान्तं कपिप्रवरकेतनम् ॥५७॥

अब तुम किसी से पराजित नहीं होने वाले, कुन्ती-पुत्र, कपिध्वजधारी, वीर अर्जुन को देखो-जो तुम्हारे ऊपर आक्रमण करने आ रहा है ॥५७॥

एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षणीयः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो द्विषतामघवर्धनः ॥५८॥

यह अर्जुन की ध्वजा के अग्रभाग में सब तरह से दर्शनीय भयङ्कर वानर दिखाई दे रहा है, जो शत्रुओं का विनाश के बढ़ाने वाला है ॥५८॥

एतच्चक्रं गदा शार्ङ्गं शङ्खः कृष्णस्य धीमतः ।
अत्यर्थं भ्राजते कृष्णे कौस्तुभस्तु मणिस्ततः ॥५९॥

यह बुद्धिमान श्रीकृष्ण के चक्र, गदा, शार्ङ्ग, शङ्ख और कृष्ण की छाती पर कौस्तुभ मणि अत्यन्त चमक रही है ॥५९॥

एष शार्ङ्गगदापाणिर्वासुदेवोऽतिवीर्यवान् ।
वाहयन्नेति तुरगान्पाण्डुरान्वातरंहसः ॥६०॥

यह देखो ! शार्ङ्ग धनुष और गदा हाथ में लिये हुए, अत्यन्त वीर्यशाली, वसुदेव-पुत्र श्रीकृष्ण, वायु के तुल्य वेग वाले, श्वेत अश्वों को हांकते चले आरहे हैं ॥६०॥

एतत्कूजति गाण्डीवं विकृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्राञ्छिताः शराः ॥६१॥

यह सव्यसाची अर्जुन द्वारा खैंचा हुआ गाण्डीव धनुष शब्द कर रहा है और विशाल हाथ वाले अर्जुन द्वारा छोड़े हुए तीक्ष्ण बाण, शत्रुओं को मार २ कर गिरा रहे हैं ॥६१॥

विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥६२॥

यह देखो ! युद्ध से नहीं भागने वाले वीर नृपों के विशाल और लम्बी चौड़ी लाल २ आंखों वाले, पूर्ण चन्द्र के सदृश सुन्दर, राजाओं के शिरों से यह रणभूमि अत्यन्त व्याप्त हो रही है ॥६२॥

एते सुपरिघाकाराः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्यतायुधशौण्डानां पात्यन्ते सायुधा भुजाः ॥६३॥

यह देखो ! परिघ (अर्गला) के आकार वाली सुगन्धित गन्ध लेप लगी हुई, उत्तम २ शस्त्रों से सुशोभित वीरों की भुजा, शस्त्रों के सहित रणभूमि में कटी पड़ी हैं ॥६३॥

निरस्तनेत्रजिह्वाश्च वाजिनः सह सादिभिः ।
पतिताः पात्यमानाश्च चितौ क्षीणाश्च शेरते ॥६४॥

अपने २ अश्वारोहियों के साथ नेत्र और जिह्वा निकाले हुए बहुत से अश्व, गिर चुके और बहुत से पृथ्वी में गिरकर तड़फड़ाते हुए पड़े हुए हैं ॥६४॥

एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्यरूपा हता द्विपाः ।
संछिन्नभिन्नाः पार्थेन प्रचरन्त्यद्रयो यथा ॥६५॥

ये देखो ? पर्वत के शिखर के आकार वाले, मारे हुए तथा पार्थ के बाण से क्षत-विक्षत हुए हाथी, पर्वतों की तरह पड़े हुए छटपटा रहे हैं ॥६५॥

गन्धर्वनगराकारा रथा हतनरेश्वराः ।
विमानानीव पुण्यानि स्वर्गिणां निपतन्त्यमी ॥६६॥

गन्धर्वों के नगर के आकार के तुल्य, रथियों से रहित हुए बहुत से रथ, इस तरह पड़े हैं, जैसे-स्वर्ग वासियों के पवित्र विमान भूमि में गिर गए हों ॥६६।

व्याकुलीकृतमत्यर्थं पश्य सैन्यं किरीटिना ।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ॥६७॥

इधर देखो ? सहस्रों की संख्या में इकट्ठे हुए मृग यूथों को जैसे एक सिंह बखेर देता है, उसी तरह किरीटधारी अर्जुन ने कौरव सेना को अत्यन्त व्याकुल कर दिया है ॥६७॥

घ्नन्त्येते पार्थिवान्वीराः पाण्डवाः समभिद्रुताः ।
नागाश्वरथपत्यौघांस्तावकान्समभिघ्नतः ॥६८॥

कौरवों के आक्रमण से उत्तेजित हुए पाण्डव वीर, अनेक राजा और पाण्डव सेना के नाश करते हुए तुम्हारे वीर तथा हाथी, अश्व रथ और पैदल सैनिकों को मार मार कर गिराने लगे ॥६८॥

एष सूर्य इवाऽम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते ।
ध्वजाग्रं दृश्यते त्वस्य ज्याशब्दश्चापि श्रूयते ॥६६॥

यह देखो ! बादलों से ढके हुए सूर्य की तरह बाणों से आच्छादित अर्जुन दिखाई नहीं दे रहे हैं। अब तो केवल ध्वजा का अग्रभाग दिखाई और उसकी धनुष की डोरी का शब्द सुनाई दे रहा है ॥६६॥

अद्य द्रक्ष्यसि तं वीरं श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
निघ्नन्तं शात्रवान्सङ्ख्ये यं कर्ण परिपृच्छसि ॥७०॥

हे कर्ण ! आज तुम श्वेत अश्व वाले, कृष्ण को सारथि बनाये हुए वीर अर्जुन को रण में कौरव वीरों को मार २ कर बिछाते हुए देखोगे जिसके विषय में तुम बार बार पूछ रहे थे ॥७०॥

अद्य तौ पुरुषव्याघ्रौ लोहिताक्षौ परन्तपौ ।
वासुदेवार्जुनौ कर्ण द्रष्टास्येकरथे स्थितौ ॥७१॥

हे कर्ण ! आज लाल २ नेत्रवाले, परन्तप, पुरुषव्याघ्र, कृष्णार्जुन को तुम एक रथ में बैठे हुए देख लोगे ॥७१॥

सारथिर्यस्य वार्ष्णेयो गाण्डीवं यस्य कार्मुकम् ।
तं चेद्धन्तासि राधेय त्वं नो राजा भविष्यसि ॥७२॥

हे राधेय ! जिसका सारथि वृष्णि वंशश्रेष्ठ श्रीकृष्ण हैं और जिसका गाण्डीव धनुष है, आज उस अर्जुन को यदि तुमने मार दिया तो तुम हमारे राजा बन जाओगे ॥७२॥

एष संशप्तकाहूतस्तानेवाभिमुखो गतः ।
करोति कदनं चैषां संग्रामे द्विषतां बली ॥७३॥

इस अर्जुन को संशप्तक गणों ने ललकारा है, इसीसे यह उनकी ओर चला जा रहा है। यह महाबली संग्राम में उनका कितना विध्वंस कर रहा है-क्या तुम को दिखाई नहीं देता है ॥७३॥

इति ब्रुवाणं मद्रेशं कर्णः प्राहातिमन्युना ।
पश्य संशप्तकैः क्रुद्धैः सर्वतः समभिद्रुतः ॥७४॥
एष सूर्य इवाम्भोदैश्छन्नः पार्थो न दृश्यते ।
एतदन्तोऽर्जुनः शल्य निमग्नो योधसागरे ॥७५॥

हे राजन् ! जब मद्रेश्वर शल्य ने इतना कहा-तो कर्ण अत्यन्त कुपित होकर कहने लगे—हे शल्य ! क्या तुमको दिखाई नहीं दे रहा है, कि क्रोधातुर संशप्तकों ने किस तरह अर्जुन को घेर लिया है। इस समय अर्जुन मेघों से ढके हुए सूर्य की भांति आच्छादित हो गया है । अर्जुन का मुझे तो यहीं अन्त हो जाता दिखाई देता है। क्योंकि यह योद्धाओं के समुद्र के भंवर में फंस गया है ॥७४-७५॥

शल्य उवाच—

वरुणं कोऽम्भसा हन्यादिन्धनेन च पावकम् ।

को वानिलं निगृह्णीयात्पिबेद्वा को महार्णवम् ॥७६॥

ईदृग्रूपमहं मन्ये पार्थस्य युधि विग्रहम् ।

नहि शक्योऽर्जुनो जेतुं युधि सेन्द्रैः सुरासुरैः ॥७७॥

शल्य ने कहा—हे कर्ण ! वरुण को जल से, अग्नि को इन्धन से, कौन शान्त कर सकता है तथा वायु को कौन पकड़ सकता है और महा समुद्र को कौन पी सकता है । मैं तो अर्जुन का भी युद्ध में यही रूप समझता हूँ । अर्जुन, युद्ध में इन्द्र सहित सुर और असुर दोनों से नहीं जीता जा सकता है ॥७६-७७॥

अथवा परितोषस्ते वाचोक्त्वा सुमना भव ।

न स शक्यो युधा जेतुमन्यं कुरु मनोरथम् ॥७८॥

इसके सिवाय कि तुम्हारा सन्तोष वाणी मात्र से हो जाता है-तो जीभ की लपालप लगाकर प्रसन्न हो जाओ । अर्जुन को तुम युद्ध में तो जीत नहीं सकते हो-इससे तुम्हें कोई और ही मनोरथ बनाना चाहिए ॥७८॥

बाहुभ्यामुद्धरेद्भूमिं दहेत्क्रुद्ध इमाः प्रजाः ।

पातयेत्त्रिदिवाद्देवान्योऽर्जुनं समरे जयेत् ॥७९॥

जो वीर, अर्जुन को रण में जीत लेगा-वह भूमि को बाहुओं पर उठा लेगा, कुपित होकर इस प्रजा को भस्म कर देगा तथा देवों को स्वर्ग से गिरा देगा-जो अर्जुन को रण में जीत लेगा ॥

पश्य कुन्तीसुतं वीरं भीममक्लिष्टकारिणम् ।
प्रभासन्तं महाबाहुं स्थितं मेरुमिवापरम् ॥८०॥

इधर कुन्ती-पुत्र भीषण कर्म कर दिखाने वाले, वीरश्रेष्ठ, महाबाहु, भीमसेन को देखो जो दूसरे मेरुपर्वत की तरह देदीप्यमान हो रहा है ॥८०॥

अमर्षी नित्यसंरब्धश्चिरं वैरमनुस्मरन् ।
एष भीमो जयप्रेप्सुर्युधि तिष्ठति वीर्यवान् ॥८१॥

यह बड़ा क्रोधी नित्य आवेश (जोश) में भरा हुआ और वैर का नित्य स्मरण करने वाला है । यह महापराक्रमी भीमसेन, विजय की अभिलाषा से रणभूमि में निडर खड़ा है ॥८१॥

एष धर्मभृतां श्रेष्ठो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
तिष्ठत्यसुकरः सङ्ख्ये परैः परपुरञ्जयः ॥८२॥

यह धर्मात्माओं में सर्वश्रेष्ठ धर्मराज युधिष्ठिर हैं, जो शत्रुओं के पुरों के विजेता और रण में शत्रुओं द्वारा अजेय हैं ॥८२॥

एतौ च पुरुषव्याघ्रावश्विनाविव सोदरौ ।
नकुलः सहदेवश्च तिष्ठतो युधि दुर्जयौ ॥८३॥

ये दोनों पुरुषव्याघ्र, अश्विनीकुमार को भांति सहोदर नकुल सहदेव हैं । जो युद्ध में बड़े, दुर्जय बने हुए रणभूमि में खड़े हैं ॥८३॥

अमी स्थिता द्रौपदेयाः पञ्च पञ्चाचला इव ।
व्यवस्थिता योद्धुकामाः सर्वेऽर्जुनसमा युधि ॥८४॥

इधर देखो ? पांच पर्वतों की तरह पांचों द्रौपदी-पुत्र स्थित हैं। ये युद्ध की कामना से स्थित हैं और सारे ही युद्ध में अर्जुन के सदृश पराक्रमी हैं ॥८४॥

एते द्रुपदपुत्राश्च धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
स्फीताः सत्यजितो वीरास्तिष्ठन्ति परमौजसः ॥८५॥

ये धृष्टद्युम्न आदि राजा द्रुपद के पुत्र हैं, जो, सत्य पराक्रमी, अत्यन्त ओजस्वी, वीर बड़े उत्साह से रण में स्थित हैं ॥८५॥

असाविन्द्र इवासह्यः सात्यकिः सात्वतां वरः ।
युयुत्सुरुपयात्यस्मान्क्रुद्धान्तकसमः पुरः ॥८६॥

सात्वत वंशश्रेष्ठ, शत्रु से असह्य एक ओर सात्यकि आ रहे हैं। दूसरी ओर सामने ही क्रुद्ध हुए काल की भांति धृतराष्ट्र-पुत्र युयुत्सु हमसे युद्ध करने आरहे हैं ॥८६॥

इति संवदतोरेव तयोः पुरुषसिंहयोः ।
ते सेने समसज्जेतां गङ्गायमुनवद्भृशम् ॥८७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कर्णशल्यसंवादे षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

जब ये पुरुष व्याघ्र इस तरह की बात चीत कर ही रहे थे कि इतने में ही गङ्गा-यमुना के प्रवाह की भांति दोनों सेना परस्पर वेग के साथ भिड़ गई ॥८७॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और शल्य के सम्वाद का छियालीसवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



सैंतालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

तथा व्यूढेष्वनीकेषु संसक्तेषु च सञ्जय ।
संशप्तकान्कथं पार्थो गतः कर्णश्च पाण्डवान् ॥१॥
एतद्विस्तरशो युद्धं प्रब्रूहि कुशलो ह्यसि ।
नहि तृप्यामि वीराणां शृण्वानो विक्रमान्रणे ॥२॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! जब दोनों ओर की सेना की व्यूह रचना हो चुकी और वह परस्पर भिड़ गई-तो उस समय अर्जुन किस तरह संशप्तकों में पहुंचे और कर्ण ने किस तरह पाण्डव सेना पर आक्रमण किया । तुम इस युद्ध को मुझे विस्तार के साथ सुनाओ । तुम समाचार सुनाने में बड़े कुशल हो । रण में किये हुए वीरों के पराक्रम को सुनने से मेरी तृप्ति नहीं हो पाती है ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

तदास्थितमवज्ञाय प्रत्यमित्रबलं महत् ।
अव्यूहतार्जुनो व्यूहं पुत्रस्य तव दुर्नये ॥३॥

सञ्जय कहने लगे-हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र के दुर्नीति रूप इस रण में शत्रु भूत कौरवों की विशाल सेना को सन्मुख स्थित देखकर अर्जुन ने भी अपना व्यूह बनाया ॥३॥

तत्सादिनागकलिलं पदातिरथसंकुलम् ।
धृष्टद्युम्नमुखं व्यूहमशोभत महद्बलम् ॥४॥

अश्वारोही, गजारोही आदि वीरों से व्याप्त, पैदल सैनिक और रथी वीरोंसे परिपूर्ण, पाण्डवों की विशाल सेना का महाव्यूह बड़ा ही सुशोभित होने लगा जिसके मुख पर सेनापति धृष्टद्युम्न था ॥४॥

पारावतसवर्णाश्वश्चन्द्रादित्यसमद्युतिः ।

पार्षतः प्रबभौ धन्वी कालो विग्रहवानिव ॥५॥

धृष्टद्युम्न के अश्वों की रंगत कबूतर के समान भूरी सी थी और वे चन्द्र सूर्य के समान तेजधारी थे। धनुष धारण किये हुए पर्षतवंशोद्भव वीर धृष्टद्युम्न, इस समय शरीरधारी काल की भांति, दिखाई देने लगे ॥५॥

पार्षतं जुगुपुः सर्वे द्रौपदेया युयुत्सवः ।

दिव्यवर्मायुधधराः शार्दूलसमविक्रमाः ॥६॥

सानुगा दीप्तवपुषश्चन्द्रं तारागणा इव ।

युद्ध के उत्साह में भरे हुए, सारे द्रौपदी-पुत्र, सेनापति धृष्टद्युम्न की रक्षा करने लगे। इन्होंने दिव्य कवच और आयुध धारण कर रखे थे और ये सिंह के सदृश पराक्रमी थे। ये अपने अनुचरों से इतने देदीप्यमान थे-जैसे-तारागण से चन्द्रमा सुशोभित हो ॥६॥

अथ व्यूढेष्वनीकेषु प्रेक्ष्य संशप्तकान्रणे ॥७॥

क्रुद्धोऽर्जुनोऽभिदुद्राव व्याक्षिपन्गाण्डिवं धनुः ।

जब दोनों ओर की सेना का व्यूह बन चुका-तो अर्जुन ने रणभूमि में खड़े संशप्तकों को देखा । वे उनको देखते ही गाण्डीव धनुष कंपाते हुए क्रोध के साथ उनकी ओर लपके ॥७॥

अथ संशप्तकाः पार्थमभ्यधावन्वधैषिणः ॥८॥
विजये धृतसङ्कल्पा मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ।

अब संशप्तक भी अर्जुन के वध की अभिलाषा से उसपर टूट पड़े । इन्होंने विजय करने का दृढ़ संकल्प कर रखा था और इनको मृत्यु का भय तनक भी नहीं रह गया था ॥८॥

तन्नराश्वौघबहुलं मत्तनागरथाकुलम् ॥९॥
पत्तिमच्छूरवीरौघं द्रुतमर्जुनमार्दयत् ।

ये संशप्तक वीर, नर, अश्व मदोन्मत्त हाथी, और रथियों से भरे हुए, पैदल शूरवीरों के समूह को साथ लेकर शीघ्रता से अर्जुन को पीड़ित करने लगे ॥९॥

स सम्प्रहारस्तुमुलस्तेषामासीत्किरीटिना ॥१०॥
तस्यैव नः श्रुतो यादृङ् निवातकवचैः सह ।

इन संशप्तक वीरों का अर्जुन के साथ इतना भीषण संग्राम हुआ-जैसा कभी निवातकवच नामक दैत्यों के साथ अर्जुन का युद्ध हुआ था ॥१०॥

रथानश्वान्ध्वजान्नागान्पत्तीन्रणगतानपि ॥११॥
इषून्धनूंषि खड्गांश्च चक्राणि च परश्वधान् ।

सायुधानुद्यतान्बाहून्विविधान्यायुधानि च ॥१२॥
चिच्छेद द्विषतां पार्थः शिरांसि च सहस्रशः ।

रण में पहुंचे हुए रथ, अश्व, ध्वजा, हाथी, पैदल सैनिक तथा बाण, धनुष, खड्ग, चक्र, परशु, आयुध सहित उठी हुई भुजा और अनेक आयुध, और सहस्रों शत्रुओं के शिर, अर्जुन ने काट काट कर गिरा दिए ॥११-१२॥

तस्मिन्सैन्यमहावर्त्ते पातालतलसन्निभे ॥१३॥
निमग्नं तं रथं मत्वा नेदुः संशप्तकास्तथा ।

इस सेना समुद्र के पाताल के समान गंभीर महान आवर्त, में फंसे हुए अर्जुन को देखकर संशप्तक गण बड़ा आनन्द मनाने लगे ॥१३॥

स पुनस्तानरीन्हत्वा पुनरुत्तरतोऽवधीत् ॥१४॥
दक्षिणेन च पश्चाच्च क्रुद्धो रुद्रः पशूनिव ।

अब क्रोध में भरे हुए रुद्र के समान भयङ्कर अर्जुन ने पशु (प्राणियों) की भांति, उन शत्रुओं को मार कर उत्तर की ओर मारना आरम्भ किया । वह कभी दक्षिण और कभी पीछे की ओर सेना का नाश करने लग जाता था ॥१४॥

अथ पञ्चालचेदीनां सृञ्जयानां च मारिष ॥१५॥
त्वदीयैः सह संग्राम आसीत्परमदारुणः ।

हे आर्य ! इस के पीछे पञ्चाल, चेदी और सृञ्जयों का तुम्हारे पक्ष के वीरों के साथ महा दारुण संग्राम होने लगा ॥१५॥

कृपश्च कृतवर्मा च शकुनिश्चापि सौबलः ॥१६॥
हृष्टसेनाः सुसंरब्धा रथानीकप्रहारिणः ।
कोसलैः काश्यमत्स्यैश्च कारूषैः केकयैरपि ॥१७॥
शूरसेनैः शूरवरैर्युयुधुर्युद्धदुर्मदाः ।

हे राजन् ! अब कृपाचार्य, कृतवर्मा, सुबल-पुत्र शकुनि-ये सारे, बड़े आवेश में भरे हुए रथों की सेना पर प्रहार करने लगे ये वीरश्रेष्ठ, कोसल, काशी, मत्स्य, कारूष, केकय और शूरवीर श्रेष्ठ शरसेनों की वीर सेना के साथ युद्ध करने लगे ॥१६-१७॥

तेषामन्तकरं युद्धं देहपाप्मासुनाशनम् ॥१८॥
क्षत्रविट्शूद्रवीराणां धर्म्यं स्वर्ग्यं यशस्करम् ।

इन राजाओं के अन्त का करने वाला यह युद्ध, था, इससे इनकी देह के पाप के नाश की सूचना मिलती थीं यह युद्ध, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र वीरों को धर्म, स्वर्ग और पक्ष का करने वाला प्रमाणित सिद्ध हुआ ॥१८॥

दुर्योधनोऽथ सहितो भ्रातृभिर्भरतर्षभ ॥१९॥
गुप्तः कुरुप्रवीरैश्च मद्राणां च महारथैः ।

हे भरतर्षभ ! राजा दुर्योधन, अपने भाइयों के साथ कुरु वीर और मद्रदेश के महारथियों से सुरक्षित थे ॥१९॥

पाण्डवैः सह पाञ्चालैश्चेदिभिः सात्यकेन च ॥२०॥
युध्यमानं रणे कर्णं कुरुवीरोऽभ्यपालयत् ।

पाण्डव, पाञ्चाल, चेदि और सात्यकि से रण में युद्ध करते हुए कर्ण की रक्षा स्वयं राजा दुर्योधन ने की ॥२०॥

कर्णोऽपि निशितैर्बाणैर्विनिहत्य महाचमूम् ॥२१॥
प्रमृद्य च रथश्रेष्ठान्युधिष्ठिरमपीडयत् ।

अङ्गराज कर्ण ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से पाण्डवों की महा सेना का नाश करके उनके उत्तम २ रथियों को मसल डाला और फिर राजा युधिष्ठिर को जा दबाया ॥२१॥

विवस्त्रायुधदेहासून्कृत्वा शत्रून्सहस्रशः ॥२२॥
युक्त्वा स्वर्गयशोभ्यां च स्वेभ्यो मुदमुदावहत् ।

कर्ण ने सहस्रों शत्रुओं को वस्त्र, शस्त्र और देहों से रहित कर दिया तथा इनको स्वर्ग और कीर्ति से युक्त करके अपने पक्ष के वीरों के आनन्द के कारण बन गए ॥२२॥

एवं मारिष संग्रामो नरवाजिगजक्षयः ।
कुरूणां सृञ्जयानां च देवासुरसमोऽभवत् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४७॥

हे आर्य गुणसम्पन्न ! इस रण में मनुष्य, अश्व और गजों का बहुत अधिक विनाश हुआ । कौरव और पाण्डवों का यह संग्राम, देवासुर संग्राम के समान भीषण होगया ॥२३॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में घोर युद्ध के वर्णन
का सैंतालीसवां अध्याय पूरा हुआ।



अड़तालीसवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

यत्तत्प्रविश्य पार्थानां सैन्यं कुर्वञ्जनक्षयम् ।
कर्णो राजानमभ्येत्य तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥१॥

धृतराष्ट्र बोले—हे सञ्जय ! महारथी कर्ण ने, पाण्डवों की सेना में प्रवेश और वहां बहुत से पाण्डव वीरों का विनाश करके राजा युधिष्ठिर के साथ कैसा युद्ध किया-अब मुझे यह बताओ ॥

के च प्रवीराः पार्थानां युधि कर्णमवारयन् ।
कांश्च प्रमथ्याधिरथिर्युधिष्ठिरमपीडयत ॥२॥

इस समय पाण्डवों क किन २ वीरों ने युद्ध में कर्ण को रोका और किन वीरों का मन्थन करके आधिरथ-पुत्र कर्ण ने राजा युधिष्ठिर को पीड़ित किया ॥२॥

सञ्जय उवाच—

धृष्टद्युम्नमुखान्पार्थान्दृष्ट्वा कर्णो व्यवस्थितान्।
समभ्यधावत्त्वरितः पाञ्चालाञ्छत्रुकर्षिणः ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! धृष्टद्युम्न आदि पाण्डव वीरों को युद्ध भूमि में स्थित देखकर उन शत्रुतापी पाञ्चालों पर कर्ण ने बड़े वेग से आक्रमण किया ॥३॥

तं तूर्णमभिधावन्तं पाञ्चाला जितकाशिनः ।
प्रत्युद्ययुर्महात्मानं हंसा इव महार्णवम् ॥४॥

कर्ण को बड़े वेग से आक्रमण करते देखकर विजय के

अभिलाषी पाञ्चालों ने महावीर कर्ण की ओर इस तरह प्रति यात्रा की, जिस तरह मानसरोवर पर हंस जाते हैं ॥४॥

ततः शङ्खसहस्राणां निःस्वनो हृदयङ्गमः ।
प्रादुरासीदुभयतो भेरीशब्दश्च दारुणः ॥५॥

इस समय सहस्रों शंखों की ध्वनि, हृदय को पकड़ने लगी और दोनों ओर भेरी बाजे का दारुण शब्द होने लगा ।।५॥

नानावाणनिपाताश्च द्विपाश्वरथनिःस्वनः ।
सिंहनादश्च वीराणामभवद्दारुणस्तदा ॥६॥

अनेक बाणों की सनसनाहट, हाथी, अश्व और रथों का घोष तथा वीरों का दारुण सिंहनाद रणभूमि में फैलने लगा ॥

साद्रिद्रुमार्णवा भूमिः सवाताम्बुदमम्बरम् ।
सार्केन्दुग्रहनक्षत्रा द्यौश्च व्यक्तं विघूर्णिता ॥७॥

पर्वत, वृक्ष, समुद्र, भूमि, वायु, मेघ, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा, ग्रह और नक्षत्रों से युक्त होकर द्युलोक स्पष्ट घूमने सा लग गया ॥७॥

इति भूतानि तं शब्दं मेनिरे ते च विव्यथुः ।
यानि चाप्यल्पसत्वानिप्रायस्तानि मृतानि च ॥८॥

जिन प्राणियों ने उस शब्द को सुना-वे भय से कांपने लगे और जो छोटे २ जन्तु थे-वे तो प्रायः मर ही चुके थे ॥८॥

अथ कर्णो भृशं क्रुद्धः शीघ्रमस्त्रमुदीरयत् ।
जघान पाण्डवीं सेनामासुरीं मघवानिव ॥९॥

अब कर्ण बहुत क्रुद्ध हो गए और उन्होंने शीघ्रता से अस्त्र उठा लिए। यह असुर सेना को इन्द्र की तरह पाण्डवों की सेना को मारने लगे ॥६॥

स पाण्डवबलं कर्णः प्रविश्य विसृजञ्छरान्।
प्रभद्रकाणां प्रवरानहनत्सप्तसप्ततिम् ॥१०॥

अब महारथी कर्ण पाण्डवों की सेना में प्रविष्ट हो गए और वहां बाणों की झड़ी लगाकर उन्होंने प्रभद्रक वीरों के सतहत्तर उत्तम २ वीर मार डाले ॥१०॥

ततः सुपुङ्खैर्निशितै रथश्रेष्ठो रथेषुभिः।
अवधीत्पञ्चविंशत्या पाञ्चालान्पञ्चविंशतिम् ॥११॥

रथियों में श्रेष्ठ कर्ण ने, अपने रथ पर से सुपुङ्खधारी तीक्ष्ण बाण छोड़े उनमें पच्चीस बाणों से उसने पञ्चालों के पच्चीस वीर मार गिराए ॥११॥

सुवर्णपुङ्खैर्नाराचैः परकायविदारणैः।
चेदिकानवधीद्वीरः शतशोऽथ सहस्रशः ॥१२॥

महावीर कर्ण ने सुवर्ण के मूल वाले, शत्रुओं की देह के भेदने में समर्थ, नाराचसंज्ञक बाणों से सैंकड़ों और हजारों चेदिवंशज क्षत्रियों के वीरों को मार गिराया ॥१२॥

तं तथा समरे कर्म कुर्वाणमतिमानुषम्।
परिवव्रुर्महाराज पाञ्चालानां रथव्रजाः ॥१३॥

हे महाराज ! इस तरह रण में कर्ण को मनुष्यातिशायी वीर कर्म करते देखकर पाञ्चालों के रथियों के समूह उसको घेर कर खड़े हो गए ॥१३॥

ततः सन्धाय विशिखान्पञ्च भारत दुःसहान् ।
पाञ्चालानवधीत्पञ्च कर्णो वैकर्तनो वृषः ॥१४॥

हे भारत ! इसके बाद पांच दुःसह बाण चढ़ा कर वृष नाम धारी सूर्य-पुत्र कर्ण ने पांच पाञ्चाल वीरों को मार गिराया ॥१४॥

भानुदेवं चित्रसेनं सेनाविन्दुं च भारत ।
तपनं शूरसेनं च पाञ्चालानहनद्रणे ॥१५॥

हे भारत ! भानुदेव, चित्रसेन, सेनाविन्दु तपन और शूरसेन ये इन पाञ्चाल वीरों के नाम थे, जिनको रण में कर्ण ने मार गिराया ॥१५॥

पाञ्चालेषु च शूरेषु वध्यमानेषु सायकैः ।
हाहाकारो महानासीत्पाञ्चालानां महाहवे ॥१६॥

जब कर्ण ने इस महा युद्ध में अपने बाणों से पाञ्चालों के वीरों को मार गिराया-तो पञ्चाल सेना में बड़ा ही हाहाकार मच गया ॥१६॥

परिवव्रुर्महाराज पाञ्चालानां रथा दश ।
पुनरेव च तान्कर्णो जघानाशु पतत्रिभिः ॥१७॥

हे महाराज ! अब पञ्चालों के दश रथियों ने महारथी कर्ण को घेर लिया । कर्ण ने फिर भी अपने बाणों से उन सबको झटपट मार गिराया ॥१७॥

चक्ररक्षौ तु कर्णस्य पुत्रौ मारिष दुर्जयौ ।
सुषेणः सत्यसेनश्च त्यक्त्वा प्राणानयुध्यताम् ॥१८॥

हे आर्य ! कर्ण के दो दुर्जय-पुत्र सुषेण और सत्यसेन, कर्ण के चक्र रक्षक थे-उन्होंने भी प्राणों की परवा न करके युद्ध करना आरम्भ किया ॥१८॥

पृष्ठगोप्ता तु कर्णस्य ज्येष्ठः पुत्रो महारथः ।
वृषसेनः स्वयं कर्णं पृष्ठतः पर्यपालयत् ॥१९॥

कर्ण का सबसे बड़ा पुत्र महारथी वृषसेन पृष्ठ रक्षक था, जो स्वयं कर्ण की पीछे से रक्षा कर रहा था ॥१९॥

धृष्टद्युम्नः सात्यकिश्च द्रौपदेया वृकोदरः ।
जनमेजयः शिखण्डी च प्रवीराश्च प्रभद्रकाः ॥२०॥
चेदिकेकयपञ्चाला यमौ मत्स्याश्च दंशिताः ।
समभ्यधावन्राधेयं जिघांसन्तः प्रहारिणम् ॥२१॥

अब धृष्टद्युम्न, सात्यकि, द्रौपदी-पुत्र भीमसेन, जनमेजय, शिखण्डी, महावीर प्रभद्रक, चेदि, केकय, पञ्चाल, नकुल, सहदेव, मत्स्यवीर, सब तरह से सुसज्जित होकर रण करने में कुशल राधा-पुत्र कर्ण पर टूट पड़े ॥२०-२१॥

त एनं विविधैः शस्त्रैः शरधाराभिरेव च ।
अभ्यवर्षन्विमर्दन्तं प्रावृषीवाम्बुदा गिरिम् ॥२२॥

जब कर्ण, पाण्डव सेना का मर्दन कर रहे थे, उसी समय, इसपर अनेक अस्त्र और बाणधाराओं की पाण्डव वीरों ने

इस तरह झड़ी सी लगादी-जैसे, वर्षा ऋतु में मेघ-पर्वत पर बरसते हैं ॥२२॥

पितरं तु परीप्सन्तः कर्णपुत्राः प्रहारिणः ।
त्वदीयाश्चापरे राजन्वीरा वीरानवारयन् ॥२३॥

हे राजन ! प्रहार करने में कुशल, कर्ण के पुत्र अपने, पिता की रक्षा में लगे हुए थे । इनके साथ तुम्हारे पक्ष के अन्य वीर, शत्रु वीरों को रोकने लगे ॥२३॥

सुषेणो भीमसेनस्य च्छित्त्वा भल्लेन कार्मुकम् ।
नाराचैः सप्तभिर्विध्वा हृदि भीमं ननाद ह ॥२४॥

अब कर्ण-पुत्र सुषेण ने, अपने बाण से भीमसेन का धनुष काट गिराया और भीमसेन के हृदय में सात बाण मार कर उसकी ओर बड़े वेग से गर्जना की ॥२४॥

अथान्यद्धनुरादाय सुदृढं भीमविक्रमः ।
सज्जं वृकोदरः कृत्वा सुषेणस्याच्छिनद्धनुः ॥२५॥

अब भयङ्कर कर्म कर दिखाने वाले वृकोदर भीम ने दूसरा दृढ़ धनुष उठाया और उसको खैंचकर भीम ने सुषेण का धनुष काट डाला ॥२५॥

विव्याध चैनं दशभिः क्रुद्धो नृत्यन्निवेषुभिः ।
कर्णं च तूर्णं विव्याध त्रिसप्तत्या शितैः शरैः ॥२६॥

अब युद्ध नाचते हुए से भीम ने क्रोध में भर कर दश बाण छोड़े, जिनसे सुषेण को घायल कर दिया और तेहत्तर तीक्ष्ण बाण छोड़कर शीघ्रता के साथ कर्ण को भी क्षत-विक्षत कर दिया ॥

भानुसेनं च दशभिः साश्वसूतायुधध्वजम् ।
पश्यतां सुहृदां मध्ये कर्णपुत्रमपातयत् ॥२७॥

अश्व, सारथि, आयुध और ध्वजा को दश बाणों से छिन्न-भिन्न करके सारे मित्रों के देखते २ भीम ने कर्ण-पुत्र भानुदेव को मार गिराया ॥२७॥

क्षुरप्रणुन्नं तत्तस्य शिरश्चन्द्रनिभाननम् ।
शुभदर्शनमेवासीन्नालभ्रष्टमिवाम्बुजम् ॥२८॥

क्षुर के महा बाण से कटा हुआ चन्द्रमा के सदृश मुख वाला उसका शिर, इस तरह सुन्दर दिखाई देने लगा-जैसे कमलनाल से तोड़ा हुआ कमल पुष्प दिखाई देता है ॥२८॥

हत्वा कर्णसुतं भीमस्तावकान्पुनरार्दयत् ।
कृपहार्दिक्ययोश्छित्वा चापौ तावप्यथार्दयत् ॥२६॥

हे राजन् ! कर्ण के पुत्र भानुदेव का वध करके भीमसेन, तुम्हारे योद्धाओं को पीड़ित करने लगा। इसने कृप और हृदिक पुत्र कृतवर्मा के धनुष्यों को काट डाला और उनको भी बहुत व्यथित किया ॥२६॥

दुःशासनं त्रिभिर्विध्वा शकुनिं षड्भिरायसैः ।
उलूकं च पतत्रिं च चकार विरथावुभौ ॥३०॥

इसने दुःशासन को तीन और शकुनि को छः लोहमय बाणों से बींध डाला तथा उनके दोनों पुत्र उलूक और पतत्रि को रथहीन बना दिया ॥३०॥

सुषेणं च हतोऽसीति ब्रुवन्नादत्त सायकम् ।
तमस्य कर्णश्चिच्छेद त्रिभिश्चैनमताडयत् ॥३१॥

अब भीमसेन ने यह कहकर बाण उठाया, कि लो ? सुषेण तुम मारे गए परन्तु कर्ण ने बीच में ही उसको काट गिराया और तीन बाणों से इसपर आघात किया ॥३१॥

अथान्यं परिजग्राह सुपर्वाणं सुतेजनम् ।
सुषेणायासृजद्भीमस्तमप्यस्याच्छिनद्वृषः ॥३२॥

अब इसने (भीम) अत्यन्त तीक्ष्ण अन्य बाण ग्रहण किया और उस को सुषेण पर छोड़ा, परन्तु कर्ण ने उसको भी काट गिराया ॥३२॥

पुनः कर्णस्त्रिसप्तत्या भीमसेनमथेषुभिः ।
पुत्रं परीप्सन्विव्याध क्रूरं क्रूरैर्जिघांसया ॥३३॥

कर्ण ने भीमसेन पर तेहत्तर बाण छोड़े। उसने भीम के मार देने की इच्छा से क्रूर बाणों द्वारा क्रूर कर्मा भीमसेन को बींध कर अपने पुत्र को बचा लेना चाहा ॥३३॥

सुषेणस्तु धनुर्गृह्य भारसाधनमुत्तमम् ।
नकुलं पञ्चभिर्बाणैर्बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥३४॥

सुषेण ने युद्ध के भार साधन में समर्थ, उत्तम धनुष उठाकर नकुल की भुजा और हृदय में पांच बाण मारे ॥३४॥

नकुलस्तं तु विंशत्या विध्वा भारसहैर्दृढै ।
ननाद बलवन्नादं कर्णस्य भयमादधत् ॥३५॥

नकुल ने रण के भार सहने में समर्थ, दृढ़, बीस बाण मार कर बड़ा घोर सिंहनाद किया, जिस से कर्ण भयभीत हो गया ॥३५॥

तं सुषेणो महाराज विध्वा दशभिराशुगैः ।
चिच्छेद च धनुः शीघ्रं क्षुरप्रेण महारथः ॥३६॥

हे महाराज ! अब कर्ण पुत्र महारथी सुषेण ने दश आशुगामी बाण छोड़े, जिन से नकुल को बींध लिया और क्षुर के सदृश बाण छोड़ कर शीघ्र नकुल का धनुष काट गिराया ॥३६॥

अथान्यद्धनुरादाय नकुलः क्रोधमूर्छितः ।
सुषेणं नवभिर्बाणैर्वारयामास संयुगे ॥३७॥

नकुल ने क्रोधातुर होकर दूसरा धनुष उठाया और उस से नौ बाण छोड़कर उसने रण में सुषेण को वहीं रोक दिया ॥३७॥

स तु बाणैर्दिशो राजन्नाच्छाद्य परवीरहा ।
आजघ्ने सारथिं चास्य सुषेणं च ततस्त्रिभिः ॥३८॥
चिच्छेद चास्य सुदृढं धनुर्भल्लैस्त्रिभिस्त्रिधा ।

हे राजन् ! शत्रु नाशक भीमसेन ने अपने बाणों से दशों दिशा आच्छादित करदी और इसके सारथि को घायल करके सुषेण के भी तीन बाण मारे । तथा तीन बाण तीन तरह से छोड़कर उसके दृढ़ धनुष को काट गिराया ॥३८॥

अथान्यद्धनुरादाय सुषेणः क्रोधमूर्छितः ॥३९॥
आविध्यन्नकुलं षष्ट्या सहदेवं च सप्तभिः।

अथ क्रोधाविष्ट सुषेण ने दूसरा धनुष उठाया और उससे साठ बाण छोड़कर नकुल और सात बाण छोड़कर सहदेव को बिल्कुल विकल कर दिया ॥३९॥

तद्युद्धं सुमहद्घोरमासीद्देवासुरोपमम् ॥४०॥
निघ्नतां सायकैस्तूर्णमन्योन्यस्य वधं प्रति।

महाघोर देवासुर संग्राम के समान भीषण यह युद्ध होने लगा जब ये एक दूसरे के वध के निमित्त वेग से बाण छोड़कर प्रहार कर रहे थे ॥४०॥

सात्यकिर्वृषसेनस्य सूतं हत्वा त्रिभिः शरैः ॥४१॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जघानाश्वांश्च सप्तभिः।

सात्यकि ने कर्ण पुत्र वृषसेन के सारथि को तीन बाण मार कर मार दिया और एक बाण से उसके धनुष और सात बाण से उसके अश्वों को मार गिराया ॥४१॥

ध्वजमेकेषुणोन्मथ्य त्रिभिस्तं हृद्यताडयत् ॥४२॥
अथावसन्नः स्वरथे मुहूर्तात्पुनरुत्थितः।

इसने एक बाण से इसकी ध्वजा काट गिराई और तीन बाणों से वृषसेन की छाती में प्रहार किया। यह रथ में चुपचाप मूर्छित सा स्थित हो गया और थोड़ी ही देर में फिर उठ खड़ा हुआ ॥४२॥

स रणे युयुधानेन विसूताश्वरथध्वजः ॥४३॥
कृतो जिघांसुः शैनेयं खड्गचर्मधृगभ्ययात् ।

जब रण में सात्यकि ने वृषसेन को सारथि अश्व रथ और ध्वजा से हीन कर दिया-तो वह शिनिपौत्र सात्यकि के मारने की इच्छा से ढाल तलवार लेकर उसपर झपटा ॥४३॥

तस्य चापततः शीघ्रं वृषसेनस्य सात्यकिः ॥४४॥
वाराहकर्णैर्दशभिरविध्यदसिचर्मणी ।

ज्योंही वृषसेन ने बड़ी शीघ्रता से आक्रमण करना चाहा त्योंही सात्यकि ने दस बारह कर्ण नामक बाण छोड़कर उस की ढाल तलवार को काट गिराया ॥४४॥

दुःशासनस्तु तं दृष्ट्वा विरथं व्यायुधं कृतम् ॥४५॥
आरोप्य स्वरथं तूर्णमपोवाह रणातुरम् ।

जब दुःशासन ने वृषसेन को रथ और शस्त्र हीन बना हुआ देखा-तो रण में व्याकुल वृषसेन को दुःशासन अपने रथ में बैठा कर वेग से ले उड़ा ॥४५॥

अथान्यं रथमास्थाय वृषसेनो महारथः ॥४६॥
द्रौपदेयांस्त्रिसप्तत्या युयुधानं च पञ्चभिः ।
भीमसेनं चतुःषष्ट्याः सहदेवं च पञ्चभिः ॥४७॥
नकुलं त्रिंशता बाणैः शतानीकं च सप्तभिः ।
शिखण्डिनं च दशभिर्धर्मराजं शतेन च ॥४८॥
एतांश्चान्यांश्च राजेन्द्र प्रवीराञ्जयगृद्धिनः ।

अभ्यर्दयन्महेष्वासः कर्णपुत्रो विशाम्पते ॥४६॥

कर्णस्य युधि दुर्धर्षस्ततः पृष्ठमपालयत् ।

हे विशाम्पते ! महा धनुर्धर महारथी वृषसेन थोड़ी देर में दूसरे रथ पर बैठकर लौट आया, और तेहत्तर बाण छोड़ कर उस ने द्रौपदी पुत्र, पांच बाण छोड़कर सात्यकि, चौसठ बाणों से भीम सेन, पांच से सहदेव, तीससे नकुल और सात बाणों से शतानीक दश से शिखण्डी, सौ बाणों से धर्मराज को क्षत विक्षत कर दिया। हे राजेन्द्र ! विजय के अभिलाषी इन वीर और अन्य वीरों को इस ने बहुत ही घायल कर दिखाया, हे राजन् ! इस तरह कर्ण पुत्र दुर्धर्ष वृषसेन ने युद्ध में कर्णके पृष्ठ भाग की रक्षा की ॥४६-४९

दुःशासनं च शैनेयो नवैर्नवभिरायसैः ॥५०॥

विसूताश्वरथं कृत्वा ललाटे त्रिभिरार्पयत् ।

शिनिपौत्र सात्यकि ने दुःशासन पर नौ नये लोहके बाणों से प्रहार किया। इसने दुःशासन को सारथि, अश्व और रथ से हीन करके उसके मस्तक में तीन बाणों का प्रहार किया ॥५०॥

स त्वन्यं रथमास्थाय विधिवत्कल्पितं पुनः ॥५१॥

युयुधे पाण्डुभिः सार्धं कर्णस्याप्याययन्बलम् ।

महारथी दुःशासन ने विधि पूर्वक युद्ध की सामग्री से सुसज्जित दूसरे रथ पर चढ़कर पाण्डवों के साथ युद्ध किया, जिससे कर्ण का और भी बल बढ़ गया ॥५१॥

धृष्टद्युम्नस्ततः कर्णमविध्यद्दशभिः शरैः ॥५२॥
द्रौपदेयास्त्रिसप्तत्या युयुधानस्तु सप्तभिः।
भीमसेनश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ॥५३॥
नकुलस्त्रिंशता बाणैः शतानीकस्तु सप्तभिः।
शिखण्डी दशभिर्वीरो धर्मराजः शतेन तु ॥५४॥
एते चान्ये च राजेन्द्र प्रवीरा जयगृद्धिनः।
अभ्यर्दयन्महेष्वासं सूतपुत्रं महामृधे ॥५५॥

अब सेनापति धृष्टद्युम्न ने दश, द्रौपदी पुत्रों ने तिहत्तर सात्यकि ने सात, भीमसेन ने चौसठ, सहदेव ने सात, नकुल ने तीस, शतानीक ने भी सात, वीर श्रेष्ठ शिखण्डी ने दश, धर्मराज ने सौ बाण मार कर कर्ण को घायल कर दिया। हे राजेन्द्र! ये विजयाभिलाषी तथा वीर श्रेष्ठों ने इस महा युद्ध में महा धनुर्धर सूत पुत्र कर्ण को बहुत ही पीड़ित कर दिया ॥५२-५५॥

तान्सूतपुत्रो विशिखैर्दशभिर्दशभिः शरैः।
रथेनानुचरन्वीरः प्रत्यविध्यदरिन्दमः ॥५६॥

अब अरिमर्दन सूतपुत्र वीर वर रथ से घूमते हुए कर्ण ने उन सारे महारथियों को बींध डाला ॥५६॥

तत्रास्त्रवीर्यं कर्णस्य लाघवं च महात्मनः।
अपश्याम महाभाग तदद्भुतमिवाभवत् ॥५७॥

हे महाराज ! उस समय महा पराक्रमी कर्ण का अस्त्र पराक्रम और शीघ्रता को हम लोग देखते हुए उसे बड़ा ही अद्भुत दृश्य समझ रहे थे ॥५७॥

नयाददानं ददृशुः सन्दधानं च सायकान्।
विमुञ्चन्तं च संरम्भादपश्यन्त हतानरीन् ॥५८॥

हम ने कर्ण को बाण लेता धनुष पर चढ़ाता और वेग से छोड़ता हुआ नहीं देखा। हमारी दृष्टि तो केवल मारे हुए शत्रुओं पर ही पड़ती थी ॥५८॥

द्यौर्वियद्भूर्दिशश्चैव प्रपूर्णा निशितैः शरैः।
अरुणाभ्रावृताकारं तस्मिन्देशे बभौ वियत् ॥५९॥

इस समय तीक्ष्ण बाणों से द्युलोक, आकाश और दिशाएँ भर गई और उस स्थान पर लाल बादलों के आकार से युक्त आकाश दिखाई देने लगा ॥५९॥

नृत्यन्निव हि राधेयश्चापहस्तः प्रतापवान्।
यैर्विद्धः प्रत्यविद्धयत्तानेकैकं त्रिगुणैः शरैः ॥६०॥

धनुष धारण किए हुए महा प्रतापी राधापुत्र युद्ध भूमि में नृत्य सा कर रहे थे। इसने उन महारथियों से घायल होकर भी उनके प्रत्येकके तिगुने-तिगुने बाण मारकर उन्हें क्षत-विक्षत कर दिया ॥६०॥

शतैश्च दशभिश्चैतान्पुनर्विध्वा ननाद च।
साश्वसूतरथाश्छन्नास्ततस्ते विवरं ददुः ॥६१॥

इसने कभी सौ २ के समूह और कभी दस दस के समूह से उनको बींध डाला और इसके बाद सिंहनाद किया। अश्व रथ और सारथियों के सहित बाणों से आच्छादित होकर इन पाण्डव महारथियों ने अन्त में कर्ण को सेना में घुसने का छिद्र दे दिया ॥६१॥

तान्प्रमथ्य महेष्वासान्राधेयः शरवृष्टिभिः ।
गजानीकमसम्बाधं प्राविशच्छत्रुकर्शनः ॥६२॥

अब राधा,पुत्र कर्ण ने अपनी बाण वर्षा से उन धनुर्धरों को मथ डाला। इस के बाद उस शत्रु नाशक कर्ण ने पाण्डव की गज सेना में प्रवेश किया ॥६२॥

स रथांस्त्रिशतं हत्वा चेदीनामनिवर्त्तिनाम् ।
राधेयो निशितैर्बाणैस्ततोऽभ्यार्च्छद्युधिष्ठिरम् ॥६३॥

इस ने युद्ध से नहीं हटने वाले चेदी वीरों के तीन सौ रथी मार डाले। इसके अनन्तर राधा-पुत्र कर्ण ने तीक्ष्ण बाणों से राजा युधिष्ठिर को व्याकुल कर दिया ॥६३॥

ततस्ते पाण्डवा राजञ्छिखण्डी च ससात्यकिः ।
राधेयात्परिरक्षन्तो राजानं पर्यवारयन् ॥६४॥

हे राजन्! अब पाण्डव, शिखण्डी और सात्यकि, राजा युधिष्ठिर को कर्ण से बचाने के लिए उसे घेर कर सब ओर से खड़े हो गए ॥६४॥

तथैव तावकाः सर्वे कर्णं दुर्वारणं रणे ।
यत्ताः शूरा महेष्वासाः पर्यरक्षन्त सर्वशः ॥६५॥

हे राजन ! इसी तरह तुम्हारे पक्ष के महा धनुर्धर शूरवीर भी रण में नहीं रोके जाने वाले कर्ण की सब ओर से बड़ी सावधानी से रक्षा करने लगे ॥६५॥

नानावादित्रघोषाश्च प्रादुरासन्विशाम्पते ।
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे शूराणामभिगर्जताम् ॥६६॥

हे विशाम्पते ! इस समय रणाङ्गण में अनेक बाजों का घोष उठ खड़ा हुआ और गर्जना करने वाले शूरवीरों का सिंहनाद सब ओर फैल गया ॥६६॥

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुपाण्डवाः ।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धेऽष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

इसके अनन्तर सूत-पुत्र आदि हम लोग कौरव और राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव वीर, फिर निडर होकर युद्ध के लिए लौट पड़े ॥६७॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में संकुलयुद्ध के वर्णन का अड़तालीसवां अध्याय समाप्त हुआ।

उनंचासवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

विदार्य कर्णस्तां सेनां युधिष्ठिरमथाद्रवत् ।
रथहस्त्यश्वपत्तीनां सहस्रैः परिवारितः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! इसके अनन्तर महारथी कर्ण ने सहस्रों की संख्या में रथी, हस्त्यारोही, अश्वारोही और पैदल सैनिकों की सेना को साथ लेकर पाण्डव सेना को तितर बितर कर दिया और फिर धर्मराज युधिष्ठिर पर आक्रमण किया ॥१॥

नानायुधसहस्राणि प्रेरितान्यरिभिर्वृषः ।
छित्त्वा बाणशतैरुग्रैस्तानविध्यदसम्भ्रमात् ॥२॥

शत्रुभूत पाण्डव वीरों द्वारा नाना प्रकार के सहस्रों शस्त्रों के प्रयुक्त करने पर कर्ण ने उन सबको अपने उग्र बाणों से काट गिराया और बिना किसी घबराहट के अपने बाणों द्वारा उनको छेद दिया ॥२॥

निचकर्त शिरांस्येषां बाहूनूरूंश्च सूतजः ।
ते हता वसुधां पेतुर्भग्नाश्चान्ये विदुद्रुवुः ॥३॥

सूत-पुत्र कर्ण ने इन वीरों के शिर, बाहू, ऊरू आदि कतर डाले। इनमें बहुत से मर कर भूमि में गिर गए और बहुत से भयभीत होकर भाग निकले ॥३॥

द्राविडास्तु निषादास्तु पुनः सात्यकिचोदिताः ।
अभ्यद्रवञ्जिघांसन्तः पत्तयः कर्णमाहवे ॥४॥

सात्यकि ने जैसे तैसे सेना को रोककर उनमें से निषाद और द्रविड वीरों को रण में कर्ण पर आक्रमण करने को प्रेरित किया । ये सैनिक भी कर्ण पर प्रहार करने को टूट पड़े ॥४॥

ते त्रिबाहुशिरस्त्राणाः प्रहताः कर्णसायकैः ।
पेतुः पृथिव्यां युगपच्छिन्नं शालवनं यथा ॥५॥

कर्ण के बाणों से बाहु और शिरस्त्राण के कट जाने पर बहुत से वीर नष्ट होगए-वे काटे हुए शालवन की भांति एक दम पृथिवी में गिर गए ॥५॥

एवं योधशतान्याजौ सहस्राण्ययुतानि च ।
हतानीयुर्महीं देहैर्यशसापूरयन्दिशः ॥६॥

इस प्रकार सैकड़ों, सहस्रों और दश सहस्र की संख्या में योद्धा मारे गए । उनकी देह पृथिवी पर गिर गई, जिससे उनके यश से सारी दिशाएँ भर गई ॥६॥

अथ वैकर्तनं कर्णं रणे क्रुद्धमिवान्तकम् ।
रुरुधुः पाण्डुपञ्चाला व्याधिं मन्त्रौषधैरिव ॥७॥

हे राजन् ! काल की तरह विकराल हुए सूर्य-पुत्र कर्ण को रण में पाण्डव और पाञ्चाल वीर, इस तरह रोकने लगे-जैसे मन्त्र और औषध से व्याधि के रोकने की चेष्टा की जाती है ॥७॥

स तान्प्रमृद्याभ्यपतत्पुनरेव युधिष्ठिरम् ।
मन्त्रौषधिक्रियातीतो व्याधिरत्युल्बणो यथा ॥८॥

हे नृप ! कर्ण ने इन सारे पाण्डव वीर और पाञ्चालों को अच्छी तरह कुचल दिया और फिर धर्मराज युधिष्ठिर पर वेग से इस तरह झपटा, जैसे मन्त्र और औषध की शक्ति से बाहर हुई अत्यन्त तीव्र व्याधि, देह पर आक्रमण करती है ॥८॥

स राजगृद्धिभी रुद्धः पाण्डुपञ्चालकेकयैः ।
नाशकत्तानतिक्रान्तुं मृत्युर्ब्रह्मविदो यथा ॥९॥

हे राजन् ! अब राज्यलोलुप पाण्डव, पाञ्चाल और केकय वीरों से भी कर्ण पर अतिक्रमण इस तरह नहीं किया जा सका, जैसे मृत्यु ब्रह्मज्ञानी पर अपना प्रभाव नहीं दिखा सकती है ॥९॥

ततो युधिष्ठिरः कर्णमदूरस्थं निवारितम् ।
अब्रवीत्परवीरघ्नं क्रोधसंरक्तलोचनः ॥१०॥

अब क्रोध में लाल नेत्र किये हुए धर्मराज युधिष्ठिर ने समीप में ही हटाये हुए शत्रु वीर नाशक कर्ण से यह वचन कहा ॥१०॥

कर्ण कर्ण वृथादृष्टे सूतपुत्र वचः शृणु ।
सदा स्पर्धसि संग्रामे फाल्गुनेन तरस्विना ॥११॥

हे कर्ण ! हे कर्ण ! तुम्हारी दृष्टि में बहुत ही निरर्थकता है, जो तुम वेगशाली अर्जुन से सदा युद्ध मे स्पर्धा करते रहते हो ! हे सूत-पुत्र ! तुम हमारे वचनों को ध्यान से सुनो ॥११॥

तथास्मान्बाधसे नित्यं धार्तराष्ट्रमते स्थितः ।
यद्बलं यच्च ते वीर्यं प्रद्वेषो यस्तु पाण्डुषु ॥१२॥

तत्सर्वं दर्शयस्वाद्य पौरुषं महदास्थितः ।
युद्धश्रद्धां च तेऽद्याहं विनेष्यामि महाहवे ॥१३॥

तुम नित्य दुर्योधन के षड्यन्त्रों में सम्मिलित रह कर हमको पीड़ा पहुंचाते रहते हो अब जो तुम में बल हो, विक्रम हो, उसे आज पूरा पुरुषार्थ करके प्रकट कर लेना । पाण्डवों में जो तुम्हारी प्रद्वेष की अग्नि भड़की हुई है, उन सबको दिखा लेना । आज हम लोग, तेरे इस युद्ध के घमण्ड को चकनाचूर करके छोड़ेंगे ॥१२-१३॥

एवमुक्त्वा महाराज कर्णं पाण्डुसुतस्तदा ।
सुवर्णपुङ्खैर्दशभिर्विव्याधायस्मयैः शरैः ॥१४॥

हे महाराज ! पाण्डु-पुत्र धर्मराज ने कर्ण से इतना कहकर सुवर्ण मूलधारी लोहनिर्मित दश बाणों से उसे छेद डाला ॥१४॥

तं सूतपुत्रो दशभिः प्रत्यविद्ध्यदरिन्दमः ।
वत्सदन्तैर्महेष्वासः प्रहसन्निव भारत ॥१५॥

हे भारत ! अरिमर्दन, महाधनुर्धर सूत-पुत्र कर्ण ने भी हंसते २ दश वत्सदन्त नामक बाण मारकर धर्मराज को आहत किया ॥१५॥

सोऽवज्ञाय तु निर्विद्धः सूतपुत्रेण मारिष ।
प्रजज्वाल ततः क्रोधाद्धविषेव हुताशनः ॥१६॥

हे आर्य ! राजा युधिष्ठिर, सूत-पुत्र द्वारा बिंध कर घृत आदि हवि से अग्नि की भांति-क्रोध से ज्वल उठा ॥१६॥

ज्वालामालापरिक्षिप्तो राज्ञो देहो व्यदृश्यत ।
युगान्ते दग्धुकामस्य संवर्ताग्नेरिवापरः ॥१७॥

इस समय राजा युधिष्ठिर की देह अग्नि की लपटों से व्याप्त इस तरह दिखाई देने लगी-जैसे प्रलयकाल में जगत् को दग्ध करने को प्रवृत्त हुआ संवर्ताग्नि का दूसरा रूप हो ॥१७॥

ततो विस्फार्य सुमहच्चापं हेमपरिष्कृतम् ।
समाधत्त शितं बाणं गिरीणामपि दारणम् ॥१८॥

अब धर्मराज ने अपना सुवर्ण निर्मित महाधनुष चढ़ाया और उसपर पर्वतों को भी भेद देने वाला तीक्ष्ण बाण समाहित किया ॥१८॥

ततः पूर्णायतोत्कृष्टं यमदण्डनिभं शरम् ।
मुमोच त्वरितो राजा सूतपुत्रजिघांसया ॥१९॥

अब राजा युधिष्ठिर ने कर्ण के नष्ट कर देने की इच्छा से, यम दण्ड के तुल्य भीषण, बाण को अत्यन्त शक्ति के साथ पूरी तरह खैंचकर वेग के साथ छोड़ा ॥१९॥

स तु वेगवता मुक्तो बाणो वज्राशनिस्वनः ।
विवेश सहसा कर्णं सव्ये पार्श्वे महारथम् ॥२०॥

वज्राशनि के सदृश भीषण वह वेगशाली धर्मराज से छोड़ा हुआ बाण, महारथी कर्ण की दांयी पसली में एक दम घुस गया ॥२०॥

स तु तेन प्रहारेण पीडितः प्रमुमोह वै ।
स्रस्तगात्रो महाबाहुर्धनुरुत्सृज्य स्यन्दने ॥२१॥
गतासुरिव निश्चेताः शल्यस्याभिमुखोऽपतत् ।
राजापि भूयो नाजघ्ने कर्णं पार्थहितेप्सया ॥२२॥

कर्ण, इस तीव्र प्रहार से पीड़ित होकर मोहित हो गया। महाबाहु कर्ण का सारा शरीर शिथिल हो गया। वह धनुष छोड़कर मृतक की तरह मूर्च्छित होकर मद्रराज शल्य की ओर मुख करके गिर गया राजा युधिष्ठिर ने भी अर्जुन की प्रतिज्ञा का ध्यान करके कर्ण पर फिर प्रहार नहीं किया ॥२१-२२॥

ततो हाहाकृतं सर्वं धार्तराष्ट्रबलं महत् ।
विवर्णमुखभूयिष्ठं कर्णं दृष्ट्वा तथागतम् ॥२३॥
सिंहनादश्च सञ्जज्ञे क्ष्वेलाः किलकिलास्तथा ।
पाण्डवानां महाराज दृष्ट्वा राज्ञः पराक्रमम् ॥२४॥

अब राजा दुर्योधन की सारी सेना में हाहाकार मच गया। महारथी कर्ण के मुख की रंगत बदलती हुई देखकर पाण्डव सेना में सिंहनाद, हंसी के साथ ध्वनि और कलकलाहट मच गई। हे महाराज! यह सब कुछ धर्मराज के पराक्रम की महिमा से हुआ ॥२३-२४॥

प्रतिलभ्य तु राधेयः संज्ञां नातिचिरादिव ।
दध्रे राजविनाशाय मनः क्रूरपराक्रमः ॥२५॥

हे भारत ! थोड़ी ही देर में राधा-पुत्र कर्ण को संज्ञा प्राप्त हुई-तो क्रूर पराक्रमी कर्ण ने अब धर्मराज को मार देने की ही इच्छा की ॥२५॥

स हेमत्रिकृतं चापं विस्फार्य विजयं महत् ।
अवाकिरदमेयात्मा पाण्डवं निशितैः शरैः ॥२६॥

महापराक्रमी कर्ण ने अब सुवर्ण जटित अपने विजय नामक धनुष को चढ़ाया और उससे वह तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करके धर्मात्मा युधिष्ठिर को मारने लगा ॥२६॥

ततः क्षुराभ्यां पाञ्चाल्यौ चक्ररक्षौ महात्मनः ।
जघान चन्द्रदेवं च दण्डधारं च संयुगे ॥२७॥
तावुभौ धर्मराजस्य प्रवीरौ परिपार्श्वतः ।
रथाभ्याशे चकाशेते चन्द्रस्येव पुनर्वसू ॥२८॥

हे राजन् ! महावीर धर्मराज के पाञ्चाल वीर चन्द्रदेव और दण्डधार दो चक्र रक्षक थे, कर्ण ने क्षुरोपम बाण मार कर रण में इन दोनों वीरों को क्षण भर में मार गिराया ; ये दोनों महावीर, धर्मराज के पार्श्व रक्षक थे। ये रथ के दोनों ओर ऐसे सुशोभित होते थे, जैसे चन्द्रमा के समीप पुनर्वसू तारे सुन्दर दिखाई दे रहे हों ॥२७-२८॥

युधिष्ठिरः पुनः कर्णमविद्धयत्त्रिंशता शरैः ।
सुषेणं सत्यसेनं च त्रिभिस्त्रिभिरताडयत् ॥२९॥

शल्यं नवत्या विव्याध त्रिसप्तत्या च सूतजम् ।
तांस्तस्य गोप्तॄन्विव्याध त्रिभिस्त्रिभिरजिह्मगैः ॥३०॥

अब राजा युधिष्ठिर ने भी कर्ण पर तीस बाण मारकर उसे बुरी तरह घायल कर दिया तथा सुषेण और सत्यसेन के शरीर में भी तीन २ बाण मारे । नब्बे बाण, राजा शल्य के शरीर में और सत्तर सूत-पुत्र की देह में मारे फिर सीधे जाने वाले तीन तीन बाण, राजा कर्ण के पार्श्व रक्षकों के मार कर उन्हें बींध दिया ॥२६-३०॥

ततः प्रहस्याधिरथिर्विधुन्वानः स कार्मुकम् ।
भित्त्वा भल्लेन राजानं विध्वा षष्ट्यानदत्तदा ॥३१॥

अब अधिरथ-पुत्र कर्ण ने कुछ मुसकुराकर अपने धनुष को चढ़ाया और इससे प्रथम एक भल्ल नामक तीक्ष्ण और फिर साठ बाण मारकर उनके द्वारा धर्मराज को बींध कर गर्जना की ॥

ततः प्रवीराः पाण्डूनामभ्यधावन्नमर्षिताः ।
युधिष्ठिरं परीप्सन्तः कर्णमभ्यर्दयञ्छरैः ॥३२॥

अब पाण्डवों के वीर पुरुष, आवेश में भरे हुए राजा युधिष्ठिर की रक्षा करने को कर्ण पर बाण वर्षा करते हुए वेग से दौड़े ॥३२॥

सात्यकिश्चेकितानश्च युयुत्सुः पाण्ड्य एव च ।
धृष्टद्युम्नः शिखण्डी च द्रौपदेयाः प्रभद्रकाः ॥३३॥

यमौ च भीमसेनश्च शिशुपालस्य चात्मजः ।
कारूषा मत्स्यशेषाश्च केकयाः काशिकोसलाः ॥३४॥
एते च त्वरिता वीरा वसुषेणमताडयन् ।

हे नृपते ! अब सात्यकि, चेकितान, युयुत्सु, पाण्डयराज धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी-पुत्र प्रभद्रक, नकुल सहदेव, भीमसेन, शिशुपाल-पुत्र धृष्टकेतु, कारूष, मत्स्य केकय, काशी, कोसल आदि देशों के वीर बड़े वेग से आगे बढ़े और कर्ण को बाणों से बींधने लगे ॥३३-३४॥

जनमेजयश्च पाञ्चाल्यः कर्णं विव्याध सायकैः ॥३५॥
वाराहकर्णनाराचैर्नालीकैर्निशितैः शरैः ।
वत्सदन्तैर्विपाठैश्च क्षुरप्रैश्चटकामुखैः ॥३६॥
नानाप्रहरणैश्चोग्रै रथहस्त्यश्वसादिभिः ।
सर्वतोऽभ्यद्रवत्कर्णं परिवार्य जिघांसया ॥३७॥

हे भरतर्षभ ! पाञ्चाल वीर जनमेजय ने कर्ण पर नाराच वाराह कर्ण नालीक वत्सदन्त, विपाठ, क्षुरप्र, चटकामुख आदि चमकीले तीक्ष्ण बाणों से प्रहार किया । अनेक प्रकार के उग्र अस्त्र शस्त्रधारी रथी, गजारोही और अश्वारोही वीरों को साथ लेकर कर्ण के मार देने की इच्छा से जनमेजय ने उसे अच्छी तरह घेर लिया ॥३५-३७॥

स पाण्डवानां प्रवरैः सर्वतः समभिद्रुतः ।
उदीरयन्ब्राह्ममस्त्रं शरैरापूरयन्दिशः ॥३८॥

हे राजन्! पाण्डवों के उत्तम २ योद्धाओं द्वारा सब ओर से घेरे हुए कर्ण ने, ब्रह्मास्त्र उठाकर उससे बाण वर्षा करके दिशाओं का भरना आरम्भ किया ॥३८॥

ततः शरमहाज्वालो वीर्योष्मा कर्णपावकः।
निर्दहन्पाण्डववनं वीरः पर्यचरद्रणे ॥३६॥

हे राजसत्तम! इस समय वीरश्रेष्ठ कर्ण अग्नि के सदृश दिखाई दे रहे थे। उनके बाण, अग्नि की ज्वाला और पराक्रम अग्नि की उष्णता थी। यह पाण्डव रूपी वन को दग्ध करता हुआ रण में घूमने लगा ॥३६॥

स सन्धाय महास्त्राणि महेष्वासो महामनाः।
प्रहस्य पुरुषेन्द्रस्य शरैश्चिच्छेद कार्मुकम् ॥४०॥

इस महाधनुर्धर, महा ओजस्वी, कर्ण ने अपने महास्त्र को उठाकर हंसते २ धर्मराज के धनुष को अपने बाणों से काट गिराया ॥४०॥

ततः सन्धाय नवतिं निमेषान्नतपर्वणाम्।
बिभेद कवचं राज्ञो रणे कर्णः शितैः शरैः ॥४१॥

अब कर्ण ने क्षण भर में रण में नत पर्वधारी, नब्बे तीक्ष्ण बाण मारकर राजा युधिष्ठिर के कवच का भेदन कर डाला ॥४१॥

तद्वर्म हेमविकृतं रत्नचित्रं बभौ पतत्।
सविद्युदभ्रं सवितुः श्लिष्टं वातहतं यथा ॥४२॥

वह कवच, सुवर्ण निर्मित्त और रत्न जड़ित था। बाणों से कटकर गिरता हुआ ऐसा प्रतीत होता है-जैसे सूर्य से लिपटा हुआ बिजली सहित मेघ, वायु से गिर गया हो ॥४२॥

तदङ्गात्पुरुषेन्द्रस्य भ्रष्टं वर्म व्यरोचत।
रत्नैरलंकृत मित्रैर्व्यभ्रं निशि यथा नभः ॥४३॥

हे राजेन्द्र! धर्मराज के शरीर से गिरा हुआ वह रत्नों से जटित कवच इस तरह दिखाई देने लगा-जैसे मेघों से रहित आकाश, रात में नक्षत्रों से सुन्दर प्रतीत होता है ॥४३॥

छिन्नवर्मा शरैः पार्थो रुधिरेण समुक्षितः।
ततः सर्वायसीं शक्तिं चिक्षेपाधिरथिं प्रति ॥४४॥

जब धर्मराज का कवच कट गया तो वे बाणों से विंध जाने से रुधिर में भीग गए। उन्होंने लोह निर्मित्त शक्ति को अधीरथ पुत्र कर्ण पर फैंका ॥४४॥

तां ज्वलन्तीमिवाकाशे शरैश्चिच्छेद सप्तभिः।
सा छिन्ना भूमिमगमन्महेष्वासस्य सायकैः ॥४५॥

कर्ण ने आकाश में चमचमाती हुई उस शक्ति को अपने सात बाण मार कर काट डाला। महा धनुर्धर कर्ण के बाणों से कटकर वह शक्ति, रण भूमि में गिर गई ॥४५॥

ततो बाह्वोर्ललाटे च हृदि चैव युधिष्ठिरः।
चतुर्भिस्तोमरैः कर्णं ताडयित्वानदन्मुदा ॥४६॥

अब धर्मराज युधिष्ठिर ने कर्ण की दो भुजा, ललाट और हृदय में चार तोमर संज्ञक बाण मारे। इन बाणों को मारकर धर्मराज ने बड़े जोर से गर्जना की ॥४६॥

उद्भिन्नरुधिरः कर्णः क्रुद्धः सर्प इव श्वसन्।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्रिभिर्विव्याध पाण्डवम् ॥४७॥
इषुधी चास्य चिच्छेद रथं च तिलशोऽच्छिनत्।

कर्ण के शरीर से रक्त की धारा बह निकली। वह क्रोधातुर सर्प की भांति श्वास लेने लगा। उसने एक भल्ल बाण से ध्वजा और तीन बाण से पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर को बींध लिया, इस के दोनों तूणीर काट डाले और रथ के तिल २ भर के टुकड़े कर दिए ॥४७॥

कालवालास्तु ये पार्थं दन्तवर्णावहन्हयाः ॥४८॥
तैर्युक्तं रथमास्थाय प्रायाद्राजा पराङ्मुखः।

धर्मराज के काले बाल वाले दांतों के तुल्य श्वेत वर्णधारी रथ में अश्व जोते जाते थे। राजा युधिष्ठिर उन अश्वों से युक्त रथ में बैठकर और युद्ध से पराङ्मुख होकर चल दिया ॥४८॥

एवं पार्थोऽभ्युपायात्स निहतः पार्ष्णिसारथिः ॥४६॥
अशक्नुवन्प्रमुखतः स्थातुं कर्णस्य दुर्मनाः।

राजा युधिष्ठिर के पार्श्व रक्षक मारे जा चुके थे, इससे वे बड़े चिन्तित हुए। उनसे रण में ठहरा नहीं जा सका, और वे धीरे धीरे रण से खिसक गए ॥४६॥

अभिद्रुत्य तु राधेयः पाण्डुपुत्रं युधिष्ठिरम् ॥५०॥
वज्रच्छत्रांकुशैर्मत्स्यैर्ध्वजकूर्माम्बुजादिभिः ।
लक्षणैरुपपन्नेन पाण्डुना पाण्डुनन्दनम् ॥५१॥
पवित्रीकर्तुमात्मानं स्कन्धे संस्पृश्य पाणिना ।
ग्रहीतुमिच्छन्सबलात्कुन्तीवाक्यं च सोऽस्मरत् ॥५२॥
तं शल्यः प्राह मा कर्ण गृहीथाः पार्थिवोत्तमम् ।
गृहीतमात्रो हत्वा त्वां मा करिष्यति भस्मसात् ॥५३॥

अब महारथी कर्ण दौड़कर पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के समीप पहुँचे। कर्ण ने वज्र, छत्र, अंकुश मत्स्य ध्वजा, कूर्म कमल आदि शुभ चिन्हों से युक्त, गौर वर्ण वाले हाथ से मानो अपने को पवित्र करने को धर्मराज के स्कन्धका स्पर्श किया। यह धर्मराज को पकड़ना ही चाहता था, कि इसको कुन्ति के वाक्य का स्मरण हो आया। राजा शल्य ने भी कहा—हे कर्ण तुम धर्मराज को न पकड़ो। यह पकड़ते ही तुमको कहीं भस्म सात् न कर डाले॥

अब्रवीत्प्रहसन्राजन्कुत्सयन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम कुले जातः क्षत्रधर्मे व्यवस्थितः ॥५४॥
प्रजह्यात्समरं भीतः प्राणान्रक्षन्महाहवे ।

हे राजन्! अब कर्ण ने मुसकुराते हुए पाण्डु-पुत्र धर्मराज को लताड़ते हुए कहा—हे युधिष्ठिर! तुम तो पवित्र क्षत्रिय कुल मेंअपना जन्म मानते हो। क्षत्रिय धर्म में स्थित हो-फिर प्राणों की

रक्षा करते हुए क्यों रण से भयभीत होकर मुख मोड़ कर भाग रहे हो ॥५४॥

न भवान्क्षत्रधर्मेषु कुशलो हीति मे मतिः ॥५५॥
ब्राह्मे बले भवान्युक्तः स्वाध्याये यज्ञकर्मणि ।

हे राजन्! मुझे तो यह जचता है, कि तुम क्षत्रिय धर्म कुशल नहीं हो-तुम तो स्वाध्याय और यज्ञ कर्म आदि जो ब्राह्मण के कर्म हैं उनमें बलवान् दिखाई देते हो ॥५५॥

मा स्म युध्यस्व कौन्तेय मा स्म वीरान्समासदः ॥५६॥
मा चैतानप्रियं ब्रूहि मा वै व्रज महारणम् ।
वक्तव्या मारिषान्ये तु न वक्तव्यास्तु मादृशाः ॥५७॥
मादृशान्विब्रुवन्युद्धे एतदन्यच्च लप्स्यसे ।

हे कौन्तेय! अब आगे, कभी हम से युद्ध न करना और न वीर पुरुषों के सन्मुख पहुँचना। तुम अब किसी से युद्ध सम्बन्ध में अप्रिय भी नहीं कहना और न किसी महा युद्ध में पहुँचना। हे आर्य! यदि तुम युद्ध के लिए किसी को ललकारो-तो किसी अन्य का आह्वान करना. मुझ जैसे वीर के सन्मुख कुछ बोले-तो आज की सी या इस से भी बुरी दशा को प्राप्त होओगे ॥५६-५७॥

स्वगृहं गच्छ कौन्तेय यत्र तौ केशवार्जुनौ ॥५८॥
न हि त्वां समरे राजन्हन्यात्कर्णः कथञ्चन ।

हे कुन्ती पुत्र ! अब तुम घर जाओ या जहां कृष्ण और अर्जुन हैं, वहां चले जाओ। हे राजन् ! कर्ण तो तुम जैसे दयनीय व्यक्ति को मारना नहीं चाहता है ॥५८॥

एवमुक्त्वा ततः पार्थं विसृज्य च महाबलः ॥५६॥
न्यहनत्पाण्डवीं सेनां वज्रहस्त इवासुरीम् ।

हे भारत ! इतना कहकर महा बली कर्ण अर्जुन को छोड़कर चल दिए और असुर सेना को वज्रधारी इन्द्र की भांति पाण्डव सेना का विध्वंस करने लगे ॥५६॥

ततोऽपायाद् द्रुतं राजन्व्रीडन्निव नरेश्वरः ॥६०॥
अथापयान्तं राजानं मत्वान्वीयुस्तमच्युतम् ।
चेदिपाण्डवपञ्चालाः सात्यकिश्च महारथः ॥६१॥
द्रौपदेयास्तथा शूरा माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ।

हे राजन् ! अब कुछ लज्जित हुए, राजा युधिष्ठिर, वहां से झटपट चले गए। जब धर्मराज ही चल दिए तो उसके पीछे २ चेदि पाण्डव, पाञ्चल वीर, महारथी सात्यकि, शूरवीर द्रौपदी-पुत्र पाण्डु-पुत्र, नकुल और सहदेव भी चल दिए ॥६०-६१॥

ततो युधिष्ठिरानीकं दृष्ट्वा कर्णः पराङ्मुखम् ॥६२॥
कुरुभिः सहितो वीरः प्रहृष्टः पृष्ठतोऽन्वगात् ।

जब कर्ण ने राजा युधिष्ठिर की सेना को रण से मुख मोड़कर जाती देखा-तो अपने कौरव वीरों को साथ लेकर प्रसन्नता के साथ उनका पीछा करने लगा ॥६२॥

भेरीशङ्खमृदङ्गानां कार्मुकाणां च निःस्वनः ॥६३॥
बभूव धार्त्तराष्ट्राणां सिंहनादरवस्तथा ।

इस समय भेरी, शङ्ख, मृदङ्ग-तथा धनुष की ध्वनि और धृतराष्ट्र पुत्र या उनके वीरों का सिंहनाद होने लगा ॥६३॥

युधिष्ठिरस्तु कौरव्य रथमारुह्य सत्वरम् ॥६४॥
श्रुतकीर्तेर्महाराज दृष्टवान्कर्णविक्रमम् ।

हे कुरु वंश श्रेष्ठ, महाराज ! राजा युधिष्ठिर तो झटपट श्रुत कीर्ति के रथ पर बैठ कर चल दिए। उन्होंने इस समय कर्ण के पराक्रम का अनुभव किया ॥६४॥

काल्यमानं बलं दृष्ट्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥६५॥
स्वान्योधानब्रवीत्क्रुद्धो निघ्नतैतान्किमासत ।

जब धर्मराज ने अपनी सेना को कौरवों द्वारा ललकारते देखा तो वे क्रोध में भरकर अपने वीरों से बोले-तुम चुप कैसे हो रहे हो-उनको मारो झटपट मारो ॥६५॥

ततो राज्ञाभ्यनुज्ञाताः पाण्डवानां महारथाः ॥६६॥
भीमसेनमुखाः सर्वे पुत्रांस्ते प्रत्युपाद्रवन् ।

राजा युधिष्ठिर की आज्ञा पाते ही पाण्डवों के महारथी भीमसेन आदि तुम्हारे पुत्रों से युद्ध करने लगे ॥६६॥

अभवत्तुमुलः शब्दो योधानां तत्र भारत ॥६७॥
रथहस्त्यश्वपत्तीनां शस्त्राणां च ततस्ततः ।

हे भारत ! इस समय रथ, हाथी, अश्व, और पैदल सैनिक शस्त्र तथा अन्य योद्धाओं का महान् कोलाहल उठ खड़ा हुआ ॥६७॥

उत्तिष्ठत प्रहरत प्रैताभिपततेति च ॥६८॥
इति ब्रुवाणा ह्यन्योन्यं जघ्नुर्योधा महारणे ।
अभ्रच्छायेव तत्रासीच्छरवृष्टिभिरम्बरे ॥६९॥
समावृतैर्नरवरैर्निघ्नद्भिरितरेतरम् ।

हे महाराज ! इस घोर युद्ध में प्रत्येक योद्धा यह कह कर एक दूसरे पर प्रहार करने लगे, कि उठो, प्रहार करो ? भागो और झपट कर आक्रमण कर डालो, इकट्ठे होकर परस्पर आघात करते हुए बड़े २ वीरों के बाण वर्षा करने से आकाश में मेघों की छाया सी छा गई ॥६८-६९॥

विपताकध्वजच्छत्रा व्यश्वसूतायुधा रणे ॥७०॥
व्यङ्गाङ्गावयवाः पेतुः क्षितौ क्षीणाः क्षितीश्वराः ।

इस समय रण भूमि में छिन्न-भिन्न हुए बहुत से राजा पड़े हुए थे। जिनमें बहुतों की ध्वजा, छत्र, पताका, अश्व, सारथि आयध नष्ट भ्रष्ट हो गए। बहुतों के अङ्ग प्रत्यङ्ग कट गए ॥७०॥

प्रवणादिव शैलानां शिखराणि द्विपोत्तमाः ॥७१॥
सारोहा निहताः पेतुर्वज्रभिन्ना इवाद्रयः ।

पर्वत के शिखर विशीर्ण हो जाने से जिस तरह गिर जाते हैं या वज्र से भिन्न पर्वत जैसे गिर पड़ते हैं उसी तरह मारे हुए हाथी अपने सवारों के साथ रण भूमि में गिर गए ॥७१॥

छिन्नभिन्नविपर्यस्तैर्वर्मालङ्कारभूषणैः ॥७२॥

सारोहास्तुरगाः पेतुर्हतवीराः सहस्रशः ।

बहुत से वीरों के कवच, अलङ्कार और छोटे मोटे आभूषण, छिन्न-भिन्न और उलट पलट होगए। इनमें सहस्रों वीर मारे गए और बहुत से अश्व, अपने सवारों के साथ गिर गए ॥७२॥

विप्रविद्धायुधाश्चैव विरथाश्च रथैर्हताः ॥७३॥

प्रतिवीरैश्च संमर्दे पत्तिसङ्घाः सहस्रशः ।

बहुत से रथी वीरों के अस्त्र शस्त्र नष्ट होगए और अन्य रथियों द्वारा रथहीन होकर मारे गए। इसी प्रकार सहस्रों पैदल सैनिक भी इस युद्ध में पैदलों ने मार गिराए ॥७३॥

विशालायतताम्राक्षैः पद्मेन्दुसदृशाननैः ॥७४॥

शिरोभिर्युद्धशौण्डानां सर्वतः संवृता मही ।

युद्ध में कुशल वीरों के विशाल और लम्बे चौड़े, लाल २ आंखों वाले, कमल और चन्द्रमा के सदृश मुखधारी मस्तकों से सारी भूमि व्याप्त होगई ॥७४॥

यथा भुवि तथा व्योम्नि निःस्वनं शुश्रुवुर्जनाः ॥७५॥

विमानैरप्सरःसङ्घैर्गीतवादित्रनिःस्वनैः ।

जिस तरह भूमि पर गाना बजाना होता है, उसी तरह आकाश में भी विमानों पर अप्सराओं के गाने बजाने होने लगे ॥७५॥

हतानभिमुखान्वीरान्वीरैः शतसहस्रशः ॥७६॥
आरोप्यारोप्य गच्छन्ति विमानेष्वप्सरोगणाः ।

वीरों ने अपने सन्मुख आने वाले सहस्रों वीरों को मार गिराया । उन सबको अपने २ विमानों में लेकर अप्सरागण स्वर्ग को चल दिए ॥७६॥

तद् दृष्ट्वा महदाश्चर्यं प्रत्यक्षं स्वर्गलिप्सया ॥७७॥
प्रहृष्टमनसः शूराः क्षिप्रं जघ्नुः परस्परम् ।

इस प्रकार के महान आश्चर्य को प्रत्यक्ष देखकर स्वर्ग की इच्छा से वीर बड़ी प्रसन्नता के साथ परस्पर प्रहार करने लगे ॥

रथिनो रथिभिः सार्धं चित्रं युयुधुराहवे ॥७८॥
पत्तयः पत्तिभिर्नागाः सह नागैर्हयैर्हयाः ।

इस महा युद्ध में, पैदल पैदलों से, हाथी हाथियों से, अश्व अश्वों से, रथी रथियों से विचित्रता के साथ युद्ध करने लगे ॥७८॥

एवं प्रवृत्ते संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥७९॥
सैन्येन रजसा वृत्ते स्वे स्वाञ्जघ्नुः परे परान् ।

जब इस प्रकार हाथी घोड़े और अश्वों का नाशक संग्राम चल रहा था, उस समय धूलि आदि से सेना के ढक जाने से अपने लोग अपने को और पराये परायों को ही मारने लगे ॥

कचाकचि युद्धमासीद्दन्तादन्ति नखानखि ॥८०॥
मुष्टियुद्धं नियुद्धं च देहपाप्मासुनाशनम् ।

इस समय एक वीर के दूसरे वीर ने बाल पकड़ लिए-दोनों परस्पर दांतों से काटने और नखों से नोचने लगे। मुष्टि युद्ध और मल्ल युद्ध भी चल पड़ा। इन सारे युद्धों से वीरों के पाप और प्राणी दोनों एक साथ नष्ट हो जाते थे ॥८०॥

तथा वर्तति संग्रामे गजवाजिनरक्षये ॥८१॥
नराश्वनागदेहेभ्यः प्रसृता लोहितापगा।
गजाश्वनरदेहान्सा व्युवाह पतितान्बहून् ॥८२॥

जब हाथी, अश्व और मनुष्यों के क्षयकारी इस युद्ध की प्रवृत्ति हो रही थी-तो उस समय मनुष्य अश्व और हाथियों की देह से रक्त की नदी बह निकली। इस नदी में बहुत से गज, अश्व और मनुष्यों की देह बह बह कर जाने लगी ॥८१-८२॥

नराश्वगजसम्बाधे नराश्वगजसादिनाम्।
लोहितोदा महाघोरा मांसशोणितकर्दमा ॥८३॥
नराश्वगजदेहानां वहन्ती भीरुभीषणा।
तस्याः पारमपारं च व्रजन्ति विजयषिणः ॥८४॥
गाधेन चोत्प्लवन्तश्च निमज्ज्योन्मज्ज्य चापरे।

हाथी, अश्व और मनुष्यों के इस घोर युद्ध में हाथी अश्व और नरों के रक्त की जलधारा बह निकली, जिससे मांस और रक्त की महाघोर कीचड़ होगई। कायर लोगों को भय देने वाली यह नदी, नर, अश्व और गजों के देहों को बहाने लगी। इस अपार नदी के पार को विजयाभिलाषी वीर ही पहुंच सकते

थे। बहुत से वीरों के देह थोड़े जल में तिर रहे थे और बहुत से डुब्बक-डुब्बक हो रहे थे ॥८३-८४॥

ते तु लोहितदिग्धाङ्गा रक्तवर्मायुधाम्बराः ॥८५॥
सस्नुस्तस्यां पपुश्चास्यां मम्लुश्च भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! बहुत से वीरों के इस नदी में सारे अङ्ग डूब गए, जिससे वे लाल होगए किन्हीं के लाल कवच, आयुध और वस्त्र दिखाई देने लगे। कोई उसमें स्नान सा कर रहा है, कोई डुबकी के साथ पी जाता है और कोई उसको देखकर ही मलिन हो जाता है ॥८५॥

रथानश्वान्नरान्नागानायुधाभरणानि च ॥८६॥
वसनान्यथ वर्माणि वध्यमानान्हतानपि ।
भूमिं खं द्यां दिशश्चैव प्रायः पश्याम लोहितम् ॥८७॥

हे महाराज ! रथ, अश्व, नर, आयुध, आभूषण, वस्त्र, कवच, मारे जाते हुए या मारे हुए वीर, भूमि, आकाश, द्युलोक, दिशा ये सारी ही चीजें लाल ही लाल दिखाई देने लगी ॥

लोहितस्य तु गन्धेन स्पर्शेन च रसेन च ।
रूपेण चातिरक्तेन शब्देन च विसर्पता ॥८८॥
विषादः सुमहानासीत्प्रायः सैन्यस्य भारत ।

हे भारत ! रक्त के गन्ध, स्पर्श, रस और अत्यन्त लाल रूप से और फैलती हुई कलकल ध्वनि से प्रायः सेना में महान् विषाद् खड़ा होगया ॥८८॥

तत्तु विप्रहतं सैन्यं भीमसेनमुखास्तदा ॥८९॥
भूयः समाद्रवन्वीराः सात्यकिप्रमुखास्तदा ।

इस प्रकार मारी हुई कौरव सेना पर भीमसेन आदि वीर और सात्यकि आदि योद्धा, फिर वेग से झपटे ॥८९॥

तेषामापततां वेगमविषह्यं निरीक्ष्य च ॥९०॥
पुत्राणां ते महासैन्यमासीद्राजन्पराङ्मुखम् ।

हे राजन् ! उन पाण्डव वीरों के आक्रमण के वेग को असह्य समझ कर तुम्हारे पुत्रों की महान् सेना रण में पराङ्मुख हो गई ॥९०॥

तत्प्रकीर्णरथाश्वेभं नरवाजिसमाकुलम् ॥९१॥
विध्वस्तचर्मकवचं प्रविद्धायुधकार्मुकम् ।
व्यद्रवत्तावकं सैन्यं लोड्यमानं समन्ततः ।
सिंहार्दितमिवारण्ये यथा गजकुलं तथा ॥९२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे ऊनपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥४९॥

इस समय सेना रथ, अश्व, हाथी, बिखर गए। मनुष्य और अश्व व्याकुल हो उठे। उनके वर्म और कवच नष्ट भ्रष्ट हो गए और शस्त्र तथा धनुष खण्ड खण्ड कर दिए गए। इस प्रकार सब ओर

से आलोडित की हुई तुम्हारी सेना, इस तरह भाग निकली जैसे सिंह से अर्दित हाथियों का समूह भाग निकलता है ॥६१-६२॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और धर्मराज के युद्ध का उनंचासवां अध्याय समाप्त हुआ ।



पचासवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तानभिद्रवतो दृष्ट्वा पाण्डवांस्तावकं बलम् ।
दुर्योधनो महाराज वारयामास सर्वशः ॥१॥

सञ्जय कहने लगे-हे महाराज ! जब राजा दुर्योधन ने देखा कि पाण्डव, कौरव सेना पर आक्रमण कर रहे हैं, तो वह सब कुछ प्रयत्न करके उनके रोकने की चेष्टा करने लगा ॥१॥

योधांश्च स्वबलं चैव समन्ताद्भरतर्षभ ।
क्रोशतस्तव पुत्रस्य न स्म राजन्न्यवर्तत ॥२॥

हे भरतर्षभ ! राजा दुर्योधन ने अपने योद्धा और सैनिकों को बहुत कुछ फटकार कर भागने से रोकना चाहा, परन्तु उन्होंने कुरुराज का कुछ भी चीखना चिल्लाना नहीं सुना ॥२॥

ततः पक्षः प्रपक्षश्च शकुनिश्चापि सौबलः ।
तदा सशस्त्राः कुरवो भीममभ्यद्रवन्रणे ॥३॥

इसके बाद व्यूह के पक्ष और प्रपक्ष के वीर और सुबल-पुत्र शकुनि तथा शस्त्र सहित कौरव वीर रण में भीमसेन पर टूट पड़े ॥३॥

कर्णोऽपि दृष्ट्वा द्रवतो धार्तराष्ट्रान्सराजकान् ।
मद्रराजमुवाचेदं याहि भीमरथं प्रति ॥४॥

जब कर्ण ने अन्य महीपालों के साथ कौरव वीरों को भागते देखा-तो वह अपने सारथि मद्रराज शल्य से कहने लगा कि अब मेरे रथ को भीमसेन के समीप ले चलो ॥४॥

एवमुक्तश्च कर्णेन शल्यो मद्राधिपस्तदा ।
हंसवर्णान्हयानग्र्यान्प्रैषीद्यत्र वृकोदरः ॥५॥

जब कर्ण ने इतना कहा-तो मद्रराज शल्य ने हंस के समान उज्ज्वल वर्णधारी उत्तम अश्वों को उधर ही चलाया, जिधर वृकोदर भीमसेन थे ॥५॥

ते प्रेरिता महाराज शल्येनाहवशोभिना ।
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वाजिनः ॥६॥

हे महाराज ! युद्ध में शोभा पाने वाले राजा शल्य द्वारा हांके हुए अश्व, भीमसेन के रथ के मार्ग को प्राप्त करके चल पड़े ॥६॥

दृष्ट्वा कर्णं समायान्तं भीमः क्रोधसमन्वितः ।
मतिं चक्रे विनाशाय कर्णस्य भरतर्षभ ॥७॥

हे भरतर्षभ ! कर्ण को वेग से आता हुआ देखकर भीमसेन, क्रोध में भर गया उसने कर्ण के विनाश कर देने का मन में निश्चय किया ॥७॥

सोऽब्रवीत्सात्यकिं वीरं धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ।
यूयं रक्षत राजानं धर्मात्मानं युधिष्ठिरम् ॥८॥
संशयान्महतो मुक्तं कथञ्चित्प्रेक्षतो मम ।
अग्रतो मे कृतो राजा छिन्नसर्वपरिच्छदः ॥९॥
दुर्योधनस्य प्रीत्यर्थं राधेयेन दुरात्मना ।
अन्तमद्य गमिष्यामि तस्य दुःखस्य पार्षत ॥१०॥

भीमसेन ने सात्यकि और पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न से कहा कि तुम लोग महात्मा धर्मराज की रक्षा करते रहना। आज मृत्यु के संकट में पड़कर धर्मराज जैसे-तैसे बच पाए हैं। यह सब कुछ मैंने अपनी आंखों देखा है। मेरे सामने ही राजा युधिष्ठिर को महारथी कर्ण ने रथ आदि सारी युद्ध की सामग्री से रहित कर दिया। यह सब कुछ राजा दुर्योधन की प्रीतिके लिए दुर्बुद्धी कर्ण ने किया था। हे धृष्टद्युम्न ! अब कर्ण को मार कर मैं उस क्लेश से अपना छुटकारा कर लेना चाहता हूं ॥८-१०॥

हन्तास्म्यद्य रणे कर्णं स वा मां निहनिष्यति ।
संग्रामेण सुघोरेण सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥११॥

हे वीरो ! आज या तो मैं कर्ण को मार लूंगा या वही मुझे घोर संग्राम द्वारा जीत लेगा—यह मैं सत्य प्रतिज्ञा करता हूं ॥११॥

राजानमद्य भवतां न्यासभूतं ददानि वै।
तस्य संरक्षणे सर्वे यतध्वं विगतज्वराः ॥१२॥

मैं राजा युधिष्ठिर को तुम्हारे पास धरोहर के ढङ्ग पर छोड़ जाता हूं। तुम सब लोग, श्रम न मानकर धर्मराज की रक्षा में प्रयत्न करते रहना ॥१२॥

एवमुक्त्वा महाबाहुः प्रायादाधिरथिं प्रति।
सिंहनादेन महता सर्वाः सन्नादयन्दिशः ॥१३॥

हे राजन्! इतना कहकर महाबाहु भीमसेन, अधीरथ पुत्र कर्ण के रथ की ओर बड़ी भारी गर्जना से सारी दिशाओं को गुञ्जाता हुआ चल दिया ॥१३॥

दृष्ट्वा त्वरितमायान्तं भीमं युद्धाभिनन्दिनम्।
सूतपुत्रमथोवाच मद्राणामीश्वरो विभुः ॥१४॥

युद्ध के उत्साह में भरे हुए भीमसेन को शीघ्रता के साथ जाते हुए देख कर शक्तिशाली मद्रराज शल्य ने यह वचन कहा ॥१४॥

पश्य कर्ण महाबाहुं संक्रुद्धं पाण्डुनन्दनम्।
दीर्घकालार्जितं क्रोधं मोक्तुकामं त्वयि ध्रुवम ॥१५॥

हे कर्ण! तुम, पाण्डु-पुत्र क्रोध में भरे हुए महाबाहु भीमसेन को देखो जो दीर्घ काल के बढ़े हुए क्रोध को आज तुम पर निकाल लेना चाहता है-यह निश्चय है ॥१५॥

ईदृशं नास्य रूपं मे दृष्टपूर्वं कदाचन ।
अभिमन्यौ हते कर्ण राक्षसे च घटोत्कचे ॥१६॥
त्रैलोक्यस्य समस्तस्य शक्तः क्रुद्धो निवारणे ।
बिभर्ति सदृशं रूपं युगान्ताग्निसमप्रभम् ॥१७॥

हे कर्ण ! मैं ने अभिमन्यु और घटोत्कच की मृत्यु से पूर्व कभी भीमसेन का इतना भीषण रूप नहीं देखा। यह जब क्रोध में भर जाता है, तो त्रिलोकी के साथ भी युद्ध करने में समर्थ हो सकता है। इस समय तो इसका आकार प्रलयकाल की अग्नि के तुल्य प्रतीत होता है ॥१६-१७॥

सञ्जय उवाच—

इति ब्रुवति राधेयं मद्राणामीश्वरे नृप ।
अभ्यवर्धत वै कर्णं क्रोधदीप्तो वृकोदरः ॥१८॥

सञ्जय बोले—हे नृप। ज्योंहि मद्र देश के अधिपति राजा शल्य ने राधा-पुत्र कर्ण से यह वचन कहा—तो उसी समय क्रोध में भरा हुआ वृकोदर भीम, कर्ण पर झपटा ॥१८॥

अथागतं तु सम्प्रेक्ष्य भीमं युद्धाभिनन्दिनम् ।
अब्रवीद्वचनं शल्यं राधेयः प्रहसन्निव ॥१९॥

जब युद्ध के अभिलाषी भीमसेन को अपने समीप आता हुआ देखा-तो राधा-पुत्र कर्ण, कुछ हँसते २ शल्य से यह वचन बोला ॥१९॥

यदुक्तं वचनं मेऽद्य त्वया मद्रजनेश्वर ।
भीमसेनं प्रति विभो तत्सत्यं नात्र संशयः ॥२०॥
एष शूरश्च वीरश्च क्रोधनश्च वृकोदरः ।
निरपेक्षः शरीरे च प्राणतश्च बलाधिकः ॥२१॥

हे मद्र देश के अधिपति ! तुमने जो भीमसेन के विषय में वचन कहा है वह बिल्कुल सत्य है। यह वृकोदर भीम बड़ा क्रोधी शूरवीर है। इसको शरीर का कुछ भी मोह नहीं है-यह प्राण और आत्म बल में बहुत बढ़ रहा है ॥२०-२१॥

अज्ञातवासं वसता विराटनगरे तदा ।
द्रौपद्याः प्रियकामेन केवलं बाहुसंश्रयात् ॥२२॥
गूढभावं समाश्रित्य कीचकः सगणो हतः ।
सोऽद्य संग्रामशिरसि सन्नद्धः क्रोधमूर्छितः ॥२३॥
किं करोद्यतदण्डेन मृत्युनापि व्रजेद्रणम् ।

जब यह अज्ञात-वास में विराट नगर में रह रहे थे, द्रौपदी की अभिलाषा पूर्ण करने को इसने अपने बाहुबल के आश्रय से छुपकर सेना सहित महा योद्धा कीचक को मार गिराया वही भीमसेन आज क्रोध में उन्मत्त होकर संग्राम के प्रधान स्थान पर स्थित है। भीमसेन के सन्मुख तो काल भी दण्ड उठाकर चला आवे-तो वह उसके साथ युद्ध किये बिना न रहेगा ॥२२-२३॥

चिरकालाभिलषितो ममायं तु मनोरथः ॥२४॥
अर्जुनं समरे हन्यां मां वा हन्याद्धनञ्जयः।
स मे कदाचिदद्यैव भवेद्भीमसमागमात् ॥२५॥

मेरे मन में यह अभिलाषा चिरकाल से घर किए हुये है, कि मैं रण में अर्जुन को मार लूं वह अवसर मुझे आज ही इस भीमसेन के युद्ध से प्राप्त होता दिखाई दे रहा है ॥२४-२५॥

निहते भीमसेने वा यदि वा विरथीकृते।
अभियास्यति मां पार्थस्तन्मे साधु भविष्यति ॥२६॥
अत्र यन्मन्यसे प्राप्तं तच्छीघ्रं सम्प्रधारय।

भीमसेन के मार लेने या रथहीन कर देने पर कुन्ती-पुत्र अर्जुन अवश्य दौड़कर आवेगा और यही मेरे लिए एक आनन्दकी बात होगी। इस विषय में तुम्हारा जो मत हो उसका शीघ्र विचार कर लो ॥२६॥

एतच्छ्रुत्वा तु वचनं राधेयस्यामितौजसः ॥२७॥
उवाच वचनं शल्यः सूतपुत्रं तथागतम्।

अत्यन्त ओजस्वी राधा-पुत्र कर्ण के ये वचन सुनकर राजा शल्य ने इस तरह अभिमान में चूर राजा कर्ण से यह वचन कहा ॥२७॥

अभियाहि महाबाहो भीमसेनं महाबलम् ॥२८॥
निरस्य भीमसेनं तु ततः प्राप्स्यसि फाल्गुनम्।

हे महाबाहो ! प्रथम तुम भीमसेन पर आक्रमण करो। जब भीमसेन का पराजय कर लोगे-तो आपही तुम्हारे सन्मुख अर्जुन आजावेगा ॥२८॥

यस्ते कामोऽभिलपितश्चिरात्प्रभृति हृद्गतः ॥२९॥
स वै सम्पत्स्यते कर्ण सत्यमेतद्ब्रवीमि ते।

हे कर्ण ! जिस अभिलाषा को तुमने बहुत काल से अपने हृदय में छुपा कर रख छोड़ी है, वह तुम्हें अब मिल जाने को है यह मैं सत्य बता देना चाहता हूं ॥२९॥

एवमुक्ते ततः कर्णः शल्यं पुनरभाषत ॥३०॥
हन्ताहमर्जुनं संख्ये मां वा हन्याद्धनञ्जयः।
युद्धे मनः समाधाय याहि यत्र वृकोदरः ॥३१॥

जब राजा शल्य ने इतना कहा-तो महारथी कर्ण ने मद्रराज शल्य से कहा-कि या तो मैं ही अर्जुन को रण में मारलूँगा या अर्जुन ही मुझे मार गिरावेगा। हे शल्य ! तुम तो युद्ध में मन लगाकर वहीं चलो-जहांपर वृकोदर भीमसेन विद्यमान है ॥३०-३१॥

सञ्जय उवाच—

ततः प्रायाद्रथेनाशु शल्यस्तत्र विशाम्पते।
यत्र भीमो महेष्वासो व्यद्रावयत वाहिनीम् ॥३२॥

सञ्जय ने कहा हे विशाम्पते ! इतना सुनकर अपने रथ से वेग के साथ राजा उधर ही चल दिए, जिधर महा धनुर्धर भीमसेन सेना को भगा रहे थे ॥३२॥

ततस्तूर्यनिनादश्च भेरीणां च महास्वनः।
उदतिष्ठच्च राजेन्द्र कर्णभीमसमागमे ॥२३॥

हे राजेन्द्र! इस कर्ण और भीमसेन के युद्ध में तुरी आदि बाजों का शब्द और भेरी आदि बाजों की ध्वनि, बड़े वेग से उठ खड़ी हुई ॥२३॥

भीमसेनोऽथ संक्रुद्धस्तस्य सैन्यं दुरासदम्।
नाराचैर्विमलैस्तीक्ष्णैर्दिशः प्राद्रावयद्बली ॥२४॥

बड़ी दुर्गम कौरव सेना पर भीमसेन अत्यन्त कुपित हो उठे। इस महा बली ने अपने चमकीले तीक्ष्ण बाणों से उस सेना को सब ओर भगा दिया ॥२४॥

स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते।
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥२५॥

हे विशाम्पते! यह जमघटा बड़ा भयङ्कर और भीषण था। कर्ण और पाण्डवों के युद्ध के मध्य में यह सेनाओं का सन्निपात बड़ा भयानक माना गया ॥२५॥

ततो मुहूर्ताद्राजेन्द्र पाण्डवः कर्णमाद्रवत्।
समापतन्तं सम्प्रेक्ष्य कर्णो वैकर्त्तनो वृतः ॥२६॥
आजघान सुसंक्रुद्धो नाराचेन स्तनान्तरे।
पुनश्चैनममेयात्मा शरवर्षैरवाकिरत् ॥२७॥

स विद्धः सूतपुत्रेण च्छादयामास पत्रिभिः ।
विव्याध निशितैः कर्णं नवभिर्नतपर्वभिः ॥३८॥

हे राजेन्द्र ! थोड़ी ही देर में पाण्डवों ने कर्ण पर आक्रमण कर दिया । सेना से घिरे हुए सूर्य-पुत्र कर्ण ने भी क्रोध में भर एक नाराच द्वारा भीमसेन के हृदय में प्रहार किया। अब भी अपरिमित बलशाली कर्ण ने अपनी बाण वर्षा से भीमसेन पर आक्रमण जारी रखा । सूर्य-पुत्र कर्ण के बाणोंसे बिंधकर भीमसेन ने अपने बाणों से कर्ण को बींधना आरम्भ किया । इसके बाद नौ नतपर्व वाले तीक्ष्ण बाणों से फिर कर्ण पर प्रहार किया ॥३६-३८॥

तस्य कर्णो धनुर्मध्ये द्विधा चिच्छेद पत्रिभिः ।
अथैनं छिन्नधन्वानं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥३६॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन सर्वावरणभेदिना ।

कर्ण ने भीमसेन के धनुष को अपने बाणों द्वारा छिन्न भिन्न कर दिया और जब भीमसेन का धनुष कट गया तो इसकी छाती में फिर सारे कवचों के भेद जानने वाले अत्यन्त तीक्ष्ण नाराच नामक बाण का प्रयोग किया ॥३६॥

सोऽन्यत्कार्मुकमादाय सूतपुत्रं वृकोदरः ॥४०॥
राजन्मर्मसु मर्मज्ञो विव्याध निशितैः शरैः ।
ननाद बलवन्नादं कम्पयन्निव रोदसी ॥४१॥

हे राजन् ! अब वृकोदर भीमसेन ने दूसरा धनुष उठाया और मर्म स्थान में प्रहार करने के मर्म को जानने वाले भीम ने तीक्ष्ण

बाणों से उसको छेद डाला और आकाश और पृथिवी को कंपाते हुए बड़ा महत्वपूर्ण सिंहनाद किया ।।४०-४१।।

तं कर्णः पञ्चविंशत्या नाराचेन समार्पयत् ।
मदोत्कटं वने दृप्तमुल्काभिरिव कुञ्जरम् ।।४२।।

कर्ण ने भी पच्चीस बाण छोड़कर भीमसेन को इस तरह घायल किया-जैसे मदोत्कट हाथी को उल्काओं (मसालों) से पकड़ लेते हैं ।।४२।।

ततः सायकभिन्नाङ्गः पाण्डवः क्रोधमूर्छितः ।
संरम्भामर्षताम्राक्षः सूतपुत्रवधेप्सया ।।४३।।

अब बाण से विंधकर पाण्डु-पुत्र भीमसेन क्रोध से उछल उठा । वह सूत-पुत्र के मार देने की इच्छा से क्रोध और आवेश में भर कर लाल आंखों से जाज्वल्यमान दिखाई देने लगा ।।४३।।

स कार्मुके महावेगं भारसाधनमुत्तमम् ।
गिरीणामपि भेत्तारं सायकं समयोजयत् ।।४४।।

इसने महा वेगशाली युद्ध के भार सहने में समर्थ पर्वतों के भी भेदनशील उत्तम बाण को उस धनुष पर चढ़ाया ।।४४।।

विकृष्य बलवच्चापमाकर्णादतिमारुतिः ।
तं मुमोच महेष्वासः क्रुद्धः कर्णजिघांसया ।।४५।।

अब हनुमान से भी बलवान्, महा धनुर्धर भीम ने क्रोध में भर कर और अत्यन्त बलके साथ कान तक धनुप खैंच कर वह बाण छोड़ दिया ।।४५।।

स विसृष्टो बलवता बाणो वज्राशनिस्वनः ।
अदारयद्रणे कर्णं वज्रवेगो यथाचलम् ॥४६॥

इस बलवान् भीम द्वारा छोड़ा हुआ वज्र और अशनि के तुल्य, बाण ने रण में कर्ण को इस तरह छिन्न-भिन्न कर डाला, जैसे-वज्र का वेग पर्वत को छिन्न-भिन्न कर देता है ॥४६॥

स भीमसेनाभिहतः सूतपुत्रः कुरूद्वह ।
निषसाद रथोपस्थे विसंज्ञ पृतनापतिः ॥४७॥

हे कुरुवंश ! श्रेष्ठ, भीमसेन से आहत, सूत-पुत्र सेनापति कर्ण, अचेत होकर रथ के मध्य में तड़फड़ाने लगे ॥४७॥

ततो मद्राधिपो दृष्ट्वा विसज्ञं सूतनन्दनम् ।
अपोवाह रथेनाजौ कर्णमाहवशोभिनम् ॥४८॥

मद्राधिप शल्य ने सूत-पुत्र कर्ण को जब अचेत देखा-तो वह युद्ध में शोभा पाने वाले कर्ण को रण से बाहर रथ के द्वारा ले गया ॥४८॥

ततः पराजिते कर्णे धार्त्तराष्ट्रीं महाचमूम् ।
व्यंद्रावयद्भीमसेनो यथेन्द्रो दानवान्पुरा ॥४९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कर्णापयाने पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

जब कर्ण इस प्रकार पराजित हो गया-तो भीमसेन ने कौरव की विशाल सेना को इस तरह भगाना आरम्भ किया, जैसे पूर्व-काल में इन्द्र ने दानवों को भगा दिया था ॥४९॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में भीमसेन और
कर्ण के युद्ध के वर्णन का पचासवां
अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



इक्यावनवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

सुदुष्करमिदं कर्म कृतं भीमेन सञ्जय।
येन कर्णो महाबाहू रथोपस्थे निपातितः ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे सञ्जय! भीमसेन ने यह बड़ा ही दुष्कर कर्म कर दिखाया, जो महारथी कर्ण को रथ के मध्य में गिरा दिया ॥१॥

कर्णो ह्येको रणे हन्ता पाण्डवान्सृञ्जयैः सह।
इति दुर्योधनः सूत प्राब्रवीन्मां मुहुर्मुहुः ॥२॥

हे सूत! दुर्योधन ने तो मुझे बार २ यह कहा है-कि अकेला कर्ण सृञ्जयों के साथ पाण्डवों के मार गिराने में समर्थ है ॥२॥

पराजितं तु राधेयं दृष्ट्वा भीमेन संयुगे।
ततः परं किमकरोत्पुत्रो दुर्योधनो मम ॥३॥

हे सञ्जय! भीम द्वारा इस संग्राम में राधा-पुत्र कर्ण को पराजित देखकर मेरे पुत्र राजा दुर्योधन ने क्या किया? ॥३॥

सञ्जय उवाच—

विमुखं प्रेक्ष्य राधेयं सूतपुत्रं महाहवे।
पुत्रस्तव महाराज सोदर्यान्समभाषत ॥४॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज ! इस घोर युद्ध में राधा पुत्र कर्ण को रण से पराङ् मुख देखकर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन अपने भाइयों से कहने लगा ॥४॥

शीघ्रं गच्छत भद्रं वो राधेयं परिरक्षत।
भीमसेनभयागाधे मज्जन्तं व्यसनार्णवे ॥५॥

हे वीरों ! तुम शीघ्र जाओ और महारथी कर्ण की रक्षा करो। यह इस समय भीमसेन के भय रूपी अगाध जल से परिपूर्ण विपत्ति के समुद्र में निमग्न हो रहा है ॥५॥

ते तु राज्ञा समादिष्टा भीमसेनं जिघांसवः।
अभ्यवर्तन्त संक्रुद्धाः पतङ्गा पावकं यथा ॥६॥

जब राजा दुर्योधन ने इनको यह आज्ञा दी, तो वे क्रोध में भर कर इस तरह दौड़े-जैसे अग्नि की ओर पतङ्गे दौड़ते हैं॥६॥

श्रुतर्वा दुर्धरः क्राथो विवित्सुर्विकटः समः।
निषङ्गी कवची पाशी तथा नन्दोपनन्दकौ ॥७॥
दुष्प्रधर्षः सुबाहुश्च वातवेगसुवर्चसौ।
धनुर्ग्राही दुर्मदश्च जलसन्धः शलः सहः ॥८॥
एते रथैः परिवृता वीर्यवन्तो महाबलाः।

भीमसेनं समासाद्य समन्तात्पर्यवारयन् ॥६॥

ते व्यमुञ्चञ्छरव्राताञ्नानालिङ्गान्समन्ततः ।

श्रुतवर्मा, दुर्धर, क्राथ, विवित्सु, विकट, सम, निषङ्गी, कवची पाशी, नन्द, उपनन्दक, दुष्प्रधर्ष, सुबाहु, वातवेग, सुवर्चा, धनुर्ग्राह, दुर्मद, जलसन्ध, शल और सह इन, तुम्हारे महाबली वीर्यवान् पुत्रों ने बहुत से रथी वीरों को लेकर भीमसेन के समीप पहुँच कर उनको घेर लिया । इन्होंने भीम के पास पहुँचते ही सब ओर से बाणों की झड़ी सी लगादी ॥७-६॥

स तैरभ्यर्द्यमानस्तु भीमसेनो महाबलः ॥१०॥

तेषामापततां क्षिप्रं सुतानां ते जनाधिप ।

रथैः पञ्चदशैः सार्द्धं पञ्चाशदहनद्रथान् ॥११॥

हे जनाधिप ! इन तुम्हारे महाबली पुत्रों से क्षत-विक्षत हुए भीमसेन ने, इन के वेग से आक्रमण करते ही अपने पन्द्रह रथों को लेकर तुम्हारे पचास रथों को नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥१०-११॥

विवित्सोस्तु ततः क्रुद्धो भल्लेनापाहरच्छिरः ।

भीमसेनो महाराज तत्पपात हतं भुवि ॥१२॥

सकुण्डलशिरस्त्राणं पूर्णचन्द्रोपमं तथा ।

हे महाराज ! भीमसेन क्रोध में तो भर ही रहे थे, उन्होंने एक भल्ल नामक बाण से तुम्हारे पुत्र विवित्सु का सिर शरीर से पृथक् कर दिया । वह कटकर भूमि में गिर गया । यह मस्तक,

कुण्डल और शिरस्त्राण के सहित तथा पूर्ण चन्द्रमा के समान सुन्दर था ॥१२॥

तं दृष्ट्वा निहतं शूरं भ्रातरः सर्वतः प्रभो ॥१३॥
अभ्यद्रवन्त समरे भीमं भीमपराक्रमम् ।

हे प्रभो ! जब विवित्सु के अन्य भाइयों ने अपने शूरवीर भाई को हत देखा-तो वह सब भयङ्कर पराक्रम दिखाने वाले भीमसेन पर टूट पड़े ॥१३॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां पुत्रयोस्ते महाहवे ॥१४॥
जहार समरे प्राणान्भीमो भीमपराक्रम ।

हे राजन् ! अब भयानक विक्रम दिखाने वाले भीमसेन ने इस महा घोर संग्राम में दो भल्ल नामक बाण मार कर तुम्हारे दो पुत्रों का और नाश कर दिया ॥१४॥

तौ धरामनुपद्येतां वातरुग्णाविव द्रुमौ ॥१५॥
विकटश्च सहश्चोभौ देवपुत्रोपमौ नृप ।

हे नृप ! ये दोनों देवों के पुत्रों के समान सुन्दर और पराक्रमी तुमारे दो पुत्र विकट और सह, वायु से तोड़े हुए दो वृक्षों की भाँति रणभूमि में गिर गए ॥१५॥

ततस्तु त्वरितो भीमः क्राथं निन्ये यमक्षयम् ॥१६॥
नाराचेन सुतीक्ष्णेन स हतो न्यपतद्भुवि ।

अब भीमसेन ने फिर शीघ्रता से एक अत्यन्त तीक्ष्ण नाराच नामक बाण छोड़ा, जिस से उसने क्राथ नामक तुम्हारे पुत्र को यम

राज के घर भेज दिया। वह भीमसेन द्वारा नष्ट होकर भूमि में गिर गया ॥१६॥

हाहाकारस्ततस्तीव्रः सम्बभूव जनेश्वर ॥१७॥
वध्यमानेषु वीरेषु तत्र पुत्रेषु धन्विषु ।

हे जनेश्वर ! तुम्हारे कई धनुर्धर वीर पुत्रों के मारे जाने से रण भूमि में इस समय अत्यन्त हा हा कार मच गया ॥१७॥

तेषां सुलुलिते सैन्ये पुनर्भीमो महाबलः ॥१८॥
नन्दोपनन्दौ समरे प्रैषयद्यमसादनम् ।

जब महा बली भीमसेन ने उनकी सेना भी अच्छी तरह काट डाली, तो फिर रण में उसने नन्द और उपनन्द नामक तुम्हारे पुत्रों को यम के घर भेजा ॥१८॥

ततस्ते प्राद्रवन्भीताः पुत्रास्ते विह्वलीकृताः ॥१९॥
भीमसेनं रणे दृष्ट्वा कालान्तकयमोपमम् ।

अब अन्य तुम्हारे पुत्र, भीमसेन को रण में काल के समान देखकर बड़े व्याकुल हुए और वे भय से रण भूमि छोड़ कर भाग गए ॥१९॥

पुत्रांस्ते निहतान्दृष्ट्वा सूतपुत्रः सुदुर्मनाः ॥२०॥
हंसवर्णान्हयान्भूयः प्रैषयद्यत्र पाण्डवः ।

जब तुम्हारे पुत्रों को सूत पुत्र कर्ण ने मारे हुए सुना-तो वह बड़ा दुःखी हुआ और उसने अपने हंस के समान श्वेत अश्वों को लेकर फिर भीमसेन की ओर चल दिया ॥२०॥

ते प्रेषिता महाराज मद्रराजेन वाजिनः ॥२१॥
भीमसेनरथं प्राप्य समसज्जन्त वेगिताः ।

हे महाराज ! मद्रराज द्वारा चलाए हुए कर्ण के अश्व, वेग के साथ भीमसेन के रथ की ओर चल दिए ॥२१॥

स सन्निपातस्तुमुलो घोररूपो विशाम्पते ॥२२॥
आसीद्रौद्रो महाराज कर्णपाण्डवयोर्मृधे ।

हे पृथिवीपते ! इस कर्ण और भीमसेन के संग्राम में अत्यन्त भयानक घोर (इन दोनों की) टक्कर होने लगी ॥२२॥

दृष्ट्वा मम महाराज तौ समेतौ महारथौ ॥२३॥
आसीद् बुद्धिः कथं युद्धमेतदद्य भविष्यति ।

हे महाराज ! जब मैंने उन दोनों वीरों को युद्ध करते देखा-तो मेरे मन में शङ्का हुई, न जाने आज क्या होगा ॥२३॥

ततो भीमो रणश्लाघी छादयामास पत्रिभिः ॥२४॥
कर्णं रणे महाराज पुत्राणां तव पश्यताम् ।

हे महाराज ! रण में प्रशंसा के योग्य भीमसेन ने अपने बाणों से तुम्हारे सारे पुत्रों के देखते २ कर्ण को आच्छादित कर दिया ॥२४॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो भीमं नवभिरायसैः ॥२५॥
विव्याध परमास्त्रज्ञो भल्लैः सन्नतपर्वभिः ।

अब अस्त्र विद्या में कुशल कर्ण भी अत्यन्त कुपित हो उठा- उसने भीमसेन को नौ लोह मय बाण और नतपर्व वाले भल्लों से अत्यन्त बींध दिए ॥२५॥

आहतः स महाबाहुर्भीमो भीमपराक्रमः ॥२६॥
आकर्णपूर्णैर्विशिखैः कर्णं विव्याध सप्तभिः ।

जब भयानक पराक्रम कर दिखाने वाला महा बाहु भीम अत्यन्त आहत हो गया तो उसने कान तक खैंचे हुए धनुष से सात बाण मार कर कर्ण को क्षत विक्षत कर दिया ॥२६॥

ततः कर्णो महाराज आशीविष इव श्वसन् ॥२७॥
शरवर्षेण महता छादयामास पाण्डवम् ।

हे महाराज ! अब महारथी कर्ण आशीविष, सर्प की भांति श्वास लेने लगा उसने बाणों की झड़ी लगाकर पाण्डु पुत्र भीम सेन को बुरी तरह ढक दिया ॥२७॥

भीमोऽपि तं शरव्रातैश्छादयित्वा महारथम्॥२८॥
पश्यतां कौरवेयाणां विननर्द महाबलः ।

महा बली भीमसेन भी अपने बाण समूह से महारथी कर्ण को आच्छादित करके कौरव वीरों के देखते २ बड़े जोर से गर्जना करने लगा ॥२८॥

ततः कर्णो भृशं क्रुद्धो दृढमादाय कार्मुकम् ॥२९॥
भीमं विव्याध दशभिः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
कार्मुकं चास्य चिच्छेद भल्लेन निशितेन च ॥३०॥

अब कर्ण बहुत कुपित हो गया-उसने अपना दृढ़ धनुष उठाया और कङ्क पत्रधारी शिला पर तीक्ष्ण किए हुए दश बाणों से भीमसेन को बींध डाला और एक चमकीला तीक्ष्ण भल्ल नामक बाण मार कर उसका धनुष भी काट गिराया ॥२९-३०॥

ततो भीमो महाबाहुर्हेमपट्टविभूषितम् ।
परिघं घोरमादाय मृत्युदण्डमिवापरम् ॥३१॥
कर्णस्य निधनाकांक्षी चिक्षेपातिबलो नदन् ।

महावाहु अत्यन्त बलशाली भीमसेन ने सुवर्ण के पत्र से विभूषित, दूसरे मृत्यु दण्ड के समान भीषण, घोर परिघ नामक शस्त्र को उठा कर बड़ी गर्जना के साथ कर्ण को मार देने को उस पर उसे फैंका ॥३१॥

तमापतन्तं परिघं वज्राशनिसमस्वनम् ॥३२॥
चिच्छेद बहुधा कर्णः शरैराशीविषोपमैः ।

वज्राशनि के समान शब्द करने वाले इस घोर परिघ को अपने ऊपर गिरता देख कर कर्ण ने आशीविष सर्प के समान भीषण बाणों से उसे काट गिराया ॥३२॥

ततः कार्मुकमादाय भीमो दृढतरं तदा ॥३३॥
छादयामास विशिखैः कर्णं परबलार्दनम् ।

भीमसेन ने अब दूसरा एक अन्य अत्यन्त दृढ़ धनुष उठाया और उस से बाण वर्षा करके शत्रु सेना नाशक कर्ण को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया ॥३३॥

ततो युद्धमभूद्घोरं कर्णपाण्डवयोर्मृधे ॥३४॥

हरीन्द्रयोरिव मुहुः परस्परवधैषिणोः ।

परस्पर एक दूसरे के मार देने के इच्छुक कर्ण और भीमसेन का यह घोर संग्राम इस ढङ्ग से प्रवृत्त हुआ जैसे पूर्व काल में बाली और सुग्रीव का युद्ध हुआ था ॥३४॥

ततः कर्णो महाराज भीमसेनं त्रिभिः शरैः ॥३५॥

आकर्णमूलं विव्याध दृढमायम्य कार्मुकम् ।

हे महाराज ! अब महारथी कर्ण ने अपने दृढ़ धनुष को कान तक खैंच कर उस से तीन बाण छोड़े, जिनसे भीमसेन बिंधता चला गया ॥३५॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः कर्णेन बलिनां वरः ॥३६॥

घोरमादत्त विशिखं कर्णकायावदारणम् ।

बलवानों में श्रेष्ठ महा धनुर्धर भीमसेन ने कर्ण के द्वारा आहत होकर कर्ण के शरीर के भेदन कर देने में समर्थ एक घोर बाण उठाया ॥३६॥

तस्य भित्त्वा तनुत्राणं भित्त्वा कायं च सायकः ॥३७॥

प्राविशद्धरणीं राजन्वल्मीकमिव पन्नगः ।

हे राजन ! यह बाण, कर्ण के कवच और शरीर को चीर कर पृथिवी में इस तरह घुस गया, जैसे वल्मीक में सर्प घुस जाता है ॥३७॥

स तेनातिप्रहारेण व्यथितो विह्वलन्निव ॥३८॥
सञ्चचाल रथे कर्णः क्षितिकम्पे यथाचलः ।

यह इस घोर आघात से इतना व्याकुल हुआ, कि रथ में इस तरह कांपने लगा, जैसे पृथिवी के हिलने के समय पर्वत कांप उठता है ॥३८॥

ततः कर्णो महाराज रोषामर्षसमन्वितः ॥३९॥
पाण्डवं पञ्चविंशत्या नाराचानां समार्पयत ।

हे महाराज ! अब महारथी कर्ण भी रोष और आवेश में भर गए-उन्होंने भीमसेन पर पच्चीस नाराच नामक बाण छोड़े ।।३९॥

आजघ्ने बहुभिर्बाणैर्ध्वजमेकेषुणाहनत् ॥४०॥
सारथिं चास्य भल्लेन प्रेषयामास मृत्यवे ।
छित्त्वा च कार्मुकं तूर्णं पाण्डवस्याशु पत्रिणा ॥४१॥

इस तरह कर्ण ने बहुत बाण छोड़े और एक बाण से तो भीमसेन की ध्वजा काट गिराई तथा एक भल्ल से इस के सारथि को मार गिराया। और शत्रुगामी बाण से पाण्डु-पुत्र भीमसेन का धनुष भी काट डाला ॥४०-४१॥

ततो मुहूर्त्ताद्राजेन्द्र नातिकृच्छ्राद्धसन्निव ।
विरथं भीमकर्माणं भीमं कर्णश्चकार ह ॥४२॥

हे राजेन्द्र ! थोड़ी ही देर में कुछ अधिक परिश्रम भी न करके हंसते २ कर्ण ने भीम कर्म करने वाले भीमसेन को रथ से हीन भी कर दिया ॥४२॥

विरथो भरतश्रेष्ठ प्रहसन्ननिलोपमः ।

गदां गृह्य महाबाहुरपतत्स्यन्दनोत्तमात् ॥४३॥

हे भरत श्रेष्ठ ! वायु के तुल्य वेगशाली महा बाहु भीमसेन यद्यपि रथ हीन होगया तो भी हंसते २ उसने अपनी गदा उठाई और वह अपने रथ से कूद पड़ा ॥४३॥

अवप्लुत्य च वेगेन तव सैन्यं विशाम्पते ।

व्यधमद् गदया भीमः शरन्मेघानिवानिलः ॥४४॥

हे विशाम्पते ! अब भीमसेन बड़े वेग से तुम्हारी सेना में कूद पड़ा और अपनी गदा से सेना का इस तरह नाश करने लगा-जैसे वायु शरद ऋतु के मेघों को छिन्न-भिन्न कर देती है ॥४४॥

नागान्सप्तशतान्राजन्नीषादन्तान्प्रहारिणः ।

व्यधमत्सहसा भीमः क्रुद्धरूपः परन्तपः ॥४५॥

हे राजन ! ईषा (रथ का अग्र भाग) के समान दांतों वाले प्रहार में कुशल, सातसौ हाथियों को परन्तप भीमसेन ने क्रोध में भर कर एक दम नष्ट भ्रष्ट कर डाला ॥४५॥

दन्तवेष्टेषु नेत्रेषु कुम्भेषु च कटेषु च ।

मर्मस्वपि च मर्मज्ञस्तान्नागानवधीद्बली ॥४६॥

इस महाबली गजों के मर्म स्थान के प्रहारों के ज्ञाता भीम ने दन्त वेष्टन, नेत्र, मस्तक, कपोल तथा हाथियों के अन्य मर्म स्थानों में प्रहार करके उनको मार डाला ॥४५॥

ततस्ते प्राद्रवन्भीताः प्रतीपं प्रहिताः पुनः ।
महामात्रैस्तमावव्रुर्मेघा इव दिवाकरम् ॥४७॥

इन प्रहारों से वे हाथी भाग निकले, परन्तु महावतों ने उन्हें फिर वापिस लौटाया। इन हाथियों ने लौटकर भीमसेन को इस तरह घेर लिया, जैसे मेघ सूर्य को घेर लेता है ॥४७॥

तान्स सप्तशतान्नागान्सारोहायुधकेतनान् ।
भूमिष्ठो गदया जघ्ने वज्रेणेन्द्र इवाचलान् ॥४८॥

भूमि स्थित ही भीमसेन ने अपनी गदा से गजारोही सवार शस्त्र और झण्डों के साथ सातसौ हाथी, इस तरह मार गिराए जैसे इन्द्र वज्र से छिन्न-भिन्न करके गिरा देता है ॥४८॥

ततः सुबलपुत्रस्य नागानतिबलान्पुनः ।
पोथयामास कौन्तेयो द्विपञ्चाशदरिन्दमः ॥४९॥

इसके अनन्तर कुन्ती पुत्र अरिमर्दन भीमसेन ने सुबल पुत्र शकुनि के अत्यन्त बलवान् हाथियों को मार डाला ॥४९॥

तथा रथशतं साग्रं पत्तींश्च शतशोऽपरान् ।
न्यहनत्पाण्डवो युद्धे तापयंस्तव वाहिनीम् ॥५०॥

हे राजन्! सैंकडों अग्रगामी वीरों सहित रथ और सैकड़ों ही पैदल सैनिकों को पाण्डु-पुत्र भीमसेन ने तुम्हारी सेना को व्याकुल करके मार डाला ॥५०॥

प्रताप्यमानं सूर्येण भीमेन च महात्मना ।
तव सैन्यं संचुकोच चर्माग्नावाहितं यथा ॥५१॥

हे नृप ! एक ओर तो सूर्य से सन्तप्त और दूसरी ओर महाबाहु भीमसेन से व्याकुलकी हुई तुम्हारी सेना, इस तरह सुकड़ गई जैसे, अग्नि में डाला हुआ चमड़ा सुकड़ जाता है ॥५१॥

ते भीमभयसन्त्रस्तास्तावका भरतर्षभ ।
विहाय समरे भीमं दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥५२॥

हे भरतर्षभ ! भीमसेन के भय से चिन्तित हुए तुम्हारे सैनिक रेण को छोड़ कर दशों दिशाओं को भाग निकले ॥५२॥

रथाः पञ्चशताश्चान्ये ह्रादिनश्चर्मवर्मिणः ।
भीममभ्यद्रवन्घ्नन्तः शरपूगैः समन्ततः ॥५३॥

चमड़े का कवच पहने हुए गर्जना करते हुए अन्य पांच सौ रथी वीर, बाण समूह से सब ओर आक्रमण करते हुये भीमसेन पर टूट पड़े ॥५३॥

तान्स पञ्चशतान्वीरान्सपताकध्वजायुधान् ।
पोथयामास गदया भीमो विष्णुरिवासुरान् ॥५४॥

अब भीमसेन ने असुरों को विष्णु के तुल्य इन पताका और ध्वजाधारी पांच सौ वीरों को भी अपनी गदा से मार कर यमराज के धाम भेज दिया ॥५४॥

ततः शकुनिनिर्दिष्टाः सादिनः शूरसम्मताः ।
त्रिसाहस्राऽभ्ययुर्भीमं शक्त्यृष्टिप्रासपाणयः ॥५५॥

अब शकुनि की आज्ञा से तीन सहस्र अत्यन्त शूरवीर घुड़सवार, शक्ति, ऋष्टि और प्रास नामक शस्त्र लेकर भीमसेन पर टूट पड़े ॥५५॥

प्रत्युद्गम्य जवेनाशु साश्वारोहांस्तदारिहा ।

विविधान्विचरन्मार्गान्गदया समपोथयत् ॥५६॥

अरिमर्दन भीमसेन ने भी वेग से आक्रमण करके और अनेक गदा के मार्ग (पैंतरे) दिखाते हुये उन सारे घुड़सवारों को उस गदा से ही नष्ट भ्रष्ट कर दिया ॥५६॥

तेषामासीन्महाञ्छब्दस्ताडितानां च सर्वशः ।

अश्मभिर्विध्यमानानां नगानामिव भारत ॥५७॥

हे भारत ! जैसे-पर्वत से पत्थर तोड़ते समय महान् शब्द होता है, इसी तरह सब ओर इन सवारों के मारने से महान् शब्द होने लगा ॥५७॥

एवं सुबलपुत्रस्य त्रिसाहस्रान्हयोत्तमान् ।

हत्वान्यं रथमास्थाय क्रुद्धो राधेयमभ्ययात् ॥५८॥

हे राजन् ! इस प्रकार सुबल पुत्र शकुनि के तीन सहस्र घुड़सवारों को मार कर और फिर अन्य रथ पर सवार होकर भीमसेन क्रोध के साथ राधा-पुत्र कर्ण पर झपटा ॥५८॥

कर्णोऽपि समरे राजन्धर्मपुत्रमरिन्दमम् ।

स शरैश्छादयामास सारथिं चाप्यपातयत् ॥५९॥

हे राजन्! कर्ण ने भी दूसरी ओर अरिमर्दन धर्मराज युधिष्ठिर को अपने बाणों से आच्छादित कर रखा था और इसके सारथि को भी मार कर गिरा दिया था ॥५९॥

ततः स प्रद्रुतः संख्ये रथं दृष्ट्वा महारथः ।
अन्वधावत्किरन्बाणैः कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥६०॥

अब महारथी युधिष्ठिर भी महारथी कर्ण को रण में देख कर कङ्कपत्रधारी सीधे जाने वाले बाणों की झड़ी लगाते हुये उस पर झपटे ॥६०॥

राजानमभिधावन्तं शरैरावृत्य रोदसी ।
क्रुद्धः प्रच्छादयामास शरजालेन मारुतिः ॥६१॥

हे राजन! जब भीमसेनने धर्मराज को कर्ण पर झपटते देखा तो वायु पुत्र भीमसेन ने अपने बाण समूह से आकाश और पृथिवी को भर दिया और क्रोध पूर्वक अपने शर-जाल से कर्ण को भी आच्छादित किया ॥६१॥

सन्निवृत्तस्ततस्तूर्णं राधेयः शत्रुकर्शनः ।
भीमं प्रच्छादयामास समन्तान्निशितैः शरैः ॥६२॥

शत्रुतापी राधा-पुत्र, अब झटपट लौट पड़े और वे सब ओर से अपने तीक्ष्ण बाण छोड़कर भीमसेन को आच्छादित करने लगे ॥६२॥

भीमसेनरथव्यग्रं कर्णं भारत सात्यकिः ।
अभ्यर्दयदमेयात्मा पार्ष्णिग्रहणकारणात् ॥६३॥

हे भारत! अत्यन्त बलशाली सात्यकि इस समय भीमसेन के पार्ष्णि रक्षक थे, उन्होंने भीमसेन के रथ पर लगे हुए कर्ण को छेदना आरम्भ किया ॥६३॥

अभ्यवर्तत कर्णस्तमर्दितोऽपि शरैर्भृशम् ।
तावन्योन्यं समासाद्य वृषभौ सर्वधन्विनाम् ॥६४॥
विसृजन्तौ शरान्दीप्तान्विभ्राजेतां मनस्विनौ ।

यद्यपि कर्ण इस समय बाणों से बहुत ही व्याकुल हो रहे थे तो भी वह लौटे। समस्त धनुर्धरों में श्रेष्ठ, वृषभ की तरह शक्तिशाली, मनस्वी, कर्ण और भीमसेन एक दूसरे के सन्मुख पहुँच कर प्रदीप्त बाणों को छोड़ते हुए देदीप्यमान हो रहे थे। ६४॥

ताभ्यां वियति राजेन्द्र विततं भीमदर्शनम् ॥६५॥
क्रौञ्चपृष्ठारुणं रौद्रं बाणजालं व्यदृश्यत ।

हे राजेन्द्र! इन दोनों के बाण-जाल, आकाश में छा गए और वे क्रौञ्च पक्षी की पीठ के लाल भाग की तरह भीषण दिखाई देने लगे ॥६५॥

नैव सूर्यप्रभा राजन्न दिशः प्रदिशस्तथा ॥६६॥
प्राज्ञासिष्म वयं ते वा शरैर्मुक्तैः सहस्रशः ।

हे राजन्! इस समय सूर्य की प्रभा, दिशाएँ और विदिशाएँ कुछ भी दिखाई नहीं देती थीं। इस समय सहस्रों की संख्या में बाण छूट रहे थे, इससे इनका ज्ञान न तो, हम लोगों को होता था और न विरोधी दल को ही कुछ मालूम पड़ता था ॥६६॥

मध्याह्ने तपतो राजन्भास्करस्य महाप्रभाः ॥६७॥
हृताः सर्वाः शरौघैस्तैः कर्णपाण्डवयोस्तदा ।

हे राजन! यद्यपि सूर्य मध्यान्ह काल में तप रहे थे-तो भी कर्ण और पाण्डव के बाण-जाल से इतनी छाया हो गई, कि सूर्य की धूप का कुछ भो पता नहीं लगता था ॥६७॥

सौबलं कृतवर्माणं द्रौणिमाधिरथिं कृपम् ॥६८॥
संसक्तान्पाण्डवैर्दृष्ट्वा निवृत्ताः कुरवः पुनः ।

कौरव वीरों ने सुबल पुत्र शकुनि, कृतवर्मा, अधिरथ-पुत्र कर्ण, अश्वत्थामा, कृपाचार्य, आदि महारथियों को पाण्डवों से युद्ध करते देखा-तो वे फिर लौट पड़े ॥६८॥

तेषामापततां शब्दस्तीव्र आसीद्विशाम्पते ॥६९॥
उद्धृत्तानां यथा वृष्ट्या सागराणां भयावहः ।

हे विशाम्पते! कौरवों के लौटते ही रण भूमि में ऐसा शब्द होने लगा, जैसे वर्षा के समय उमड़ते हुये समुद्रों में भीषण शब्द होने लगता है ॥६९॥

ते सेने भृशसंसक्ते दृष्ट्वान्योन्यं महाहवे ॥७०॥
हर्षेण महता युक्ते परिगृह्य परस्परम् ।
ततः प्रवृत्ते युद्धं मध्यं प्राप्ते दिवाकरे ॥७१॥
तादृशं न कदाचिद्धि दृष्टपूर्वं न च श्रुतम् ।

इस घोर युद्ध में दोनों पक्ष की सेनाएँ एक दूसरे को अपने सन्मुख देखकर बड़े वेग से टकरा गईं। ये परस्पर टकराकर बड़े भारी दर्पोन्माद में भरी हुई थी। अब इन दोनों सेनाओं का घोर युद्ध होने लगा। इस समय सूर्य मध्यान्ह काल में थे। हम लोगों ने ऐसा युद्ध कभी पूर्व काल में नहीं देखा था और न कभी सुना ही था ॥७०-७१॥

बलौघस्तु समासाद्य बलौघं सहसा रणे ॥७२॥
उपासर्पत वेगेन वार्योघ इव सागरम्।

इस रण में एक दम एक सेना समूह ने दूसरे सेना समूह को देखा-तो वे इस तरह टकरा गए-जैसे वेग से जल प्रवाह समुद्र में घुस जाता है ॥७२॥

आसीन्निनादः सुमहान्बाणौघानां परस्परम् ॥७३॥
गर्जतां सागरौघाणां यथा स्यान्निःस्वनो महान्।

इस समय जो बाण समूह छूटा-तो उसकी महाघोर ध्वनि होने लगी। यह गर्जना इस ढङ्ग की थी, जैसे गर्जते हुए समुद्र से ध्वनि उठ रही हो ॥७३॥

ते तु सेने समासाद्य वेगवत्यौ परस्परम् ॥७४॥
एकीभावमनुप्राप्ते नद्याविव समागमे।

ये वेगशाली सेनाएँ परस्पर एक दूसरी सेना से भिड़कर इस तरह एक हो गईं-जैसे दो नदियां मिलकर एक हो जाती हैं॥७४॥

ततः प्रववृते युद्धं घोररूपं विशाम्पते ॥७५॥
कुरूणां पाण्डवानां च लिप्सतां सुमहद्यशः ।

हे विशाम्पते ! अब विजय रूपी महान् यश की अभिलाषा वाले कौरव और पाण्डवों में घोर युद्ध चल पड़ा ॥७५॥

शूराणां गर्जतां तत्र ह्यविच्छेदकृता गिरः ॥७६॥
श्रूयन्ते विविधा राजन्नामान्युद्दिश्य भारत ।

हे भारत वंश श्रेष्ठ राजन ! इस समय गर्जते हुए शूरवीरों की लगातार वाणी अपना अपना नाम उच्चारण करती हुई अनेक ढङ्ग से सुनी जा रही थीं ॥७६॥

यस्य यद्धि रणे व्यङ्गं पितृतो मातृतोऽपि वा ॥७७॥
कर्मतः शीलतो वापि स तच्छ्रावयते युधि ।

जिस किसी के माता या पिता ने कोई अनुचित कर्म कर लिया-तो उनके आचरण या कर्म की समालोचना करते हुए भी रण में अनेक प्रकार की वाणी सुनाई पड़ रही थी ॥७७॥

तान्दृष्ट्वा समरे शूरांस्तर्जमानान्परस्परम् ॥७८॥
अभवन्मे मती राजन्नैषामस्तीति जीवितम् ।

हे राजन ! इस प्रकार उन वीरों को परस्पर एक दूसरे को फटकारते और ललकारते देखकर मेरा तो यही ख़याल बना कि अब ये लोग अपने जीवन को नहीं बचाकर लावेंगे ॥७८॥

तेषां दृष्ट्वा तु क्रुद्धानां वपूंष्यमिततेजसाम् ॥७९॥
अभवन्मे भयं तीव्रं कथमेतद्भविष्यति ।
ततस्ते पाण्डवा राजन्कौरवाश्च महारथाः ॥८०॥
ततक्षुः सायकैस्तीक्ष्णैर्निघ्नन्तो हि परस्परम् ॥८१॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

इन अत्यन्त तेजधारी कोप में भरे हुए वीरों के जब मैंने शरीर देखे-तो मेरे मन में भी अत्यन्त ही भय का सञ्चार हो गया, कि न जाने अब क्या होगा। हे राजन् अब कौरव और पाण्डवों के महारथी परस्पर एक दूसरे को तीक्ष्ण बाणों से छेदकर गिराने लगे ॥७९-८२॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और भीमसेन के युद्ध का इक्यावनवां अध्याय समाप्त हुआ।

बावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

क्षत्रियास्ते महाराज परस्परवधैषिणः ।

अन्योन्यं समरे जघ्नुः कृतवैराः परस्परम् ॥१॥

सञ्जय बोले-हे महाराज ! अब ये क्षत्रियवीर एक दूसरे की इच्छा से रण में एक दूसरे को मारने लगे । इनका परस्पर वैर बहुत ही बढ़ चुका था ॥१॥

रथौघाश्च हयौघाश्च नरौघाश्च समन्ततः ।

गजौघाश्च महाराज संसक्ताश्च परस्परम् ॥२॥

हे महाराज ! रथ, अश्व, नर, और गजों का समूह सब ओर परस्पर एक दूसरे से भिड़ गए ॥२॥

गदानां परिघाणां च कणपानां च क्षिप्यताम् ।

प्रासानां भिन्दिपालानां भुशुण्डीनां च सर्वशः ॥३॥

सम्पातं चानुपश्याम संग्रामे भृशदारुणे ।

शलभा इव सम्पेतुः शरवृष्टयः समन्ततः ॥४॥

हे राजन् ! गदा, परिघ, कणप, प्रास, भिन्दिपाल, भुशुण्डी आदि शस्त्रों का सब ओर इस घोर संग्राम में सम्पात देख रहे थे और सब ओर ही रण में शलभ पक्षियों के एकदम गिरने की तरह बाण वर्षा गिर रही थी ॥३-४॥

नागान्नागाः समासाद्य व्यधमन्त परस्परम् ।
हया हयांश्च समरे रथिनो रथिनस्तथा ॥५॥
पत्तयः पत्तिसङ्घांश्च हयसङ्घांश्च पत्तयः ।
पत्तयो रथमातङ्गान्रथा हस्त्यश्वमेव च ॥६॥
नागाश्च समरे त्र्यङ्गं ममृदुः शीघ्रगा नृप ।

हे नृप! हाथी हाथियों, अश्व अश्वों रथी रथियों पैदल पैदलों, पैदल अश्वों, पैदल ही रथी और हाथियों, रथी हाथी और अश्वारोहियों तथा हाथी भी पैदल, रथी और अश्वारोहियों के पास पहुंच कर परस्पर एक दूसरे को इस दारुण संग्राम में बड़े वेग से विनष्ट कर रहे थे ॥५-६॥

वध्यतां तत्र शूराणां क्रोशतां च परस्परम् ॥७॥
घोरमायोधनं जज्ञे पशूनां वैशसं यथा ।

इस युद्ध में योद्धाओं का बहुत ही विध्वंस हुआ। वे एक दूसरे को सहायता के लिये पुकारने लगे यह संग्राम, इतना घोर था, जैसे पशुओं का वध स्थान हो ॥७॥

रुधिरेण समास्तीर्णा भाति भारत मेदिनी ॥८॥
शक्रगोपगणाकीर्णा प्रावृषीव यथा धरा ।

हे भारत! रक्त के छींटों से सारी रणभूमि इस तरह भर गई, जैसे वर्षाकाल में पृथिवी इन्द्र गोप (वीर बहूटी) नामक जन्तुओं से भर जाती है ॥८॥

यथा वा वाससी शुक्ले महारञ्जनरञ्जिते ॥९॥

बिभृयाद्युवती श्यामा तद्वदासीद्वसुन्धरा ।

जिस प्रकार कोई सोलह वर्ष की युवती, अत्यन्त शुक्ल वस्त्रों को लाल रंगकर धारण करले, इसी तरह पृथिवीकी रक्तमें भीगने से दशा हो रही थी ॥९॥

मांसशोणितचित्रेव शातकुम्भमयीव च ॥१०॥

भिन्नानां चोत्तमाङ्गानां बाहूनां चोरुभिः सह ।

मांस और रक्त से रणभूमि बड़ी ही विचित्र सी दिखाई देती थी। वीरों के जंघा और बाहुओं के साथ मस्तकों के कटकर गिरजाने से रणभूमि सुवर्ण के कलसों से व्याप्त सी दिखाई देने लगी ॥१०॥

कुण्डलानां प्रवृद्धानां भूषणानां च भारत ॥११॥

निष्काणामथ शूराणां शरीराणां च धन्विनाम् ।

चर्मणां सपताकानां सङ्घास्तत्रापतन्भुवि ॥१२॥

हे भारत! इस समय रणभूमि में बड़े २ बहुत से कुण्डल, भूषण, कण्ठहार, धनुर्धर शूरवीरों के शरीर, ढाल, पताका आदि वस्तुओं के ढेरों के ढेर वहां पड़े थे ॥११-१२॥

गजा गजान्समासाद्य विषाणैरार्दयन्नृप ।

विषाणाभिहतास्तत्र भ्राजन्ते द्विरदास्तथा ॥१३॥

रुधिरेणावसिक्ताङ्गा गैरिकप्रस्रवा इव ।

यथा भ्राजंति स्यन्दन्तः पर्वता धातुमण्डिताः ॥१४॥

हे नृप ! गजों ने गजों के सन्मुख पहुंच कर अपने दांतों से एक दूसरे को घायल किया। एक दूसरे के दांतों के आघात से जब वे गजराज, रुधिर में भीग गए-तो ऐसे दिखाई देने लगे, जैसे—अनेक धातुओं से संयुक्त, गैरिक (गेरू) मिश्रित प्रवाह को छोड़ते हुए पर्वत सुशोभित हो रहे हों ॥१३-१४॥

तोमरान्सादिभिर्मुक्तान्प्रतीपानास्थितान्बहून् ।
हस्तैर्विचेरुस्ते नागा बभंजुश्चापरे तथा ॥१५॥

विरोधी गजों के सवारों द्वारा छोड़े हुए, सामने से आने वाले बहुत से तोमर नामक शस्त्रों को हाथियों ने अपनी २ सूंड में लेकर घुमाना आरम्भ किया और बहुतों ने उन्हें तोड़ २ कर फेंक दिया ॥१५॥

नाराचैश्छिन्नवर्माणो भ्राजन्ति स्म गजोत्तमाः ।
हिमागमे यथा राजन्व्यभ्रा इव महीधराः ॥१६॥

हे राजन् ! बहुत से हाथियों के नाराच नामक बाणों से कवच कट फट गए थे-इस समय हाथी इस तरह दिखाई दे रहे थे, जैसे शीतकाल में मेघों से रहित पर्वत दिखाई दे रहे हों ॥१६॥

शरैः कनकपुङ्खैश्च चित्रा रेजुर्गजोत्तमाः ।
उल्काभिः सम्प्रदीप्ताग्राः पर्वता इव भारत ॥१७॥

हे भारत ! सुवर्ण मूलधारी, बाणों के शरीर में गड़े रहने से उत्तम २ हाथी ऐसे सुन्दर दिखाई देने लगे, जैसे उल्काओं (मशालों) से युक्त पर्वत की सुन्दर चोटी हो ॥१७॥

केचिदभ्याहता नागैर्नागा नगनिभोपमाः ।
विनेशुः समरे तस्मिन्पक्षवन्त इवाद्रयः ॥१८॥

हे राजन्! पर्वत के आकार सदृश आकारधारी बहुत से हाथियों को दूसरे विरोधी हाथियों ने मार गिराया वे रण में पड़े हुए हाथी पक्षधारी पर्वतों से प्रतीत होने लगे ॥१८॥

अपरे प्राद्रवन्नागाः शल्यार्ता व्रणपीडिताः ।
प्रतिमानैश्च कुम्भैश्च पेतुरुर्व्यां महाहवे ॥१६॥

बाण के व्रण से पीड़ित हुए बहुत से गजराज भाग निकले और बहुत से घंटां की तरह इस महायुद्ध की भूमि में लुढ़कने लगे ॥१६॥

विनेदुः सिंहवच्चान्ये नदन्तो भैरवान्रवान् ।
बभ्रमुर्बहवो राजंश्चकुशुश्चापरे गजाः ॥२०॥

कुछ हाथी, भीषण शब्द करते हुए सिंह की तरह गरजने लगे और कुछ तो घूमने और कुछ चिंघाड़ने लगे ॥२०॥

हयाश्च निहता बाणैर्हेमभाण्डविभूषिताः ।
निषेदुश्चैव मम्लुश्च बभ्रमुश्च दिशो दश ॥२१॥
अपरे कृष्यमाणाश्च विचेष्टन्तो महीतले ।
भावान्बहुविधांश्चक्रुस्ताडिताः शरतोमरैः ॥२२॥

सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित, बाणों से मारे हुए अश्व बैठे पड़े कोई मलिन होगए और कोई तो दशों दिशाओं में

चक्कर लगाने लगे, कुछ अश्व पृथिवी में पड़े इस तरह पैर मारने लगे, जिससे भूमि खुदगई। बाण और तोमर से ताड़ित हुए बहुत से अश्व, अनेक प्रकार की चेष्टा करने लगे ॥२१-२२॥

नरास्तु निहता भूमौ कूजन्तस्तत्र मारिष ।

दृष्ट्वा च बान्धवानन्ये पितॄनन्ये पितामहान् ॥२३॥

हे महानुभाव ! बहुत से आहत किए हुए भूमि में पड़े हुए मनुष्य ! आर्तनाद कर रहे हैं और कुछ वीर, अपने बान्धव पिता या पितामह को देखकर उनको पुकारते हैं ॥२३॥

धावमानान्परांश्चान्ये दृष्ट्वान्ये तत्र भारत ।

गोत्रनामानि ख्यातानि शशंसुरितरेतरम् ॥२४॥

हे भारत ! किसी दूसरे वीर को भागते देखकर दूसरे वीर अपनी प्रशंसा में कहीं २ अपने गोत्र और नामों का ही उच्चारण कर रहे हैं ॥२४॥

तेषां छिन्ना महाराज भुजाः कनकभूषणाः ।

उद्वेष्टन्ते विचेष्टन्ते पतन्ते चोत्पतन्ति च ॥२५॥

निपतन्ति तथैवान्ये स्फुरन्ति च सहस्रशः ।

वेगांश्चान्ये रणे चक्रुः पञ्चास्या इव पन्नगाः ॥२६॥

हे महाराज ! इन वीरों की सुवर्ण के आभूषणों से विभूषित कटी हुई भुजा, उछलती, तड़फड़ाती, गिरती और उठती हैं कोई चुप-चाप हो गई, तड़फड़ाना छोड़ दिया और सहस्रों भुजाएँ अभी

फड़फड़ा रही हैं कोई तो इतना वेग धारण किये हुए हैं मानो पांच मुख वाला सांप उछट रहा हो ॥२५-२६॥

ते भुजा भोगिभोगाभाश्चन्दनाक्ता विशाम्पते ।
लोहितार्द्रा भृशं रेजुस्तपनीयध्वजा इव ॥२७॥

हे विशाम्पते ! चन्दन में लिपटी हुई, सर्प के फन के सदृश आकार धारण करने वाली वीरों की ध्वजाएँ रक्त में भीग गई और वे ऐसी प्रतीत होने लगीं जैसे सुवर्ण की ध्वजा हो ॥२७॥

वर्तमाने तथा घोरे संकुले सर्वतोदिशम् ।
अविज्ञाताः स्म युध्यन्ते विनिघ्नन्तः परस्परम् ॥२८॥

हे भरतर्षभ ! सब दिशाओं में यह संग्राम इतने भीषण रूप से व्याप्त हो गया, कि परस्पर एक दूसरे को मारते थे, परन्तु कुछ पता नहीं लगता था, कि कौन किसको मार रहा है ॥२८॥

भौमेन रजसाकीर्णे शस्त्रसम्पातसंकुले ।
नैव स्वे न परे राजन्व्यज्ञायन्त तमोवृताः ॥२९॥

हे राजन् ! भूमि से उठी हुई रज से व्याप्त शस्त्रों के प्रताप से परिपूर्ण, इस युद्ध में अन्धकार से घिरे हुए बहुत से वीरों को अपने परायों का कुछ भी पता न लगता था ॥२९॥

तथा तदभवद्युद्धं घोररूपं भयानकम् ।
लोहितोदा महानद्यः प्रसस्रुस्तत्र चासकृत् ॥३०॥

यह युद्ध इतना भयानक और घोर रूपधारी हुआ कि इस में रक्त की बड़ी २ नदी बार २ बह निकली ॥३०॥

शीर्षपाषाणसञ्छन्नाः केशशैवलशाद्वलाः ।
अस्थिमीनसमाकीर्णा धनुःशरगदोडुपाः ॥३१॥
मांसशोणितपङ्किन्यो घोररूपाः सुदारुणाः ।
नदीः प्रवर्तयामासुः शोणितौघविवर्धिनीः ॥३२॥
भीरुवित्रासकारिण्यः शूराणां हर्षवर्धनाः ।

इस नदी में वीरों के शिर नदी के पाषाण समझने चाहिएँ। वीरों के बाल शिवाल (काई जैसी चीज) या शाद्वल (हरी भरी दूर्वा) के सदृश थे, वीरों की अस्थियां ही नदी की मछलियां थीं धनुष बाण और गदा ही नौका समझो। मांस और रक्त की कीचड़ और रक्त का प्रवाह था। इस से अत्यन्त दारुण और घोर अनेक नदी बह निकलीं, जिस से कायरों को भय और वीरों को हर्ष बढ़ता था ॥३१-३२॥

ता नद्यो घोररूपास्तु नयन्त्यो यमसादनम् ॥३३॥
अवगाढान्मज्जयन्त्यः क्षत्रस्याजनयन्भयम् ।

ये नदियां बड़ी घोर थीं, जो यमराज के घर पहुँचा देने वाली थीं। जो इस में डुबकी लगाता था, उसे तो ये डुबो ही देती थीं इस से क्षत्रिय वीरों को बड़ा ही भय होता था ॥३३॥

क्रव्यादानां नरव्याघ्र नर्दतां तत्र तत्र ह ॥३४॥
घोरमायोधनं जज्ञे प्रेतराजपुरोपमम् ।

हे नरव्याघ्र ! मांस भोजी जन्तुओं के घोर चीत्कार से तो यह रण स्थल, इतना घोर हो गया था कि यमराज के पुर सदृश ही भीषण दिखाई देता था ॥३४॥

उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥३५॥
नृत्यन्ति वै भूतगणाः सुतृप्ता मांसशोणितैः ।

इस घोर युद्ध में अगणित कबन्ध (शिर कटे हुए वीर) सब ओर घूम रहे थे और मांस तथा रक्त से तृप्त हुए अनेक भूतगण नाच रहे थे ॥३५॥

पीत्वा च शोणितं तत्र वसां पीत्वा च भारत ॥३६॥
मेदोमज्जावसामत्तास्तृप्ता मांसस्य चैव ह ।
धावमानाः स्म दृश्यन्ते काकगृध्रवकास्तथा ॥३७॥

हे भारत ! रक्त, वसा, मेद और मज्जा पीकर तथा मेद मज्जा वसा और मांस से तृप्त हुए, काक, गीध और वक सारी रण भूमि में दौड़ते दिखाई दे रहे थे ॥३६-३७॥

शूरास्तु समरे राजन्भयं त्यक्त्वा सुदुस्त्यजम् ।
योधव्रतं समास्थाय चक्रुः कर्माण्यभीतवत् ॥३८॥

हे राजन् ! इस समय भय का छोड़ना बड़ा कठिन कार्य है, परन्तु शूरवीर उसे भी छोड़ कर योधाओं के व्रत में लगे हुए निर्भीक भाव से युद्ध कर रहे थे ॥३८॥

शरशक्तिसमाकीर्णे क्रव्यादगणसंकुले ।
व्यचरन्त रणे शूराः ख्यापयन्तः स्वपौरुषम् ॥३९॥

हे राजन् ! बाण, शक्ति आदि शस्त्रों के आघातों से व्याप्त, मांस भोजी जन्तुओं से भरे हुए, इस रण में भी अपने २ पुरुषार्थ की प्रशंसा करते हुए शूरवीर, घूम रहे थे ॥३९॥

अन्योन्यं श्रावयन्ति स्म नामगोत्राणि भारत ।
पितृनामानि च रणे गोत्रनामानि वा विभो ॥४०॥

श्रावयाणाश्च बहवस्तत्र योधा विशाम्पते ।
अन्योन्यमवमृद्नन्तः शक्तितोमरपट्टिशैः ॥४१॥

हे भारत ! ये वीर, इस घोर युद्ध में एक दूसरे को अपने गोत्र, नाम और पिता का नाम सुनाते थे । वे वीर भी गोत्र और नामों को सुनकर शक्ति तोमर और पट्टिश आदि शस्त्रों से एक दूसरे को मल डालते थे ॥४०-४१॥

वर्त्तमाने तथा युद्धे घोररूपे सुदारुणे ।
व्यषीदत्कौरवी सेना भिन्ना नौरिव सागरे ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

हे नराधिप ! जब इस प्रकार घोर और दारुण युद्ध चल रहा था-तो कौरव सेना इस तरह बिलकुल व्याकुल हो उठी-जैसे-सागर में टूट जाने से नौका की दशा हो जाती है ।

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में घोर युद्ध के वर्णन का बावनवां अध्याय समाप्त हुआ ।

तरेपनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

वर्त्तमाने तथा युद्धे क्षत्रियाणां निमज्जने ।
गाण्डीवस्य महाघोषः श्रूयते युधि मारिष ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे महाभाग ! क्षत्रियों के नाशकारी इस महायुद्ध के प्रवृत्त होन पर इस युद्ध में सब ओर से गाण्डीव धनुष की ही महाध्वनि सुनाई देने लगी ॥१॥

संशप्तकानां कदनमकरोद्यत्र पाण्डवः ।
कोसलानां तथा राजन्नारायणबलस्य च ॥२॥

हे राजन् ! इस समय पाण्डुपुत्र अर्जुन, संशप्तक गण, कोसल देशोत्पन्न क्षत्रिय और नारायणी सेना का विध्वंस उड़ा रहे थे ॥

संशप्तकास्तु समरे शरवृष्टीः समन्ततः ।
अपातयन्पार्थमूर्ध्नि जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥३॥

संशप्तक गण भी विजय के अभिलाषी थे, इससे उनको क्रोध बढ़ रहा था, इससे उन्होंने भी इस समर में अर्जुन के शिर पर शरों की झड़ी सी बांध दी ॥३॥

ता वृष्टीः सहसा राजंस्तरसा धारयन्प्रभुः ।
व्यगाहत रणे पार्थो विनिघ्नन्रथिनां वरान् ॥४॥

हे राजन् ! शक्तिशाली अर्जुन, अपने तेज से एक दम की हुई उस बाण वर्षा को सहन कर रहे थे, और अपने विरोधियों

के वीरों को मार मार कर बिछाते जाते थे। इस तरह अर्जुन रण में घूम रहे थे ॥४॥

विगाह्य तद्रथानीकं कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ।
आससाद ततः पार्थः सुशर्माणं वरायुधम् ॥५॥

अर्जुन ने कङ्कपत्रधारी, शिलापर तीक्ष्ण किये गए बाणों से रथ सेना को आलोडित करके उत्तम शस्त्रधारी राजा सुशर्मा के समीप गमन किया ॥५॥

स तस्य शरवर्षाणि ववर्ष रथिनां वरः ।
तथा संशप्तकाश्चैव पार्थं बाणैः समार्पयन् ॥६॥

रथियों में श्रेष्ठ, अर्जुन ने, राजा सुशर्मा पर बाणों की झड़ी बांध दी। इधर संशप्तक वीरों ने अपने बाणों से अर्जुन को पाट दिया ॥ ६ ॥

सुशर्मा तु ततः पार्थं विध्वा दशभिराशुगैः ।
जनार्दनं त्रिभिर्बाणैरहनद्दक्षिणे भुजे ॥७॥
ततोऽपरेण भल्लेन केतुं विव्याध मारिष ।

राजा सुशर्मा ने भी दश आशुगामी बाण छोड़कर अर्जुन को और तीन बाणों से श्रीकृष्ण की दांयी भुजा को बींध दिया। हे महानुभाव ! इसी तरह एक अन्य भल्ल नामक बाण मारकर अर्जुन की-वानर के चिन्ह से अङ्कित ध्वजा-को बींध दिया ॥७॥

स वानरवरो राजन्विश्वकर्मकृतो महान् ॥८॥
ननाद सुमहानादं भीषयाणो जगर्ज च ।

हे राजन्! विश्वकर्मा ने यह वानर अर्जुन की ध्वजा पर बनाकर बैठाया था, इससे यह सबको भयभीत करता हुआ गरजने लगा। इसका महानाद सब जगह छा गया ॥८॥

कपेस्तु निनदं श्रुत्वा सन्त्रस्ता तव वाहिनी ॥९॥
भयं विपुलमाधाय निश्चेष्टा समपद्यत।

हे राजन! इस ध्वजा पर स्थित वानर के शब्द को सुनकर तुम्हारी सेना भयभीत होगई और उस पर इतना भय छाया, कि वह निश्चेष्ट सी होगई ॥९॥

ततः सा शुशुभे सेना निश्चेष्टावस्थिता नृप ॥१०॥
नानापुष्पसमाकीर्णं यथा चैत्ररथं वनम्।

हे नृप! चेष्टा रहित हुई, यह कौरव सेनां, इस तरह सुशोभित हो उठी, जैसे अनेक पुष्पों से व्याप्त, चैत्र रथ नामक रथ कुवेर का शान्त उपवन में सुशोभित हो रहा हो ॥१०॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां योधास्ते कुरुसत्तम ॥११॥
अर्जुनं सिषिचुर्बाणैः पर्वतं जलदा इव।

हे कुरुसत्तम! अब कुछ चेतनता में आकर तुम्हारे योद्धाओं ने अर्जुन को अपने बाणों से इस तरह सींच दिया, जैसे पर्वत को बादल सींच देते हैं ॥११॥

परिवव्रुस्ततः सर्वे पाण्डवस्य महारथम् ॥१२॥
निगृह्य तं प्रचुक्रुशुर्वध्यमानाः शितैः शरैः।

इन सार वीरों ने महारथी अर्जुन को घेर लिया और अर्जुन के बाणों से क्षत विक्षत भी हुए, उसको घेर कर कोलाहल मचाने लगे ॥१२॥

ते हयान्रथचक्रे च रथेषां चापि मारिष ॥१३॥
निग्रहीतुमुपाक्रामन्क्रोधाविष्टाः समन्ततः ।

हे आर्य ! ये क्रोध में भरे हुए संशप्तक वीर, सब ओर से अर्जुन पर टूट पड़े और उसके अश्व रथ के पहिए, तथा रथ की ईषा, (अग्रभाग) को पकड़ने लगे ॥१३॥

निगृह्य तं रथं तस्य योधास्ते तु सहस्रशः ॥१४॥
निगृह्य बलवत्सर्वे सिंहनादमथानदन् ।

ये सहस्रों योद्धा अर्जुन के रथ को पकड़ कर खड़े हुए और पकड़ने के बाद बड़े जोर से सिंहनाद करने लगे ॥१४॥

अपरे जगृहुश्चैव केशवस्य महाभुजौ ॥१५॥
पार्थमन्ये महाराज रथस्थं जगृहुर्मुदा ।

हे महाराज ! कुछ वीरों ने तो श्रीकृष्ण की भुजा पकड़ी और किन्हीं वीरों ने रथ पर स्थित अर्जुन को ही उल्लास-पूर्वक जा पकड़ा ॥१५॥

केशवस्तु ततो बाहू विधुन्वन्रणमूर्धनि ॥१६॥
पातयामास तान्सर्वान्दुष्टहस्तीव हस्तिपान् ।

इस रण में श्री कृष्ण ने अपनी भुजाओं का झटका दिया और सारे कौरव वीरों को इस तरह दूर फेंक दिया-जैसे बिगड़ा हुआ हाथी, अपने सवारों को फेंक देता है ॥१६॥

ततः क्रुद्धो रणे पार्थः संवृतस्तैर्महारथैः ॥१७॥

निगृहीतं रथं दृष्ट्वा केशवं चाप्यभिद्रुतम् ।

रथारूढांस्तु सुबहून्पदातींश्चाप्यपातयत् ॥१८॥

इन महारथियों के घेरने से अर्जुन क्रोध से उबल उठा उसने देखा, कि इन दुष्टों ने रथ को घेर लिया और श्रीकृष्ण को भी जा पकड़ा है, तो अर्जुन ने रथ पर चढ़े हुए बहुत से पैदलों को नीचे गिरा दिया ॥१७-१८॥

आसन्नांश्च तथा योधाञ्शरैरासन्नयोधिभिः ।

छादयामास समरे केशवं चेदमब्रवीत् ॥१६॥

अब अर्जुन ने समीप में आये हुए वीरों को समीप में चलने वाले छोटे २ बाणों से रण में आच्छादित कर दिया और श्री कृष्ण से यह वचन कहा ॥१८॥

पश्य कृष्ण महाबाहो संशप्तकगणान्बहून् ।

कुर्वाणान्दारुणं कर्म वध्यमानान्सहस्रशः ॥२०॥

हे महा बाहो ! कृष्ण ! तुम इन बहुत से संशप्तक गणों को देखो-कि ये कितना दारुण कर्म करने को तय्यार हो रहे हैं, यद्यपि इनमें से सहस्रों वीर मार २ कर गिराये जा रहे हैं ॥२०॥

रथवन्धमिमं घोरं पृथिव्यां नास्ति कश्चन ।
यः सहेत पुमाँल्लोके मदन्यो यदुपुङ्गव ॥२१॥

हे यदुपुङ्गव ! मेरे सिवा किसी अन्य वीर की पृथिवी पर इस लोक में शक्ति नहीं है, जो इस प्रकार के रथ वन्ध हो जाने पर भी इन से छुटकारा पा सके ॥२१॥

इत्येवमुक्त्वा बीभत्सुर्देवदत्तमथाधमत् ।
पाञ्चजन्यं च कृष्णोऽपि पूरयन्निव रोदसी ॥२२॥

हे राजन् ! इतना कहकर अर्जुन ने देवदत्त नामक शङ्ख बजाया और श्रीकृष्ण ने भी अपने पाञ्चजन्य शङ्ख को बजाकर पृथिवी और आकाश को भर दिया ॥२२॥

तं तु शङ्खस्वनं श्रुत्वा संशप्तकवरूथिनी ।
सञ्चचाल महाराज वित्रस्ता चाद्रवद्भृशम् ॥२३॥

हे महाराज ! संशप्तकों की सेना इन शङ्खों की ध्वनि को सुन कर कम्पायमान हो उठी और अत्यन्त व्याकुल होकर भाग निकली।

पादबन्धं ततश्चक्रे पाण्डवः परवीरहा ।
नागमस्त्रं महाराज सम्प्रकीर्य मुहुर्मुहुः ॥२४॥

हे महाराज ! शत्रुनाशक अर्जुन ने अपना नागास्त्र बार २ छोड़ कर इन भागते हुए वीरों के पैर बांधना आरम्भ कर दिया ॥२४॥

ते बद्धाः पादबन्धेन पाण्डवेन महात्मना ।
निश्चेष्टाश्चाभवन्राजन्नश्मसारमया इव ॥२५॥

हे राजन्! महावीर अर्जुन द्वारा पैरों के बन्ध जाने से संशप्तक गण, इस तरह निश्चेष्ट गिर गए, जैसे कोई पत्थर निश्चेष्ट हो कर पड़ा रहता है ॥२५॥

निश्चेष्टांस्तु ततो योधानवधीत्पाण्डुनन्दनः।
यथेन्द्रः समरे दैत्यांस्तारकस्य वधे पुरा ॥२६॥

जब ये वीर निश्चेष्ट हो गए-तो पाण्डु-पुत्र अर्जुन ने इन्हें इस तरह मारना आरम्भ किया, जैसे-तारकासुर के संग्राम में इन्द्र ने दैत्यों को मार गिराया था ॥२६॥

ते वध्यमानाः समरे मुमुचुस्तं रथोत्तमम्।
आयुधानि च सर्वाणि विस्रष्टुमुपचक्रमुः ॥२७॥

जब रण में अर्जुन ने उन को इस तरह नष्ट भ्रष्ट किया-तो अब उन्होंने अर्जुन के रथ का पीछा छोड़ा और वे भी अनेक प्रकार से अस्त्र शस्त्र छोड़ने को उद्यत हुए ॥२७॥

ते बद्धाः पादबन्धेन न शेकुश्चेष्टितुं नृप।
ततस्तानवधीत्पार्थः शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२८॥

हे नृप! जब अर्जुन ने उनके नाग नामक अस्त्र से पैर बांध दिए तो कुछ भी चेष्टा नहीं कर सके- तब अर्जुन ने अपने नतपर्व-धारी बाणों से उनका बध करना आरम्भ किया ॥१८॥

सर्वयोधा हि समरे भुजगैर्वेष्टिताऽभवन्।
यानुद्दिश्य रणे पार्थः पादबन्धं चकार ह ॥२९॥

कुन्ती पुत्र अर्जुन ने जिन जिन वीरों के पैरों में बन्धन डाल ने चाहे-उन २ वीरों के पैरों में सर्पों की रण में बेड़ी सी पड़ गई ॥२६॥

ततः सुशर्मा राजेन्द्र गृहीतां वीक्ष्य वाहिनीम् ।
सौपर्णमस्त्रं त्वरितः प्रादुश्चक्रे महारथः ॥३०॥

हे राजेन्द्र ! जब संशप्तकों के सेनापति राजा सुशर्मा ने अपनी सेना को इस तरह फंसी हुई देखा-तो उस महारथी ने बड़े वेग से सुपर्णास्त्र का प्रयोग किया ॥३०॥

ततः सुपर्णाः सम्पेतुर्भक्षयन्तो भुजङ्गमान् ।
ते वै विदुद्रुवुर्नागा दृष्ट्वा तान्खचरान्नृप ॥३१॥

हे राजन् ! अब सब ओर गरुड़ सांपों को खाते हुए उड़ने लगे। इन गरुड़ों को रण भूमि में उड़ते देख कर सारे सर्प कहीं के कहीं भाग गए ॥३१॥

बभौ बलं तद्विमुक्तं पादबन्धाद्विशाम्पते ।
मेघवृन्दाद्यथा मुक्तो भास्करस्तापयन्प्रजाः ॥३२॥

हे विशाम्पते ! इस समय सर्पों से मुक्त हुई संशप्तक सेना, इस तरह प्रकाशित हुई जैसे मेघों से मुक्त होने पर प्रजा को संतापित करता हुआ सूर्य उदय को प्राप्त होता है ॥३२॥

विप्रमुक्तास्तु ते योधाः फाल्गुनस्य रथं प्रति ।
ससृजुर्बाणसङ्घांश्च शस्त्रसङ्घांश्च मारिष ॥३३॥
विविधानि च शस्त्राणि प्रत्यविध्यन्त सर्वशः ।

हे आर्य ! इन सर्पों के बन्धन से मुक्त हुए, ये योद्धा अब अर्जुन के रथ के ऊपर बाण और शस्त्रों के समूह की झड़ी लगाने लगे। तथा अन्य अनेक शस्त्र छोड़कर सब ओर से उन्हें बींधने में प्रवृत हुए ॥३३॥

तां महास्त्रमयीं वृष्टिं संछिद्य शरवृष्टिभिः ॥३४॥
न्यवधीच्च ततो योधान्वासविः परवीरहा ।

हे नराधिप ! शत्रुवीर नाशक इन्द्र-पुत्र अर्जुन ने अपनी बाण वर्षा से इनकी इस शस्त्र वृष्टि का नाश करके इनके योद्धाओं को मारना आरम्भ किया ॥३४॥

सुशर्मा तु ततो राजन्बाणेनानतपर्वणा ॥३५॥
अर्जुनं हृदये विध्वा विव्याधान्यस्त्रिभिः शरैः ।

हे राजन् ! अब राजा सुशर्मा ने नतपर्वधारी बाण का अर्जुन के हृदय में आघात करके अन्य तीन बाणों से उसे और भी क्षत विक्षत कर दिया ॥३५॥

स गाढविद्धो व्यथितो रथोपस्थ उपाविशत् ॥३६॥
तत उच्चुक्रुशुः सर्वे हतः पार्थ इति स्म ह ।

राजा सुशर्मा के प्रहार से अत्यन्त विंधा हुआ अर्जुन बड़ा व्याकुल हो कर रथ के मध्य में मूर्छित हो गया। इस समय सब यही पुकारने लगे, कि अर्जुन मारा गया ॥३६॥

ततः शङ्खनिनादाश्च भेरीशब्दाश्च पुष्कलाः ॥३७॥
नानावादित्रनिनदाः सिंहनादाश्च जज्ञिरे ॥

हे राजन् ! इस कौरव सेना में शङ्ख ध्वनि, बहुत से भेरीनाद और अनेक बाजों की ध्वनि के साथ वीरों के सिंहनाद होने लगे ॥३७॥

प्रतिलभ्य ततः संज्ञां श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ॥३८॥
ऐन्द्रमस्त्रममेयात्मा प्रादुश्चक्रे त्वरान्वितः ।

कृष्ण जिस का सारथि बना हुआ है, ऐसे श्वेत अश्वों के वाहन वाले अर्जुन को जब चेत हुआ-तो उस अपरिमित बलशाली वीर ने बड़ी शीघ्रता से ऐन्द्रास्त्र का प्रयोग किया ॥३८॥

ततो बाणसहस्राणि समुत्पन्नानि मारिष ॥३९॥
सर्वदिक्षु व्यदृश्यन्त निघ्नन्ति तव वाहिनीम् ।
हयान्रथांश्च समरे शस्त्रैः शतसहस्रशः ॥४०॥
वध्यमाने ततः सैन्ये भयं सुमहदाविशत् ।

हे महाभाग ! इस समय अर्जुन के धनुष से सहस्रों की संख्या में बाण निकलने लगे, जो तुम्हारी सेना को नाश करते हुए ही सब ओर दिखाई दे रहे थे । अर्जुन ने अपने शस्त्रों से इस समर में सैंकड़ों, हजारों अश्व और रथी वीर मार गिराए । इस प्रकार सेना के मार गिराने से सेना को बड़ा ही भय उपस्थित हो गया ॥३९-४०॥

संशप्तकगणानां च गोपालानां च भारत ॥४१॥
नहि तत्र पुमान्कश्चिद्योऽर्जुनं प्रत्यविध्यत ।

हे भारत ! इस समय संशप्तक गण और गोपाल सेना में कोई ऐसा वीर दिखाई नहीं दिया, जो अर्जुन को उलटा बींध देता ॥४१॥

पश्यतां तत्र वीराणामहन्यत बलं तव ॥४२॥
हन्यमानमपश्यंश्च निश्चेष्टं स्म पराक्रमे ।

हे राजन् ! तुम्हारे वीरों के देखते २ तुम्हारी सेना मार गिराई गई। इन्होंने स्वयं मारी जाती हुई चेष्टा हीन सेना को देखा ॥४२॥

अयुतं तत्र योधानां हत्वा पाण्डुसुतो रणे ॥४३॥
व्यभ्राजत महाराज विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ।

हे महाराज ! इस रण में अर्जुन ने दश सहस्र योद्धाओं को मार गिराया। इस समय अर्जुन धूमरहित अग्नि के तुल्य सुशोभित हो रहे थे ॥४४॥

चतुर्दशसहस्राणि यानि शिष्टानि भारत ॥४४॥
रथानामयुतं चैव त्रिसाहस्राश्च दन्तिनः ।

हे भारत ! अब संशप्तक सेना में चौदह हज़ार पैदल, दश हज़ार रथी वीर और तीन हज़ार हाथी बच रहे थे ॥४४॥

ततः संशप्तका भूयः परिवव्रुर्धनञ्जयम् ॥४५॥
मर्तव्यमिति निश्चित्य जयं वाप्यनिवर्तनम् ।

हे नृपते ! अब संशप्तकों ने फिर अर्जुन को घेर लिया। इन्होंने इस समय यही निश्चित किया कि या तो मर जाना है या पूर्ण विजय प्राप्त कर लेनी है ॥४५॥

तत्र युद्धं महच्चासीत्तावकानां विशाम्पते ।
शूरेण बलिना सार्धं पाण्डवेन किरीटिना ॥४६॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

हे विशाम्पते ! इस समय अत्यन्त शूरवीर, महाबली किरीट धारी अर्जुन के साथ तुम्हारे पक्ष की संशप्तक सेना से बड़ा ही घोर युद्ध हुआ ॥३६॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अर्जुन और संशप्तकों के युद्ध का तरेपनवां अध्याय समाप्त हुआ ।



चौवनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

कृतवर्मा कृपो द्रौणिः सूतपुत्रश्च मारिष ।
उलूकः सौबलश्चैव राजा च सह सोदरैः ॥१॥
सीदमानां चमूं दृष्ट्वा पाण्डुपुत्रभयार्दिताम् ।
समुज्जहुः स्म वेगेन भिन्नां नावमिवार्णवे ॥२॥

सञ्जय बोले—हे महाभाग ! कृतवर्मा, कृपाचार्य, अश्वत्थामा सूत-पुत्र कर्ण, उलूक, सुबल पुत्र शकुनि, और अपने भाइयों के साथ राजा दुर्योधन, पाण्डु-पुत्र अर्जुन के भय से व्याकुल होकर पीड़ित होती हुई अपनी सेना को देख कर टूटी नौका को समुद्र पार लेजाने की भांति अपनी सेना का उद्धार करने का प्रयत्न करने लगे ॥१-२॥

ततो युद्धमतीवासीन्मुहूर्त्तमिव भारत ।
भीरूणां त्रासजननं शूराणां हर्षवर्धनम् ॥३॥

हे भारत ! अब थोड़ी देर में कायर पुरुषों को भय और वीर पुरुषों को हर्ष उत्पन्न करने वाला घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥३॥

कृपेण शरवर्षाणि प्रतिमुक्तानि संयुगे ।
सृञ्जयांश्छादयामासुः शलभानां व्रजा इव ॥४॥

कृपाचार्य ने इस रण में इतनी बाण वर्षा की कि उन बाणों ने शलभ पक्षियों की तरह एक दम गिरकर सृञ्जय वीरों को आच्छादित कर दिया ॥४॥

शिखण्डी च ततः क्रुद्धो गौतमं त्वरितो ययौ ।
ववर्ष शरवर्षाणि समन्ताद् द्विजपुङ्गवम् ॥५॥

अब शिखण्डी भी कुपित होकर गौतम गोत्रोत्पन्न कृपाचार्य पर वेग से झपटा। इसने सब ओर से द्विज श्रेष्ठ कृपाचार्य पर बाण वर्षा करना आरम्भ किया। ५॥

कृपस्तु शरवर्षं तद्विनिहत्य महास्त्रवित् ।
शिखण्डिनं रणे क्रुद्धो विव्याध दशभिः शरैः ॥६॥

महान् अस्त्र विद्या के ज्ञाता कृपाचार्य ने शिखण्डी की बाण वर्षा का समुच्छेद करके फिर दश बाणों द्वारा रण में शिखण्डी को क्रोध के साथ बींध डाला ॥६॥

ततः शिखण्डी कुपितः शरैः सप्तभिराहवे ।
कृपं विव्याध कुपितं कङ्कपत्रैरजिह्मगैः ॥७॥

अब शिखण्डी भी कुपित हो उठा-उसने क्रोध में भरे हुए, कृपाचार्य को सीधे जाने वाले, कङ्क-पत्रधारी सात बाणों से आहत किया ॥७॥

ततः कृपः शरैस्तीक्ष्णैः सोऽतिविद्धो महारथः ।
व्यश्वसूतरथं चक्रे शिखण्डिनमथो द्विजः ॥८॥

अब द्विज श्रेष्ठ, महारथी कृपाचार्य तीक्ष्ण बाणों से इतने बिंध गये कि उन्होंने क्रोध में भर कर शिखण्डी को-अश्व, सारथी और रथ से हीन कर दिया ॥८॥

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
खड्गं चर्म तथा गृह्य सत्वरं ब्राह्मणं ययौ ॥९॥

महारथी शिखण्डी मृत अश्व वाले रथ से कूद कर और ढाल तलवार लेकर बड़े वेग से कृपाचार्य पर झपटा ॥९॥

तमापतन्तं सहसा शरैः सन्नतपर्वभिः ।
छादयामास समरे तदद्भुतमिवाभवत् ॥१०॥

कृपाचार्य ने भी एक दम झपटते हुये शिखण्डी को देख कर रण में नत पर्व वाले बाणों से उसे आच्छादित कर दिया यह बड़ा ही अद्भुत दृश्य माना गया ॥१०॥

तत्राद्भुतमपश्याम शिलानां प्लवनं यथा ।
निश्चेष्टस्तद्रणे राजञ्छिखण्डी समतिष्ठत ॥११॥

हे राजन्! यह इतना अद्‌भुत था, कि जैसे पत्थर तैरा दिए गये हों। इस समय रण में शिखण्डी चेष्टाहीन खड़ा हुआ दिखाई दिया ॥११॥

कृपेणाच्छादितं दृष्ट्वा नृपोत्तम शिखण्डिनम्।
प्रत्युद्ययौ कृपं तूर्णं धृष्टद्युम्नो महारथः ॥१२॥

हे नृपोत्तम! शिखण्डी को कृपाचार्य द्वारा वाणों से आच्छादित देख कर महारथी धृष्टद्युम्न ने बड़े वेग से कृपाचार्य पर आक्रमण किया ॥१२॥

धृष्टद्युम्नं ततो यान्तं शारद्वतरथं प्रति।
प्रतिजग्राह वेगेन कृतवर्मा महारथः ॥१३॥

सेनापति धृष्टद्युम्न को कृपाचार्य के रथ की ओर आते देख महारथी कृतवर्मा ने बड़े वेग से उसका मुक़ाबिला किया ॥१३॥

युधिष्ठिरमथायान्तं शारद्वतरथं प्रति।
सपुत्रं सहसैन्यं च द्रोणपुत्रो न्यवारयत् ॥१४॥

शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य के रथकी ओर राजा युधिष्ठिर को आते देख कर अश्वत्थामा ने उनके पुत्र और सेना सहित उनको वहीं रोक दिया ॥१४॥

नकुलं सहदेवं च त्वरमाणौ महारथौ।
प्रतिजग्राह ते पुत्रः शरवर्षेण वारयन् ॥१५॥

महारथी नकुल और सहदेव, बड़ी शीघ्रता से आगे बढ़ रहे थे, परन्तु उनको तुम्हारे पुत्र द्रोणाचार्यने बाणों की झड़ी लगाकर रोक दिया ॥१५॥

भीमसेनं करूषांश्च केकयान्सह सृञ्जयैः ।
कर्णो वैकर्त्तनो युद्धे वारयामास भारत ॥१६॥

हे भारत ! भीमसेन, करूष, केकय और सृञ्जय वीरों को सूर्य-पुत्र कर्ण ने युद्ध में रोक दिया ॥१६॥

शिखण्डिनस्ततो बाणान्कृपः शारद्वतो युधि ।
प्राहिणोत्त्वरया युक्तो दिधक्षुरिव मारिष ॥१७॥

हे महानुभाव ! अब शरद्वान्-पुत्र कृपाचार्य ने शिखण्डी के भस्म करने के लिये उसपर बाणों की बड़े वेग से झड़ी लगा दी ॥१७॥

ताञ्छरान्प्रेपितांस्तेन समन्तात्स्वर्णभूपितान् ।
चिच्छेद खड्गमाविध्य भ्रामयंश्च पुनः पुनः ॥१८॥

हे राजन् ! कृप द्वारा सब ओर से फेंके हुए सुवर्ण भूषित बाणों को अपनी तलवार से बार २ घुमाकर शिखण्डी ने काट डाला ॥१८॥

शतचन्द्रं च तच्चर्म गौतमस्तस्य भारत ।
व्यधमत्सायकैस्तूर्णं तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥१९॥

हे भारत ! अब गौतम गोत्रोत्पन्न कृपाचार्य ने शिखण्डी शत-चन्द्रधारी ढाल को अपने तीक्ष्ण बाणों से बड़ी शीघ्रता के साथ

काट गिराया जिस को देखकर सारे मनुष्य वाह ! वाह ! की ध्वनि करने लगे ॥१६॥

स विचर्मा महाराज खड्गपाणिरुपाद्रवत् ।

कृपस्य वशमापन्नो मृत्योरास्यमिवातुरः ॥२०॥

हे महाराज ! अब शिखण्डी की ढ़ाल कट चुकी-तो वह केवल खड्ग लेकर कृपाचार्य पर झपटा। इस समय शिखण्डी बड़ा आतुर होकर मृत्यु के मुख के समान भीषण कृपाचार्य के चंगुल में फंस गया ॥२०॥

शारद्वतशरैर्ग्रस्तं क्लिश्यमानं महाबलः ।

चित्रकेतुसुतो राजन्सुकेतुस्त्वरितो ययौ ॥२१॥

हे राजन् ! शरद्वान पुत्र कृपाचार्य के बाणों से व्याकुल हुए शिखण्डी को देख कर चित्रकेतु, के पुत्र महाबली सुकेतु ने बड़ी शीघ्रता से कृपाचार्य पर आक्रमण किया ॥२१॥

विकिरन्ब्राह्मणं युद्धे बहुभिर्निशितैः शरैः ।

अभ्यापतदमेयात्मा गौतमस्य रथं प्रति ॥२२॥

यह अपरिमित बलशाली राजा सुकेतु, युद्ध में कृपाचार्य पर बहुत से तीक्ष्ण बाणों की वर्षा करता हुआ उसके रथ पर वेग से झपटा ॥२२॥

दृष्ट्वा च युक्तं तं युद्धे ब्राह्मणं चरितव्रतम् ।

अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी राजसत्तम ॥२३॥

हे राजसत्तम ! उत्तम आचरणधारी, द्विज श्रेष्ठ ब्राह्मण को युद्ध में आसक्त देखकर बड़ी शीघ्रता से शिखण्डी रण से खसक गया ॥२३॥

सुकेतुस्तु ततो राजन्गौतमं नवभिः शरैः ।
विध्वा विव्याध सप्तत्या पुनश्चैनं त्रिभिः शरैः ॥२४॥

हे राजन् ! राजा सुकेतु ने कृपाचार्य को नौ बाणों से बींधकर सत्तर और फिर तीन बाणों से आहत किया ॥२४॥

अथास्य सशरं चापं पुनश्चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च शरेणास्य भृशं मर्मस्वताडयत् ॥२५॥

हे महाभाग ! इसके अनन्तर बाण सहित इसके धनुष को काट डाला और एक बाण मार कर इसके सारथि के मर्मों में प्रहार किया ॥२५॥

गौतमस्तु ततः क्रुद्धो धनुर्गृह्य नवं दृढम् ।
सुकेतुं त्रिंशता बाणैः सर्वमर्मस्वताडयत् ॥२६॥

अब कृपाचार्य अत्यन्त कुपित हो गया उसने नवीन और दृढ़ धनुष उठाया और उससे तीस बाण सुकेतु के मर्म स्थानों में मार कर उसे आहत कर दिया ॥२६॥

स विह्वलितसर्वाङ्गः प्रचचाल रथोत्तमे ।
भूमिकम्पे यथा वृक्षश्चचाल कम्पितो भृशम् ॥२७॥

कृपाचार्य के बाणों से इसका सारा शरीर व्याकुल हो गया। वह अपने रथ में इस तरह कांप उठा-जैसे भूमि के कांपने पर अत्यन्त कम्पित होकर वृक्ष हिलने लगता है ॥२७॥

चलतस्तस्य कायात्तु शिरो ज्वलितकुण्डलम् ।
सोष्णीषं सशिरस्त्राणं क्षुरप्रेण त्वपातयत् ॥२८॥

कांपती हुई राजा सुकेतु की देह से कृपाचार्य ने कुण्डलों से जाज्वल्यमान, पगड़ी और शिरस्त्राण सहित उसके मस्तकको छुरेके सदृश बाण से काट कर भूमि में गिरा दिया ॥२८॥

तच्छिरः प्रापतद्भूमौ श्येनाहृतमिवामिषम् ।
ततोऽस्य कायो वसुधां पश्चात्प्रापतदच्युत ॥२९॥

हे अच्युत ! राजा सुकेतु का मस्तक बाज़ पक्षी से उठाए हुए मांस पिण्ड की भांति आकाश से भूमि में गिर पड़ा और इस के पीछे इसका शरीर भी पृथिवी में गिर गया ॥२९॥

तस्मिन्हते महाराज स्तास्तस्य पुरोगमाः ।
गौतमं समरे त्यक्त्वा दुद्रुवुस्ते दिशो दश ॥३०॥

हे महाराज ! इसके मार लेने पर इसके साथी व्याकुल हो गये और कृपाचार्य को रण में ही छोड़ कर भाग निकले ॥३०॥

धृष्टद्युम्नं तु समरे संनिवार्य महारथः ।
कृतवर्माब्रवीद्धृष्टस्तिष्ठ तिष्ठेति भारत ॥३१॥

हे भारत ! अब महारथी कृतवर्मा ने रण में धृष्टद्युम्न को रोक कर उत्साह के साथ कहा—तुम जरा युद्ध में ठहरे रहो ॥२१॥

तदभूत्तुमुलं युद्धं वृष्णिपार्षतयो रणे ।
आमिषार्थे यथा युद्धं श्येनयोः क्रुद्धयोर्नृप ॥२२॥

हे नृप ! इस समय मांस लोलुप, क्रोधातुर हो श्येन (बाज) पक्षियों का जैसा मांस के निमित्त युद्ध होता है, वैसा ही घोर युद्ध वृष्णि वंश श्रेष्ठ, कृतवर्मा और पर्षत वंश श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न में होने लगा ॥२२॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे हार्दिक्यं नवभिः शरैः ।
आजघानोरसि क्रुद्धः पीडयन्हृदिकात्मजम् ॥२३॥

अब धृष्टद्युम्न ने रण में अपने नौ बाणों से हृदिक पुत्र कृतवर्मा के हृदय में बड़े क्रोध के साथ प्रहार किया ॥२३॥

कृतवर्मा तु समरे पार्षतेन दृढाहतः ।
पार्षतं सरथं साश्वं छादयामास सायकैः ॥२४॥

जब कृतवर्मा को पर्षत वँशोद्भव, धृष्टद्युम्न ने बहुत घायल कर दिया, तो उसने भी अपने बाणों से रथ और अश्व सहित धृष्टद्युम्न को आच्छादित कर दिया ॥२४॥

सरथश्छादितो राजन्धृष्टद्युम्नो न दृश्यते ।
मेघैरिव परिच्छन्नो भास्करो जलधारिभिः ॥२५॥

हे राजन्! रथ के सहित बाणों से आच्छादित हुए धृष्टद्युम्न इस तरह दिखाई न पड़े-जैसे-जल से परिपूर्ण, मेघों से सूर्य आच्छादित होकर दिखाई नहीं देता है ॥२५॥

विधूय तं बाणगणं शरैः कनकभूषणैः ।
व्यरोचत रणे राजन्धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ॥२६॥

हे राजन्! यद्यपि धृष्टद्युम्न के शरीर में बाणों के बहुत से व्रण हो चुके हैं, तो भी वह सुवर्ण विभूषित, बाणों से उसके बाण समूह को नष्ट करके रण में देदीप्यमान ही दिखाई दे रहा था ॥२६॥

ततस्तु पार्षतः क्रुद्धः शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य व्यसृजत्पृतनापतिः ॥२७॥

अब सेनापति धृष्टद्युम्न बड़े क्रुद्ध हो गये और वे कृतवर्मा को लक्ष्य करके दारुण बाण वर्षा करने लगे ॥२७॥

तामापतन्तीं सहसा शस्त्रवृष्टिं सुदारुणाम् ।
शरैरनेकसाहस्रैर्हार्दिक्योऽवारयद्युधि ॥२८॥

इस प्रकार धृष्टद्युम्न की घोर बाण वर्षा को देखकर हृदिक-पुत्र कृतवर्मा ने भी इस युद्ध में कई हजार बाण छोड़कर उसको वहीं काट गिराया ॥२८॥

दृष्ट्वा तु वारितां युद्धे शस्त्रवृष्टिं दुरासदाम् ।
कृतवर्माणमासाद्य वारयामास पार्षतः ॥२९॥

जब पर्षत वंश श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न ने अपनी दुरासद बाण वर्षा को रुकी हुई देखा तो वह भी कृतवर्मा की बाण वर्षा को रोकने की चेष्टा करने लगा ॥३९॥

सारथिं चास्य तरसा प्राहिणोद्यमसादनम् ।
भल्लेन शितधारेण स हतः प्रापतद्रथात् ॥४०॥

धृष्टद्युम्न ने अपने वेग से सारथि पर ऐसा प्रहार किया जिस से यमराज के घर पहुँचा। इस तीक्ष्ण धार वाले बाण से मरकर सारथि, रथ से नीचे रण भूमि में गिरगया ॥४०॥

धृष्टद्युम्नस्तु वलवाञ्जित्वा शत्रुं महाबलम् ।
कौरवान्समरे तूर्णं वारयामास सायकैः ॥४१॥

पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न अत्यन्त वलवान् महाशक्तिशाली शत्रु भूत कृतवर्मा को जीतकर रण में शीघ्रता के साथ अन्य कौरव वीरों को रोकने लगा ॥४१॥

ततस्ते तावका योधा धृष्टद्युम्नमुपाद्रवन् ।
सिंहनादरवं कृत्वा ततो युद्धमवर्त्तत ॥४२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे चतुष्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

हे राजन्! अब तुम्हारे पक्ष के महावीर, बड़ा भारी सिंहनाद करते हुए धृष्टद्युम्न पर झपटे, जिस से महाघोर युद्ध प्रवृत्त हुआ ॥४२॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में धृष्टद्युम्न और कृतवर्मा के युद्ध के वर्णन का चौवनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



पचपनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

द्रौणिर्युधिष्ठिरं दृष्ट्वा शैनेयेनाभिरक्षितम् ।
द्रौपदेयैस्तथा शूरैरभ्यवर्त्तत धृष्टवत् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ ! जब द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने शिनि पौत्र सात्यकि और द्रौपदी के शूरवीर पांचों पुत्रों से राजा युधिष्ठिर को सुरक्षित देखा तो वह बड़े उद्धत पुरुष की भांति उन पर झपटा ॥१॥

किरन्निषुगणान्घोरान्स्वर्णपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।
दर्शयन्विविधान्मार्गाञ्शिक्षाश्च लघुहस्तवत् ॥२॥
ततः खं पूरयामास शरैर्दिव्यास्त्रमन्त्रितैः ।

इस समय अश्वत्थामा ने सुवर्ण मूलधारी, शिलापर तीक्ष्ण किये हुए अनेक घोर शरोंकी झड़ी लगादी यह बाण चलाने की स्फूर्ति और शिक्षा तथा अनेक मार्गों को दिखाता हुआ अपने दिव्य अस्त्रों से फैंके हुए बाणों से आकाश को भरने लगा ॥२॥

युधिष्ठिरं च समरे परिवार्य महास्त्रवित् ॥३॥
द्रौणायनिशरच्छन्नं न प्राज्ञायत किञ्चन ।
बाणभूतमभूत्सर्वमायोधनशिरो महत् ॥४॥

अस्त्र विद्या में कुशल इस वीर ने राजा युधिष्ठिर को घेर लिया। द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के बाणों से व्याप्त, सारा आकाश व्याप्त हो गया। उस समय कुछ भी नहीं सूझ पड़ता था। यह सारा युद्ध स्थल इस समय केवल बाणमय ही दिखाई देता था ॥३-४॥

बाणजालं दिवि च्छन्नं स्वर्णजालविभूषितम् ।
शुशुभे भरतश्रेष्ठ वितानमिव धिष्ठितम् ॥५॥

हे भरत श्रेष्ठ! स्वर्ण जाल से विभूषित आकाश में छाया हुआ बाण-जाल वितान (शामियाने) की तरह छाया हुआ सा-प्रतीत हो रहा था ॥५॥

तेन च्छन्नं नभो राजन्बाणजालेन भास्वता ।
अभ्रच्छायेव सञ्जज्ञे बाणरुद्धे नभस्तले ॥६॥

हे राजन्! सुवर्ण से देदीप्यमान बाण-जाल से, आकाश आच्छन्न हो गया। इस समय बाणों से भरे हुए आकाश में बाण-जाल की छाया ऐसी प्रतीत होती थी, जैसे कोई मेघ छा रहे हों ॥६॥

तत्राश्चर्यमपश्याम बाणभूते तथाविधे।

न स्म सम्पतते भूतं किञ्चिदेवान्तरिक्षगम् ॥७॥

जब वह सारा युद्ध स्थल बाणमय हो गया-तो वहां यह आश्चर्य देखा गया कि कोई भी आकाश-चारी पक्षी आदि प्राणी वहां से उड़कर नहीं निकल सकता था ॥७॥

सात्यकिर्यतमानस्तु धर्मराजश्च पाण्डवः।

तथेतराणि सैन्यानि न स्म चक्रुः पराक्रमम् ॥८॥

इस समय महारथी सात्यकि और पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर तथा अन्य सैनिक वीर, बड़ा प्रयत्न कर रहे हैं, परन्तु वे कुछ भी अपना पराक्रम नहीं दिखा पाते हैं ॥८॥

लाघवं द्रोणपुत्रस्य दृष्ट्वा तत्र महारथाः।

व्यस्मयन्त महाराज न चैनं प्रत्युदीक्षितुम् ॥९॥

शेकुस्ते सर्वराजानस्तपन्तमिव भास्करम्।

हे महाराज! इस युद्ध स्थल में बड़े २ महारथी राजा द्रोणपुत्र अश्वत्थामा का लाघव (फुर्ती) देख कर बड़े ही चकित होते थे, और इसको देदीप्यमान सूर्य की भांति देखने में भी समर्थ नहीं हो पाते थे ॥९॥

वध्यमाने ततः सैन्ये द्रौपदेया महारथाः ॥१०॥

सात्यकिर्धर्मराजश्च पञ्चालाश्चापि सङ्गताः।

त्यक्त्वा मृत्युभयं घोरं द्रौणायनिमुपाद्रवन् ॥११॥

जब अश्वत्थामा ने पाण्डव सेना को मार २ कर बिछा दिया तो महारथी द्रौपदी-पुत्र, सात्यकि, धर्मराज और इकट्ठे हुए पाञ्चाल वीर, मृत्यु का भय छोड़ कर भयानक पराक्रम करने वाले द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर वेग से झपटा ॥१०-११॥

सात्यकिः सप्तविंशत्या द्रौणिं विध्वा शिलीमुखैः ।
पुनर्विव्याध नाराचैः सप्तभिः स्वर्णभूषितैः ॥१२॥
युधिष्ठिरस्त्रिसप्तत्या प्रतिविन्ध्यश्च सप्तभिः ।
श्रुतकर्मा त्रिभिर्बाणैः श्रुतकीर्तिश्च सप्तभिः ॥१३॥
सुतसोमस्तु नवभिः शतानीकश्च सप्तभिः ।
अन्ये च बहवः शूरा विव्यधुस्तं समन्ततः ॥१४॥

अब सात्यकि ने अपने सत्ताईस शिली-मुख बाण द्रोण-पुत्र पर चलाए और फिर सुवर्ण भूषित सात नाराच बाण छोड़ कर उसे अत्यन्त आहत कर दिया। राजा युधिष्ठिर ने तेहत्तर, धर्म-राज-पुत्र प्रतिविन्ध्य ने सात, भीम-पुत्र श्रुतकर्मा ने तीन, अर्जुन पुत्र श्रुतकीर्ति ने सात- सहदेव-पुत्र सुत सोम ने नौ और नकुल पुत्र शतानीक ने सात तथा अन्य बहुत से वीरों ने सब ओर से बाण छोड़कर अश्वत्थामा को क्षत विक्षत कर दिया ॥१२-१४॥

स तु क्रुद्धस्ततो राजन्नाशीविष इव श्वसन् ।
सात्यकिं पञ्चविंशत्या प्राविध्यत शिलीमुखैः ॥१५॥
श्रुतकीर्तिं च नवभिः सुतसोमं च पञ्चभिः ।
अष्टभिः श्रुतकर्माणं प्रतिविन्ध्यं त्रिभिः शरैः ॥१६॥

शतानीकं च नवभिर्धर्मपुत्रं च पञ्चभिः ।

तथेतरांस्ततः शूरान्द्वाभ्यां द्वाभ्यामताडयत् ॥१७॥

श्रुतकीर्तेस्तथा चापं चिच्छेद निशितैः शरैः ।

हे राजन्! अब अश्वत्थामा भी आशीविष सर्प की भांति क्रोध से जल उठा। उसने अपने पच्चीस शिली-मुख बाणों से सात्यकि, नौ से अर्जुन पुत्र श्रुतकीर्ति, पांच से सहदेव-पुत्र सुत सोम, आठ से भीमसेन पुत्र श्रुतकर्मा, तीन से धर्मराज-पुत्र प्रतिविन्ध्य, नौ से नकुल पुत्र शतानीक, पांच से धर्मराज तथा दो २ बाणों से अन्य शूरवीरों को वींध डाला-एवं अर्जुन पुत्र श्रुतकीर्ति का धनुष भी अपने तीखे बाणों से काट गिराया॥१५-१७॥

अथान्यद्धनुरादाय श्रुतकीर्त्तिर्महारथः ॥१८॥

द्रौणायनिं त्रिभिर्विद्ध्वा विव्याधान्यैः शितैः शरैः ।

अब महारथी श्रुतकीर्ति ने दूसरा धनुष उठाया और उसपर तीन तीखे बाण चढ़ाकर अश्वत्थामा को छेद दिया तथा फिर तीक्ष्ण बाणों की झड़ी सी लगाकर भेदन करना आरम्भ किया ॥१८॥

ततो द्रौणिर्महाराज शरवर्षेण मारिष ॥१९॥

छादयामास तत्सैन्यं समन्ताद्भरतर्षभ ।

हे सर्व गुण सम्पन्न! भरत वंश श्रेष्ठ! महाराज! अब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने भी बाण-वर्षा करके सब ओर से पाण्डव सेना को आच्छादित कर दिया ॥१९॥

ततः पुनरमेयात्मा धर्मराजस्य कार्मुकम् ॥२०॥
द्रौणिश्चिच्छेद विहसन्विव्याध च शरैस्त्रिभिः ।

हे भारत ! अपरिमित बल शाली, अश्वत्थामा ने धर्मराज के धनुष को काट कर हंसते २ फिर उसे तीन बाणों से वींध डाला ॥२०॥

ततो धर्मसुतो राजन्प्रगृह्यान्यन्महद्धनुः ॥२१॥
द्रौणिं विव्याध सप्तत्या बाह्वोरुरसि चार्पयत् ।

हे राजन् ! अब धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर ने दूसरा विशाल धनुष उठाया और उसपर बाण चढ़ाकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के बाहु और वक्षस्थल में सत्तर बाण मारे ॥२१॥

सात्यकिस्तु ततः क्रुद्धो द्रौणेः प्रहरतो रणे ॥२२॥
अर्धचन्द्रेण तीक्ष्णेन धनुश्छित्वानदद् भृशम् ।

अब इस प्रकार द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा प्रहार कर रहे थे-तो इस दृश्य को देखकर महारथी सात्यकि झल्ला उठा और उसने एक अर्ध चन्द्र बाण से उसके धनुष को काटकर बड़ी गर्जना की ॥२२॥

छिन्नधन्वा ततो द्रौणिः शक्त्या शक्तिमतां वरः ॥२३॥
सारथिं पातयामास शैनेयस्य रथाद् द्रुतम् ।

शक्तिशाली वीरों में श्रेष्ठ ! द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा जब धनुष से रहित हो गया तो उसने शक्ति नामक शस्त्र का प्रयोग किया और उसके द्वारा, सात्यकि के सारथि को बड़ी शीघ्रता के साथ रथ से नीचे गिरा दिया ॥२३॥

अथान्यद्धनुरादाय द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥२४॥
शैनेयं शरवर्षेण च्छादयामास भारत ।

हे भारत ! अब प्रतापी द्रोण-पुत्र ने दूसरा धनुष उठाया और बाणों की झड़ी लगाकर शिनी-पौत्र सात्यकि को अत्यन्त आच्छादित कर दिया ॥२४॥

तस्याश्वाः प्रद्रुताः सङ्ख्ये पतिते रथसारथौ ॥२५॥
तत्र तत्रैव धावन्तः समदृश्यन्त भारत ।

हे भारत ! जब सात्यकि का सारथि मारा गया और वह रण भूमि में गिर गया-तो उसके अश्व भाग निकले-और वे रणाङ्गण में इधर उधर दौड़ते दिखाई दिये ॥२५॥

युधिष्ठिरपुरोगास्तु द्रौणिं शस्त्रभृतां वरम् ॥२६॥
अभ्यवर्षन्त वेगेन विसृजन्तः शिताञ्छरान् ।

अब राजा युधिष्ठिर आदि पाण्डव वीर शस्त्र धारियों में श्रेष्ठ, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा पर वेग से तीक्ष्ण बाणों की झड़ी लगाने लगे ॥२६॥

आगच्छमानांस्तान्दृष्ट्वा क्रुद्धरूपान्परन्तपः ॥२७॥
प्रहसन्प्रतिजग्राह द्रोणपुत्रो महारणे ।

इन क्रोधातुर पाण्डव वीरों को आक्रमण करते देख कर शत्रुतापी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने इस महारण में हंसते २ इनका बाणों से स्वागत किया ॥२७॥

ततः शरशतज्वालः सेनाकक्षं महारथः ॥२८॥
द्रौणिर्ददाह समरं कक्षमग्निर्यथा वने ।

अब महारथी अश्वत्थामा ने अपने सैंकड़ों बाणों रूपी ज्वाला से पाण्डव सेना रूपी तृण समूह को इस रण भूमि में इस तरह भस्म कर डाला, जैसे अग्नि शुष्क तृण समूह को वन में भस्म करता है ॥२८॥

तद्बलं पाण्डुपुत्रस्य द्रोणपुत्रप्रतापितम् ॥२९॥
चुक्षुभे भरतश्रेष्ठ तिमिनेव नदीमुखम् ।

हे भरत श्रेष्ठ ! पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर की सेना, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा द्वारा इतनी व्याकुल हो उठी-जैसे किसी बड़े जल-जंतु से नदी का मुख क्षुभित हो उठता है ॥२९॥

दृष्ट्वा चैव महाराज द्रोणपुत्रपराक्रमम् ॥३०॥
निहतान्मेनिरे सर्वान्पाण्डून्द्रोणसुतेन वै ।

हे महाराज ! इस समय द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा का पराक्रम देख कर सारे वीरों ने यही समझा-कि आज अश्वत्थामा सारी पाण्डव-सेना का विध्वंस करके रहेगा ॥३०॥

युधिष्ठिरस्तु त्वरितो द्रोणशिष्यो महारथः ॥३१॥
अब्रवीद् द्रोणपुत्राय रोषामर्षसमन्वितः ।

अब द्रोणाचार्य के शिष्य महारथी युधिष्ठिर ने क्रोध और आवेश में भरकर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा से यह वचन कहा ॥३१॥

नैव नाम तव प्रीतिर्नैव नाम कृतज्ञता ॥३२॥
यतस्त्वं पुरुषव्याघ्र मामेवाद्य जिघांससि ।

हे पुरुष व्याघ्र ! अश्वत्थामन् ! न तो तुम पुराने प्रेम को याद रखते हो और न तुम में कुछ कृतज्ञता ही है। इसी से तो तुम आज मुझे मार देने की इच्छा कर रहे हो ॥३२॥

ब्राह्मणेन तपः कार्यं दानमध्ययनं तथा ॥३३॥
क्षत्रियेण धनुर्नाम्यं स भवान्ब्राह्मणब्रुवः ।

ब्राह्मण को तो तप, दान और वेदाध्ययन करना चाहिए और क्षत्रिय का काम धनुष झुकाना है। अब तुम धनुष चलाने लगे, इस से तुम्हें कर्म पतित ब्राह्मण कहना चाहिए ॥३३॥

मिषतस्ते महाबाहो युधि जेष्यामि कौरवान् ॥३४॥
कुरुष्व समरे कर्म ब्रह्मबन्धुरसि ध्रुवम् ।

हे महाबाहो ! तुम कितना ही करो तुम्हारे देखते २ युद्ध में अभी कौरवों को जीत लेते हैं। तुम तो अवश्य नीच ब्राह्मण हो इससे जो तुम से रण में हो सके-वह करो ॥३४॥

एवमुक्तो महाराज द्रोणपुत्रः स्मयन्निव ॥३५॥
युक्तं तत्त्वं च सञ्चिन्त्य नोत्तरं किञ्चिदब्रवीत् ।

हे महाराज ! जब धर्मराज ने इतना कहा—तो अश्वत्थामा कुछ मुसकुराये और इसका समुचित उत्तर मनमें ही सोचकर धर्मराज को कुछ भी उत्तर नहीं दिया ॥३५॥

अनुक्त्वा च ततः किञ्चिच्छरवर्षेण पाण्डवम् ॥३६॥
छादयामास समरे क्रुद्धोऽन्तक इव प्रजाः ।

हे राजन् ! अश्वत्थामा ने धर्मराज से कुछ नहीं कहा-वह तो प्रजा पर कुपित हुए काल की तरह रणमें बाण वर्षा करके धर्मराज को आच्छादित करने लगा ॥३६॥

स च्छाद्यमानस्तु तदा द्रोणपुत्रेण मारिष ॥३७॥
पार्थोऽपयातः शीघ्रं वै विहाय महतीं चमूम् ।

हे आर्य ! इस प्रकार अश्वत्थामा द्वारा क्षत विक्षत हुए धर्मराज इस विशाल सेना को छोड़कर रण में दूसरी ओर बड़े वेग से खसक गए ॥३७॥

अपयाते ततस्तस्मिन्धर्मपुत्रे युधिष्ठिरे ॥३८॥
द्रोणपुत्रस्ततो राजन्प्रत्यगात्स महामनाः ।

हे राजन् ! जब धर्म पुत्र राजा युधिष्ठिर, चले गए-तो महामनस्वी द्रोण-पुत्र भी वहां से अन्यत्र चले गये ॥३८॥

ततो युधिष्ठिरो राजंस्त्यक्त्वा द्रौणिं महाहवे ।
प्रययौ तावकं सैन्यं युक्तः क्रूराय कर्मणे ३९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि पार्थापयाने पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५५॥

हे राजन्! इस घोर युद्ध में राजा युधिष्ठिर, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को छोड़ कर तुम्हारी सेना के विनाश के लिये बड़े उद्योग के साथ उसमें घुस गये ॥३६॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अश्वत्थामा, सात्यकि और धर्मराज के युद्ध के वर्णन का पचपनवां अध्याय समाप्त हुआ।

छप्पनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

भीमसेनं च पाञ्चाल्यं चेदिकेकयसंवृतम्।
वैकर्त्तनः स्वयं रुध्वा वारयामास सायकैः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! चेदि और केकय देश के वीरों की सेना के सहित आगे बढ़ते हुए, भीमसेन और पञ्चाल कुमार धृष्टद्युम्न को सूर्य-पुत्र कर्ण ने स्वयं रोक कर अपने बाणों से ढक दिया ॥१॥

ततस्तु चेदिकारूषान्सञ्जयांश्च महारथान्।
कर्णो जघान समरे भीमसेनस्य पश्यतः ॥२॥

भीमसेन यह सब कुछ अपनी आँखों से देख रहे थे, कि कर्ण ने रण में चेदी, करूष देश के वीर और महारथी सृञ्जयों को मार २ कर बिछा दिया ॥२॥

भीमसेनस्ततः कर्णं विहाय रथसत्तमम् ।
प्रययौ कौरवं सैन्यं कक्षमग्निरिव ज्वलन् ॥३॥

अब भीमसेन महारथी कर्ण को छोड़कर कौरवोंकी सेना में घुस गया और वहां तृण राशि को अग्नि की भांति उसे दग्ध करने लगा ॥३॥

सूतपुत्रोऽपि समरे पञ्चालान्केकयांस्तथा ।
सृञ्जयांश्च महेष्वासान्निजघान सहस्रशः ॥४॥

इधर सूत-पुत्र कर्ण ने भी रण में पञ्चाल, केकय और सृञ्जय वीरों को सहस्रों की संख्या में मार गिराया ॥४॥

संशप्तकेषु पार्थश्च कौरवेषु वृकोदरः ।
पञ्चालेषु तथा कर्णः क्षयं चक्रुर्महारथाः ॥५॥

कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने संशप्तक, वृकोदर भीम ने कौरव, और कर्ण ने पञ्चाल वीरों का बड़ा ही विनाश किया, क्योंकि ये तीनों ही बड़े महारथी थे ॥५॥

ते क्षत्रिया दह्यमानास्त्रिभिस्तैः पावकोपमैः ।
जग्मुर्विनाशं समरे राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥६॥

हे राजन् ! तुम्हारी दुर्मन्त्रणा से प्रादुर्भूत हुए इस युद्ध में इन तीनों अर्जुन, भीम और कर्ण रूपी अग्नि ने बहुत से क्षत्रियों को भस्म कर डाला । इस तरह अधिक संख्या में क्षत्रिय वीरों का विनाश हो गया ॥६॥

ततो दुर्योधनः क्रुद्धो नकुलं नवभिः शरैः ।
विव्याध भरतश्रेष्ठ चतुरश्चास्य वाजिनः ॥७॥

हे भरत श्रेष्ठ, अब राजा दुर्योधन ने कुपित होकर नकुल को नौ और उसके चारों अश्वों को चार बाण मार कर आहत कर दिया ॥७॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो जनाधिप ।
क्षुरेण सहदेवस्य ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥८॥

हे जनाधिप ! इसके अनन्तर अपरिमित बलशाली तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने क्षुर के सदृश तीक्ष्ण बाण मारकर पाण्डु-पुत्र सहदेव की सुवर्ण मय ध्वजा को काट गिराया ॥८॥

नकुलस्तु ततः क्रुद्धस्तव पुत्रं च सप्तभिः ।
जघान समरे राजन्सहदेवश्च पञ्चभिः ॥९॥

हे राजन् ! इस समय नकुल और सहदेव, तुम्हारे पुत्र दुर्योधन पर झल्ला उठे-इस में नकुल सात और सहदेव ने पाँच बाण मार कर राजा दुर्योधन को बींध दिया ॥९॥

तावुभौ भरतश्रेष्ठौ ज्येष्ठौ सर्वधनुष्मताम् ।
विव्याधोरसि संक्रुद्धः पञ्चभिः पञ्चभिः शरैः ॥१०॥

ये दोनों भाई नकुल और सहदेव भरतवंश में श्रेष्ठ वीर और धनुष धारियों में सर्व श्रेष्ठ थे । राजा दुर्योधन ने कुपित हो कर इनकी छाती में पाँच २ बाण मारे ॥१०॥

ततोऽपराभ्यां भल्लाभ्यां धनुषी समकृन्तत ।
यमयोः सहसा राजन्विव्याध च त्रिसप्तभिः ॥११॥

हे राजन् ! अब फिर कुरुराज ने दो भल्ल नामक बाण मारे जिन से नकुल और सहदेव के एक दम धनुष काट डाले और इक्कीस बाण मार कर उन्हें क्षत विक्षत कर दिया ॥११॥

तावन्ये धनुषी श्रेष्ठे शक्रचापनिभे शुभे ।
प्रगृह्य रेजतुः शूरौ देवपुत्रसमौ युधि ॥१२॥

हे राजन् ! अब नकुल और सहदेव ने इन्द्र धनुष के समान उज्ज्वल दो अन्य उत्तम धनुप उठाए, जिन से वे रणाङ्गण में देव पुत्र से सुशोभित होने लगे ॥१२॥

ततस्तौ रभसौ युद्धे भ्रातरौ भ्रातरं युधि ।
शरैर्ववृषतुर्घोरैर्महामेघौ यथाचलम् ॥१३॥

ये दोनों भाई नकुल और सहदेव ने युद्ध में बड़ी ही शीघ्रता दिखाने वाले थे । अब इन्होंने पर्वत पर महा मेघ की तरह रण में अपने भ्राता दुर्योधन पर घोर बाणों की झड़ी लगाना आरम्भ किया ॥१३॥

ततः क्रुद्धो महाराज तव पुत्रो महारथः ।
पाण्डुपुत्रौ महेष्वासौ वारयामास पत्रिभिः ॥१४॥

हे महाराज ! इस समय तुम्हारा पुत्र महारथी दुर्योधन बड़े ही क्रोध में भर रहा था । उसने अपने बाणों को छोड़ कर महा धनुर्धर पाण्डु-पुत्र नकुल सहदेव को बड़ा ही घायल किया ॥१४॥

धनुर्मण्डलमेवास्य दृश्यते युधि भारत ।
सायकाश्चैव दृश्यन्ते निश्चरन्तः समन्ततः ॥१५॥
आच्छादयन्दिशः सर्वाः सूर्यस्येवांशवो यथा ।

हे भारत ! रण भूमि में राजा दुर्योधन के धनुप का मण्डल ही दिखाई देता था और जिधर देखो उधर ही आकाश में उस के बाण उड़ते दिखाई दे रहे थे । इस समय इसके बाणों ने सारी दिशाओं को इस तरह व्याप्त कर दिया जैसे-सूर्य की किरणें दिशाओं को व्याप्त कर देती हैं ॥१५॥

बाणभूते ततस्तस्मिन्सञ्छन्ने च नभस्तले ॥१६॥
यमाख्यां ददृशे रूपं कालान्तकयमोपमम् ।

राजा दुर्योधन के लगातार बाणों की झड़ी लगा देने से सारा आकाश भर गया । इस समय कुरुराज का आकार काल, अन्तक और यमराज के सदृश दिखाई देने लगा ॥१६॥

पराक्रमं तु तं दृष्ट्वा तव सूनोर्महारथाः ॥१७॥
मृत्योरुपान्तिकं प्राप्तौ माद्रीपुत्रौ स्म मेनिरे ।

हे राजन् ! इस समय तुम्हारे पुत्र. राजा दुर्योधन के पराक्रम को देख कर सारे महारथी यही समझने लगे कि नकुल और सहदेव मृत्यु के समीप ही पहुँच चुके हैं ॥१७॥

ततः सेनापती राजन्पाण्डवस्य महारथः ॥१८॥
पार्षतः प्रययौ तत्र यत्र राजा सुयोधनः ।

हे राजन्! इसी समय पाण्डवों के सेनापति महारथी धृष्टद्युम्न, वहां पहुँचे, जहां राजा दुर्योधन युद्ध कर रहे थे ॥१८॥

माद्रीपुत्रौ ततः शूरौ व्यतिक्रम्य महारथौ ॥१९॥
धृष्टद्युम्नस्तव सुतं वारयामास सायकैः।

इस धृष्टद्युम्न ने, महारथी माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव को अपने पीछे करके तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को बींधना आरम्भ किया ॥१९॥

तमविध्यदमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥२०॥
पाञ्चाल्यं पञ्चविंशत्या प्रहसन्पुरुषर्षभः।

अपरिमित बल शाली, आवेश में भरे तुम्हारे पुत्र पुरुष प्रवीर राजा दुर्योधन ने भी हंसते २ पाञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न को पचीस बाणों से बींध डाला ॥२०॥

ततः पुनरमेयात्मा तव पुत्रो ह्यमर्षणः ॥२१॥
विद्ध्वा ननाद पाञ्चाल्यं षष्ट्या पञ्चभिरेव च।

हे राजन्! अत्यन्त बलवान्, क्रोध में भरे हुए तुम्हारे पुत्र दुर्योधन ने पैंसठ बाण मार कर बींध दिया और बड़ी गर्जना की।

तथास्य सशरं चापं हस्तावापं च मारिष ॥२२॥
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन राजा चिच्छेद संयुगे।

हे आर्य! इस समय राजा दुर्योधन ने धृष्टद्युम्न का बाण सहित धनुष, और हाथ का कवच, रण में अपने अत्यन्त तीक्ष्ण बाण से काट गिराया ॥२२॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं पाञ्चाल्यः शत्रुकर्शनः ॥२३॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भारसहं नवम् ।

शत्रु विजयी धृष्टद्युम्न ने उस धनुष को फैंक दिया और युद्ध के भार सहने में समर्थ दूसरे नवीन धनुष को वेग के साथ उठाया ॥२३॥

प्रज्वलन्निव वेगेन संरम्भाद्रुधिरेक्षणः ॥२४॥
अशोभत महेष्वासो धृष्टद्युम्नः कृतव्रणः ।

क्रोध के वेग से धृष्टद्युम्न जल उठा और उसकी आंखें रुधिर की भांति लाल होगईं । महाधनुर्धर, धृष्टद्युम्न के हाथ में धनुष का चिन्ह हो रहा है, जिससे वह बड़ा ही सुशोभित हो रहा है ॥२४॥

स पञ्चदश नाराचाञ्श्वसतः पन्नगानिव ॥२५॥
जिघांसुर्भरतश्रेष्ठं धृष्टद्युम्नो व्यपासृजत् ।

महारथी धृष्टद्युम्न, भरतवंश श्रेष्ठ, राजा दुर्योधन को मार ही देना चाहते थे, इसलिए उन्होंने श्वास लेते हुए सर्पों के सदृश पन्द्रह बाण छोड़े ॥२५॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा राज्ञः शिलाशिताः ॥२६॥
विविशुर्वसुधां वेगात्कङ्कबर्हिणवाससः ।

शिलापर तीक्ष्ण किये हुए, कङ्क, मयूर आदि पक्षियों के पंख धारी धृष्टद्युम्न के बाण राजा दुर्योधन के सुवर्ण के कवच को बींध कर वेग से भूमि में घुस गए ॥२६॥

सोऽतिविद्धो महाराज पुत्रस्तेऽतिव्यराजत ॥२७॥
वसन्तकाले सुमहान्प्रफुल्ल इव किंशुकः ।

हे महाराज ! इन बाणों से अत्यन्त विद्ध होकर तुम्हारा पुत्र दुर्योधन ऐसे प्रतीत होने लगा—जैसे वसन्तकाल में विशाल खिला हुआ किंशुक (ढाक) वृक्ष सुशोभित होता है ॥२७॥

स च्छिन्नवर्मा नाराचप्रहारैर्जर्जरीकृतः ॥२८॥
धृष्टद्युम्नस्य भल्लेन क्रुद्धश्चिच्छेद कार्मुकम् ।

राजा दुर्योधन का कवच छिन्न भिन्न हो चुका था और बाणों से बहुत ही जर्जर होगया था। इसने क्रोध में भर कर अपने बाण से धृष्टद्युम्न के धनुष को काट गिराया ॥२८॥

अथैनं छिन्नधन्वानं त्वरमाणो महीपतिः ॥२९॥
सायकैर्दशभी राजन्भ्रुवोर्मध्ये समार्पयत् ।

हे राजन् ! जब धृष्टद्युम्न के धनुष के टुकड़े होगए-तो राजा दुर्योधन ने बड़ी शीघ्रता से दश बाण धृष्टद्युम्न की भ्रुवों के मध्य में मारे ॥२९॥

तस्य तेऽशोभयन्वक्त्रं कर्मारपरिमार्जिताः ॥३०॥
प्रफुल्लं पङ्कजं यद्वद् भ्रमरा मधुलिप्सवः ।

कारीगर द्वारा उज्ज्वल बनाये हुए उन बाणों से धृष्टद्युम्न का मुख इस तरह सुशोभित होने लगा—जैसे—मधु लोभी भ्रमर खिले हुए कमल से चिपट रहे हों ॥३०॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महामनाः ॥३१॥
अन्यदादत्त वेगेन धनुर्भल्लांश्च षोडश ।

महामनस्वी धृष्टद्युम्न ने उस कटे हुए धनुष को फेंक दिया और उसने बड़े वेग से अन्य धनुष और सोलह बाणों को उठाया ॥३१॥

ततो दुर्योधनस्याश्वान्हत्वा सूतं च पञ्चभिः ।
धनुश्चिच्छेद भल्लेन जातरूपपरिष्कृतम् ॥३२॥

अब धृष्टद्युम्न ने पांच बाण छोड़कर राजा दुर्योधन के चार अश्व और पांचवें सारथि को मार गिराया और एक भल्ल नामक बाण-से सुवर्ण से उज्ज्वल कुरुराज के धनुष को भी काट दिया ॥३२॥

रथं सोपस्करं छत्रं शक्तिं खड्गं गदां ध्वजम् ॥३३॥
भल्लैश्चिच्छेद दशभिः पुत्रस्य तव पार्षतः ।

हे राजन् इसी तरह, धृष्टद्युम्न ने तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के भाइयों के साथ रथ, छत्र, शक्ति, खड्ग, गदा और ध्वजा को अपने दशभल्ल संज्ञक बाणों से छेद डाला ॥३३॥

तपनीयाङ्गदं चित्रं नागं मणिमयं शुभम् ॥३४॥
ध्वजं कुरुपतेश्छिन्नं ददृशुः सर्वपार्थिवाः ।

कुरुपति राजा दुर्योधन के सुवर्ण रचित अङ्गद और मणि जटित हाथी से युक्त सुन्दर ध्वजा को धृष्टद्युम्न ने काट डाला जिसे सारे राजा, खड़े २ देखते रहे ॥३४॥

दुर्योधनं तु विरथं छिन्नवर्मायुधं रणे ॥३५॥
भ्रातरः पर्यरक्षन्त सोदरा भरतर्षभ ।

हे भरतर्षभ ! जब राजा दुर्योधन रथहीन हो गए-उनके कवच और शस्त्र कट गए-तो उनके अनेक सहोदर भ्राताओं ने वहां आकर उनकी रक्षा की ॥३५॥

तमारोप्य रथे राजन्दण्डधारो जनाधिपः ॥३६॥
अपाहरदसम्भ्रान्तो धृष्टद्युम्नस्य पश्यतः ।

हे राजन ! अब राजा दण्डधार ने आकर राजा दुर्योधन को अपने रथ में बैठा लिया, और विना किसी घबराहट के धृष्टद्युम्न के देखते २ उसे वहाँ से ले गया ॥३६॥

कर्णस्तु सात्यकिं जित्वा राजगृद्धी महाबलः ॥३७॥
द्रोणहन्तारमुग्रेषुं ससाराभिमुखो रणे ।

इधर राज्य के अभिलाषी महारथी कर्ण ने सात्यकि को जीत कर उग्रबाणधारी द्रोण-घातक, धृष्टद्युम्नको ओर गमन किया ॥३७॥

तं पृष्ठतोऽभ्ययात्तूर्णं शैनेयो वितुदञ्शरैः ॥३८॥
वारणं जघनोपान्ते विषाणाभ्यामिव द्विपः।

कर्ण के पीछे से शिनी-पौत्र सात्यकि भी बाण वर्षा करता हुआ इस तरह लपका चला आया, जैसे एक हाथी के पुट्ठों पर अपने दांतोंका आघात करता हुआ दूसरा हाथी चला आता है ॥३८॥

स भारत महानासीद्योधानां सुमहात्मनाम् ॥३९॥
कर्णपार्षतयोर्मध्ये त्वदीयानां महारण:।

हे भारत! जब कौरव सेनापति कर्ण और पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न में रण छिड़ा-तो उस समय तुम्हारे योद्धा और पाण्डव योद्धाओं में बड़ा भीषण संग्राम छिड़ा ॥३९॥

न पाण्डवानां नास्माकं योधः कश्चित्पराङ्मुखः ॥४०
प्रत्यदृश्यत्ततः कर्णः पाञ्चालांस्त्वरितो ययौ ।

इस समय न तो कोई हमारा ही योद्धा और न पाण्डव वीर ही रण से मुख मोड़ता दिखाई देता था। अब कर्ण ने बड़े वेग से पञ्चालों पर आक्रमण किया ॥४०॥

तस्मिन्क्षणे नरश्रेष्ठ गजवाजिजनक्षयः ॥४१॥
प्रादुरासीदुभयतो राजन्मध्यगतेऽहनि ।

हे नर श्रेष्ठ! अब हाथी, अश्व और पैदल वीरों का दोनों ओर की सेना में महान् विनाश हो गया। इस समय दोपहर दिन चढ़ा होगा ॥४१॥

पाञ्चालास्तु महाराज त्वरिता विजिगीषवः ॥४२॥
ते सर्वेऽभ्यद्रवन्कर्णं पतत्रिण इव द्रुमम् ।

हे महाराज! इसके अनन्तर विजय के अभिलाषी सारे पञ्चाल वीर, बड़े वेग से कर्ण पर इस तरह झपटे-जैसे, पक्षी वृक्ष की ओर दौड़ रहे हों ॥४२॥

तांस्तथाधिरथिः क्रुद्धो यतमानान्मनस्विनः ॥४३॥
विचिन्वन्निव बाणौघैः समासादयदग्रगान् ।
व्याघ्रकेतुं सुशर्माणं चित्रं चोग्रायुधं जयम् ॥४४॥
शुक्लं च रोचमानं च सिंहसेनं च दुर्जयम् ।

अधिरथ-पुत्र कर्ण ने जब इन मनस्वी वीरों को बड़ा प्रयत्न करते देखा-तो कर्ण क्रोध से जल उठा। उसने अपने बाण समूह को छोड़कर आगे चलने वाले व्याघ्रकेतु, सुशर्मा, चित्र, उग्रायुध जय, शुक्ल, रोचमान, सिंहसेन और दुर्जय आदि वीरों को चुन २ कर मारना आरम्भ किया ॥४३-४४॥

ते वीरा रथमार्गेण परिवव्रुर्नरोत्तमम् ॥४५॥
सृजन्तं सायकान्क्रुद्धं कर्णमाहवशोभिनम् ।

इन वीरों ने अपने २ रथों को लेकर बाण वर्षा करते हुए क्रोधातुर, रण शोभी नरोत्तम कर्ण को घेर लिया था ॥४५॥

युध्यमानांस्तु तान्शूरान्मनुजेन्द्र प्रतापवान् ॥४६॥
अष्टाभिरष्टौ राधेयोऽभ्यर्दयन्निशितैः शरैः ।

हे मनुजेन्द्र ! दूर से युद्ध में तत्पर इन आठ राजाओं को महाप्रतापी राधा-पुत्र कर्ण ने, अपने आठ तीक्ष्ण बाण छोड़ कर व्याकुल कर दिया ॥४६॥

अथापरान्महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥४७॥
जघान बहुसाहस्रान्योधान्युद्धविशारदान् ।

हे महाराज ! इन के सिवा, प्रतापवान सूत-पुत्र कर्ण ने अन्य भी कई सहस्रों युद्ध विशारद पाण्डव योद्धाओं को मार गिराया ॥४७॥

जिष्णुं च जिष्णुकर्माणं देवापिं भद्रमेव च ॥४८॥
दण्डं च राजन्समरे चित्रं चित्रायुधं हरिम् ।
सिंहकेतुं रोचमानं शलभं च महारथम् ॥४९॥
निजघान सुसंक्रुद्धश्चेदीनां च महारथान् ।

हे राजन ! इन्द्र के समान पराक्रमी जिष्णु, देवापि, भद्र, दण्ड, चित्र, चित्रायुध, हरि, सिंहकेतु, रोचमान, महारथी शलभ तथा अन्य चेदी महारथियों को क्रोध में भर कर कर्ण ने मार गिराया ॥४८-४९॥

तेषामाददतः प्राणानासीदाधिरथेर्वपुः ॥५०॥
शोणिताभ्युक्षिताङ्गस्य रुद्रस्येवोर्जितं महत् ।

इन महावीरों के प्राणों को अपहरण करते हुए अधिरथ-पुत्र कर्ण का शरीर, इस तरह प्रतीत होने लगा-जैसे रक्त में भीगे हुए भगवान् शङ्कर का विशाल शरीर हो ॥५०॥

तत्र भारत कर्णेन मातङ्गास्ताडिताः शरैः ॥५१॥
सर्वतोऽभ्यद्रवन्भीताः कुर्वन्तो महदाकुलम् ।

हे भारत ! कर्ण ने अपने बाणों से हाथियों को इतना मारा कि वे भयभीत होकर भागने लगे, जिससे रण भूमि में बड़ी भारी हलचल मच गई ॥५१॥

निपेतुरुर्व्यां समरे कर्णसायकताडिताः ॥५२॥
कुर्वन्तो विविधान्नादान्वज्रनुन्ना इवाचलाः ।

वे गजराज कर्ण के बाणों से ताड़ित हुए अनेक प्रकार से चिंघाड़ मार २ कर रणभूमि में इस तरह गिरने लगे जैसे वज्र से आहत किए गए पर्वत गिर रहे हों ॥५२॥

गजवाजिमनुष्यैश्च निपतद्भिः समन्ततः ॥५३॥
रथैश्चाधिरथे मार्गे समास्तीर्यत मेदिनी ।

हाथी, अश्व, मनुष्य और रथियों के सब ओर गिरने से अधिरथ पुत्र कर्ण के रथ के मार्ग में सारी पृथिवी मृतकों के शरीरों से भरी पड़ी थी ॥५३॥

नैवं भीष्मो न च द्रोणो नान्ये युधि च तावकाः॥५४॥
चक्रुः स्म तादृशं कर्म यादृशं वै कृतं रणे ।

हे राजन ! भीष्म द्रोण तथा अन्य तुम्हारे वीर कोई भी ऐसा भीषण वीरकर्म नहीं कर सके थे जैसा कर्ण ने कर दिखाया ॥५४॥

सूतपुत्रेण नागेषु हयेषु च रथेषु च ॥५५॥
नरेषु च महाराज कृतं स्म कदनं महत् ।

हे महाराज ! सूतपुत्र कर्ण ने हाथी अश्व रथी और पैदल सैनिकों का बहुत ही अधिक विध्वंस उड़ा दिया ॥५५॥

मृगमध्ये यथा सिंहो दृश्यते निर्भयश्चरन् ॥५६॥
पाञ्चालानां तथा मध्ये कर्णोऽचरदभीतवत् ।

मृगों के मध्य में जिस तरह सिंह निर्भय घूमता है उसी तरह पञ्चालों की सेना के मध्य में महारथी कर्ण भी निर्भीक भाव से घूम रहे थे ॥५६॥

यथा मृगगणांस्त्रस्तान्सिंहो द्रावयते दिशः ॥५७॥
पाञ्चालानां रथव्रातान्कर्णो व्यद्रावयत्तथा ।

व्याकुल हुए मृगगणों को जिस भांति से सिंह दिशाओं में भगा देता है, उसी तरह पञ्चालों के रथ समूह को कर्ण ने बुरी तरह भगा दिया ॥५७॥

सिंहास्यं च यथा प्राप्य न जीवन्ति मृगाः क्वचित् ॥
तथा कर्णमनुप्राप्य न जिजीवुर्महारथाः ।

सिंह के मुख में पहुंच कर जिस तरह किसी मृग के प्राण नहीं बच पाते उसी तरह कर्ण के पञ्जे में फंस कर कोई महारथी जीवित न बच पाया ॥५८॥

वैश्वानरं यथा प्राप्य प्रतिदह्यन्ति वै जनाः ॥५९॥
कर्णाग्निना वने तद्वद्दग्धा भारत सृञ्जयाः ।

हे भारत ! वन में आग लग जाने पर जैसे-वन के जीव-जन्तु जलने लगते हैं, उसी तरह कर्ण रूपी आग से रण में सारे सृञ्जय दुखी होने लगे ॥५९॥

कर्णेन चेदिकैकेयपाञ्चालेषु च भारत ॥६०॥
विश्राव्य नाम निहता बहवः शूरसम्मताः ।

हे भारत! कर्ण ने चेदी केकय और पञ्चाल वीरों के मध्य में पहुंच कर अपना नाम घमण्ड से सुनाया और उन में बहुत से प्रतिष्ठित वीरों को मार २ कर बिछा दिया ॥६०॥

मम चासीन्मती राजन्दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ॥६१॥
नैकोऽप्याधिरथेर्जीवन्पाञ्चाल्यो मोच्यते युधि।
पाञ्चालान्व्यधमत्सङ्ख्ये सूतपुत्रः पुनः पुनः ॥६२॥

हे राजन! कर्ण को इस तरह पराक्रम दिखाते देख कर तो मेरी उस समय यही बुद्धि हो गई कि अब तो अधिरथ पुत्र कर्ण के सामने से रण में कोई भी पञ्चाल बच कर जीता नहीं जाता दिखाई देता है उस तरह बार बार सूत-पुत्र कर्ण ने पञ्चाल वीरों को मार २ कर बिछा दिया ॥६१-६२॥

पाञ्चालानथ निघ्नन्तं कर्णं दृष्ट्वा महारणे।
अभ्यधावत्सुसंक्रुद्धो धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥६३॥

इस घोर रण में पञ्चालों को मारते हुए कर्ण को देखकर क्रोधातुर हुए धर्मराज युधिष्ठिर, बड़े वेग से कर्ण पर झपटे॥६३॥

धृष्टद्युम्नश्च राधेयं द्रौपदेयाश्च मारिष।
परिवव्रुरमित्रघ्नं शतशश्चापरे जनाः ॥६४॥

हे आर्य! इसी समय सेनापति धृष्टद्युम्न और द्रौपदी पुत्रों ने शत्रुनाशक राधा-पुत्र कर्ण को घेर लिया। इस घेरे में बहुत से अन्य भी पाण्डव वीर सम्मिलित थे॥६४॥

शिखण्डी सहदेवश्च नकुलो नाकुलिस्तथा ।
जनमेजयः शिनेर्नप्ता बहवश्च प्रभद्रकाः ॥६५॥
एते पुरोगमा भूत्वा धृष्टद्युम्नश्च संयुगे ।
कर्णमस्यन्तमिष्वस्त्रैर्विचेरुरमितौजसः ॥६६॥

शिखण्डी, सहदेव, नकुल, नकुल पुत्र शतानीक, जनमेजय सात्यकि। तथा अन्य बहुत से प्रभद्रक वीर आगे होकर और धृष्टद्युम्न को साथ लेकर बाण फैंकते हुए कर्ण को अपने अपने बाणों से घायल करके रणाङ्गण में सञ्चरण करने लगे ॥

तांस्तत्राधिरथिः सङ्ख्ये चेदिपाञ्चालपाण्डवान् ।
एको बहूनभ्यपतद्गरुत्मान्पन्नगानिव ॥६७॥

इस समय रण में चेदी, पञ्चाल और पाण्डव वीरों पर महारथी कर्ण ने इस तरह आक्रमण किया जैसे बहुत से सर्पों पर गरुड़ आक्रमण करता हो ॥६७॥

तैः कर्णस्याभवद्युद्धं घोररूपं विशाम्पते ।
तादृग्यादृक्पुरा वृत्तं देवानां दानवैः सह ॥६८॥

हे विशाम्पते ! इन पाण्डव वंश के वीर और कर्ण का इतना भीषण युद्ध हुआ जैसे पूर्व काल में देवों का दैत्यों के साथ युद्ध हुआ था ॥६८॥

तान्समेतान्महेष्वासाञ्शरवर्षौघवर्षिणः ।
एको व्यधमदव्यग्रस्तमांसीव दिवाकरः ॥६९॥

इन बाण-वर्षा करते हुए महा धनुर्धरों को एक दम ही बिना किसी परिश्रम के कर्ण ने इस तरह छेद डाला, जैसे अन्धकार को सूर्य छिन्न-भिन्न कर देता है ॥६६॥

भीमसेनस्तु संसक्ते राधेये पाण्डवैः सह ।
सर्वतोऽभ्यहनत्क्रुद्धो यमदण्डनिभैः शरैः ॥७०॥

जब भीमसेन ने राधा-पुत्र कर्ण को पाण्डव वीरों के साथ टक्कर लेते हुए देखा-तो वह क्रोध से भर गया और उसने यम-राज के दण्ड के समान बाणों से उसे सब ओर से घायल करना आरम्भ किया ॥७०॥

बाह्लीकान्केकयान्मत्स्यान्वासात्यान्मद्रसैन्धवान् ।
एकः सङ्ख्ये महेष्वासो योधयन्बह्वशोभत ॥७१॥

हे राजन् ! इस घोर युद्ध में अकेला महाधनुर्धर कर्ण, बाहीक केकय, मत्स्य, वसाति, मद्र तथा सिन्धु देशोत्पन्न बहुत से योद्धाओं से युद्ध करता हुआ बहुत ही सुशोभित हो रहा था ॥७०॥

तत्र मर्मसु भीमेन नाराचैस्ताडिता गजाः ।
प्रपतन्तो हतारोहाः कम्पयन्ति स्म मेदिनीम् ।
वाजिनश्च हतारोहाः पत्तयश्च गतासवः ॥७२॥
शेरते युधि निर्भिन्ना वमन्तो रुधिरं बहु ।

इस समय भीम द्वारा नाराच संज्ञक बाणों से मर्म स्थानों में आहत हुए गज, भूमि में गिरते हुए भूमि को कम्पायमान कर देते हैं । इनके आरोही (सवार) पहले ही मर चुके थे । इसी

तरह अश्वों के भी सवार मारे जा चुके। बहुत से पैदल सैनिक मृत्यु को प्राप्त हो गये। ये बाणों से बिंधे हुये बहुत सा रुधिर वमन करते हुए रण भूमि में लेट रहे थे ॥७२॥

सहस्रशश्च रथिनः पातिताः पतितायुधाः ॥७३॥
ते क्षताः समदृश्यन्त भीमभीता गतासवः।

बहुत से रथी योद्धा, रण भूमि में पड़े हुये हैं, उनके शस्त्र गिर चुके। बहुत से घायल वीर तो भीमसेन से भयभीत हुए मृतकवत् चुपचाप पड़े हैं ॥७३॥

रथिभिः सादिभिः सूतैः पादातैर्वाजिभिर्गजैः ॥७४॥
भीमसेनशरैश्छिन्नैराच्छन्ना वसुधाभवत्।

भीमसेन के बाणों से आहत रथी, अश्वारोही, सारथि, पैदल, अश्व और गजों से सारी रण भूमि अत्यन्त व्याप्त हो गई ॥७४॥

तत्स्तम्भितमिवातिष्ठद्भीमसेनभयार्दितम् ॥७५॥
दुर्योधनबलं सर्वं निरुत्साहं कृतव्रणम्।

इस समय भीमसेन के भय से व्याकुल सारी कौरव सेना क्षत विक्षत हो कर उत्साहीन और जड़ीभूत सी हो रही थी ॥७५॥

निश्चेष्टं तुमुलं दीनं बभौ तस्मिन्महारणे ॥७६॥
प्रसन्नसलिले काले यथा स्यात्सागरो नृप।
तद्वत्तव बलं तद्वै निश्चलं समवस्थितम् ॥७७॥
मन्युवीर्यबलोपेतं दर्पात्प्रत्यवरोपितम्।

हे नृप ! इस महारण में सारी दुर्योधन की सेना बड़ी दीन और निश्चेष्ट हुई, स्वच्छ जल पूर्ण समुद्र की तरह निश्चल दिखाई दे रही थी। हे राजन् ! तुम्हारी, क्रोध पराक्रम और बल से उद्धत सारी, सेना इस तरह निश्चेष्ट हो रही थी, मानो उसका दर्प छीन लिया गया ॥७६-७७॥

अभवच्च पुत्रस्य तत्सैन्यं निष्प्रभं तदा ॥७८॥

तद्बलं भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।

हे भरत श्रेष्ठ ! अब तुम्हारे पुत्र की सेना इतनी निस्तेज हो गई थी, कि वह व्याकुलता के कारण परस्पर ही एक दूसरे के मारने में प्रवृत्त होने लगी ॥७८॥

रुधिरौघपरिक्लिन्नं रुधिरार्द्रं बभूव ह ॥७९॥

जगाम भरतश्रेष्ठ वध्यमानं परस्परम् ।

हे भरतर्षभ ! जब परस्पर सेना एक दूसरे पर आक्रमण कर रही थी वह इतनी रुधिर के प्रवाह से भीग गई थी कि उसका कोई शरीर का भाग न बचा, जो रक्त से तर न हो रहा हो ॥७९॥

सूतपुत्रो रणे क्रुद्धः पाण्डवानामनीकिनीम् ॥८०॥

भीमसेनः कुरूंश्चापि द्रावयन्तौ विरेजतुः ।

हे राजन् ! इधर तो सूत पुत्र कर्ण क्रोध में भरे हुए पाण्डव सेना का विध्वंस कर रहे थे, दूसरी ओर भीमसेन कौरव सेना का नाश कर रहे थे। इस तरह दोनों ही वीर बड़े ही सुशोभित हो रहे थे ॥८०॥

वर्तमाने तथा रौद्रे संग्रामेऽद्भुतदर्शने ॥८१॥

निहत्य पृतनामध्ये संशप्तकगणान्बहून् ।

अर्जुनो जयतां श्रेष्ठो वासुदेवमथाब्रवीत् ॥८२॥

जब इस प्रकार महा भयङ्कर घोर युद्ध प्रवृत्त हो रहा था-तो विजयशील अर्जुन ने भी वहुत से संशप्तक गणों को मार २ कर रण भूमि में बिछा दिया। अब वह श्री कृष्ण से इस तरह कहने लगा ॥८१-८२॥

प्रभग्नं बलमेतद्धि योत्स्यमानं जनार्दन ।

एते द्रवन्ति सगणाः संशप्तकमहारथाः ॥८३॥

अपारयन्तो मद्बाणान्सिंहशब्दं मृगा इव ।

हे जनार्धन! मुझसे युद्ध करती हुई यह संशप्तक सेना भाग खड़ी हुई है। इस संशप्तक सेना के सारे महारथी अपनी सेना के साथ भागते हुये ही दिखाई दे रहे हैं। ये लोग, मेरे बाणों को इस तरह नहीं सह सके-जैसे मृग गण सिंह के शब्द नहीं सह सकते हैं ॥८३॥

दीर्यते च महत्सैन्यं सृञ्जयानां महारणे ॥८४॥

हस्तिकक्षो ह्यसौ कृष्ण केतुः कर्णस्य धीमतः ।

दृश्यते राजसैन्यस्य मध्ये विचरतो मुदा ॥८५॥

हे कृष्ण! यह देखो? महावीर कर्ण की हाथी के चिन्ह से अङ्कित ध्वजा दिखाई दे रही है, जो कर्ण, बड़े उत्साह के साथ

राजाओं की सेना के मध्य में वेग से घूम रहा है। इसके भय से इस महारण में सारी सृञ्जय सेना बिखर गई ॥८४-८५॥

न च कर्णं रणे शक्ता जेतुमन्ये महारथाः।
जानीते हि भवान्कर्णं वीर्यवन्तं पराक्रमे ॥८६॥

हे भगवन्! तुम जानते हो, कर्ण कितना पराक्रम दिखाने वाला महाबली वीर है। इस महारथी कर्ण को जीतने में अन्य कोई महारथी समर्थ नहीं दिखाई देता है ॥८६॥

तत्र याहि यतः कर्णो द्रावयत्येष नो बलम्।
वर्जयित्वा रणे याहि सूतपुत्रं महारथम् ॥८७॥
एतन्मे रोचते कृष्ण यथा वा तव रोचते।

अब तुम उधर ही चलो, जिधर कर्ण हमारी सेना को तितर बितर कर रहा है। अब तुम सब कुछ छोड़ दो और वहीं पहुँचो जहां महारथी सूर्य-पुत्र कर्ण विद्यमान है। हे कृष्ण! मुझे तो यही उत्तम प्रतीत होता है, बाकी आप की इच्छा है ॥८७॥

एतच्छ्रुत्वा वचस्तस्य गोविन्दः प्रहसन्निव ॥८८॥
अब्रवीदर्जुनं तूर्णं कौरवाञ्जहि पाण्डव।

अर्जुन के इतने वचन सुनकर श्रीकृष्ण कुछ मुसकुरा दिए और अर्जुन से कहने लगे—हे पाण्डव! अभी तुम कौरव वीरों को और मारते रहो ॥८८॥

ततस्तव महासैन्यं गोविन्दप्रेरिता हयाः ॥८९॥

हंसवर्णाः प्रविविशुर्वहन्तः कृष्णपाण्डवौ ।

हे राजन् ! इतना कहकर श्रीकृष्ण ने रथ के अश्व आगे बढ़ाये और वे हंस वर्णधारी अश्व श्रीकृष्ण और अर्जुन को लेकर तुम्हारी महासेना में घुसते चले गये ॥८९॥

केशवप्रेरितैरश्वैः श्वेतैः काञ्चनभूषणैः ॥९०॥

प्रविशद्भिस्तव बलं चतुर्दिशमभिद्यत् ।

हे नृप ! श्रीकृष्ण से हांके हुये, सुवर्ण के भूषणधारी अर्जुन के श्वेत अश्व, ज्योंही तुम्हारी सेना में घुसे-त्यों ही वह सारी सेना चारों दिशाओं को भागने लगी ॥९०॥

मेघस्तनितनिर्ह्रादः स रथो वानरध्वजः ॥९१॥

चलत्पताकस्तां सेनां विमानं द्यामिवाविशत् ।

अर्जुन के रथ की ध्वनि, मेघ को गर्जना के सदृश थी। इस में वानर के चिन्ह से अङ्कित ध्वजा लगी हुई थी और पताकाएँ फड़फड़ा रही थीं। तुम्हारी सेना में अर्जुन का रथ इस तरह घुसता चला गया, जैसे आकाश में विमान घुसता चला जाता है ॥९१॥

तौ विदार्य महासेनां प्रविष्टौ केशवार्जुनौ ॥९२॥

क्रुद्धौ संरम्भरक्ताक्षौ विभ्राजेतां महाद्युती ।

वे दोनों महाद्युती श्रीकृष्ण और अर्जुन, तुम्हारी सेना को चीरते हुए उस में घुस गये। उन दोनों को इतना क्रोध चढ़ा

हुआ था, कि इनकी आंखें क्रोध से लाल होकर चमक रही थीं ॥६२॥

युद्धशौण्डौ समाहूतावागतौ तौ रणाध्वरम् ॥६३॥
यज्वभिर्विधिनाहूतौ मखे देवाविवाश्विनौ।

अब ये दोनों युद्ध कुशल वीर श्रीकृष्णार्जुन, आह्वान करते ही रण रूपी यज्ञ में इस तरह पहुँच गये जैसे यज्ञ करने वालों से विधिपूर्वक आह्वान करने पर दोनों अश्विनी कुमार आगए हों ॥६३॥

क्रुद्धौ तौ तु नरव्याघ्रौ योधयन्तौ बभूवतुः ॥६४॥
तलशब्देन रुषितौ यथा नागौ महावने।

अब ये दोनों पुरुष प्रवीर श्रीकृष्णार्जुन क्रोध में भरे हुए इस तरह युद्ध कुशलता दिखाने लगे जैसे करतल ध्वनि से क्रुद्ध हुए हाथी, महावन में युद्ध करने लगे हों ॥६४॥

विगाह्य तु रथानीकमश्वसङ्घांश्च फाल्गुनः ॥६५॥
व्यचरत्पृतनामध्ये पाशहस्त इवान्तकः।

अर्जुन रथ सेना को आलोडित करके अश्व सेना में इस तरह घूमने लगे-जैसे सेना के मध्य में पाशधारी काल घूम रहा हो ॥६५॥

तं दृष्ट्वा युधि विक्रान्तं सेनायां तव भारत ॥६६॥
संशप्तकगणान्भूयः पुत्रस्ते समचूचुदत्।

हे भारत ! युद्ध में सेना के मध्य में अर्जुन को पराक्रम करते देखकर तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन ने फिर संशप्तक गणों को युद्ध के लिये प्रेरित किया ॥९६॥

ततो रथसहस्रेण द्विरदानां त्रिभिः शतैः ॥९७॥
चतुर्दशसहस्रैस्तु तुरगाणां महाहवे ।
द्वाभ्यां शतसहस्राभ्यां पदातीनां च धन्विनाम् ॥९८॥
शूराणां लब्धलक्षाणां विदितानां समन्ततः ।
अभ्यवर्तन्त कौन्तेयं छादयन्तो महारथाः ॥९९॥
शरवर्षैर्महाराज सर्वतः पाण्डुनन्दनम् ।

हे राजन् ! संशप्तक वीर भी, एक सहस्र रथी तीन सौ हाथी चौदह हजार अश्व तथा सर्वत्र प्रसिद्धि प्राप्त किये हुये, लक्ष्य को बींधने में समर्थ, दो लाख धनुषधारी पैदल वीर लेकर अर्जुन पर टूट पड़े । हे महाराज ! इन महारथियों ने आक्रमण करके कुन्ती पुत्र अर्जुन को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया ॥९७-९९॥

स च्छाद्यमानः समरे शरैः परबलार्दनः ॥१००॥
दर्शयन्रौद्रमात्मानं पाशहस्त इवान्तकः ।
निघ्नन्संशप्तकान्पार्थः प्रेक्षणीयतरोऽभवत् ॥१०१॥

शत्रु सेना नाशक अर्जुन को जब इन्हों ने अपने बाणों से पाट दिया-तो अर्जुन भी अपना भीषण रूप दिखाने लगे-वे भी पाशधारी काल की तरह दिखाई देने लगे । कुन्ती पुत्र अर्जुन

संशप्तक-गणों को मारते हुए बड़े ही दर्शनीय दिखाई देने लगे ॥१००-१०१॥

ततो विद्युत्प्रभैर्बाणैः कार्तस्वरविभूषितैः ।
निरन्तरमिवाकाशमासीच्छन्नं किरीटिना ॥१०२॥

अब अर्जुन ने सुवर्ण जटित, बिजली के तुल्य कान्तिधारी बाणों से आकाश को इतना व्याप्त कर दिया-कि उसमें बिल्कुल ही अन्तर दिखाई नहीं देता था ॥१०२॥

किरीटिभुजनिर्मुक्तैः सम्पतद्भिर्महाशरैः ।
समाच्छन्नं बभौ सर्वं काद्रवेयैरिव प्रभो ॥१०३॥

हे प्रभो ! किरीटधारी अर्जुन की भुजा से निकले हुए बड़े २ बाणों से आकाश में मानो सर्प ही सर्प से दिखाई दे रहे थे ॥१०३॥

रुक्मपुङ्खान्प्रसन्नाग्राञ्छरान्सन्नतपर्वणः ।
अवासृजदमेयात्मा दिक्षु सर्वासु पाण्डवः ॥१०४॥

हे राजन् ! इस समय पाण्डु पुत्र, अपरिमित बलशाली अर्जुन ने सुवर्ण मूलधारी, चमकीली नोक वाले, तथा नतपर्वयुक्त इतने बाण, छोड़े कि जिन से सारी दिशाएँ भरती चली गईं ॥१०४॥

मही वियद्दिशः सर्वाः समुद्रा गिरयोऽपि वा ।
स्फुटन्तीति जना जज्ञुः पार्थस्य तलनिःस्वनात् ॥१०५॥

हे राजन ! जब बाण छोड़ने के समय अर्जुन की करतल ध्वनि होती थी-तो यही प्रतीत होता था, कि पृथिवी- आकाश, सारी दिशा, समुद्र और पर्वत, मानो फट रहे हों ॥१०५॥

हत्वा दशसहस्राणि पार्थिवानां महारथः ।

संशप्तकानां कौन्तेयः प्रत्यक्षं त्वरितोऽभ्ययात् ॥१०६॥

हे जनाधिप ! महारथी कुन्ती पुत्र अर्जुन ने सब के देखते २ संशप्तकों के दश सहस्र राजा मार गिराये ! इनको मारकर अर्जुन बड़े वेग से फिर आगे वढ़े ॥१०६॥

प्रत्यक्षं च समासाद्य पार्थः काम्बोजरक्षितम् ।

प्रममाथ बलाद्बाणैर्दानवानिव वासवः ॥१०७॥

अर्जुन ने अब अपनी आँखों के सन्मुख कम्बोजाधिपति से सुरक्षित कम्बोज सेना को देखा-अब वे बल पूर्वक बाण छोड़ २ कर इस तरह उस सेना को मथने लगा जैसे-इन्द्र दानवों को मथ डालता है ॥१०७॥

प्रचिच्छेदाशु भल्लेन द्विषतामाततायिनाम् ।

शस्त्रं पाणिं तथा बाहुं तथापि च शिरांस्युत ॥१०८॥

अब अर्जुन ने अपने बाणों से घातक शत्रुओं के शस्त्र हाथ बाहु और शिर काट २ कर इस भूमि में बिछा दिए ॥१०८॥

अङ्गाङ्गावयवैश्छिन्नैर्व्यायुधास्तेऽपतन्भुवि ।

विष्वग्वाताभिसम्भग्ना बहुशाखा इव द्रुमाः ॥१०९॥

इन वीरों के प्रत्येक अङ्ग प्रत्यङ्ग छिन्न भिन्न हो गए वे शस्त्र हीन होकर रणभूमि में इस तरह गिर गए-जैसे प्रबलवायु के वेग से टूट कर बहुत सी शाखा वाले वृक्ष गिर गए हों ॥१०९॥

हस्त्यश्वरथपत्तीनां व्रातान्निघ्नन्तमर्जुनम् ।
सुदक्षिणादवरजः शरवृष्ट्याभ्यवीवृषत् ॥११०॥

जब राजा सुदक्षिण के छोटे भाई ने हाथी, अश्व, रथों, और पैदल वीरों का विध्वंस उड़ाते हुए अर्जुन को देखा तो वह बाण वर्षा करता हुआ आगे बढ़ा ॥११०॥

तस्यास्यतोऽर्द्धचन्द्राभ्यां बाहू परिघसन्निभौ ।
पूर्णचन्द्राभवक्त्रं च क्षुरेणाभ्यहरच्छिरः ॥१११॥

जब वह बाण वर्षा कर रहा था तो अर्जुन ने इस पर दो अर्धचन्द्र संज्ञक बाण छोड़े जिनसे इसने उसकी परिघ के तुल्य बाहु काट डाली और फिर क्षुरोपम एक बाण छोड़ कर पूर्णचन्द्र के समान सुन्दर राजा सुदक्षिण के भ्राता का शिर काट कर नीचे गिरा दिया ॥१११॥

स पपात ततो वाहात्सुलोहितपरिस्रवः ।
मनःशिलागिरेः शृङ्गं वज्रेणेवावदारितम् ॥११२॥

इस के शरीर से रक्त की धारा बह निकली और यह अपने वाहन से इस तरह नीचे गिर गया जैसे मनशिला पर्वत का शिखर वज्र से तोड़ कर नीचे गिरा दिया हो ॥११२॥

सुदक्षिणादवरजं काम्बोजं ददृशुर्हतम् ।
प्रांशुं कमलपत्राक्षमत्यर्थं प्रियदर्शनम् ॥११३॥
काञ्चनस्तम्भसदृशं भिन्नं हेमगिरिं यथा ।

कम्बोज देश के अद्वितीय वीर कमल पत्र के समान नेत्र धारी, बड़े सुन्दर उन्नत शरीर वाले, राजा सुदक्षिण के छोटे भाई को अब सब ने देख लिया कि वह मर चुका। यह मेरुगिरि के टूटे हुए शिखर के सदृश दिखाई दे रहा था ॥११३॥

ततोऽभवत्पुनर्युद्धं घोरमत्यर्थमद्भुतम् ॥११४॥
नानावस्थाश्च योधानां बभूवुस्तत्र युद्धयताम्।

इस के अनन्तर फिर कौरव पाण्डव सेना में अद्भुत घोर युद्ध होने लगा। उस समय युद्ध करने वाले वीरों की अनेक दशाएं हो रही थीं ॥११४॥

एकेषुनिहतैरश्वैः काम्बोजैर्यवनैः शकैः ॥११५॥
शोणिताक्तैस्तदा रक्तं सर्वमासीद्विशाम्पते ।

हे विशाम्पते ! उत्तम २ बाणों से अश्व कम्बोज देश के वीर यवन (यूनानी) और शक रक्त में भीगे हुए रण भूमि में लेटते हुए दिखाई दिए। इस समय सारी रण भूमि रक्त से भरी पड़ी ॥११५॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ॥११६॥
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ।
अन्योन्येन महाराज कृतो घोरो जनक्षयः ॥११७॥

अश्व और सारथियों के मारे जाने से अनेक रथ खाली पड़े थे बहुत से अश्वों के सवार मारे जा चुके थे हाथियों के गजारोही भी गिर गए और बहुत से गजारोही अपने हाथियों

के मारे जाने से खाली हो चुके थे हे महाराज! इस प्रकार कौरव और पाण्डव दोनों पक्ष के वीरों ने दोनों ओर बड़ी भारी सेना का विध्वंस कर दिया ॥११६-११७॥

तस्मिन्प्रपक्षे पक्षे च निहते सव्यसाचिना ।
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितो द्रौणिरभ्ययात् ॥११८॥

जब कौरव सैना के पक्ष और प्रपक्ष के वीरों को सव्यसाची अर्जुन ने मार गिराया तो विजयशाली अर्जुन पर बड़े वेग से द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने आक्रमण किया ॥११८॥

विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ।
आददानः शरान्घोरान्स्वरश्मीनिव भास्करः ॥११९॥
क्रोधामर्षविवृत्तास्यो लोहिताक्षो बभौ बली ।
अन्तकाले यथा क्रुद्धो मृत्युः किङ्करदण्डभृत् ॥१२०॥

इस समय अश्वत्थामा अपने सुवर्ण से विभूषित विशाल धनुष को कंपा रहा था यह इस पर इस तरह बाण चढ़ाता था, जैसे सूर्य अपनी किरण विकसित करता है क्रोध और आवेश में इस का मुख खुल रहा था। इस महाबली की आंखें लाल हो रही थीं। यह तो ऐसा प्रतीत होता था। जैसे प्रलय काल में क्रोध में भरा हुआ दण्डधारी मृत्यु का दूत हो ॥११९-१२०॥

ततः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि सङ्घशः ।
तैर्विसृजन्तैर्महाराज व्यद्रवत्पाण्डवी चमूः ॥१२१॥

हे महाराज अब अश्वत्थामा ने बाण समूह की उग्रवर्षा करना आरम्भ किया। उसकी इस बाण वर्षा से सारी पाण्डव सेना भागती सी दिखाई दी ॥१२१॥

स दृष्ट्वैव तु दाशार्हं स्यन्दनस्थं विशाम्पते।
पुनः प्रासृजदुग्राणि शरवर्षाणि मारिष ॥१२२॥

हे विशाम्पते! जब अश्वत्थामा ने श्रीकृष्ण को अर्जुन के रथ पर बैठा देखा तो वह और भी प्रबल वेग से बाण छोड़ने लगा ॥१२२॥

तैः पतद्भिर्महाराज द्रौणिमुक्तैः समन्ततः।
सञ्छादितौ रथस्थौ तावुभौ कृष्णधनञ्जयौ ॥१२३॥

हे महाराज! द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के सब ओर से छोड़े हुए बाणों से रथ में स्थित श्रीकृष्ण और अर्जुन अच्छी तरह आच्छादित हो गए ॥१२३॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैरश्वत्थामा प्रतापवान्।
निश्चेष्टौ तावुभौ युद्धे कृत्वा माधवपाण्डवौ ॥१२४॥
हाहाकृतमभूत्सर्वं स्थावरं जङ्गमं तथा।
चराचरस्य गोप्तारौ दृष्ट्वा सञ्छादितौ शरैः ॥१२५॥

जब महाप्रतापी अश्वत्थामा ने अपने सैंकड़ों बाणों से श्रीकृष्ण और अर्जुन को आच्छादित कर दिया और वे दोनों

इस समय निश्चेष्ट से हो गए तो इस तरह चराचर रक्षक श्रीकृष्ण और अर्जुन को देख कर चर और अचर जीवों में हाहाकार मच गया ॥१२०-१२५॥

सिद्धचारणसङ्घाश्च सम्पेतुस्ते समन्ततः ।
चिन्तयन्तो भवेदद्य लोकानां स्वस्त्यपीति च ॥१२६॥

हे राजन्! इस समय सिद्ध चारण आदि देवों के संघ सब ओर आकाश में छा गए और वे सारे के सारे कल्याण की कामना करने लगे ॥१२६॥

न मया तादृशो राजन्दृष्टपूर्वः पराक्रमः ।
संग्रामे यादृशो द्रौणेः कृष्णौ सञ्छादयिष्यतः ॥१२७॥

हे राजन! मैंने आज तक कभी इतना घोर संग्राम नहीं देखा जैसे द्रोण पुत्र अश्वत्थामा द्वारा श्रीकृष्ण और अर्जुन के बाणों से आच्छादित करने के समय हुआ ॥१२७॥

द्रौणेस्तु धनुषः शब्दमहितत्रासनं रणे ।
अश्रौषं बहुशो राजन्सिंहस्य निनदो यथा ॥१२८॥

हे राजन! मुझे सिंह की गर्जना के सदृश शत्रुओं को भयभीत करदेने वाली द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के धनुष की ध्वनि ही वार २ सर्वत्र सुनाई देती थी ॥१२८॥

ज्या चास्य चरतो युद्धे सव्यदक्षिणमस्यतः ।
विद्युदम्बुदमध्यस्था भ्राजमानेव साभवत् ॥१२९॥

जब अश्वत्थामा दांयी वांयी ओर वाण फैंक रहा था तो इस की धनुष की प्रत्यञ्चा ऐसी दिखाई देती थी जैसे बादलों के बीच में बिजली फड़ फड़ा रही हो ॥१२६॥

स तथा क्षिप्रकारी च दृढहस्तश्च पाण्डवः ।
प्रमोहं परमं गत्वा प्रेक्ष्य तं द्रोणजं ततः ॥१३०॥

यद्यपि पाण्डु पुत्र अर्जुन बड़ा ही शीघ्र वाण छोड़ने वाला और दृढ़ हाथ चलाने वाला था परन्तु वह भी द्रोण पुत्र अश्वत्थामा के वाण फैंकने की शीघ्रता को देख कर चकित रह गया ॥१३०॥

विक्रमं विहतं मेने आत्मनः स महायशाः ।
तस्यास्य समरे राजन्वपुरासीत्सुदुर्दृशम् ॥१३१॥

हे राजन्! इस समय महायशस्वी अर्जुन ने अपने पराक्रम को भी अश्वत्थामा के पराक्रम के आगे फीका समझ लिया इस रण में अश्वत्थामा का शरीर बड़ा ही दर्शनीय था ॥१३१॥

द्रौणिपाण्डवयोरेवं वर्तमाने महारणे ।
वर्धमाने च राजेन्द्र द्रोणपुत्रे महाबले ॥१३२॥
हीयमाने च कौन्तेये कृष्णे रोषः समाविशत् ।
स रोषान्निःश्वसन्राजन्निर्दहन्निव चक्षुषा ॥१३३॥
द्रौणिं ह्यपश्यत्संग्रामे फाल्गुनं च मुहुर्मुहुः ।
ततः क्रुद्धोऽब्रवीत्कृष्णः पार्थं सप्रणयं तदा ॥१३४॥

अत्यद्भुतमिदं पार्थ तव पश्यामि संयुगे।
अतिशेते हि यत्र त्वां द्रोणपुत्रोऽद्य भारत ॥१३५॥

हे राजेन्द्र ! जब द्रोण पुत्र अश्वत्थामा और अर्जुन का यह घोर युद्ध चल रहा था और महाबली अश्वत्थामा विजयी तथा अर्जुन पराजित हो रहा था तो यह देख कर श्री कृष्ण को बड़ा आवेश आया हे राजन्! इतनी क्रोध की आग से प्रज्वलित हो उठे कि उन की आंखें जलने लगीं और वे बार २ श्वांस लेने लगे। वे कभी द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को देखते थे और कभी अर्जुन की ओर देखने लगते थे। अब वे क्रोध में भरे हुए ही प्रेम-पूर्वक अर्जुन से बोले हे कुन्ति पुत्र अर्जुन! मैं इस रण में आज बड़े आश्चर्य की बात देख रहा हूं जो तुम्हारे पराक्रम से आगे बढ़ कर द्रोण पुत्र अश्वत्थामा अपना पराक्रम दिखा रहा है ॥१३२-१३५॥

कच्चिद्वीर्यं यथापूर्वं भुजायोर्वा बलं तव।
कच्चित्ते गाण्डिवं हस्ते रथे तिष्ठसि चार्जुन ॥१३६॥
कच्चित्कुशलिनौ बाहू मुष्टिर्वा न व्यशीर्यत।
उदीर्यमाणं हि रणे पश्यामि द्रौणिमाहवे ॥१३७॥
गुरुपुत्र इति ह्येनं मानयन्भरतर्षभ।
उपेक्षां कुरु मा पार्थ नायं काल उपेक्षितुम् ॥१३८॥
एवमुक्तस्तु कृष्णेन गृह्य भल्लांश्चतुर्दश।
त्वरमाणस्त्वराकाले द्रौणेर्धनुरथाच्छिनत् ॥१३९॥

हे अर्जुन ! क्या तुम्हारी भुजाओं में पूर्व का सा बल नहीं रहा है या तुम्हारे हाथ में गाण्डीव धनुष नहीं है। तुम रथ में तो बैठे हुए हो। तुम्हारी भुजाओं में कोई चोट तो नहीं लग गई है या हड्डी तो कट छट नहीं गई है। हे भरतर्षभ ! मैं तो इस रण में द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को तुम से आगे बढ़ा हुआ देख रहा हूँ जिसका कारण यही प्रतीत होता है। कि तुम गुरु पुत्र समझ कर उसका मान कर रहे हो अर्जुन ! अब तुम कुछ उपेक्षा न करो यह समय किसी देख भाल का नहीं है। हे राजन् ! बस ? श्री कृष्ण ने इतना ही कहा था कि चौदह भल्लसंज्ञक बाण उठाए और इस शीघ्रता के समय में बड़ी शीघ्रता से अर्जुन ने अश्वत्थामा का धनुष काट गिराया ॥१२६-१३६॥

ध्वजं छत्रं पताकाश्च रथं शक्तिं गदां तथा।
जत्रुदेशे च सुभृशं वत्सदन्तैरताडयत् ॥१४०॥

हे नराधिप अर्जुन ने फिर वत्सदन्त संज्ञक बाण छोड़े, जिन से ध्वजा, छत्र, पताका, रथ शक्ति और गदा काट कर अश्वत्थामा के जत्रु प्रदेश में बहुत तीखे ढंग से प्रहार किया। ॥१४०॥

समूर्छां परमां गत्वा ध्वजयष्टिं समाश्रितः।
तं विसंज्ञं महाराज शत्रुणा भृशपीडितम् ॥१४१॥
अपोवाह रणात्सूतो रक्षमाणो धनञ्जयात्।

हे राजन्! इस प्रहार से अश्वत्थामा को मूर्च्छा आ गई वह ध्वजा के दण्ड को पकड़ कर बैठ गया। हे महाराज शत्रु के अत्यन्त भीषण प्रहार से अश्वत्थामा को मूर्च्छित जान कर उस का सारथि अर्जुन से उसकी रक्षा करने के निमित्त उसे रण से दूर ले गया ॥१४१॥

एतस्मिन्नेव काले च विजयः शत्रुतापनः ॥१४२॥
न्यहनत्तावकं सैन्यं शतशोऽथ सहस्रशः।
पश्यतस्तस्य वीरस्य तव पुत्रस्य भारत ॥१४३॥
एवमेष क्षयो वृत्तस्तावकानां परैः सह।
क्रूरो विशसनो घोरो राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥१४४॥

हे राजन्! इस समय शत्रुतापी अर्जुन ने सैकड़ों हजारों की संख्या में तुम्हारी सेना के वीर मार गिराए। हे राजन्! इस विनाश को अश्वत्थामा और तुम्हारा पुत्र अर्जुन खड़ा २ देखता रहा। इस प्रकार तुम्हारी सेना का पाण्डवों के साथ इस घमसान युध में विनाश हुआ। यह सब कुछ बड़ी क्रूर मार काट तुम्हारी दुर्मन्त्रणा से उठे हुए युद्ध का ही परिणाम है ॥१४२-१४४॥

संशप्तकांश्च कौन्तेयः कुरूंश्चापि वृकोदरः।
वसुषेणश्च पञ्चालान्क्षणेन व्यधमद्रणे ॥१४५॥

हे राजन्! इस युद्ध में संशप्तकों को तो अर्जुन ने, कौरवों को वृकोदर भीम ने और इसी तरह कर्ण ने पञ्चालों को मार २ कर बिछा दिया ॥१४५॥

वर्त्तमाने तथा रौद्रे राजन्वीरवरक्षये ।
उत्थितान्यगणेयानि कबन्धानि समन्ततः ॥१४६॥

हे नृप ! इस प्रकार जब घोर महाभयंकर युद्ध प्रवृत हो रहा था तो रणभूमि में सर्वत्र असंख्य कबन्ध घूमते हुए युद्ध कर रहे थे ॥१४६॥

युधिष्ठिरोऽपि संग्रामे प्रहारैर्गाढवेदनः ।
क्रोशमात्रमपक्रम्य तस्थौ भरतसत्तम ॥१४७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

हे भरतसत्तम ! इस समय युद्ध में राजा युधिष्ठिर भी गाढ़े प्रहारों से क्षतविक्षत हो रहे थे वे कर्ण से एक कोश की दूरी पर खड़े हो गए ॥१४७॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में अर्जुन और अश्वत्थामा के घोर युद्ध के वर्णन का छप्पनवां अध्याय समाप्त हुआ ।



सत्तावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

दुर्योधनस्ततः कर्णमुपेत्य भरतर्षभ ।

अब्रवीन्मद्रराजं च तथैवान्यांश्च पार्थिवान् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! अब राजा दुर्योधन, कर्ण, मद्रराज शल्य तथा वीर श्रेष्ठ राजाओं के पास पहुँच कर इस प्रकार वचन बोले ॥१॥

यदृच्छयैतत्सम्प्राप्तं स्वर्गद्वारमपावृतम् ।

सुखिनः क्षत्रियाः कर्ण लभन्ते युद्धमीदृशम् ॥२॥

हे कर्ण ! अचानक प्राप्त होने वाले इस तरह के युद्ध कोई भाग्यवान् क्षत्रिय ही प्राप्त कर सकते हैं, जिसमें स्वर्ग का द्वार बिल्कुल खुला हुआ है ॥२॥

सदृशैः क्षत्रियैः शूरैः शूराणां युध्यतां युधि ।

इष्टं भवति राधेय तदिदं समुपस्थितम् ॥३॥

हे राधेय ! क्षत्रिय वीरों को अपने सदृश वीरों से युद्ध में भिड़ जाना बड़ा ही अभीष्ट होता है और आज वही अवस्था तुम लोगों को प्राप्त है ॥३॥

हत्वा च पाण्डवान्युद्धे स्फीतामुर्वीमवाप्स्यथ ।

निहता वा परैर्युद्धे वीरलोकमवाप्स्यथ ॥४॥

तुम लोग पाण्डवों को मारकर या तो इस विशाल पृथिवी को प्राप्त करो या शत्रुओं द्वारा युद्ध में मारे जाकर वोर गति पा जाओ ॥४॥

दुर्योधनस्य तच्छ्रुत्वा वचनं क्षत्रियर्षभाः ।
हृष्टा नादानुदक्रोशन्वादित्राणि च सर्वशः ॥५॥

हे राजन् ! राजा दुर्योधन के यह वचन सुनकर क्षत्रिय वीर बड़े प्रसन्न हुए और वे सिंहनाद करते हुये सब ओर से बाजे बजाने लगे ॥५॥

ततः प्रमुदिते तस्मिन्दुर्योधनबले तदा ।
हर्षयंस्तावकान्योधान्द्रौणिर्वचनमब्रवीत् ॥६॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार राजा दुर्योधन की सेना उल्लास में भरी हुई थी-तो तुम्हारे योद्धाओं को प्रहर्षित करता हुआ द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा कहने लगा ॥६॥

प्रत्यक्षं सर्वसैन्यानां भवतां चापि पश्यताम् ।
न्यस्तशस्त्रो मम पिता धृष्टद्युम्नेन पातितः ॥७॥

हे कौरव वीरों ! सारी सेना और तुम लोगों के देखते २ मेरे पिता द्रोण को उस अवस्था में धृष्टद्युम्न ने मार गिराया जब कि उन्हों ने शस्त्र त्याग दिये थे ॥७॥

स तेनाहममर्षेण मित्रार्थे चापि पार्थिवाः ।
सत्यं वः प्रतिजानामि तद्वाक्यं मे निबोधत ॥८॥

मैं उसी क्रोध या मित्र दुर्योधन के कार्य वश आज एक सत्य प्रतिज्ञा करता हूँ, तुम मेरे इस वाक्य को सुनलो, कि मैं बिना धृष्टद्युम्न के मारे अब कवच नहीं खोलूंगा। यदि यह मेरी प्रतिज्ञा झूंठी हो जावे, तो मैं मृत्यु के अनन्तर स्वर्ग प्राप्त न करूं।

धृष्टद्युम्नमहत्वाहं न विमोक्ष्यामि दंशनम्।
अनृतायां प्रतिज्ञायां नाहं स्वर्गमवाप्नुयाम् ॥९॥
अर्जुनो भीमसेनश्च योधो यो रक्षिता रणे।
धृष्टद्युम्नस्य तं सङ्ख्ये निहनिष्यामि सायकैः ॥१०॥

इस समय चाहे अर्जुन या भीम भी क्यों न धृष्टद्युम्नकी रणमें रक्षा करने को आवें? मैं अपने बाणों से उसे भी रण में मार गिराऊंगा ॥९-१०॥

एवमुक्ते ततः सर्वा सहिता भारती चमूः।
अभ्यद्रवत कौन्तेयांस्तथा ते चापि पाण्डवाः ॥११॥

हे राजन! इतनी बात चीत होने पर सारी भारतीय सेना राजा युधिष्ठिर की सेना पर टूट पड़ी, और पाण्डवी सेना ने भी कौरव सेना पर आक्रमण किया ॥११॥

स संनिपातो रथयूथपानां बभूव राजन्नतिभीमरूपः।
जनक्षयः कालयुगान्तकल्पः प्रावर्त्तताग्रे कुरुसृञ्जयानाम् ॥१२॥

हे राजन्! रथ समूह के सेनापतियों का यह आक्रमण बड़ा ही भयानक रूपधारी था। प्रलयकाल के जन क्षय के समान यह कौरव और सृञ्जयों का भीषण विनाश अब प्रवृत्त होने लगा ॥१२॥

ततः प्रवृत्ते युधि सम्प्रहारे भूतानि सर्वाणि सदैवतानि ।
आसन्समेतानि सहाप्सरोभिर्दिदृक्षमाणानि नरप्रवीरान् ॥१३॥

जब यह मार काट युद्ध में प्रवृत्त हुई तो देवों के साथ सारे प्राणी, इन पुरुष प्रवीरों को देखने के लिये अप्सराओं के साथ इकट्ठे होकर आकाश में छा गए। १३॥

दिव्यैश्च माल्यैर्विविधैश्च गन्धैर्दिव्यैश्च रत्नैर्विविधैर्नराग्र्यान् ।
रणे स्म कर्मोद्वहतः प्रवीरानवाकिरन्नप्सरसः प्रहृष्टाः ॥१४॥

इस घोर युद्ध में वीर कर्म करते हुये उत्तम वीरों के ऊपर उल्लास में भरी हुई अप्सराएँ दिव्य पुष्पों की माला, अनेक प्रकार की दिव्य गन्ध और बहुत सी रत्नों की माला बरसाने लगी ॥१४॥

समीरणस्तांश्च निषेव्य गन्धान्सिषेव सर्वानपि योधमुख्यान् ।
निषेव्यमाणास्त्वनिलेन योधाः परस्परघ्ना धरणीं निपेतुः ॥१५।

इस समय वायु भी उत्तम गन्ध को लेकर इन उत्तम २ योद्धाओं की सेवा करने लगा। जब यह वायु इन योद्धाओं की सेवा कर रहा था, तो वे योद्धा भी परस्पर प्रहार में परायण होकर पृथिवी में गिरने लगे ॥१५॥

सा दिव्यमाल्यैरवकीर्यमाणा सुवर्णपुङ्खैश्च शरैर्विचित्रैः ।
नक्षत्रसङ्घैरिव चित्रिता द्यौः क्षितिर्बभौ योधवरैर्विचित्रा ॥१६॥

हे राजन ! दिव्य माला, और सुवर्ण मूलधारी विचित्र बाणों और उत्तम २ योद्धाओं से व्याप्त हुई रण भूमि, ऐसी प्रतीत होने लगी, जैसे नक्षत्र गणों से व्याप्त आकाश दिखाई दे रहा हो ॥१६॥

ततोऽन्तरिक्षादपि साधुवादैर्वादित्रघोषैः समुदीर्यमाणः ।
ज्याघोषनेमिस्वननादचित्रः समाकुलः सोऽभवत्सम्प्रहारः ॥१७॥

इति श्रीमहाभारते० संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि
अश्वत्थामप्रतिज्ञायां सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अब आकाश में भी साधुवाद की ध्वनि आने लगी। उसके साथ ही बाजों का शब्द उठ रहा था। धनुष की डोरी और रथ की नेमि की ध्वनि से विचित्र ध्वनि हो रही थी। इस तरह वह युद्ध बड़ा ही घोर दिखाई दे रहा था ॥१७॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में अश्वत्थामा का
धृष्टद्युम्न के मारने की प्रतिज्ञा के वर्णन का
सत्तावनवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ



अट्ठावनवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एवमेष महानासीत्संग्रामः पृथिवीक्षिताम् !
क्रुद्धेऽर्जुने तथा कर्णे भीमसेने च पाण्डवे ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरत श्रेष्ठ ! अर्जुन, कर्ण और पाण्डु पुत्र भीमसेन के कुपित होने पर इस प्रकार का घोर संग्राम दोनों पक्ष के राजाओं में होने लगा ॥१॥

द्रोणपुत्रं पराजित्य जित्वा चान्यान्महारथान् ।
अब्रवीदर्जुनो राजन्वासुदेवमिदं वचः ॥२॥

हे राजन् ! द्रोण पुत्र अश्वत्थामा तथा महारथियों को पराजित करके अर्जुन वसुदेव पुत्र श्री कृष्ण, से इस प्रकार कहने लगे ॥२॥

पश्य कृष्ण महाबाहो द्रवन्तीं पाण्डवीं चमूम् ।
कर्णं पश्य च संग्रामे कालयन्तं महारथान् ॥३॥

हे महा बाहो ! कृष्ण ! तुम पाण्डवों की इस विशाल सेना को भागती और रण में बड़े २ महारथियों को आह्वान् करते हुये कर्ण को तो देखो ॥३॥

न च पश्यामि दाशार्ह धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नापि केतुर्युधां श्रेष्ठ धर्मराजस्य दृश्यते ॥४॥

हे दशार्ह वंश श्रेष्ठ ! महा योद्धा ! मैं युद्ध में धर्मराज युधिष्ठिर को नहीं देख रहा हूं और न मुझे कहीं पर धर्मराज की ध्वजा ही दिखाई देती है ॥४॥

त्रिभागश्चावशिष्टोऽयं दिवसस्य जनार्दन ।

न च मां धार्त्तराष्ट्रेषु कश्चिद्युध्यति संयुगे ॥५॥

तस्मात्त्वं मत्प्रियं कुर्वन्याहि यत्र युधिष्ठिरः ।

हे जनार्दन ! अब दिन के तीन भाग शेष है और एक प्रहर व्यतीत हो चुका-परन्तु अभी मुझ से लड़ने कोई भी कौरव वीर नहीं आया है । इस लिए तुम मेरी अभिलाषा पूर्ण करने को वहीं चलो-जहां पर धर्मराज युधिष्ठिर हैं ॥५॥

दृष्ट्वा कुशलिनं युद्धे धर्मपुत्रं सहानुजम् ॥६॥

पुनर्योद्धास्मि वार्ष्णेय शत्रुभिः सह संयुगे ।

हे वार्ष्णेय ! इस घोर युद्ध में अपने अनुज भीमसेन सहित धर्मराज को कुशल युक्त देखकर फिर रणाङ्गण में शत्रुओं के साथ युद्ध करूंगा ॥६॥

ततः प्रायाद्रथेनाशु बीभत्सोर्वचनाद्धरि ॥७॥

यतो युधिष्ठिरो राजा सृञ्जयाश्च महारथाः ।

अयुध्यंस्तावकैः सार्धं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥८॥

हे महाराज ! अर्जुनके ये वचन सुनकर भगवान् कृष्ण अपने रथ के द्वारा बड़ी शीघ्रता से उधर ही चल दिए, जिधर राजा

युधिष्ठिर और महारथी सृञ्जय मृत्यु के भय को छोड़कर कौरव वीरों से युद्ध कर रहे थे ॥७-८॥

ततः संग्रामभूमिं तां वर्तमाने जनक्षये ।
अवेक्षमाणो गोविन्दः सव्यसाचिनमब्रवीत् ॥९॥

जब महान् घोर रण स्थल में विनाश उपस्थित हो रहा था—तो इस समय रण भूमि को भीषण देखकर श्रीकृष्ण, सव्यसाची अर्जुन से इस प्रकार बोले ॥९॥

पश्य पार्थ महारौद्रो वर्तते भरतक्षयः ।
पृथिव्यां क्षत्रियाणां वै दुर्योधनकृते महान् ॥१०॥

हे पार्थ ! देखो ! कितना भारी विनाश भरत वंश और अन्य क्षत्रिय का राजा दुर्योधन के कारण से हो रहा है ॥१०॥

पश्य भारत चापानि रुक्मपृष्ठानि धन्विनाम् ।
मृतानामपविद्धानि कलापांश्च महाधनान् ॥११॥
जातरूपमयैः पुङ्खैः शरांश्चानतपर्वणः ।
तैलधौतांश्च नाराचान्निर्मुक्तान्पन्नगानिव ॥१२॥
हस्तिदन्तत्सरून्खड्गाञ्जातरूपपरिष्कृतान् ।
वर्माणि चापविद्धानि रुक्मगर्भाणि भारत ॥१३॥

हे भारत ! इन मृतक धनुर्धर वीरों के रण भूमि में बिखरे हुए सुवर्ण मय धनुष और बहु मूल्य के तूणीर सुवर्ण निर्मित मूलधारी, नत पर्व वाले बाण, कांचली से रहित सर्पों के सदृश

तेल से चमकीले किए हुए नाराच, हाथी दांतके मूठ वाले, सुवर्ण जटित खड्ग तथा बीच २ में सुवर्ण से सुन्दर इन कवचों को तो देखो ॥११-१३॥

सुवर्णविकृतान्प्रासाञ्शक्तीः कनकभूषणाः ।
जाम्बूनदमयैः पट्टैर्बद्धाश्च विपुला गदाः ॥१४॥
जातरूपमयीश्चर्ष्टीः पट्टिशान्हेमभूषणान् ।
दण्डैः कनकचित्रैश्च विप्रविद्धान्परश्वधान् ॥१५॥
अयः कुन्तांश्च पतितान्मुसलानि गुरूणि च ।
शतघ्नीः पश्य चित्राश्च विपुलान्परिघांस्तथा ॥१६॥

हे भरतवंश श्रेष्ठ ! सुवर्ण रचित प्रास, सुवर्णोज्ज्वल शक्ति, सुवर्ण मय पट्टों से बंधी हुई विपुल गदा, सुवर्ण युक्त ऋष्टि, सुवर्ण से विभूषित पट्टिश, सुवर्णसे चित्रित दण्ड, खण्डित परश्वध, लोह के कुन्त, भारी २ मुसल, विचित्र शतघ्नी, बड़े परिघ, चक्र, तोमर, इस रण भूमि में बिखरे पड़े हैं, तुम दृष्टि उठाकर जरा देखो ॥ १४-१६ ॥

चक्राणि चापविद्धानि तोमरांश्च महारणे ।
नानाविधानि शस्त्राणि प्रगृह्य जयगृद्धिनः ॥१७॥
जीवन्त इव दृश्यन्ते गतसत्वास्तरस्विनः ।

अनेक प्रकार के शस्त्रों को लेकर विजय लोलुप बहुत से बलवान क्षत्रिय मृतक होकर रणभूमि में गिर गए हैं। परन्तु अभी तेज के कारण जीवित से ही दिखाई देते हैं ॥१७॥

गदाविमथितैर्गात्रैर्मुसलैर्भिन्नमस्तकान् ॥१८॥
गजवाजिरथक्षुण्णान्पश्य योधान्सहस्रशः ।

बहुत से योधाओं के शरीर गदा से चकनाचूर और बहुत से वीरों के मस्तक मुसलों से तोड़ फोड़ डाले गए हैं। तुम रणभूमि में पड़े हुए, तथा हाथी, रथ, और अश्वों से कुचले हुए सहस्रों, योधाओं को तो देखो ॥१८॥

मनुष्यहयनागानां शरशक्त्यृष्टिपट्टिशैः ॥१९॥
परिघैरायसैर्घोरैरयस्कुन्तैः परश्वधैः ।
शरीरैर्बहुभिश्छिन्नैः शोणितौघपरिप्लुतैः ॥२०॥
गतासुभिरमित्रघ्न संवृता रणभूमयः ।

हे शत्रुनाशक ? वीर ! लोहमय परिघ घोर अयस्कुन्त परश्वध आदि शस्त्रों से बहुत से स्थानों पर छिन्न भिन्न रुधिर के प्रवाह से व्याप्त शरीरों वाले मृतक वीरों से देखो रणभूमि कितनी व्याप्त हो गई है ॥१९-२०॥

बाहुभिश्चन्दनादिग्धैः साङ्गदैर्हेमभूषितैः ॥२१॥
सतलत्रैः सकेयूरैर्भाति भारत मेदिनी ।

हे भारत ! चन्दन चर्चित, सुवर्णमय केयूर और अङ्गदादि आभूषणों से विभूषित करतलत्राण से समन्वित भुजाओं से रणस्थली बहुत ही भर गई है ॥२१॥

सांगुलित्रैर्भुजाग्रैश्च विप्रविद्धैरलंकृतैः ॥२२॥
हस्तिहस्तोपमैश्छिन्नैरूरुभिश्च तरस्विनाम् ।
बद्धचूडामणिवरैः शिरोभिश्च सकुण्डलैः ॥२३॥
पतितैर्ऋषभाक्षाणां विराजति वसुन्धरा ।

अंगुलित्राण से युक्त तथा अंगूठो आदि आभूषणों से अलंकृत क्षत विक्षत भुजाओं के अग्र भाग एवं हाथी की सूंडों के सदृश वेग शाली वीरों के कटे हुए जंघा प्रदेश, चूड़ामणि जड़े हुए कुण्डलों से युक्त, शिर इतने पड़े हैं कि जिन से रणभूमि बहुत ही भीषण दिखाई दे रही है ॥२२-२३॥

कबन्धैः शोणितादिग्धैश्छिन्नगात्रशिरोधरैः ॥२४॥
भूर्भाति भरतश्रेष्ठ शान्तार्चिर्भिरिवाग्निभिः ।

हे भरत श्रेष्ठ ! छिन्न भिन्न शरीर वाले ग्रीवा से रहित मृतकों के शरीरां से रणभूमि इस तरह प्रतीत होने लगी जैसे ज्वालाओं से रहित अङ्गारों से व्याप्त हो रही हो॥२४॥

रथांश्च बहुधा भग्नान्हेमकिङ्किणिनः शुभान् ॥२५॥
वाजिनश्च हतान्पश्य निष्कीर्णान्त्राञ्शराहतान् ।

सुवर्ण के घुंघरुओं से सुन्दर बहुत से टूटे फूटे रथ, तथा बाणों से आहत निकली हुई आंतों वाले अश्वों को तो तनक देखो ॥२५॥

अनुकर्षानुपासङ्गान्पताका विविधध्वजान् ॥२६॥
रथिनां च महाशङ्खान्पाण्डुरांश्च प्रकीर्णकान् ।
निरस्तजिह्वान्मातङ्गाञ्शयानान्पर्वतोपमान् ॥२७॥
वैजयन्तीर्विचित्राश्च हतांश्च गजवाजिनः ।
वारणानां परिस्तोमांस्तथैवाजिनकम्बलान् ॥२८॥
विपाटितविचित्रांश्च रूप्यचित्रान्कुथांकुशान् ।
भिन्नाश्च बहुधा घण्टा महद्भिः पतितैर्गजैः ॥२६॥
वैदूर्यदण्डांश्च शुभान्पतितानंकुशान्भुवि ।

रथ के नीचे ऊपर के काष्ठ, पहिये, पताका, अनेक प्रकार की ध्वजा, रथियों के बिखरे हुए बहुत से श्वेत शङ्ख, जीभ निकाले हुए, पर्वत के समान आकारधारी रणभूमि में पड़े हुए बहुत से हाथी विचित्र २ झण्डे, मारे हुए हाथी घोड़े, हाथियों की झूलें, मृग चर्म, कम्बल, खण्डित होने से अद्भुत दिखाई देने वाले चांदी के हौदे और अंकुश गिरते हुए हाथियों से चकनाचूर हुई बहुत सी घण्टा वैदूर्य मणि जटित दण्डधारी दण्डवाले पड़े हुए अंकुशों से रणभूमि भीषण दिखाई दे रही थी ॥२६-२६॥

बद्धाः सादिभुजाग्रेषु सुवर्णविकृताः कशाः ॥३०॥
विचित्रमणिचित्रांश्च जातरूपपरिष्कृतान् ।

अश्वास्तरपरिस्तोमान्राङ्कवान्पतितान्भुवि ॥२१॥
चूडामणीन्नरेन्द्राणां विचित्राः काञ्चनस्रजः ।
छत्राणि चापविद्धानि चामरव्यजनानि च ॥२२॥
चन्द्रनक्षत्रभासैश्च वदनैश्चारुकुण्डलैः ।
क्लृप्तश्मश्रुभिरत्यर्थं वीराणां समलंकृतैः ॥२३॥
वदनैः पश्य सञ्छन्नां महीं शोणितकर्दमाम् ।

हे धनञ्जय ! अश्वारोहियों के हाथों में ली हुई सुवर्ण निर्मित कशा (चाबुक) विचित्र मणियों से चित्रित, सुवर्ण से उज्जवल अश्वों के अस्तर परिस्तोम (जीन के नीचे की झूल) पहाड़ी हिरणों के बालों के वस्त्र, राजाओं की चूड़ा मणि अद्भुत सुवर्ण माला, छत्र, चँवर और पंखों से व्याप्त इस रणस्थल की दशा को देखो नक्षत्रों के तुल्य कुण्डलों से सुशोभित चन्द्रमा के समान सुन्दर वीरों के छोटी २ मूंछ दाढ़ी वाले अलंकृत मुखों से व्याप्त तथा रक्त की कीचड़ वाली इस रणभूमि की ओर तुम तनक दृष्टि उठाओ ॥२०-२३॥

सजीवांश्चापरान्पश्य कूजमानान्समन्ततः ॥२४॥
उपास्यमानान्बहुशो न्यस्तशस्त्रैर्विशाम्पते ।
ज्ञातिभिः सहितांस्तत्र रोदमानैर्मुहुर्मुहुः ॥२५॥

हे क्षत्रिय श्रेष्ठ ! रणभूमि में सब ओर आर्तनाद करते हुए इन वीरों को देखो जिनकी-शस्त्र फैंक कर अन्य बहुत से वीर सेवा शुश्रूषा कर रहे हैं। इनके पास इनके बालक खड़े २ जोर २ से रो रहे हैं ॥२४-२५॥

व्युत्क्रान्तानपरान्योधांश्छादयित्वा तरस्विनः ।
पुनर्युद्धाय गच्छन्ति जयगृद्धाः प्रमन्यवः ॥३६॥

बहुत से मृतक योधाओं को वस्त्रों से आच्छादित कर के विजयाभिलाषी वीर क्रोध में भरे हुए फिर युद्ध के लिए दौड़ रहे हैं ॥३६॥

अपरे तत्र तत्रैव परिधावन्ति मानवाः ।
ज्ञातिभिः पतितैः शूरैर्याच्यमानास्तथोदकम् ॥३७॥

कुछ योधा रण में इधर उधर भाग दौड़ मचाते दिखाई दे रहे हैं कि उनके प्रिय बन्धु शूर वीर रणभूमि में गिर चुके और पानी मांग रहे हैं ॥३७॥

जलार्थं च गताः केचिन्निष्प्राणा बहवोऽर्जुन ।
सन्निवृत्ताश्च ते शूरास्तान्वै दृष्ट्वा विचेतसः ॥३८॥
जलं त्यक्त्वा प्रधावन्ति क्रोशमानाः परस्परम् ।
जलं पीत्वा मृतान्पश्य पिबतोऽन्यांश्च मारिष ॥३९॥

हे अर्जुन! जब उनके बान्धव जल लेने गए तो इतने में ही बहुत से वीर प्राण विहिन हो गए। जब उनके बान्धवोंने लौट कर उन को मृतक देखा-तो परस्पर दूसरे बन्धुत्रों के साथ रोते चिल्लाते हुए व पानी छोड़ कर वापिस लौट रहे हैं। हे आर्य वीर ! देखो ? कुछ वीर पानी पी कर प्राण विहीन हो गए और कोई अभी जल पी रहे हैं ॥३८-३९॥

परित्यज्य प्रियानन्ये बान्धवान्बान्धवप्रियाः ।
व्युत्क्रान्ताः समदृश्यन्त तत्र तत्र महारणे ॥४०॥

बान्धवों से प्रेम करने वाले बहुत से वीर अपने प्रिय बन्धुओं को छोड़ कर इस महारण में जहां तहां प्राण विहीन होते दिखाई दे रहे हैं ॥४०॥

तथापरान्नरश्रेष्ठ सन्दष्टौष्ठपुटान्पुनः ।
भ्रुकुटीकुटिलैर्वक्त्रैः प्रेक्षमाणान्समन्ततः ॥४१॥

हे नर श्रेष्ठ ! देखो ? कुछ वीर रणभूमि में पड़े हैं, परन्तु अभी ओष्ठ पुट चाब रहे हैं और टेढ़ी भौंहें बना कर अपने मुख से सब ओर देखते जाते हैं ॥४१॥

एवं ब्रुवंस्तदा कृष्णो ययौ यत्र युधिष्ठिरः ।
अर्जुनश्चापि नृपतेर्दर्शनार्थं महारणे ॥४२॥
याहि याहीति गोविन्दं मुहुर्मुहुरचोदयत् ।

हे राजन् ! इस प्रकार अर्जुन से बात चीत करते हुए श्रीकृष्ण वहां पहुंचे जहां पर राजा युधिष्ठिर थे इस घोर संग्राम में अर्जुन को राजा युधिष्ठिर के देखने की बड़ी शीघ्रता हो रही थी वे बार २ श्रीकृष्ण को शीघ्रता से चलने की प्रेरणा कर रहे थे ॥४२॥

तां युद्धभूमिं पार्थस्य दर्शयित्वा च माधवः ॥४३॥
त्वरमाणस्ततः कृष्णः पार्थमाह शनैरिदम् ।

उस भीषण रणभूमि को अर्जुन को दिखाते हुए और बड़ी शीघ्रता से चलते हुए श्रीकृष्ण धीरे २ अर्जुन से यह बचन बोले ॥४३॥

पश्य पाण्डव राजानमुपयोतांश्च पार्थिवान् ॥४४॥
कर्णं पश्य महारङ्गे ज्वलन्तमिव पावकम् ।
असौ भीमो महेष्वासः सन्निवृत्तो रणं प्रति ॥४५॥
तमेते विनिवर्तन्ते धृष्टद्युम्नपुरोगमाः ।
पाञ्चालसृञ्जयानां च पाण्डवानां च ये मुखम् ॥४६॥

हे अर्जुन ! राजा युधिष्ठिर तुम्हारे सन्मुख खड़े हैं जिन की रक्षा में अनेक राजा उपस्थित हो रहे हैं । दूसरी ओर इस महारण में अग्नि की तरह जाज्वल्यमान कर्ण को भी देखो । इधर महाधनुर्धर भीमसेन रण में आगे बढ़ रहे हैं जिनके साथ धृष्टद्युम्न आदि वीर आगे बढ़ रहे हैं येही वीरतो पाञ्चाल, सृञ्जय और पाण्डवों के प्रधान वीर माने जाते हैं ॥४४-४६॥

निवृत्तैश्च पुनः पार्थैर्भग्नं शत्रुबलं महत् ।
कौरवान्द्रवतो ह्येष कर्णो रोधयतेऽर्जुन ॥४७॥

हे अर्जुन ? ज्योंही पाण्डव वीर लौटे-त्योंही शत्रु की विशाल सेना भाग खड़ी हुई, परन्तु कर्ण अपने प्रयत्न से भागती हुई सेना को रोक रहे हैं ॥४७॥

अन्तकप्रतिमो वेगे शक्रतुल्यपराक्रमः ।
असौ गच्छति कौरव्य द्रौणिः शस्त्रभृतां वरः ॥४८॥

हे कुरुवंश श्रेष्ठ, अर्जुन ! काल के समान् वेगशाली, इन्द्र के समान पराक्रमी, और शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ, ये द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा चले जा रहे हैं ॥४८॥

तमेव प्रद्रुतं संख्ये धृष्टद्युम्नो महारथः ।
अनुप्रयाति संग्रामे हतान्पश्य च सृञ्जयान् ॥४९॥

इस घोर संग्राम में वेग के साथ आगे बढ़ते हुये अश्वत्थामा को देखकर महारथी धृष्टद्युम्न, उसके पीछे दौड़ रहे हैं, और अश्वत्थामा सृञ्जय वीरों को मार २ कर बिछा रहा है—तुम इस दृश्य को देखो ॥४९॥

सर्वमाह सुदुर्धर्षो वासुदेवः किरीटिने ।
ततो राजन्महाघोरः प्रादुरासीन्महारणः ॥५०॥
सिंहनादरवाश्चैव प्रादुरासन्समागमे ।
उभयोः सेनयो राजन्मृत्युं कृत्वा निवर्त्तनम् ॥५१॥

हे राजन् ! इस प्रकार सारी परिस्थिति श्रीकृष्ण ने किरीट धारी अर्जुन को सुनाई । इस घोर युद्ध में सब ओर वीरों के सिंहनाद सुनाई दे रहे थे । दोनों पक्ष के वीर अपनी २ मृत्यु की परवा न कर के युद्ध में प्रवृत्त हो रहे थे ॥५०-५१॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पृथिव्यां पृथिवीपते ।
तावकानां परेषां च राजन्दुर्मन्त्रिते तव ॥५२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि वासुदेववाक्येऽष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

हे पृथिवीपते ! राजन् ! इस प्रकार रण-भूमि में तुम्हारे और पाण्डव पक्ष के क्षत्रियों का विनाश हुआ । यह सब कुछ तुम्हारी दुर्मन्त्रणा का परिणाम हो रहा है ॥५२।

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को रण भूमि के दृश्यों के दिखाने का अट्ठावनवाँ अध्याय समाप्त हुआ ।

उनसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः पुनः समाजग्मुरभीताः कुरुसृञ्जयाः ।
युधिष्ठिरमुखाः पार्थाः सूतपुत्रमुखा वयम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे विशाम्पते ! अब फिर निर्भीक वीर कौरव और सृञ्जय युद्ध के लिए चल पड़े, उनमें राजा युधिष्ठिर और महारथी कर्ण आगे चल रहे थे ॥१॥

ततः प्रववृते भीमः संग्रामो लोमहर्षणः ।
कर्णस्य पाण्डवानां च यमराष्ट्रविवर्धनः ॥२॥

हे राजन्! अब यमराष्ट्र के बढ़ाने वाला, कर्ण और पाण्डवों के बीच में बड़ा लोमहर्षणकारी भयङ्कर युद्ध चल पड़ा ॥२॥

तस्मिन्प्रवृत्ते संग्रामे तुमुले शोणितोदके ।
संशप्तकेषु शूरेषु किञ्चिच्छिष्टेषु भारत ॥३॥
धृष्टद्युम्नो महाराज सहितः सर्वराजभिः ।
कर्णमेवाभिदुद्राव पाण्डवाश्च महारथाः ॥४॥

हे भारत! इस समय महा घोर संग्राम चल रहा था। रक्त की नदी बह निकली थी। संशप्तक वीर बहुत ही थोड़े शेष रह गये थे। हे महाराज! इस समय बहुत से राजाओं के साथ धृष्टद्युम्न और महारथी पाण्डव, कर्ण पर वेग से झपटे ॥३-४॥

आगच्छमानांस्तान्संख्ये प्रहृष्टान्विजयैषिणः ।
दधारैको रणे कर्णो जलौघानिव पर्वतः ॥५॥

विजय के अभिलाषी, उल्लास में भरे हुए इन पाण्डव वीरों को आगे बढ़ते हुए देखकर अकेले कर्ण ने इस तरह रोक दिया जैसे जल प्रवाह को पर्वत रोक देता है ॥५॥

समासाद्य तु ते कर्णं व्यशीर्यन्त महारथाः ।
यथाचलं समासाद्य वार्यौघाः सर्वतोदिशम् ॥६॥
तयोरासीन्महाराज संग्रामो लोमहर्षणः ।

कर्ण के समीप पहुँचते ही ये पाण्डव महारथी इस तरह बिखर गये-जैसे पर्वत से टकराकर जल प्रवाह सब दिशाओं में फैल जाता है। हे महाराज! अब इन दोनों पक्ष के वीरों में महा घोर युद्ध होने लगा ॥६॥

धृष्टद्युम्नस्तु राधेयं शरेणानतपर्वणा ॥७॥
ताडयामास समरे तिष्ठतिष्ठेति चाब्रवीत् ।

हे राजन्! पञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न ने अपने नतपर्वधारी बाण से रण में राधा पुत्र कर्ण पर आक्रमण किया और कहा—तनक ठहरे रहो ॥७॥

विजयं च धनुः श्रेष्ठं विधुन्वानो महारथः ॥८॥
पार्षतस्य धनुश्छित्त्वा शरांश्चाशीविषोपमान् ।
ताडयामास संक्रुद्धः पार्षतं नवभिः शरैः ॥९॥

अब महारथी कर्ण ने अपना विजय नामक उत्तम धनुष उठाया और उससे सर्प के समान भीषण बाण छोड़कर धृष्ट-द्युम्न के धनुष को काट दिया। इसने नौ बाण और छोड़कर बड़े क्रोध से धृष्टद्युम्न को बींध डाला ॥८-९॥

ते वर्म हेमविकृतं भित्त्वा तस्य महात्मनः ।
शोणिताक्ता व्यराजन्त शक्रगोपा इवानघ ॥१०॥

हे अनघ! इन बाणों ने उस महावीर धृष्टद्युम्न के सुवर्ण मय कवच को बींध डाला और ये शरीर में घुस कर रक्त में सने हुए

पृथ्वी पर रेंगते हुए ऐसे प्रतीत होने लगे-जैसे वीर बहूटियां रेंग रही हों ॥१०॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं धृष्टद्युम्नो महारथः ।
अथान्यद्धनुरादाय शरांश्चाशीविषोपमान् ॥११॥
कर्णं विव्याध सप्तत्या शरैः सन्नतपर्वभिः ।

महारथी धृष्टद्युम्न ने अपना खण्डित धनुष फेंक दिया और दूसरा धनुष उठाया। अब उस धनुष से धृष्टद्युम्न ने आशीविष सर्प के तुल्य भीषण बाण छोड़े और सत्तर नतपर्वधारी बाणों से अङ्गराज कर्ण को बींध डाला ॥११॥

तथैव राजन्कर्णोऽपि पार्षतं शत्रुतापनम् ॥१२॥
छादयामास समरे शरैराशीविषोपमैः ।

हे राजन् ! महारथी कर्ण ने भी शत्रुतापी धृष्टद्युम्न को रणमें सर्पोपम बाणों द्वारा आच्छादित कर दिया ॥१२॥

द्रोणशत्रुर्महेष्वासो विव्याध निशितैः शरैः ॥१३॥
तस्य कर्णो महाराज शरं कनकभूषणम् ।
प्रेषयामास संक्रुद्धो मृत्युदण्डमिवापरम् ॥१४॥

हे महाराज ! अब द्रोण के शत्रु महाधनुर्धर धृष्टद्युम्न ने तीक्ष्ण बाण छोड़कर कर्ण को आहत कर दिया। कर्ण ने भी क्रोध में भर कर सुवर्ण भूषित मृत्यु के दूसरे दण्ड के समान भीषण बाण को धृष्टद्युम्न पर चलाया ॥१३-१४॥

तमापतन्तं सहसा घोररूपं विशाम्पते ।
चिच्छेद शतधा राजञ्शैनेयः कृतहस्तवत् ॥१५॥

हे विशाम्पते ! इस प्रकार महाभयङ्कर उस घोर बाण को आता देखकर शीघ्रता से हाथ दिखाने वाले शिनि-पौत्र सात्यकि ने उस के सैंकड़ों टुकड़े कर डाले ॥१५॥

दृष्ट्वा विनिहितं बाणं शरैः कर्णो विशाम्पते ।
सात्यकिं शरवर्षेण समन्तात्पर्यवारयत् ॥१६॥

हे विशाम्पते ! जब कर्ण ने अपने बाण को इस तरह व्यर्थ होते देखा तो उसने सब ओर से बाण वर्षा करके सात्यकि को आच्छादित कर दिया ॥१६॥

विव्याध चैनं समरे नाराचैस्तत्र सप्तभिः ।
तं प्रत्यविध्यच्छैनेयः शरैर्हेमपरिष्कृतैः ॥१७॥

अब कर्ण ने सात नाराच बाण छोड़कर सात्यकि को और सात्यकि ने भी रण में सुवर्ण भूषित बाण छोड़कर कर्ण को आहत कर दिया ॥१७॥

ततो युद्धं महाराज चक्षुः श्रोत्रभयानकम् ।
आसीद्घोरं च चित्रं च प्रेक्षणीयं समन्ततः ॥१८॥

हे महाराज ! यह इतना घोर युद्ध प्रवृत्त हुआ कि जो देखने और सुनने में भी भयङ्कर था । यह बड़ा ही घोर और विचित्र युद्ध माना गया ॥१८॥

सर्वेषां तत्र भूतानां लोमहर्षोऽभ्यजायत ।
तद् दृष्ट्वा समरे कर्म कर्णशैनेययोर्नृप ॥१६॥

हे नृप ! कर्ण और शिनि पौत्र सात्यकि के इस वीर कर्म को देख कर वहाँ सारे प्राणियों के शरीर में रोमाञ्च खड़े होने लगे ॥१६॥

एतस्मिन्नन्तरे द्रौणिरभ्ययात्सुमहाबलम् ।
पार्षतं शत्रुदमनं शत्रुवीर्यासुनाशनम् ॥२०॥

इसी समय महाबली, शत्रु के पराक्रम और प्राणों के नाशक पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न पर वेग से अश्वत्थामा ने आक्रमण किया ॥२०॥

अभ्यभाषत संक्रुद्धो द्रौणिः परपुरञ्जयः ।
तिष्ठतिष्ठाद्य ब्रह्मघ्न न मे जीवन्विमोक्ष्यसे ॥२१॥

शत्रुनाशक द्रोण पुत्र अश्वत्थामा, बड़े क्रोध में भरे हुए थे वे बोले—अरे ब्रह्मघ्न ! धृष्टद्युम्न ! तुम खड़े रहो । अब मेरे सामने से जीते बच कर नहीं जा सकते हो ॥२१॥

इत्युक्त्वा सुभृशं वीरं शीघ्रकृन्निशितैः शरैः ।
पार्षतं छादयामास घोररूपैः सुतेजनैः ॥२२॥

हे राजन् ! इतना कहकर शीघ्रता करने वाले बल पूर्वक प्रयत्न शील अश्वत्थामा ने अत्यन्त तीक्ष्ण घोर रूपधारी बाण

अत्यन्त प्रयत्न करने वाले महावीर धृष्टद्युम्न पर छोड़ना आरम्भ किया ॥२२॥

यतमानं परं शक्त्या यतमानो महारथः ।
यथा हि समरे द्रोणः पार्षतं वीक्ष्य मारिष ॥२३॥
तथा द्रौणिं रणे दृष्ट्वा पार्षतः परवीरहा ।
नातिहृष्टमना भूत्वा मन्यते मृत्युमात्मनः ॥२४॥

हे आर्य ! जिस तरह रणमें द्रोणाचार्य ने धृष्टद्युम्न को देखा उसी तरह शत्रुवीर नाशक धृष्टद्युम्न ने भी रण में द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को देखा। अश्वत्थमा को अपनी मौत समझ कर धृष्टद्युम्न इस समय अत्यन्त प्रसन्न दिखाई नहीं देता था ॥२-२४॥

स ज्ञात्वा समरेऽऽत्मानं शस्त्रेणावध्यमेव तु ।
जवेनाभ्याययौ द्रौणिं कालः कालमिव क्षये ॥२५॥

रण में धृष्टद्युम्न अपने को अवध्य समझता था इस लिए प्रलय काल में उपस्थित काल की तरह बड़े वेग के साथ उसने अश्वत्थामा पर आक्रमण किया ॥२५॥

द्रौणिस्तु दृष्ट्वा राजेन्द्र धृष्टद्युम्नमवस्थितम् ।
क्रोधेन निःश्वसन्वीरः पार्षतं समुपाद्रवत् ॥२६॥
तावन्योन्यं तु दृष्ट्वैवसंरम्भं जग्मतुः परम् ।

हे राजेन्द्र ! द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने जब अपने सन्मुख धृष्टद्युम्न को देखा तो यह वीर, अपने पिता के नाशक पर्षत वंश

वीर धृष्टद्युम्न पर वेग से झपटा। इस समय यह बड़े क्रोध से श्वास ले रहा था। ये दोनों परस्पर एक दूसरे को देख कर बड़े ही आवेश में भर गए ॥२६॥

अथाब्रवीन्महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ॥२७॥

धृष्टद्युम्नं समीपस्थं त्वरमाणो विशाम्पते।

हे महाराज! प्रजापालक! अब प्रतापी द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने समीप में ही स्थित पाण्डव सेनापति धृष्टद्युम्न से बड़ी शीघ्रता से यह वचन कहा ॥२७॥

पाञ्चालापसदाद्य त्वां प्रेषयिष्यामि मृत्यवे ॥२८॥

पापं हि यत्त्वया कर्म घ्नता द्रोणं पुरा कृतम्।

अरे नीच! पञ्चाल वीर! तूने पूर्वकाल में द्रोण को मार कर बड़ा ही पाप कर्म किया है–इस लिए आज मैं तुझे मृत्यु के अधीन किये देता हूं ॥२८॥

अद्य त्वां तप्स्यते तद्वै यथा न कुशलं तथा ॥२९॥

अरक्ष्यमाणः पार्थेन यदि तिष्ठसि संयुगे।

नापक्रामसि वा मूढ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥३०॥

आज तुम्हारा वही पाप कर्म, तुम्हें सन्तापित करेगा। अब तुम अपनी कुशल न समझो। यदि तुम अर्जुन से अरक्षित होकर युद्ध करोगे-या रण से भाग निकलोगे-तो कभी जीवित न बच सकोगे। हे मूढ़! यह मैं सत्य कह रहा हूं ॥२९-३०॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच धृष्टद्युम्नः प्रतापवान् ।
प्रतिवाक्यं स एवासिर्मामको दास्यते तव ॥३१॥
येनैव ते पितुर्दत्तं यतमानस्य संयुगे ।

जब अश्वत्थामा ने इतना कहा तो महा प्रतापी धृष्टद्युम्न ने कहा—कि मैं कुछ बकवाद करना नहीं चाहता। मेरी तो यह तलवार ही इस बात का उत्तर देगी। इसी तलवार ने बड़ा पराक्रम करने वाले तुम्हारे पिता द्रोण को उसकी बात का उत्तर दिया था ॥३१॥

यदि तावन्मया द्रोणो निहतो ब्राह्मणब्रुवः ॥३२॥
त्वामिदानीं कथं युद्धे न हनिष्यामि विक्रमात् ।

यदि मैंने रणाङ्गण में ब्राह्मणत्व से गिरे हुए द्रोणाचार्य को मार लिया-तो उसी बल से आज युद्ध में तेरा मार लेना क्या कठिन बात है ॥३२॥

एवमुक्त्वा महाराज, सेनापतिरमर्षणः ॥३३॥
निशितेनाथ बाणेन द्रौणिं विव्याध पार्षतः ।

हे महाराज! किसी के भी कटुवचनों को नहीं सहने वाले पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न ने इतना कहकर अपने तीक्ष्ण बाण से द्रोण पुत्र अश्वत्थामा को बींध दिया ॥३३॥

ततो द्रौणिः सुसंक्रुद्धः शरैः संनतपर्वभिः ॥३४॥
आच्छादयद्दिशो राजन्धृष्टद्युम्नस्य संयुगे ।

हे राजन् ! अब द्रोण-सुत अश्वत्थामा भी क्रोधातुर हो गए और उन्होंने अत्यन्त नतपर्व वाले बाण उठा कर रणाजिर में धृष्टद्युम्न को आच्छादित कर दिया ॥३४॥

नैवान्तरिक्षं न दिशो नापि योधाः समन्ततः ॥३५॥

दृश्यन्ते वै महाराज शरैश्छन्नाः सहस्रशः ।

हे महाराज ! अब न तो आकाश, न दिशा, और न योधा ही दिखाई देते थे। इस समय तो सहस्रों की संख्या में वीर बाणों से आच्छादित हो रहे थे ॥३५॥

तथैव पार्षतो राजन्द्रौणिमाहवशोभिनम् ॥३६॥

शरैः संछादयामास सूतपुत्रस्य पश्यतः ।

हे राजन्! सूत-सुत कर्ण के देखते २ रण में सुन्दर दिखाई देने वाले द्रोण-तनय अश्वत्थामा को द्रुपद-पुत्र धृष्टद्युम्न ने अपने बाणों से बिलकुल ढक दिया ॥३६॥

राधेयोऽपि महाराज पञ्चालान्सह पाण्डवैः ॥३७॥

द्रौपदेयान्युधामन्युं सात्यकिं च महारथम् ।

एकः संवारयामास प्रेक्षणीयः समन्ततः ॥३८॥

हे महाराज ! राधा पुत्र कर्ण भी अकेला ही पाण्डव वीरों के साथ पञ्चाल तथा द्रौपदी पुत्र महारथी युधामन्यु और सात्यकि को रोकने लगा इस समय कर्ण रण में बड़ा ही दर्शनीय दिखाई देता था ॥३७-३८॥

धृष्टद्युम्नस्तु समरे द्रौणेश्चिच्छेद कार्मुकम् ।
तदपास्य धनुर्द्रौणिरन्यदादाय कार्मुकम् ॥३९॥
वेगवान्समरे घोरे शरांश्चाशीविषोपमान् ।

अब महारथी धृष्टद्युम्न ने अश्वत्थामा के धनुष को काट गिराया। अश्वत्थामा ने उस खण्डित धनुष को फैंक दिया और दूसरा धनुष उठा लिया। इसके बाद उस वेगशाली अश्वत्थामा ने उस घोर संग्राम में आशीविष सर्प के समान तीक्ष्ण बाण छोड़ना आरम्भ किया ॥३९॥

स पार्षतस्य राजेन्द्र धनुः शक्तिगदां ध्वजम् ॥४०॥
हयान्सूतं रथं चैव निमेषाद्व्यधमच्छरैः ।

हे राजेन्द्र ! अश्वत्थामा ने पर्षतवंश श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न के धनुष, शक्ति, गदा और ध्वजा को काट गिराया और थोड़ी ही देर में उस के रथ के अश्व और सारथि को अपने बाणों से आच्छादित कर दिया ॥४०॥

सच्छिन्नधन्वा विरथो हताश्वो हतसारथिः ॥४१॥
खड्गमादत्त विपुलं शतचन्द्रं च भानुमत् ।

जब धृष्टद्युम्न का धनुष कट गया और वह रथहीन हो गया-उस के अश्व और सारथी मारे गये–तो अबउस ने एक विशाल तलवार चमकीली और शतचन्द्र संज्ञक ढ़ाल उठाई ॥४१॥

द्रौणिस्तदपि राजेन्द्र भल्लैः क्षिप्रं महारथः ॥४२॥
चिच्छेद समरे वीरः क्षिप्रहस्तो दृढायुधः ।
रथादनवरूढस्य तदद्भुतमिवाभवत् ॥४३॥

हे राजेन्द्र ! द्रोणसुत अश्वत्थामा दृढ़ धनुषधारी शीघ्रता से बाण फेंकने में समर्थ, महारथी वीर था। उसने झट पट रण में अपने भल्ल संज्ञक बाणों से उसकी तलवार को काट गिराया। यह सब कुछ उसने अपने रथ से नीचे उतर कर ही किया। जिस को सारे वीरों ने बड़ा ही अद्भुत वीर कर्म समझा ॥४२-४३॥

धृष्टद्युम्नं हि विरथं हताश्वं छिन्नकार्मुकम् ।
शरैश्च बहुधा विद्धमस्त्रैश्च शकलीकृतम् ॥४४॥
नाशकद्भरतश्रेष्ठ यतमानो महारथः ।

हे भरत श्रेष्ठ ! धृष्टद्युम्न रथ से हीन हो रहा था। उस के अश्व मारे जा चुके और धनुष के टुकड़े हो गए थे तथा उस का शरीर अस्त्र और बाणों से बहुत ही जर्जरित हो चुका-तो भी महारथी अश्वत्थामा अपना बड़ा बल लगा कर उस पर अधिकार (क़ाबू) नहीं कर सका ॥४४॥

तस्यान्तमिषुभी राजन्यदा द्रौणिर्न जग्मिवान् ॥४५॥
अथ त्यक्त्वा धनुर्वीरः पार्षतं त्वरितोऽन्वगात् ।

आसीदाप्लवतो वेगस्तस्य राजन्महात्मनः ॥४६॥
गरुडस्येव पततो जिघृक्षोः पन्नगोत्तमम् ।

हे राजन्! जब द्रोण तनय अश्वत्थामा अपने बाणों से धृष्टद्युम्न का अन्त न कर सका तो वह वीर अपने धनुष को डाल कर वेग से धृष्टद्युम्न पर झपटा । जिस समय यह महारथी आक्रमण कर रहा था इस समय इस के दौड़ने का वेग ऐसा तीव्र था जैसे किसी विषैले सर्प को पकड़ने को गरुड़ झपट रहा हो ॥४५-४६॥

एतस्मिन्नेव काले तु माधवोऽर्जुनमब्रवीत् ॥४७॥
पश्य पार्थ यथा द्रौणिः पार्षतस्य वधं प्रति ।
यत्नं करोति विपुलं हन्याच्चैनं न संशयः ॥४८॥
तं मोचय महाबाहो पार्षतं शत्रुकर्शन ।
द्रौणेरास्यमनुप्राप्तं मृत्योरास्यगतं यथा ॥४९॥

हे राजन ! इसी समय श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा-हे कुन्ति पुत्र ! तुम देख नहीं रहे हो, कि धृष्टद्युम्न के मार देने को अश्वत्थामा कितना तीव्र प्रयत्न कर रहा है यह इस को अवश्य मार लेगा इस में सन्देह न समझो हे महाबाहो ! शत्रुकर्शन ! तुम पर्षत वंश श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न को बचाओ । यह तो अश्वत्थामा के मुख में क्या ? मानो मृत्यु के मुख में ही पहुंच गया है ॥४७-४९॥

एवमुक्त्वा महाराज वासुदेवः प्रतापवान् ।
प्रैषयत्तुरगांस्तत्र यत्र द्रौणिर्व्यवस्थितः ॥५०॥

हे महाराज! महा शक्तिशाली वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण ने इतना कह कर अपने अश्वों को उधर ही चलाया जिधर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा युद्ध कर रहा था ॥५०॥

ते हयाश्चन्द्रसङ्काशाः केशवेन प्रचोदिताः ।
आपिवन्त इव व्योम जग्मुर्द्रौणिरथं प्रति ॥५१॥

श्रीकृष्ण से हांके हुए चन्द्रमा के समान उज्जवल आकाश को मानो गड़प करते हुए वे अश्वत्थामा के रथ की ओर वेग से झपटे ॥५१॥

दृष्ट्वायातौ महावीर्यावुभौ कृष्णधनञ्जयौ ।
धृष्टद्युम्नवधे यत्नं चक्रे राजन्महाबलः ॥५२॥

हे राजन! जब महाबली अश्वत्थामा ने देखा कि श्रीकृष्ण और अर्जुन वेग से दौड़े चले जा रहे हैं तो उसने उनके आने से पूर्व ही धृष्टद्युम्न के मार देने का बड़ा भारी प्रयत्न किया ॥५२॥

विकृष्यमाणं दृष्ट्वैव धृष्टद्युम्नं नरेश्वर ।
शरांश्चिक्षेप वै पार्थो द्रौणिं प्रति महाबलः ॥५३॥

हे नरेश्वर! जब अर्जुन ने धृष्टद्युम्न को धकेला हुआ देखा तो महाबली अर्जुन ने दूर से ही अश्वत्थामा पर बाण फेंकना आरम्भ किया ॥५३॥

ते शरा हेमविकृता गाण्डीवप्रेषिता भृशम् ।
द्रौणिमासाद्य विविशुर्वल्मीकमिवपन्नगाः ॥५४॥

हे राजन्! सुवर्णमय गाण्डीव से छोड़े हुए अर्जुन के बाण अश्वत्थामा के शरीर में इस तरह घुसने लगे जैसे वल्मीक में सर्प घुस रहे हों ॥५४॥

स विद्धस्तैः शरैर्घोरैर्द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
उत्सृज्य समरे राजन्पाञ्चाल्यममितौजसम् ॥५५॥
रथमारुरुहे वीरो धनञ्जयशरार्दितः ।
प्रगृह्य च धनुः श्रेष्ठं पार्थं विव्याध सायकैः ॥५६॥

हे राजन्! महा प्रतापी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा जब इन घोर अर्जुन के बाणों से क्षत विक्षित हो गए तो वे अत्यन्त तेजस्वी पञ्चाल वीर धृष्टद्युम्न को छोड़ कर अपने रथ पर जा चढ़े इस समय वे अर्जुन के बाणों से अत्यन्त व्याकुल हो रहे थे। अब उन्हों ने धनुष उठाया और अपने बाणों से अर्जुन को छेदना आरम्भ किया ॥५५-५६॥

एतस्मिन्नन्तरे वीरः सहदेवो जनाधिप ।
अपोवाह रथेनाजौ पार्षतं शत्रुतापनम् ॥५७॥

हे जनाधिप ! इसी बीच में वीर श्रेष्ठ सहदेव आ पहुंचे और वे अपने रथ के द्वारा शत्रुतापी पर्षत वीर धृष्टद्युम्न को रण से दूर ले गए ॥५७॥

अर्जुनोऽपि महाराज द्रौणिं विव्याध पत्रिभिः।

तं द्रोणपुत्रः संक्रुद्धो बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥५८॥

हे महाराज! अर्जुन ने भी अपने बाणों से द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को बहुत छेद दिया। द्रोण-सुत अश्वत्थामा भी अब बहुत ही क्रोधातुर हो गए और उसने भी अर्जुन की भुजा और छाती में बाण मारे ॥५८॥

क्रोधितस्तु रणे पार्थो नाराचं कालसंमितम्।

द्रोणपुत्राय चिक्षेप कालदण्डमिवापरम् ॥५९॥

ब्राह्मणस्यांसदेशे स निपपात महाद्युति।

इस समय कुपित किये हुए अर्जुन ने काल के समान भीषण बाण को द्रोण पुत्र अश्वत्थामा पर इस तरह छोड़ा-जैसे मृत्यु का दूसरा दण्ड हो। वह महा चमकीला बाण ब्राह्मण श्रेष्ठ अश्वत्थामा के कन्धे में घुसता चला गया ॥५९॥

स विह्वलो महाराज शरवेगेन संयुगे ॥६०॥

निपसाद रथोपस्थे वैक्लव्यं च परं ययौ।

हे महाराज! इस महाघोर रण में वेग के साथ छोड़े हुए बाण से अश्वत्थामा बिलकुल विकल हो गया और वह रथ के मध्य में व्यथित होकर गिर गया और बड़ा छटपटाने लगा ॥६०॥

ततः कर्णो महाराज व्याक्षिपद्विजयं धनुः ॥६१॥
अर्जुनं समरे क्रुद्धः प्रेक्षमाणो मुहुर्मुहुः ।
द्वैरथं चापि पार्थेन कामयानो महारणे ॥६२॥

हे महाराज ! अब महारथी कर्ण अपने विजय नामक धनुष को कंपाते हुए वहां पहुंचे, जहां अपनी बड़ी क्रोध दृष्टि से बार २ रण में अर्जुन की ओर देख रहे थे इस घोर संग्राम में महारथी कर्ण अब अर्जुन के साथ केवल अपना युद्ध चाह रहे थे ॥६१-६२॥

विह्वलं तं तु वीक्ष्याथ द्रोणपुत्रं च सारथिः ।
अपोवाह रथेनाजौ त्वरमाणो रणाजिरात् ॥६३॥

हे राजन् ! अब रण में द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को व्याकुल देखकर उसका सारथि बड़े वेग से उसे अपने रथ के द्वारा रणाजिर से बाहर ले गया ॥६३॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पञ्चालैर्जितकाशिभिः ।
मोक्षितं पार्षतं दृष्ट्वा द्रोणपुत्रं च पीडितम् ॥६४॥
वादित्राणि च दिव्यानि प्रावाद्यन्त सहस्रशः ।
सिंहनादांश्च चक्रुस्ते दृष्ट्वा सङ्ख्ये तदद्भुतम् ॥६५॥

हे महाराज ! पर्षतवंश श्रेष्ठ धृष्टद्युम्न को अश्वत्थामा के चंगुल से मुक्त और अश्वत्थामा को स्वयं पीड़ित देख कर विजय की आशा वाले पञ्चाल वीर बड़ी ही गर्जना करने

लगे वे सहस्रों की संख्या में दिव्य बाजे बजाने लगे। इस रण में पञ्चाल वीर अनेक प्रकार से सिंहनाद करने लगे जो एक बड़ा ही अद्भुत दृश्य था ॥६४-६५॥

एवं कृत्वाब्रवीत्पार्थो वासुदेवं धनञ्जयः ।
याहि संशप्तकान्कृष्ण कार्यमेतत्परं मम ॥६६॥

इतना करके कुन्ति पुत्र अर्जुन ने वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण से कहा हे कृष्ण! अब तुम फिर संशप्तक वीरों की ओर चलो-इन वीरों का मार लेना मेरा प्रधान कार्य है ॥६६॥

ततः प्रयातो दाशार्हः श्रुत्वा पाण्डवभाषितम् ।
रथेनातिपताकेन मनोमारुतरंहसा ॥६७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि द्रौण्यपयाने ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥५६॥

हे राजन्! पाण्डु-पुत्र अर्जुन के ये वचन सुन कर दशार्हवंशश्रेष्ठ, श्रीकृष्ण, मन और वायु के तुल्य वेग शाली, पताकाओं से सुन्दर रथके द्वारा संशप्तक वीरों की ओर चल दिये ॥६७॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में धृष्टद्युम्न और अश्वत्थामा, के युद्ध के वर्णन का उनसठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



साठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

एतस्मिन्नन्तरे कृष्णः पार्थं वचनमब्रवीत् ।
दर्शयन्निव कौन्तेयं धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा हे राजन् ! इसी समय कुन्ति पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर को दिखाते हुए श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह वचन कहा ॥१॥

एष पाण्डव ते भ्राता धार्तराष्ट्रैर्महाबलैः ।
जिघांसुभिर्महेष्वासैर्द्रुतं पार्थोऽनुसार्यते ॥२॥
तं चानुयान्ति संरब्धाः पाञ्चाला युद्धदुर्मदाः ।
युधिष्ठिरं महात्मानं परीप्सन्तो महाबलाः ॥३॥

हे पाण्डव ! देखो ? तुम्हारे भ्राता धर्मराज को मार देने के लिए ये महाबली, महा धनुर्धर, कौरव वीर वेग से उन का पीछा कर रहे हैं । युद्ध में दुर्मद, महाबली पाञ्चाल वीर भी राजा युधिष्ठिर की रक्षा के उद्देश्य से बड़े आवेश से उनके पीछे लपके जा रहे हैं ॥२-३॥

एष दुर्योधनः पार्थ रथानीकेन दंशितः ।
राजा सर्वस्य लोकस्य राजानमनुधावति ॥४॥
जिघांसुः पुरुषव्याघ्र भ्रातृभिः सहितो बली ।
आशीविषसमस्पर्शैः सर्वयुद्धविशारदैः ॥५॥

हे अर्जुन! यह रथों की सेना से सुसज्जित सारे संसार का स्वामी राजा दुर्योधन भी धर्मराज का पीछा करता हुआ लपका चला जा रहा है। हे पुरुष व्याघ्र! यह धर्मराज को मार देना चाहता है और इस समय यह अपने भाइयों के साथ होने से और भी विशेष बल सम्पन्न हो रहा है। ये सारे इस के भ्राता सर्प के स्पर्श के समान भीषण और युद्ध में विशारद हैं ॥४-५॥

एते जिघृक्षवो यान्ति द्विपाश्वरथपत्तयः।
युधिष्ठिरं धार्तराष्ट्रा नरोत्तममिवार्थिनः ॥६॥

हे अर्जुन! धृतराष्ट्र पुत्र के पक्षपाती ये गजारोही, रथारोही, अश्वारोही और पैदल वीर धर्मराज युधिष्ठिर को पकड़ने को इस तरह चले जा रहे हैं—जैसे किसी कार्य की अभिलाषा में तत्पर पुरुष किसी दयालु पुरुष के समीप जा रहे हों ॥६॥

पश्य सात्वतभीमाभ्यां निरुद्धा धिष्ठिताः पुनः।
जिहीर्षवोऽमृतं दैत्या शक्राग्निभ्यामिवासकृत् ॥७॥

हे अर्जुन! देखो? कौरव वीरों को भीमसेन और सात्यकि किस तरह रोक कर उन पर अधिकार प्राप्त किये हुए हैं जैसे-अमृत को ले जाने वाले दैत्यों को इन्द्र और अग्नि बार २ रोक रहे हों ॥७॥

एते बहुत्वात्त्वरिताः पुनर्गच्छन्ति पाण्डवम्।
समुद्रमिव वार्योघाः प्रावृट्काले महारथाः ॥८॥

ये कौरव महारथी अधिक सङ्ख्या में हैं-इसी से फिर शीघ्रता से पाण्डु पुत्र धर्मराज की ओर इस तरह बढ़ आए हैं जैसे-वर्षा काल में जल प्रवाह समुद्र की ओर बढ़ता है ॥८॥

मदन्तः सिंहनादांश्च धमन्तश्चापि वारिजान् ।
बलवन्तो महेष्वासा विधुन्वन्तो धनूंषि च ॥६॥

ये महाधनुर्धर बलवान् कौरव वीर सिंहनाद कर रहे हैं शंखों को बजा रहे हैं। और बार बार धनुषों को कंपित कर रहे हैं ॥१०॥

मृत्योर्मुखगतं मन्ये कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
हुतमग्नौ च कौन्तेयं दुर्योधनवशं गतम् ॥१०॥

हे अर्जुन! इस समय मैं कुन्ति पुत्र राजा युधिष्ठिर को मृत्यु के मुख और अग्नि में डाले हुए के तुल्य समझ रहा हूँ। बस ? धर्मराज अब राजा दुर्योधन के वश में हुए जाते हैं ॥११॥

यथाविधमनीकं तु धार्तराष्ट्रस्य पाण्डव ।
नास्य शक्रोऽपि मुच्येत सम्प्राप्तो बाणगोचरम् ॥११॥

हे अर्जुन! धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन की सेना का ऐसा व्यूह बना हुआ है। जो इस समय इन्द्र भी बाण के गोचर हो जावें-तो इस से इन्द्र भी छुटकारा नहीं पा सकता है ॥११॥

दुर्योधनस्य वीरस्य शरौघाञ्शीघ्रमस्यतः ।
संक्रुद्धस्यान्तकस्येव को वेगं संसहेद्रणे ॥१२॥

इस महावीर राजा दुर्योधन के शीघ्रता पूर्वक बाण समूह के फैंकने और काल की तरह कुपित होने पर रण में कौन इस के वेग को सह सकता है ॥१२॥

दुर्योधनस्य वीरस्य द्रौणेः शारद्वतस्य च।
कर्णस्य चेषुवेगो वै पर्वतानपि शातयेत् ॥१३॥

महावीर राजा दुर्योधन द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, शरद्वान् पुत्र कृपाचार्य, और कर्ण के बाणों का वेग पर्वतों को भी छिन्न भिन्न कर देता है ॥१३॥

कर्णेन च कृतो राजा विमुखः शत्रुतापनः।
बलवाँल्लघुहस्तश्च कृती युद्धविशारदः ॥१४॥
राधेयः पाण्डवश्रेष्ठं शक्तः पीडयितुं रणे।
सहितो धृतराष्ट्रस्य पुत्रैः शूरैर्महाबलैः ॥१५॥

शत्रुतापी राजा युधिष्ठिर को देखो? कर्ण ने युद्ध से विमुख बना दिया है। यह कर्ण बड़ा बलवान, शीघ्र हाथ चलाने वाला, अस्त्र विद्या में कुशल और युद्ध विशारद है। यह राधापुत्र कर्ण, पाण्डु पुत्र धर्मराज को सब तरह युद्ध में पीड़ित करने में समर्थ है। इस में यह विशेषता है कि अब वह राजा धृतराष्ट्र के शूरवीर महाबली पुत्रों से युक्त है ॥१४-१५॥

तस्यैभिर्युध्यमानस्य संग्रामे संशितात्मनः।
अन्यैरपि च पार्थस्य कृतं कर्म महारथैः ॥१६॥

उपवासकृशो राजा भृशं भरतसत्तमः ।
ब्राह्मे बले स्थितो ह्येष न क्षात्रे हि बले विभुः ॥१७॥

इस घोर युद्ध में पूर्वोक्त तथा अन्य महारथी वीरों के साथ युद्ध करते हुए महात्मा धर्मराज का यह बड़ा ही अद्भुत कर्म दिखाई देता है। यह भरत वंश श्रेष्ठ राजा युधिष्ठर, उपवासों से कृश हो रहा है। यह तो आज कल ब्राह्म बल में जितना आगे बढ़ रहा है उतना क्षात्र बल में नहीं बढ़ रहा है ॥१६-१७॥

कर्णेन चाभियुक्तोऽयं भूपतिः शत्रुतापनः ।
संशयं समनुप्राप्तः पाण्डवो वै युधिष्ठिरः ॥१८॥

शत्रुनाशक राजा युधिष्ठिर को कर्ण ने जा दबाया है। इस समय तो पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर बड़ी ही उलझन में उलझ गया सा प्रतीत होता है ॥१८॥

न जीवति महाराजो मन्ये पार्थ युधिष्ठिरः ।
यद्भीमसेनः सहते सिंहनादममर्षणः ॥१९॥
नर्दतां धार्तराष्ट्राणां पुनः पुनररिन्दमः ।
धमतां च महाशङ्खान्संग्रामे जितकाशिनाम् ॥२०॥

हे पार्थ ! मुझे तो यह सन्देह हो रहा है कि कहीं धर्मराज युधिष्ठिर इन दुष्टों ने मार न डाले हों। यही तो कारण दिखाई देता है। कि अरिनाशक भीमसेन बड़ा भारी असहिष्णु

हो कर भी कौरवों के सिंह नाद को चुप चाप सह रहा है। धृतराष्ट्र पुत्र बार २ गरज रहे हैं और विजय की लालसा से युक्त होकर शंख बजा रहे हैं और भीमसेन कुछ नहीं करता है ॥१९-२०॥

युधिष्ठिरं पाण्डवेयं हतेति भरतर्षभ।
सञ्चोदयत्यसौ कर्णो धार्तराष्ट्रान्महाबलान् ॥२१॥

हे भरतर्षभ! देखो? इधर कर्ण, महाबली धृतराष्ट्र वीरों को बार २ उत्साहित कर रहा है कि तुम आगे बढ़ो और पाण्डुपुत्र धर्मराज को मार गिराओ ॥२१॥

स्थूणाकर्णेन्द्रजालेन पार्थ पाशुपतेन च।
प्रच्छादयन्ति राजानं शस्त्रजालैर्महारथाः ॥२२॥

हे कुन्तिपुत्र! अर्जुन! यह देखो? कौरव महारथी, स्थूणा कर्णेन्द्र जाल, और पाशुपत, आदि अस्त्र जाल से राजा युधिष्ठिर को आच्छादित कर रहे हैं ॥२२॥

आतुरो हि कृतो राजा संनिषेव्यश्च भारत।
यथैनमनुवर्तन्ते पाञ्चालाः सह पाण्डवैः ॥२३॥

हे भारत! राजा युधिष्ठिर आतुर दिखाई पड़ते हैं। उनकी सेवा में पहुंचना चाहिए। देखो? इसी से पाण्डव वीरों के साथ अनेक पञ्चाल वीर उनकी रक्षा के लिए आगे बढ़े चले जा रहे हैं ॥२३॥

त्वरमाणास्त्वराकाले सर्वशस्त्रभृतां वराः ।
मज्जन्तमिव पाताले बलिनोऽप्युज्जिहीर्षवः ॥२४॥

यह देखो ! सारे शस्त्रधारी वीर योद्धा इस शीघ्रता के समय में बड़ी शीघ्रता के साथ पाताल में डूबते हुए बली दैत्य की तरह सेना में डूबते हुए राजा युधिष्ठिर का उद्धार करना चाहते हैं ॥२४॥

न केतुर्दृश्यते राज्ञः कर्णेन निहतः शरैः।
पश्यतोर्यमयोः पार्थ सात्यकेश्च शिखण्डिनः ॥२५॥
धृष्टद्युम्नस्य भीमस्य शतानीकस्य वा विभो ।
पञ्चालानां च सर्वेषां चेदीनां चैव भारत ॥२६॥

हे भारत ! अब तो राजा युधिष्ठिर की ध्वजा भी दिखाई नहीं देती। उसे तो कर्ण ने अपने बाण से काट गिराई-यह मालूम होता है। हे अर्जुन ! नकुल, सहदेव, सात्यकि शिखण्डी धृष्टद्युम्न, भीमसेन, शतानीक व सारे पञ्चाल और चेदी वीर तो इस दृश्य को सम्भवतः खड़े २ देखते रह गए हैं ॥२५-२६॥

एष कर्णो रणे पार्थ पाण्डवानामनीकिनीम् ।
शरैर्विध्वंसयति वै नलिनीमिव कुञ्जरः ॥२७॥

हे कुन्तिपुत्र ! इस रण में राजा कर्ण पाण्डवों की सेना को अपने बाणों से इस तरह कुचल रहा है । जैसे हाथी कमलिनी वन को कुचल डालता है। ॥२७॥

एते द्रवन्ति रथिनस्त्वदीयाः पाण्डुनन्दन ।
पश्य पश्य यथा पार्थ गच्छन्त्येते महारथाः ॥२८॥

हे पाण्डु-नन्दन ! अर्जुन ! ये तुम्हारे पक्ष के रथी वीर भाग रहे हैं । ये महारथी जिस तरह भाग रहे हैं, उनकी तुम चेष्टाओं को तो देखो ॥२८॥

एते भारत मातङ्गाः कर्णेनाभिहताः शरैः ।
आर्तनादान्विकुर्वाणा विद्रवन्ति दिशो दश ॥२९॥

हे भारत ! ये हाथी, कर्ण के बाणों से आहत होकर चिंघाड़ मारते हुए दशों दिशाओं को भाग रहे हैं ॥२९॥

रथानां द्रवते वृन्दमेतच्चैव समन्ततः ।
द्राव्यमाणं रणे पार्थ कर्णेनामित्रकर्षिणा ॥३०॥

हे पार्थ ! शत्रुनाशक कर्ण द्वारा रण में भगाया हुआ यह-रथों का समूह, सब ओर भग रहा है ॥३०॥

हस्तिकक्ष्यां रणे पश्य चरन्तीं तत्र तत्र ह ।
रथस्थं सूतपुत्रस्य केतुं केतुमतां वर ॥३१॥

हे ध्वजा धारण करने वाले वीरों में श्रेष्ठ ? तुम हाथी की शृङ्खला के चिन्ह से संयुक्त इधर उधर फड़फड़ाती हुई ध्वजा और रथ पर स्थित झण्डे को तो देखो ॥३१॥

असौ धावति राधेयो भीमसेनरथं प्रति ।
किरञ्शरशतान्येव विनिघ्नंस्तव वाहिनीम् ॥३२॥

एतान्पश्य च पञ्चालान्द्राव्यमाणान्महारथान् ।
शक्रेणेव यथा दैत्यान्हन्यमानान्महाहवे ॥३३॥

हे अर्जुन ! यह राधा पुत्र कर्ण, सैंकड़ों बाण बरसाता और तुम्हारी सेना का नाश करता हुआ भीमसेन के रथ पर आक्रमण करने जा रहा है । तुम इस महा युद्ध में इन्द्र द्वारा भगाये हुए दैत्यों की तरह भागते हुए महारथी पञ्चालों को तो देखो ॥३२-३३॥

एष कर्णो रणे जित्वा पञ्चालान्पाण्डुसृञ्जयान् ।
दिशो विप्रेक्षते सर्वास्त्वदर्थमिति मे मतिः ॥३४॥

यह कर्ण, रण में पञ्चाल पाण्डव और सारे सृञ्जयों को जीत कर सब ओर दृष्टि फैंक रहा है सम्भवतः यह तुम्हें देख रहा है-ऐसा प्रतीत होता है ॥३४॥

पश्य पार्थ धनुः श्रेष्ठं विकर्षन्साधु शोभते ।
शत्रुं जित्वा यथा शक्रो देवसङ्घैः समावृतः ॥३५॥

हे पार्थ ! अपने शत्रुभूत दैत्यों को जीत कर देवों से घिरे हुए जैसे इन्द्र प्रतीत होते हैं उसी तरह अपने उत्तम धनुष को खैंचता हुआ कर्ण सुन्दर प्रतीत होता है ॥३५॥

एते नर्दन्ति कौरव्या दृष्ट्वा कर्णस्य विक्रमम् ।
त्रासयन्तो रणे पाण्डून्सृञ्जयांश्च समन्ततः ॥३६॥

ये सारे कौरव वीर, महारथी कर्ण के पराक्रम को देख कर रण में पाण्डव और सृञ्जय वीरों को सब तरह भयातुर करते हुए बड़ी भारी गर्जना कर रहे हैं ॥३६॥

एष सर्वात्मना पाण्डूंस्त्रासयित्वा महारणे।
अभिभाषति राधेयः सर्वसैन्यानि मानद ॥३७॥

हे मानद! इस महारण में सब तरह से पाण्डव वीरों को भयभीत कर के राधा पुत्र कर्ण, सारी सेनाओं से इस प्रकार कह रहा है ॥३७॥

अभिद्रवत भद्रं वो द्रुतं द्रवत कौरवाः ।
यथा जीवन्न वः कश्चिन्मुच्येत युधि सृञ्जयः ॥३८॥
तथा कुरुत संयत्ता वयं यास्याम पृष्ठतः ।
एवमुक्त्वा गतो ह्येष पृष्ठतो विकिरञ्छरान् ॥३९॥

हे कौरव वीरो! तुम दौड़ो और बड़ी शीघ्रतासे दौड़ो। देखो? कोई सृञ्जय वीर बच कर न निकल जावे। तुम सावधानी से ऐसा करो हम तुम्हारी सहायता में पीछे से चलते हैं। इतना कह कर बाण बरसाता हुआ कर्ण, देखो? उनके पीछे चल दिया है ॥३८-३९॥

पश्य कर्णरणे पार्थ श्वेतच्छत्रविराजितम् ।
उदयं पर्वतं यद्वच्छशाङ्केनाभिशोभितम् ॥४०॥
पूर्णचन्द्रनिकाशेन मूर्ध्नि च्छत्रेण भारत ।
ध्रियमाणेन समरे श्रीमच्छतशलाकिना ॥४१॥

हे पार्थ ! अब तुम रण में जरा कर्ण को देखो-कि वह पूर्ण चन्द्रमा के तुल्य, सैंकड़ों ताड़ी रूपी किरणों से संयुक्त अपने मस्तक पर सुशोभित छत्र से इतना सुन्दर प्रतीत होता है, मानो चन्द्रमा से युक्त उदय पर्वत सुशोभित हो रहा हो ॥४०-४१॥

एष त्वां प्रेक्षते कर्णः सकटाक्षं विशाम्पते ।
उत्तमं जवमास्थाय ध्रुवमेष्यति संयुगे ॥४२॥

हे विशाम्पते ! अर्जुन ! यह कर्ण तो वार २ दृष्टि उठा कर तुम्हारी ही ओर देख रहा है और बहुत ही तीव्रवेग को धारण करके रण में बढ़ा आरहा है ॥४२॥

पश्य ह्येनं महाबाहो विन्धुन्वानं महद्धनुः ।
शरांश्चाशीविषाकारान्विसृजन्तं महारणे ॥४३॥

हे महाबाहो ! तुम इस महायुद्ध में महाधनुष कंपाते हुए और आशीविष सर्प के तुल्य बाण परम्परा को छोड़ते हुए देखो ॥४३॥

असौ निवृत्तो राधेयो दृष्ट्वा ते वानरध्वजम् ।
प्रार्थयन्समरे पार्थ त्वया सह परन्तप ॥४४॥
वधाय चात्मनोऽभ्येति दीप्तास्यं शलभो यथा ।

हे परन्तप ! यह राधापुत्र कर्ण, तुम्हारी वानर ध्वजा को देखकर तुम्हारी ओर लौट आया है । यह अब तुम्हारे साथ युद्ध करने का अभिलाषी प्रतीत होता है । हे पार्थ ! दीप्त

मुख वाले अग्नि में गिरने वाले शलभ (पतङ्ग) की तरह यह तो अब अपने वध के निमित्त तुम्हारे पास आरहा है ॥४४॥

कर्णमेकाकिनं दृष्ट्वा रथानीकेन भारत ॥४५॥
रिरक्षिपुः सुसंवृत्तो धार्तराष्ट्रो निवर्तते ।

हे भारत ! रथ सेना के साथ कर्ण को अकेला जाता देखकर उसकी रक्षा के निमित्त सुसंगठित सेना के साथ धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन भी बढ़ा चला जाता है ॥४५॥

सर्वैः सहैभिर्दुष्टात्मा वध्यतां च प्रयत्नतः ॥४६॥
त्वया यशश्च राज्यं च सुखं चोत्तममिच्छता ।

हे अर्जुन ! यदि तुम यश राज्य, और उत्तम सुख की इच्छा करते हो तो इन दुष्ट वीरोंके साथ इस कर्ण का प्रयत्न-पूर्वक वध कर दो ॥ ४६ ॥

अदीनयोर्विश्रुतयोर्युवयोर्योत्स्यमानयोः ॥४७॥
देवासुरे पार्थ मृधे देवदानव योरिव ।
पश्यन्तु कौरवाः सर्वे तव पार्थ पराक्रमम् ॥४८॥

हे पार्थ ! तुम दोनों महापराक्रमी, प्रसिद्ध वीरों को देवासुर संग्राम में देव दानवों के तुल्य तुम्हारे युद्धको सारे वीर देखें, और सारे कौरव वीर तुम्हारे पराक्रम को देखकर चकित हो जावें ॥ ४७-४८ ॥

त्वां च दृष्ट्वातिसंरब्धं कर्णं च भरतर्षभ ।
असौ दुर्योधनः क्रुद्धो नोत्तरं प्रतिपद्यते ॥४९॥

हे भरतर्षभ! तुम को और कर्ण को अत्यन्त क्रोध में भरे हुए देखकर यह क्रोध में भरा हुआ दुर्योधन कुछ भी नहीं कर सकेगा॥ ४९ ॥

आत्मानं च कृतात्मानं समीक्ष्य भरतर्षभ।
कृतागसं च राधेयं धर्मात्मनि युधिष्ठिरे।
प्रतिपद्यस्व कौन्तेय प्राप्तकालमनन्तरम्॥५०॥

हे भरतर्षभ! अर्जुन! तुम अपने को सब दोषों से रहित और युद्ध में दक्ष समझ कर तथा राधापुत्र कर्ण को धर्मात्मा युधिष्ठिर का अपराधी जान कर-अब जो तुम्हें करना हो-उसे शीघ्र करो। अब तो तुम युद्ध में अपनी बुद्धि को दृढ़ करके रथियों के यूथ के पति कर्ण पर आक्रमण करो॥५०॥

आर्यां युद्धे मतिं कृत्वा प्रत्येहि रथयूथपम्।
पञ्च ह्येतानि मुख्यानि रथानां रथसत्तम॥५१॥
शतान्यायान्ति समरे बलिनां तिग्मतेजसाम्।
पञ्च नागसहस्राणि द्विगुणा वाजिनस्तथा॥५२॥
अभिसंहत्य कौन्तेय पदातिप्रयुतानि च।

हे रथसत्तम! अर्जुन, ये अत्यन्त तीव्र तेज वाले महाबली पांच सौ महारथी रण में सन्मुख आ रहे हैं। इनके साथ पांच हज़ार गजारोही, दश हज़ार अश्वारोही, और लाखों की संख्या में पैदल सैनिक इकट्ठे होकर आ रहे हैं॥ ५१-५२॥

अन्योन्यरक्षितं वीर बलं त्वामभिवर्तते ॥५३॥

द्रोणपुत्रं पुरस्कृत्य तच्छीघ्रं संनिषूदय ।

हे वीर! एक दूसरे से सुरक्षित यह सेना, जिसका सेनापति द्रोण पुत्र अश्वत्थामा है-तुम्हारी ओर आरहा है, तुम सबसे प्रथम इसका विनाश करो ॥ ५३ ॥

निकृत्यैतद्रथानीकं बलिनं लोकविश्रुतम् ॥५४॥

सूतपुत्रं महेष्वासं दर्शयात्मानमात्मना ।

उत्तमं जवमास्थाय प्रत्येहि भरतर्षभ ॥५५॥

अब तुम लोक में प्रसिद्ध बलसम्पन्न रथ सेना को पराजित करके महाधनुर्धर सूत-पुत्र कर्ण को अपना स्वयं पराक्रम दिखाओ। हे भरतर्षभ! तुम अत्यन्त वेग के साथ इस सेना पर आक्रमण करो ॥ ५४-५५ ॥

असौ कर्णः सुसंरब्धः पञ्चालानभिधावति ।

केतुमस्य हि पश्यामि धृष्टद्युम्नरथं प्रति ॥५६॥

समुपैष्यति पञ्चालानिति मन्ये परन्तप ।

यह कर्ण बड़ी उद्धता के साथ पंञ्चालों पर आक्रमण कर रहा है। मैं इसकी ध्वजाको देख रहाहूं, कि वह धृष्टद्युम्न के रथ की ओर बढ़ रही है। हे परन्तप! अर्जुन! यह थोड़ी ही देर में पञ्चालों के समीप पहुँच जावेगा ऐसा-मेरा खयाल है ॥५६ ॥

आचचक्षे प्रियं पार्थ तवेदं भरतर्षभ ॥५७॥
राजासौ कुशली श्रीमान्धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।

हे भरतर्षभ! अब मैं तुझे एक प्रिय वृत्तान्त सुना देना चाहता हूं कि श्रीमान् धर्म-पुत्र राजा युधिष्ठिर कुशल से हैं ॥५७॥

असौ भीमो महाबाहुः सन्निवृत्तश्चमूमुखे ॥५८॥
वृतः सञ्जय सैन्येन शैनेयेन च भारत ।
वध्यन्त एते समरे कौरवा निशितैः शरैः ॥५९॥
भीमसेनेन कौन्तेय पञ्चालैश्च महात्मभिः ।
सेना हि धार्तराष्ट्रस्य विमुखा विक्षरद्व्रणा ॥६०॥
विप्रधावति वेगेन भीमस्याभिहता शरैः ।

हे सञ्जय! यह महाबाहु भीमसेन लौटकर सेना के अग्रभाग पर शिनि-पौत्र सात्यकि और सेना के सहित स्थित है। हे भरत वंश श्रेष्ठ! अर्जुन यह देखो भीमसेन और पञ्चाल वीरों द्वारा तीक्ष्ण बाणों से कौरव मारे जारहे हैं। यह धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन की सेना भीमसेन के बाणों से आहत होकर अपने बाणों से रक्त टपकाती हुई रण से बिमुख हो गई और बड़े वेग से भागी चली जाती है ॥ ५८-६० ॥

विपन्नसस्येव मही रुधिरेण समुक्षिता ॥६१॥
भारती भरतश्रेष्ठ सेना कृपणदर्शना ।

हे भरत श्रेष्ठ ! यह कौरव सेना बड़ी ही हीन दशा को प्राप्त हो रही है। यह तो धान्य काट लेने पर रुधिर से भीगी हुई भूमि की तरह भयानक प्रतीत होती है ॥ ६१ ॥

निवृत्तं पश्य कौन्तेय भीमसेनं युधां पतिम् ॥६२॥
आशीविषमिव क्रुद्धं द्रावयन्तं वरूथिनीम् ।

हे कौन्तेय ! तुम योधाओं में श्रेष्ठ लौटे हुए भीमसेन को देखो, जो आशीविष सर्प की भाँति क्रुद्ध हुआ कौरव सेना को भगा रहा है ॥ ६२ ॥

पीतरक्तासितसितास्ताराचन्द्रार्कमण्डिताः ॥६३॥
पताका विप्रकीर्यन्ते छत्राण्येतानि चार्जुन ।
सौवर्णा राजताश्चैव तैजसाश्च पृथग्विधाः ॥६४॥
केतवोऽभिनिपात्यन्ते हस्त्यश्वं च प्रकीर्यते ।

हे अर्जुन देखो ! पीली, लाल, काली, श्वेत, तथा तारा चन्द्रमा और सूर्य के चिन्हों से युक्त पताकायें रण भूमि में बिखरी पड़ी हैं। इधर बहुत से छत्र फैले हुए दिखाई दे रहे हैं। सुवर्ण, चांदी, तथा लोहे, आदि की बनी केतु (झण्डियां) जहां तहां बिखरी हैं। इधर उधर सर्वत्र हाथी घोड़े मरे पड़े हैं ॥ ६३-६४ ॥

रथेभ्यः प्रपतन्त्येते रथिनो विगतासवः ॥६५॥
नानावर्णैर्हता बाणैः पञ्चालैरपलायिभिः ।
निर्मनुष्यान्गजानश्वान्रथांश्चैव धनञ्जय ॥६६॥

हे धनञ्जय! ये अनेक रथी वीर प्राणविहीन होकर अपने रथों से नीचे गिर रहे हैं। जिनको रणसे नहीं भागने वाले पञ्चालों ने अनेक वर्ण के बाणों से मार गिराया है। तथा गज अश्व और रथों को उनके सवारों से शून्य कर दिया है॥ ६५-६६॥

समाद्रवन्ति पाञ्चाला धार्तराष्ट्रांस्तरस्विनः।
विमृद्नन्ति नरव्याघ्रा भीमसेनबलाश्रयात्॥६७॥
बलं परेषां दुर्द्धर्षास्त्यक्त्वा प्राणानरिन्दम।

हे अरिमर्दन! ये तेजस्वी दुर्धर्ष पुरुष प्रवीर पञ्चाल वीर भीमसेन के बल से परिपुष्ट होकर शत्रु-सेना पर आक्रमण करते हैं और उसे कुचल देते हैं। इस समय इनको अपने प्राणों की भी परवाह नहीं है॥ ६७॥

एते नर्दन्ति पञ्चाला ध्मापयन्ति च वारिजान्॥६८॥
अभिद्रवन्ति च रणे मृद्नन्तः सायकैः परान्।

ये पञ्चाल वीर गर्जना करते हुए शंख बजा रहे हैं। और बाणों से शत्रुओं का विध्वन्स करते हुए उन पर आक्रमण करते हैं॥ ६८॥

पश्यस्वैषां च माहात्म्यं पञ्चाला हि पराक्रमात्॥६९॥
धार्तराष्ट्रान्विनिघ्नन्ति क्रुद्धाः सिंहा इव द्विपान्।

तुम इनके बलके गौरव को देखो-कि ये पञ्चाल वीर अपने पराक्रम का आश्रय लेकर मदोन्मत्त हाथियों को क्रुद्ध सिंहों की तरह धार्तराष्ट्रों की सेना को नष्ट-भ्रष्ट कर रहे हैं ॥ ६९ ॥

शस्त्रमाच्छिद्य शत्रूणां सायुधानां निरायुधाः ॥७०॥
तेनैवैतानमोघास्त्रान्निघ्नन्ति च नदन्ति च ।
शिरांस्येतानि पात्यन्ते शत्रूणां बाहवोऽपि च ॥७१॥

जब कभी पञ्चाल शस्त्र हीन हो जाते हैं, तो शस्त्रधारी शत्रुओं के शस्त्र छीन लेते हैं और उनही शस्त्रों से इन शस्त्रधारी शत्रुओं को मारते और गर्जना करते रहते हैं। ये शत्रुओं के शिर और भुजाओं को रणभूमि में लगातार गिरा रहे हैं ॥ ७०-७१ ॥

रथनागहया वीरा यशस्याः सर्व एव च ।
सर्वतश्चाभिपन्नैषा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥७२॥
पञ्चालैर्मानसादेत्य हंसैर्गङ्गेव वेगितैः ।
सुभृशं च पराक्रान्ताः पाञ्चालानां निवारणे ॥७३॥
कृपकर्णादयो वीरा ऋषभाणामिवर्षभाः ।

रथ, हाथी, अश्व, और यश उत्पन्न करने वाले वीरों से युक्त यह कौरव सेना, सब ओर से बुरी तरह विपत्ति में उलझ गई है। मानसरोवर से आने वाले वेगशाली हंस जैसे गङ्गा को मथ डालते हैं, उसी तरह पञ्चाल वीरों ने कौरव सेना मथ डाली। अब पञ्चालों के पीछे हटाने में कृप, कर्ण आदि वीर इस

तरह लगे हुए हैं जैसे सांडों के हटाने में दूसरे सांड लगे हों ॥७२-७३॥

भीमास्त्रेण सुनिर्भग्नान्धार्तराष्ट्रान्महारथान् ॥७४॥
धृष्टद्युम्नमुखा वीरा घ्नन्ति शत्रून्सहस्रशः।

भीमसेन के अस्त्रों से व्याकुल हुए, शत्रु भूत सहस्रों कौरव महारथियों को धृष्टद्युम्न आदि वीर मार २ कर दिखा रहे हैं ॥७४॥

पञ्चालेष्वभिभूतेषु द्विषद्भिरपभीर्नदन् ॥७५॥
शत्रुपक्षमवस्कन्ध शरानस्यति मारुतिः ।

जब शत्रुओं ने पञ्चाल सेना को दबा लिया था तब भय छोड़ कर गर्जना करता हुआ वायु-पुत्र भीमसेन ही शत्रु पक्ष पर आक्रमण करके उसे अपने बाणों से आच्छादित करता रहा ॥७५॥

विपरणभूयिष्ठतरा धार्तराष्ट्री महाचमूः ॥७६॥
रथाश्चैते सुवित्रस्ता भीमसेनभयार्दिताः।

अब धृतराष्ट्र-पुत्र दुर्योधन की यह सेना बहुत ही क्लेशित हो चुकी है और भीमसेन के भय से आतुर हुए ये कौरव रथी, बहुत घबरा गए हैं ॥७६॥

पश्य भीमेन नाराचैर्भिन्ना नागाः पतन्त्यमी ॥७७॥
वज्रिवज्रहतानीव शिखराणी धराभृताम् ।

देखो ? भीमसेन के नाराचों से चीरे हुए ये हाथी इस तरह गिर रहे हैं जैसे इन्द्र के वज्र से नष्ट होकर पर्वत के शिखर बिखर रहे हों ॥७७॥

भीमसेनस्य निर्विद्धा बाणैः सन्नतपर्वभिः ॥७८॥
स्वान्यनीकानि मृद्नन्तो द्रवन्त्येते महागजाः ।

भीमसेन के नतपर्व वाले बाणों से बिंधे हुए ये महागज अपनी सेना को कुचलते हुए भागे जा रहे हैं ॥७८॥

अभिजानीहि भीमस्य सिंहनादं सुदुःसहम् ॥७९॥
नदतोऽर्जुन संग्रामे वीरस्य जितकाशिनः ।

हे अर्जुन ! विजय की अभिलाषा वाले, रण में गर्जते हुए वीर भीमसेन के तुम इस दुःसह सिंहनाद को पहचान ही रहे होंगे ॥७९॥

एष नैषादिरभ्येति द्विपमुख्येन पाण्डवम् ॥८०॥
जिघांसुस्तोमरैः क्रुद्धो दण्डपाणिरिवान्तकः ।

यह देखो ? दण्डपाणि काल की भांति क्रोध में भरा हुआ कोई निषाद पुत्र, भीमसेन के मारने को तोमर शस्त्र धारण करके अपने महोद्धत हाथी द्वारा पाण्डु-पुत्र भीम पर आक्रमण कर रहा है ॥८०॥

सतोमरावस्य भुजौ छिन्नौ भीमेन गर्जतः ॥८१॥
तीक्ष्णैरग्निरविप्रख्यैर्नाराचैर्दशभिर्हतः ।
हत्वैनं पुनरायाति नागानन्यान्प्रहारिणः ॥८२॥

पश्य नीलाम्बुदनिभान्महामात्रैरधिष्ठितान् ।
शक्तितोमरसङ्घातैर्विनिघ्नन्तं वृकोदरम् ॥८३॥

भीमसेन ने गर्जना करते हुए इस निषाद वीर की तोमरों के सहित भुजाओं को काट गिराया है और अग्नि तथा सूर्य के समान चमकीले तीक्ष्ण दश बाणों से उसे मार भी डाला। इसको मारकर भीमसेन फिर अन्य प्रहार परायण हाथियों पर आक्रमण कर रहा है नीले मेघ के समान, महावतों से युक्त इन हाथियों को शक्ति और तोमर नामक शस्त्रों से मारते हुए-भीमसेन को तुम दृष्टि उठाकर देखो ॥८१-८३॥

सप्त सप्त च नागांस्तान्वैजयन्तीश्च सध्वजाः ।
निहत्य निशितैर्बाणैश्छिन्नाः पार्थाग्रजेन ते ॥८४॥

हे अर्जुन! तुम्हारे बड़े भ्राता भीमसेन ने अपने तीक्ष्ण बाणों से छेद २ कर एक दम सात २ हाथी, उनके झण्डे और पताकाओं के साथ रणभूमि में नष्ट-भ्रष्ट करके गिरा दिए हैं ॥८४॥

दशभिर्दशभिश्चैको नाराचैर्निहतो गजः ।
न चासौ धार्तराष्ट्राणां श्रूयते निनदस्तथा ॥८५॥

भीमसेन ने दश २ नाराच संज्ञक बाण छोड़कर प्रत्येक हाथी को मार गिराया है। अब धृतराष्ट्र पुत्र के वीरों का कहीं भी सिंहनाद नहीं सुनाई देता ॥८५॥

पुरन्दरसमे क्रुद्धे निवृत्ते भरतर्षभ ।
अक्षौहिण्यस्तथा तिस्रो धार्तराष्ट्रस्य संहताः।
क्रुद्धेन भीमसेनेन नरसिंहेन वारिताः ॥८६॥
न शक्नुवन्ति च पार्थं पार्थिवाः समुदीक्षितुम् ।
मध्यन्दिनगतं सूर्यं यथा दुर्बलचक्षुषः ॥८७॥

हे भरतर्षभ ! इन्द्र के समान क्रोध में भरे हुए भीमसेन के युद्ध में प्रवृत्त होने पर धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन की तीन अक्षौहिणी इकट्ठी सेना, अकेले क्रोध में भरे हुए पुरुष प्रवीर भीमसेन ने रोक ली है। अब यह कौरव पक्ष के राजा लोग भीमसेन की ओर आंख उठाकर भी इस तरह नहीं देख पाते हैं। जैसे दुःखिनी आंखों वाला मध्यान्हकाल के सूर्य की ओर नहीं देख सकता है ॥८६-८७॥

एते भीमस्य सन्त्रस्ताः सिंहस्येवेतरे मृगाः ।
शरैः सन्त्रासिताः सङ्ख्ये न लभन्ते सुखं क्वचित् ॥८८॥

ये कौरव वीर, भीमसेन द्वारा इस तरह भयातुर कर दिए जैसे सिंह, मृगों को भयभीत बना देता है। ये भीमसेन के बाणों से व्याकुल हुए कहीं भी शान्ति नहीं पा रहे हैं ॥८८॥

सञ्जय उवाच—

एतच्छ्रुत्वा महाबाहुर्वासुदेवाद्धनञ्जयः ।
भीमसेनेन तत्कर्म कृतं दृष्ट्वा सुदुष्करम् ॥८९॥
अर्जुनो व्यधमच्छिष्टानहितान्निशितैः शरैः ।

सञ्जय बोले- हे राजन् ! महाबाहु अर्जुन, श्रीकृष्ण से इतना सुनकर और भीमसेन द्वारा किया हुआ यह अत्यन्त दुष्कर वीर कर्म देख कर अर्जुन भी शेष शत्रुओं पर अपने तीखे बाण छोड़ने लगा ॥८६॥

ते वध्यमानाः समरे संशप्तकगणाः प्रभो ॥६०॥
प्रभग्नाः समरे भीता दिशो दश महाबलाः।
शक्रस्यातिथितां गत्वा विशोका ह्यभवंस्तदा ॥६१॥

हे प्रभो ! अर्जुन के बाणों से रण में मारे हुए महाबली संशप्तक गण, भयभीत होकर दशों दिशाओं को भाग निकले अब वे जब स्वर्ग में इन्द्र के अतिथि बन गए-तभी उनको शान्ति प्राप्त हो सकी ॥६०-६१॥

पार्थश्च पुरुषव्याघ्रः शरैः सन्नतपर्वभिः।
जघान धार्तराष्ट्रस्य चतुर्विधबलां चमूम् ॥६२॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कृष्णार्जुन संवादे षष्टितमोऽध्यायः ॥६०॥

हे राजन् ! अब कुन्ती पुत्र पुरुष श्रेष्ठ, अर्जुन, अपने नतपर्व वाले बाणों से राजा दुर्योधन की चतुरङ्गिणी सेना को मार २ कर नष्ट करने लगा ॥६२॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में कृष्ण और अर्जुन के सम्वाद का साठवां अध्याय समाप्त हुआ।

इकसठवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

निवृत्ते भीमसेने च पाण्डवे च युधिष्ठिरे।
वध्यमाने बले चापि मामके पाण्डुसृञ्जयैः ॥१॥
द्रवमाणे बलौघे च निरानन्दे मुहुर्मुहुः।
किमकुर्वन्तकुरवस्तन्ममाचक्ष्व सञ्जय ॥२॥

धृतराष्ट्र कहने लगे—हे सञ्जय ! जब लौट कर कौरव सेना में पाण्डु पुत्र भीमसेन और राजा युधिष्ठिर घुस आए और पाण्डव तथा सृञ्जय वीरों द्वारा हमारी सेना मारी जाने लगी तथा व्याकुल होकर कौरव सेना समूह भाग पड़ा-तो उस समय कौरव वीरों ने क्या किया-मुझे अब तुम यह बताओ ॥१-२॥

सञ्जय उवाच—

दृष्ट्वा भीमं महाबाहुं सूतपुत्रः प्रतापवान्।
क्रोधरक्तेक्षणो राजन्भीमसेनमुपाद्रवत ॥३॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! महाबाहु भीमसेन को देखकर महाप्रतापी सूत-पुत्र कर्ण के क्रोध से आंखें लाल हो उठी और उसने भीमसेन पर आक्रमण किया ॥३॥

तावकं तु बलं दृष्ट्वा भीमसेनात्पराङ्मुखम्।
यत्नेन महता राजन्पर्यवस्थापयद्बली ॥४॥

हे राजन् ! भीमसेन के कारण जो तुम्हारी सेना युद्ध से विमुख हो चली थी, महाबली कर्ण ने उसे जैसे तैसे प्रयत्न करके वहीं रोक दिया ॥४॥

व्यवस्थाप्य महाबाहुस्तव पुत्रस्य वाहिनीम् ।
प्रत्युद्ययौ तदा कर्णः पाण्डवान्युद्धदुर्मदान् ॥५॥

हे नृप ! महाबाहु, कर्ण, तुम्हारे पुत्र की सेना को वहीं रोक कर अब, युद्ध दुर्मद पाण्डवों पर वेग के साथ झपटा ॥५॥

प्रत्युद्ययुस्तु राधेयं पाण्डवानां महारथाः ।
धुन्वानाः कार्मुकाण्याजौ विक्षिपन्तश्च सायकान् ॥६॥

इसी तरह राधा-पुत्र कर्ण, पर पाण्डवों के महारथी भी रण में धनुष कंपाते हुए और बाणों को छोड़ते हुए वेग से दौड़े ॥६॥

भीमसेनः शिनेर्नप्ता शिखण्डी जनमेजयः ।
धृष्टद्युम्नश्च बलवान्सर्वे चापि प्रभद्रकाः ॥७॥
जिघांसन्तो नरव्याघ्राः समन्तात्तव वाहिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त संक्रुद्धाः समरे जितकाशिनः ॥८॥

भीमसेन, सात्यकि, शिखण्डी, जनमेजय, महाबली धृष्टद्युम्न सारे प्रभद्रक वीर तथा पुरुष प्रवीर तुम्हारी सेना को सब ओर से नष्ट करते हुए क्रोध-पूर्वक झपटे। इस समय उनको अपने विजय की बड़ी ही आशा हो रही थी ॥७-८

तथैव तावका राजन्पाण्डवानामनीकिनीम् ।
अभ्यद्रवन्त त्वरिता जिघांसन्तो महारथाः ॥६॥

हे राजन्! इसी तरह तुम्हारे पक्ष के भी महारथी वीर मार-काट मचाते हुए बड़े वेग से पाण्डवों की सेना पर झपटे ॥६॥

रथनागाश्वकलिलं पत्तिध्वजसमाकुलम् ।
बभूव पुरुषव्याघ्र सैन्यमद्भुतदर्शनम् ॥१०॥

हे पुरुष व्याघ्र! अब रथ, हाथी, और अश्वों से भरे हुए, पैदल और ध्वजाओं से व्याप्त, सारी सेना, अद्भुत दिखाई देने लगी ॥१०॥

शिखण्डी च ययौ कर्णं धृष्टद्युम्नः सुतं तव ।
दुःशासनं महाराज महत्या सेनया वृतम् ॥११॥

हे महाराज! इस युद्ध में शिखण्डी ने कर्ण पर और धृष्टद्युम्न ने बहुत अधिक सेना से संयुक्त तुम्हारे पुत्र दुःशासन पर आक्रमण किया ॥११॥

नकुलो वृषसेनं तु चित्रसेनं युधिष्ठिरः ।
उलूकं समरे राजन्सहदेवः समभ्ययात् ॥१२॥

हे राजन्! इस रण में नकुल ने वृषसेन, धर्मराज युधिष्ठिर ने चित्र सेन तथा सहदेव ने शकुनि पुत्र उलूक पर आक्रमण किया ॥१२॥

सात्यकिः शकुनिं चापि द्रौपदेयाश्च कौरवान् ।
अर्जुनं च रणे यत्तो द्रोणपुत्रो महारथः ॥१३॥

इसी तरह सात्यकि ने शकुनि, द्रौपदी पुत्रों ने कौरव वीर और महारथी द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अर्जुन पर आक्रमण किया ॥१३॥

युधामन्युं महेष्वासं गौतमोऽभ्यपतंद्रणे ।
कृतवर्मा च बलवानुत्तमौजसमाद्रवत् ॥१४॥
भीमसेनः कुरून्सर्वान्पुत्रांश्च तव मारिष ।
सहानीकान्महाबाहुरेक एव न्यवारयत् ॥१५॥

हे आर्य ! महाधनुर्धर युधामन्यु का गौतमगोत्रोत्पन्न कृपाचार्य ने, उत्तमौजा का बलवान कृतवर्मा ने, और कुरुवंश श्रेष्ठ सेना सहित तुम्हारे सारे पुत्रों का महाबाहु अकेले भीमसेन ने मुक़ाबिला किया ॥१४-१५॥

शिखण्डी तु ततः कर्णं विचरन्तम भीतवत् ।
भीष्महन्ता महाराज वारयामास पत्रिभिः ॥१६॥

हे महाराज, भीष्म के मारने वाले शिखण्डी ने निर्भीक भाव से रण में घूमते हुए कर्ण को अपने बाणों से वहीं रोक दिया ॥१६॥

प्रतिरुद्धस्ततः कर्णो रोषात्प्रस्फुरिताधरः ।
शिखण्डिनं त्रिभिर्बाणैर्भ्रुवोर्मध्येऽभ्यताडयत् ॥१७॥

जब कर्ण, शिखण्डी द्वारा रोक दिया गया-तो उसके क्रोध से ओष्ठ फड़फड़ाने लगे और उसने अब तीन बाण शिखण्डी की भ्रुओं के मध्य में मारे ॥१७॥

धारयंस्तु स तान्बाणाञ्शिखण्डी बह्व शोभत ।
राजतः पर्वतो यद्वत्त्रिभिः शृङ्गैरिवोत्थितैः ॥१८॥

उन तीनों बाणों को धारण करता हुआ शिखण्डी इस प्रकार सुशोभित होने लगा-जैसे चांदी का पर्वत अपने तीन उठे हुए शिखरों से सुन्दर प्रतीत हो रहा हो ॥१८॥

सोऽतिविद्धो महेष्वासः सूतपुत्रेण संयुगे ।
कर्णं विव्याध समरे नवत्या निशितैः शरैः॥१९॥

सूत पुत्र कर्ण द्वारा रण में आहत किये हुए महाधनुर्धर, शिखण्डी ने न०वे तीक्ष्ण बाण छोड़कर युद्ध में कर्ण को घायल कर दिया ॥१९॥

तस्य कर्णो हयान्हत्वा सारथिं च त्रिभिः शरैः ।
उन्ममाथ ध्वजं चास्य क्षुरप्रेण महारथः ॥२०॥

अब महारथी कर्ण ने उसके अश्वों को मार कर तीन बाणों से उस के सारथि को छेद डाला तथा क्षुर के सदृश बाण से उसकी ध्वजा काट गिराई ॥२०॥

हताश्वात्तु ततो यानादवप्लुत्य महारथः ।
शक्तिं चिक्षेप कर्णाय संक्रुद्धः शत्रुतापनः ॥२१॥

महारथी शत्रुतापी शिखण्डी ने मृत अश्व वाले रथ से कूद कर क्रोध-पूर्वक कर्ण पर शक्ति नामक शस्त्र को फैंका ॥२१॥

तां छित्वा समरे कर्णस्त्रिभिर्भारत सायकैः ।
शिखण्डिनमथाविध्यन्नवभिर्निशितैः शरैः॥२२॥

हे भारत ! कर्ण ने तीन बाण छोड़ कर उस शक्ति को रणभूमि में काट गिराया और फिर नौ तीक्ष्ण बाण छोड़ कर शिखण्डी को भी क्षत विक्षत कर डाला ॥२२॥

कर्णचापच्युतान्बाणान्वर्जयंस्तु नरोत्तमः !
अपयातस्ततस्तूर्णं शिखण्डी भृशविक्षतः ॥२३॥

नरप्रवीर शिखण्डी, कर्ण के धनुष से छोड़े हुए बाणों से जैसे तैसे बचता हुआ वहां से शीघ्र निकल गया। इस समय शिखण्डी बहुत ही घायल हो रहा था ॥२३॥

ततः कर्णो महाराज पाण्डुसैन्यान्यशातयत् ।
तूलराशिं समासाद्य यथा वायुर्महाबलः ॥२४॥

हे महाराज ! अब कर्ण, पाण्डु सेना को काट २ कर इस तरह उड़ाने लगा-जैसे रुई की ढेरी को महाबली वायु उड़ा देता है ॥२४॥

धृष्टद्युम्नो महाराज तव पुत्रेण पीडितः ।
दुःशासनं त्रिभिर्बाणैः प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ॥२५॥

हे महाराज ! तुम्हारे पुत्र दुःशासन द्वारा अत्यन्त पीड़ित हुए धृष्टद्युम्नने, दुःशासन की छाती में तीन बाणों से प्रहार किया ॥२५॥

तस्य दुःशासनो बाहुं सव्यं विव्याध मारिष ।
स तेन रुक्मपुङ्खेन भल्लेनानतपर्वणा ॥२६॥
धृष्टद्युम्नस्तु निर्विद्धः शरं घोरममर्षणः ।
दुःशासनाय संक्रुद्धः प्रेषयामास भारत ॥२७॥

हे आर्य गुण सम्पन्न ! भारत ! अब महारथी दुःशासन ने धृष्टद्युम्न की दांयी भुजा छेद डाली । नत पर्वधारी सुवर्ण मूल से युक्त भल्ल संज्ञक बाण से बिंधे हुए असहिष्णु धृष्टद्युम्नने अब एक घोर बाण क्रोध के साथ दुःशासन पर छोड़ा ॥२६-२७॥

आपतन्तं महावेगं धृष्टद्युम्नसमीरितम् ।
शरैश्चिच्छेद पुत्रस्ते त्रिभिरेव विशाम्पते ॥२८॥

हे विशाम्पते धृष्टद्युम्न से छोड़े हुए महावेगधारी इस बाण को आता देखकर तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने तीनबाणों से उसे काट गिराया ॥२८॥

अथापरैः सप्तदशैर्भल्लैः कनकभूषणैः ।
धृष्टद्युम्नं समासाद्य बाह्वोरुरसि चार्पयत् ॥२९॥

इसके बाद दुःशासन ने अन्य सुवर्ण विभूषित सतरह भल्ल संज्ञक बाण धृष्टद्युम्न के समीप पहुँचकर उसकी भुजा और छाती में मारे ॥२९॥

ततः स पार्षतः क्रुद्धो धनुश्चिच्छेद मारिष ।
क्षुरप्रेण सुतीक्ष्णेन तत उच्चुक्रुशुर्जनाः ॥३०॥

हे आर्य ! अब पर्वतवंश वीर धृष्टद्युम्न झल्ला उठा और उसने छुरे के सदृश तीक्ष्ण बाण छोड़ा, जिससे उसने दुःशासन का धनुष काटगिराया। इसको देखकर सारे वीर धृष्टद्युम्न की प्रशंसा करने लगे ॥३०॥

अथान्यद्धनुरादाय पुत्रस्ते प्रहसन्निव ।
धृष्टद्युम्नं शरव्रातैः समन्तात्पर्यवारयत् ॥३१॥

हे राजन् ! अब कुछ मुसकुराते हुए तुम्हारे पुत्र दुःशासन ने दूसरा धनुष उठाया और उससे शर समूह छोड़कर धृष्टद्युम्न को आच्छादित कर दिया ॥३१॥

तव पुत्रस्य ते दृष्ट्वा विक्रमं सुमहात्मनः ।
व्यस्मयन्त रणे योधा सिद्धाश्चाप्सरसां गणाः ॥३२॥

हे राजन् ! तुम्हारे पुत्र महावीर दुःशासन के इस पराक्रम को देखकर रण में अनेक योद्धा और सिद्ध तथा अप्सराओं के गण आश्चर्य करने लगे ॥३२॥

धृष्टद्युम्नं न पश्याम घटमानं महाबलम् ।
दुःशासनेन संरुद्धं सिंहेनेव महागजम् ॥३३॥

हे राजन् ! जिस तरह सिंह महागज को घेर लेता है उसी तरह दुःशासन द्वारा रोके हुए महाबली धृष्टद्युम्न को हम लोग वहां देख भी न सके ॥३३॥

ततः सरथनागाश्वाः पञ्चालाः पाण्डुपूर्वज ।
सेनापतिं परीप्सन्तो रुरुधुस्तनयं तव ॥३४॥

हे धृतराष्ट्र ! अब रथ, हाथी और अश्वों के सहित पञ्चाल वीर सेनापति धृष्टद्युम्न की रक्षा करने को तुम्हारे पुत्र दुःशासन को रोकने लगे ॥३४॥

ततः प्रववृते युद्धं तावकानां परैः सह ।
घोरं प्राणभृतां काले भीमरूपं परन्तप ॥३५॥

हे परन्तप ! अब तुम्हारे वीरों का शत्रु के वीरों के साथ प्रलय काल के दृश्य के समान घोर भयानक युद्ध होनेलगा॥३५॥

नकुलं वृषसेनस्तु भित्त्वा पञ्चभिरायसैः ।
पितुः समीपे तिष्ठन्वै त्रिभिरन्यैरविध्यत ॥३६॥

अब कर्ण पुत्र वृषसेन ने तीन लोहमय बाण छोड़ कर नकुल को घायल कर दिया । इस समय यह अपने पिता से सुरक्षित हो रहा था । इसने फिर तीन बाण छोड़कर और भी इसे व्याकुल कर दिया ॥३६॥

नकुलस्तु ततः शूरो वृषसेनं हसन्निव ।
नाराचेन सुतीक्ष्णेन विव्याध हृदये भृशम् ॥३७॥

अब शूरवीर नकुल ने भी कुछ हंसते २ कर्णपुत्र वृससेन की छाती में नाराच नामक बाण का गाढ़ा प्रहार किया ॥३७॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्षण ।
शत्रुं विव्याध विंशत्या स च तं पञ्चभिः शरैः॥३८॥

हे शत्रुनाशक! इस समय अपने बलवान् (नकुल) शत्रु द्वारा घायल किये हुए वृषसेन ने बीस बाण छोड़कर उसे आहत करदिया और उसने उसपर पाँच बाण छोड़कर उसे बींध डाला॥

ततः शरसहस्रेण तावुभौ पुरुषर्षभौ।
अन्योन्यमाच्छादयतामथोऽभज्यत वाहिनी ॥३९॥

हे राजन्! अब इन दोनों पुरुष प्रवीर वृषसेन और नकुल ने सहस्र बाण छोड़कर एकदूसरे को आच्छादित कर दिया। जिससे सेना भागनिकली ॥३९॥

स दृष्ट्वा प्रद्रुतां सेनां धार्तराष्ट्रस्य सूतजः।
निवारयामास बलादनुसृत्य विशाम्पते ॥४०॥
निवृत्ते तु ततः कर्णे नकुलः कौरवान्ययौ।

हे विशाम्पते! इस समय कौरव सेना को भागती देख कर महारथी कर्ण ने आगे बढ़कर उसे बलपूर्वक रोका-जब यहाँ से कर्ण दूसरी ओर चले गए-तो नकुल ने फिर कौरवों पर आक्रमण किया ॥४०॥

कर्णपुत्रस्तु समरे हित्वा नकुलमेव तु ॥४१॥
जुगोप चक्रं त्वरितो राधेयस्यैव मारिष।

हे आर्य! कर्ण पुत्र वृषसेन ने अब रण में नकुल का पीछा करना छोड़ दिया और वह शीघ्रता से आगे बढ़कर अपने पिता कर्ण के साथियों की ही रक्षा करने लगा ॥४१॥

उलूकस्तु रणे क्रुद्धः सहदेवेन वारितः ॥४२॥
तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सहदेवः प्रतापवान् ।
सारथिं प्रेषयामास यमस्य सदनं प्रति ॥४३॥

इस युद्ध में शकुनि पुत्र उलूक भी कुपित हो रहा था-उसे सहदेव ने रोका था। महाप्रतापी सहदेव ने उसके चारों अश्वों को मारकर उसके सारथि को यमराज के घर भेज दिया ॥४२-४३॥

उलूकस्तु ततो यानादवप्लुत्य विशाम्पते ।
त्रिगर्तानां बलं तूर्णं जगाम पितृनन्दनः ॥४४॥

हे विशाम्पते ! पिता के आनन्द का कारण, उलूक अब अपने रथ से कूद पड़ा वह वेग से त्रिगर्तों की सेना में जा घुसा ॥४४॥

सात्यकिः शकुनिं विध्वा विंशत्या निशितैः शरैः ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ॥४५॥

हे नृप ! सात्यकि ने बीस तीक्ष्ण बाण छोड़कर शकुनि को बींध डाला और हँसते २ एक भल्ल छोड़कर सुबल पुत्र शकुनि की ध्वजा काट गिराई ॥४५॥

सौबलस्तस्य समरे क्रुद्धो राजन्प्रतापवान् ।
विदार्य कवचं भूयो ध्वजं चिच्छेद काञ्चनम् ॥४६॥

हे राजन् ! अत्यन्त प्रतापी सुबल पुत्र, इसपर उबल उठा और इसने रणमें उसके कवच को भेद कर फिर उसकी सुवर्ण निर्मित ध्वजा को भी काट गिराया ॥४६॥

तथैनं निशितैर्बाणैः सात्यकिः प्रत्यविध्यत ।
सारथिं च महाराज त्रिभिरेव समार्पयत् ॥४७॥
अथास्य वाहांस्त्वरितः शरैर्निन्ये यमक्षयम् ।

हे महाराज! अब सात्यकि ने भी अपने तीखे २ बाण छोड़कर शकुनि को घायल किया और तीन बाण मारकर उसके सारथि को बींध लिया। तथा इसके अश्व को भी बाणों से बहुत ही शीघ्र यम-धाम भेज दिया ॥४७॥

ततोऽवप्लुत्य सहसा शकुनिर्भरतर्षभ ॥४८॥
आरुरोह रथं तूर्णमुलूकस्य महात्मनः ।
अपोवाहाथ शीघ्रं स शैनेयाद्युद्धशालिनः ॥४९॥

हे भरतर्षभ! अब शकुनि एकदम रथ से कूद पड़ा और बड़ी शीघ्रता से महारथी उलूक के रथ पर जा चढ़ा, उलूक अपने पिता शकुनि को युद्धशाली सात्यकि के सन्मुख से शीघ्र हटा ले गया ॥४८-४९॥

सात्यकिस्तु रणे राजंस्तावकानामनीकिनीम् ।
अभिदुद्राव वेगेन ततोऽनीकमभज्यत ॥५०॥

हे राजन्! अब सात्यकि तुम्हारी सेना पर वेग से आक्रमण करने लगा-इससे कौरव सेना भाग खड़ी हुई ॥५०॥

शैनेयशरसंछन्नं तव सैन्यं विशाम्पते ।
भेजे दश दिशस्तूर्णं न्यपतच्च गतासुवत् ॥५१॥

हे विशाम्पते ! सात्यकि के बाण से व्याकुल हुए बहुत से तुम्हारी सेना के वीर दशों दिशाओं में भाग गए और कुछ वहीं पर मृतक की तरह होकर रणभूमि में लेट गए ॥५१॥

भीमसेनं तव सुतो वारयामास संयुगे ।
तं तु भीमो मुहूर्त्तेन व्यश्वसूतरथध्वजम् ॥५२॥
चक्रे लोकेश्वरं तत्र तेनातुष्यन्त वै जनाः ।

हे नराधिप ! एक ओर भीमसेन ने तुम्हारे चक्रवर्ती पुत्र दुर्योधन को रण में घेर लिया और उसे थोड़ी ही देर में अश्व सारथि रथ और ध्वजा से हीन बना दिया । यह देखकर सैनिक वीर बड़े ही उल्लसित हुए ॥५२॥

ततोऽपायान्नृपस्तत्र भीमसेनस्य गोचरात् ॥५३॥
कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ।
तत्र नादो महानासीद्भीमसेनं जिघांसताम् ॥५४॥

अब राजा दुर्योधन भी भीमसेन के सामने से खसक गया परन्तु कौरव सेना ने बढ़कर भीमसेन पर आक्रमण कर दिया भीमसेन के मारने की इच्छा से प्रहार करने वाले वीरों में इस समय बड़ा ही कोलाहल मच गया ॥५३-५४॥

युधामन्युः कृपं विध्वा धनुरस्याशु चिच्छिदे ।
अथान्यद्धनुरादाय कृपः शस्त्रभृतां वरः ॥५५॥
युधामन्योर्ध्वजं सूतं छत्रं चापातयत्ततो ।
ततोऽपायाद्रथेनैव युधामन्युर्महारथः ॥५६॥

एक ओर पाण्डव महारथी युधामन्यु ने कृपाचार्य को बींध कर उसका धनुष काटडाला। अब शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ कृपाचार्य ने दूसरा धनुष उठाया और उससे बाण छोड़कर युधामन्यु के ध्वजा, सूत और छत्र को काटकर पृथिवी पर गिरा दिया। महारथी युधामन्यु ध्वजा-हीन रथ को लेकर कृपाचार्य के आगे से दूर चला गया ॥५५-५६॥

उत्तमौजाश्च हार्दिक्यं भीमं भीमपराक्रमम् ।
छादयामास सहसा मेघो वृष्टयेव पर्वतम् ॥५७॥

पाण्डव वीर उत्तमौजा ने हृदिक पुत्र महा भयानक पराक्रमी कृतवर्मा को अपनी बाणवर्षा से इस तरह ढक दिया। जैसे मेह जल वृष्टि से पर्वत को आच्छादित कर देता है ॥५७॥

तद्युद्धमासीत्सुमहद्घोररूपं परन्तप ।
यादृशं न मया युद्धं दृष्टपूर्वं विशाम्पते ॥५८॥

हे परन्तप ! विशाम्पते ? यह इतना|महाघोर भीषण युद्ध हुआ, कि मैंने तो इससे पूर्व कभी ऐसा युद्ध देखा नहीं था ॥५८॥

कृतवर्मा ततो राजन्नुत्तमौजसमाहवे ।
हृदि विव्याध सहसा रथोपस्थ उपाविशत् ॥५९॥
सारथिस्तमपोवाह रथेन रथिनां वरम् ।

हे राजन् ! इस महायुद्ध में कृतवर्मा ने एकदम उत्तमौजा की छाती में तीक्ष्ण बाण मारा, जिससे वह मूर्च्छित होकर रथ

के मध्य में लेट गया। उसका सारथि उस रथिश्रेष्ठ को अब रण स्थल से दूर निकाल लेगया ॥५६॥

कुरुसैन्यं ततः सर्वं भीमसेनमुपाद्रवत् ॥६०॥
दुःशासनः सौबलश्च गजानीकेन पाण्डवम् ।
महता परिवार्यैव क्षुद्रकैरभ्यताडयत् ॥६१॥

इसके बाद सारी कौरव सेना ने भीमसेन पर आक्रमण किया। इस समय दुःशासन और शकुनि ने विशाल गज-सेना लेकर पाण्डु-पुत्र भीमसेन को जा घेरा और उसे क्षुद्रक संज्ञक बाणों से छेदना आरम्भ किया ॥६०-६१॥

ततो भीमः शरशतैर्दुर्योधनममर्षणम् ।
विमुखीकृत्य तरसा गजानीकमुपाद्रवत् ॥६२॥

भीमसेन ने भी सैंकड़ों बाण छोड़कर राजा दुर्योधन को युद्ध से विमुख कर दिया और अब उसने मुड़कर वेग से इस गज सेना पर आक्रमण कर दिया ॥६२॥

तमापतन्तं सहसा गजानीकं वृकोदरः ।
दृष्ट्वैव सुभृशं क्रुद्धो दिव्यमस्त्रमुदैरयत् ॥६३॥
गजैर्गजानभ्यहनद्वज्रेणेन्द्र इवासुरान् ।

वृकोदर भीमसेन, एकदम आती हुई इस गजसेना को देखकर बहुत ही कुपित हुआ और उसने अब दिव्य-अस्त्र का प्रयोग किया। भीमसेन ने एक हाथी उठा कर दूसरे हाथी को मारने

लगा, इस तरह उसने बहुत से हाथी, वज्र द्वारा असुरों को इन्द्र की तरह मार २ कर बिछादिये ॥६३॥

ततोऽन्तरिक्षं बाणौघैः शलभैरिव पादपम् ॥६४॥

छादयामास समरे गजान्निघ्नन्वृकोदरः ।

इस वृकोदर भीमसेन ने, इतने बाण छोड़े, कि जिनसे आकाश इस तरह भर गया-जैसे शलभ पक्षियों से वृक्ष भर जाता है। इसने गजों को मार २ कर रणभूमि में उनका ढेर लगा दिया ॥६४॥

ततः कुञ्जरयूथानि समेतानि सहस्रशः ॥६५॥

व्यधमत्तरसा भीमो मेघसङ्घानिवानिलः ।

अब इकट्ठे हुए सहस्रों हाथी समूहों को भीमसेन ने, अपने वेग से ऐसे उड़ा दिया-जैसे-मेघ समूह को वायु उड़ा देता है ॥६५॥

सुवर्णजालापिहिता मणिजालैश्च कुञ्जराः ॥६८॥

रेजुरभ्यधिकं संख्ये विद्युत्वन्त इवाम्बुदाः ।

हे भारत ! मणि समूह से भरे हुए, सुवर्ण के आभूषणों से व्याप्त हाथी इस रणभूमि में इस तरह सुशोभित हो रहे थे, जैसे-बिजली से युक्त बहुत से बादल सुन्दर प्रतीत होते हों ॥६६॥

ते वध्यमाना भीमेन गजा राजन्विदुद्रुवुः ॥७६॥

केचिद्विभिन्नहृदयाः कुञ्जरा न्यपतन्भुवि ।

हे राजन्! भीमसेन द्वारा घायल किए हुए बहुतसे हाथी भाग निकले और कुछ की तो बाणों से छाती विदीर्ण हो गई। जिससे वहीं रणभूमि में गिर गए ॥६७॥

पतितैर्निपतद्भिश्च गजैर्हेमविभूषितैः ॥६८॥
अशोभत मही तत्र विशीर्णैरिव पर्वतैः।

गिरे हुए या गिरते हुए सुवर्ण विभूषित हाथियों से रणभूमि इस भांति से प्रतीत होने लगी-जैसे-वह बिखरे हुए पर्वतशिखरों से समन्वित हो रही हो ॥६८॥

दीप्ताभै रत्नवद्भिश्च पतितैर्गजयोधिभिः ॥६९॥
रराज भूमिः पतितैः क्षीणपुण्यैरिव ग्रहैः।

प्रदीप्त कान्ति धारी, रत्न जटित आभूषणों से युक्त गिरे हुए गजारोही वीरों से रणभूमि ऐसी जचने लगी—जैसे पुण्य क्षीण होने पर गिरे हुए ग्रहों से पृथिवी व्याप्त हो रही हो ॥६९॥

ततो भिन्नकटा नागा भिन्नकुम्भकरास्तथा ॥७०॥
दुद्रुवुः शतशः संख्ये भीमसेनशराहताः।
केचिद्वमन्तो रुधिरं भयार्ताः पर्वतोपमाः ॥७१॥
व्यद्रवञ्छरविद्धाङ्गा धातुचित्रा इवाचलाः।

हे राजन्! अब बहुत से हाथियों के कपोल और बहुतों के मस्तक और सून्ड क्षत-विक्षत हो गए। इस प्रकार भीमसेन के बाण से आहत सैंकड़ों पर्वत-आकारधारी भयातुर हाथी, रुधिर उगलते हुए भाग निकले। उनके शरीर बाणों से बिंध रहे थे, जो

गैरिक आदि धातुओं से चित्रित पर्वत के तुल्य प्रतीत होते थे ॥७०-७१॥

महाभुजगसङ्काशौ चन्दनागुरुरूपितौ ॥७२॥
अपश्यं भीमसेनस्य धनुर्विक्षिपतो भुजौ ।

हे राजन् ! इस समय धनुष खैंचते हुए भीमसेन की चन्दन और अगरसे चर्चित दोनों भुजायें बड़े २ सर्पों के आकार के समान प्रतीत होती थी ॥७२॥

तस्य ज्यातलनिर्घोषं श्रुत्वाशनिसमस्वनम् ॥७३॥
विमुञ्चन्तः शकृन्मूत्रं गजाः प्राद्रुद्रुवुर्भृशम् ।

भीमसेन के धनुष की डोरी और करतलत्राण को वज्र के समान ध्वनि सुनकर बार २ बहुत सा मूत्र छोड़ते हुए हाथी, रणभूमि को छोड़कर भाग निकले ॥७३॥

भीमसेनस्य तत्कर्म राजन्नेकस्य धीमतः ।
निघ्नतः सर्वभूतानि रुद्रस्येव च निर्बभौ ॥७४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

हे राजन् ! इस समय अकेले महारथी भीमसेन का यह वीर कर्म प्रलय काल में सारे भूतों का संहार करने वाले रुद्र के कर्म के समान प्रतीत होता था ॥७४॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में घोर युद्ध के वर्णन का इकसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ

बासठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः श्वेताश्वसंयुक्ते नारायणसमाहिते ।
तिष्ठन्रथवरे श्रीमानर्जुनः समपद्यत ॥१॥

सञ्जय बोले-हे भरत श्रेष्ठ ! श्वेत अश्वों से सुशोभित श्रीकृष्ण के सारथि होने से देदीप्यमान, रथ श्रेष्ठ में स्थित होकर वीर दर्प से पूर्ण अर्जुन युद्ध के लिए वहां उपस्थित हुए ॥१॥

तद्बलं नृपतिश्रेष्ठ तावकं विजयो रणे ।
व्यक्षोभयदुदीर्णाश्वं महोदधिमिवानिलः ॥२॥

हे नृपति श्रेष्ठ ! जिस तरह समुद्र को वायु, चञ्चल कर देता है उसी तरह तुम्हारी सेना को अर्जुन ने विक्षोभित कर दिया सारे अश्व-दमादम भागने लगे ॥२॥

दुर्योधनस्तव सुतः प्रमत्ते श्वेतवाहने ।
अभ्येत्य सहसा क्रुद्धः सैन्यार्धेनाभिसंवृतः ॥३॥
पर्यवारयदायान्तं युधिष्ठिरममर्षणम् ।
क्षुरप्राणां त्रिसप्तत्या ततोऽविध्यत पाण्डवम् ॥४॥

हे राजन् ! जब इस प्रकार श्वेत वाहन धारी अर्जुन उद्धत हो रहे थे, तो आवेश में भरे हुए राजा युधिष्ठिर भी आगे बढ़े-उनको देखकर तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन भल्ला उठा और आधी सेना

की टुकड़ी लेकर एकदम धर्मराज पर झपटा तथा क्षुर के समान तेहत्तर बाणों से पाण्डु-पुत्र धर्मराज को आहत कर दिया ॥३-४॥

अक्रुध्यत भृशं तत्र कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः ।
स भल्लांस्त्रिंशतस्तूर्णं तव पुत्रे न्यवेशयत् ॥५॥

इस आक्रमण से कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर का भी कोप बढ़ गया। उन्होंने झट-पट तीस भल्ल संज्ञक बाण निकाल कर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन पर छोड़े ॥५॥

ततोऽधावन्त कौरव्या जिघृक्षन्तो युधिष्ठिरम् ।
दुष्टभावान्पराञ्ज्ञात्वा समवेता महारथाः ॥६॥
आजग्मुस्तं परीप्सन्तः कुन्तीपुत्रं युधिष्ठिरम् ।
नकुलः सहदेवश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ॥७॥
अक्षौहिण्या परिवृतास्तेऽभ्यधावन्युधिष्ठिरम् ।

अब कुरु वंश के उत्तम वीर, राजा युधिष्ठिर को पकड़ने को दौड़े। उनके इस दुष्ट भाव को जानकर पाण्डव महारथी भी इकट्ठे हो गए। और वे कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर की रक्षा के निमित्त दौड़े। नकुल सहदेव और पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न कोई एक अक्षौहिणी के लगभग सेना लेकर राजा युधिष्ठिर की रक्षा में पहुँचे ॥६-७॥

भीमसेनश्च समरे मृद्नंस्तव महारथान् ॥८॥
अभ्यधावदभिप्रेप्सू राजानं शत्रुभिर्वृतम् ।

दूसरी ओर से भीमसेन भी तुम्हारे महारथियों को रण में कुचलते हुए, शत्रुओं में घिरे हुए राजा युधिष्ठिर की रक्षा के लिए दौड़ पड़े ॥८॥

तांस्तु सर्वान्महेष्वासान्कर्णो वैकर्तनो नृप ॥९॥
शरवर्षेण महता प्रत्यवारयदागतान् ।

हे नृप ! इन आए हुए सारे महाधनुर्धर पाण्डव वीरों को अकेले कर्ण ने अपनी महती बाण वृष्टि से वहीं रोक दिया ॥९॥

शरौघान्विसृजन्तस्ते प्रेरयन्तश्च तोमरान् ॥१०॥
न शेकुर्यत्नवन्तोऽपि राधेयं प्रति वीक्षितुम् ।

ये पाण्डव वीर, शरसमूह छोड़ रहे हैं और तोमर फिरा रहे हैं परन्तु बड़ा यत्न करने पर भी वे राधा-पुत्र कर्ण की ओर देखने को भी समर्थ नहीं हो सके ॥१०॥

तांश्च सर्वान्महेष्वासान्सर्वशस्त्रास्त्रपारगः ॥११॥
महता शरवर्षेण राधेयः प्रत्यवारयत् ।

राधा-पुत्र कर्ण सारे शस्त्र और अस्त्र विद्या में पारगामी था, इससे इसने बड़ी बाण वर्षा करके उन सारे पाण्डव वीरों को आगे बढ़ने से रोक दिया ॥११॥

दुर्योधनं च विंशत्या शीघ्रमस्त्रमुदीरयन् ॥१२॥
अविध्यत्तूर्णमभ्येत्य सहदेवः प्रतापवान् ।

अब महाप्रतापी सहदेव आगे आया और उसने शीघ्र २ अस्त्र चला कर बड़े-वेग से राजा दुर्योधन को बीस बाणों से बींध लिया ॥१२॥

स विद्धः सहदेवेन रराजाचलसन्निभः ॥१३॥
प्रभिन्न इव मातङ्गो रुधिरेण परिप्लुतः ।

सहदेव के आहत कर देने पर राजा दुर्योधन पर्वत की तरह अचल खड़ा रहा। इस प्रहार से इस के शरीर से इस तरह रुधिर धारा बह निकली, जैसे—मदस्रावी हाथी के शरीर से मद धारा बह रही हो ॥१३॥

दृष्ट्वा तव सुतं तत्र गाढविद्धं सुतेजनैः ॥१४॥
अभ्यधावद् दृढं क्रुद्धो राधेयो रथिनां वरः ।

हे राजन्! अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से क्षत-विक्षत तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन को देखकर रथियों में श्रेष्ठ, राधा पुत्र कर्ण, क्रोध के साथ दौड़ा ॥१४॥

दुर्योधनं तथा दृष्ट्वा शीघ्रमस्त्रमुदैरयत् ॥१५॥
तेन यौधिष्ठिरं सैन्यमवधीत्पार्षतं तथा ।

राजा दुर्योधन को इस दुर्दशा—को देखकर महारथी कर्ण बड़े वेग से अस्त्र फैंकने लगा—इससे इसने राजायुधिष्ठिर और धृष्टद्युम्न की बहुत सी सेना मार गिराई ॥१५॥

ततो यौधिष्ठिरं सैन्यं वध्यमानं महात्मना ॥१६॥
सहसा प्राद्रवद्राजन्सूतपुत्रशरार्दितम् ।

हे राजन् ! महापराक्रमी सूत-पुत्र कर्ण द्वारा छेदी गई राजा युधिष्ठिर की सेना कर्ण के बाण से व्याकुल होकर एकदम भाग निकली ॥१६॥

विविधा विशिखास्तत्र सम्पतन्तः परस्परम् ॥१७॥
फलैः पुङ्खान्समाजघ्नुः सूतपुत्रधनुश्च्युताः ।

हे नृपते ! अत्र अनेक प्रकार से छूटे हुए बाण, परस्पर टकराने लगे—सूत पुत्र क धनुष से निकले हुए बाणों ने—अपने अग्रभागों से विरोधी बाणों के मूल को काट डाला ॥१७॥

अन्तरिक्षे शरौघाणां पततां च परस्परम्॥१८॥
सङ्घर्षेण महाराज पावकः समजायत ।

हे महाराज ! आकाश में बाण समूह के परस्पर टकराने से इतना सङ्घर्ष उत्पन्न हुआ, कि वहाँ आग उत्पन्न हो गई ॥१८॥

ततो दश दिशः कर्णः शलभैरिव यायिभिः ॥१९॥
अभ्यघ्नंस्तरसा राजञ्शरैः परशरीरगैः ।

हे राजन् ! कर्ण ने अपने बाणों से दशों दिशाओं को इस तरह आच्छादित कर दिया—जैसे उड़ते हुए शलभों (टीडीदल) से आच्छादित हो जाती हैं । अब यह शत्रु-शरीर में घुस जाने वाले बाणों से वेग के साथ प्रहार करने लगा ॥१९॥

रक्तचन्दनसन्दिग्धौ मणिहेमविभूषितौ ॥२०॥
बाहू व्यत्यक्षिपत्कर्णः परमास्त्रं विदर्शयन् ।

महारथी कर्ण, अपनी अस्त्र विद्या की कुशलता दिखाता हुआ, रक्त चन्दन से चर्चित और मणि जटित सुवर्ण आभूषणों से सुशोभित अपनी भुजाओं को इधर उधर फेंकने लगा। ॥२०॥

ततः सर्वा दिशो राजन्सायकैर्विप्रमोहयन् ॥२१॥
अपीडयद् भृशं कर्णो धर्मराजं युधिष्ठिरम्।

हे राजन्! अपने बाणों से सारी दिशाओं को आच्छादित करते हुए कर्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर को बहुत ही पीड़ित कर दिया ॥२१॥

ततः क्रुद्धो महाराज धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ॥२२॥
निशितैरिषुभिः कर्णं पञ्चाशद्भिः समार्पयत्।

हे महाराज! अब धर्मराज युधिष्ठिर बहुत ही कुपित हो गए और उन्होंने पचास तीक्ष्ण बाण छोड़ कर कर्ण को घायल कर दिया ॥२२॥

बाणान्धकारमभवत्तद्युद्धं घोरदर्शनम् ॥२३॥
हाहाकारो महानासीत्तावकानां विशाम्पते।
वध्यमाने तदा सैन्ये धर्मपुत्रेण मारिष ॥२४॥
सायकैर्विविधैस्तीक्ष्णैः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः।
भल्लैरनेकैर्विविधैः शक्त्यृष्टिमुसलैरपि ॥२५॥

हे विशाम्पते! इस युद्ध में इतने बाण-छूटे, कि उनसे अन्धकार छागया। जो बड़ा ही भयङ्कर दिखाई देता था।

हे आर्य! धर्म-पुत्र द्वारा शिला पर चमकाए हुए कङ्क-पत्र धारी अनेक तीक्ष्ण बाण, अनेक प्रकार के भल्ल संज्ञक बाण, तथा शक्ति, ऋष्टि, मुसल, आदि अस्त्र शस्त्रों से तुम्हारी सेना को आहत कर देने पर उसमें महान हाहाकार खड़ा हो गया ॥२३-२५॥

यत्र यत्र स धर्मात्मा दुष्टां दृष्टिं व्यसर्जयत् ।
तत्र तत्र व्यशीर्यन्त तावका भरतर्षभ ॥२६॥

हे भरतर्षभ! धर्मात्मा युधिष्ठिर, जिस ओर अपनी कुपित दृष्टि फेरता था, उसी ओर तुम्हारी सेना फटती चली जाती थी ॥२६॥

कर्णोऽपि भृशसंक्रुद्धो धर्मराजं युधिष्ठिरम् ।
नाराचैरर्धचन्द्रैश्च वत्सदन्तैश्च संयुगे ॥२७॥
अमर्षी क्रोधनश्चैव रोषप्रस्फुरिताननः ।
सायकैरप्रमेयात्मा युधिष्ठिरमभिद्रवत् ॥२८॥

हे राजन्! इधर कर्ण भी बड़ा क्रोधी और आवेश पूर्ण वीर था। इसके भी क्रोध से ओष्ठ फड़कने लगे। इसने अत्यन्त कुपित होकर धर्मराज युधिष्ठिर पर नाराच, अर्धचन्द्र, वत्सदन्त आदि भिन्न २ प्रकार के बाण छोड़कर उन्हें बहुत ही घायल कर दिया ॥२७-२८॥

युधिष्ठिरश्चापि स तं स्वर्णपुङ्खैः शितैः शरैः ।
प्रहसन्निव तं कर्णः कङ्कपत्रैः शिलाशितैः ॥२९॥

उरस्यविध्यद्राजानं त्रिभिर्भल्लैश्च पाण्डवम् ।
स पीडितो भृशं तेन धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥३०॥

राजा युधिष्ठिर ने भी सुवर्ण मूलधारी बहुत से तीक्ष्ण बाण कर्ण पर छोड़े। कर्ण ने फिर हंसते हंसते कङ्कपत्र धारी, शिला पर तीक्ष्ण किये गए तीन भल्ल संज्ञक बाण, पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर के शरीर में मारे। इस प्रहार से धर्मराज युधिष्ठिर अत्यन्त-व्याकुल हो गए और वे रथ के मध्य में चुप चाप बैठ कर अपने सारथि से बोले—हे सूत! तुम यहाँ से खसक चलो ॥२९-३०॥

उपविश्य रथोपस्थे सूतं याहीत्यचोदयत् ।
अक्रोशन्त ततः सर्वे धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥३१॥
गृह्णीध्वमिति राजानमभ्यधावन्त सर्वशः ।

राजा युधिष्ठिर के चलते ही सारे कौरव पक्षधारी राजा और वीर चिल्लाने लगे और सब ओर से भागे, कि धर्मराज को पकड़लो-निकल न जावे ॥३१॥

ततः शताः सप्तदश केकयानां प्रहारिणाम् ॥३२॥
पञ्चालैः सहिता राजन्धार्तराष्ट्रान्न्यवारयन् ।

हे राजन्! अब केकय और पञ्चाल सत्रहसौ वीर आपहुंचे और उन्होंने इन कौरव वीरों को धर्मराज के सामने से हटाया।

तस्मिन्सुतुमुले युद्धे वर्तमाने जनक्षये ॥३३॥
दुर्योधनश्च भीमश्च समेतायां महाबलौ ॥३४॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायांवैयासिक्यां-
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

हे भारत ! जब यह महाघोर वीर नाशकारी युद्ध हो रहा था तो इस समय महाबली भीम और राजा दुर्योधन दोनों युद्ध में भिड़ पड़े ॥३३-३४॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण-युधिष्ठिर युद्ध
के वर्णन का बासठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।

तरेसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

कर्णोऽपि शरजालेन केकयानां महारथान् ।
व्यधमत्परमेष्वासानग्रतः पर्यवस्थितान् ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन ! इस समय कर्ण ने भी अपने बाण-जाल से केकय वंशोद्भव महाधनुर्धर सन्मुख स्थित महारथियों को मार २ कर बिछा दिया ॥१॥

तेषां प्रयतमानानां राधेयस्य निवारणे ।
रथान्पञ्चशतान्कर्णः प्राहिणोद्यमसादनम् ॥२॥

राधापुत्र कर्ण के हटाने में प्रयत्नशील इन केकय महारथियों में पांचसौ महारथियों को कर्ण ने यमराज के घर भेज दिया ॥२॥

अविषह्यं ततो दृष्ट्वा राधेयं युधि योधिनः ।
भीमसेनमुपागच्छन्कर्णबाणप्रपीडिताः ॥३॥

ये महारथी, राधापुत्र कर्ण को रण में असहाय देखकर भीमसेन के समीप पहुंचे। इस समय ये कर्ण के बाणों, से बहुत ही पीड़ित हो रहे थे ॥३॥

रथानीकं विदार्यैव शरजालैरनेकधा ।
कर्ण एकरथेनैव युधिष्ठिरमुपाद्रवत् ॥४॥

अनेक प्रकार के अपने बाण-जाल से पाण्डव पक्ष की रथ सेना को चीरकर अकेला कर्ण. राजा युधिष्ठिर पर झपटा ॥४॥

सेनानिवेशमार्छन्तं मार्गणैः क्षतविक्षतम् ।
यमयोर्मध्यगं वीरं शनैर्यान्तं विचेतसम् ॥५॥
समासाद्य तु राजानं दुर्योधनहितेप्सया ।
सूतपुत्रस्त्रिभिस्तीक्ष्णैर्विव्याध परमेषुभिः ॥६॥

राजा युधिष्ठिर, इस समय बाणों से क्षत विक्षत हो रहे थे। वे अपने दोनों भाई नकुल और सहदेव के साथ निःशङ्क भाव से धीरे २ अपनी सेना की ओर जा रहे थे। इसी समय महावीर राजा युधिष्ठिर को लक्ष्य करके राजा, दुर्योधन के हित की इच्छा से सूत-पुत्र कर्ण ने तीन प्रज्वलित तीखे बाणों से उनपर प्रहार किया ॥५-६॥

तथैव राजा राधेयं प्रत्यविध्यत्स्तनान्तरे ।
शरैस्त्रिभिश्च यन्तारं चतुर्भिश्चतुरो हयान् ॥७॥

अब धर्मराज ने भी कर्ण की छाती में तीर मारा और तीन बाण उसके सारथि और चार बाण उसके चारों अश्वों पर मारे ॥७॥

चक्ररक्षौ तु पार्थस्य माद्रीपुत्रौ परन्तपौ ।

तावप्यधावतां कर्णं राजानं मा वधीरिति ॥८॥

राजा युधिष्ठिर के इस समय चक्र रक्षक शत्रु नाशक दोनों भ्राता माद्री पुत्र नकुल और सहदेव थे। उन्होंने भी कर्ण पर इस ध्यान से आक्रमण किया कि कहीं यह धर्मराज का वध न कर डाले ॥८॥

तौ पृथक्शरवर्षाभ्यां राधेयमभ्यवर्षताम् ।

नकुलः सहदेवश्च परमं यत्नमास्थितौ ॥९॥

अब नकुल और सहदेव ने बड़ा प्रयत्न करके पृथक् २ बाणों की राधापुत्र कर्ण पर झड़ी लगा दी ॥९॥

तथैव तौ प्रत्यविध्यत्सूतपुत्रः प्रतापवान् ।

भल्लाभ्यां शितधाराभ्यां महात्मानावरिन्दमौ ॥१०॥

महाप्रतापी सूत-पुत्र कर्ण ने भी तीक्ष्णधारधारी भल्ल संज्ञक बाणों से इन दोनों अरिमर्दन महावीर नकुल और सहदेव को बड़ा ही क्षत विक्षत कर दिया ॥१०॥

दन्तवर्णांस्तु राधेयो निजघान मनोजवान् ।

युधिष्ठिरस्य संग्रामे कालवालान्हयोत्तमान् ॥११॥

अब रण में कर्ण ने हाथी दांत के समान उज्ज्वल श्वेत वर्ण और काली पूंछ वाले मन के समान वेगशाली राजा युधिष्ठिर के अश्वों पर प्रहार किया ॥११॥

ततोऽपरेण भल्लेन शिरस्त्राणमपातयत् ।

कौन्तेयस्य महेष्वासः प्रहसन्निव सूतजः ॥१२॥

इसके अनन्तर महाधनुर्धर सूत-पुत्र कर्ण ने, हंसते २ एक भल्ल संज्ञक बाण छोड़ा । जिससे उसने कुन्ती पुत्र राजा युधिष्ठिर के शिरस्त्राण को काट गिराया ॥१२॥

तथैव नकुलस्यापि हयान्हत्वा प्रतापवान् ।

ईषां धनुश्च चिच्छेद माद्रीपुत्रस्य धीमतः ॥१३॥

महाप्रतापी कर्ण ने इसी तरह माद्री-पुत्र, रण विद्या में कुशल नकुल के अश्व, रथ की ईषा और धनुष को काट डाला ॥१३॥

तौ हताश्वौ हतरथौ पाण्डवौ भृशविक्षतौ ।

भ्रातरावारुरुहतुः सहदेवरथं तदा ॥१४॥

अब पाण्डु-पुत्र राजा युधिष्ठिर और नकुल इन दोनों के अश्व मारे जा चुके-रथ छिन्न भिन्न हो गए और ये स्वयं भी क्षत विक्षत हो रहे थे। अब ये दोनों भ्राता धर्मराज और नकुल दौड़कर सहदेव के रथपर चढ़गए ॥१४॥

तौ दृष्ट्वा मातुलस्तत्र विरथौ परवीरहा ।

अभ्यभाषत राधेयं मद्रराजोऽनुकम्पया ॥१५॥

पाण्डवों के मातुल, शत्रुतापी मद्रराज शल्य, रथ विहीन हुए उन दोनों अपने भानजे धर्मराज और नकुल को देखकर करुणा करके राधा पुत्र कर्ण से कहने लगा ॥१५॥

योद्धव्यमद्य पार्थेन फाल्गुनेन त्वया सह ।
किमर्थं धर्मराजेन युध्यसे भृशरोषितः ॥१६॥

हे कर्ण ! आज तो तुम्हें कुन्ती पुत्र अर्जुन से युद्ध करना है, फिर क्यों वृथा क्रोध में भरकर धर्मराज से युद्ध कर रहे हो।

क्षीणशस्त्रास्त्रकवचः क्षीणबाणो विबाणधिः ।
श्रान्तसारथिवाहश्च च्छन्नोऽस्त्रैरभितस्तथा ॥१७॥
पार्थमासाद्य राधेय उपहास्यो भविष्यसि ।

हे राधेय ! धर्मराज के पास शस्त्रास्त्र बीत चुके-बाण समाप्त हो गए और इनके पास तूणीर भी नहीं हैं। इनके सारथि और अश्व थक चुके-ये स्वयं भी अस्त्रों से क्षत विक्षत हो रहे हैं, इस दशा में इन पर आक्रमण करने से वीरों में तुम्हारी बड़ी निन्दा होगी ॥१७॥

एवमुक्तोऽपि कर्णस्तु मद्रराजेन संयुगे ॥१८॥
तथैव कर्णः संरब्धो युधिष्ठिरमताडयत् ।
शरैस्तीक्ष्णैः पराविध्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥१९॥
प्रहस्य समरे कर्णश्चकार विमुखं शरैः ।

हे राजन् ! यद्यपि-मद्रराज शल्य ने इतना कहा-तो भी कर्ण रण में उद्धत हुआ राजा युधिष्ठिर पर प्रहार करता ही रहा। कर्ण

ने पाण्डु पुत्र नकुल और सहदेव को हंसते २ तीक्ष्ण बाणों से बींध कर उन बाणों द्वारा उसने उन्हें रण से विमुख कर दिया ॥१८-१६॥

ततः शल्यः प्रहस्येदं कर्णं पुनरुवाच ह ॥२०॥

रथस्थमतिसंरब्धं युधिष्ठिरवधे धृतम् ।

यदर्थं धार्तराष्ट्रेण सततं मानितो भवान् ॥२१॥

तं पार्थं जहि राधेय किं ते हत्वा युधिष्ठिरम् ।

इसके बाद राजा शल्य ने मुसकुराकर अत्यन्त उद्धत रथ में स्थित-राजा युधिष्ठिर के वध में तत्पर कर्ण से कहा। हे राधेय! जिस कारण से धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन तेरा मान करते रहते हैं, तुम उसी अर्जुन को मारो-तुम्हें राजा युधिष्ठिर के मारने से क्या मिलेगा। यह देखो ? श्रीकृष्ण और अर्जुन के शङ्ख की ध्वनि यहां तक आरही है। और वर्षा ऋतु में मेघ गरजने की ध्वनि के तुल्य उनके गाण्डीव धनुष की ध्वनि यहां तक पहुंच रही है॥

शङ्खयोर्ध्मायतोः शब्दः सुमहानेष कृष्णयोः ॥२२॥

श्रूयते चापघोषोऽयं प्रावृषीवाम्बुदस्य ह ।

असौ निघ्नन्रथोदारानर्जुनः शरवृष्टिभिः ॥२३॥

सर्वां ग्रसति नः सेनां कर्ण पश्यैनमाहवे ।

यह अर्जुन अपनी बाण-वर्षा से हमारे अच्छे २ वीरों को चुन २ कर मार रहा है। यह तो-थोड़ी ही देर में हमारी सारी सेना

को चट कर जावेगा-तुम जरा-दृष्टि उठा कर तो रण में इसकी ओर देखो ॥२३॥

पृष्ठरक्षौ च शूरस्य युधामन्यूत्तमौजसौ ॥२४॥
उत्तरं चास्य वै शूरश्चक्रं रक्षति सात्यकिः ।
धृष्टद्युम्नस्तथा चास्य चक्रं रक्षति दक्षिणम् ॥२५॥

इसके पृष्ठरक्षक युधामन्यु और उत्तमौजा महारथी और इसके बांये चक्र की रक्षा सात्यकि और दांये चक्र की रक्षा धृष्टद्युम्न करते हैं ॥२४-२५॥

भीमसेनश्च वै राज्ञा धार्तराष्ट्रेण युध्यते ।
यथा न हन्यात्तं भीमः सर्वेषां नोऽद्य पश्यताम् ॥२६॥

दूसरी ओर धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन से भीमसेनने युद्ध छेड़ रखा है । यह भीम कहीं हम सब को न मार डाले-तुम इस बात पर दृष्टि दौड़ाओ ॥२६॥

तथा राधेय क्रियतां राजा मुच्येत नो यथा ।
पश्यैनं भीमसेनेन ग्रस्तमाहवशोभिनम् ॥२७॥

हे राधेय ! अब तो तुम यही करो जिससे राजा दुर्योधन छुटकारा पावे । तुम देखो-तो सही ? कि इस रणकुशल कुरुराज को भीमसेन ने कितना दबा लिया है ॥२७॥

यदि त्वासाद्य मुच्येत विस्मयः सुमहान्भवेत् ।
परित्राह्येनमभ्येत्य संशयं परमं गतम् ।
किन्नु माद्रीसुतौ हत्वा राजानं च युधिष्ठिरम् ॥२८॥

यदि तुमने पहुंच कर कुरुराज को बचा लिया-तो यह तुम्हारा बड़ा आश्चर्यजनक कार्य माना जावेगा। अब तुम लपककर राजा दुर्योधन को बचाओ--वह बड़ी उलझन में उलझा है। राजा युधिष्ठिर और नकुल या सहदेव के मारने से तुम्हें क्या मिल सकेगा ॥२८॥

इति शल्यवचः श्रुत्वा राधेयः पृथिवीपते ।
दृष्ट्वा दुर्योधनं चैव भीमग्रस्तं महाहवे ॥२६॥
राजगृद्धी भृशं चैव शल्यवाक्यप्रचोदितः ।
अजातशत्रुमुत्सृज्य माद्रीपुत्रौ च पाण्डवौ ॥३०॥
तव पुत्रं परित्रातुमभ्यधावत वीर्यवान् ।

हे पृथिवीपते ! राधापुत्र कर्ण ने जब राजा शल्य के ये वचन सुने-और सचमुच भीषण संग्राम में राजा दुर्योधन को फंसा देखा--तो राजा के बचाने की इच्छा से और शल्य की प्रेरणा से--वह महाबली कर्ण, अजातशत्रु धर्मराज को और माद्री-पुत्र नकुल और सहदेव को छोड़कर तुम्हारे पुत्र दुर्योधन के बचाने को दौड़ा ॥२६-३०॥

मद्रराजप्रणुदितैरश्वैराकाशगैरिव ॥३१॥
गते कर्णे तु कौन्तेयः पाण्डुपुत्रोयुधिष्ठिरः।
अपायाज्जवनैरश्वैः सहदेवश्च मारिष ॥३२॥

हे आर्य ! जब मद्रराज शल्य द्वारा तीव्रवेग के साथ हांके हुए आकाशचारी अश्वों की तरह वेगशाली अश्वों से कर्ण दूर

ले जाया गया—जो पाण्डु पुत्र कौन्तेय धर्मराज, और सहदेव अपने वेगशाली अश्वों से दूर भाग गए ॥३१-३२॥

ताभ्यां स सहितस्तूर्णं व्रीडन्निव नरेश्वरः ।
प्राप्य सेनानिवेशं च मार्गणैः क्षतविक्षतः ॥३३॥

अपने भ्राता नकुल और सहदेव के साथ बाणों से क्षत-विक्षत पृथिवी पति राजा युधिष्ठिर अपनी सेना निवेश में पहुंचे, इस समय वे बहुत ही लज्जित से हो रहे थे ॥३३॥

अवतीर्णो रथात्तूर्णमाविशच्छयनं शुभम् ।
अपनीतशल्यः सुभृशं हृच्छल्याभिनिपीडितः ॥३४॥
सोऽब्रवीद् भ्रातरौ राजा माद्रीपुत्रौ महारथौ ।
अनीकं भीमसेनस्य पाण्डवावाशु गच्छताम् ॥३५॥
जीमूत इव नर्दस्तु युध्यते स वृकोदरः ।

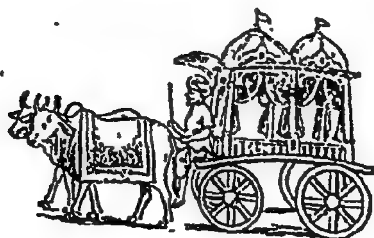
अब धर्मराज वेग से रथ से उतर पड़े और सुन्दर शय्या पर जाकर सो गए। यद्यपि इनके सारे बाण निकाल दिए गए-तो भी इनको अपने पराजय का बाण चुभ सा रहा था अब यह अपने महारथी भ्राता माद्री पुत्र नकुल और सहदेव से कहने लगा। हे पाण्डवों ! तुम शीघ्र भीमसेन की सेना की ओर जाओ-तुम सुन रहे होगे-कि मेघ की सी गर्जना करता हुआ वृकोदर भीमसेन युद्ध कर रहा है ॥३४-३५॥

ततोऽन्यं रथमास्थाय नकुलो रथपुङ्गवः ॥३६॥
सहदेवश्च तेजस्वी भ्रातरौ शत्रुकर्षणौ ।
तुरगैरग्रयरंहोभिर्यात्वा भीमस्य शुष्मिणौ ॥
अनीकैः सहितौ तत्र भ्रातरौ समवस्थितौ ॥३७॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि धर्मापयाने त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥६३॥

अब रथियों में श्रेष्ठ, तेजस्वी नकुल, और सहदेव दूसरे रथ पर चढ़कर अत्यन्त वेगशाली अश्वों से ओजस्वी भीमसेन के समीप पहुंचे। ये दोनों भ्राता बड़े ही शत्रुघातक थे। ये दोनों भ्राता भी अपनी सेना के सहित वहां पहुंचकर युद्ध के लिए स्थित हो गए ॥३६-३७॥

इति श्रीमहाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कर्ण और युधिष्ठिर के युद्ध के वर्णन का तरेसठवां अध्याय समाप्त हुआ।



चौसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

द्रौणिस्तु रथवंशेन महता परिवारितः ।
अपतत्सहसा राजन्यत्र पार्थो व्यवस्थितः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! अब अत्यन्त विशाल रथसेना से युक्त होकर एकदम द्रोण-सुत अश्वत्थामा उधर लपके, जहाँ पर अर्जुन उपस्थित थे ॥१॥

तमापतन्तं सहसा शूरः शौरिसहायवान् ।
दधार सहसा पार्थो वेलेव मकरालयम् ॥२॥

एकदम आक्रमण करते हुए अश्वत्थामा को श्रीकृष्ण की सहायता से समन्वित शूरवीर अर्जुन ने समुद्र को वेला की तरह एकदम वहीं रोक दिया ॥२॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रः प्रतापवान् ।
अर्जुनं वासुदेवं च च्छादयामास सायकैः ॥३॥

हे महाराज! इस समय महाप्रतापी द्रोणपुत्र अश्वत्थामा बहुत ही क्रोध में भरगए और उन्होंने अपने बाणों की झड़ी लगाकर, अर्जुन और वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण को आच्छादित कर दिया ॥३॥

अवच्छन्नौ ततः कृष्णौ दृष्ट्वा तत्र महारथौ ।
विस्मयं परमं गत्वा प्रैक्षन्त कुरवस्तदा ॥४॥

हे राजन् ! बाणों से आच्छादित इन दोनों महारथी श्रीकृष्ण और अर्जुन को सारे कौरवों ने बड़े आश्चर्य के साथ देखा ॥४॥

अर्जुनस्तु ततो दिव्यमस्त्रं चक्रे हसन्निव ।
तदस्त्रं वारयामास ब्राह्मणो युधि भारत ॥५॥

हे भारत ! अब कुछ हँसते हुए अर्जुन ने दिव्य अस्त्र का प्रयोग किया परन्तु उस अस्त्र का प्रतीकार ब्राह्मण श्रेष्ठ अश्वत्थामा ने तत्काल कर दिया ॥५॥

यद्यद्धि व्याक्षिपद्युद्धे पाण्डवोऽस्त्रं जिघांसया ।
तत्तदस्त्रं महेष्वासो द्रोणपुत्रो व्यशातयत् ॥६॥

हे नृप ! अब पाण्डु-पुत्र अर्जुन जिस २ अस्त्र का प्रयोग अश्वत्थामा के बध के निमित्त करता था, उसी २ अस्त्र को महाधनुर्धर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा काट गिराता था ॥६॥

अस्त्रयुद्धे ततो राजन्वर्तमाने महाभये ।
अपश्याम रणे द्रौणिं व्यात्ताननमिवान्तकम् ॥७॥

हे राजन् ! इस प्रकार दिव्य अस्त्रों के महाभयङ्कर युद्ध के प्रवृत्त होनेपर हमने द्रोणपुत्र को इस तरह भयङ्कर देखा, जैसे कोई मुखफाड़े हुए काल घूम रहा हो ॥७॥

स दिशः प्रदिशश्चैव छादयित्वा ह्यजिह्मगैः ।
वासुदेवं त्रिभिर्बाणैरविध्यद्दक्षिणे भुजे ॥८॥

अश्वत्थामा ने अपने सीधे जाने वाले बाणों से दिशा और प्रदिशा आच्छादित करके श्रीकृष्ण की दाँई भुजा में तीन बाणों का प्रहार किया ॥८॥

ततोऽर्जुनो हयान्हत्वा सर्वांस्तस्य महात्मनः ।
चकार समरे भूमिं शोणितौघतरङ्गिणीम् ॥६॥
सर्वलोकवहां रौद्रां परलोकवहां नदीम् ।

अब अर्जुन ने उस महारथी अश्वत्थामा के अश्वों को मारकर रणभूमि में रक्त की नदी वहा दी जिस भयानक नदी में सारे प्राणी बहे चले जाते थे और जो परलोक रूपी समुद्र की ओर जारही थी ॥६॥

सरथान्रथिनः सर्वान्पार्थचापच्युतैः शरैः ॥१०॥
द्रौणेरपहतान्सङ्ख्ये ददृशुः स च तांस्तथा ।
प्रावर्तयन्महाघोरां नदीं परवहां तदा ॥११॥

हे राजन् ! अर्जुन के धनुप से निकले हुए बाणों द्वारा रथों के सहित मारे हुए अश्वत्थामा के रथी वीरों को रणमें सारे कौरव और स्वयं अश्वत्थामा ने भी उन्हें देखा। इसने भी शत्रु वीरों के वहा देने वाली महाघोर रक्त की नदी प्रवृत्त करदी ॥१०-११॥

तयोस्तु व्याकुले युद्धे द्रौणेः पार्थस्य दारुणे ।
अमर्यादं योधयन्तः पर्यधावन्त पृष्ठतः ॥१२॥

हे राजन् द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा और कुन्ती-पुत्र अर्जुन का जब सबको व्याकुल करदेने वाला यह घोरयुद्ध प्रवृत्त हुआ तो योद्धा लोग भी मर्यादा छोड़कर युद्ध करने लगे और वे पीछे से भी आक्रमण में परायण हुए ॥१२॥

रथैर्हताश्वसूतैश्च हतारोहैश्च वाजिभिः ।
द्विरदैश्च हतारोहैर्महामात्रैर्हतद्विपैः ॥१३॥
पार्थेन समरे राजन्कृतो घोरो जनक्षयः ।

हे राजेन्द्र ! अश्व और सारथि जिनके मारे गए-ऐसे रथ, सवार जिनके मारे जा चुके-ऐसे अश्व, तथा गजारोही जिनके मारे गए-ऐसे द्विरद हाथी और हाथी मारे गए, ऐसे महावत (गजारोही) बहुत ही होरहे थे। इस प्रकार अर्जुन ने रण में महाघोर प्रलय मचादी ॥१३॥

निहता रथिनः पेतुः पार्थचापच्युतैः शरैः ॥१४॥
हयाश्च पर्यधावन्त मुक्तयोक्त्रास्ततस्ततः ।

हे जनाधिप ! अर्जुन के धनुष से छूटे हुए बाणों से मर २ कर रथीवीर गिरने और योक्त्र (लगाम) से रहित होकर अश्व भी रणभूमि में इधर उधर भागने लगे ॥१४॥

तद् दृष्ट्वा कर्म पार्थस्य द्रौणिराहवशोभिनः ॥१५॥
अर्जुनं जयतां श्रेष्ठं त्वरितोऽभ्येत्य वीर्यवान् ।
विधुन्वानो महच्चापं कार्तस्वरविभूषितम् ॥१६॥
अवाकिरत्ततो द्रौणिः समन्तान्निशितैः शरैः ।

हे महाभाग ! युद्ध में शोभा पाने वाले अर्जुन के इस भीषण कर्म को देखकर महावीर्यवान द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने विजयी वीरों में श्रेष्ठ अर्जुन पर धावा किया। यह अपने सुवर्ण विभूषित धनुष को कंपाने लगा और इसने उससे इतने तीक्ष्ण बाण छोड़े कि जिनसे सारी दिशायें व्याप्त हो गईं ॥१५-१६॥

भूयोऽर्जुनं महाराज द्रौणिरायम्य पत्रिणा ॥१७॥
वक्षोदेशे भृशं पार्थं ताडयामास निर्दयम् ॥

हे महाराज ! अब फिर द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा ने अर्जुन को लक्ष्य बनाया और कुन्ती-पुत्र अर्जुन के वक्षस्थल में बड़ी निर्दयता के साथ बाण का प्रहार किया ॥१७॥

सोऽतिविद्धो रणे तेन द्रोणपुत्रेण भारत ॥१८॥
गाण्डीवधन्वा प्रसभं शरवर्षैरुदारधीः ।
संछाद्य समरे द्रौणिं चिच्छेदास्य च कार्मुकम् ॥१९॥

हे भारत ! उस द्रोण-पुत्र द्वारा रण में अत्यन्त बिंधे हुए गाण्डीवधनुषधारी उदार बुद्धि अर्जुन ने बाण वर्षा से बड़े वेग से रण में अश्वत्थामा को आच्छादित कर दिया और इसका धनुष भी काट गिराया ॥१८-१९॥

स च्छिन्नधन्वा परिघं वज्रस्पर्शसमं युधि ।
आदाय चिक्षेप तदा द्रोणपुत्रः किरीटिने ॥२०॥
तमापतन्तं परिघं जाम्बूनदपरिष्कृतम् ।
चिच्छेद सहसा राजन्प्रहसन्निव पाण्डवः ॥२१॥

स पपात तदा भूमौ निकृत्तः पार्थसायकैः ।
निकीर्णः पर्वतो राजन्यथा वज्रेण ताडितः ॥२२॥

जब द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा का धनुप कट गया-तो उसने वज्र के स्पर्श के समान परिघ को युद्ध में उठाकर किरीटधारी अर्जुन पर फैंका। हे राजन् ! उस गिरते हुए सुवर्ण जटित परिघ (घन) को देखकर हँसते २ पाण्डु पुत्र अर्जुन ने उसे एकदम काट गिराया। अर्जुन के बाणों से छिन्न-भिन्न हुआ वह परिघास्त्र इस तरह कटकर गिरा-जैसे-वज्र से तोड़ा हुआ पर्वत बिखर कर गिर जाता है ॥२०-२२॥

ततः क्रुद्धो महाराज द्रोणपुत्रो महारथः ।
ऐन्द्रेण चास्त्रवेगेन बीभत्सुं समवाकिरत् ॥२३॥

हे महाराज ! परिघ नामक शस्त्र के काट डालने से अश्वत्थामा जल उठा-उसने ऐन्द्र नामक अस्त्र द्वारा बड़े वेग से अर्जुन को छेदना आरम्भ किया ॥२३॥

तस्येन्द्रजालावततं समीक्ष्य पार्थो राजन्गाण्डिवमाददे सः ।
ऐन्द्रं जालं प्रत्यहरत्तरस्वी वरास्त्रमादाय महेन्द्रसृष्टम् ॥२४॥

हे राजन् ! अश्वत्थामा के इन्द्रास्त्र के जाल को फैला हुआ देखकर कुन्तीपुत्र महावेगशाली अर्जुन ने अपना गाण्डीव उठाया और इन्द्र द्वारा रचे हुए इस उत्तम अस्त्र गाण्डीव को लेकर उसने अश्वत्थामा के सारे ऐन्द्रास्त्र के जाल को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥२४॥

विदार्य तज्जालमथेन्द्रमुक्तं पार्थस्ततो द्रौणिरथं क्षणेन ।
प्रच्छादयामास ततोऽभ्युपेत्य द्रौणिस्तदा पार्थशराभिभूतः ॥
विगाह्य तां पाण्डववाणवृष्टिं शरैः परं नाम ततः प्रकाश्य ।
शतेन कृष्णं सहसाभ्यविद्धयत्त्रिभिः शतैरर्जुनं क्षुद्रकाणाम् ॥

हे भरतर्षभ ! इन्द्रास्त्र द्वारा फैलाए हुए अश्वत्थामा के जाल को काटकर अर्जुन ने अश्वत्थामा के रथ को क्षण भर में अपने बाणों से आच्छादित कर दिया। अर्जुन के बाणों से आहत हुए अश्वत्थमा ने अर्जुन पर आक्रमण करके उसने अपने बाणों द्वारा पाण्डु पुत्र अर्जुन की सारी बाणवर्षा छिन्न-भिन्न कर डाली और रण में अपना नाम प्रकाशित करके सौ बाण भगवान् कृष्ण और तीन सौ क्षुद्रक बाण अर्जुन पर एकदम छोड़कर इन को घायल कर दिया ॥२५-२६॥

ततोऽर्जुनः सायकानां शतेन गुरोः सुतं मर्मसु निर्बिभेद ।
अश्वांश्च सूतं च तथा धनुर्ज्यामवाकिरत्पश्यतां तावकानाम् ॥

अब अर्जुन ने भी सौ बाणों से अपने गुरु द्रोणाचार्य के पुत्र अश्वत्थामा को बींध दिया। तथा उसके अश्व, सारथि और धनुप की डोरी को भी छेद डाला। इस दृश्य को तुम्हारे पक्ष के वीर खड़े २ देखते रहगए ॥२७॥

स विध्वा मर्मसु द्रौणिं पाण्डवः परवीरहा ।
सारथिं चास्य भल्लेन रथनीडादपातयत् ॥२८॥

हे राजन्! शत्रुवीर-नाशक पाण्डु पुत्र अर्जुन ने अश्वत्थामा को मर्मस्थानों में बींधकर तथा एक भल्ल संज्ञक बाण उसके सारथि के हृदय में मारकर उसे रथ के आसन से नीचे गिरा दिया ॥२८॥

स संगृह्य स्वयं वाहान्कृष्णौ प्राच्छादयच्छरैः ।
तत्राद्भुतमपश्याम द्रौणेराशु पराक्रमम् ॥२९॥
प्रायच्छत्तुरगान्यश्च फाल्गुनं चाप्ययोधयत् ।
तदस्य समरे राजन्सर्वे योधा अपूजयन् ॥३०॥

अब अश्वत्थामा ने स्वयं अश्वों की रास पकड़ी और बाणों की झड़ी लगाकर कृष्णार्जुन को बींधने लगा। हमने उस समय शीघ्रताकारी (फुर्तीले) अश्वत्थामा का बड़ा ही अद्भुत पराक्रम देखा कि एक ओर तो यह अश्व को रोकता था और दूसरी ओर से अर्जुन से युद्ध करता जा रहाथा, हे राजन! अश्वत्थामा के इस वीर कर्म की दोनों ओर के सारे योद्धाओं ने बड़ी प्रशंसा की ॥२९-३०॥

ततः प्रहस्य बीभत्सुर्द्रोणपुत्रस्य संयुगे ।
क्षिप्रं रश्मीनथाश्वानां क्षुरप्रैश्चिच्छिदे जयः ॥३१॥

हे महानुभाव! रण में वीर कर्म कर दिखाने वाले अर्जुन कुछ मुसकुराए और उन्होंने द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा के अश्वों की रास अपने क्षुर के समान तीक्ष्ण बाण से काट डाली ॥३१॥

प्राद्रवंस्तुरगास्ते तु शरवेगप्रपीडिताः ।
ततोऽभून्निनदो घोरस्तव सैन्यस्य भारत ॥३२॥

हे राजन्! अब अर्जुन के बाण के प्रहार से पीड़ित हुए अश्वत्थामा के अश्व भाग निकले जिससे तुम्हारी सेना में बड़ा कोलाहल मच गया। अब विजय के इच्छुक पाण्डव वीर तुम्हारी सेना पर सब ओर से बाण वर्षा करते हुए बड़े वेग से टूट पड़े ॥३२॥

पाण्डवास्तु जयं लब्ध्वा तव सैन्यं समाद्रवन् ।
समन्तान्निशितान्बाणान्विमुञ्चन्तो जयैषिणः ॥३३॥
पाण्डवैस्तु महाराज धार्तराष्ट्री महाचमूः
पुनः पुनरथो वीरैः संयुगे जितकाशिभिः ॥३४॥
पश्यतां ते महाराज पुत्राणां चित्रयोधिनाम् ।
शकुनेः सौबलेयस्य कर्णस्य च विशाम्पते ॥३५॥
वार्यमाणा महासेना पुत्रैस्तव जनेश्वर ।
न चातिष्ठत संग्रामे पीडयमाना समन्ततः ॥३६॥

हे महाराज! विजयाभिलाषी पाण्डव वीरों ने बार २ कौरवों की विशाल सेना को रणभूमि में मथ डाला। हे विशाम्पते! इस दृश्य को विचित्र ढंग से युद्ध करने वाले तुम्हारे पुत्र, सुबल पुत्र शकुनि और कर्ण खड़े २ देखते रहगए। हे जनेश्वर! इन महारथियों और तुम्हारे पुत्रों ने इस विशाल सेना के रोकने का बड़ा ही प्रयत्न किया, परन्तु सब ओर से पीड़ित होने के कारण वह संग्राम में नहीं टिक सकी ॥३३-३६॥

ततो योधैर्महाराज पलायद्भिः समन्ततः ।
अभवद्व्याकुलं भीतं पुत्राणां ते महद्बलम् ॥३७॥

हे महाराज ! सब ओर भागते हुए तुम्हारे वीरों से तुम्हारे पुत्र दुर्योधन की विशाल सेना बड़ी ही व्याकुल और भयातुर हो गई ॥३७॥

तिष्ठतिष्ठेति च ततः सूतपुत्रस्य जल्पतः ।
नावतिष्ठति सा सेना वध्यमाना महात्मभिः ॥३८॥

हे महाभाग ! अब यद्यपि महारथी कर्ण, अपनी सेना से बार २ कह रहे थे कि ठहरो ? ठहरो ? परन्तु पाण्डव वीरों द्वारा घायल की हुई सेना किसी प्रकार भी नहीं रुकती थी ॥३८॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज पाण्डवैर्जितकाशिभिः ।
धार्तराष्ट्रबलं दृष्ट्वा विद्रुतं वै समन्ततः ॥३९॥
ततो दुर्योधनः कर्णमब्रवीत्प्रणयादिव ।
पश्य कर्ण महासेना पञ्चालैरर्दिता भृशम् ॥४०॥
त्वयि तिष्ठति सन्त्रासात्पलायनपरायणा ।
एतज्ज्ञात्वा महाबाहो कुरु प्राप्तमरिन्दम ॥४१॥
सहस्राणि च योधानां त्वामेव पुरुषोत्तम ।
क्रोशन्ति समरे वीर द्राव्यमाणानि पाण्डवैः ॥४२॥

हे महाराज ! विजय की आशा से मदोद्धत पाण्डव वीरों द्वारा जब कौरव सेना बहुत ही छेद डाली गई और वह इधर-उधर

भाग खड़ी हुई तो यह देख कर राजा दुर्योधन प्रेम पूर्वक कर्ण से कहने लगे हे कर्ण! देखो ? हमारी महती सेना को भी पञ्चाल वीरों ने किस तरह अत्यन्त व्याकुल कर डाली। अब यह भागती हुई बड़ी भयभीत हो रही है-और तुम से परित्राण की आशा करके तुम्हारे पास रुकती जा रही है। हे अरिमर्दन! महाबाहो! अब जो इस समय कर्तव्य है आप उसको जानकर उसका विधान करो। हे पुरुषोत्तम वीर! ये सहस्रों योद्धा इस घोर युद्ध में तुम्हें ही रक्षा के लिए पुकार रहे हैं, जिनको पाण्डवों ने बुरी तरह भगा दिया है ॥३९-४२॥

एतच्छ्रुत्वापि राधेयो दुर्योधनवचो महान्।
मद्रराजमिदं वाक्यमब्रवीत्प्रहसन्निव ॥४३॥
पश्य मे भुजयोर्वीर्यमस्त्राणां च जनेश्वर।
अद्य हन्मि रणे सर्वान्पञ्चालान्पाण्डुभिः सह ॥४४॥
वाहयाश्वान्नरव्याघ्र भद्रेणैव न संशयः।

हे राजन्! महावीर राधा-पुत्र कर्ण ने कुरुराज दुर्योधन के वचन सुनकर मुसकुराते हुए जनेश्वर शल्य से यह वचन कहा हे जनेश्वर! आज तुम मेरी भुजा और अस्त्रों का बल देखना। मैं अभी रण में पाण्डव वीरों के साथ सारे पञ्चालों को मार गिराता हूँ। हे नरव्याघ्र! यदि तुमने योग्यता के साथ अश्वों को चलाया तो इस बात में सन्देह न समझो ॥४३-४४॥

एवमुक्त्वा महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ॥४५॥
प्रगृह्य विजयं वीरो धनुः श्रेष्ठं पुरातनम् ।
सज्यं कृत्वा महाराज संगृह्य च पुनः पुनः ॥४६॥
सन्निवार्य च योधान्स सत्येन शपथेन च ।
प्रायोजयदमेयात्मा भार्गवास्त्रं महाबलः ॥४७॥

हे महाराज ! महाप्रतापी वीर श्रेष्ठ सूत-पुत्र कर्ण ने अपने प्राचीन सर्व श्रेष्ठ विजय नामक धनुष को उठाया। उस धनुष को बार २ चढ़ा कर और अच्छी तरह संतुलित करके सत्य की शपथ लेकर सारे कौरव वीरों को उसने रोका। अब महाबली अपरिमित बलशाली कर्ण ने भार्गवास्त्र का प्रयोग किया ॥४५-४७॥

ततो राजन्सहस्राणि प्रयुतान्यर्बुदानि च ।
कोटिशश्च शरास्तीक्ष्णा निरगच्छन्महामृधे ॥४८॥
ज्वलितैस्तैः शरैर्घोरैः कङ्कबर्हिणवाजितैः ।
संछन्ना पाण्डवी सेना न प्राज्ञायत किञ्चन ॥४९॥

हे राजन् ! अब इस महायुद्ध में सहस्रों, लाखों, करोड़ों और अरबों की संख्या में तीक्ष्ण बाण चलने लगे। इन घोर प्रज्वलित कङ्क और मयूर पिच्छ से सुशोभित बाणों से कर्ण ने पाण्डव सेना, आच्छादित करदी, जिससे कुछ भी दिखाई नहीं पड़ता था ॥४८-४९॥

हाहाकारो महानासीत्पञ्चालानां विशाम्पते ।
पीडितानां बलवता भार्गवास्त्रेण संयुगे ॥५०॥

हे विशाम्पते ! अब रणाजिर में बलवान कर्ण द्वारा छोड़े हुए भार्गवास्त्र से पीड़ित पञ्चालों की सेना में महान् हाहाकार खड़ा हो गया ॥५०॥

निपतद्भिर्गजै राजन्नश्वैश्चापि सहस्रशः ।
रथैश्चापि नरव्याघ्र नरैश्चैव समन्ततः ॥५१॥

हे नरव्याघ्र ! गिरते हुए सहस्रों हाथी, अश्व, रथ और वीरों के मारे जाने से सब ओर पृथिवी थर्राने सी लग गई । इस तरह पाण्डवों की सारी विशाल सेना बड़ी ही व्याकुल हो गई ॥५१॥

प्राकम्पत मही राजन्निहतैस्तैः समन्ततः ।
व्याकुलं सर्वमभवत्पाण्डवानां महद्बलम् ॥५२॥
कर्णस्त्वेको युधां श्रेष्ठो विधूम इव पावकः ।
दहञ्शत्रून्नरव्याघ्र शुशुभे स परन्तपः ॥५३॥

हे नरव्याघ्र ! इन सब के मध्य में अकेला वीर श्रेष्ठ कर्ण इस तरह चमक रहा था, जैसे धूमरहित अग्नि प्रज्वलित हो रही हो । यह शत्रुतापी कर्ण अपने शत्रुओं को भस्म करता हुआ बड़ा ही देदीप्यमान हो रहा था ॥५२-५३॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पञ्चालाश्चेदिभिः सह ।
तत्र तत्र व्यमुह्यन्त वनदाहे यथा द्विपाः ॥५४॥
चुक्रुशुश्च नरव्याघ्र यथा व्याघ्रा नरोत्तमाः ।
तेषां तु क्रोशतामासीद्भीतानां रणमूर्द्धनि ॥५५॥
धावतां च ततो राजंस्त्रस्तानां च समन्ततः ।
आर्तनादो महांस्तत्र भूतानामिव सम्प्लवे ॥५६॥

हे नर श्रेष्ठ ! कर्ण द्वारा आहत किए हुए चेदी और पाञ्चाल वीर इस तरह व्याकुल हो गए-जैसे वन के दाह में हाथी विकल हो जाते हैं। ये वीर, व्याघ्रों की तरह चीत्कार करने लगे। इस प्रकार संग्राम में भयभीत वीरों के चिल्लाने और व्याकुल होकर इधर उधर भागने से प्रलयकाल के प्राणियों की तरह महान् आर्त-नाद उत्पन्न हो गया ॥५४-५६॥

वध्यमानांस्तु तान्दृष्ट्वा सूतपुत्रेण मारिष ।
वित्रेसुः सर्वभूतानि तिर्यग्योनिगतान्यपि ॥५७॥

हे आर्य ! सूत पुत्र कर्ण द्वारा इनका व्याकुल करना देखकर तिर्यग्योनि में उत्पन्न जीव भी बड़े ही व्याकुल हो गए ॥५७॥

ते वध्यमानाः समरे सूतपुत्रेण सृञ्जयाः ।
अर्जुनं वासुदेवं च क्रोशन्ति च मुहुर्मुहुः ॥५८॥
प्रेतराजपुरे यद्वत्प्रेतराजं विचेतसः ।

हे राजन् ! सूत पुत्र कर्ण द्वारा घायल किए हुए सृञ्जय, अर्जुन और श्रीकृष्ण को बार २ इस तरह चिल्लाने लगे। जैसे प्रेतराज की राजधानी में अचेत हुए प्रेतराज को पुकारते हैं ॥५८॥

श्रुत्वा तु निनदं तेषां वध्यतां कर्णसायकैः ॥५९॥
अथाब्रवीद्वासुदेवं कुन्तीपुत्रो धनञ्जयः ।
भार्गवास्त्रं महाघोरं दृष्ट्वा तत्र समीरितम् ॥६०॥

कर्ण के बाणों द्वारा मारे जाते हुए उन वीरों की चीत्कार सुनकर और कर्ण द्वारा छोड़े हुए महावोर भार्गवास्त्र को देखकर कुन्ती पुत्र अर्जुन ने वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण से कहा ॥५६-६०॥

पश्य कृष्ण महाबाहो भार्गवास्त्रस्य विक्रमम् ।
नैतदस्त्रं हि समरे शक्यं हन्तुं कथञ्चन ॥६१॥

हे महाबाहो । कृष्ण ! तुम भार्गवास्त्र की ज्वाला देखो- इस अस्त्र को रण में किसी प्रकार भी नष्ट नहीं किया जा सकता है ॥६१॥

सूतपुत्रं च संरब्धं पश्य कृष्ण महारणे ।
अन्तकप्रतिमं वीर्यं कुर्वाणं कर्म दारुणम् ॥६२॥

हे कृष्ण ! तुम इस महारण में आवेश में भरे हुए सूतपुत्र कर्ण को तो देखो, जो काल के समान भीषण और दारुण कर्म रण में दिखा रहा है ॥६२॥

अभीक्ष्णं चोदयन्नश्वान्प्रेक्षते मां मुहुर्मुहुः ।
न च पश्यामि समरे कर्णप्रति पलायितुम् ॥६३॥

यह लगातार अश्वों को आगे बढ़वाता हुआ मेरी ओर बार २ देखता जाता है कोई भी वीर इस समय मुझे दृष्टि गोचर नहीं होता-जो रण में कर्ण को भगा देवे ॥६३॥

जीवन्प्राप्नोति पुरुषः सङ्ख्ये जयपराजयौ ।
मृतस्य तु हृषीकेश भङ्ग एव कुतो जयः ॥६४॥

हे हृषीकेश ! यदि मनुष्य जीवित रहे तो कभी जय और कभी पराजय प्राप्त करता रहता है परन्तु यदि मृत्यु को प्राप्त हो जावे तो उसकी पराजय ही है उसे कैसे कभी जय प्राप्त हो सकता है ॥६४॥

एवमुक्तस्तु पार्थेन कृष्णो मतिमतां वरम् ।
धनञ्जयमुवाचेदं प्राप्त कालमरिन्दमम् ॥६५॥

जब कुन्ती-पुत्र अर्जुन ने बुद्धिमानों में श्रेष्ठ अर्जुन से इतना कहा तो श्रीकृष्ण ने अरिमर्दन धनञ्जय अर्जुन से समयानुकूल यह वचन कहा ॥६५॥

कर्णेन हि दृढं राजा कुन्तीपुत्रः परिक्षतः ।
तं दृष्ट्वाश्वास्य च पुनः कर्णं पार्थ वधिष्यसि ॥६६॥

कर्ण ने आज राजा युधिष्ठिर को बहुत क्षत-विक्षित कर दिया हे पार्थ ! तुम उनसे मिलकर और उनको आश्वासन देकर पीछे कर्ण का वध करना ॥६६॥

एवमुक्त्वा पुनः प्रायाद् द्रष्टुमिच्छन्युधिष्ठिरम् ।
श्रमेण ग्राहयिष्यंश्च युद्धे कर्णं विशाम्पते ॥६७॥

हे विशाम्पते ! इतना कह कर श्रीकृष्ण राजा युधिष्ठिर से मिलने को चल दिए। वे चाहते थे, कि इस समय में कर्ण युद्ध करते हुए और भी अधिक थक लेंगे ॥६७॥

ततो धनञ्जयो द्रष्टुं राजानं बाणपीडितम् ।
रथेन प्रययौ क्षिप्रं संग्रामात्केशवाज्ञया ॥६८॥

हे राजन्! श्रीकृष्ण के कथन को मानकर धनञ्जय अर्जुन बाणों से क्षतविक्षत धर्मराज को आश्वासन देने के लिए बड़े वेग से रण से निकल गए। ६८॥

गच्छन्नेव तु कौन्तेयो धर्मराजदिदृक्षया।
सैन्यमालोकयामास नापश्यत्तत्र चाग्रजम् ॥६९॥
युद्धं कृत्वा तु कौन्तेयो द्रोणपुत्रेण भारत।
दुःसहं वज्रिणा सङ्ख्ये पराजित्य गुरोः सुतम् ॥७०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि धर्मराजशोधने चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

कुन्ती पुत्र अर्जुन, धर्मराज को देखने की इच्छा से सेना को टटोल ने लगे। हे भारत! अर्जुन इस समय द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा से युद्ध करके तथा इन्द्र के समान पराक्रमी अपने गुरु-सुत अश्वत्थामा को रण में पराजित करके खोजरहे थे, परन्तु उन्हें खोजने पर भी अर्जुन को कहीं भी धर्मराज न मिले ॥६९-७०॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में अर्जुन द्वारा धर्मराज के खोजने का चौसठवाँ अध्याय समाप्त हुआ।



पैंसठवां अध्याय

सञ्जय उवाच —

द्रौणिं पराजित्य ततोऽग्रधन्वा कृत्वामहद्दुष्करं शूरकर्म ।

आलोकयामास ततः स्वसैन्यं धनञ्जयः शत्रुभिरप्रधृष्यः ॥१॥

सञ्जय बोले-हे भरतश्रेष्ठ ! उग्र धनुष के धारण करने वाले शत्रुओं से आक्रमण नहीं करने योग्य, धनञ्जय ने महादुष्कर वीर कर्म और द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा को पराजित करके अपनी सेना को देखा ॥१॥

अयुध्यमानान्पृतनामुखस्थाञ्शूरः शूरान्हर्षयन्सव्यसाची ।

पूर्वप्रहारैर्मथितान्प्रशंसन्स्थितान्महात्मा स रथाननेकान् ॥२॥

अपश्यमानस्तु किरीटमाली युधिष्ठिरं भ्रातरमाजमीढम् ।

उवाच भीमं तरसाभ्युपेत्य राज्ञः प्रवृत्तिं त्विह कुत्र राजा ॥३॥

युद्ध नहीं करने वाले सेना के मुख्य स्थानों पर स्थित, शूरवीरों को प्रथम उत्साहित तथा पूर्व प्रहारों से उन्मथित हुए और वहां स्थित अनेक महावीरों की प्रशंसा करते हुए किरीटधारी सव्यसाची अर्जुन अजमीढ़ वंश श्रेष्ठ, अपने भ्राता राजा युधिष्ठिर की बड़ी खोज की परन्तु वह दिखाई नहीं दिया। वह-झटपट भीमसेन के पास पहुंचा और उनसे राजा युधिष्ठिर के समाचार पूछे कि इस समय धर्मराज कहां हैं ॥२-३॥

भीमसेन उवाच—

अपयात इतो राजा धर्मपुत्रो युधिष्ठिरः ।
कर्णबाणाभितप्ताङ्गो यदि जीवेत्कथञ्चन ॥४॥

भीमसेन ने कहा हे महाबाहो। धर्म पुत्र राजा युधिष्ठिर, कर्ण के बाणों से सन्तप्त होकर यहां से चला गया है। जहां तक मैं समझता हूं, वे अभी तक जीवित हैं ॥४॥

अर्जुन उवाच—

तस्माद्भवाञ्शीघ्रमितः प्रयातु राज्ञः प्रवृत्त्यै कुरुसत्तमस्य ।
नूनं स विद्धोऽतिभृशं पृषत्कैः कर्णेन राजा शिबिरं गतोऽसौ ॥

अर्जुन बोले—हे भीमसेन ! तुम कुरुवंश श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर के वृत्तान्त जानने को यहां से शीघ्र चले जाओ। महारथी कर्ण ने अपने बाणों से धर्मराज को बहुत ही व्यथित कर दिया है और वे सम्भवत अपने शिविर में पहुंच गए होंगे ॥५॥

यः सम्प्रहारैर्निशितैः पृषत्कैर्द्रोणेन विद्धोऽतिभृशं तरस्वी ।
तस्थौ स तत्रापि जयप्रतीक्षो द्रोणोऽपि यावन्न हतः किलासीत्

जिस अत्यन्त तेजस्वी राजा युधिष्ठिर को द्रोणाचार्य ने अपने तीक्ष्ण बाणों के प्रहारों से अत्यन्त क्षत विक्षत कर दिया-तो भी अपनी विजय की प्रतीक्षा में धर्मराज तब तक वहीं खड़े रहे, जब तक द्रोणाचार्य का वध नहीं हो गया॥६॥

स संशयं गमितः पाण्डवाग्र्यः सङ्ख्येऽद्य कर्णेन महानुभावः
ज्ञातुं प्रयाह्याशु तमद्य भीम स्थास्याम्यहं शत्रुगणान्निरुद्धय॥

हे भीम ! युद्ध में आज वही पाण्डव श्रेष्ठ, महानुभाव, राजा युधिष्ठिर, कर्ण ने मृत्यु के मुख में डाल दिए होते। तुम शीघ्र जाओ और उनके समाचार लेकर आओ। मैं तब तक शत्रुगणों को रोके हुए यहीं पर स्थित हूं ॥७॥

भीमसेन उवाच—

त्वमेव जानीहि महानुभाव राज्ञः प्रवृत्तिं भरतर्षभस्य ।
अहं हि यद्यर्जुन याम्यमित्रा वदन्ति मां भीत इति प्रवीराः ॥

भीमसेन ने कहा-हे महानुभाव ! तुम ही जाकर भरतवंश श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर के समाचारों का पता लगाओ। हे अर्जुन ! यदि यहां से मैं धर्मराज का वृत्तान्त जानने चल दिया—तो शत्रु वीर, मुझे भयभीत कहेंगे ॥८॥

ततोऽब्रवीदर्जुनो भीमसेनं संशप्तकाः प्रत्यनीकस्थिता मे ।
एतानहत्वाद्य मया न शक्यमितोऽपयातुं रिपुसङ्घगोष्ठात् ॥९॥

हे राजन् ! अब अर्जुन ने भीमसेन से कहा—कि मेरे सन्मुख युद्ध में संशप्तक वीर खड़े हैं। इन संशप्तक वीरों के बिना मारे मैं इस शत्रु गोष्ठी से बाहर जाने में समर्थ नहीं हो सकता हूं ॥९॥

अथाब्रवीदर्जुनं भीमसेनः स्ववीर्यमासाद्य कुरुप्रवीर ।
संशप्तकान्प्रति योत्स्यामि सङ्ख्ये सर्वानहं याहि धनञ्जय त्वम्

हे जनाधिप ! अब फिर भीमसेन ने अर्जुन से कहा—हे कुरुप्रवीर ! मैं अपने बल के अनुसार सारे संशप्तक वीरों से युद्ध करता रहूंगा—तुम राजा युधिष्ठिर के पास जाओ ॥१०॥

तद्भीमसेनस्य वचो निशम्य सुदुष्करं भ्रातुरमित्रमध्ये ।
संशप्तकानीकमसह्यमेकः सुदुष्करं धारयामीति पार्थः ॥११॥
उवाच नारायणमप्रमेयं कपिध्वजः सत्यपराक्रमस्य ।
श्रुत्वा वचो भ्रातुरदीनसत्वस्तदाहवे सत्यवचो महात्मा ॥
द्रष्टुं कुरुश्रेष्ठमभिप्रयास्यन्प्रोवाच वृष्णिप्रवरं तदानीम् ॥१२॥

हे नृपते ! शत्रुओं के मध्य में अपने भ्राता भीमसेन के ये वचन-कि मैं अकेला ही महावली संशप्तक वीरों से युद्ध करता रहूँगा-सुनकर कपिध्वज अर्जुन ने सत्य पराक्रमी अपने भ्राता भीमसेन के सत्य वचनों पर विश्वास करके कुरुवंश श्रेष्ठ धर्मराज के देखने को वृष्णिवंश श्रेष्ठ श्रीकृष्ण से इस ढंग से यह वचन कहा ॥११-१२॥

अर्जुन उवाच—

चोदयाश्वान्हृषीकेश विहायैतद्बलार्णवम् ।
अजातशत्रुं राजानं द्रष्टुमिच्छामि केशव ॥१३॥

अर्जुन बोले-हे हृषीकेश ! तुम इस सेना-समुद्र को छोड़कर अश्वों को चलाओ । हे केशव ! मैं अजातशत्रु राजा युधिष्ठिर से मिलना चाहता हूँ ॥१३॥

सञ्जय उवाच—

ततो हयान्सर्वदाशार्हमुख्यः प्रचोदयन्भीममुवाच चेदम् ।
नैतच्चित्रं तव कर्माद्य भीम यास्याम्यहं जहि पार्थारिसङ्घान् ॥

सञ्जय बोले—हे राजन्! इसके अनन्तर सारे दशार्ह देश के वीरों में मुख्य, श्रीकृष्ण अश्वों को हाँकते हुए भीमसेन से यह वचन बोले, हे भीम! तुम्हारे वीर कर्म के विषय कोई आश्चर्य की बात नहीं है। हे पार्थ! हम जाते हैं, तुम अपने अरिसंघ को मार गिराना ॥१४॥

ततो ययौ हृषीकेशो यत्र राजा युधिष्ठिरः ।
शीघ्राच्छीघ्रतरं राजन्वाजिभिर्गरुडोपमैः ॥१५॥

हे राजन्! अब हृषीकेश श्रीकृष्ण शीघ्र से शीघ्र चलने वाले अपने गरुड़ोपम अश्वों से उधर चल दिए जिधर राजा युधिष्ठिर थे ॥१५॥

प्रत्यनीके व्यवस्थाप्य भीमसेनमरिन्दमम् ।
सन्दिश्य चैतं राजेन्द्र युद्धं प्रति वृकोदरम् ॥१६॥

हे राजेन्द्र! श्रीकृष्ण और अर्जुन ने अरिमर्दन भीमसेन को शत्रुओं के प्रतिद्वन्द्व (मुकाबिले) पर नियत किया और इस वृकोदर भीम को इन्होंने युद्ध के विषय में अनेक शिक्षायें दीं ॥१६॥

ततस्तु गत्वा पुरुषप्रवीरौ राजानमासाद्य शयानमेकम् ।
रथादुभौ प्रत्यवरुह्य तस्माद्ववन्दतुर्धर्मराजस्य पादौ ॥१७॥

अब ये दोनों पुरुष प्रवीर श्रीकृष्णार्जुन शयन पर लेटे हुए धर्मराज के पास पहुँचे। वहां पर वे दोनों अपने रथ से उतर पड़े और उन्होंने धर्मराज के चरणों में वन्दना की ॥१७॥

तं दृष्ट्वा पुरुषव्याघ्रं क्षेमिणं पुरुषर्षभम् ।
मुदाभ्युपगतौ कृष्णावश्विनाविव वासवम् ॥१८॥

हे राजन्! वहाँ पर पुरुष श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर को वे दोनों प्रसन्न चित्त देखकर इस तरह आनन्दित हुए जैसे इन्द्रको देखकर अश्विनी कुमार प्रसन्न होते हैं ॥१८॥

तावभ्यनन्दद्राजापि विवस्वानश्विनाविव ।
हते महासुरे जम्भेशक्रविष्णू यथा गुरुः ॥१९॥

राजा युधिष्ठिर ने भी उन दोनों का इस प्रकार स्वागत किया जैसे विवस्वान् (सूर्य) ने दोनों अश्विनीकुमारों तथा महा-असुर जम्भ के मारे जाने पर इन्द्र और विष्णु का बृहस्पति ने स्वागत किया था ॥१९॥

मन्यमानो हतं कर्णं धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
हर्षगद्गदया वाचा प्रीतः प्राह परन्तपः ॥२०॥

अब धर्मराज शत्रुतापी युधिष्ठिर ने कर्ण को मारा हुआ समझा और हर्ष से गद्-गद् होकर प्रेम-पूर्वक उनसे इस प्रकार कहने लगे ॥२०॥

सञ्जय उवाच—

अथोपयातौ पृथुलोहिताक्षौ शराचिताङ्गौ रुधिरप्रदिग्धौ ।
समीक्ष्य सेनाग्रनरप्रवीरौ युधिष्ठिरो वाक्यमिदं बभाषे ॥२१॥

सञ्जय बोले-हे भारत! मोटी २ लाल आखों वाले बाणों से अञ्चित, रक्त में भीगे हुए, सेना के अग्रभाग में चलने वाले

कृष्ण और अर्जुन को देखकर राजा युधिष्ठिर ने इस तरह कहा ॥२१॥

महासत्वौ हि तौ दृष्ट्वा सहितौ केशवार्जुनौ ।
हतमाधिरथिं मेने सङ्ख्ये गाण्डीवधन्वना ॥२२॥

हे जनाधिप ! जब धर्मराज ने महाबली केशव और अर्जुन को एकदम साथ आते हुए देखा तो उसने समझा कि रण में गाण्डीवधारी अर्जुनने निश्चय अधिरथ पुत्र कर्ण को मार लिया है ॥२२॥

तावभ्यनन्दत्कौन्तेयः साम्ना परमवल्गुना ।
स्मितपूर्वममित्रघ्नं पूजयन्भरतर्षभ ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि युधिष्ठिरं प्रति कृष्णार्जुनागमे पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

हे भरतर्षभ ! अब कुन्ती-पुत्र धर्मराज ने बड़ी स्पष्ट और सान्त्वना पूर्ण वाणी से शत्रुनाशक अर्जुन का मुसकुराहट के साथ स्वागत किया ॥२३॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में राजायुधिष्ठिर के पास कृष्णार्जुन के पहुँचने के वर्णन का पैंसठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



छियासठवां अध्याय

युधिष्ठिर उवाच—

स्वागतं देवकीमातः स्वागतं ते धनञ्जय ।
प्रियं मे दर्शनं गाढं युवयोरच्युतार्जुनौ ॥१॥
अक्षताभ्यामरिष्टाभ्यां हतः कर्णो महारथः ।

धर्मराज बोले—हे कृष्ण ! आपका स्वागत हो। हे धनञ्जय ! तुम्हारा स्वागत हो। आज तुम दोनों श्रीकृष्ण और अर्जुन का दर्शन मुझे बहुत ही अधिक प्रिय प्रतीत होता है क्योंकि तुम दोनों ने किसी प्रकार की चोट न खाकर और कल्याण युक्त रहकर महारथी कर्ण का वध कर लिया ॥१॥

आशीविषसमं युद्धे सर्वशस्त्रविशारदम् ॥२॥
अग्रगं धार्तराष्ट्राणां सर्वेषां शर्म वर्म च ।
रक्षितं वृषसेनेन सुषेणेन च धन्विना ॥३॥
अनुज्ञातं महावीर्यं रामेणास्त्रे सुदुर्जयम् ।
अग्र्यं सर्वस्य लोकस्य रथिनं लोकविश्रुतम् ॥४॥
त्रातारं धार्तराष्ट्राणां गन्तारं वाहिनीमुखे ।
हन्तारं परसैन्यानाममित्रगणमर्दनम् ॥५॥
दुर्योधनहिते युक्तमस्मद्दुःखाय चोद्यतम् ।

अप्रधृष्यं महायुद्धे देवरपि सवासवैः ॥६॥
अनलानिलयोस्तुल्यं तेजसा च बलेन च ।
पातालमिव गम्भीरं सुहृदां नन्दिवर्धनम् ॥७॥
अन्तकं मम मित्राणां हत्वा कर्णं महामृधे ।
दिष्टया युवामनुप्राप्तौ जित्वासुरमिवामरौ ॥८॥

यह महारथी कर्ण कौरव सेना का अग्रगामी सेनापति था इसके आश्रय से सबको कल्याण की प्राप्ति थी। यह तो शत्रुओं का कवच बना हुआ था। धनुर्धर वृषसेन और सुधन्वा से यह सुरक्षित था। परशुराम ने अत्यन्त दुर्जय महापराक्रमी कर्ण को अस्त्र विद्या सिखा कर गुरुकुल से घर भेजा। यह संसार के सारे वीरों से श्रेष्ठ लोक प्रसिद्ध महारथी था। जब यह कौरव सेना के मुखभाग पर चलता था, सारे कौरवों की यह अकेला ही रक्षा कर लेता था। यह शत्रु सेना का नाशक और शत्रु समूह का मदन करदेने वाला था। कर्ण सर्वदा राजा दुर्योधन के हित में तत्पर और हमारे क्लेश के साधन जुटाने में प्रवृत्त रहता था। इसपर युद्ध में इन्द्र सहित देवगण भी आक्रमण करने में समर्थ नहीं होते थे। इसका तेज अग्नि और वेग वायु के सदृश था। कर्ण की गम्भीरता समुद्रोपम थी। यह अपने सुहृदों के आनन्द का बढ़ाने वाला था। मेरे मित्रों के अन्तक स्वरूप इसी कर्ण को महायुद्ध में मार कर तुम इस तरह प्राप्त हुए

जैसे असुर को मारकर दो देव-पुत्र आए हों। इस बात की तुझे बहुत ही प्रसन्नता हुई है ॥२-८॥

घोरं युद्धमदीनेन मया ह्यद्याच्युतार्जुनौ।
कृतं तेनान्तकेनेव प्रजाः सर्वा जिघांसता ॥६॥

हे कृष्णार्जुन ! आज उस महोद्धत्त, कर्ण ने मेरे सारे वीरों को मारते हुए इतना घोर युद्ध किया, जैसा-प्रलयकाल में सारी प्रजा का काल संहार करता है ॥६॥

तेन केतुश्च मे छिन्नो हतौ च पार्ष्णिसारथी ।
हताश्वाहस्ततश्चास्मि युयुधानस्य पश्यतः ॥१०॥
धृष्टद्युम्नस्य यमयोर्वीरस्य च शिखण्डिनः ।
पश्यतां द्रौपदेयानां पञ्चालानां च सर्वशः ॥११॥

उसने मेरी ध्वजा काट डाली और मेरे पार्ष्णि-रक्षक तथा सारथि को मार गिराया। उस समय मेरे अश्व मार दिए गए और मैं रथहीन होगया। इस घटना को सात्यकि, धृष्टद्युम्न, नकुल, सहदेव, महारथी शिखण्डी, द्रौपदी पुत्र और सारे पञ्चाल देखते ही रह गए ॥१०-११॥

एताञ्जित्वा महावीर्यः कर्णः शत्रुगणान्बहून् ।
जितवान्मां महाबाहो यतमानो महारणे ॥१२॥
अभिसृत्य च मां युद्धे परुषाण्युक्तवान्बहु ।

हे महाबाहो ! उसने इस महायुद्ध में बड़ा पराक्रम दिखाया और मुझे जीत लिया। उसने मुझ पर आक्रमण करके युद्ध में

बहुत ही कटु भाषण किए हैं। इस महापराक्रमी कर्ण ने पूर्वोक्त सारे महारथी जीत लिए और बहुत से अपने शत्रु मारलिए ॥१२॥

तत्र तत्र युधां श्रेष्ठ परिभूय न संशयः ॥१३॥

भीमसेनप्रभावात्तु यज्जीवामि धनञ्जय ।

हे योद्धाओं में श्रेष्ठ ! वह जहां २ पहुंचा-वहीं पर उसने निश्चयरूप से विजय प्राप्त की। हे धनञ्जय ! मैं जो-वहां से जीवित बच निकला–यह भीमसेन के बल का प्रभाव है ॥१३॥

बहुनात्र किमुक्तेन नाहं तत्सोढुमुत्सहे ॥१४॥

त्रयोदशाहं वर्षाणि यस्माद्भीतो धनञ्जय ।

न स्म निद्रां लभे रात्रौ न चाहनि सुखं क्वचित् ॥१५॥

हे धनञ्जय ! इस समय अधिक फैलाकर कहने की क्या बात है-मैं तो उसके वेग को रण में सह नहीं सका। मैं तेरह वर्ष तक वन में इसी से डरता रहा। मुझे उसके डर से न तो रात में नींद आती थी और न दिन में कभी चैन पड़ता था ॥१४-१५॥

तस्य द्वेषेण संयुक्तः परिदह्ये धनञ्जय ।

आत्मनो मरणं यातो वाध्रीणस इव द्विपः ॥१६॥

हे धनञ्जय ! मैं कर्ण के द्वेष से सर्वदा जलता रहा हूं। जब मैं मरण के समीप पहुंच गया-तो उसके सामने से भाग आया। मेरी दशा नाक में चर्म की रस्सी पड़े हुए बकरे या चमड़े की रस्सी से बंधे हुए पक्षी की सी होगई ॥१६॥

तस्यायमगमत्कालश्चिन्तयानस्य मे चिरम् ।
कथं कर्णो मया शक्यो युद्धे क्षपयितुं भवेत् ॥१७॥

मैं तो बहुत ही दिन से यह मनोरथ कर रहा था, कि किसी प्रकार युद्ध में कर्ण मारा जावे । मेरा बहुत दिन से चला आता हुआ मनोरथ आज पूरा होगया प्रतीत होता है ॥१७॥

जाग्रत्स्वपंश्च कौन्तेय कर्णमेव सदा ह्यहम् ।
पश्यामि तत्र तत्रैव कर्णभूतमिदं जगत् ॥१८॥

हे कौन्तेय ! मैं तो जागते और सोते हुए सदा कर्ण को ही देखता रहता था, कि यह आया । जिधर देखो ? उधर ही कर्ण था, यहां तक कि मुझे तो सारा जगत् ही कर्णमय होगया ॥१८॥

यत्र यत्र हि गच्छामि कर्णाद्भीतो धनञ्जय ।
तत्र तत्र हि पश्यामि कर्णमेवाग्रतः स्थितम् ॥१९॥

हे धनञ्जय ! मैं कर्ण से भयभीत होकर जब कभी इधर उधर मन बहलाने चला जाता-तो वहां भी मुझे सब से आगे कर्ण ही खड़ा दिखाई देता था ॥१९॥

सोऽहं तेनैव वीरेण समरेष्वपलायिना ।
सहयः सरथः पार्थ जित्वा जीवन्विसर्जितः ॥२०॥

हे पार्थ ! आज उसी महावीर-युद्ध से नहीं हटने वाले कर्ण ने अश्व और रथ को नष्ट करके मुझे जीत लिया । यह उसकी बड़ी कृपा हुई-जो उसने मझे जीता छोड़ दिया ॥२०॥

को नु मे जीवितेनार्थो राज्येनार्थो भवेत्पुनः ।
ममैवं विक्षतस्याद्य कर्णेनाहवशोभिना ॥२१॥
न प्राप्तपूर्वं यद्भीष्मात्कृपाद् द्रोणाच्च संयुगे ।
तत्प्राप्तमद्य मे युद्धे सूतपुत्रान्महारथात् ॥२२॥

हे अर्जुन! इस अवस्था में मुझे जीवन और राज्य से क्या लाभ रहगया है, जो युद्धदुर्मद कर्ण ने मुझे इस प्रकार क्षत-विक्षत कर डाला। मुझे तो पूर्व में कभी भीष्म, कृपाचार्य और द्रोणाचार्य रण में इस दशा को प्राप्त नहीं कर सके-जो युद्ध में महारथी सूत-पुत्र कर्ण से प्राप्त होगई ॥२१-२२॥

स त्वां पृच्छामि कौन्तेय यथाद्य कुशलं तथा ।
तन्ममाचक्ष्व कार्त्स्न्येन यथा कर्णो हतस्त्वया ॥२३॥

हे कौन्तेय! अब मैं तो तुमसे पूछता हूं, तुम यह सुनाओ कि तुमने रण में कर्ण को किस प्रकार मारा, क्योंकि तुम सकुशल रण से लौटे हो-इससे मैं ऐसा प्रश्न कर रहा हूं। ॥२३॥

शक्रतुल्यबलो युद्धे यमतुल्यः पराक्रमे ।
रामतुल्यस्तथास्त्रेण स कथं वै निषूदितः ॥२४॥

कर्ण तो बल में इन्द्र, पराक्रम में यम और अस्त्रविद्या में परशुराम के तुल्य था, उसको तुमने कैसे मार गिराया ॥२४॥

महारथः समाख्यातः सर्वयुद्धविशारदः ।
धनुर्धराणां प्रवरः सर्वेषामेकपूरुषः ॥२५॥

यह बड़ा प्रसिद्ध महारथी था और सारी युद्ध विद्याओं में कुशल था। यह तो सारे धनुर्धरों में सर्वप्रथम एक वीर था ॥२५॥

पूजितो धृतराष्ट्रेण सपुत्रेण विशाम्पते।
त्वदर्थमेव राधेयः स कथं निहतस्त्वया ॥२६॥

हे विशाम्पते ! राजा धृतराष्ट्र और उसके पुत्र राजा दुर्योधन ने तुम्हारे मारने को ही राधापुत्र कर्ण को इतने आदर के साथ रखा था-उसे तुमने कैसे मार लिया ॥२६॥

धार्तराष्ट्रो हि योधेषु सर्वेष्वेव सदार्जुन।
तव मृत्युं रणे कर्णं मन्यते पुरुषर्षभ ॥२७॥

हे पुरुष श्रेष्ठ ! अर्जुन ! धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन भी सारे योद्धाओं की अपेक्षा रण में तुम्हारी मृत्यु का कारण कर्ण को ही मानता था ॥२७॥

स त्वया पुरुषव्याघ्र कथं युद्धे निषूदितः।
तन्ममाचक्ष्व कौन्तेय यथा कर्णो हतस्त्वया ॥२८॥

हे पुरुष व्याघ्र ! कौन्तेय ! उसी महारथी कर्ण को तुमने रण में कैसे मारगिराया। जिस तरह तुमने कर्ण को मारा मुझे वह सारी कथा आद्योपान्त सुनाओ ॥२८॥

युध्यमानस्य च शिरः पश्यतां सुहृदां हतम्।
त्वया पुरुषशार्दूल सिंहेनेव यथा रुरोः ॥२९॥

हे पुरुष शार्दूल ! रणमें युद्ध करते हुए कर्ण के शिरको उसके सारे मित्र वीरों के देखते २ तुमने हरिण के शिर को सिंह की तरह नष्ट करदिया होगा ॥२६॥

यः पर्युपासीत्प्रदिशो दिशश्च त्वां सूतपुत्रः समरे परीप्सन् ।
दित्सुः कर्णः समरे हस्तिषड्गवं स हीदानीं कङ्कपत्रैः सुतीक्ष्णैः
त्वया रणे निहतः सूतपुत्रः कच्चिच्छेते भूमितले दुरात्मा ।
प्रियश्च मे परमो वै कृतोऽयं त्वया रणे सूतपुत्रं निहत्य ॥

यह सूतपुत्र कर्ण, रण में तुम्हारे साथ युद्ध करने को सारी दिशा और प्रदिशाओं की ओर देखता रहता था। तुमको सामने लादेने वाले वीर को जिसने हाथी की तरह ऊंचे छः बैल देने की घोषणा की थी-आज वही दुरात्मा कर्ण, तुम्हारे अत्यन्त तीक्ष्ण कङ्कपत्रधारी बाणों से रण में मारा जाकर क्या रणभूमि में लेट लगारहा है। तुमने रण में सूतपुत्र कर्ण को मारकर मेरा बहुत ही प्रिय कार्य सम्पादित किया है ॥३०-३१॥

यः सर्वतः पर्यपतत्त्वदर्थे सदार्चितो गर्वितः सूतपुत्रः ।
स शूरमानी समरे समेत्य कच्चित्त्वया निहतः संयुगेऽसौ ॥
रौक्मं वरं हस्तिगजाश्वयुक्तं रथं प्रदित्सुर्यः परेभ्यस्त्वदर्थे ।
सदा रणे स्पर्धते यः स पापः कच्चित्त्वया निहतस्तात युद्धे
योऽसौ सदा शूर मदेन मत्तो विकत्थते संसदि कौरवाणाम्
प्रियोऽत्यर्थं तस्य सुयोधनस्य कच्चित्स पापो निहतस्त्वयाद्य

सूतपुत्र कर्ण की कौरवों द्वारा पूजा ही तुम्हारे मारने के लिए थी। वह सर्वदा अभिमान में भरा हुआ तुम्हारे साथ भिड़ने को

दौड़ता रहता था। जिसको अपनी शूरवीरता का बड़ा अभिमान था, क्या सचमुच ? तुमने रण में महारथी कर्ण को मार लिया है जिस कर्ण ने तुम्हारे मार देने के लिए हाथी, गज, और अश्वों से युक्त सुवर्ण के रथ देने की भी घोषणा की। हे तात ! जो सदा तुम से युद्ध करने की स्पर्धा रखता था, क्या युद्ध में उसी कर्ण को तुमने मार लिया है जो महा अभिमान में भर कर सदा कौरवों की सभा में गरजा करता था और दुर्योधन का प्यारा मित्र था उस पापी को आज तुमने कैसे मारा ॥३२-३४॥

कच्चित्समागम्य धनुःप्रयुक्तैस्त्वत्प्रेषितैर्लोहिताङ्गैर्विहङ्गैः ।
शेते स पापः सुविभिन्नगात्रः कच्चिद्भग्नौ धार्तराष्ट्रस्य बाहू

क्या तुम्हारे साथ मुठभेड़ पाकर तुम्हारे धनुष से छोड़े हुए लाल वर्णधारी बाणों से जर्जरित होकर पापी कर्ण रणभूमि में सो चुका। क्या आज धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन की दोनों भुजा काटी गई॥३५॥

योऽसौ सदा श्लाघते राजमध्ये दुर्योधनं हर्षयन्दर्पपूर्णः ।
अहं हन्ता फाल्गुनस्येति मोहात्कच्चिद्वचस्तस्य न वै तथा तत्

जो घमण्ड में भरा हुआ सदा राजा दुर्योधन को अज्ञान के साथ यह कहकर राजसभा में आनन्दित करता था, कि मैं अर्जुन को अवश्य मारकर रहूँगा, क्या उस कर्ण का वचन आज मिथ्या सिद्ध होगया ॥३६॥

नाहं पादौ धावयिष्ये कदाचिद्यावत्स्थितः पार्थ इत्यल्पबुद्धेः
व्रतं तस्यैतत्सर्वदा शक्रसूनो कच्चित्त्वया निहतः सोऽद्य कर्णः

हे इन्द्र पुत्र! जिस अल्पबुद्धि कर्ण की यह सदा से प्रतिज्ञा थी, कि जब तक कुन्ती पुत्र अर्जुन जीता है, तब तक मैं पांव नहीं धोऊंगा—क्या आज उसी कर्ण को तुमने रण में मार गिराया ॥३७॥

योऽसौ कृष्णामब्रवीद् दुष्टबुद्धिः कर्णः सभायां कुरुवीरमध्ये ।
किं पाण्डवांस्त्वं न जहासि कृष्णे सुदुर्बलान्पतितान्हीनसत्वान्

हे अर्जुन! जिस दुष्टबुद्धि कर्ण ने कौरवों की सभा के मध्य में द्रौपदी से कहा था, कि हे कृष्णे! क्या तू दुर्बल, पतित, और तेजहीन इन पाण्डवों को अब भी नहीं छोड़ेगी ॥३८॥

योऽसौ कर्णः प्रत्यजानात्त्वदर्थे नाहं हत्वा सह कृष्णेन पार्थम् ।
इहोपयातेति स पापबुद्धिः कच्चिच्छेते शरसम्भिन्नगात्रः ॥३९॥
कच्चित्संग्रामो विदितो वै तवायं समागमे सृञ्जयकौरवाणाम् ।
यत्रावस्थामीदृशीं प्रापितोऽहं कच्चित्त्वया सोऽद्य हतो दुरात्मा

हे अर्जुन! जिस कर्ण ने तुम्हारे निमित्त यह प्रतिज्ञा की थी, कि मैं कृष्ण के साथ अर्जुन को बिना मारे नहीं लौटूंगा—क्या वह पापबुद्धि कर्ण, तुम्हारे बाण से बिंधकर आज रणभूमिमें पड़ा लेट लगारहा है? क्या तुमको इस कौरव और सृञ्जयों के युद्ध में जो हमारी दुर्दशा हुई उसका पता होगया था। क्या आज दुरात्मा कर्ण को इसी क्रोध से तुमने मार गिराया ॥३९-४०॥

कच्चित्त्वया तस्य सुमन्दबुद्धेर्गाण्डीवमुक्तैर्विशिखैर्ज्वलद्भिः ।
सकुण्डलं भानुमदुत्तमाङ्गं कायात्प्रकृत्तं युधि सव्यसाचिन् ॥४१॥

हे सव्यसाचिन् ! क्या तुमने मन्द बुद्धि कर्ण का कुण्डलों सहित कान्तिमान् मस्तक को गाण्डीव से छोड़े हुए जाज्वल्यमान बाणों से युद्ध में मार गिराया ॥४१॥

यत्तन्मया बाणसमर्पितेन ध्यातोऽसि कर्णस्य वधाय बीर ।
तन्मे त्वया कच्चिदमोघमद्य ध्यानं कृतं कर्णनिपातनेन ॥४२॥

हे वीर ! जब कर्ण ने मुझे बाणोंसे छेद डाला तो कर्ण के वध के लिए मैंने तुम्हारा ध्यान किया था । हे अर्जुन क्या कर्ण को मारकर तुमने मेरे उस ध्यान को सत्य सिद्ध कर दिया है ॥४२॥

यद्दर्पपूर्णः स सुयोधनोऽस्मानुदीक्षते कर्णसमाश्रयेण ।
कच्चित्त्वया सोऽद्य समाश्रयोऽस्य भग्नः पराक्रम्य सुयोधनस्य

हे महाबाहो ! कर्ण के आश्रय से ही अभिमान पूर्ण दृष्टि से राजा दुर्योधन हमको सर्वदा देखता रहता था । क्या तुमने आज रण में आक्रमण करके उसी राजा दुर्योधनका अवलम्बन भूतकर्ण को नष्ट कर दिया है ॥४३॥

यो नः पुरा षण्ढतिलानवोचत्सभामध्ये कौरवाणां समक्षम् ।
स दुर्मतिः कच्चिदुपेत्य सङ्ख्ये त्वया हतः सूतपुत्रो ह्यमर्षी ॥४४॥

जिस दुर्मति कर्ण ने कौरवों की सभा के मध्य में हम को षण्ढतिल (नपुंसक) कहकर सम्बोधित किया था, क्या उसी

क्रोधाविष्ट सूत पुत्र कर्ण पर तुमने रण में आक्रमण करके उसे मार गिराया ? ॥४४॥

यः सूतपुत्रः प्रहसन्दुरात्मा पुराब्रवीन्निर्जितां सौबलेन ।
स्वयं प्रसह्यानय याज्ञसेनीमपीह कच्चित्स हतस्त्वयाद्य ॥४५॥

हे अर्जुन ! जब सुबल पुत्र शकुनि ने द्रौपदी को जीत लिया-तो हंसते हंसते दुरात्मा सूत पुत्र कर्ण ने दुःशासन से कहा था, कि तुम स्वयं जाकर बल-पूर्वक द्रौपदी को यहां लेआओ-क्या उस कर्ण को आज तुमने मार गिराया है ॥४५॥

यः शस्त्रभृच्छ्रेष्ठतमः पृथिव्यां पितामहं व्याक्षिपदल्पचेताः
सङ्ख्यायमानोऽर्द्ध रथः स कच्चित्त्वया हतोऽद्याधिरथिर्महात्मन्

हे महात्मन् ! जिस समय भीष्म ने रथी महारथियों की गणना की, और भीष्म ने कर्ण को अर्द्धरथी बताया-तो पृथिवी पर शास्त्रधारियों में श्रेष्ठ, मूर्ख कर्ण ने पितामह भीष्म को बहुत ही जली भुनी सुनाई थीं, क्या उस अधिरथ पुत्र कर्ण को आज तुमने मार लिया है ॥४६॥

अमर्षजं निकृतिसमीरणेरितं हृदि स्थितं ज्वलनमिमं सदा मम
हतो मया सोऽद्य समेत्य कर्ण इति ब्रुवन्प्रशमयसेऽद्य फाल्गुन

हे अर्जुन ! क्रोध से उत्पन्न, अपमानरूपी वायु से प्रवर्द्धित, हृदय में स्थित, मेरे अग्नि को तुम यह कहकर शान्त करो, कि आज रण में आक्रमण करके मैंने कर्ण को मार गिराया ॥४७॥

ब्रवीहि मे दुर्लभमेतदद्य कथं त्वया निहतः सूतपुत्रः ।
अनुध्याये त्वां सततं प्रवीर वृत्रे हतेऽसौ भगवानिवेन्द्रः ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि युधिष्ठिरवाक्ये षट्षष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

हे उत्कृष्ट वीर ! अब तुम मुझे इस दुर्लभ बात को सुनाओ कि तुमने कर्ण को कैसे मारा। हम तो वृत्रासुर के मार लेने पर भगवान् इन्द्र की तरह प्रसन्न होकर सर्वदा तुम्हारा ध्यान कर रहे हैं ॥४८॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में अर्जुन और युधिष्ठिर के मिलने का छियासठवां अध्याय समाप्त हुआ ।



सड़सठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

तद्धर्मशीलस्य वचो निशम्य राज्ञः क्रुद्धस्यातिरथो महात्मा ।
उवाच दुर्धर्षमदीनसत्वं युधिष्ठिरं जिष्णुरनन्तवीर्यः ॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ ! क्रोध में भरे हुए धर्म परायण राजा युधिष्ठिर के वचन सुनकर महापराक्रमी अत्यन्त शक्तिशाली विजयशील महारथी अर्जुन, उद्धत बलशाली दुर्धर्ष राजा युधिष्ठिर से यह वचन बोले ॥१॥

अर्जुन उवाच

संशप्तकैर्युध्यमानस्य मेऽद्य सेनाग्रयायी कुरुसैन्येषु राजन् ।
आशीविषाभान्खगमान्प्रमुञ्चन्द्रौणिः पुरस्तात्सहसाभ्यतिष्ठत् ॥

अर्जुन ने कहा—हे राजन् ! जब मैं संशप्तक वीरों से युद्ध कर रहा था-तो कौरव सेना का अग्रगामी सेनापति द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, आशीविष सर्प के समान बाणों को छोड़ता हुआ एक दम मेरे सामने आगया ॥२॥

दृष्ट्वा रथं मेघरवं ममैव समस्तसेनावरणेऽभ्यतिष्ठत् ।
तेषामहं पञ्चशतानि हत्वा ततो द्रौणिमगमं पार्थिवाग्रय ॥

हे नृप श्रेष्ठ ! जब मेघ के तुल्य ध्वनि करने वाले मेरे रथ को कौरवों ने देखा-तो वे सारी सेना लेकर मेरे रोकने को आगे बढ़े-मैं उनमें पांचसौ वीरों को मारकर फिर द्रोण-सुत अश्वत्थामा के पास पहुँचा ॥३॥

स मां समासाद्य नरेन्द्र यत्तः समभ्यार्त्सिहमिव द्विपेन्द्रः ।
अकार्षीच्च रथिनामुज्जिहीर्षां महाराज वध्यतां कौरवाणाम् ॥

हे नरेन्द्र ! अश्वत्थामा भी मुझे सन्मुख देखकर इस तरह झपटा जैसे सिंह पर गजराज झपटता है । हे महाराज ! मैं जो कौरव महारथियों का विध्वंस उड़ा रहा था-अश्वत्थामा ने उन्हें बचा लेना चाहा ॥४॥

ततो रणे भारत दुष्प्रकम्प्य आचार्यपुत्रः प्रवरः कुरूणाम् ।
मामर्दयामास शितैः पृषत्कैर्जनार्दनं चैव विषाग्निकल्पैः ॥

हे भारत ! कुरुवीरों में सर्वश्रेष्ठ, रण में कम्पित नहीं होने वाले, आचार्य-पुत्र ने विष और अग्नि के तुल्य तीक्ष्ण बाणों से मुझे और जनार्दन कृष्ण को अत्यन्त आच्छादित कर दिया ॥५॥

अष्टागवामष्टशतानि बाणान्मया प्रयुद्धस्य वहन्ति तस्य ।
तांस्तेन मुक्तानहमस्य बाणैर्व्यनाशयं वायुरिवाभ्रजालम् ॥

जब अश्वत्थामा के साथ मेरा युद्ध हो रहा था, तो वह आठ बैल की गाड़ी में आठसौ बाणों को लेकर चल रहा था। उसने वे सारे बाण छोड़े और मैंने भी मेघजाल को वायु की भांति उन बाणों को काट डाला ॥६॥

ततोऽपरान्बाणसङ्घाननेकानाकर्णपूर्णायतविप्रमुक्तान् ।
ससर्ज शिक्षास्त्रबलप्रयत्नैस्तथा यथा प्रावृषि कालमेघः ॥

इसके अनन्तर अश्वत्थामा ने कान तक धनुष खैंचकर अन्य अनेक बाण अपनी अस्त्र विद्या की पूर्ण शिक्षा के अनुसार इस तरह छोड़े, जैसे वर्षाकाल में कालमेघ झड़ी लगादेता है ॥७॥

नैवाददानं न च सन्दधानं जानीमहे कतरेणास्यतीति ।
वामेन वा यदि वा दक्षिणेन स द्रोणपुत्रः समरे पर्यवर्तत् ॥

इस समय द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, बाण लेता, धनुष पर चढ़ाता दिखाई ही नहीं पड़ता था, कि वह कब बांये हाथ से या दांये से बाण फैंकता है। इस तरह उसने रण में चक्कर बांध दिया ॥८॥

तस्याततं मण्डलमेव सज्यं प्रदृश्यते कार्मुकं द्रोणसूनोः ।
सोऽविध्यन्मां पञ्चभिर्द्रोणपुत्रः शितैः शरैः पञ्चभिर्वासुदेवम्

हे धर्मराज ! उस समय द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के खैंचे और चढ़ाये हुए धनुष का केवल मण्डल ही दिखाई देता था। अब द्रोणसुत अश्वत्थामा ने पांच २ तीखे बाणों से मुझे और वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण को बींध डाला ॥९॥

अहं हि तं त्रिंशता वज्रकल्पैः समार्दयं निमिषस्यान्तरेण ।
क्षणात्श्वावित्समरूपो. बभूव समार्दितो मद्विसृष्टैः पृषत्कैः

हे नृप ! मैंने क्षण भर में वज्र के तुल्य तीस बाणों से अश्वत्थामा को इतना बींध दिया, कि वह मेरे छोड़े हुए बाणों से अर्दित होकर कांटों से व्याप्त, सेह, जन्तु के तुल्य दिखाई देनेलगा ॥१०॥

स विक्षरन्रुधिरं सर्वगात्रे रथानीकं सूतसूनोर्विवेश ।
मयाभिभूतान्सैनिकानां प्रबर्हानसौ प्रपश्यन्रुधिरप्रदिग्धान् ॥

हे राजन् इस समय अश्वत्थामा के सारे शरीर से रुधिर बह रहा था। वह मुझसे आहत किए गए सेना के समूह को रुधिर में भीगे हुए देखता हुआ बड़े-वेग से सूतपुत्र कर्ण की रथों की सेना में घुस गया ॥११॥

ततोऽभिभूतं युधि वीक्ष्य सैन्यं वित्रस्तयोधं द्रुतवाजिनागम् ।
पञ्चाशता रथमुख्यैः समेत्य कर्णस्त्वरन्मामुपायात्प्रमाथी ॥

जब महारथी कर्ण ने युद्ध में अपनी सेना को पराजित, योद्धाओं को व्याकुल और अश्व तथा हाथियों को भागते

देखा, तब शत्रुसेनाके मथन करने वाला कर्ण, पांचसौ उत्तम २ वीर लेकर बड़े वेग से मुझपर झपटा ॥१२॥

तान्छर्दयित्वाहमपास्य कर्णं द्रष्टुं भवन्तं त्वरयाभियातः।
सर्वे पञ्चाला ह्युद्विजन्ते स्म कर्णं दृष्ट्वा गावः केसरिणं यथैव

इस के बाद मैं उन पांचसौ योद्धाओं को मारकर और कर्ण को छोड़ करके बड़ी शीघ्रता से तुमसे मिलने आया हूँ। इस कर्ण को देखकर सारे पञ्चाल वीर इस तरह भागते हैं, जैसे गाय सिंह को देखकर भाग जाती हैं ॥१३॥

मृत्योरास्यं व्यात्तमिवाभिपद्य प्रभद्रकाः कर्णमासाद्य राजन्
रथांस्तु तान्सप्तशतान्निमग्नांस्तदा कर्णः प्राहिणोन्मृत्युसद्म

हे राजन्! इस समय प्रभद्रक वीरों ने अपने सन्मुख उपस्थित कर्ण को फाड़े हुए मृत्यु के मुख के सदृश भीषण माना। कर्ण ने रण में आसक्त उन प्रभद्रक वीरों में से सात वीरों को मारकर मृत्यु के घर भेज दिया ॥१४॥

न चाप्यभूत्क्लान्तमनाः स राजन्यावन्नास्मान्दृष्टवान्सूतपुत्रः
श्रुत्वा तु त्वां तेन दृष्टं समेतमश्वत्थाम्ना पूर्वतरं क्षतं च ॥

हे राजन्! इस प्रकार भीषण युद्ध करता हुआ भी कर्ण जब तक किसी प्रकार भी क्लान्त नहीं हुआ जबतक उसने हम लोगों को नहीं देख लिया। मैंने यह सुन लिया था, कि तुम अश्वत्थामा के शस्त्रों से क्षत विक्षत होगएहो और फिर कर्ण के साथ तुम्हारी भिड़न्त होने लगी है ॥१५॥

मन्ये कालमपयानस्य राजन्क्रूरात्कर्णात्तेऽहमचिन्त्यकर्मन्
मया कर्णस्यास्त्रमिदं पुरस्ताद्युद्धे दृष्टं पाण्डव चित्ररूपम्

हे अद्भुत कर्म करने वाले, राजन! मैं तो इस समय क्रूर कर्ण के सामने से तुम्हारे खसक आने को ही श्रेष्ठ समझता हूं। हे पाण्डव! मैं इससे पूर्व युद्ध में कर्ण के विचित्र २ अस्त्र शस्त्रों को देख चुका हूं ॥१६॥

न ह्यन्ययोद्धा विद्यते सृञ्जयानां महारथं योऽद्य सहेत कर्णम्
शैनेयो मे सात्यकिश्चक्ररक्षौ धृष्टद्युम्नश्चापि तथैव राजन् ॥
युधामन्युश्चोत्तमौजाश्च शूरौ पृष्ठतो मां रक्षतां राजपुत्रौ।
रथप्रवीरेण महानुभाव द्विषत्सैन्ये वर्तता दुस्तरेण ॥१८॥
समेत्याहं सूतपुत्रेण सङ्ख्ये वृत्रेण वज्रीव नरेन्द्रमुख्य।
योत्स्यरम्यहं भारत सूतपुत्रमस्मिन्संग्रामे यदि वै दृश्यतेऽद्य

मुझे तो सृञ्जय वीरों में कोई ऐसा अन्य योद्धा दिखाई नहीं देता, जो युद्धमें कर्ण को सह सके। हे राजन्! शिनिपौत्र सात्यकि और धृष्टद्युम्न तो मेरे चक्र रक्षक हों और शूरवीर राजपुत्र युधामन्यु और उत्तमौजा, मेरा पीछे से रक्षा करे—तो हे महानुभाव! भारत! शत्रु सेना में वर्तमान, अत्यन्त दुस्तर सूतपुत्र कर्ण के साथ मैं रण में इस तरह युद्ध कर सकता हूँ जैसे वृत्रासुर से इन्द्र ने किया था हे नरेन्द्र मुख्य! इस संग्राम में फिर तो उसे मुझे दिखाई पड़ जाना चाहिए ॥१७-१९॥

आयाहि पश्याद्य युयुत्समानं मां सूतपुत्रस्य रणे जयाय।
महर्षभस्येव मुखं प्रपन्नाः प्रभद्रकाः कर्णमभिवद्रन्ति ॥२०॥
षट्साहस्रा भारत राजपुत्राः स्वर्गाय लोकाय रणे निमग्नाः।

हे धर्मराज ! अब तुम आओ और आज मेरा कर्ण के साथ विजय निमित्त युद्ध देखो। प्रभद्रक वीर तो अत्यन्त बलवान सांड के शिर की टक्कर के तुल्य भीषण कर्ण को पाकर भागने में लगे हुए हैं। हे भारत ! ये प्रभद्रक वीर छःसहस्र संख्या में एकत्रित हुए रण में आसक्त हो रहे हैं और स्वर्गलोक जाने को भी उत्सुक हैं ॥२०॥

कर्णं न चेदद्य निहन्मि राजन्सबान्धवं युध्यमानं प्रसह्य ॥२१॥
प्रतिश्रुत्याकुर्वतो वै गतिर्या कष्टा याता तामहं राजसिंह।

हे राजन् ! आज युद्ध में प्रवृत्त कर्ण को उसके बन्धु बान्धवों के सहित नहीं मारलूं-तो प्रतिज्ञा करके जो उसे पूरी नहीं करता उसको जो गति-प्राप्त होती है-हे राजसिंह ! वह गति मुझे प्राप्त होवे ॥२१॥

आमन्त्रये त्वां ब्रूहि जयं रणे मे,
पुरा भीमं धार्तराष्ट्रा ग्रसन्ते ॥२२॥
सौतिं हनिष्यामि नरेन्द्रसिंह,
सैन्यं तथा शत्रुगणांश्च सर्वान् ॥२३॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

हे नरेन्द्रसिंह! अब तुम मुझे तो रण में जाने की आज्ञा दो देखो, सामने ही भीम को धृतराष्ट्र पुत्रों ने घेर रखा है। मैं तो सूतपुत्र कर्ण, उसकी सेना और सारे शत्रुगणों को अब मारे विना न रहूँगा ॥२२-२३॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में अर्जुन और धर्मराज के सम्वाद का सड़सठवां अध्याय समाप्त हुआ



अड़सठवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्रुत्वा कर्णं कल्पमुदारवीर्यं क्रुद्धः पार्थः फाल्गुनस्यामितौजाः ।
धनञ्जयं वाक्यमुवाच चेदं युधिष्ठिरः कर्णशराभितप्तः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरत वंशश्रेष्ठ! जब-अत्यन्त शक्तिशाली राजा युधिष्ठिर ने महापराक्रमी कर्ण को जीवित और शक्ति के साथ कार्य करते सुना—तो वे अर्जुन पर कुपित हो उठे और कर्ण के बाण से पीड़ित हुए उससे इस प्रकार बोले ॥१॥

विप्रद्रुता तात चमूस्त्वदीया तिरस्कृता चाद्य यथा न साधु ।
भीतो भीमं त्यज्य चायास्तथा त्वं यन्नाशकः कर्णमथो निहन्तुम्

हे तात ! आज तुम्हारी सेना पराजित होकर भाग निकली मालूम होती है-यह ठीक नहीं हुआ। तुम तो आज मृत्यु से भयभीत होकर अतएव भीमसेन को छोड़ कर चले आए हो, क्योंकि तुम कर्ण के मारने में समर्थ नहीं होसके ॥२॥

स्नेहस्त्वया पार्थकृतः पृथाया गर्भं समाविश्य यथा न साधु ।
त्यक्त्वा रणे यदपायाः सभीमं यन्नाशकः सूतपुत्रं निहन्तुम् ॥

हे अर्जुन ! तुमने मुझ धर्मराज का इस समय यह स्नेह (मोह) किया-यह अच्छा नहीं किया। कुन्ती के गर्भ से जन्म लेकर ऐसा करना उचित नहीं था। तुम तो भीम को रण में उलझा कर भाग आए हो, क्योंकि तुम सूतपुत्र कर्ण के मारने में समर्थ नहीं होसके ॥३॥

यत्तद्वाक्यं द्वैतवने त्वयोक्तं कर्णं हन्तास्म्येकरथेन सत्यम् ।
त्यक्त्वा तं वै कथमद्यापयातः कर्णाद्भीतो भीमसेनं विहाय ॥

हे धनञ्जय ! तुमने तो द्वैतवन में प्रतिज्ञा की थी, कि मैं अकेला ही सचमुच ? कर्ण को मारलूंगा। फिर आज तुम कर्ण से डरकर और रण में-भीमसेन को छोड़ कर कैसे भाग आए ॥४॥

इदं यदि द्वैतवनेऽप्यवक्ष्यः कर्णं योद्धुं न प्रशक्ष्ये नृपेति ।
वयं ततः प्राप्तकालं च सर्वे कृत्यानुपैष्याम तथैव पार्थ ॥५॥

हे अर्जुन ! यदि तुम मुझे द्वैतवन में कहदेते, कि हे राजन् ! मैं कर्ण से लड़ने में समर्थ नहीं हूँ—तो हे पार्थ ! हम सारे पाण्डव वीर, समयानुसार कोई न कोई प्रबन्ध कर ही लेते ॥५॥

मयि प्रतिश्रुत्य वधं हि तस्य न वैं कृतं तच्च तथैव वीर।
आनीय नः शत्रु मध्यं स कस्मात्समुत्क्षिप्य स्थण्डिले प्रत्यपिंष्टाः

हे वीर! तुमने कर्ण के वध की प्रतिज्ञा करके भी तुम उसको नहीं कर सकेहो। अब तुमने हमें शत्रुओं के मध्य में डाल कर चबूतरे पर पटक मारा है ॥६॥

अप्याशिष्म वयमर्जुन त्वयि यियासवो बहुकल्याणमिष्टम्।
तन्नः सर्वं विफलं राजपुत्र फलार्थिनां विफल इवातिपुष्पः॥

हे अर्जुन! हमको तो तुमपर बहुत आशा थी। हमतो अपने अभीष्ट कल्याण की प्राप्ति की तुमसे आशा रखते थे। हे राजपुत्र! वह सब कुछ आज इसतरह विफल होगया-जैसे फलेच्छुक जनों को अत्यन्त पुष्प लगने पर भी वृक्ष फल न दे सका हो ॥७॥

प्रच्छादितं बडिशमिवामिषेण संछादितं गरलमिवाशनेन।
अनर्थकं मे दर्शितवानसि त्वं राज्यार्थिनो राज्यरूपं विनाशम्

जिस तरह कांटा मांस से ढक दिया हो या भोजन में विष मिला दिया हो वही बात तुमने की है। हम तो राज्य प्राप्ति की अभिलाषा कर रहे थे, परन्तु तुमने राज्य के विनाश का रूपक हमको दिखलादिया-जो बड़ा ही अनर्थ समझना चाहिए ॥८॥

त्रयोदशेमा हि समाः सदा वयं त्वामन्वजीविष्म धनञ्जयाशया
काले वर्षं देवमिवोप्तबीजं तन्नः सर्वान्नरके त्वं न्यमज्जः ॥९॥

हे धनञ्जय ! हमतो तुम पर आशा लगा कर तेरह वर्ष तक इसतरह जीवित रहे जैसे समय पर बीज बोकर किसान वर्षा की प्रतीक्षा करता है, परन्तु तुमने तो हमको बहुत ही क्लेश में डालदिया ॥६॥

यत्तत्पृथां वागुवाचान्तरिक्षे सप्ताहजाते त्वयि मन्दबुद्धौ ।
जातः पुत्रो वासवविक्रमोऽयं सर्वाञ्शूराञ्शात्रवाञ्जेष्यतीति

हे अर्जुन ! जब तू उत्पन्न हुआ था, तब सातवें दिन माता कुन्ती को यह आकाश वाणी सुनाई दी, कि जो तेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ है, इसका इन्द्र के तुल्य पराक्रम होगा और यह सारे शूरवीर शत्रुओं को जीत लेगा परन्तु तू तो बहुत ही मन्द बुद्धि निकला ॥१०॥

अयं जेता खाण्डवे देवसङ्घान्सर्वाणि भूतान्यपि चोत्तमौजाः
अयं जेता मद्रकलिङ्गकेकयानयं कुरूनाजमध्ये निहन्ता ॥११॥

यह उत्तम तेजधारी खाण्डव वनके दाह के समय सारे देव समूह और प्राणिसमूह तथा मद्र, कलिङ्ग और केकय वीरों को जीत लेगा एक वीर राजाओं के मध्य में कौरवों को नष्ट करदेगा ॥११॥

अस्मात्परो नो भविता धनुर्धरो नैनं भूतं किञ्चन जातु जेता ।
इच्छन्नयं सर्वभूतानि कुर्याद्वशे वशी सर्वसमाप्तविद्यः ॥१२॥

इसकी बराबर कोई भी धनुर्धर और विजेता आज तक नहीं हुआ है और न आगे होगा। यह जितेन्द्रिय, सारी विद्याओं का

अध्ययन करके सारे प्राणियों को अपने वश में यदि करना चाहेगा-तो वश में ही कर के छोड़ेगा ।।१२।।

कान्त्या शशाङ्कस्य जवेन वायोः स्थैर्येण मेरोः क्षमया पृथिव्याः
सूर्यस्य भासा धनदस्य लक्ष्म्या शौर्येण शक्रस्य बलेन विष्णोः
तुल्यो महात्मा तव कुन्ति पुत्रो जातोऽदितेर्विष्णुरिवारिहन्ता ।
स्वेषां जयाय द्विषतां वधाय ख्यातोऽमितौजाः कुलतन्तुकर्ता

हे कुन्ती ! तुम्हारा यह पुत्र, सौन्दर्य में चन्द्रमा, वेग में वायु, स्थिरता में मेरु, क्षमा में पृथिवी, तेज में सूर्य, ऐश्वर्य में कुबेर, शूरवीरता में इन्द्र, बल में विष्णु के तुल्य होगा । यह अदिति के पुत्र विष्णु के सदृश शत्रुनाशक होगा । यह अपरिमित तेजधारी अपने कुल की विजय, शत्रुओं के नाश का कर्ता प्रसिद्ध होकर कुल-तन्तु का चलाने वाला होगा ।।१३-१४।।

इत्यन्तरिक्षे शतशृङ्गमूर्ध्नि तपस्विनां शृण्वतां वागुवाच ।
एवंविधं तच्च नाभूत्तथा च देवोपि नूनमनृतं वदन्ति ।।१५।।

सैंकड़ों पर्वत की चोटी के ऊपर वर्तमान आकाश में उत्पन्न हुई इस अलक्षित वाणी को सारे तपस्वियों ने सुना । यह सब कुछ आज होता दिखाई नहीं दे रहा है । इससे तो यही ज्ञात होता है, कि देवता भी कभी मिथ्या बोल बैठते हैं ।।१५।।

तथा परेषामृषिसत्तमानां श्रुत्वा गिरः पूजयतां सदा त्वाम् ।
न संनतिं प्रैमि सुयोधनस्य न त्वा जानाम्याधिरथेर्भयार्तम् ।।

जब मैंने उत्तम २ ऋषियों से तुम्हारी आदर पूर्ण प्रशंसा सुनी तो इसीसे मैं कभी राजा दुर्योधन से कभी नहीं झुका। मुझे आज यह नहीं जचता है, कि तुम अधिरथ-पुत्र कर्ण से डर कर भाग छांगे ॥१६॥

पूर्वं यदुक्तं हि सुयोधनेन न फाल्गुनः प्रमुखे स्थास्यतीति ।
कर्णस्य युद्धे हि महाबलस्य मौर्ख्यात्तु तन्नावबुद्धिं मयासीत्

राजा दुर्योधन ने प्रथम ही कहा था, कि महाबली कर्ण के सम्मुख अर्जुन युद्ध में नहीं ठहर सकता है, परन्तु मैंने अपनी मूर्खता से इस बात पर विश्वास ही नहीं किया ॥१७॥

तेनाद्य तप्स्ये भृशमप्रमेयं यच्छत्रुवर्गे नरकं प्रविष्टः।
तदैव वाच्योऽस्मि ननु त्वयाहं न योत्स्येऽहं सूतपुत्रं कथञ्चित्

आज इसी कारण से मैं सन्तापित हो रहा हूं, और जिसको कभी सोचा भी नहीं था, उस शत्रुओं के मध्य नरक में गिर गया हूँ। तुमको मुझे उसी समय कहदेना चाहिए था, कि मैं सूत पुत्र कर्ण से कभी युद्ध नहीं करूंगा ॥१८॥

ततो नाहं सृञ्जयान्केकयांश्च समानयेयं सुहृदो रणाय ।
एवं गते किञ्च मयाद्य शक्यं कार्यं कर्तुं विग्रहे सूतजस्य ।१६।

यदि यह बात मुझे प्रथम ज्ञात होती-तो मैं क्यों अपने मित्र सृञ्जय केकय आदि वीरों को रण के लिए बुलाता। अब तो सूत पुत्र कर्ण से युद्ध ठन गया-इस दशा में अब मैं क्या कर सकता हूं ॥१६॥

तथैव राज्ञश्च सुयोधनस्य ये वापि मां योद्धु कामाः समेताः
धिगस्तु मज्जीवितमद्य कृष्ण योऽहं वशं सूतपुत्रस्य यातः ।

आज राजा सुयोधन के अन्य वीर भी इकट्ठे होकर मुझसे लड़ने को उद्यत हैं। हे अर्जुन ! अब मेरे जीवन को धिक्कार है। जो मैं सूत-पुत्र कर्ण से पराजित होने जा रहा हूँ ।।२०।।

मध्ये कुरूणां सुहृदां च मध्ये ये चाप्यन्ये योद्धु कामाः समेताः
यदि स्म जीवेत्स भवेन्निहन्ता महारथानां प्रवरो रथोत्तमः ।
तवाभिमन्युस्तनयोऽद्य पार्थ न चास्मि गन्ता समरे पराभवम्

हे पार्थ ! कौरव और हमारे मित्रपक्ष के जो राजा इस युद्ध में लड़ने की कामना से इकट्ठे हुए हैं। यदि आज महारथियों में श्रेष्ठ, महारथी तुम्हारा पुत्र अभिमन्यु जीता होता, तो वह इनको मार लेता और मैं रण में पराजित नहीं होता ।।२१।।

अथापि जीवेत्समरे घटोत्कचस्तथापि नाहं समरे पराङ्मुखः
मम ह्यभाग्यानि पुराकृतानि पापानि नूनं बलवन्ति युद्धे ।।

यदि आज घटोत्कच भी जीता होता-तो भी मैं रण में पराभव को प्राप्त नहीं होता। इस युद्ध में तो मेरे पूर्वजन्मों के दौर्भाग्य पूर्ण बलवान् पाप कर्मों का उदय प्रतीत हो रहा है ।।२२।।

तृणं च कृत्वा समरे भवन्तं ततोऽहमेवं निकृतो दुरात्मना ।
वैकर्तनेनैव तथा कृतोऽहं यथा ह्यशक्तः क्रियतेः ह्यबान्धवः

इस महारथी सूत-पुत्र कर्ण ने तुम्हारी तृण की बराबर परवा न की और इस दुष्ट ने मुझे इस तरह अपमानित कर दिया-

जैसे किसी बान्धवहीन असमर्थ पुरुष को अपमानित कर देते हैं ॥२३॥

आपद्गतं कश्चन यो विमोचेत्स बान्धवः स्नेहयुक्तं सुहृच्च ।
एवं पुराणा मुनयो वदन्ति धर्मः सदा सद्भिरनुष्ठितश्च ॥

जो अपने स्नेह युक्त आपद्ग्रस्त बन्धु को दुःख से छुड़ाता है, वही सच्चा बन्धु और सुहृद् है। यह बात सदा से प्राचीन मुनि कहते आए और यही सज्जनों का स्वीकृत मार्ग है ॥२४॥

त्वष्ट्रा कृतं वाहमकूजनाक्षं शुभं समास्थाय कपिध्वजं तम् ।
खड्गं गृहीत्वा हेमपट्टानुबद्धं धनुश्चेदं गाण्डिवं तालमात्रम्
स केशवेनोह्यमानः कथं त्वं कर्णाद्भीतो व्यपयातोऽसि पार्थ
धनुश्च तत्केशवाय प्रयच्छ यन्ता भविष्यस्त्वं रणे केशवस्य
तदा हनिष्यत्केशवः कर्णमुग्रं मरुत्पतिर्वृत्रमिवात्तवज्रः ॥२७॥
राधेयमेतं यदि नाद्यशक्तश्चरन्तमुग्रं प्रतिबाधनाय ॥
प्रयच्छान्यस्मै गाण्डिवमेतदद्य त्वत्तोयोऽस्त्रैरभ्यधिकोवा नरेन्द्रः

हे पार्थ ! विश्वकर्मा द्वारा बनाया हुआ, कपिचिन्हाङ्कित-ध्वजा से सुशोभित रथ में बैठकर और खड्ग तथा सुवर्ण के पट्ट से अनुबद्ध तालवृक्ष प्रमाण गाण्डीव को धारण करके एवं श्रीकृष्ण को सारथि बना कर भी कैसे तुम कर्ण से भयभीत होकर रण से भाग आए हो। अब तुम अपना धनुष श्रीकृष्ण को दे दो और तुम श्रीकृष्ण के सारथि बन जाओ। जब तुम ऐसा कर लोगे-तब

वज्रधारी देवराज ने जैसे-वृत्रासुर को मार गिराया-ऐसे ही श्रीकृष्ण, इस महाबली कर्ण को नष्ट करदेंगे। यह सब कुछ इस लिए करना पड़ रहा है, कि तुम रण में उग्ररूप से घूमने वाले राधापुत्र कर्ण को बाधा पहुंचाने में असमर्थ रहे। यदि श्रीकृष्ण ने नहीं लड़ने की प्रतिज्ञा कर रखी है, तो तुम अपने गाण्डीव धनुष को जो तुमसे बलवान होने का दावा करे, उस मित्रराजा को सौंपदो ॥२४-२७॥

अस्मान्नैवं पुत्रदारैर्विहीनान्सुखाद्भ्रष्टान्राज्यनाशाच्च भूयः
द्रष्टा लोकः पतितानप्यगाधे पापैर्जुष्टं नरके पाण्डवेय ।

हे पाण्डवेय ! यदि तुम ऐसे न होते-तो इस तरह पुत्र और स्त्री से विहीन तथा राज्य नष्ट होने से सुखरहित अगाध दुःखसागर में पड़े हुए हम लोगों को ये राजा लोग, नहीं देख पाते ॥२८॥

मासेऽपतिष्यः पञ्चमेत्वं सुकृच्छ्रे न वा गर्भे आभविष्यः पृथायाः
यत्ते श्रेयो राजपुत्राभविष्यन्न चेत्संग्रामादपयानं दुरात्मन् ।

हे अर्जुन ! तुमको कुन्ती के गर्भ में नहीं आना था, और यदि आ भी गए थे, तो कष्ट-पूर्वक पांचवें मास में गर्भ से गिर जाना था। हे दुरात्मन् ! राजपुत्र ! यदि तुम संग्राम से भाग न आते-तो तुम्हारा जगत् में यश या कल्याण स्थायी हो जाता था।

धिग्गाण्डीवं धिक् च ते बाहुवीर्यमसङ्ख्येयान्बाणगणांश्च धिक्ते
धिक्ते केतुं केसरिणः सुतस्य कृशानुदत्तं च रथं च धिक्ते ॥

इति श्रीमहाभारते० संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि युधिष्ठिरक्रोधवाक्येऽष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

हे अर्जुन ! तेरे गाण्डीव, बाहुवीर्य अगणित बाण, केसरीसुत हनुमान् से अङ्कित ध्वजा, और अग्निदत्त रथ को बार २ धिक्कार है ॥३०॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में राजायुधिष्ठिर के अर्जुन पर कुपित होने का अड़सठवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



उनहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

युधिष्ठिरेणैवमुक्तः कौन्तेयः श्वेतवाहनः ।
असिं जग्राह संक्रुद्धो जिघांसुर्भरतर्षभम् ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन् ! जब राजा युधिष्ठिर ने इतना कहा—तो श्वेत अश्वों के वाहन वाले कुन्तीपुत्र अर्जुन ने भरतवंशश्रेष्ठ धर्मराज के मारने को क्रोध के साथ तलवार खैंचली ॥१॥

तस्य कोपं समुद्वीक्ष्य चित्तज्ञः केशवस्तदा ।
उवाच किमिदं पार्थ गृहीतः खड्ग इत्युत ॥२॥

अर्जुन को क्रोधाविष्ट देखकर श्रीकृष्ण ने उसके चित्त का भाव जान लिया, वे बोले—हे पार्थ! तुमने खड्ग क्यों ग्रहण किया ॥ ॥

नहि पश्यामि योद्धव्यं त्वया किञ्चद्धनञ्जय ।
ते ग्रस्ता धार्तराष्ट्रा हि भीमसेनेन धीमता ॥३॥

हे धनञ्जय! इस समय तो तुम्हारे सन्मुख कोई युद्धके लिए वीर भी दिखाई नहीं देता। धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादिकों को तो भीमसेन ने दबा रखा है ॥३॥

अपयातोऽसि कौन्तेय राजा द्रष्टव्य इत्यपि ।
स राजा भवता दृष्टः कुशली च युधिष्ठिरः ॥४॥

हे कौन्तेय! तुम तो इस कारण से यहां आए थे, कि राजा युधिष्ठिर से मिलआवें। अब तुम राजा युधिष्ठिर से मिल चुके, कि वे कुशल-पूर्वक हैं ॥४॥

स दृष्ट्वा नृपशार्दूलं शार्दूलसमविक्रमम् ।
हर्षकाले च सम्प्राप्ते किमिदं मोहकारितम् ॥५॥

राजाओं में श्रेष्ठ सिंह के समान पराक्रमी धर्मराज से मिलने पर हर्ष का समय होना चाहिए था, फिर तुम को यह शोक और क्रोध का उद्वेग कैसे हो रहा है ॥५॥

न तं पश्यामि कौन्तेय यस्ते वध्यो भविष्यति ।
महर्तुमिच्छसे कस्मात्किं वा ते चित्तविभ्रमः ॥६॥

हे कौन्तेय ! मैं तो इस समय तुम्हारे मारने योग्य किसी व्यक्ति को नहीं देख रहाहूँ। इस दशा में तुम किस पर प्रहार करना चाहते हो और तुम्हारे चित्त को यह क्या भ्रम होरहा है ॥६॥

कस्माद्भवान्महाखड्गं परिगृह्णाति सत्वरः ।

तत्त्वां पृच्छामि कौन्तेय किमिदं ते चिकीर्षितम् ॥७॥

परामृशसि यत्क्रुद्धः खड्गमद्भुतविक्रम ।

हे कौन्तेय ! तुम जल्दी जल्दी कैसे खड्ग पर हाथ डाल रहेहो मैं तो तुमसे यह प्रश्न कर रहाहूँ कि तुम करना क्या चाहते हो हे अद्भुत पराक्रमी ! क्रोध में भरे हुए तुम कैसे खड्ग-को उठाना चाहते हो ॥७॥

एवमुक्तस्तु कृष्णेन प्रेक्षमाणो युधिष्ठिरम् ॥८॥

अर्जुनः प्राह गोविन्दं क्रुद्धः सर्प इव श्वसन् ।

हे राजन् ! जब श्रीकृष्ण ने इतना कहा तो राजा युधिष्ठिर की ओर देखते हुए अर्जुन ने क्रुद्धसर्प की तरह श्वास लेतेहुए श्रीकृष्ण से यह वचन कहा ॥८॥

अन्यस्मै देहि गाण्डीवमिति मे योऽभिचोदयेत् ॥९॥

भिन्द्यामहं तस्य शिर इत्युपांशुव्रतं मम ।

हे कृष्ण ! मेरा यह निश्चित व्रत है; कि जो मुझसे यह कहेगा कि तुम इस गाण्डीव धनुष को दूसरे को देदो-उसके शिर को मैं काट डालूंगा ॥९॥

तदुक्तं मम चानेन राज्ञामितपराक्रम ॥१०॥
समक्षं तव गोविन्द न तत्क्षन्तुमिहोत्सहे।

हे महाबली! गोविन्द! यही बात राजा युधिष्ठिर ने अभी आपके सामने कह डाली-अब मैं इस बात को क्षमा नहीं कर सकता हूँ ॥१०॥

तस्मादेनं वधिष्यामि राजानं धर्मभीरुकम् ॥११॥
प्रतिज्ञां पालयिष्यामि हत्वैनं नरसत्तमम्।

अब मैं धर्म भीरु राजा युधिष्ठिर को मार देता हूँ। इस नरपति धर्मराज के मार देने से ही मेरी प्रतिज्ञा का पालन हो सकेगा ॥११॥

एतदर्थं मया खड्गो गृहीतो यदुनन्दन ॥१२॥
सोऽहं युधिष्ठिरं हत्वा सत्यस्यानृण्यतां गतः।

हे यदुनन्दन! मैंने इसी कारण से खड्ग उठाया है। अब राजा युधिष्ठिर को मारकर सत्य का निर्वाह करना चाहता हूँ॥१२॥

विशोको विज्वरश्चापि भविष्यामि जनार्दन ॥१३॥
किं वा त्वं मन्यसे प्राप्तमस्मिन्काल उपस्थिते।

हे जनार्दन! जब मैं धर्मराज को मारलूंगा-तो शोक और चिन्ता से रहित हो जाऊंगा। अब आप ही बताओ-ऐसी परिस्थिति के प्राप्त होने पर मुझे क्या करना चाहिये ॥१३॥

त्वमस्य जगतस्तात वेत्थ सर्वं गतागतम् ॥१४॥
तत्तथा प्रकरिष्यामि यथा मां वक्ष्यते भवान्।

हे तात ! आप तो सारे संसार के उतार चढ़ाव जानते हो मुझसे आप जैसा कहेंगे मैंतो वही करूंगा ॥१४॥

सञ्जय उवाच—

धिग्धिगित्येव गोविन्दः पार्थमुक्त्वाब्रवीत्पुनः ॥१५॥

कृष्ण उवाच—

इदानीं पार्थ जानामि न वृद्धाः सेवितास्त्वया ।
कालेन पुरुषव्याघ्र संरम्भं यद्भवानगात् ॥१६॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! यह सुनकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को वार २ धिक्कार देकर यह वचन कहा—हे पार्थ ! मैं समझ गया, कि तुमने वृद्धों की उपासना या सङ्गति नहीं की है । हे पुरुष व्याघ्र ! यही कारण है, कि जो इस समय आपको यह आवेश आ गया ॥१५-१६॥

नहि धर्मविभागज्ञः कुर्यादेवं धनञ्जयः ।
यथा त्वं पाण्डवाद्य ह धर्मभीरुरपण्डितः ॥१७॥

हे धनञ्जय ! जो धर्म के विभाग का जानने वाला है, वह ऐसा नहीं कर सकता, जैसा आज तुम करना चाह रहे हो । तुम धर्म से डरते जाते हो और मूर्खता कर रहे हो ॥१७॥

अकार्याणां क्रियाणां च संयोगं यः करोति वै ।
कार्याणामक्रियाणां च स पार्थ पुरुषाधमः ॥१८॥

हे पार्थ ! जो कार्य नहीं करने योग्य है, उनका संयोग जुटा देना और जो करने योग्य कार्य हैं-उनको नहीं करता है, वह पुरुषाधम जानना चाहिए ॥१८॥

अनुसृत्य तु ये धर्मं कथयेयुरुपस्थिताः ।

समासविस्तरविदां न तेषां वेत्सि निश्चयम् ॥१९॥

जो धर्म का आचरण करने वाले महर्षि लोग, तत्परता के साथ धर्म का वर्णन करते हैं-वेही धर्म के विस्तार और संक्षेप को समझ पाते हैं। तुम उनके निश्चय को नहीं समझ सकते हो ॥१९॥

अनिश्चयज्ञो हि नरः कार्याकार्यविनिश्चये ।

अवशो मुह्यते पार्थ यथा त्वं मूढ एव तु ॥२०॥

हे पार्थ ! जो मनुष्य कर्तव्य या अकर्तव्य के निश्चय करने की बुद्धि को नहीं रखता है, वह परवश होकर मोह को प्राप्त होता है, वही दशा तुम्हारी हो रही है ॥२०॥

नहि कार्यमकार्यं वा सुखं ज्ञातुं कथञ्चन ।

श्रुतेन ज्ञायते सर्वं तच्च त्वं नावबुध्यसे ॥२१॥

यह कर्तव्य है और यह अकर्तव्य, यह निश्चय कर लेना सुलभ नहीं है। इसका निश्चय तो शास्त्र श्रवण से होता है, और तुम शास्त्रज्ञान से बहुत परे हो ॥२१॥

अविज्ञानाद्भवान्यच्च धर्मं रक्षति धर्मवित् ।

प्राणिनां त्वं वधं पार्थ धार्मिको नावबुध्यसे ॥२२॥

हे कौन्तेय ! तुम धर्म के ज्ञाता बनते हो, परन्तु धर्म की व्यवस्था न जानकर धर्मरक्षा करना चाहते हो। तुम ऐसे धार्मिक हो

जो कब किस समय प्राणी का वध करना चाहिए इसे नहीं जान सकते हो ॥२२॥

प्राणिनामवधस्तात सर्वज्यायान्मतो मम ।
अनृतां वा वदेद्वाचं न तु हिंस्यात्कथञ्चन ॥२३॥

हे तात ! मेरे मत में तो जहां तक हो-प्राणी के वध से टलना चाहिए। मनुष्य अनृत वाणी चाहे बोल दे, परन्तु कभी प्राणी हिंसा में तत्पर न होवे ॥२३॥

स कथं भ्रातरं ज्येष्ठं राजानं धर्मकोविदम् ।
हन्याद्भवान्नरश्रेष्ठ प्राकृतोऽन्यः पुमानिव ॥२४॥

हे नरश्रेष्ट ! मेरी समझ में नहीं आता, कि तुम धर्म के ज्ञाता अपने बड़े भाई के मारने को कैसे उद्यत हो गए । यह तो कोई साधारण मनुष्य भी नहीं कर सकता है ॥२४॥

अयुध्यमानस्य वधस्तथाशत्रोश्च मानद ।
पराङ्मुखस्य द्रवतः शरणं चापि गच्छतः ॥२५॥
कृताञ्जलेः प्रपन्नस्य प्रमत्तस्य तथैव च ।
न वधः पूज्यते सद्भिस्तच्च सर्वं गुरौ तव ॥२६॥

हे मानद ! जो मनुष्य युद्ध में प्रवृत्त नहीं है, या जो शत्रु भाव को प्राप्त नहीं हुआ, जो युद्ध से मुख मोड़ कर भाग निकला हो तथा शरणागत हो, या हाथ जोड़कर सामने आया हो । जो किसी प्रकार के मद (नशे) में व्याप्त हो-श्रेष्ठ पुरुषों को ऐसे पुरुषों

का वध नहीं करना चाहिए। ये सब बातें तुम्हारे पुज्य भ्राता धर्म-राज में विद्यमान हैं ॥२५-२६॥

त्वया चैवं व्रतं पार्थ बालेनेव कृतं पुरा।
तस्मादधर्मसंयुक्तं मौर्ख्यात्कर्म व्यवस्यसि ॥२७॥

हे पार्थ ! तुमने जो यह प्रतिज्ञा की है-यह तो बच्चों की सी बात है। तुम तो अपनी मूर्खता से अधर्म युक्त धर्म की व्यवस्था लगाते हो ॥२७॥

स गुरुं पार्थ कस्मात्त्वं हन्तुकामोऽभिधावसि।
असम्प्रधार्य धर्माणां गतिं सूक्ष्मां दुरत्ययाम् ॥२८॥

हे कुन्ती-पुत्र ! तुम धर्म की दुरत्यय गति के मर्म को न जान कर कैसे अपने पूज्य भ्राता के मारने में प्रवृत्त हो रहे हो ॥२८॥

इदं धर्मरहस्यं च तव वक्ष्यामि पाण्डव।
यद् ब्रूयात्तव भीष्मो हि पाण्डवो वा युधिष्ठिरः ॥२९
विदुरो वा तथा क्षत्ता कुन्ती वापि यशस्विनी।
तत्ते वक्ष्यामि तत्त्वेन निबोधैतद्धनञ्जय ॥३०॥

हे पाण्डव ! अब मैं तुमको धर्म का रहस्य बताता हूँ जि पितामह भीष्म या पाण्डु-पुत्र युधिष्ठिर भी जानते हैं। धर्मात्म विदुर या यशस्विनी कुन्ती को भी उसका पता है। हे धनञ्जय मैं उसका तत्त्व तुमको सुनाता हूँ-तुम इसे ध्यान से सुनो ॥२९-३०

सत्यस्य वदिता साधुर्न सत्याद्विद्यते परम् ।
तत्त्वेनैव सुदुर्ज्ञेयं पश्य सत्यमनुष्ठितम् ॥३१॥
भवेत्सत्यमवक्तव्यं वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
यत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ॥३२॥

जो पुरुष सत्य भाषण करता है, वही महात्मा है, सत्य से कोई अन्य वस्तु श्रेष्ठ नहीं है। परन्तु सत्य का तत्व जानना बड़ा कठिन है। तुम सत्य के अनुष्ठान को सुनो। कहीं पर तो कुछ न बोलने से ही सत्य माना जाता है और कहीं पर अनृत (मिथ्या) बोलने से सत्य की सिद्धी होती है। कहीं पर झूंठ सत्य और कहीं पर सत्य झूंठ हो जाती है ॥३१-३२॥

विवाहकाले रतिसम्प्रयोगे प्राणात्यये सर्वधनापहारे ।
विप्रस्य चार्थे ह्यनृतं वदेत पञ्चानृतान्याहुरपातकानि ॥

हे अर्जुन ! विवाह में आने जाने मिलने बैठने, कामचेष्टा के आनन्द में, प्राणों के नाश उपस्थित होने तथा सारे धन के अपहरण के समय और ब्राह्मण के उद्धार के निमित्त, मिथ्या बोलना-पाप जनक नहीं है। इन पांच स्थानों पर मिथ्या भी बोला जा सकता है ॥३३॥

सर्वस्वस्यापहारे तु वक्तव्यमनृतं भवेत् ।
तत्रानृतं भवेत्सत्यं सत्यं चाप्यनृतं भवेत् ।
तादृशं पश्यते बालो यस्य सत्यमनुष्ठितम् ॥३४॥

भवेत्सत्यमवक्तव्यं न वक्तव्यमनुष्ठितम् ।
सत्यानृते विनिश्चित्य ततो भवति धर्मवित् ॥३५॥

मूर्ख मनुष्य जिस बात को सत्य समझता है वह झूंठ हो सकती है। कहीं पर नहीं बोलना भी सत्य है। कहीं-सत्यानुष्ठान का कथन भी नहीं करना चाहिए। जो सत्य और मिथ्या का विवेचन कर लेता है-वही सच्चा धर्म का जाननेवाला है ॥३४-३५॥

किमाश्चर्यं कृतप्रज्ञः पुरुषोऽपि सुदारुणः ।
सुमहत्प्राप्नुयात्पुण्यं बलाकोऽन्धवधादिव ॥३६॥

इस में कोई आश्चर्य की बात नहीं है, कि धर्म में निष्णात पुरुष भी अत्यन्त दारुण कहाया जासकता है। धर्म की गति बड़ी विपरीत है, अन्धे को मारने पर भी कोई बलाक, अत्यन्त पुण्य को प्राप्त हुआ ॥३६॥

किमाश्चर्यं पुनर्मूढो धर्मकामो ह्यपण्डितः।
सुमहत्प्राप्नुयात्पापमापगास्विव कौशिकः ॥३७॥

धर्म के विवेचन को नहीं जानने वाला कोई २ मूर्ख धर्मसिद्धि की कामना करता है। उसे बड़ा पाप प्राप्त होता है, जैसे-नदी पर तप करने वाला कौशिक प्राप्त हुआ ॥३७॥

अर्जुन उवाच—

आचक्ष्व भगवन्नेतद्यथा विन्दाम्यहं तथा ।
बलाकस्यानुसम्बन्धं नदीनां कौशिकस्य च ॥३८॥

अर्जुन ने कहा—हे भगवन्! आप प्रथम मुझे बलाक और नदी पर तप करने वाले कौशिक की कथा सुनाइए मैं इसका तत्व जानना चाहता हूं ॥३८॥

वासुदेव उवाच—

पुरा व्याधोऽभवत्कश्चिद्बलाको नाम भारत ।
यात्रार्थं पुत्रदारस्य मृगान्हन्ति न कामतः ॥३९॥
वृद्धौ च मातापितरौ बिभर्त्यन्यांश्च संश्रितान् ।
स्वधर्मनिरतो नित्यं सत्यवागनसूयकः ॥४०॥

श्रीकृष्ण बोले—हे भारत! पूर्वकाल में एक बलाक नाम का व्याध था। वह अपने पुत्र और स्त्री आदि कुटुम्ब के भरण पोषण के निमित्त नित्य मृगों का वध करता रहता था। परन्तु वह अपने लिए मृग न मारता था। इसके माता पिता, बड़े वृद्ध थे। तथा वह अन्य आश्रित प्राणियों की भी पालना करता रहता था। वह अपने धर्म में तत्पर होकर सत्य बोलता रहता और किसी की निन्दा नहीं करता था ॥३९-४०॥

स कदाचिन्मृगं लिप्सुर्नाभ्यविन्दन्मृगं क्वचित् ।
अपः पिबन्तं ददृशे श्वापदं घ्राणचक्षुषम् ॥४१॥
अदृष्टपूर्वमपि तत्सत्वं तेन हतं तदा ।
अन्धे हते ततो व्योम्नः पुष्पवर्षं पपात च ॥४२॥
अप्सरोगीतवादित्रैर्नादितं च मनोरमम् ।
विमानमगमत्स्वर्गान्मृगव्याधनिनीषया ॥४३॥

तद्भूतं सर्वभूतानामभावाय किलार्जुन ।
तपस्तप्त्वा वरं प्राप्तं कृतमन्धं स्वयम्भुवा ॥४४॥
तद्धत्वा सर्वभूतानामभावकृतनिश्चयम् ।
ततो बलाकः स्वरगादेवं धर्मः सुदुर्विदः ॥४५॥

यह एक बार-मृग वध के लिए वन में गया, परन्तु बहुत खोजने पर भी इसको कहीं मृग नहीं मिला। अब इसने सूपकार जानने वाले एक अन्धे वनैले जन्तु को नदी पर पानी पीते देखा। यद्यपि, बलाक व्याध ने ऐसा जन्तु कभी नहीं मारा था, तो भी उसने उसे मार गिराया। जब उसने अन्धे जन्तु को मारा-तो उसी समय आकाशसे पुष्पवर्षा होने लगी। अब अप्सराएँ गाने नाचने लगीं और बड़ा मनोहर शब्द सुनाई दिया। थोड़ी ही देर में उस बलाक नामक व्याध के लेजाने को स्वर्ग से विमान उतरा। हे अर्जुन ! यह बड़ा दुष्ट जन्तु था, और सारे संसार के नाश करने का ब्रह्मा से इसने तप करके वरदान ले रखा था। स्वयम्भू ब्रह्मा ने उसे अन्धा कर रखा था। सारे जगत् के अभाव करने में तत्पर इस जन्तु को मार कर ही बलाक नामक व्याध स्वर्ग को चला गया। हे कौन्तेय ! इस तरह धर्म की दुर्बोधगति है—तुम, इस बात को समझ गए होंगे ॥४१-४५॥

कौशिकोऽप्यभवद्विप्रस्तपस्वी न बहुश्रुतः ।
नदीनां सङ्गमे ग्रामाददूरात्स किलावसत् ॥४६॥

सत्यं मया सदा वाच्यमिति तस्याभवद्व्रतम् ।
सत्यवादीति विख्यातः स तदासीद्धनञ्जय ॥४७॥

हे धनञ्जय ! उसी तरह एक कौशिक नामक तपस्वी ब्राह्मण था। परन्तु वह शास्त्र अधिक नहीं पढ़ा था। वह गांवसे कुछ दूरी पर नदी के तट पर रहता था। उसकी यही-प्रतिज्ञा थी, कि मैं सर्वदा सत्य का ही-भाषण करूंगा। हे धनञ्जय ! इस समय वह ब्राह्मण 'सत्यवादी" नाम से विख्यात होगया था ॥४६-४७॥

अथ दस्युभयात्केचित्तदा तद्वनमाविशन् ।
तत्रापि दस्यवः क्रुद्धास्तानमार्गन्त यत्नतः ॥४८॥

किसी समय कुछ मनुष्य चोरों के भय से उसके आश्रम के समीप पहुंचे। वहां पर भी क्रोध में भरे हुए वे डाकू-उन्हें खोजते हुए चलेआए और बड़े प्रयत्न से उन यात्रियों को खोजने लगे ॥४८॥

अथ कौशिकमभ्येत्य प्राहुस्ते सत्यवादिनम् ।
कतमेन पथा याता भगवन्बहवो जनाः ॥४९॥
सत्येन पृष्टः प्रब्रूहि यदि तान्वेत्थ शंस नः ।
स पृष्टः कौशिकः सत्यं वचनं तानुवाच ह ॥५०॥
बहुवृक्षलतागुल्ममेतद्वनमुपाश्रिताः ।
इति तान्ख्यापयामास तेभ्यस्तत्त्वं स कौशिकः ॥५१॥
ततस्ते तान्समासाद्य क्रूरा जघ्नुरिति श्रुतिः ।
तेनाधर्मेण महता वाग्दुरुक्तेन कौशिकः ॥५२॥

गतः स कष्टं नरकं सूक्ष्मधर्मेष्वकोविदः ।
यथा चाल्पश्रुतो मूढो धर्माणामविभागवित् ॥५३॥

वे लुटेरे, कौशिक नामक सत्यवादि मुनि के पास पहुंचे और कहने लगे-हे भगवन्! ये बहुत से आदमी किस मार्ग से गए हैं। हम तुम से सत्य २ वाणी कहलाना चाहते हैं। यदि तुमको उनका पता हो-तो बताओ। जब उन्होंने इस तरह पूछा-तो उसने उनसे सत्य २ कहदिया कि वे इस वन के वृक्ष और झाड़ियों में छुपे हैं कौशिक मुनि ने उनसे सारा उन यात्रियों का गुप्त रहस्य सत्य २ बता दिया। उन क्रूर लुटेरों ने उन्हें खोज लिया और मारडाला ऐसा सुना है। उसी महान् अधम और मूर्खता पूर्ण अनुचित कार्य कहने से वह नरक में पहुंचा-क्योंकि वह मुनि, अपवाद धर्म की सूक्ष्मगति को नहीं जानता था। वह शास्त्र के तत्व को बहुत कम जानता था। और धर्म की ठीक २ व्यवस्था भी नहीं जानता था ॥४६-५३॥

वृद्धानपृष्ट्वा सन्देहं महच्छ्वभ्रमिवार्हति ।
तत्र ते लक्षणोद्देशः कश्चिदेवं भविष्यति ॥५४॥
दुष्करं परमं ज्ञानं तर्केणानुव्यवस्यति ।

जो मनुष्य शास्त्र तो जानता नहीं और अपने आप धर्म की व्यवस्था लगाता है, वह सन्देहास्पद गड्ढे में पड़ता है। जो धर्म की व्यवस्था जानता है, वही धर्म को लक्षणों का कथन करसकता

है। धर्म का ज्ञान बड़ा दुष्कर है, उसकी व्यवस्था तो तर्क से ही हो सकती है ॥५४॥

श्रुतेर्धर्म इति ह्येके वदन्ति बहवो जनाः ॥५५॥
तत्ते न प्रत्यसूयामि न च सर्वं विधीयते ।

बहुत से मनुष्य तो यही कहते हैं, कि जो वो कहता है, वही धर्म है। हम इस बात का खण्डन नहीं करते, परन्तु सारी धर्म की व्यवस्था स्थूलदृष्टि से नहीं हो सकती है ॥५५॥

प्रभवार्थाय भूतानां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥५६॥
यत्स्यादहिंसासंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ।
अहिंसार्थाय हिंस्राणां धर्मप्रवचनं कृतम् ॥५७॥

जिससे प्राणियों की स्थिति या रक्षा होसके-वही धर्म है-इसे ही धर्म का लक्षण समझना चाहिए। जो कर्म अहिंसा से संयुक्त है-बस ? वही धर्म है, यह निश्चय समझो। बहुत से मुनियों ने तो हिंसक जन्तुओं के भी नहीं मारने का विधान किया है॥५६-५७॥

धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयते प्रजाः ।
यत्स्याद्धारणसंयुक्तं स धर्म इति निश्चयः ॥५८॥

संसार का धारण करने के कारण ही धर्म को धर्म माना है। यह धर्म ही प्रजा का धारण करता है। जो बात प्रजा की रक्षा की हो-वही धर्म है, यह निश्चय समझो ॥५८॥

ये न्यायेन जिहीर्षन्तो धर्ममिच्छन्ति कर्हिचित् ।
अकूजनेन मोक्षं वा नानुकूजेत्कथञ्चन ॥५९॥

अवश्यं कूजितव्ये वा शङ्केरन्नप्यकूजतः ।
श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ॥६०॥

कोई २ न्यायानुकूल आचरण को ही धर्म का लक्षण मानते हैं। यदि बिना बोले छुटकारा होजावे-तो कभी कुछ मिथ्या न बोले-और जहां पर अवश्य बोलना हो-या नहीं बोलने से कुछ शङ्का हो- वहां मिथ्या बोलना भी उत्तम है। वस ? इसी को बिना विचारे सत्य समझो ॥५६-६०॥

यः कार्येभ्यो व्रतं कृत्वा तस्य नानोपपादयेत् ।
न तत्फलमवाप्नोति एवमाहुर्मनीषिणः ॥६१॥

जो किसी कार्य के करने की प्रतिज्ञा करके उसे फिर अन्य अनेक ढंगों से करता है. उसको उसका फल नहीं मिलता-ऐसा मनीषी लोग कहते हैं ॥६१॥

प्राणात्यये विवाहे वा सर्वज्ञातिवधात्यये ।
नर्मण्यभिप्रवृत्ते वा न च प्रोक्तं मृषा भवेत् ॥६२॥

जब प्राणों पर संकट आबना हो। विवाह का अवसर चल रहा हो। सारे बान्धव या जाति का विनाश उपस्थित हो। हंसी दिल्लगी चल रहीहो-ऐसे मौकों पर मिथ्या कथन भी कोई पापजनक नहीं होता है ॥६२॥

अधर्मं नात्र पश्यन्ति धर्मतत्त्वार्थदर्शिनः ।
यत्स्तेनैः सह सम्बन्धान्मुच्यते शपथैरपि ॥६३

जो शपथ खाकर चोर लुटेरों से सम्बन्ध विच्छेद किया जाता है, इसे धर्म के तत्व जानने वाले अधर्म नहीं समझते हैं ॥६३॥

श्रेयस्तत्रानृतं वक्तुं तत्सत्यमविचारितम् ।
न च तेभ्यो धनं देयं शक्ये सति कथञ्चन ॥६४॥

जहां तक होसके-चोरों के पास धन नहीं पहुंचने देवे । इसमें जो मिथ्या भाषण है, वही कल्याण कारी है-इसे सत्य ही समझ-लेना चाहिए ॥६४॥

पापेभ्यो हि धनं दत्तं दातारमपि पीडयेत् ।
तस्माद्धर्मार्थमनृतमुक्त्वा नानृतभाग्भवेत् ॥६५॥

पापी पुरुषों को धन दान देना भी दाता को दुःख में डालता है । इस सारे विवेचन का यही तात्पर्य है, कि धर्म के निमित्त असत्यभाषण करने पर भी मिथ्या भाषण का दोष नहीं लगता है ॥६५॥

एष ते लक्षणोद्देशो मयोद्दिष्टो यथाविधि ।
यथाधर्मं यथाबुद्धि मयाद्य वै हितार्थिना ॥६६॥
एतच्छ्रुत्वा ब्रूहि पार्थ यदि वध्यो युधिष्ठिरः ।

यह मैंने तुमको धर्म का तत्व या उसका शास्त्रानुसार लक्षण बता दिया है । मैं तुम्हारे कल्याण की कामना करता हूँ । इससे अपने धर्म औ बुद्धि के अनुसार मैंने यह विवेचन किया है । हे पार्थ ! यह सब कुछ तुमने सुन लिया-अब बताओ-क्या तुमको राजा युधिष्ठिर का वध करना अब भी धर्म प्रतीत होता है ॥६६॥

अर्जुन उवाच—

यथा ब्रूयान्महाप्राज्ञो यथा ब्रूयान्महामतिः ॥६७॥
हितं चैव यथास्माकं तथैतद्वचनं तव ।
भवान्मातृसमोऽस्माकं तथा पितृसमोऽपि च ॥६८॥
गतिश्च परमा कृष्ण त्वमेव च परायणम् ।

अर्जुन ने कहा हे भगवान्! आप अत्यन्त बुद्धिमान् और महामति हैं। जिसतरह हमारा हित सम्पादन होगा-आप वही करोगे। आप हमारे माता और पिता के सदृश हैं। हे कृष्ण! आप ही हमारे अवलम्बन और रक्षक हैं ॥६७-६८॥

न हि ते त्रिषु लोकेषु विद्यतेऽविदितं क्वचित् ॥६९॥
तस्माद्भवान्परं धर्मं वेद सर्वं यथातथम् ।

हे महाराज! कोई ऐसी वस्तु त्रिलोकी में नहीं है, जो आप को विदित न हो। आप तो धर्म के परम तत्त्व को ठीक ठीक जानते हो ॥६९॥

अवध्यं पाण्डवं मन्ये धर्मराजं युधिष्ठिरम् ॥७०॥
अस्मिंस्तु मम सङ्कल्पे ब्रूहि किञ्चिदनुग्रहम् ।
इदं वा परमत्रैव शृणु हृत्स्थं विवक्षितम् ॥७१॥

यह तो मैं भी मानता हूँ, कि पाण्डु-पुत्र धर्मराज युधिष्ठिर अवध्य हैं-परन्तु तुम मेरे संकल्प के विषय में कुछ अनुग्रह पूर्वक

बताओ। इस विषय में जो मेरे हृदय के उद्वेग हैं, वे मैं तुमको सुनाता हूँ ॥७०-७१॥

जानासि दाशार्ह मम व्रतं त्वं यो मां ब्रूयात्कश्चन मानुषेषु
अन्यस्मै त्वं गाण्डिवं देहि पार्थ त्वत्तोऽस्त्रैर्वा वीर्यतो वा विशिष्टः
हन्यामहं केशव तं प्रसह्य भीमो हन्यात्तूवरकेति चोक्तः ॥
तन्मे राजा प्रोक्तवांस्ते समक्षं धनुर्देहीत्यसकृद्वृष्णिवीर ॥

हे दशार्हवंश श्रेष्ठ ! तुम मेरी प्रतिज्ञा को जानते हो, कि जो कोई मनुष्य मुझसे यह कहेगा, कि तुम अब अशक्त हो गए-अपना गाण्डीव धनुष दूसरे को देदो-क्योंकि वह अस्त्र विद्या या पराक्रम में तुम से अधिक हैं, तो हे केशव ! मैं उसे मार डालूंगा। भीम सेन की यह प्रतिज्ञा है, कि जो तूवरक (पेटार्थी) कहेगा-मैं उसे मार डालूंगा। हे वृष्णिवीर ! यह तुम ने प्रत्यक्ष देखा है, कि राजा युधिष्ठिर ने मुझसे बार २ कहा है कि अब तुम अपना गाण्डीव धनुष दूसरे को दे डालो ॥७२-७३॥

तं हन्यां चेत्केशव जीवलोके स्थाता नाहं कालमप्यल्पमात्रम्
ध्यात्वा नूनं ह्येनसा चापि मुक्तो वधं राज्ञो भ्रष्टवीर्यो विचेताः

हे केशव ! यदि मैं धर्मराज को मार लेता हूँ-तो उनके बिना इस संसार में एक क्षण भी मैं जीवित रहना नहीं चाहता हूँ। यदि इनका वध न करूं-तो फिर प्रतिज्ञा लोप होने के पाप से कैसे मुक्त हो सकूँगा। धर्मराज के वध करने से तो मैं अत्यन्त पराक्रम भ्रष्ट और कान्तिहीन हो जाऊँगा ॥७४॥

यथा प्रतिज्ञा मम लोकबुद्धौ भवेत्सत्या धर्मभृतां वरिष्ठ ।
यथा जीवेत्पान्डवोऽहं च कृष्ण तथा बुद्धिं दातुमप्यर्हसि त्वम्

हे धर्मधारियों में श्रेष्ठ ! कृष्ण ! ये संसारी मनुष्य, यह समझ लें, कि मेरी प्रतिज्ञा भ्रष्ट नहीं हुई और धर्मराज युधिष्ठिर के भी प्राण बचे रहें-आप हमको कोई ऐसी विधि सूचित करें ॥७५॥

वासुदेव उवाच—

राजा श्रान्तो विक्षतो दुःखितश्च कर्णेन सङ्ख्ये निशितैर्बाणसङ्घैः
यश्चानिशं सूतपुत्रेण वीर शरैर्भृशं ताडितो युध्यमानः ॥
अतस्त्वमेतेन सरोषमुक्तो दुःखान्वितेनेदमयुक्तरूपम् ।
अकोपितो ह्येष यदि स्म सङ्ख्ये कर्णं न हन्यादिति चाब्रवीत्सः

श्रीकृष्ण ने कहा—हे अर्जुन ! राजा युधिष्ठिर बड़ा दुःखी, क्षत-विक्षत और थक चुका था। यह सब कुछ रण में कर्ण ने अपने तीक्ष्ण बाणों के समूह से किया था। जब २ कर्ण का धर्मराज से युद्ध हुआ-सूत-पुत्र कर्ण ने उन्हें इसी तरह सर्वदा पीड़ित कर दिया। यही कारण है, कि उन्होंने रोष में भर कर तुम से यह कच्ची पक्की बात कह डाली। यह जो कुछ अनुचित काम हुआ यह सब उन्होंने दुःखी होकर किया है। इन्होंने समझा है, कि यदि अर्जुन को कुपित न किया गया-तो यह रण में कर्ण के मारने में समर्थ नहीं हो सकेगा। इसी से इन्होंने ऐसा कहा है ॥७६-७७॥

जानाति तं पाण्डव एष चापि पापं लोके कर्णमसह्यमन्यैः
ततस्त्वमुक्तो भृशरोपितेन राज्ञा समक्षं परुषाणि पार्थ

हे अर्जुन ! राजा युधिष्ठिर यह जानते हैं, कि यह पापी कर्ण लोक में अन्य वीरों से असह्य है। हे पार्थ ! इसी लिए क्रोधातुर धर्मराज ने तुम्हारे सन्मुख तुम से ये कठोर वचन कहे हैं ॥७८॥

नित्योद्युक्ते सततं चाप्रसह्ये कर्णे द्यूतं ह्यद्य रणे निबद्धम्
तस्मिन्हते कुरवो निर्जिताः स्युरेवं बुद्धिः पार्थिवे धर्मपुत्रे ॥

कर्ण युद्ध के लिए नित्य उद्यत रहता है यह बड़ा बलवान् है। आज तो कर्ण के आश्रय पर ही यह सारा रणद्यूत खेला जा रहा है। यदि कर्ण को जीत लिया-तो सारे कौरव जीते गए। राजा युधिष्ठिर यह अच्छी तरह समझते हैं ॥७९॥

ततो वधं नार्हति धर्मपुत्रस्त्वया प्रतिज्ञार्जुन पालनीया।
जीवन्नयं येन मृतो भवेद्धि तन्मे निबोधेह तवानुरूपम् ॥

हे अर्जुन ! तुमको धर्मराज का वध नहीं करना चाहिये-हाँ ? तुम अपनी प्रतिज्ञा का अवश्य पालन करो। उसका उपाय यही है कि य जीवित रहते हुए भी मृत माने जा सकते हैं-उसकी विधि मैं तुमको तुम्हारे स्वरूप के अनुरूप बताऊंगा उसे तुम मुझसा समझलो ॥८०

यदा मानं लभते माननार्हस्तदा स वै जीवति जीवलोके
यदावमानं लभते महान्तं तदा जीवन्मृत इत्युच्यते सः ॥

जब तक माननीय पुरुष मान पाता रहता है, तब तक ही वह संसार में जीवित है परन्तु ज्योंही उसे महाअपमान का सहन करना पड़ा-त्योंही वह जीता ही मृतक माना जाता है ॥८१॥

सम्मानितः पार्थिवोऽयं सदैव त्वया च भीमेन तथा यमाभ्याम्
वृद्धैश्च लोके पुरुषैश्च शूरैस्तस्यापमानं कलया प्रयुङ्क्ष्व ॥

हे अर्जुन! धर्मराज का तुम सर्वदा सम्मान करते रहते थे तुमही क्या? भीमसेन, नकुल और सहदेव भी सर्वदा से उनका मान करते आए हैं। वृद्धपुरुष और शूरवीर पुरुष भी उनका मान करते रहे हैं। अब तुम थोड़ा बहुत उनका अपमान कर सकते हो ॥८२॥

त्वमित्यत्र भवन्तं हि ब्रूहि पार्थ युधिष्ठिरम् ।
त्वमित्युक्तो हि निहतो गुरुर्भवति भारत ॥८३॥

हे पार्थ! अबतुम, आप के स्थान में तू शब्द का प्रयोग करके धर्मराज को सम्बोधित करो। हे भारत! जो पूज्य होता है, वह तो तू शब्द के प्रयोग से ही मारा गया-यही समझो ॥८३॥

एवमाचर कौन्तेय धर्मराजे युधिष्ठिरे ।
अधर्मयुक्तं संयोगं कुरुष्वैनं कुरूद्वह ॥८४॥
अथर्वाङ्गिरसी ह्येषा श्रुतीनामुत्तमा श्रुतिः ।
अविचार्यैव कार्यैषा श्रेयस्कामैर्नरैः सदा ॥८५॥

हे कौन्तेय ! तुम यही व्यवहार धर्मराज युधिष्ठिर के साथ करो। हे कुरुवंश श्रेष्ठ ! तुम्हारा इतना ही अधर्म युक्त व्यवहार इनके साथ करना वहुत बड़ा अपमान है। अथर्वावंशोत्पन्न अङ्गिरा की यह श्रुति वड़ी ही माननीय मानी गई है। जो कल्याण की कामना करने वाले मनुष्य हैं, उनको यह बात बिना विचारे कर लेनी चाहिए ॥८५॥

अवधेन वधः प्रोक्तो यद्गुरुस्त्वमिति प्रभुः।
तद् ब्रूहि त्वं यन्मयोक्तं धर्मराजस्य धर्मवित् ॥८६॥

हे धनञ्जय ! जो तुम अपने पूज्य को तू कहकर बोलोगे-यह विना वध के वध होगा। हे धर्म के जानने वाले-अवतुम वही करो जो मैंने तुम से तू शब्द के प्रयोग के लिए कहा है ॥८६॥

वधं ह्ययं पाण्डव धर्मराजस्त्वत्तोऽयुक्तं वेत्स्यते चैवमेषः।
ततोऽस्य पादावभिवाद्य पश्चात्समं ब्रूयाः सान्त्वयित्वा च पार्थम्

हे पाण्डव ! जब तुम इस अयुक्त शब्द व्यवहार को करोगे और धर्मराज उससे जब अपना अपमानरूप वध समझने लगे तबतुम इनके चरण पकड़ लेना और धर्मराज को सांत्वना करके उनको समझालेना ॥८७॥

भ्राता प्राज्ञस्तव कोपं न जातु कुर्याद्राजा धर्ममवेक्ष्य चापि।
मुक्तोऽनृताद्भ्रातृवधाच्च पार्थ हृष्टः कर्णं त्वं जहि सूतपुत्रम्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे ऊनषष्ठितमोऽध्यायः ॥६६॥

राजा युधिष्ठिर धर्म की व्यवस्था को जानते हैं, क्योंकि वे बड़े विद्वान हैं। वे तुम्हारे ऊपर कभी क्रोध नहीं करेंगे। इस समय क्या धर्म है-वे इसकी ओर देखेंगे। हे पार्थ! फिर अपनी प्रतिज्ञा के मिथ्या न होने और धर्मराज के वध के पातक से बचकर फिर बड़ी प्रसन्नता के साथ रण में सूतपुत्र कर्ण को मारलेना ॥८८॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में राजा युधिष्ठिर के
अपमान करने की प्रक्रिया का वर्णन का ऊनसठवां
अध्याय समाप्त हुआ।



सत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

इत्येवमुक्तस्तु जनार्दनेन पार्थः प्रशस्याथ सुहृद्वचस्तत्।
ततोऽब्रवीदर्जुनो धर्मराजमनुक्तपूर्वं परुषं प्रसह्य ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भरतर्षभ! जब जनार्दन कृष्ण ने अर्जुन से इतना कहा-तो अर्जुन ने अपने हितकारी मित्र की बात की बड़ी प्रशंसा की। अब अर्जुन ने जो कभी पूर्वकाल में धर्मराज से कठोर वचन नहीं कहे थे, वे कह डाले ॥१॥

अर्जुन उवाच—

मा त्वं राजन्व्याहरव्याहरस्व यस्तिष्ठसे क्रोशमात्रे रणाद्वै।
भीमस्तु मामर्हति गर्हणाय यो युध्यते सर्वलोकप्रवीरैः ॥२॥

(अर्जुन बोला—हे राजन्! तुझे मुझ से यह बात नहीं कहनी चाहिए, क्योंकि तू रण में मुझसे एक कोश की दूरी पर था। हां? भीमसेन कुछ मुझे फटकार सकता है, क्योंकि वह सारे उत्तम २ महारथियों से मेरे समीप ही युद्ध कर रहा था ॥२॥

काले हि शत्रून्परिपीड्य सङ्ख्ये हत्वा च शूरान्पृथिवीपतींस्तान्
रथप्रधानोत्तमनागमुख्यान्सादिप्रवेकानमितांश्च वीरान् ॥३॥
यः कुञ्जराणामधिकं सहस्रं हत्वा नदंस्तुमुलं सिंहनादम्।
काम्भोजानामयुतं पार्वतीयान्मृगान्सिंहो विनिहत्येव चाजौ ॥४॥

हे राजन्! इस घोर युद्ध के समयपर भीमसेन ने अनेक शूरवीर राजाओं को पीड़ित करके उत्तम २ महारथी, गजारोही, अश्वारोही तथा अन्य वीरों को मार गिराया। इसने भीषण सिंहनाद करते हुए कोई, सहस्र से भी अधिक हाथी मार डाले। कम्बोज और पर्वत प्रान्त के दश हजार योद्धा रण में भीम ने इस तरह मार डाले-जैसे वन में सिंह मृगों को मार बिछाता है ॥३-४॥

सुदुष्करं कर्म करोति वीरः कर्तुं यथा नार्हसि त्वं कदाचित्।
रथादवप्लुत्य गदां परामृशंस्तया निहन्त्यश्वरथद्विपान्रणे ॥

हे वीर श्रेष्ठ! भीमसेन ने इतना दुष्कर कर्म कर दिखाया, जितना तू तो कभी करके नहीं दिखा सकता है। यह रण में कूद कर और गदा सम्हाल कर उसके द्वारा शत्रु के अनेक अश्व, रथी और हाथियों को मार गिराता था ॥५॥

वरासिना वाजिरथाश्वकुञ्जरांस्तथा रथाङ्गैर्धनुषा दहत्यरीन्
प्रगृह्य पद्भ्यामहितान्निहन्ति पुनस्तु दोर्भ्यां शतमन्युविक्रमः

यह अपनी तीखी तलवार, धनुष और चक्रों से शत्रुपक्ष के वेगशाली अश्व, रथ और हाथियों को भस्म कर रहा था। इन्द्र के समान पराक्रमी भीमने तो शत्रुओं को पकड़कर और पैर के नीचे कुचल कर और भुजाओं में दाब कर मार डालता था ॥६॥

महाबलो वैश्रवणान्तकोपमः प्रसह्य हन्ता द्विपतामनीकिनीम्
स भीमसेनोऽर्हति गर्हणां मे न त्वं नित्यं रक्ष्यसे यः सुहृद्भि

यह महावली कुबेर के समान ऐश्वर्यशाली और यमराज के समान घातक है। यह शत्रु सेना को तो दावे के साथ मार लेता है। यह भीमसेन तो मेरी कुछ निन्दा कर सकता है, परन्तु तुम तो नित्य अपने सुहृदों से सुरक्षित रहकर बचे फिरते हो तुम को मेरी निन्दा करने का क्या अधिकार है ॥७॥

महारथान्नागवरान्हयांश्च पदातिमुख्यानपि च प्रमथ्य ।
एको भीमो धार्तराष्ट्रेषु मग्नः स मामुपालब्धुमरिन्दमोऽर्हति

अरिमर्दन भीमसेन, अकेला ही महारथी, उत्तम २ हाथी, अश्व और वीर, वीरशत्रु सैनिकों का मथन करके कौरव सेना में घुस पड़ता है-यह तो मेरी निन्दा कर सकता है ॥८॥

कलिङ्गवङ्गाङ्गनिषादमागधान्सदामदान्नीलबलाहकोपमान् ।
निहन्ति यः शत्रुगणाननेकान्स मामुपालब्धुमरिन्दमोऽर्हति ॥

जो अरिमर्दन भीम, नित्य कलिङ्ग, वङ्ग-अङ्ग, निषाद, मगध देश के मदोन्मत्त नीलमेघोपम शत्रु वीरों को मारता रहता है-वह तो मेरी निन्दा करने का अधिकार रख सकता है ॥९॥

स युक्तमास्थाय रथं हि काले धनुर्विधुन्वन्शरपूर्णमुष्टिः ।
सृजत्यसौ शरवर्षाणि वीरो महाहवे मेघ इवाम्बुधाराः ॥१०॥

यह भीमसेन, सुसज्जित रथ में बैठकर अपने धनुष को कंपाता हुआ मुष्टिका में भरे हुए जब बाणों की झड़ी सी लगाता है-तो यह जलधारा को छोड़ता हुआ मेघ सा प्रतीत होता है ॥१०॥

शतान्यष्टौ वारणानामवश्यं विशातितैः कुम्भकराग्रहस्तैः ।
भीमेनाजौ निहतान्यद्य बाणैः स मां क्रूरं वक्तुमर्हत्यरिघ्नः ॥

इस भीमसेन ने अपने बाणों से इस रण में आठसौ हाथियों के मस्तक चीर डाले और उनकी सूंड काट डाली। यह शत्रुनाशक वीर तो मुझसे कुछ कठोर निन्दा की बात कह भी सकता है ॥११॥

बलं तु वाचि द्विजसत्तमानां क्षात्रं बुधा बाहुबलं वदन्ति।
त्वं वाग्बलो भारत निष्ठुरश्च त्वमेव मां वेत्थ यथाबलोऽहम् ॥

ब्राह्मणों के वचन और क्षत्रियों की भुजाओं में बल होता है। हे भारत ! तू तो केवल कठोर बोलने का बल रखता है। यद्यपि तू यह जानता है, कि मैं कितना बलवान् ॥हूँ१२॥

घते हं नित्यं तव कर्तुमिष्टं ,
दारैः सुतैर्जीवितेनात्मना च ।
एवं यन्मां वाग्विशिखेन हंसि,
त्वत्तः सुखं न वयं विद्म किञ्चित ॥१३॥

हे राजन्! मैं तो अपने स्त्री-पुत्र जीवन और प्राणों तक से तेरा हित सम्पादन करना चाहता हूं और तू मुझे इस तरह वाणी के बाण से छेदता है-इससे तो यही ज्ञात होगा, कि तुझसे हमें कभी सुख नहीं मिलेगा ॥१३॥

मां मावमंस्था द्रौपदीतल्पसंस्थो,
महारथान्प्रतिहन्मि त्वदर्थे ।
तेनाभिशङ्की भारत निष्ठुरोऽसि,
त्वत्तः सुखं नाभिजानामि किञ्चित् ॥१४॥

तू केवल द्रौपदी के साथ शय्या पर सोना जानता है और मैं तेरे लिए शत्रुओं को मारता रहता हूँ। इस दशा में तुझे मेरा अपमान नहीं करना चाहिए। हे भारत! तू सर्वदा मुझपर शङ्का रखता है-मेरी सम्मति में तू बड़ा कठोर है। तुझसे मुझे तो कुछ सुख होता दिखाई नहीं देता है ॥१४॥

प्रोक्तः स्वयं सत्यसन्धेन ।
मृत्युस्तव प्रियार्थं नरदेव युद्धे ।
वीरः शिखण्डी द्रौपदोऽसौ महात्मा ।
मयाभिगुप्तेन हतश्च तेन ॥१५॥

हे नरदेव ! तेरा हित सम्पादन करने के लिए सत्यप्रतिज्ञ भीष्म ने अपनी मृत्यु आप बतादी । द्रुपद-पुत्र महारथी शिखण्डी भी मुझसे सुरक्षित होकर ही भीष्म पितामह के वध करने में समर्थ हो सका है ॥१५॥

न चाभिनन्दामि तवाधिराज्यं यतस्त्वमक्षेष्वहिताय सक्तः ।
स्वयं कृत्वा पापमनार्यजुष्टमस्माभिर्वा तर्तुमिच्छस्यरींस्त्वम् ॥

मैं तो तेरे राज्य की भी प्रशंसा नहीं करता, क्योंकि उसके मद से ही तू अपना नाश करने को जुआ खेलने में प्रवृत्त हुआ था । तूने स्वयं तो अनार्य पुरुष के करने योग्य कर्म कर डाला और अब हमारे द्वारा शत्रुओं के जीतने की अभिलाषा करता है ॥१६॥

अक्षेषु दोषा बहवो विधर्माः श्रुतास्त्वया सहदेवोऽब्रवीद्यान् ।
तान्नैपि त्वं त्यक्तुमसाधुजुष्टांस्तेन स्म सर्वे निरयं प्रपन्नाः ॥

जुआ खेलने में कितने धर्मनाशक दोष हैं, ये तुमको सहदेव ने सुनाए थे। तूने फिर भी अनार्य पुरुषों से सेवित उन दोषों को परित्याग नहीं किया । हमलोग इसी से तो इस क्लेश में फंसे हैं ॥१७॥

सुखं त्वत्तो नाभिजानीम किञ्चिद्यतस्त्वमक्षैर्देवितुं सम्प्रवृत्तः ।
स्वयं कृत्वा व्यसनं पाण्डव त्वमस्मांस्तीव्राः श्रावयस्यद्य वाचः

तुझसे क्या सुख मिलने की आशा है, जो तू स्वयं जुआ-खेलने में प्रवृत्त होगया । हे पाण्डव ! तूने स्वयं तो यह विपत्ति खड़ी की और अब हमको जली भुनी तीव्र वाणी सुनाता है ॥१८॥

शेतेऽस्माभिर्निहता शत्रुसेना छिन्नैर्गात्रैर्भूमितले नदन्ती।
त्वया हि तत्कर्म कृतं नृशंसं यस्माद्दोषः कौरवाणां वधश्च ॥

हम लोगों ने मार २ कर शत्रु बिछा दिए हैं, जो घायल हुए पृथिवी पर पड़े आर्तनाद कर रहे हैं। तूने ही यह सब कुछ जुआ खेलकर अधर्म कार्य किया- इसी से यह युद्ध-उत्पन्न हुआ, जिस में सारे कुरुवंश का नाश होगया ॥१६॥

हताउदीच्या निहताःप्रतीच्यानष्टाःप्राच्या दाक्षिणात्याविशस्ताः
कृतं कर्माप्रतिरूपं महद्भिस्तेषां योधैरस्मदीयैश्च युद्धे ॥२०॥

उत्तर पश्चिम, पूर्व और दक्षिण दिशाओं से आये हुए अनेक वीर राजा मारकाट कर नष्ट भ्रष्ट कर दिएगए। इस युद्ध में बड़े २ हमारे और शत्रु के महारथियों ने आज तक नहीं देखा जाने वाला कर्म कर दिखाया ॥ ०॥

त्वं देविता त्वत्कृते राज्यनाशस्त्वत्सम्भवं नो व्यसनं नरेन्द्र।
मास्मान्क्रूरैर्वाक्प्रतोदैस्तुदंस्त्वं भूयो राजन्कोपयेस्त्वल्पभाग्यः

हे नरेन्द्र ! तूने ही जुआ खेला और तेरी ही भूलसे राज्य का नाश हुआ और हमपर यह विपत्ति आई। हे राजन् ! अब आगे क्रूरवाणी के बाणों से हमको पीड़ा-पहुंचा कर कुपित न करना। इस तरह तो मुझे तू अल्प भाग्य(कम्बख्त ही दिखाई देता है ॥२१॥

सञ्जय उवाच—

एता वाचः परुषाः सव्यसाची स्थिरप्रज्ञः श्रावयित्वा तु रूक्षाः
बभूवासौ विमना धर्मभीरुः कृत्वा प्राज्ञः पातकं किञ्चिदेवम् ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन ! इस प्रकार सव्यसाची, दृढमति, अर्जुन ने धर्मराज को रूक्ष और कठोर वाणी सुनाई। इतना सुनाकर अर्जुन कुछ उदासी के साथ चुप होगया। उस बुद्धिमान ने समझ लिया था, कि इस में पातक लगरहा है इसी से वह धर्मनाश से डर गया ॥२२॥

तदानुतेपे सुराजपुत्रो विनिःश्वसंश्चासिमथोद्बबर्ह ।
तमाह कृष्णः किमिदं पुनर्भवान्विकोशमाकाशनिभं करोत्यसिम्
ब्रवीहि मां त्वं पुनरुत्तरं वचस्तथा प्रवक्ष्याम्यहमर्थसिद्धये ।

इन्द्रपुत्र अर्जुन अब बहुत सन्तापित हुआ। उसने ज़ोर से श्वास मारी और तलवार निकाली। श्रीकृष्ण ने अर्जुन से फिर पूछा-कि हे अर्जुन ! अब तुमने फिर आकाश तुल्य नीलखड्ग को फिर कोश से क्यों निकाला है। तुम जब इसका उत्तर देदोगे-तो तुम्हारे कार्य सिद्ध करने को मैं फिर कोई विधान बताऊंगा ॥२३॥

इत्येवमुक्तः पुरुषोत्तमेन सुदुःखितः केशवमर्जुनोऽब्रवीत् ॥
अहं हनिष्ये स्वशरीरमेव प्रसह्य येनाहितमाचरं वै ।

जब पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण ने इतना कहा—तो दुःखी अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा—हे भगवन ! अब मैं अपने इस शरीर को ही समाप्त कर देना चाहताहूँ, जिससे मैंने यह अधर्म किया है ॥२४॥

निशम्य तत्पार्थवचोऽब्रवीदिदं धनञ्जयं धर्मभृतां वरिष्ठः ॥
राजानमेनं त्वमितीदमुक्त्वा किं कश्मलं प्राविशः पार्थ घोरम् ।

अर्जुन के ये वचन सुनकर धर्मात्माओं में श्रेष्ठ श्रीकृष्ण ने अर्जुन से यह वचन कहा—हे पार्थ ! राजा युधिष्ठिर से इस प्रकार कठोर वचन कहकर तुमको यह घोर मोह क्यों उपस्थित हुआ ॥२५॥

त्वं चात्मानं हन्तुमिच्छस्यरिघ्न नेदं सद्भिः सेवितं वै किरीटिन्
धर्मात्मानं भ्रातरं ज्येष्ठमद्य खड्गेन चैनं यदि हन्या नृवीर।
धर्माद्भीतस्तत्कथं नाम ते स्यात्किञ्चोत्तरं वाकरिष्यस्त्वमेव ॥

हे किरीटधारी ! शत्रुनाशक ! अर्जुन ! जो तुम अपने आप को मारना चाहते हो, यह सज्जनों से सेवित मार्ग नहीं है। हे नरप्रवीर ! यदि तुम खड्ग से अपने श्रेष्ठ भ्राता धर्मात्मा युधिष्ठिर का वध कर देते-तो फिर धर्म से डरकर तुमको क्या २ करना पड़ता। उसका तुम लोगों कोक्या उत्तर देते ॥२६-२७॥

सूक्ष्मो धर्मो दुर्विदश्चापि पार्थ विशेषतोऽज्ञैः प्रोच्यमानं निबोध
हत्वात्मानमात्मना प्राप्नुयास्त्वं वधाद्भ्रातुर्नरकं चातिघोरम्

हे पार्थ ! धर्म की गति बड़ी सूक्ष्म है-उसे कोई जान नहीं पाता है। अब जिन अतिक्रान्तदर्शी महात्माओं ने जिस धर्म का उपदेश किया है-उसे सुनो। तुमने यदि अपने आप या अपने ज्येष्ठ भ्राता की हत्या करडाली तो-इससे तुम घोर नरक में गमन करोगे ॥२८॥

ब्रवीहि वाचाद्य गुणानिहात्मनस्तथा हतात्मा भवितासि पार्थ
तथास्तु कृष्णेत्यभिनन्द्य तद्वचो धनञ्जयः प्राह धनुर्विनाम्य ॥
युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठं शृणुष्व राजन्निति शक्रसूनुः।

हे अर्जुन ! अब तुम अपनी प्रशंसा करो-इससे स्वयं आत्म-हत्या हो जावेगी। हे कृष्ण ! तुमने ठीक कहा—इस प्रकार उसकी वाणी की प्रशंसा करके इन्द्रपुत्र अर्जुन ने अपने धनुष को खैंचकर धर्मधारियों में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर से जो वचन कहा—हे धृतराष्ट्र उसे तुम मुझसे सुनो ॥२९॥

न मादृशोऽन्यो नरदेव विद्यते धनुर्धरो देवमृते पिनाकिनम् ॥
अहं हि तेनानुमतो महात्मना क्षणेन हन्यां सचराचरं जगत् ।

हे नरदेव ! क्या तुमको पता नहीं है, कि पिनाकधारी भगवान् शङ्कर को छोड़कर मेरे समान अन्य कोई धनुर्धर नहीं है। यदि-भगवान् शङ्कर की इच्छा हो-तो मैं इस सारे चराचर जगत को क्षण भर में मार कर गिरा सकता हूँ ॥३०॥

मया हि राजन्सदिगीश्वरा दिशो विजित्य सर्वा भवतः कृता वशे
स राजसूयश्च समाप्तदक्षिणः सभा च दिव्या भवतो ममौजसा

हे राजन् ! मैंने सारे दिग्पाल देवों को, देवों के साथ सारी दिशाएँ जीतकर तुम्हारे अधीन करदीं। वह तुम्हारी बहुत सी दक्षिणा से सम्पन्न सारा राजसूय यज्ञ और वह राजसभा मेरे ही ओज से सम्पादित हो सकी थी ॥३१॥

पाणौ पृषत्का निशिता ममैव धनुश्च सज्यं विततं सबाणम् ॥
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ।

मेरे ही हाथों में तीक्ष्ण बाण और बाण से समन्वित सुसज्जित विस्तृत धनुष होता है। मेरे पादों में रथ और ध्वजा के चिन्ह हैं। युद्ध में मुझे जीतने की किसकी सामर्थ्य है ॥३३॥

हता उदीच्या निहताः प्रतीच्याः प्राच्या ॥
निरस्तादाक्षिणात्या विशस्ताः ।
संशप्तकानां किञ्चिदेवास्ति शिष्टं सर्वस्य सैन्यस्य हतं मयार्धम्
शेते मया निहता भारतीयं चमू राजन्देवचमूप्रकाशा ॥ ॥३४॥

मैं उदीच्य, प्रतीच्य, प्राच्य, और दाक्षिणात्य वीर मार मार कर रण भूमि में बिछा दिए। संशप्तकों की थोड़ी ही सेना बची है, मैंने उसे आधी से अधिक मार गिराया है। हे राजन्! देव सेना के समान शक्तिशाली मैंने कौरव सेना इस तरह मार गिराई, जो अभी तक रण भूमि में पड़ी हुई है ॥३४॥

ये चास्त्रज्ञास्तानहं हन्मि चास्त्रैस्तस्माल्लोकानेव करोमि भस्म
जैत्रं रथं भीममास्थाय कृष्ण यावः शीघ्रं सूतपुत्रं निहन्तुम्

जो अस्त्रों के ज्ञाता हैं, उन्हें अस्त्रों से मारता हूं। उसी अस्त्र से मैं लोकों को भस्म करने में समर्थ हूं। हे कृष्ण! तुम विजयकारी भीषण रथ पर बैठ जाओ, और अभी सूत-पुत्र कर्ण के मारने के निमित्त शीघ्र प्रस्थान करो ॥३५॥

राजा भवत्वद्य सुनिर्वृतोऽयं कर्णं रणे नाशयितास्मि बाणैः
इत्येवमुक्त्वा पुनराह पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठ॥

आज राजा युधिष्ठिर निश्चिन्त हो जाना चाहिए मैं आज रण में कर्ण को मारकर रहूंगा। हे राजन्! इतना कहकर फिर अर्जुन ने धर्मात्मा राजा युधिष्ठिर से यह वचन कहा ॥३६॥

अद्यापुत्रा सूतमाता भवित्री कुन्ती वाथो वा मया तेन वापि
सत्यं वदाम्यद्य न कर्णमाजौ शरैरहत्वा कवचं विमोक्ष्ये ॥

आज या तो कर्ण की माता राधा अपने पुत्र से रहित होगी। या मुझसे कुन्ती ही रहित हो जावेगी। हे राजन्! मैं सत्य कहता हूं, कि रण में कर्ण के बिना मारे आज मैं कवच नहीं खोलूंगा ॥३७॥

सञ्जय उवाच—

इत्येवमुक्त्वा पुनरेव पार्थो युधिष्ठिरं धर्मभृतां वरिष्ठम्।
विमुच्य शस्त्राणि धनुर्विसृज्य कोशं च खड्गं विनिधाय तूर्णम्
स व्रीडया नम्रशिराः किरीटी युधिष्ठिरं प्राञ्जलिरभ्युवाच।
प्रसीद राजन्क्षम यन्मयोक्तं काले भवान्वेत्स्यति तन्नमस्ते ॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! धर्मधारियों में श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर से इतना कहकर अर्जुन ने शस्त्र डाल दिए, धनुष रख दिया और झटपट अपने खड्ग को कोश में कर लिया। लज्जा के कारण शिर नीचा करके हाथ जोड़े हुए किरीटधारी अर्जुन ने धर्मराज से यह वचन कहा। हे राजन् आप प्रसन्न हो जाइए। मैंने जो इस समय कुछ कहा है, उसे क्षमा करो। आप सब कुछ समझते हो। आपको नमस्कार है ॥३८-३९॥

प्रसाद्य राजानममित्रसाहं स्थितोऽब्रवीच्चैव पुनः प्रवीरः ।
नेदं चिरात्क्षिप्रमिदं भविष्यत्यावर्तते साऽभियामि चैनम् ॥

हे भरत श्रेष्ठ ! इस प्रकार शत्रु के वेग के सहने वाले राजा युधिष्ठिर को प्रसन्न करके फिर पुरुष प्रवीर अर्जुन ने यह वचन कहा। अब आपको यह दुःख बहुत देर न रहेगा। मैं अभी जाता हूं और कर्ण पर आक्रमण करता हूं ॥४०॥

याम्येष भीमं समरात्प्रमोक्तुं सर्वात्मना सूतपुत्रं च हन्तुम् ।
तव प्रियार्थं मम जीवितं हि ब्रवीमि सत्यं तदवेहि राजन् ॥

मैं अब पूरी शक्ति लगादूंगा और रण में फंसे हुए भीमसेन को छुड़ाकर सूत-पुत्र कर्ण को मार डालूंगा। हे राजन् ! तुम यह अच्छी तरह समझ लो कि मेरा जीवन तो केवल आपका प्रिय सम्पादन करने के निमित्त ही है यह सत्य समझो ॥४१॥

इति प्रयास्यन्नुपगृह्य पादौ समुत्थितो दीप्ततेजाः किरीटी ।
एतच्छ्रुत्वा पाण्डवो धर्मराजो भ्रातुर्वाक्यं फाल्गुनस्य ।
उत्थाय तस्माच्छयनादुवाच पार्थं ततो दुःखपरीतचेताः ॥

हे राजन कर्ण पर आक्रमण करने को उद्यत प्रदीप्त तेजधारी अर्जुन, धर्मराज के चरणों का स्पर्श करके चलने लगा। पाण्डुपुत्र धर्मराज युधिष्ठिर ने भी अपने भ्राता अर्जुन के ये वचन सुन कर दुःख से व्याकुल चित्त होकर अपने शयन से कुछ उठ कर यह वचन कहा ॥४२॥

कृतं मया पार्थ यथा न साधु येन प्राप्तं व्यसनं वः सुघोरम्
तस्माच्छिरश्छिन्धि ममेदमद्य कुलान्तकस्याधमपूरुषस्य ।

हे अर्जुन! इस में सन्देह नहीं। मैंने यह अच्छा काम नहीं किया जिससे तुमको भी इस घोर संकट में पड़ना पड़ा। अब तुम कुल घातक मुझ अधम पुरुष के मस्तक को आज तुम काट डालो ॥४३॥

पापस्य पापव्यसनान्वितस्य विमूढबुद्धेरलसस्य भीरोः ॥४४॥
वृद्धावमन्तुः परुषस्य चैव किं ते चिरं मे ह्यनुसृत्य रूक्षम् ।

मैं-पापी और दुःखदायी विपत्ति से युक्त हूँ। मैं अत्यन्त मूर्खबुद्धि और आलसी तथा भीरु हूँ। मैं वृद्ध पुरुषों का अपमान करने वाला बड़ा कठोर व्यक्ति हूँ। अब व्यर्थ मुझ शुष्क वृक्ष का सहयोग करके तुम क्या लोगे ॥४४॥

गच्छाम्यहं वनमेवाद्य पापः सुखं भवान्वर्त्ततां मद्विहीनः ॥
योग्यो राजा भीमसेनो महात्मा क्लीबस्य वा मम किं राज्यकृत्यम्

हे अर्जुन! मैं तो आज ही वन में फिर लौट जाता हूँ। तुम मेरा साथ छोड़ कर सुख से आनन्द लूटो। महात्मा भीमसेन ही राजा बनने के योग्य है। मुझ क्लीब को राजा बना कर क्या कार्य सम्पादित हो सकेगा ॥४५॥

न चापि शक्तः परुषाणि सोढुं पुनस्तवेमानि रुषान्वितस्य
भीमोऽस्तु राजा मम जीवितेन न कार्यमद्यावमतस्य वीर ।

हे अर्जुन! तुम्हारे रोष में भरकर कहे हुए इन कठोर वचनों के सहने की मुझमें शक्ति नहीं है। हे वीर! अब भीमसेन को राजा बनाओ। मैं-जो तिरस्कृत होकर अब जीना भी नहीं चाहता हूँ ॥४६॥

इत्येवमुक्त्वा सहसोत्पपात राजा ततस्तच्छयनं विहाय ॥
इयेष निर्गन्तुमथो वनाय तं वासुदेवः प्रणतोऽभ्युवाच ।

हे राजन्! इस प्रकार कहकर राजा युधिष्ठिर शय्या छोड़ कर एक दम खड़े होगए। और वे वन में जाने को उद्यत हुए। इस समय भगवान् कृष्ण हाथ जोड़ कर धर्मराज से बोले ॥४७॥

राजन्विदितमेतद्वै यथा गाण्डीवधन्वनः ॥४८॥
प्रतिज्ञा सत्यसन्धस्य गाण्डीवं प्रति विश्रुता ।

हे राजन्! आप को वह अच्छी तरह मालूम है, जो गाण्डीवधारी सत्यप्रतिज्ञ अर्जुन ने गाण्डीव धनुष के विषय में प्रतिज्ञा कर रखी है ॥४८॥

ब्रूयाद्य एवं गाण्डीवमन्यस्मै देयमित्युत ॥४९॥
वध्योऽस्य स पुमाँल्लोके त्वया चोक्तोऽयमीदृशम् ।

अर्जुन की प्रतिज्ञा थी, कि जो कोई मुझसे यह कहेगा, कि इस गाण्डीव धनुष को दूसरे को देदो, तुम में इसके धारण करने की शक्ति नहीं है-तो मैं उस मनुष्य को मारडालूंगा। हे धर्मराज तुमने इससे वही कह डाला ॥४९॥

ततः सत्यां प्रतिज्ञां तां पार्थेन प्रतिरक्षता ॥५०॥
मच्छन्दादवमानोऽयं कृतस्तत्र महीपते ।
गुरूणामवमानो हि वध इत्यभिधीयते ॥५१॥

हे महीपते ! अर्जुन उसी-प्रतिज्ञा को सत्य करना चाहता था परन्तु मेरी सम्मति से उसने यह तुम्हारा अपमान किया है। पूज्य व्यक्तियों का अपमान कर देना ही उनका वध माना गया है ॥५०-५१॥

तस्मात्त्वं वै महाबाहो मम पार्थस्य चोभयोः ।
व्यतिक्रममिमं राजन्सत्यसंरक्षणं प्रति ॥५२॥
शरणं त्वां महाराजप्रपन्नौ स्व उभावपि ।
क्षन्तुमर्हसि मे राजन्प्रणतस्याभियाचतः ॥५३॥

हे महाबाहो राजन् ! हम दोनों कृष्ण और अर्जुन ने जो आप का यह अपमान करके यह विपरीत क्रम दिखाया है-वह अपनी प्रतिज्ञा की रक्षा के कारण से था। हे महाराज ! हम दोनों आप की शरण में हैं। हे राजन् ! जब हम प्रणाम-पूर्वक आपसे अपराध क्षमा कराने की याचना कर रहे हैं, तो आप को हमारा अपराध क्षमा कर देना चाहिए ॥५२-५३॥

राधेयस्याद्य पापस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ।
सत्यं ते प्रतिजानामि हतं विद्ध्यद्य सूतजम् ॥५४॥
यस्येच्छसि वधं तस्य गतमप्यस्य जीवितम् ।

हे धर्मराज ! अब आप चिन्ता न करें। आज राधा-पुत्र कर्ण के रक्त का भूमि पान करेगी। हे भरतर्षभ ! मैं आपसे सत्य प्रतिज्ञा करके कहता हूँ—तुम सूत-पुत्र कर्ण को अब मरा हुआ ही समझो। तुम उसी को मारना चाहते हो अब उसका जीवन समाप्त ही समझो ॥५४॥

इति कृष्णवचः श्रुत्वा धर्मराजो युधिष्ठिरः ॥५५॥
ससम्भ्रमं हृषीकेशमुत्थाप्य प्रणतं तदा।
कृताञ्जलिस्ततो वाक्यमुवाचानन्तरं वचः ॥५६॥

जब धर्मराज युधिष्ठिर ने इस प्रकार श्रीकृष्ण के वचन सुने तो उसने झटपटाकर प्रणाम करते हुए श्रीकृष्ण को उठा लिया। और हाथ जोड़कर इसके अनन्तर जो कुछ कहना चाहिए वह वचन कहा ॥५५-५६॥

एवमेव यथात्थ त्वमस्त्येषोऽतिक्रमो मम।
अनुनीतोऽस्मि गोविन्द तारितश्चास्मि माधव ॥५७॥

हे गोविन्द ! जो तुम कह रहे हो-वह ठीक है। यह अपमान इसी कारण से किया गया है। हे माधव ! आप लोगों ने मुझे प्रसन्न कर लिया और दुःख सागर से मेरी रक्षा की ॥५७॥

मोचिता व्यसनाद्घोराद्वयमद्य त्वयाच्युत।
भवन्तं नाथमासाद्य ह्यावां व्यसनसागरात् ॥५८॥
घोरादद्य समुत्तीर्णावुभावज्ञानमोहितौ।

हे अच्युत ! आज आपने हमको भारी संकट से छुड़ाया। तुम्हारी सहायता पाकर ही हम इस विपत्ति के घोर समुद्र से पार हो सकते हैं क्योंकि हम तो दोनों ही अज्ञान से मोहित थे ॥५८॥

त्वद्बुद्धिप्लवमासाद्य दुःखशोकार्णवाद्वयम् ॥५६॥
समुत्तीर्णाः सहामात्याः सनाथाः स्म त्वयाऽच्युत॥६०॥

इति श्रीमहा० शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां ।
कर्णपर्वणि युधिष्ठिरसमाश्वासने सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

हे कृष्ण ! आज तुम्हारी बुद्धि रूपी नौका को पाकर हम दुःख शोक के अद्वितीय समुद्र से पार हुए हैं और अमात्यों के सहित सनाथ हो गए हैं ॥५६-६०॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में राजा युधिष्ठिर
के समाश्वासन के वर्णन का सत्तरवां अध्याय
समाप्त हुआ।



इकहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

धर्मराजस्य तच्छ्रुत्वा प्रीतियुक्तं वचस्ततः ।
पार्थं प्रोवाच धर्मात्मा गोविन्दो यदुनन्दनः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे भारत ! धर्मराज के ये प्रीतियुक्त वचन सुनकर धर्मात्मा यदुकुल भूषण भगवान कृष्ण, अर्जुन से बोले ॥१॥

इति स्म कृष्णवचनात्प्रत्युच्चार्य युधिष्ठिरम् ।
बभूव विमनाः पार्थः किंचित्कृत्वेव पातकम् ॥२॥

अर्जुन भी पूर्वोक्त प्रकार से कृष्ण के कथनानुसार राजा युधिष्ठिर को फटकार कर बहुत ही क्लान्त होरहे थे । उनको यह जच गया कि इसमें भी तूने एक अपराध कर डाला है ॥२॥

ततोऽब्रवीद्वासुदेवः प्रहसन्निव पाण्डवम् ।
कथं नाम भवेदेतद्यदि त्वं पार्थ धर्मज्ञम् ॥३॥
असिना तीक्ष्णधारेण हन्या धर्मे व्यवस्थितम् ।
त्वमित्युक्त्वाथ राजानमेवं कश्मलमाविशः ॥४॥

अब कुछ मुसकुराते हुए वसुदेवपुत्र श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन ! यदि तुम धर्म में स्थित राजा युधिष्ठिर को अपने तीक्ष्ण खड्ग से मार लेते-तो कितना बड़ा अनर्थ हो जाता । केवल तू शब्द का व्यवहार करके ही तुमको इतना दुःख होरहा है ॥३-४॥

हत्वा तु नृपतिं पार्थ आकरिष्यः किमुत्तरम् ।
एवं हि दुर्विदो धर्मो मन्दप्रज्ञैर्विशेषतः ॥५॥

हे पार्थ ! यदि तुमने धर्मराज को मार लिया होता-तो तुम संसार को क्या सूरत दिखाते या उत्तर देते । मन्दबुद्धि पुरुषों को धर्म का तत्व समझ लेना बड़ा ही दुष्कर है ॥५॥

स भवान्धर्मभीरुत्वाद् ध्रुवमैष्यन्महत्तमः ।
नरकं घोररूपं च भ्रातुर्ज्येष्ठस्य वै वधात् ॥६॥

हे अर्जुन ! तुम धर्मभीरु थे । यदि तुमने धर्मराज का वध कर दिया होता-तो तुमको बड़ा तीव्र शोक होता और अन्त में नरक में जाते ॥६॥

स त्वं धर्मभृतां श्रेष्ठं राजानं धर्मसंहितम् ।
प्रसादय कुरुश्रेष्ठमेतदत्र मतं मम ॥७॥

अब तुम धर्मात्माओं में श्रेष्ठ, धर्मपरायण, कुरुवंशोद्भव, धर्मराज को सन्तुष्ट करो-इस समय मैं यही चाहता हूँ ॥७॥

प्रसाद्य भक्त्या राजानं प्रीते चैव युधिष्ठिरे ।
प्रयावस्त्वरितौ योद्धुं सूतपुत्ररथं प्रति ॥८॥

जब तुम अनुनय करके राजा युधिष्ठिर से अपराध क्षमा करालोगे और धर्मराज प्रसन्न होजावेंगे-तो फिर सूतपुत्र कर्ण के रथ की ओर अभी युद्ध करने चल पड़ते हैं ॥८॥

हत्वा तु समरे कर्णं त्वमद्य निशितैः शरैः ।
विपुलां प्रीति माधत्स्व धर्मपुत्रस्य मानद ॥९॥

हे मानदाता ! इसके अनन्तर तुम आज रण में तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को मारकर धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को बहुत ही आनन्दित बना देना ॥९॥

एतदत्र महाबाहो प्राप्तकालं मतं मम ।
एवं कृते कृतं चैव तव कार्यं भविष्यति ॥१०॥

हे महाबाहो ! इस समय के अनुसार मुझे यही करना उत्तम प्रतीत होता है। जब तुम यह सब कुछ करलोगे- तो शेष कार्य तो किया हुआ ही समझो ॥१०॥

सञ्जय उवाच—

ततोऽर्जुनो महाराज लज्जया वै समन्वितः ।
धर्मराजस्य चरणौ प्रपद्य शिरसा नतः ॥११॥
उवाच भरतश्रेष्ठं प्रसीदेति पुनः पुनः ।
क्षमस्व राजन्यत्प्रोक्तं धर्मकामेन भीरुणा ॥१२॥

सञ्जय कहने लगे—हे महाराज ! अब लज्जा से युक्त शिर नीचा किए हुए अर्जुन, धर्मराज के चरणों में गिर गए और वे बार २ भरत वंश श्रेष्ठ धर्मराज से प्रसन्न होने की प्रार्थना करने लगे, कि हे राजन् ! मैंने अपनी प्रतिज्ञा पालन धर्म की रक्षा के निमित्त जो कटु भाषण कर डाला-आप उसे क्षमा करो ॥११-१२॥

दृष्ट्वा तु पतितं पद्भ्यां धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
धनञ्जयममित्रघ्नं रुदन्तं भरतर्षभ ॥१३॥
उत्थाप्य भ्रातरं राजा धर्मराजो धनञ्जयम् ।
समाश्लिष्य च सस्नेहं प्ररुरोद महीपतिः ॥१४॥

हे भरतर्षभ ! जब राजा युधिष्ठिर ने शत्रुनाशक धनञ्जय को रोते हुए पैरों में पड़ा देखा तो उन्होंने अपने भ्राता अर्जुन को उठा लिया और स्नेहपूर्वक धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर भी रोनेलगे।१३-१४

रुदित्वा सुचिरं कालं भ्रातरौ सुमहाद्युती ।
कृतशौचौ महाराज प्रीतिमन्तौ बभूवतुः ॥१५॥

हे महाराज ! अत्यन्त कान्तिमान दोनों भ्राता बहुत देर तक रोते रहे। फिर अपने मुंह हाथों को धोकर परस्पर एक दूसरे पर ज्यों के त्यों प्रसन्न होगए ॥१५॥

तत आश्लिष्य तं प्रेम्णा मूर्ध्नि चाघ्राय पाण्डवः।
प्रीत्या परमया युक्तो विस्मयंश्च पुनः पुनः ।
अब्रवीत्तं महेष्वासं धर्मराजो धनञ्जयम् ॥१६॥

अब पाण्डुपुत्र धर्मराज ने महाधनुर्धर धनञ्जय अर्जुन का आलिङ्गन किया और स्नेहपूर्वक उसका बार २ शिर सूंघा। इस समय धर्मराज अर्जुन पर बड़े प्रीतिमान् थे। वे बार २ मुसकुराते हुए अर्जुन से बोले ॥१३॥

कर्णेन मे महाबाहो सर्वसैन्यस्य पश्यतः ।
कवचं च ध्वजं चैव धनुः शक्तिर्हयाः शराः ॥१७॥

शरैः कृत्ता महेष्वास यतमानस्य संयुगे ।
सोऽहं ज्ञात्वा रणे तस्य कर्म दृष्ट्वा च फाल्गुन ॥१८॥
व्यवसीदामि दुःखेन न च मे जीवितंप्रियम् ।

हे महाबाहो ! महाधनुर्धर ! अर्जुन ! महारथी कर्ण ने सारी सेना के देखते २ अपने बाणों से मेरे कवच, ध्वजा, धनुष, शक्ति अश्व और बाणों को काट डाला । मैंने रण में उसका मुक़ाबिला करने का बड़ा ही प्रयत्न किया । हे अर्जुन ! मैंने रण में उसका पराक्रम और वीर कर्म देखा है । मैं तो इसी दुःख से बड़ा पीड़ित हूँ । अब मुझे जीवन भी अच्छा नहीं लगता ॥१७-१८॥

न चेदद्य हि तं वीरं निहनिष्यसि संयुगे ॥१९॥
प्राणानेव परित्यक्ष्ये जीवितार्थो हि को मम ।

हे अर्जुन ! यदि आज तुमने महारथी कर्ण को रण में नहीं मारगिराया-तो मैं अपने प्राणों को छोड़दूंगा । फिर मेरे जीने से ही क्या लाभ है ॥१९॥

एवमुक्तः प्रत्युवाच विजयो भरतर्षभ ॥२०॥
सत्येन ते शपे राजन्प्रसादेन तथैव च ।
भीमेन च नरश्रेष्ठ यमाभ्यां च महीपते ॥२१॥
यथाद्य समरे कर्णं हनिष्यामि हतोऽपि वा ।
महीतले पतिष्यामि सत्येनायुधमालभे ॥२२॥

हे भरतर्षभ ! जब धर्मराज ने अर्जुन से इस प्रकार कहा-तो वह बोला-हे राजन् ! मैं सत्य की शपथ खाकर कहता हूं कि आपके अनुग्रह से भीमसेन, नकुल और सहदेव को साथ लेकर मैं अवश्य कर्ण को मारगिराऊंगा। हे नर श्रेष्ठ ! महीपते ! आज रण में यातो मैं कर्ण को मारलूंगा या उसके द्वारा स्वयं मारा जाकर पृथिवी में लेट जाऊंगा। मैं सत्य की शपथ खाकर शस्त्र का स्पर्श करता हूँ ॥२०-२१॥

एवमाभाष्य राजानमब्रवीन्माधवं वचः।
अद्य कर्णं रणे कृष्ण सूदयिष्ये न संशयः ॥२२॥
तव बुद्ध्या हि भद्रं ते वधस्तस्य दुरात्मनः।

हे राजन् ! धर्मराज से इतना कहकर अर्जुन ने श्रीकृष्ण से यह वचन कहा—हे कृष्ण आज मैं अवश्य महारथी कर्ण को मारलेना चाहता हूं। तुम्हारे बुद्धि के बल के प्रयोग से मैं उस-दुरात्मा का अवश्य वध करलूंगा-इसमें सन्देह नहीं है ॥२३॥

एवमुक्तोऽब्रवीत्पार्थं केशवो राजसत्तम ॥२४॥
शक्तोऽसि भरतश्रेष्ठ हन्तुं कर्णं महाबलम्।

हे राजसत्तम ! जब अर्जुन ने इतना कहा तो श्रीकृष्ण बोले— हे भरत श्रेष्ठ ! तुम महाबली कर्ण के मारदेने में समर्थ हो-इस में कोई संशय नहीं है ॥२४॥

एष चापि हि मे कामो नित्यमेव महारथ ॥२५॥
कथं भवान्रणे कर्णं निहन्यादिति सत्तम।

हे महारथी श्रेष्ठ ! मेरी तो सदा से अभिलाषा ही यह लगी हुई है, कि आप किसी तरह रण में कर्ण को मार लेवें ॥२५॥

भूयश्चोवाच मतिमान्माधवो धर्मनन्दनम् ॥२६॥
युधिष्ठिरेमं बीभत्सुं त्वं सान्त्वयितुमर्हसि ।
अनुज्ञातुं च कर्णस्य वधायाद्य दुरात्मनः ॥२७॥

इसके बाद महाबुद्धिमान् श्रीकृष्ण ने धर्मराज युधिष्ठिर से कहा-हे युधिष्ठिर ! तुमको धनञ्जय अर्जुन को उत्साहित करना चाहिए। अब तुम दुरात्मा कर्णके वध के लिए आज्ञा दो ॥२६-२७॥

श्रुत्वा ह्यहमयं चैव त्वां कर्णशरपीडितम् ।
प्रवृत्तिं ज्ञातुमायाताविहावां पाण्डुनन्दन ॥२८॥

हे पाण्डु नन्दन ! जब मैंने और अर्जुन ने तुमको कर्ण के बाणों से क्षत-विक्षत सुना-तो हम दोनों तुम्हारे समाचार जानने को यहां आए थे ॥२८॥

दिष्ट्यासि राजन्नहतो दिष्ट्या न ग्रहणं गतः ।
परिसान्त्वय बीभत्सुं जयमाशाधि चानघ ॥२९॥

हे राजन् ! यह बड़े आनन्द की बात निकली कि तुम न तो कर्ण द्वारा मारे गए और न वह तुमको पकड़ ही सका। हे अनघ ! अब तुम अर्जुन को सान्त्वना दो और विजय की आशा में प्रसन्न हो जाओ ॥२९॥

युधिष्ठिर उवाच—

एह्येहि पार्थ बीभत्सो मां परिष्वज पाण्डव ।
वक्तव्यमुक्तोऽस्मि हितं त्वया क्षान्तं च तन्मया ॥३०॥

अहं त्वामनुजानामि जहि कर्णं धनञ्जय ।
मन्युं च मा कृथाः पार्थ यन्मयोक्तोऽसि दारुणम् ॥२१॥

युधिष्ठिर ने कहा—हे पार्थ अर्जुन ! आओ और मुझे आलिङ्गन करो। हे पाण्डव ! तुमने मुझे-जो हितकारी बात थी वही तो कही थी और फिर भी मैंने उसे क्षमा कर दिया है। हे धनञ्जय ! अब तुमको जाने की आज्ञा (इजाजत) देता हूँ तुम महारथी कर्ण को मारो। हे पार्थ ! मैंने जो तुमको व्यर्थ ही दारुण वचन सुनाए-उन पर क्रोध न करना ॥२१॥

सञ्जय उवाच—

ततो धनञ्जयो राजञ्शिरसा प्रणतस्तदा ।
पादौ जग्राह पाणिभ्यां भ्रातुर्ज्येष्ठस्य मारिष ॥२२॥

सञ्जय कहने लगे-हे राजन् ! अब धनञ्जयने शिर झुका दिया और अपने बड़े भ्राता धर्मराज के अपने हाथों से पैर पकड़ लिए।

तमुत्थाप्य ततो राजा परिष्वज्य च पीडितम् ।
मूर्ध्न्युपाघ्राय चैवैनमिदं पुनरुवाच ह ॥२३॥

राजा युधिष्ठिर ने अर्जुन को फिर उठाकर गाढ़ी तरह से आलिङ्गन किया। इसने इसका मस्तक सूंघा और फिर यह वचन कहा ॥२३॥

धनञ्जय महाबाहो मानितोऽस्मि दृढं त्वया ।
माहात्म्यं विजयं चैव भूयः प्राप्नुहि शाश्वतम् ॥२४॥

तत्र भारत कर्णस्य लाघवेन महात्मनः ॥३१॥

तुतुषुर्देवता सर्वाः सिद्धाश्च सह चारणैः ।

हे भारत ! महारथी कर्ण इस हाथ के वेग को देख कर सारे देवता, सिद्ध और चारण गण बड़े ही सन्तुष्ट हुए ॥३१॥

अपूजयन्महेष्वासा धार्तराष्ट्रानरोत्तमम् ॥३२॥

कर्णं रथवरश्रेष्ठं श्रेष्ठं सर्वधनुष्मताम् ।

अब सारे कौरव पक्ष के धनुर्धर योद्धा, नरश्रेष्ठ, रथियों में उत्तम, सारे धनुषधारियों में सर्वोत्तम कर्ण की बड़ी पूजा करने लगे ॥३२॥

ततः कर्णो महाराज ददाह रिपुवाहिनीम् ॥३३॥

कक्षमिद्धो यथा वह्निर्निदाघे ज्वलितो महान् ।

हे महाराज ! अब महारथी कर्ण ने शत्रु सेना को इस तरह दग्ध करना चाहा, जैसे ग्रीष्म काल में बड़ा प्रज्वलित अग्नि, सारे कक्ष (तृण सागर) को क्षण भर में भस्म कर देता है ॥३३॥

ते वध्यमानाः कर्णेन पाण्डवेयास्ततस्ततः ॥३४॥

प्राद्रवन्त रणे भीताः कर्णं दृष्ट्वा महारथम् ।

इधर-उधर जहां देखो वहीं पर कर्ण द्वारा आहत किए हुए पाण्डव वीर जहां पर कर्ण को देखते-वहीं पर भयभीत होकर भागने लगते ॥३४॥

तत्राक्रन्दो महानासीत्पञ्चालानां महारणे ॥३५॥
वध्यतां सायकैस्तीक्ष्णैः कर्णचापवरच्युतैः ।

इस प्रकार इस महायुद्ध में पञ्चाल सेना में बड़ा ही अति नाद खड़ा होगया, क्योंकि वह कर्ण के धनुष से निकले हुए तीक्ष्ण बाणों से बहुत ही घायल हो चुकी थी ॥३५॥

तेन शब्देन वित्रस्ता पाण्डवानां महाचमूः ॥३६॥
कर्णमेकं रणे योधं मेनिरे तत्र शात्रवाः ।

पञ्चालों के इस आक्रन्दन से सारी पाण्डव सेना बहुत ही व्याकुल हो गई। ये सारे शत्रु अब केवल कर्ण को एक मात्र वीर समझने लगे ॥३६॥

तत्राद्भुतं पुनश्चक्रे राधेयः शत्रुकर्शनः ॥३७॥
यदेनं पाण्डवाः सर्वे न शेकुरभिवीक्षितुम् ।

शत्रु नाशक राधा-पुत्र कर्ण ने तो इतना अद्भुत पराक्रम दिखाया, कि सारे पाण्डव वीर इसकी ओर देखने को भी समर्थ नहीं हो सके ॥३७॥

यथौघः पर्वतश्रेष्ठमासाद्याभिप्रदीर्यते ॥३८॥
तथा तत्पाण्डवं सैन्यं कर्णमासाद्य दीर्यते ।

जिस तरह जल प्रवाह पर्वत से टकराकर फट जाता है, उसी तरह पाण्डव सेना भी कर्ण से टकराकर बुरी तरह बिखर जाती थी ॥३८॥

कर्णोऽपि समरे राजन्विधूमोऽग्निरिव ज्वलन् ॥३६॥
दहंस्तथौ महाबाहुः पाण्डवानां महाचमूम् ।

हे राजन्! इस समय महाबाहु कर्ण भी धूम रहित अग्नि की भांति प्रज्वलित हो उठा और और वह इस रणाङ्गण में पाण्डवों की विशाल सेना को भस्म करने लगा ॥३६॥

शिरांसि च महाराज कर्णांश्चैव सकुण्डलान् ॥४०॥
बाहूंश्च वीरो वीराणां चिच्छेद लघु चेषुभिः ।

हे महाराज! अब महावीर कर्ण पाण्डव वीरों के शिर कुंडल सहित कर्ण और भुजाओं को अपने बाणों से शीघ्रता के साथ काट काट कर गिराने लगा ॥४०॥

हस्तिदन्तत्सरून्खड्गान्ध्वजाञ्शक्तीर्हयान्गजान् ॥४१॥
रथांश्च विविधान्राजन्पताका व्यजनानि च ।
अक्षं च युगयोक्त्राणि चक्राणि विविधानि च ॥४२॥
चिच्छेद बहुधा कर्णो योधव्रतमनुष्ठितः ।

हे राजन्! एक महारथीके ढंग को स्वीकार करता हुआ महावीर कर्ण, हाथीदाँत की मूठ वाली तलवार, ध्वजा, शक्ति, अश्व, गज, विविधरथ, पताका, व्यजन (पंखा) अक्ष (धुरे) जूड़े, जूते, और अनेक चक्रों के काट २ कर ढेर लगा दिए ॥४१-४२॥

तत्र भारत कर्णेन निहतैर्गजवाजिभिः ॥४३॥
अगम्यरूपा पृथिवी मांसशोणितकर्दमा ।

हे भारत! कर्ण द्वारा मार कर गिराए हुए हाथी घोड़ों से पृथिवी में रक्त और माँस की कीचड़ हो गई जिसमें चलना भी कठिन हो गया ॥४३॥

विषमं च समं चैव हतैरश्वपदातिभिः ॥४४॥
रथैश्च कुञ्जरैश्चैव न प्राज्ञायत किञ्चन ।

मारकर गिराए हुए अश्व और पैदलों से तथा रथ और गजों से सारी सम भूमि विषम बन गई। उस समय कुछ भी नहीं जाना जाता था ॥४४॥

नापि स्वे न परे योधाः प्राज्ञायन्त परस्परम् ॥४५॥
घोरे शरान्धकारे तु कर्णास्त्रे च विजृंभिते ।

राजा कर्ण के छोड़े हुए बाणों से घोर अन्धकार हो जाने और कर्ण के अस्त्र के फैल जाने पर अपने और शत्रु वीरों को परस्पर कुछ भी ज्ञान नहीं रह गया ॥४५॥

राधेयचापनिर्मुक्तैः शरैः काञ्चनभूषणैः ॥४६॥
संछादिता महाराज पाण्डवानां महारथाः ।

हे महाराज! राधा-पुत्र कर्ण के धनुष से निकले हुए सुवर्ण विभूषित बाणों से सारे पाण्डव महारथी बहुत ही आच्छादित हो गये ॥४६॥

ते पाण्डवेयाः समरे राधेयेन पुनः पुनः ॥४७॥
अभज्यन्त महाराज यतमाना महारथाः ।

हे महाराज ! पाण्डव महारथी यद्यपि बड़ा ही बलपूर्वक प्रयत्न कर रहे थे, तो भी राधा-पुत्र कर्ण ने उनको बार २ रण से भगा दिया ॥४७॥

मृगसंघान्यथा क्रुद्धः सिंहो द्रावयते वने ॥४८॥
पञ्चालानां रथश्रेष्ठान्द्रावयञ्शात्रवांस्तथा ।

जिस तरह क्रोध में भरा हुआ सिंह मृग यूथ को मार २ कर भगा देता है, उसी तरह उसने पञ्चालों के बड़े २ शत्रु भूत महारथियों को अपने सामने से भगा दिया ॥४८॥

कर्णस्तु समरे योधांस्त्रासयन्सुमहायशाः ॥४६॥
कालयामास तत्सैन्यं यथा पशुगणान्वृकः ।

महायशस्वी कर्ण ने रण में सारे योद्धाओं को बड़ा ही दुःखी कर दिया । वह पाण्डव सेना को इस तरह धकेल ले गया-जैसे भेड़िया, भेड़ों के झुण्ड को भगा देता है ॥४६॥

दृष्ट्वा तु पाण्डवीं सेनां धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखीम् ॥
तत्राजग्मुर्महेष्वासा रुवन्तो भैरवान्रवान् ।

जब महाधनुर्धर धृतराष्ट्र वीरों ने पाण्डव सेना को युद्ध से पराङ्मुख देखा तो वे भी घोर भयानक सिंहनाद करते हुए पाण्डव सेना पर टूट पड़े ॥५०॥

दुर्योधनो हि राजेन्द्र मुदा परमया युतः ॥५१॥
वादयामास संहृष्टोः नानावाद्यानि सर्वशः ।

हे राजेन्द्र ! इस समय राजा दुर्योधन बड़े ही आनन्द में भरे हुए थे। वे उल्लास में भर कर सब ओर अनेक प्रकार के बाजे बजवाने लगे ॥५१॥

पञ्चालाऽपि महेष्वासा भग्नास्तत्र नरोत्तमाः ॥५२॥
न्यवर्तन्त यथा शूरं मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ।

यद्यपि पाञ्चालों के बड़े २ महा धनुर्धर वीर इस समय भाग गए थे; परन्तु वे फिर मृत्यु का भय छोड़कर शूर वीर कर्ण पर टूट पड़े ॥५२॥

तान्निवृत्तान्रणे शूरान्राधेयः शत्रुतापनः ॥५३॥
अनेकशो महाराज बभञ्ज पुरुषर्षभः ।

हे महाराज ! जब फिर पञ्चाल वीर लौटे-तो उन वीरों को शत्रुतापी राधा-पुत्र पुरुष प्रवीर कर्ण ने फिर भगाया । इस तरह वे बार २ लौटते थे और कर्ण बार २ भगा देता था ॥५३॥

तत्र भारत कर्णेन पञ्चाला विंशती रथाः ॥५४॥
निहताः सायकैः क्रोधाच्चेदयश्च परं शताः ।

हे भारत ! इस समय कर्ण ने पञ्चालों के बीस महारथी मार लिए और क्रोध-पूर्वक बाण छोड़ कर चेदि वीरों के तो सैंकड़ों से भी अधिक महारथी मार गिराए ॥५४॥

कृत्वा शून्यान्रथोपस्थान्वाजिपृष्ठांश्च भारत ॥५५॥
निर्मनुष्यान्गजस्कन्धान्पादातांश्चैव विद्रुतान् ।

आदित्य इव मध्याह्ने दुर्निरीक्ष्यः परन्तपः ॥५६॥
कालान्तकवपुः शूरः सूतपुत्रोऽभ्यराजत ।

हे भारत ! महारथी कर्ण ने रथ के स्थान रथियों से शून्य करदिए । अश्वों की पीठ अश्वारोहियों से रहित बनादी, गजों के स्कन्ध गजारोहियों से शून्य कर दिए और पैदल सैनिकों को भगादिया । इस समय परन्तप कर्ण, मध्यान्हकाल के सूर्य की भांति दुर्निरीक्ष्य हो रहा था शूरवीर सूत पुत्र कर्ण का शरीर अब कालान्तक की भांति चमक रहा था ॥५५-५ ॥

एवमेतन्महाराज नरवाजिरथद्विपान् ॥५७॥
हत्वा तस्थौ महेष्वासः कर्णोऽरिगणसूदनः ।

हे महाराज ! इस तरह महाधनुर्धर, शत्रुगण नाशक, महारथी कर्ण, शत्रु के वीर, अश्व, रथी और गजारोहियों को मार २ कर रणाङ्गण में निर्भीक स्थित होगया ॥५७॥

यथा भूतगणान्हत्वा कालस्तिष्ठेन्महाबलः ॥५८॥
तथा स सोमकान्हत्वा तस्थावेको महारथः ।

जिस तरह प्राणी समूह का विनाश करता हुआ महाबली कालान्तक निर्भीक भाव से स्थित होता है, उसी तरह सोमक वीरों को मारता हुआ, महारथी कर्ण, निडर रणाजिर में स्थित था ॥५८॥

तत्राद्भुतमपश्याम पञ्चालानां पराक्रमम् ॥५६॥
वध्यमानाऽपि यत्कर्णं नाजहू रणमूर्धनि ।

हे राजन्! हमने तो वहां पञ्चालों का यह एक अद्भुत ही परा-
क्रम देखा, कि महारथी कर्ण ने उनको अत्यन्त मार २ कर बिछा
दिया परन्तु उन्होंने भी रण में कर्ण का पीछा न छोड़ा ॥५६॥

राजा दुःशासनश्चैव कृपः शारद्वतस्तथा ॥६०॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा शकुनिश्च महाबलः ।
न्यहनत्पाण्डवीं सेनां शतशोऽथ सहस्रशः ॥६१॥

राजादुर्योधन, दुःशासन शारद्वान् पुत्र कृपाचार्य, अश्वत्थामा
कृतवर्मा, और महाबली शकुनि ने भी सैंकड़ों हज़ारों की सङ्ख्या
में पाण्डवी सेना को मार २ कर बिछा दिया ॥६०-६१॥

कर्णपुत्रौ तु राजेन्द्र भ्रातरौ सत्यविक्रमौ ।
निजघ्नाते बलं क्रुद्धौ पाण्डवानामितस्ततः ॥६२॥
तत्र युद्धं महाच्चासीत्क्रूरं विशसनं महत् ।

हे राजेन्द्र! इसी समय कर्ण के दोनों पुत्र, जो सच्चे पराक्रमी
भ्राता-थे क्रोध में भर कर इधर उधर पाण्डव सेना को मार २
कर बिछाने लगे इस समय बड़ा घोर और बड़ा विनाशकारी युद्ध
होरहा था ॥६२॥

तथैव पाण्डवाः शूरा धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ॥६३॥
द्रौपदेयाश्च संक्रुद्धा अभ्यघ्नंस्तावकं बलम् ।

हे राजन्! इसी तरह शूरवीर पाण्डव, धृष्टद्युम्न, शिखण्डी,
क्रोधातुर द्रौपदी पुत्र भी तुम्हारी सेना का विध्वंस कर रहे थे ॥६३॥

एवमेष क्षयो वृत्तः पाण्डवानां ततस्ततः ॥
तावकानामपि रणे भीमं प्राप्य महाबलम् ॥६४॥
इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

हे भारत ! जिधर देखो उधर ही इस प्रकार पाण्डव सेना का विनाश हो रहा था, और तुम्हारी सेना की भी यही दशा थी, विशेष कर भीमसेन के समीप तो कौरव सेना का बहुत ही विध्वंस हो रहा था ॥६४॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में घोर युद्ध के
वर्णन का अठत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।



उनासीवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अर्जुनस्तु महाराज हत्वा सैन्यं चतुर्विधम्।
सूतपुत्रं च संक्रुद्धं दृष्ट्वा चैव महारणे ॥१॥
शोणितोदां महीं कृत्वा मांसमज्जास्थिपंकिलाम्।
मनुष्यशीर्षपाषाणां हस्त्यश्वकृतरोधसम् ॥२॥
शूरास्थिचयसंकीर्णां काकगृध्रानुनादिताम्।
छत्रहंसप्लवोपेतां वीरवृक्षापहारिणीम् ॥३॥

हारपद्मसाकरवतीमुष्णीषवरफेनिलाम् ।
धनुःशरध्वजोपेतां नरक्षुद्रकपालिनीम् ॥४॥
चर्मवर्मभ्रमोपेतां रथोडुपसमाकुलाम् ।
जयैषिणां च सुतरां भीरूणां च सुदुस्तराम् ॥५॥
नदीं प्रावर्तयित्वा च बीभत्सुः परवीरहा ।
वासुदेवमिदं वाक्यमब्रवीत्पुरुषर्षभः ॥६॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! जब अर्जुन ने देखा, कि पाण्डवों की चतुरङ्गिणी सेना का विध्वंस उड़ा दिया है और सूतपुत्र महावीर कर्ण इस महारण में क्रोध में भरे खड़े हैं। तो अर्जुन ने रक्त की नदी सारी रणभूमि में फैला दी इस समय मांस मज्जा हड्डी से परिपूर्ण हुई पृथिवी में कीचड़ होगई है। इस नदी में मनुष्यों के शिर पाषाणों की तरह लुढ़कने लगे। हाथी और अश्वों के बट बने, यह शूरवीरों की अस्थियों के समूह से भरी हुई थी, जिस में कव्वे और गीध आदि पक्षी जल जन्तुओं की भांति शब्द करने लगे। वीरों के छत्र हंसों के तुल्य तैरते फिरते थे यह वीररूपी वृक्षों को बहा रही है। वीरों के हार कमल नाल से दिखाई देते हैं, श्वेत पगड़ी झागों के समान प्रतीत होती है। धनुष, शर और ध्वजा की तरङ्गे तथा मनुष्यों के छोटे २ कपालों की लहरें सी उठ रही थीं। ढाल और कवच इस नदी के आवर्त थे और बहते हुए रथ नौका से प्रतीत होते थे। विजयाभिलाषी वीरों को तैरने में सुलभ और कायरों को यह नदी बड़ी ही दुस्तर था।

इस प्रकार शत्रुनाशक पुरुष प्रवीर अर्जुन रणाङ्गण में रक्त की नदी बहा कर वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण से इस प्रकार बोले ॥१-६॥

अर्जुन उवाच—

एष केतू रणे कृष्ण सूतपुत्रस्य दृश्यते।
भीमसेनादयश्चैते योधयन्ति महारथम् ॥७॥

अर्जुन ने कहा—हे कृष्ण! सूतपुत्र कर्ण की रण में यह ध्वजा दिखाई देरही है। इस महारथी कर्ण से भीमसेन आदि योद्धा युद्ध करते हुए दिखाई देरहे हैं ॥७॥

एते द्रवन्ति पञ्चालाः कर्णत्रस्ता जनार्दन।
एष दुर्योधनो राजा श्वेतच्छत्रेण धार्यता ॥८॥
कर्णेन भग्नान्पञ्चालान्द्रावयन्बहु शोभते।

हे जनार्दन! कर्ण से भयभीत हुए ये पञ्चाल वीर भाग रहे हैं इधर श्वेत छत्र धारण किए हुए राजा दुर्योधन सुशोभित हो रहे हैं, जो कर्ण के डर से भागते हुए पञ्चाल वीरों को और भी भगा रहा है ॥८॥

कृपश्च कृतवर्मा च द्रौणिश्चैव महारथः ॥९॥
एते रक्षन्ति राजानं सूतपुत्रेण रक्षिताः।
अवध्यमानास्तेऽस्माभिर्घातयिष्यन्ति सोमकान् ॥१०॥

कृपाचार्य, कृतवर्मा, और महारथी अश्वत्थामा सूतपुत्र कर्ण द्वारा सुरक्षित हुए राजा दुर्योधन की रक्षा में तत्पर हैं। हम लोग

इन पर कोई आघात नहीं कर पाते हैं, और ये सोमक वीरों को मार २ कर बिछा रहे हैं ॥९-१०॥

एष शल्यो रथोपस्थे रश्मिसंचारकोविदः ।
सूतपुत्ररथं कृष्ण वाहयन्बहु शोभते ॥११॥

हे कृष्ण ! अश्व हांकने में कुशल मद्रराज शल्य, रथ के आसन पर बैठा है, यह सूतपुत्र कर्ण के रथ को चलाता हुआ कितना सुशोभित होरहा है ॥११॥

तत्र मे बुद्धिरुत्पन्ना वाहयात्र महारथम् ।
नाहत्वा समरे कर्णं निवर्तिष्ये कथञ्चन ॥१२॥

हे महाभाग ! अब मेरी बुद्धि में तो यही आता है, कि तुम मुझे कर्ण के समीप लेचलो । मैं रण में कर्ण के मारे बिना अब कभी नहीं लौटूंगा ॥१२॥

राधेयो ह्यन्यथा पार्थान्सृंजयांश्च महारथान् ।
निःशेषान्समरे कुर्यात्पश्यतां नो जनार्दन ॥१३॥

हे जनार्दन ! यदि महारथी कर्ण को नहीं मारा गया-तो हमारे देखते २ राधा पुत्र कर्ण, रण में सारे पाण्डव, वीर और सृञ्जय महारथियों को निःशेष कर देगा ॥१३॥

ततः प्रायाद्रथेनाशु केशवस्तव वाहिनीम् ।
कर्णं प्रति महेष्वासं द्वैरथे सव्यसाचिना ॥१४॥

अर्जुन के इतना कहने पर श्रीकृष्ण ने उधर ही वेग से रथ चलाया, जिधर महाधनुर्धर कर्ण स्थित थे और अर्जुन के साथ युद्ध की उत्सुकता प्रकट कर रहे थे ॥१४॥

प्रयातश्च महाबाहुः पाण्डवानुज्ञया हरिः ।
आश्वासयन्नथेनैव पाण्डुसैन्यानि सर्वशः ॥१५॥

महाबाहु, भगवान् कृष्ण, अर्जुन की प्रेरणा से अपनी सारी पाण्डव सेना को आश्वासन सा देते हुए उधर ही चल दिए ॥१५॥

रथघोषः स संग्रामे पाण्डवेयस्य सम्बभौ ।
वासवाशनितुल्यस्य मेघौघस्येव मारिष ॥१६॥

हे आर्य ! पाण्डु पुत्र अर्जुन का इस समय रथघोष, इस तरह सुशोभित होने लगा, जैसे इन्द्र वज्र के तुल्य कड़कने वाले मेघ समूह में गर्जना हो रही हो ॥१६॥

महता रथघोषेण पाण्डवः सत्यविक्रमः ।
अभ्ययादप्रमेयात्मा निर्जयंस्तव वाहिनीम् ॥१७॥

अब सत्य पराक्रमी, अपरिमित बलशाली, पाण्डु पुत्र अर्जुन अपने विशाल रथ घोष से तुम्हारी सेना को जीतता हुआ कर्ण की ओर बढ़ा ॥१७॥

तमायान्तं समीक्ष्यैव श्वेताश्वं कृष्णसारथिम् ।
मद्रराजोऽब्रवीत्कर्णं केतुं दृष्ट्वा महात्मनः ।

जब मद्रराज शल्य ने कृष्ण को सारथि बनाये हुए श्वेत अश्वों के रथ में स्थित अर्जुन को अपनी ओर आते देखा तो महात्मा अर्जुन की ध्वजा को देखकर वह महारथी कर्ण से कहने लगा ॥१८॥

अयं स रथ आयाति श्वेताश्वः कृष्णसारथिः ।
निघ्नन्नमित्रान्ससरे यं कर्ण परिपृच्छसि ॥१६॥

हे कर्ण ! जिस को तुम बार २ पूछ रहे थे वह श्वेत अश्वों का वाहन वाला, कृष्ण को सारथि बनाये हुए, शत्रुवीरों का विध्वंस उड़ाता हुआ, रथ स्थित अर्जुन, इधर ही आरहा है ॥१६॥

एष तिष्ठति कौन्तेयः संस्पृशन्गाण्डिवं धनुः ।
तं हनिष्यसि चेदद्य तत्र श्रेयो भविष्यति ॥२०॥

हे कर्ण ! यह देखो ? गाण्डीव धनुष को खैंचता हुआ अर्जुन रथ में स्थित है। यदि आज तुमने अर्जुन को मार लिया-तो बस ? तुम्हारा कल्याण ही कल्याण है ॥२०॥

धनुर्ज्याचन्द्रताराङ्का पताका किङ्किणीयुता ।
पश्य कर्णार्जुनस्यैषा सौदामन्यम्बरे यथा ॥२१॥

हे कर्ण ! तुम देखो ? कि अर्जुन के धनुष की प्रत्यञ्चा चन्द्र और तारों से युक्त है, इसकी ध्वजा में किङ्किणी लगी हुई हैं। यह आकाश में इस तरह फड़फड़ा रही हैं, जैसे मेघों में बिजली फड़फड़ाती है ॥२१॥

एष ध्वजाग्रे पार्थस्य प्रेक्षमाणः समन्ततः ।
दृश्यते वानरो भीमो वीराणां भयवर्धनः ॥२२॥

यह देखो ? अर्जुन की ध्वजा में वानर का कैसा उत्तम चिन्ह है, जो सब ओर देख रहा है । यह भयानक वानर वीरों के चित्त में भी भय उत्पन्न कर देता है ॥२२॥

एतच्चक्रं गदा शङ्खः शार्ङ्गं कृष्णस्य च प्रभो ।
दृश्यते पाण्डवरथे वाहयानस्य वाजिनः ॥२३॥

हे प्रभो ! अर्जुन के रथ में अश्वों को छेदते हुए श्रीकृष्ण के ये चक्र, गदा, शङ्ख, और धनुष दिखाई देरहे हैं ॥२३॥

एतत्कूजति गाण्डीवं विसृष्टं सव्यसाचिना ।
एते हस्तवता मुक्ता घ्नन्त्यमित्रान्शिताः शराः ॥२४॥

सव्यसाची अर्जुन द्वारा खैंचे हुए गाण्डीव धनुष का यह शब्द होरहा है । इस गाण्डीव धनुष द्वारा महाबाहु अर्जुन के छोड़े हुए तीक्ष्ण बाण, शत्रुओं को मार २ कर बिछा रहे हैं ॥२४॥

विशालायतताम्राक्षैः पूर्णचन्द्रनिभाननैः ।
एषा भूः कीर्यते राज्ञां शिरोभिरपलायिनाम् ॥२५॥

युद्ध से नहीं हटने वाले वीरों के विशाल आंखों वाले पूर्ण चन्द्र के सदृश सुन्दर, मस्तकों से अर्जुन ने भूमि को व्याप्त कर दिया ॥२५॥

एते परिघसङ्काशाः पुण्यगन्धानुलेपनाः ।
उद्धृता रणशूराणां पात्यन्ते सायुधा भुजाः ॥२६॥

पवित्र गन्ध से चर्चित परिघ (घन) के आकार धारी रण में शूरवीरों की शस्त्र सहित भुजाएँ काट २ कर अर्जुन ने गिरादी ॥२६॥

निरस्तजिह्वा नेत्रांता वाजिनः सह सादिभिः ।
पतिताः पात्यमानाश्च क्षितौ क्षीणा विशेरते ॥२७॥

अर्जुन ने अपने सवारों के सहित बहुत से अश्वों को मार डाला जिनकी आंखें और जिह्वा निकल पड़ी यह देखो ? गिरते हुए या गिरे हुए, क्षीण अश्व, पृथिवी में सदा के लिए सो रहे हैं ॥२७॥

एते पर्वतशृङ्गाणां तुल्या हैमवता गजाः ।
संछिन्नकुम्भाः पार्थेन प्रपतन्त्यद्रयो यथा ॥२८॥

पर्वत के शिखर के समान ऊंचे हिमालय के गजों के मस्तक अर्जुन ने फोड़ दिए, जो पड़े हुए ऐसे दिखाई देते हैं जैसे पर्वत गिरे हुए हों ॥२८॥

गन्धर्वनगराकारा यथा वाते नरेश्वराः ।
विमानादिव पुण्यान्ते स्वर्गिणो निपतन्त्यमी ॥२९॥

गन्धर्व नगर के समान विशाल रथों से नर प्रवीर इस तरह गिर पड़े हैं, जैसे वायु के साथ २ पुण्य के क्षय होने पर विमानों से स्वर्ग के देवता गिरने लगते हैं ॥२९॥

व्याकुलीकृतमत्यर्थं परसैन्यं किरीटिना ।
नानामृगसहस्राणां यूथं केसरिणा यथा ॥३०॥

हे राजन ! किरीट धारी अर्जुन ने शत्रुसेना इस तरह अत्यन्त व्याकुल कर दी, जैसे सहस्रों मृगों को एक सिंह मार कर भगा देता है ॥३०॥

त्वामभिप्रेप्सुरायाति कर्ण निघ्नन्वरान्रथान् ।
असह्यमानो राधेय तं याहि प्रति भारतम् ॥३१॥

हे कर्ण ! यह अर्जुन, उत्तम २ योद्धाओं को गिराता हुआ तुम से युद्ध करने भागा चला आता है। हे राधेय ! यह अर्जुन बड़ा असह्य है, तुमभी भरतवंशश्रेष्ठ इस अर्जुन पर आक्रमण करो॥३१॥

एषा विदीर्यते सेना धार्तराष्ट्री समन्ततः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निघ्नतः शात्रवान्बहून् ॥३२॥

यह अर्जुन शत्रुओं को मार २ कर बिछा रहा है, इसके भय से सारी कौरव सेना, सब ओर विदीर्ण होकर भाग रही है ॥३२॥

वर्जयन्सर्वसैन्यानि त्वरते हि धनञ्जयः ।
त्वदर्थमिति मन्येऽहं यथास्योदीर्यते वपुः ॥३३॥

अर्जुन सारी सेनाओं को छोड़ कर तुम्हारी ओर वेग से बढ़ा चला आता है। मेरी सम्मति में यह तुमसे लड़ने को ही बढ़ रहा है, यह इसके शरीर के उठान से ही प्रतीत होरहा है ॥३३॥

न ह्यवस्थास्यते पार्थो युयुत्सुः केन चित्सह ।
त्वामृते क्रोधदीप्तो हि पीड्यमाने वृकोदरे ॥३४॥

अब अर्जुन युद्ध के लिए उत्सुक होरहा है, उसे तुम्हारे विना कोई भी नहीं रोक सकता है, वृकोदर भीमसेन के पीड़ित होने के कारण तो यह और भी झल्ला रहा है ॥३४॥

विरथं धर्मराजं तु दृष्ट्वा सुदृढविक्षतम् ।
शिखण्डिनं सात्यकिं च धृष्टद्युम्नं च पार्षतम् ॥३५॥
द्रौपदेयान्युधामन्युमुत्तमौजसमेव च ।
नकुलं सहदेवं च भ्रातरौ द्वौ समीक्ष्य च ॥३६॥
सहसैकरथः पार्थस्त्वामभ्येति परन्तपः ।
क्रोधरक्तेक्षणः क्रुद्धो जिघांसुः सर्वपार्थिवान् ॥३७॥

शत्रुतापी अर्जुन अकेला ही धर्मराज को रथ हीन, और क्षत विक्षत तथा शिखण्डी, सात्यकि, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न द्रौपदी पुत्र युधामन्यु, उत्तमौजा और दोनों भाई नकुल सहदेव को आहत देखकर एक दम तुम पर आक्रमण करने को आरहा है इसकी आंखें क्रोध से लाल हो रही हैं। यह क्रोधातुर, इस समय सारे राजाओं को मार देना चाहता है ॥३५-३७॥

त्वरितोऽभिपतत्यस्मांस्त्यक्त्वा सैन्यान्यसंशयम् ।
त्वं कर्ण प्रतियाह्येनं नास्त्यन्यो हि धनुर्धरः ॥३८॥
न तं पश्यामि लोकेऽस्मिंस्त्वत्तो ह्यन्यं धनुर्धरम् ।
अर्जुनं समरे क्रुद्धं यो वेलामिव धारयेत् ॥३९॥

यह बड़े वेग से तुम पर आक्रमण करेगा और अन्य सारी सेनाओं को छोड़ देगा। हे कर्ण! अब तुम इसके सन्मुख चलो तुम्हारे सिवा अन्य कोई इसके रोकने में समर्थ नहीं है। मैं तो तुम्हारे सिवा अन्य किसी धनुर्धर वीर को नहीं देखता, जो रण में क्रोधातुर अर्जुन को समुद्र को वेला की भांति रोक सके ॥३८-३६॥

न चास्य रक्षां पश्यामि पार्श्वतो न च पृष्ठतः।
एक एवाभियाति त्वां पश्य साफल्यमात्मनः ॥४०॥

मैं तो इसके समीप आगे पीछे अगल बगल में किसी रक्षक को भी नहीं देखता। यह तो अकेला ही तुम पर झपटा चला आता है। इस पर वीरता की सफलता देखो ॥४०॥

त्वं हि कृष्णौ रणे शक्तः संसाधयितुमाहवे।
तवैव भारो राधेय प्रत्युद्याहि धनञ्जयम् ॥४१॥

हे कर्ण! तुम ही इस घोर संग्राम में कृष्ण और अर्जुन का मुक़ाबिला कर सकते हो। यह तो अब सारा भार तुम पर ही है अब तुम अर्जुन के सन्मुख चलो ॥४१॥

समानो ह्यसि भीष्मेण द्रोणद्रौणिकृपेण च।
सव्यसाचिनमायान्तं निवारय महारणे ॥४२॥

तुम, भीष्म, द्रोण, अश्वत्थामा, और कृपाचार्य के सदृश महावीर हो। इस महा रण में आक्रमण करते हुए सव्यसाची अर्जुन को तुम रोको ॥४२॥

लेलिहानं यथा सर्पं गर्जन्तमृषभं यथा ।
वनास्थितं यथा व्याघ्रं जहि कर्ण धनञ्जयम् ॥४३॥

अर्जुन सर्प के सदृश जीभ लपलपाता है और वृषभ की भांति गर्जना करता है। हे कर्ण! वन में स्थित व्याघ्र की भांति तुम, अब धनञ्जय अर्जुन को मार दिखाओ ॥४३॥

एते द्रवन्ति समरे धार्तराष्ट्रा महारथाः ।
अर्जुनस्य भयात्तूर्णं निरपेक्षा जनाधिपाः ॥४४॥
द्रवतामथ तेषां तु नान्योऽस्ति युधि मानवः ।
भयहा यो भवेद्वीरस्त्वामृते सूतनन्दन ।
एते त्वां कुरवः सर्वे द्वीपमासाद्य संयुगे ॥४५॥
धिष्ठिताः पुरुषव्याघ्र त्वत्तः शरणकांक्षिणः ।

हे राजन्! ये धृतराष्ट्र पक्ष के महारथी, राजा अर्जुन के भय से बेलाग भाग रहे हैं। इन भागते हुए वीरों के रोकने में युद्ध में कोई समर्थ नहीं है। हे सूत नन्दन! तुम्हारे बिना कोई भी इनके भय का नाशक नहीं है! ये सारे कौरव इस रण में तुमको द्वीप (रक्षक) समझ रहे हैं। हे पुरुष व्याघ्र! ये तुम्हारे ही शरण की अभिलाषा से रणभूमि में खड़े हैं ॥४५॥

वैदेहाम्बष्ठकाम्बोजास्तथा नग्नजितस्त्वया ॥४६॥
गान्धाराश्च यथा धृत्या जिताः संख्ये सुदुर्जयाः ।
तां धृतिं कुरु राधेय ततः प्रत्येहि पाण्डवम् ॥४७॥

हे राधेय! वैदेह, अम्बष्ठ, काम्बोज, नग्नजित, और गान्धार ये रण में बड़े दुर्जय थे, परन्तु तुमने जिस धैर्यपूर्वक वल के साथ इन को जीता-उसी धैर्य का अब भी अवलम्बन करो। अब तुम अर्जुन पर आक्रमण करो ॥४६-४७॥

वासुदेवं च वार्ष्णेयं प्रीयमाणं किरीटिना।
प्रत्युद्याहि महाबाहो पौरुषे महति स्थितः ॥४८॥

हे महाबाहो! अब तुम बड़ा उत्तम पुरुषार्थ ग्रहण करो-अर्जुन पर अत्यन्त प्रसन्न वृष्णिवंशश्रेष्ठ वसुदेव पुत्र श्रीकृष्ण पर आक्रमण करो ॥४८॥

कर्ण उवाच—

प्रकृतिस्थोऽसि मे शल्य इदानीं संमतस्तथा।
प्रतिभासि महाबाहो मा भैषीस्त्वं धनञ्जयात् ॥४९॥
पश्य बाह्वोर्बलं मेऽद्य शिक्षितस्य च पश्य मे।
एकोऽद्य निहनिष्यामि पाण्डवानां महाचमूम् ॥५०॥

कर्ण बोले—हे महाबाहो इस समय तुम अपनी उत्तम प्रकृति में स्थित हो। इस समय मेरे साथ सहमत प्रतीत होते हो। हे शल्य! तुम अर्जुन से भय मत करो। आज तुम मेरे बाहुओं का बल देखना तथा मेरी अस्त्र विद्या की शिक्षा का आदर्श देखना। मैं अकेला ही पाण्डवों की महासेना का विध्वंस उड़ादूंगा ॥४९-५०॥

कृष्णौ च पुरुषव्याघ्र ततः सत्यं ब्रवीमि ते।
नाहत्वा युधि तौ वीरौ व्यपयास्ये कथञ्चन ॥५१॥

शिष्ये वा निहतस्ताभ्यामनित्यो हि रणे जयः ।
कृतार्थोऽद्य भविष्यामि हत्वा वाप्यथवा हतः ॥५२॥

हे पुरुष व्याघ्र ! मैं तुमसे सत्य कहता हूँ, कि आज मैं श्रीकृष्ण और अर्जुन के मारे विना ! कभी रण से पीछे नहीं हटूंगा। हां ? यह हो सकता है, कि वे मुझे मारलें क्योंकि रण में जय निश्चित नहीं होती, मैं आज उनको मार कर या स्वयं मर कर कृतार्थ हो जाना चाहता हूं ॥५२॥

शल्य उवाच—

अजय्यमेनं प्रवदन्ति युद्धे महारथाः कर्ण रथप्रवीरम् ।
एकाकिनं किमु कृष्णाभिगुप्तं विजेतुमेनं क इहोत्सहेत ॥५३॥

शल्य ने कहा—हे कर्ण ! बड़े २ महारथी, रथिप्रवीर अर्जुन को रण में अजेय बताते हैं। अकेले अर्जुन को भी कोई नहीं जीत सकता है, फिर श्रीकृष्ण से सुरक्षित अर्जुन के जीतने में तो कौन समर्थ हो सकता है ॥५३॥

कर्ण उवाच—

नैतादृशो जातु बभूव लोके रथोत्तमो यावदुपश्रुतं नः ।
तमीदृशं प्रतियोत्स्यामि पार्थं महाहवे पश्य च पौरुषं मे ॥५४

कर्ण ने कहा—हे शल्य ! यह ठीक है कि हमने भी महारथी अर्जुन के बराबर पराक्रमी वीर नहीं सुना है परन्तु मैं भी ऐसे ही शक्तिशाली वीर से आज रण में युद्ध करूंगा-तुम मेरे पराक्रम को देखना ॥५४॥

रणे चरत्येष रथप्रवीरः सितैर्हयैः कौरवराजपुत्रः ।
स वाद्य मां नेष्यति कृच्छ्रमेतत्कर्णस्यान्तादेतदन्तास्तु सर्वे ॥

कुरुवंश श्रेष्ठ, महारथी अर्जुन आज रण में श्वेत अश्वों से निर्भय घूम रहा है। आज या तो यह मुझ कर्ण को मृत्यु के अधीन कर देता है या-मैं ही इसका अन्तक बन जाता हूँ। इस अर्जुन के अन्त से ही सारे पाण्डव वीरों का अन्त हो जावेगा ॥५५॥

अस्वेदिनौ राजपुत्रस्य हस्ताववेपमानौ जातकिणौ बृहन्तौ ।
दृढायुधः कृतिमान् क्षिप्रहस्तो न पाण्डवेयेन समोऽस्ति योधः

इस राज पुत्र के हाथों में कभी पसीना नहीं आता और न कभी कांपते हैं। इसकी विशाल भुजाओं में धनुष की डोरी के चिन्ह हो रहे हैं। यह दृढ़ धनुपधारी, युद्ध विद्या में कुशल, शीघ्र हाथ चलाने वाला, है। पाण्डु पुत्र अर्जुन के समान अन्य कोई वीर नहीं है-यह सत्य बात है ॥५६॥

गृह्णात्यनेकानपि कङ्कपत्रानेकं यथा तान्प्रति योज्य चाशु ।
तेक्रोशमात्रे निपतन्त्यमोघाः कस्तेन योधोऽस्ति समः पृथिव्याम्

अर्जुन, कङ्क पत्रधारी अनेक बाणों को एक बाण के समान झटपट धनुष पर चढ़ा कर इस वेग से फैंकते हैं, कि वे बड़ी सफलता के साथ एक कोश पर जाकर गिरते हैं। इस महाबली अर्जुन के तुल्य पृथिवी पर कौन योद्धा होगा ॥५७॥

अतोषयत्खाण्डवे यो हुताशं कृष्णद्वितीयोऽतिरथस्तरस्वी।
लेभे चक्रं यत्र कृष्णो महात्मा धनुर्गाण्डीवं पाण्डवः सव्यसाची

इस वेगशाली महारथी अर्जुन ने कृष्ण को साथ लेकर खाण्डव वन में अग्नि को सन्तुष्ट किया। उसी स्थान पर श्रीकृष्ण को सुदर्शन चक्र और सव्यसाची पाण्डु पुत्र को यह गाण्डीव धनुष प्राप्त हुआ॥५८॥

श्वेताश्वयुक्तं च सुघोषमुग्रं रथं महाबाहुरदीनसत्त्वः।
महेषुधी चाक्षये दिव्यरूपे शस्त्राणि दिव्यानि च हव्यवाहात्

महाबाहु, महामनस्वी, अर्जुन को वहीं पर अग्नि ने सुन्दर ध्वनि करने वाला, श्वेत अश्वों से युक्त उग्र रथ प्रदान किया तथा अक्षय दिव्य रूपधारी दो तूणीर और अनेक दिव्य शस्त्र उन्हें प्राप्त हुए॥५९॥

तथेन्द्रलोके निजघान दैत्यानसङ्ख्येयान् कालकेयांश्च सर्वान्
लेभे शङ्खं देवदत्तं स्म तत्र को नाम तेनाभ्यधिकः पृथिव्याम्

इस अर्जुन ने इन्द्र लोक में असङ्ख्य काल के संज्ञक दैत्य मार गिराए। वहीं पर इसको देवदत्त नामक शङ्ख की प्राप्ति हुई इस वीरता को देखकर कौन व्यक्ति अर्जुन से अधिक पृथिवी में वीर माना जासकता है॥६०॥

महादेवं तोषयामास योऽस्त्रैः साक्षात्सुयुद्धेन महानुभावः।
लेभे ततः पाशुपतं सुघोरं त्रैलोक्यसंहारकरं महास्त्रम्॥६१॥

इसी महानुभाव, अर्जुन ने बड़ा अच्छा युद्ध करके अपने अस्त्रों से साक्षात् भगवान् शङ्कर को सन्तुष्ट किया। उन्हीं शङ्कर से त्रिलोकी के संहार में समर्थ, घोर पाशुपत नामक महान् अस्त्र अर्जुन ने प्राप्त किया है ॥६१॥

पृथक्पृथग्लोकपालाः समेता ददुर्महास्त्राण्यप्रमेयाणि सङ्ख्ये।
यैस्ताञ्जघानाशु रणे नृसिंहः स कालकेयानसुरान्समेतान् ॥६२

इस नरश्रेष्ठ, अर्जुन ने जिन महास्त्रों से रण में झटपट कालकेय असुरों को मारगिराया, उन शक्ति युक्त अस्त्रों को इकट्ठे ही सारे लोक पालों ने इसे प्रदान किया था ॥६२॥

तथा विराटस्य पुरे समेतान्सर्वानस्मानेकरथेन जित्वा।
जहार तद्गोधनमाजिमध्ये वस्त्राणि चादत्त महारथेभ्यः ॥६३॥

विराट नगर में गोहरण के समय इस अकेले अर्जुन ने हम सब को जीत कर रण के मध्य में हमसे अपना गोधन छीन लिया, और हम सब महारथियों के वस्त्र तक छीन लिए ॥६३॥

तमीदृशं वीर्यगुणोपपन्नं कृष्णद्वितीयं परमं नृपाणाम्।
तमाह्वयन्साहसमुत्तमं वै जाने स्वयं सर्वलोकस्य शल्य ॥६४।

हे शल्य ! इस प्रकार के पराक्रम से सुसम्पन्न, कृष्ण के साथी मनुष्यों में अद्वितीय, अर्जुन को युद्ध में ललकार कर सब लोगों से अधिक हम अपना कितना साहस प्रकट कर रहे हैं ॥६४॥

अनन्तवीर्येण च केशवेन नारायणेनाप्रतिमेन गुप्तः ।
वर्षायुतैर्यस्य गुणा न शक्या वक्तुं समेतैरपि सर्वलोकैः ॥६५

अपरिमित शक्तिशाली, महापराक्रमी, भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन सुरक्षित है ! यदि संसार के सारे मनुष्य, दशों हजार वर्ष तक इसके गुण की गाथा गाते रहें, तो भी वे इसका पार नहीं पा सकते हैं ॥६५॥

महात्मनः शङ्खचक्रासिपाणेर्विष्णोर्जिष्णोर्वसुदेवात्मजस्य ।
भयं न मे जायते साध्वसं च दृष्ट्वा कृष्णावेकरथे समेतौ ॥

वसुदेव पुत्र कृष्ण और अर्जुन इन दोनों को इकट्ठे ही एक रथ में शङ्ख चक्र, और धारण किये हुए देखकर भी मुझे कुछ भय या घबराहट नहीं होती है ॥६६॥

अतीव पार्थो युधि कार्मुकिभ्यो नारायणश्चाप्रति चक्रयुद्धे ।
एवंविधौ पाण्डववासुदेवौ चलेत्स्वदेशाद्धिमवान्न कृष्णौ ॥६७॥

धनुष युद्ध में अर्जुन और चक्र युद्ध में श्रीकृष्ण अद्वितीय पराक्रमी योद्धा हैं। ये अर्जुन और श्रीकृष्ण इतने स्थिर होकर युद्ध करते हैं, कि अपने स्थान से हिमालय डिग सकता है, परन्तु कृष्ण और अर्जुन अपने स्थान से नहीं हिल सकते ॥६७॥

उभौ हि शूरौ बलिनौ दृढायुधौ महारथौ संहननोपपन्नौ ।
एतादृशौ फाल्गुनवासुदेवौ कोऽन्यः प्रतीयान्मदृते तौ तु शल्य

ये दोनों ही वीर, बड़े बलवान, दृढ़ धनुषधारी, कवच पहने हुए महारथी हैं। हे शल्य ! इस प्रकार के पराक्रमी, श्रीकृष्ण

और अर्जुन के सन्मुख जाने की मुझे छोड़कर अन्य किसमें शक्ति है ॥६८॥

मनोरथो यस्तु ममाद्य तस्य मद्रेश युद्धं प्रति पाण्डवस्य ।
नैतच्चिरादाशु भविष्यतीदमत्यद्भुतं चित्रमतुल्यरूपम् ॥६९॥

हे मद्रेश ! मेरी बहुत दिन से अर्जुन से युद्ध करने की इच्छा थी। अब इसमें देर नहीं है। यह बहुत ही शीघ्र होने वाला है, जिसके समान अन्य बहुत से युद्ध ऐसे विचित्र और अद्भुत रूपधारी नहीं हो सके होंगे ॥६९॥

एतौ च हत्वा युधि पातयिष्ये मां वापि कृष्णौ निहनिष्यतोऽद्य
इति ब्रुवञ्शल्यममित्रहन्ता कर्णो रणे मेघ इवोन्ननाद ॥७०॥

अब मैं इन दोनों को मार कर रण में धराशायी बना दूंगा, या ये मुझे आज मार गिरावेंगे शत्रुनाशकारी कर्ण, इतना कहकर रणाङ्गण में बड़े जोर से गर्जना करने लगा ॥७०॥

अभ्येत्य पुत्रेण तवाभिनन्दितः समेत्य चोवाच कुरुप्रवीरम् ।
कृपं च भोजं च महाभुजावुभौ तथैव गान्धारपतिं सहानुजम् ।
गुरोः सुतं चावरजं तथात्मनः पदातिनोऽथ द्विपसादिनश्च तान् ।
निरुध्यताभिद्रवताच्युतार्जुनौ श्रमेण संयोजयताशु सर्वशः ॥
यथा भवद्भिर्भृशविक्षतावुभौ सुखेन हन्यामहमद्य भूमिपाः ।

हे राजन् ! महारथी कर्ण अब तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन के समीप पहुंचा। राजा दुर्योधन ने उसका बड़ा अभिनन्दन

किया कर्ण ने महाभुजाधारी कृपाचार्य और कृतवर्मा तथा छोटे भ्राता दुःशासन सहित राजा दुर्योधन और गान्धारराज शकुनि अपने से छोटे गुरुपुत्र अश्वत्थामा एवं पैदल वीर और गजारोही वीरों से कहा—हे वीरों! तुम दौड़ो और अर्जुन तथा श्रीकृष्ण को घेरलो। इनको बड़े क्लेश में डालकर तंग करदो। हे महीपते! यदि तुम लोगों ने इन दोनों को क्षत विक्षत कर दिया-तो मैं सुख पूर्वक इनको मार लूंगा ॥७१-७२॥

तथेति चोक्त्वा त्वरिताःस्म तेऽर्जुनं जिघांसवो वीरतराः समाययुः
शरैश्च जघ्नुर्युधि तं महारथा धनञ्जयं कर्णनिदेशकारिणः।

इन सारे वीरों ने कर्ण की बात स्वीकार करके अर्जुन पर आक्रमण कर दिया और अर्जुन के वध के लिए उद्यत होगए। कर्ण की आज्ञा मानते हुए ये महारथी, इस युद्ध में बड़े वेग के साथ बाणों से अर्जुन को छेदने लगे ॥७३॥

नदीनदं भूरिजलो महार्णवो यथा तथा तान्समरेऽर्जुनोऽग्रसत्
न सन्दधानो न तथा शरोत्तमान्प्रमुञ्चमानो रिपुभिः प्रदृश्यते

नदी और नद के जलों को जैसे जलपरिपूर्ण समुद्र ग्रसन कर लेता है, ऐसे ही अर्जुन भी उनको रण में नष्ट करने लगा। अर्जुन कब धनुष पर बाण चढ़ाता और कब छोड़ता था, यह कोई वीर नहीं देख पाता था ॥७४॥

धनञ्जयास्त्रैस्तु शरैर्विदारिता हता निपेतुर्नरवाजिकुञ्जराः ॥
शरार्चिषं गाण्डिवचारुमण्डलं युगान्तसूर्यप्रतिमानतेजसम्।

अब अर्जुन के अस्त्रों द्वारा छोड़े हुए बाणों से घायल होकर वीर, अश्व और हाथी गिरने लगे। गाण्डीव धनुष का मण्डल प्रलयकाल के सूर्य के समान दिखाई दे रहा था, जिसमें बाणों की लपटें निकल रहीं थीं ॥७५॥

न कौरवाः शेकुरुदीक्षितुं जयं यथा रविं व्याधितचक्षुषो जनाः
शरोत्तमान्संप्रहितान्महारथैश्चिच्छेद पार्थः प्रहसञ्छरौघैः।

जिस तरह अक्षिरोगी, सूर्य के देखने में समर्थ नहीं हो सकता, इसी तरह कौरव वीर अर्जुन के देखने में समर्थ नहीं होसके। इन महारथियों द्वारा फैंके हुए उत्तम २ बाणों को अर्जुन ने अपने बाण जाल से हंसते २ काट गिराया॥७६॥

भूयश्च तानहनद्बाणसङ्घान्गाण्डीवधन्वायतपूर्णमण्डलम् ॥७७॥
यथोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगः सुखं विवस्वान् हरते जलौघान्

गाण्डीवधारी अर्जुन ने बड़ी शक्ति के साथ गाण्डीव धनुष को खैंचकर पूर्ण मण्डल बना लिया। और उससे बाण समूह छोड़ने लगा, यह मण्डल, वैसाख ज्येष्ठ के महीने में जल समूह को खैंचते हुए उग्र किरणधारी सूर्य के समान देदीप्यमान हो रहा था ॥७७॥

तथाऽर्जुनो बाणगणान्निरस्य ददाह सेनां तव पार्थिवेन्द्र ॥७८
तमभ्यधावद्विसृजन्कृपः शरांस्तथैव भोजस्तव चात्मजः स्वयम्
महारथो द्रोणसुतस्य सायकैरवाकिरंस्तोयधरा यथाचलम् ॥

हे राजेन्द्र ! अब अर्जुन ने बाण प्रवाह छोड़ कर तुम्हारी सेना को भस्म करना आरम्भ किया। इस समय कृपाचार्य भोजराज कृतवर्मा और तुम्हारा पुत्र स्वयं दुर्योधन, बाण वर्षा करते हुए इस पर झपटे, द्रोण सुत महारथी अश्वत्थामा ने भी अर्जुन पर इस तरह बाणों की झड़ी लगादी, जैसे पर्वत पर मेघ बरसता हो ॥७८-७९॥

जिघांसुभिस्तान्कुशलः शरोत्तमान् महाहवे सम्प्रहितान्प्रयत्नतः
शरैः प्रचिच्छेद स पाण्डवस्त्वरन् पराभिनद्वक्षसि चेषुभिस्त्रिभिः

इन पातक वीरों द्वारा प्रयत्न पूर्वक फैंके हुए उत्तम बाणों को रण कुशल अर्जुन ने बड़ी शीघ्रता से अपने बाणों से काट गिराया और तीन बाण छोड़कर इन तीनों महारथियों की छाती में प्रहार किया ॥८०॥

स गाण्डिवव्यायतपूर्णमण्डलस्तपन् रिपूनर्जुनभास्करो बभौ।
शरोग्ररश्मिः शुचिशुक्रमध्यगो यथैव सूर्यः परिवेषवांस्तथा ॥८१

इस समय अर्जुन, सूर्य के तुल्य हो रहा था, जिसका मण्डल गाण्डीव धनुष का बना हुआ मण्डल था। यह सारे शत्रु वीरों को सन्तप्त कर रहा था। इसके बाण उग्र किरण थे। यह सब वैसाख और ज्येष्ठ के उग्र सूर्य की भांति अपना मण्डल बनाये हुए था ॥८१॥

अथाग्र्यबाणैर्दशभिर्धनञ्जयं पराभिनद् द्रोणसुतोऽच्युतं त्रिभिः
चतुर्भिरश्वांश्चतुरः कपिं ततः शरैश्च नाराचवरैरवाकिरत् ॥८२॥

द्रोणसुत अश्वत्थामा ने बड़े तीखे दश बाण, अर्जुन पर और तीन बाण श्रीकृष्ण पर छोड़े। इसने चार बाणों से चार अश्व और बहुत से उत्तम नाराच संज्ञक बाणों से अर्जुन के कपिचिन्हाङ्कित ध्वजा पर प्रहार किया ॥८२॥

तथापि तं प्रस्फुरदात्तकार्मुकं त्रिभिः शरैर्यन्तृशिरः क्षुरेण ।
हयांश्चतुर्भिश्च पुनस्त्रिभिर्ध्वजं धनञ्जयो द्रौणि रथादपातयत् ॥८३

अब अर्जुन ने चमकीले धनुष के धारण करने वाले अश्वत्थामा पर तीन बाण छोड़े और क्षुर के समान तीक्ष्ण बाण से उसके सारथि के शिर को काट डाला। चार बाण मार कर उसके अश्व और तीन बाण मारकर उसकी ध्वजाको रथ से नीचे गिरा दिया ॥

स रोषपूर्णो मणिवज्रहाटकैरलंकृतं तक्षकभोगवर्चसम् ।
महाधनं कार्मुकमन्यदाददे यथा महाहिप्रवरं गिरेस्तटात् ॥८४

अब अश्वत्थामा रोष में भर गया इसने मणि, हीरे और सुवर्ण जटित, तक्षक सर्प के फन के समान तेजस्वी-बहुत मूल्य वाले, दूसरे धनुष को इस तरह ग्रहण किया। जैसे पर्वत के ऊपर से कोई अजगर पकड़ा हो ॥८४॥

स्वमायुधं चोपनिकीर्य भूतले धनुश्च कृत्वा सगुणं गुणाधिकः
समार्दयत्तावजितौ नरोत्तमौ शरोत्तमैर्द्रौणिरविध्यदन्तिकात् ॥

इस युद्ध कुशल अश्वत्थामा ने अपने आयुधों को पृथिवी पर रखदिया और इस धनुष पर डोरी चढ़ाई। अब द्रोण पुत्र अश्वत्थामा ने अत्यन्त समीप से इतने उत्तम बाण मारे कि वे दोनों विजेता श्रीकृष्णार्जुन, बड़े आहत होगए ॥८५॥

कृपश्च भोजश्च तवात्मजाश्च ते शरैरनेकैर्युधि पाण्डवर्षभम् ।
महारथाः संयुगमूर्धनि स्थितास्तमोनुदं वारिधरा इवापतन् ॥

हे राजन् ! कृपाचार्य, भोजराज कृतवर्मा, तुम्हारे पुत्र दुर्योधन प्रभृति, महारथी वीर, अनेक बाणों से रण में प्रहार करते हुए पाण्डव श्रेष्ठ अर्जुन पर इस तरह छागए-जैसे अन्धकार नाशक सूर्य पर मेघ छाजाते हैं ॥८६॥

कृपस्य पार्थः सशरं शरासनं हयान्ध्वजान्सारथिमेव पत्रिभिः
समार्पयद्बाहुसहस्रविक्रमस्तथा यथा वज्रधरः पुरा बलेः ॥८७॥

कार्तवीय अर्जुन के समान पराक्रमी अर्जुन ने कृपाचार्य के धनुष-बाण, अश्व, ध्वजा और सारथि को अपने बाणों से इस तरह छिन्न भिन्न कर दिया-जैसे वज्रधारी इन्द्र ने पूर्वकाल में बलिदैत्य को आहत कर दिया ॥८७॥

स पार्थबाणैर्विनिपातितायुधो ध्वजावमर्दे च कृते महाहवे ।
कृतः कृपो बाणसहस्रयन्त्रितो यथापगेयः प्रथमं किरीटिना ॥

जब अर्जुन ने कृपाचार्य के शस्त्र काट दिए और घोर युद्ध में इसकी ध्वजा काट डाली तथा सहस्रों बाणोंसे कृप को आच्छादित कर दिया जैसे—अर्जुन ने पूर्व में एक बार समुद्र को बाणों से काट दिया था ॥८८॥

शरैः प्रचिच्छेद तवात्मजस्य ध्वजं धनुश्च प्रचकर्त नर्दतः ।
जघान चाश्वान्कृतवर्मणः शुभान्ध्वजं च चिच्छेद ततः प्रतापवान्

तुम्हारे पुत्र राजा दुर्योधन गर्जना कर रहे थे उनके भी धनुष और ध्वजा को अर्जुन ने काट गिराया । महाप्रतापी अर्जुन, ने

कृतवर्मा के अश्वों को मार कर उसकी ध्वजा को भी काट गिराया ॥८९॥

स वाजिसूतेष्वसनान्सकेतनाञ्जघान नागाश्वरथांस्त्वरंश्च सः ।
ततः प्रकीर्णं सुमहद्बलं तव प्रदारितं सेतुरिवाम्भसा यथा ॥९०

अब अर्जुन, शीघ्रता के साथ अश्व, सारथि, धनुष, ध्वजा, अश्वरोही, गजारोही और रथारोही वीरों को मार २ कर गिराने लगा, इस तरह अर्जुन ने तुम्हारी बहुत विशाल सेना को इस तरह विदीर्ण कर डाला, जैसे पानी सेतु को चीर डालता है ॥९०॥

ततोऽर्जुनस्याशु रथेन केशवश्चकार शत्रूनपसव्यमातुरान् ।
ततः प्रयातं त्वरितं धनञ्जयं शतक्रतुं वृत्रनिजघ्नुषं यथा ॥९१

अब भगवान् कृष्ण ने अपने रथ को मोड़ कर व्याकुल हुए शत्रुओं को बांयी ओर कर दिया । इस समय, बड़े वेग से वृत्रासुर पर झपटते हुए इन्द्र के तुल्य अर्जुन को झपटते देखकर फिर ध्वजा उठा कर उत्तम २ रथों से युक्त हुए युद्ध परायण कौरव वीर अर्जुन की ओर लपके ॥९१॥

समन्वधावन्पुनरुत्थितैर्ध्वजे रथैः सुयुक्तैरपरे युयुत्सवः ।
अथाभिसृत्य प्रतिवार्य तानरीन्धनञ्जयस्याभिमुखं महारथाः ॥

अब शिखण्डी, सात्यकि नकुल सहदेव आदि पाण्डव महारथी, उन वीरों पर झपटे और उनको रोककर अर्जुन की सहायता को पहुंचे । ये अपने तीक्ष्ण बाणों से उन शत्रुओं को आहत करते हुए भयानक गर्जना करने लगे ॥९२॥

शिखण्डिशैनेययमाः शितैः शरैर्विदारयन्तो व्यनदन्सुभैरवम्
ततोऽभिजघ्नुः कुपिताः परस्परं शरैस्तदाञ्जोगतिभिः सुतेजनैः

वायु के समान सीधे जाने वाले, अत्यन्त तीक्ष्ण बाणों से क्रोध में भरे हुए दोनों पक्ष के वीर परस्पर प्रहार करने लगे। इस युद्ध में कौरव और सृञ्जय वीर इस तरह भिड़ रहे थे, जैसे पूर्वकाल में देवगणों के साथ असुरों का युद्ध हुआ था ॥६३॥

कुरुप्रवीराः सह सृञ्जयैर्यथासुराः पुरा देवगणैस्तथाहवे ।
जयेप्सवः स्वर्गमनाय चोत्सुकाः पतन्ति नागाश्वरथाः परन्तप

हे परन्तप ! ये वीर, या तो विजय प्राप्त करलें या स्वर्ग को चलेजावें-यही इच्छा रखते थे। इस तरह हाथी, अश्व और रथी वीर आक्रमण करने लगे। इन्होंने बड़े बल-पूर्वक सिंह नाद किया और अच्छी तरह बाण छोड़ कर एक दूसरे को अत्यन्त क्षत-विक्षत करना आरम्भ किया ॥६४॥ 13818

जगर्जुरुच्चैर्बलवच्च विव्यधुः शरैः सुमुक्तैरितरेतरं पृथक् ।
शरान्धकारे तु महात्मभिः कृते महामृधे योधवरैः परस्परम् ॥
चतुर्दिशो वै विदिशश्च पार्थिव प्रभा च सूर्यस्य तमोवृताभवत्

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्त्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलयुद्धे ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७६॥

हे राजसत्तम ! इस महायुद्ध में बड़े २ महारथी योद्धाओं ने परस्पर इतने बाण छोड़े जिन से अन्धकार छागया। इस समय चारों दिशा और विदिशा तथा सूर्य की प्रभा भी अन्धकार से आवृत होगई ॥६५॥(श्लोक संख्या ४०७६)

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में अर्जुन के कर्ण पर आक्रमण करने और अश्वत्थामा आदि के साथ घोर युद्ध के वर्णन का उनासीवां अध्याय समाप्त हुआ

(१३ वाँ भाग समाप्त)

हे महाबाहो धनञ्जय! तुमने मेरा बहुत अधिक मान और आदर किया है। अब तुम लोक में विजय और महत्व को सदा के लिए प्राप्त करो ॥३४॥

अर्जुन उवाच—

अद्य तं पापकर्माणं सानुबन्धं रणे शरैः ।
नयाम्यन्तं समासाद्य राधेयं बलगर्वितम् ॥३५॥

अर्जुन बोले हे राजन्! आज मैं रण में अपने बन्धु बान्धवों के सहित पाप कर्म, बल गर्वित राधापुत्र कर्ण को नष्ट करके रहूँगा ॥३५॥

येन त्वं पीडितो बाणैर्दृढमायम्य कार्मुकम् ।
तस्याद्य कर्मणः कर्णः फलमाप्स्यति दारुणम् ॥३६॥

जिस कर्ण ने अपने दृढ़ धनुष को खैंच २ कर तुमको बाणों से पीड़ित किया है-आज उसी कर्म का दारुण परिणाम, कर्ण रण में भोगेगा ॥३६॥

अद्य त्वामनुपश्यामि कर्णं हत्वा महीपते ।
सभाजयितुमाक्रन्दादिति सत्यं ब्रवीमि ते ॥३७॥

हे महीपते! अब मैं तो तुम्हारे चिल्लाने की शान्ति के निमित्त कर्ण को मारकर ही तुमसे मिलूंगा-यह सत्य कहता हूं ॥

नाहत्वा विनिवर्तिष्ये कर्णमद्य रणाजिरात ।
इति सत्येन ते पादौ स्पृशामि जगतीपते ॥३८॥

हे जगतीपते ! मैं विना कर्ण को मारे आज संग्राम से नहीं लौटूंगा। यह मैं सत्य प्रतिज्ञा करके तुम्हारे चरणों को छूता हूं ॥

सञ्जय उवाच—

इति ब्रुवाणं सुमनाः किरीटिनं युधिष्ठिरः प्राह वचो बृहत्तरम्
यशोऽक्षयं जीवितमीप्सितं ते जयं सदा वीर्यमरिक्षयं तथा
प्रयाहि वृद्धिं च दिशन्तु देवता यथाहमिच्छामि तवास्तु तत्तथा
प्रयाहि शीघ्रं जहि कर्णमाहवे पुरन्दरो वृत्रमिवात्मवृद्धये ४०

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि अर्जुनप्रतिज्ञायामेकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

सञ्जय ने कहा-जब अर्जुन ने इतना कहा-तो राजा युधिष्ठिर बड़े प्रसन्न हुए और वे बड़े उत्तम वचन बोले। हे अर्जुन ! तुमको यश, अक्षय जीवन, अभिलषित विजय, पराक्रम, शत्रुनाश प्राप्त होवे। अब तुम जाओ और देवता तुम्हारी वृद्धि करें। जो ऐश्वर्य मैं तुम्हारा चाहता हूं-वह तुमको प्राप्त हो। अब तुम जाओ और अपनी वृद्धि को-वृत्रासुर को इन्द्र की तरह कर्ण को मार गिराओ ॥३९-४०॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में अर्जुन प्रतिज्ञा का इकहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।



बहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

प्रसाद्य धर्मराजानं प्रहृष्टेनान्तरात्मना ।
पार्थः प्रोवाच गोविन्दं सूतपुत्रवधोद्यतः ॥१॥

सञ्जय ने कहा—हे राजन्! जब अर्जुन ने धर्मराज को प्रसन्न कर लिया-तो फिर अन्तरात्मा से प्रसन्न होकर कुन्ती-पुत्र अर्जुन सूत-पुत्र कर्ण के वध के लिए उद्यत हो गया और श्री कृष्ण से इस प्रकार कहने लगा ॥१॥

कल्पतां मे रथो भूयो युज्यन्तां च हयोत्तमाः ।
आयुधानि च सर्वाणि सज्जन्तां मे महारथे ॥२॥

हे कृष्ण! मेरा रथ तय्यार करो और उसमें अश्वों को जोड़ो तथा मेरे विशाल रथ में सारे शस्त्र सजा दो ॥२॥

उपावृत्ताश्च तुरगाः शिक्षिताश्चाश्वसादिभिः ।
रथोपकरणैः सज्जा उपायान्तु त्वरान्विताः ॥३॥

अनेक टहलाए हुए शिक्षित-अश्वों को लेकर अश्वारोही और रथों की सामग्री से युक्त रथी सुसज्जित होकर बड़ी शीघ्रता से मेरे साथ आवें। हे गोविन्द! अब तुम सूत-पुत्र कर्ण के वध की इच्छा से शीघ्र चलो ॥३॥

प्रयाहि शीघ्रं गोविन्द सूतपुत्रजिघांसया ।
एवमुक्तो महाराज फाल्गुनेन महात्मना ॥४॥

उवाच दारुकं कृष्णः कुरु सर्वं यथाब्रवीत् ।
अर्जुनो भरतश्रेष्ठ श्रेष्ठः सर्वधनुष्मताम् ॥५॥

हे महाराज ! जब महावीर अर्जुन ने इस प्रकार कहा-तो श्री कृष्ण ने अपने सारथि दारुक से कहा-जिस तरह अर्जुन ने कहा है-वह सब कुछ तय्यार करो । हे भरत श्रेष्ठ ! अर्जुन सारे धनुर्धरों में सर्व श्रेष्ठ माना जाता है ॥४-५॥

आज्ञप्तस्त्वथ कृष्णेन दारुको राजसत्तम ।
योजयामास स रथं वैयाघ्रं शत्रुतापनम् ॥६॥

हे राजसत्तम ! जब श्रीकृष्ण ने अपने सारथि दारुक को रथ सजाने की आज्ञा दी-तो वह सिंह चर्म से युक्त शत्रु संतापकारक रथ को जोड़कर ले आया और महारथी अर्जुन से कहा—कि रथ सुसज्जित है ॥६॥

सज्जं निवेदयामास पाण्डवस्य महात्मनः ।
युक्तं तु तं रथं दृष्ट्वा दारुकेण महात्मना ॥७॥
आपृच्छ्य धर्मराजानं ब्राह्मणान्स्वस्ति वाच्य च ।
सुमङ्गलं स्वस्त्ययनमारुरोह रथोत्तमम् ॥८॥

महात्मा दारुक सारथि द्वारा सुसज्जित रथ को देख कर अर्जुन ने धर्मराज से आज्ञा ली और ब्राह्मणों से स्वस्ति वाचन मङ्गलानुशासन और पुण्याहवाचन आदि कराके वह रथ पर चढ़ गया ॥७-८॥

तस्य राजा महाप्राज्ञो धर्मराजो युधिष्ठिरः ।
आशिषोऽयुंक्त सततः प्रायात्कर्णरथं प्रति ॥९॥

अब महा बुद्धिमान धर्मराज युधिष्ठिर ने लगातार आशीष दी इसके बाद अर्जुन कर्ण के रथ की ओर चल दिए ॥९॥

तमायान्तं महेष्वासं दृष्ट्वा भूतानि भारत ।
निहतं मेनिरे कर्णं पाण्डवेन महात्मना ॥१०॥
बभूवुर्विमलाः सर्वा दिशो राजन्समन्ततः ।

हे भारत ! महाधनुर्धर अर्जुन को आक्रमण करता देखकर सारे प्राणियों ने पाण्डु-पुत्र महावीर अर्जुन द्वारा महारथी कर्ण को मारा हुआ ही समझा । हे राजन ! अब सब ओर सारी दिशाएँ स्वच्छ दिखाई देने लगी ॥१०॥

चाषाश्च शतपत्राश्च क्रौञ्चाश्चैव जनेश्वर ॥११॥
प्रदक्षिणमकुर्वन्त तदा वै पाण्डुनन्दनम् ।

हे जनेश्वर ! नीलकण्ठ, शतपत्र और क्रौञ्च नामक पक्षी पाण्डु नन्दन अर्जुन के दांयी ओर से निकले ॥११॥

बहवः पक्षिणो राजन्पुन्नामानः शुभाः शिवाः ॥१२॥
त्वरयन्तोऽर्जुनं युद्धे हृष्टरूपा ववाशिरे ।

हे राजन् ! इसी तरह पुंनामधारी बहुत से शुभ कल्याणकारी पक्षी बड़ी शीघ्रता से प्रसन्नता-पूर्वक अर्जुन के लिए बोलकर शुभ शकुन की सूचना देने लगे ॥१२॥

कङ्का गृध्रा बकाः श्येना वायसाश्च विशाम्पते ॥१३॥
अग्रतस्तस्य गच्छन्ति मांसहेतोर्भयानकाः ।

हे विशाम्पते ! कङ्क, गीध, बक, श्येन वायस नामक भयानक पक्षी मांस के लालच से अर्जुन के आगे २ चलने लगे ॥१३॥

निमित्तानि च धन्यानि पाण्डवस्य शशंसिरे ॥१४॥
विनाशमरिसैन्यानां कर्णस्य च वधं प्रति ।

ये सारे शकुन, बड़े उत्तम थे और पाण्डु-पुत्र अर्जुन को विजय की शुभ सूचना दे रहे थे। इससे शत्रु सेना के विनाश और महारथी कर्ण के वध की प्रतीति हो रही थी ॥१४॥

प्रयातस्याथ पार्थस्य महान्स्वेदो ऽव्यजायत ॥१५॥
चिन्ता च विपुला जज्ञे कथं चेदं भविष्यति ।

जब अर्जुन ने कर्ण पर प्रयाण किया-तो उसका शरीर स्वेदों में भर गया और उसे बड़ी चिन्ता हुई, कि न जाने कर्ण का वध हो सकेगा या नहीं ॥१५॥

ततो गाण्डीवधन्वानमब्रवीन्मधुसूदनः ।
दृष्ट्वा पार्थं तथा यान्तं चिन्तापरिगतं तदा ॥१६॥

अब मधुसूदन श्रीकृष्ण ने गाण्डीवधारी अर्जुन को चिन्ता में लीन होकर चलते हुए देखकर यह वचन कहा ॥१६॥

वासुदेव उवाच—

गाण्डीवधन्वन्संग्रामे ये त्वया धनुषा जिताः ।

न तेषां मानुषो जेता त्वदन्य इह विद्यते ॥१७॥

हे गाण्डीवधारी अर्जुन ! तुमने इस संग्राम में अपने धनुष से जिन २ वीरों को जीत लिया, उनके जीतने वाला मनुष्य तेरे सिवा अन्य कोई नहीं हो सकता था ॥१७॥

दृष्टा हि बहवः शूराः शक्रतुल्यपराक्रमाः ।

त्वां प्राप्य समरे शूरं ते गताः परमां गतिम् ॥१८॥

हमने इस संग्राम में इन्द्र के तुल्य पराक्रमी बहुत से शूरवीर देखे-परन्तु ज्योंहि वे रण में तुम्हारे सन्मुख आए-त्योंही वे परम गति को प्राप्त हो गए ॥१८॥

को हि द्रोणं च भीष्मं च भगदत्तं च मारिष ।

विन्दानुविन्दावावन्त्यौ काम्बोजं च सुदक्षिणम् ॥१९॥

श्रुतायुषं महावीर्यमच्युतायुषमेव च ।

प्रत्युद्गम्य भवेत्क्षेमी यो न स्यात्त्वमिव प्रभो ॥२०॥

हे शक्तिशाली आर्य! द्रोणाचार्य, भीष्मपितामह, राजा भगदत्त अवन्तीकुमार, विन्दानुविन्द, कम्बोजाधिपति सुदक्षिण, महापराक्रमी श्रुतायु, अच्युतायु आदि वीरों के सन्मुख होकर निकल आता-ऐसा तुम्हारे सिवा अन्य कौन वीर हो सकता था ॥१९-२०॥

तव ह्यस्त्राणि दिव्यानि लाघवं बलमेव च ।

असंमोहश्च युद्धेषु विज्ञानस्य च संनतिः ॥२१॥

वेधः पातश्च लक्ष्येषु योगश्चैव तथार्जुन ।

भवान्देवान्सगन्धर्वान्हन्यात्सहचराचरान् ॥२२॥

पृथिव्यां तु रणे पार्थ न योद्धा त्वत्समः पुमान् ।

हे अर्जुन ! बहुतसे दिव्य अस्त्र लाघव (फुर्ती) पराक्रम, युद्धमें असंमोह, बुद्धि-पूर्वक धनुष चलाना, अपने लक्ष्य का बींध लेना, उसे गिरा देना और फिर बाण का अनुसंधान कर लेना आदि गुण तुम में बड़े अलौकिक ढङ्ग से विद्यमान हैं। तुम चराचर सृष्टि और गन्धर्वों सहित देवों के भी जीतने में समर्थ हो। हे पार्थ ! इस पृथिवी पर तो रण में चमत्कार दिखाने वाला कोई वीर तुम्हारे समान दिखाई नहीं देता है ॥२१-२२॥

धनुर्ग्राहा हि ये केचित्क्षत्रिया युद्धदुर्मदाः ॥२३॥

आदेवात्त्वत्समं तेषां न पश्यामि शृणोमि च ।

जो युद्ध दुर्मद धनुषधारी क्षत्रिय हैं, उनमें ही क्या-देवों में भी तुम्हारे समान कोई योद्धा मुझे दिखाई नहीं दिया और न मैंने अभी तक किसी को सुना है ॥२३॥

ब्रह्मणा च प्रजाः सृष्टा गाण्डीवं च महद्धनुः ॥२४॥

येन त्वं युध्यसे पार्थ तस्मान्नास्ति त्वया समः ।

हे अर्जुन ! ब्रह्मा ने ही सारी सृष्टि रची और उसीने यह गाण्डीव महाधनुष खास तौर पर बनाया है। तुम इसी धनुष से युद्ध करते हो-इससे तुम्हारे समान अन्य कोई नहीं है ॥२४॥

अवश्यं तु मया वाच्यं यत्पथ्यं तव पाण्डव ॥२५॥
मावमंस्था महाबाहो कर्णमाहवशोभिनम् ।

हे महाबाहो! अर्जुन ! जो तुम्हारे हित की बात है, उसे मुझे कह ही देना चाहिए-यह सब कुछ होने पर भी तुम जब युद्ध में दुर्मद कर्ण के साथ युद्ध करो, तो कुछ प्रमाद मत करना ॥२५॥

कर्णो हि बलवान्दृप्तः कृतास्त्रश्चमहारथः ॥२६॥
कृती च चित्रयोधी च देशकालस्य कोविदः ।
बहुनात्र किमुक्तेन संक्षेपाच्छृणु पाण्डव ॥२७॥
त्वत्समं त्वद्विशिष्टं वा कर्णं मन्ये महारथम् ।

यह कर्ण, बड़ा बलवान्, मदोद्धत, अस्त्र विद्या में कुशल विचित्र ढङ्ग से युद्ध करने वाला, सब तरह सुशिक्षित, देश काल का ज्ञाता महारथी है। हे अर्जुन ! अधिक क्या कहना है, संक्षेप में यही समझलें, कि मैं कर्ण को तेरे सदृश या तुझसे भी कुछ अधिक ही महारथी समझता हूँ ॥२६-२७॥

परमं यत्नमास्थाय त्वया वध्यो महाहवे ॥२८॥
तेजसा वह्निसदृशो वायुवेगसमो जवे ।
अन्तकप्रतिमः क्रोधे सिंहसंहननो बली ॥२९॥
अष्टरत्निर्महाबाहुर्व्यूढोरस्कः सुदुर्जयः ।
अभिमानी च शूरश्च प्रवीरः प्रियदर्शनः ॥३०॥

सर्वयोधगुणैर्युक्तो मित्राणामभयङ्करः।
सततं पाण्डवद्वेषी धार्तराष्ट्रहिते रतः ॥३१॥
सर्वैरवध्यो राधेयो देवैरपि सवासवैः।
ऋते त्वामिति मे बुद्धिस्तदद्य जहि सूतजम् ॥३२॥

इस महायुद्ध में तुम बड़ा प्रयत्न करके इसको मारना। यह तेज में अग्नि और वेग में वायु के सदृश है। काल के समान इसका क्रोध है और यह महाबली सिंह के समान पराक्रमी भी माना जाता है। यह महाबाहु आठ रत्नि (आठ हाथ से कुछ कम) प्रमाण ऊँचा है। इसकी छाती बड़ी दृढ़ है। यह अत्यन्त दुर्मद है। इसको रण में लड़ने का बड़ा अभिमान है। यह बड़ा सुन्दर शूर-वीर है। जितने योद्धाओं में गुण होने चाहिए-यह उन सारे गुणोंसे सुसम्पन्न है। अपने मित्रों का अभय करने वाला है। तुम पाण्डवों से सदा से द्वेष रखने वाला और धृतराष्ट्र पुत्रों का प्रेमी है। यह उनके हित में सर्वदा लगा रहता है। यह राधा-पुत्र कर्ण तो इन्द्र सहित देवों से भी नहीं मारा जा सकता है। हां ? केवल तुम इसको मार सकते हो ऐसा मेरा खयाल है। हे अर्जुन ! आज तुम उसे मार दिखाओ ॥२८-३२॥

देवैरपि हि संयत्तैर्बिभ्रद्भिर्मांसशोणितम्।
अशक्यः सरथो जेतुं सर्वैरपि युयुत्सुभिः ॥३३॥

यदि देवता भी मांस और रक्त में भीग कर गाढ़ा युद्ध करें तो भी उन सारे रण कुशल वीरों से रथ में स्थित इस महारथी कर्ण के जीतने की शक्ति नहीं है ॥३३॥

दुरात्मानं पापवृत्तं नृशंसं दुष्टप्रज्ञं पाण्डवेयेषु नित्यम् ।
हीनस्वार्थं पाण्डवेयैर्विरोधे हत्वा कर्णं निश्चितार्थो भवाद्य

यह कर्ण, बड़ा दुरात्मा पापवृत्ति, नीच विचारधारी, और सर्वदा पाण्डवों से विरोध करने वाला है। इसने पाण्डवों से विरोध करके अपने स्वार्थ को ही नष्ट किया, आज तुम उस कर्ण को मारकर निश्चिन्त होजाओ ॥३४॥

तं सूतपुत्रं रथिनां वरिष्ठं हत्वा प्रीतिं धर्मराजे कुरुष्व ॥
जानामि ते पार्थ वीर्यं यथावद्दुर्वारणीयं च सुरासुरैश्च
सदावजानाति हि पाण्डुपुत्रानसौ दर्पात्सूतपुत्रो दुरात्मा

हे अर्जुन! तुम रथियों में श्रेष्ठ, सूतपुत्र कर्ण को मारकर धर्मराज को सन्तुष्ट करो। मैं तुम्हारे बलविक्रम को जानता हूं, जिसका मुक़ाबिला सुर और असुर कोई भी नहीं कर सकता है यह सूतपुत्र दुरात्मा कर्ण, अपने घमण्ड में भरकर सर्वदा तुम पाण्डवों की अपमानता ही करता आया है ॥३५-३६॥

आत्मानं मन्यते वीरं येन पापः सुयोधनः ।
तमद्य मूलं पापानां जहि सौतिं धनञ्जय ॥३७॥

हे धनञ्जय! जिसके बल पर पापी दुर्योधन अपने को वीर मानता है, आज उसी पाप के मूल सूतपुत्र कर्ण को रण में मार गिराओ ॥३७॥

खड्गजिह्वं धनुरास्यं शरदंष्ट्रं तरस्विनम् ।
दृप्तं पुरुषशार्दूलं जहि कर्णं धनञ्जय ॥३८॥

हे धनञ्जय ! इस कर्ण की खड्ग तो जिह्वा, धनुषमुख और बाण दंष्ट्रा है। तुम इस वेगशाली महोद्धत, पुरुषप्रवीर कर्ण का आज अवश्य वध कर डालना ॥३८॥

अहं त्वामनुजानामि वीर्येण च बलेन च ।
जहि कर्णं रणे शूरं मातङ्गमिव केसरी ॥३९॥

हे अर्जुन ! मैं तुझे समझा देता हूँ, कि तू उससे बलविक्रम में अधिक है; आज तू रण में गजराज को सिंह की भांति शूरवीर कर्ण को मार देना ॥३९॥

यस्य वीर्येण वीर्यं ते धार्तराष्ट्रोऽवमन्यते ।
तमद्य पार्थ संग्रामे कर्णं वैकर्त्तनं जहि ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि कृष्णार्जुनसंवादे द्विसप्ततितमोऽध्यायः ॥७२॥

जिस सूर्यपुत्र कर्ण के बलपर भूलकर धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन, तुम्हारा अपमान करता रहता है आज उसी कर्ण को तुम रण में मारदेना ॥४०॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में कृष्ण का अर्जुन
को उत्साहित करने का बहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ



तेहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

ततः पुनरमेयात्मा केशवोऽर्जुनमब्रवीत ।
कृतसङ्कल्पमायान्तं वधे कर्णस्य भारत ॥१॥

सञ्जय कहने लगे—हे भरतर्षभ ! अब फिर महाशक्तिशाली श्रीकृष्ण, कर्ण के वध का सङ्कल्प करके प्रयाण करते हुए अर्जुन से बोले ॥१॥

अद्य सप्तदशाहानि वर्तमानस्य भारत ।
विनाशस्यातिघोरस्य नरवारणवाजिनाम् ॥२॥

हे भारत ! आज युद्ध का सतरहवां दिन व्यतीत हो रहा है, जिसमें नर, हाथी और अश्व आदि का महाघोर विनाश उपस्थित हो रहा है ॥२॥

भूत्वा हि विपुला सेना तावकानां परैः सह ।
अन्योन्यं समरं प्राप्य किञ्चिच्छेषा विशाम्पते ॥३॥

हे विशाम्पते ! तुम्हारी और कौरवों की बहुत अधिक सेना थी, परन्तु एक दूसरे से रण में लड़कर बहुत कम बच रही है ॥३॥

भूत्वा वै कौरवाः पार्थ प्रभूतगजवाजिनः ।
त्वां वै शत्रुं समासाद्य विनष्टा रणमूर्धनि ॥४॥

हे पार्थ ! तुम को सब कुछ पता है, कि कौरवों के पास कितने अधिक हाथी घोड़े थे, परन्तु शत्रुभूत तुम्हारे सन्मुख रण में आकर सारे नष्ट होगए ॥४॥

एते ते पृथिवीपालाः सृञ्जयाश्च समागताः ।
त्वां समासाद्य दुर्धर्षं पाण्डवाश्च व्यवस्थिताः ॥५॥

ये सारे राजा और सृञ्जय वीर, रण में उपस्थित हैं, ये सारे दुर्धर्षवीर और पाण्डव वीर तुम्हारा आश्रय पाकर ही रण में जमे हुए हैं ॥५॥

पाञ्चालैः पाण्डवैर्मत्स्यैः कारूषैश्चेदिभिः सह ।
त्वया गुप्तै रमित्रघ्नैः कृतः शत्रुगणक्षयः ॥६॥

पाञ्चाल, पाण्डव, मत्स्य, कारूष, और चेदि वीर सर्वदा तुमसे सुरक्षित रहकर शत्रुसेना का नाश करते रहे ॥६॥

को हि शक्तो रणे जेतुं कौरवांस्तात संयुगे ।
अन्यत्र पाण्डवान्युद्धे त्वया गुप्तान्महारथान् ॥७॥

हे तात ! तुमसे सुरक्षित महारथी पाण्डव वीरों को छोड़ कर रण में कौरवों के जीतने की किसमें सामर्थ्य हो सकती थी ॥७॥

शक्तस्त्वं हि रणे जेतुं ससुरासुरमानुषान् ।
त्रींल्लोकान्समरे युक्तान्किं पुनः कौरवं बलम् ॥८॥

यदि तुम्हारे सन्मुख तीनों लोकों के वीर भी इकट्ठे होकर आवें-तो भी तुम सुर, असुर और सारे मनुष्यों को रण में जीत सकते हो, फिर इस कौरव सेना की तो गणना ही क्या है ॥८॥

भगदत्तं च राजानं कोऽन्यः शक्तस्त्वया विना ।
जेतुं पुरुषशार्दूल योऽपि स्याद्वासवोपमः ॥९॥

हे पुरुषसिंह ! राजा भगदत्त को तुम्हारे बिना कौन जीत सकता था, चाहे वह इन्द्र के तुल्य पराक्रमी भी क्यों न होता ॥९॥

तथेमां विपुलां सेनां गुप्तां पार्थ त्वयानघ ।
न शेकुः पार्थिवाः सर्वे चक्षुर्भिरपि वीक्षितुम् ॥१०॥

हे अनघ ! अर्जुन ! तुमसे सुरक्षित होने के कारण ही ये सारे कौरव पक्ष के राजा पाण्डवों की विपुल सेना की ओर आंख उठाकर भी नहीं देखसके ॥१०॥

तथैव सततं पार्थ रक्षिताभ्यां त्वया रणे ।
धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां भीष्मद्रोणौ निपातितौ ॥११॥

हे पार्थ ! तुम से सुरक्षित हुए धृष्टद्युम्न और शिखण्डी ने भी रण में द्रोणाचार्य और भीष्मपितामह को मार गिराया ॥११॥

कोहि शक्तो रणे पार्थ भारतानां महारथौ ।
भीष्मद्रोणौ युधा जेतुं शक्रतुल्यपराक्रमौ ॥१२॥

हे कौन्तेय, कौरव सेना के महारथी भीष्म और द्रोणाचार्य इन्द्र के तुल्य पराक्रमी थे-उनको रण में जीत लेने की किसकी सामर्थ्य थी ॥१२॥

को हि शान्तनवं भीष्मं द्रोणं वैकर्तनं कृपम् ।
द्रौणिं च सौमदत्तिं च कृतवर्माणमेव च ॥१३॥

सैन्धवं मद्रराजानं राजानं च सुयोधनम् ।
वीरान्कृतास्त्रान्समरे सर्वानेवानिवर्तिनः ॥१४॥
अक्षौहिणीपतीनुग्रान्संहतान्युद्धदुर्मदान् ।
त्वामृते पुरुषव्याघ्र जेतुं शक्तः पुमानिह ॥१५॥

हे पुरुष व्याघ्र ! शान्तनु-पुत्र भीष्म, द्रोणाचार्य, सूर्य-पुत्र कर्ण कृपाचार्य, द्रोण-पुत्र अश्वत्थामा, सोमदत्त-पुत्र भूरिश्रवा, कृतवर्मा सिन्धुराज जयद्रथ, मद्रराज, शल्य, राजा दुर्योधन-ये सारे ही युद्ध से पीछे नहीं हटने वाले थे। ये वीर अस्त्र विद्या में अत्यन्त कुशल थे। ये सारे ही युद्ध दुर्मद, संगठित, बड़े उग्र और अक्षौहिणी सेना के अधिपति थे। तुमको छोड़कर अन्य किस वीर की शक्ति थी, जो रण में इनको जीत सकता ॥१३–१५॥

श्रेणयश्च बहुलाः क्षीणाः प्रदीर्णाश्वरथद्विपाः ।
नानाजनपदाश्चोग्राः क्षत्रियाणाममर्षिणाम् ॥१६॥
गोवासदासमीयानां वसातीनां च भारत ।
प्राच्यानां वाटधानानां भोजानां चाभिमानिनाम् ॥१७॥
उदीर्णाश्वगजा सेना सर्वक्षत्रस्य भारत ।
त्वां समासाद्य निधनं गता भीमं च भारत ॥१८॥

हे भारत ! तुमने अश्व, रथ और हाथियों से संयुक्त बहुत सी कौरव सेना की बहुत सी श्रेणी (टुकड़ी) नष्ट करदी । आवेश में भरे हुए क्षत्रियों के अनेक वीरों से युक्त देश उजाड़ दिए। गो

वास, दासमीय, वसाती प्राच्य, वाटधान, अभिमानी भोजवंशोद्भव वीर तथा उद्धत हाथी अश्वों से युक्त अन्य सारे क्षत्रिय नृपों की सेना तुम अर्जुन और भीम से युद्ध करके नष्ट हो चुकी है ॥१६-१८॥

उग्राश्च भीमकर्माणस्तुषारा यवनाः खशाः ।
दार्वाभिसारा दरदाः शका माठरतङ्गणाः ॥१९॥
आन्ध्रकाश्च पुलिन्दाश्च किराताश्चोग्रविक्रमाः ।
म्लेच्छाश्च पर्वतीयाश्च सागरानूपवासिनः ॥२०॥
संरम्भिणो युद्धशौण्डा बलिनो दण्डपाणयः ।
एते सुयोधनस्यार्थे संरब्धाः कुरुभिः सह ॥२१॥
न शक्या युधि निर्जेतुं त्वदन्येन परन्तप ।

बड़े भयानक कर्म करने वाले उग्रशक्ति, तुषार, खश, यवन (यूनानी) दार्वाभिसार दरद, शक, माठर, तङ्गण, आन्ध्रक, पुलिन्द, महापराक्रमी किरात, म्लेच्छ, पर्वतीय और सागर के अनूप देश निवासी, बड़े आवेश में भरे हुए, युद्धकुशल, महाबली, दण्डधारी, होकर राजा दुर्योधन का हित करने के निमित कौरव सेना में सम्मिलित थे । हे परन्तप ! इनको तुम्हारे सिवा कौन युद्ध में जीत सकता था ॥१९-२१॥

धार्तराष्ट्रमुदग्रं हि व्यूढं दृष्ट्वा महद्बलम् ॥२२॥
यदि त्वं न भवेस्त्राता प्रतीयात्को नु मानवः ।

यदि तुम सुरक्षक न होते तो धृतराष्ट्र-पुत्र राजा दुर्योधन की उद्‌ग्र व्यूह रूप में स्थित विशाल सेना को देखकर कौन मानव वीर उसके सन्मुख जा पाता ॥२२॥

तत्सागरमिवोद्धूतं रजसा संवृतं बलम् ॥२३॥

विदार्य पाण्डवैः क्रुद्धैस्त्वया गुप्तैर्हतं विभो ।

हे विभो! वह कौरव सेना समुद्र की भांति उमड़ रही थी और उससे उठी हुई धूलि से व्याप्त थी। उस सेना को भी तुम से सुरक्षित होकर पाण्डव वीरों ने चीरकर नष्ट भ्रष्ट कर डाला ॥२३॥

मागधानामधिपतिर्जयत्सेनो महाबलः ॥२४॥

अद्य सप्तैव चाहानि हतः सङ्ख्येऽभिमन्युना ।

महाबली मगध देश के अधिपति राजा जयत्सेन को आज से सात दिन पूर्व रण में अभिमन्यु ने मार गिराया था ॥२४॥

ततो दशसहस्राणि गजानां भीमकर्मणाम् ॥२५॥

जघान गदया भीमस्तस्य राज्ञः परिच्छदम् ।

ततोऽन्येऽभिहता नागा रथाश्च शतशो बलात् ॥२६॥

उस मगधराज के साथ भयानक कर्म करने वाले दश सहस्र हाथी थे। भीमसेन ने उस राजा के सारे साथी इन हाथियों को अपनी गदा से मार २ कर बिछा दिया। भीमसेन ने इसी तरह अन्य भी बहुत से हाथी और सैंकड़ों रथ चकनाचूर कर डाले ॥२५-२६॥

तदेवं समरे पार्थ वर्तमाने महाभये ।

भीमसेनं समासाद्य त्वां च पाण्डव कौरवाः ॥२७॥

सवाजिरथमातङ्गा मृत्युलोकमितो गताः ।

तथा सेनामुखे तत्र निहते पार्थ पाण्डवैः ॥२८॥

भीष्मः प्रासृजदुग्राणि शरजालानि मारिष ।

हे अर्जुन! जब रण में महान् भय-उपस्थित हो गया और कौरव, तुम अर्जुन और भीमसेन से भयभीत होकर अपने हाथी अश्व और रथों के साथ मृत्यु लोक पहुँचनेलगे । हे आर्य ! अर्जुन इस समय पाण्डवों ने जब सेना के मुखपर महान विध्वंस मचा डाला-तो उस समय भीष्म ने बड़े उग्र बाणों की वर्षा करना आरम्भ किया ॥२७-२८॥

सचेदिकाशिपञ्चालान्करूषान्मत्स्यकेकयान् ॥२९॥

शरैः प्रच्छाद्य निधनमनयत्परमास्त्रवित् ।

अब अस्त्र विद्या के महान् विद्वान् भीष्म ने चेदी, काशी, पञ्चाल, करूष, मत्स्य, और केकय वीरों को बाणों से आच्छादित करके मृत्यु के घाट उतार दिया॥२९॥

तस्य चापच्युतैर्बाणैः परदेहविदारणैः ॥३०॥

पूर्णमाकाशमभवद्रुक्मपुङ्खैरजिह्मगैः ।

हन्याद्रथसहस्राणि एकैकेनैव मुष्टिना ॥३१॥

शत्रु के देह के चीर देने वाले, सुवर्ण मूलधारी सीधे जाने वाले भीष्म के धनुष से निकले हुए बाणों से आकाश भर गया। इस भीष्म ने एक ही बार मुट्ठी से धनुष पकड़ कर तुम्हारे दश २ सहस्र रथियों को मार गिराया ॥३१॥

लक्षं नरद्विपान्हत्वा समेतान्स महाबलान् ।
गत्या दशम्या ते गत्वा जघ्नुर्वाजिरथद्विपान् ॥३२॥
हित्वा नवगतीर्दुष्टाः स बाणानाहवेत्यजन् ।

इस भीष्म ने महाबली इकट्ठे ही नर और हाथियों की एक लक्ष संख्या का नाश कर दिया। उन्होंने दशवीं गति को प्राप्त हो कर हाथी अश्व और रथी मारकर नष्ट कर दिए। इसने युद्ध की साधारण नौ गति छोड़कर दशवीं गति से ही रण में बाण छोड़े ॥३२॥

दिनानि दश भीष्मेण निघ्नता तावकं बलम् ॥३३॥
शून्याः कृता रथोपस्था हताश्वगजवाजिनः ।
दर्शयित्वात्मनो रूपं रुद्रोपेन्द्रसमं युधि ॥३४॥
पाण्डवानामनीकानि प्रगृह्यासौ व्यशातयत् ।

दश दिन तक भीष्म ने तुम्हारी सेना का नाश किया। जिससे उसने सारे रथ के स्थान खाली कर दिए और अश्व, हाथी और घोड़े मार २ कर बिछा दिए। इसने युद्ध में अपना रूप, रुद्र और विष्णु के तुल्य प्रदर्शित किया। इस तरह पाण्डवों की सेना को दबा २ कर नष्ट कर डाला ॥३३-३४॥

विनिघ्नन्पृथिवीपालांश्चेदिपञ्चालकेकयान् ॥३५॥

अदहत्पाण्डवीं सेनां रथाश्वगजसंकुलाम् ।

मज्जन्तमप्लवे मन्दमुज्जिहीर्षुः सुयोधनम् ॥३६॥

हे अर्जुन! चेदी पञ्चाल और केकय वीरों के साथ अनेक राजाओं को मारकर रथ, अश्व, और गजों से भरी हुई पाण्डव सेनाको भीष्म ने भस्म कर दिया। ये बिना नौका के डूबते हुए मूर्ख दुर्योधन का उद्धार कर देना चाहता था ॥३५-३६॥

तथा चरन्तं समरे तपन्तमिव भास्करम् ।

पदातिकोटिसाहस्राः प्रवरायुधपाणयः ॥३७॥

न शेकुः सृञ्जया द्रष्टुं तथैवान्ये महीक्षितः ।

विचरन्तं तथा तं तु संग्रामे जितकाशिनम् ॥३८॥

महारथी भीष्म रण में प्रचण्ड सूर्य की तरह घूम रहे थे। उत्तम २ शस्त्रधारी करोड़ सहस्र सृञ्जय वीरों की पंक्ति और अन्य राजा रण में विजय की आकांक्षा से घूमते हुए भी भीष्म की ओर देख भी नहीं सके ॥३७-३८॥

सर्वोद्यमेन महता पाण्डवान्समभिद्रवत् ।

स तु विद्राव्य समरे पाण्डवान्सृञ्जयानपि ॥३९॥

एक एव रणे भीष्म एकवीरत्वमागतः ।

भीष्म ने सब कुछ शक्ति लगाकर पाण्डवों पर आक्रमण किया था। ये रण में पाण्डव और सृञ्जय वीरों के छक्के छुटाकर

रण में अकेले ही घूमते थे, जिससे यही माना गया कि सर्वोत्तम वीर अकेला भीष्म ही है ॥३६॥

तं शिखण्डी समासाद्य त्वया गुप्तो महाव्रतम् ॥४०॥
जघान पुरुषव्याघ्रं शरैः सन्नतपर्वभिः ।

इस महाव्रतशाली भीष्म के समीप तुमसे सुरक्षित होकर महारथी शिखण्डी पहुंचा और उसने अपने सन्नत पर्वधारी बाणों से इस पुरुषप्रवीर भीष्म को मार डाला ॥४०॥

स एष पतितः शेते शरतल्पे पितामहः ॥४१॥
त्वां प्राप्य पुरुषव्याघ्रं वृत्रः प्राप्येव वासवम् ।

हे अर्जुन ! जिस तरह इन्द्र के साथ युद्ध करके वृत्रासुर गिर गया था, उसी तरह तुझ पुरुष व्याघ्र अर्जुन से लड़कर ये भीष्म-पितामह भी आज रण में शर शय्या पर पड़े सो रहे हैं ॥४१॥

द्रोणः पञ्च दिनान्युग्रो विधम्य रिपुवाहिनीम् ॥४२॥
कृत्वा व्यूहमभेद्यं च पातयित्वा महारथान् ।
जयद्रथस्य समरे कृत्वा रक्षां महारथः ॥४३॥
अन्तकप्रतिमश्चोग्रो रात्रियुद्धेऽदहत्प्रजाः ।

उस पराक्रमी द्रोणाचार्य ने भी पांच दिन तक अपने शत्रु पाण्डवों की सेना का विध्वंस उड़ा दिया । उसने भी अपनी सेना का अभेद्यव्यूह रचा था और तुम्हारे बहुत से महारथियों को मार गिराया था इसी महारथी ने राजा जयद्रथ की रक्षा करते हुए रण

में अन्तक के समान पराजय दिखाया और रात्रियुद्ध में सारी सेना भस्म कर डाली ॥४२-४३॥

दग्ध्वा योधाञ्छरैर्वीरो भारद्वाजः प्रतापवान् ॥४४॥
धृष्टद्युम्नं समासाद्य स गतः परमां गतिम् ।

यह भरद्वाजपुत्र महाप्रतापी वीर श्रेष्ठ द्रोणाचार्य, अपने बाणों से पाण्डव वीरों को दग्ध करके धृष्टद्युम्न के साथ युद्ध करके परमगति को प्राप्त हुआ ॥४४॥

यदि चाद्य भवान्युद्धे सूतपुत्रमुखान्रथान् ॥४५॥
नावारयिष्यः संग्रामे न स्म द्रोणो व्यनंक्ष्यत ।

यदि तुमने घमसान रण में सूतपुत्र कर्ण आदि महारथियों को नहीं रोका होता-तो यह द्रोणाचार्य नष्ट नहीं होता ॥४५॥

भवता तु बलं सर्वं धार्तराष्ट्रस्य वारितम् ॥४६॥
ततो द्रोणो हतो युद्धे पार्षतेन धनञ्जय ।

आपने सारी कौरव सेना को ही रोक दिया था। हे धनञ्जय ! जब तुमने इतना कर दिया-तो पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न ने युद्ध में द्रोणाचार्य को मारा ॥४६॥

एवं वा को रणे कुर्यात्त्वदन्यः क्षत्रियो युधि ॥४७॥
यादृशं ते कृतं पार्थ जयद्रथवधं प्रति ।

हे पार्थ इस प्रकार युद्ध में तुमको छोड़कर अन्य कौन क्षत्रिय वीर ऐसा कर सकता है जैसा कि तुम ने राजा जयद्रथ के वध के समय पराक्रम कर दिखाया ॥४७॥

निवार्य सेनां महतीं हत्वा शूरांश्च पार्थिवान् ॥४८॥
निहतः सैन्धवो राजा त्वयास्त्रबलतेजसा ।

तुमने ही विशाल कौरव सेना को रोक कर और शूरवीर राजाओं को मार कर अपने अस्त्र बल के तेज से सिन्धुराज जयद्रथ को मार गिराया ॥४८॥

आश्चर्यं सिन्धुराजस्य वधं जानन्ति पार्थिवाः ॥४९॥
अनाश्चर्यं हि तत्त्वत्तस्त्वं हि पार्थ महारथः ।

राजा लोग, राजा जयद्रथ के वध को बड़ी आश्चर्य की दृष्टि से देखते हैं, परन्तु यह तुम्हारे लिए कोई आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि हे अर्जुन ! तुम बहुत बड़े महारथी हो ॥४९॥

त्वां हि प्राप्य रणे क्षत्रमेकाहादिति भारत ॥५०॥
नश्यमानमहं युक्तं मन्येयमिति मे मतिः ।

हे भारत ! यदि संसार के सारे क्षत्रिय भी मिल कर तुमसे युद्ध करने आजावें, तो तुम उन सब को एक ही दिन में नष्ट कर सकते हो-मुझे यह निश्चय है ॥५०॥

सेयं पार्थ चमूर्घोरा धार्तराष्ट्रस्य संयुगे ॥५१॥
हतसर्वस्ववीरा हि भीष्मद्रोणौ यदा हतौ ।
शीर्णप्रवरयोधाद्य हतवाजिरथद्विपा ॥५२॥
हीना सूर्येन्दुनक्षत्रैर्द्यौरिवाभाति भारती ।

हे अर्जुन ! अब तो रण में धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनकी घोर सेना का सारा सार नष्ट होचुका है। भीष्म द्रोण मरे इनके बहुत से उत्तम २ योद्धा नष्ट हुए तथा हाथी घोड़े और रथ नष्ट-भ्रष्ट हो चुके अब तो यह कौरव सेना सूर्य चन्द्र और नक्षत्रों से हीन आकाश के समान शून्य दिखाई देती है ॥५१-५२॥

विध्वस्ता हि रणे पार्थ सेनेयं भीमविक्रम ॥५३॥
आसुरीव पुरा सेना शक्रस्येव पराक्रमैः ।

हे भयानक पराक्रमकारी अर्जुन ! तुमने कौरव सेना को इस युद्ध में इस प्रकार से विनष्ट कर डाला, जैसे अपने पराक्रमसे इन्द्र ने पूर्वकाल में असुर सेना का नाश कर दिया था ॥५३॥

तेषां हतावशिष्टास्तु सन्ति पञ्च महारथाः ॥५४॥
अश्वत्थामा कृतवर्मा कर्णो मद्राधिपः कृपः ।
तांस्त्वमद्य नरव्याघ्र हत्वा पञ्च महारथान् ॥५५॥
हतामित्रः प्रयच्छोर्वीं राज्ञे सद्वीपपत्तनाम् ।
साकाशजलपातालां सपर्वतमहावनाम् ॥५६॥
प्राप्नोत्वमितवीर्यश्रीरद्य पार्थो वसुन्धराम् ।
एतां पुरा विष्णुरिव हत्वा दैतेयदानवान् ॥५७॥
प्रयच्छ मेदिनीं राज्ञे शक्रायैव हरिर्यथा ।

अब मारने से बचे हुए उन में पांच महारथी अश्वत्थामा, कृतवर्मा, कर्ण, मद्राधिपति शल्य और कृपाचार्य हैं। हे नर व्याघ्र ? तुम आज ही इन पांचों महारथियों का वध करके शत्रु रहित हो जाओ और इस द्वीप और नगरों से सुशोभित, आकाश, जल, पाताल, पर्वत और बड़े २ वनों से संयुक्त, इस पृथिवी को धर्मराज युधिष्ठिर को इस तरह सौंपदो—जैसे भगवान विष्णु इन्द्र के लिए स्वर्ग की भूमि सौंपते हैं ॥५४-५७॥

अद्य मोदन्तु पञ्चाला निहतेष्वरिषु त्वया ॥
विष्णुना निहतेष्वेव दानवेयेषु देवताः ॥५८॥

अब आज तुम्हारे शत्रुओं के मार गिराने पर पञ्चाल प्रसन्न होजावे-जैसे विष्णुद्वारा दानवों के मार लेने देवता प्रसन्न होते हैं

यदि वा द्विपदां श्रेष्ठं द्रोणं मानयतो गुरुम् ।
अश्वत्थाम्नि कृपा तेऽस्ति कृपे वाचार्यगौरवात् ॥५९॥
अत्यन्तापचितान्बन्धून्मानयन्मातृबान्धवान् ।
कृतवर्माणमासाद्य न नेष्यसि यमक्षयम् ॥६०॥
भ्रातरं मातुरासाद्य शल्यं मद्रजनाधिपम् ।
यदि त्वमरविन्दाक्ष दयावान्न जिघांससि ॥६१॥
इमं पापमतिं क्षुद्रमत्यन्तं पाण्डवान्प्रति ।
कर्णमद्य नरश्रेष्ठ जह्याः सुनिशितैः शरैः ॥६२॥
एतत्ते सुकृतं कर्म नात्र किञ्चन युज्यते ।
वयमप्यनुजानीमो नात्र दोषोऽस्ति कश्चन ॥६३॥

हे कमल के तुल्य नेत्रधारी अर्जुन ! यदि तुमने नर श्रेष्ठ, अपने गुरु द्रोणाचार्य का आदर किया और उन्हें न मारा। यदि तुम्हारी अश्वत्थामा पर दया है। कृपाचार्य को आचार्य मान कर उनका गौरव करते हो, तथा अत्यन्त छोटी शक्ति वाले अपने माता के सम्बन्धियों का आदर करते हुए कृतवर्मा को भी वृष्णिवंशोद्भव मान कर नहीं मारते हो एवं अपनी माता माद्री के भ्राता जान कर मद्रराज शल्य की ओर नहीं देखते और दयार्द्र होकर इनकी हिंसा नहीं करते हो-तो हे नर श्रेष्ठ ! पाण्डवों से सर्वदा द्वेष करने वाले, इस पाप बुद्धि कर्ण को तो अवश्य अपने तीक्ष्ण बाणों से आज नष्ट करो। यह तो तुम्हारा बड़ा पुण्यकार्य होगा। इस में तो कुछ भी रुकावट की बात नहीं है। हम लोग भी अनुमोदन करते हैं, कि इस में कुछ दोष नहीं है ॥५६-६३॥

दहने यत्सपुत्राया निशि मातुस्तवानघ।
द्यूतार्थे यच्च युष्मासु प्रावर्त्तत सुयोधनः ॥६४॥
तस्य सर्वस्य दुष्टात्मा कर्णो वै मूलमित्युत।
कर्णाद्धि मन्यते त्राणं नित्यमेव सुयोधनः ॥६५॥

हे अनघ ! जो तुम्हारे साथ लाक्षागृह में तुम्हारी माता को भस्म कर देना चाहता, तथा जुआ खेलने को जो राजा दुर्योधन तुमसे प्रवृत्त हुआ, इन सारे दुष्टकर्मों का बीज केवल यही कर्ण था। राजा दुर्योधन तो अपनी रक्षा नित्य कर्ण से ही मानता है ॥६४-६५॥

ततो मामपि संरब्धो निग्रहीतुं प्रचक्रमे ।
स्थिरा बुद्धिर्नरेन्द्रस्य धार्तराष्ट्रस्य मानद ॥६६॥
कर्णः पार्थान्रणे सर्वान्विजेष्यति न संशयः ।

इसी कर्ण के बल पर भूलकर क्रोधातुर दुर्योधनने मुझे सन्धि के समय पकड़ लेना चाहा। हे मानद ! धृतराष्ट्र पुत्र राजा दुर्योधन की यह बड़ी दृढ़ बुद्धि है, कि महारथी कर्ण, रणमें अवश्य पाण्डवों को जीतलेगा- इस में सन्देह नहीं है ॥६६॥

कर्णमाश्रित्य कौन्तेय धार्तराष्ट्रेण विग्रहः ॥६७॥
रोचितो भवता सार्धं जानतापि बलं तव ।
कर्णो हि भाषते नित्यमहं पार्थान्समागतान् ॥६८॥
वासुदेवं च दाशार्हं विजेष्यामि महारथम् ।

हे कौन्तेय ! कर्ण के आधार पर ही राजा दुर्योधन ने यह सारा युद्ध तुम्हारे साथ तुम्हारे बल को जानने पर भी छेड़ा है। यह कर्ण नित्य राजा दुर्योधन से कहता रहता है, कि मैं इकट्ठे ही पाण्डव और दशार्हवंशोद्भव, महारथी श्रीकृष्ण को जीत कर दिखादूंगा ॥६७-६८॥

प्रोत्साहयन्दुरात्मानं धार्तराष्ट्रं सुदुर्मतिम् ॥२६॥
समितौ गर्जते कर्णस्तमद्य जहि भारत ।

हे भारत ! दुरात्मा, मूर्ख दुर्योधन को महारथी कर्ण ही तो उकसाता रहता है और स्वयं भी सभा में गरजता रहता है। आज तुम उसी कर्ण का नाश करो ॥६६॥

यच्च युष्मासु पापं वै धार्तराष्ट्रः प्रयुक्तवान् ॥७०॥
तत्र सर्वत्र दुष्टात्मा कर्णः पापमतिर्मुखम् ।

जो कुछ पाप कार्य का व्यवहार तुम्हारे साथ राजा दुर्योधन ने किया है, उस सबका कारण यही दुष्टात्मा, पाप बुद्धि कर्ण ही है ॥७०॥

यच्च तद्धार्तराष्ट्रस्य क्रूरैः षड्भिर्महारथैः ॥७१॥
अपश्यं निहतं वीरं सौभद्रमृषभेक्षणम् ।
द्रोणद्रौणिकृपान्वीरान्कर्षयन्तं नरर्षभान् ॥७२॥
निर्मनुष्यांश्च मातङ्गान्विरथांश्च महारथान् ।
व्यश्वारोहांश्च तुरगान्पत्तीन्व्यायुधजीविनः ॥७३॥
कुर्वन्तमृषभस्कन्धं कुरुवृष्णियशस्करम् ।
विधमन्तमनीकानि व्यथयन्तं महारथान् ॥७४॥
मनुष्यवाजिमातङ्गान्प्राहिण्वन्तं यमक्षयम् ।
शरैः सौभद्रमायान्तं दहन्तमिव वाहिनीन् ॥७५॥
तन्मे दहति गात्राणि सखे सत्येन ते शपे ।
यत्तत्रापि च दुष्टात्मा कर्णोऽभ्यद्रुह्यत प्रभो ॥७६॥

वृषभ के समान नेत्र धारी द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, कृपाचार्य आदि बड़े २ महारथियों को दबाते हुए, मनुष्य, हाथी और रथ से हीन रणभूमि को बनाते और महारथियों को नष्ट करते हुए

अश्वारोहियों से रहित अश्व, शस्त्र रहित पैदल सैनिकों को बनाते हुए कुरुवंश और वृष्णिवंश की कीर्ति के करने वाले वृषभ के समान स्कन्ध धारी सेना का नाश और महारथियों को पीड़ित करते हुए तथा मनुष्य, अश्व और हाथियों को यमराज के घर भेजने वाले अपने बाणों से सेना को दग्ध करते हुए और कौरव सेना पर चढ़े चले आते हुए सुभद्रा का पुत्र अभिमन्यु को जो मैंने मरा हुआ रण में देखा, उसमें भी दुष्टात्मा कर्ण का द्वेष ही सबसे प्रधान था। मैं सत्य ही शपथ खाकर कहता हूँ यह बात मेरे शरीर को बड़ी ही दग्ध कर रही है ॥७१-७६॥

अशक्नुवंश्चाभिमन्योः कर्णः स्थातुं रणेऽग्रतः।
सौभद्रशरनिर्भिन्नो विसंज्ञः शोणितोक्षितः ॥७७॥
निःश्वसन्क्रोधसन्दीप्तो विमुखः सायकार्दितः।
अपयानकृतोत्साहो निराशश्चापि जीविते ॥७८॥
तस्थौ सुविह्वलः सङ्ख्ये प्रहारजनितश्रमः।
अथ द्रोणस्य समरे तत्कालसदृशं तदा ॥७९॥
श्रुत्वा कर्णो वचः क्रूरं ततश्चिच्छेद कार्मुकम्।

हे भारत! अभिमन्यु के सन्मुख जब रण में महारथी कर्ण स्थित न हो सका और सुभद्रा पुत्र अभिमन्यु के बाणोंसे बिंध कर वह रक्त में भीग गया और अचेतसा हो गया तथा भागने की चेष्टा करने लगा। जीवन की कोई आशा न रही, प्रहार जनित पीड़ा को बड़े व्याकुलता के साथ सहता हुआ जैसे-तैसे रण में

स्थित रहा तो द्रोणाचार्य के क्रूर वचन मानकर रण में इसी कर्ण ने उस समय के योग्य अभिमन्यु के धनुष को काट डाला ॥७७-७६॥

ततश्छिन्नायुधं तेन रणे पञ्च महारथाः ॥८०॥

तं चैव निकृतिप्रज्ञाः प्राहरञ्छरवृष्टिभिः ।

अब कर्ण ने अभिमन्यु का धनुष काट दिया तो वह शस्त्र हीन हो गया तो पांच महारथियों ने युद्ध धर्म के विरुद्ध बाणों की झड़ी लगा कर उस वीर बालक अभिमन्यु को मारगिराया ॥८०॥

तस्मिन्विनिहते वीरे सर्वेषां दुःखमाविशत् ॥८१॥

प्राहसत्स तु दुष्टात्मा कर्णः स च सुयोधनः ।

इस वीर श्रेष्ठ बालक के मारेजाने पर सब वीरों को दुःख हुआ परन्तु यह दुष्टात्मा कर्ण और दुर्योधन दोनों हँसने लगे ॥८१॥

यच्च कर्णोऽब्रवीत्कृष्णां सभायां परुषं वचः ॥८२॥

प्रमुखे पाण्डवेयानां कुरूणां च नृशंसवत् ।

विनष्टाः पाण्डवाः कृष्णे शाश्वतं नरकं गताः ॥८३॥

पतिमन्यं पृथुश्रोणि वृणीष्व मृदुभाषिणि ।

एषा त्वं धृतराष्ट्रस्य दासीभूता निवेशनम् ॥८४॥

प्रविशारालपद्माक्षि न सन्ति पतयस्तव ।

न पाण्डवाः प्रभवन्ति तव कृष्णे कथञ्चन ॥८५॥

दासभार्या च पाञ्चालि स्वयं दासी च शोभने ।

कर्ण ने सभा में द्रौपदी से सारे कौरव और पाण्डवों के सन्मुख नीच की तरह ये क्रूर वचन कहे कि-हे कृष्णे ! अब पाण्डव नष्ट हो चुके यह तो सदा को दुर्गति में फँस गये। हे श्रोणि ! मृदु भाषिणि ! अब तुम दूसरा पति वरलो। अब तो तुम राजा दुर्योधन की दासी बनचुकी। हे ताखे नेत्र वालो ! अब तुम इनके महलों में प्रवेश करो। ये तुम्हारे पति (रक्षक) नहीं रह सके हैं। हे कृष्णे ! अब ये पाण्डव कभी तुम्हारी रक्षा में समर्थ नहीं हो सकते, हे सुन्दरी ! द्रौपदी ! अब तुम दास की भार्या होने से स्वयं दासी हो गई हो ॥८२-८४॥

अद्य दुर्योधनो ह्येकः पृथिव्यां नृपतिः स्मृतः ॥८६॥
सर्वे चास्य महीपाला योगक्षेममुपासते ।

आज पृथिवी पर राजा दुर्योधन का एक छत्र राज्य है। ये सारे महीपाल इसकी सेवा में लगे हुए इसकी कृपा की अभिलाषा करते हैं ॥८६॥

पश्येदानीं यथा भद्रे विनष्टाः पाण्डवाः समम् ॥८७॥
अन्योन्यं समुदीक्षन्ते धार्तराष्ट्रस्य तेजसा ।
व्यक्तं षण्ढतिला ह्येते न पुरेव निमज्जिताः ॥८८॥
प्रेष्यवच्चापि राजानमुपस्थास्यन्ति कौरवम् ।

हे भद्रे ! अब तुम स्वयं देखलो कि सारे पाण्डव एक साथ नष्ट हो गये हैं। ये धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधन के तेज से दबे हुए परस्पर एक दूसरे को ओर देख

रहे हैं। ये तो स्पष्ट नपुंसक हो रहे हैं, इनमें पूर्व का सा पराक्रम कहां है। अब यह सदा को विपत्तिमें फंसगए। ये तो सदा कुरुराज दुर्योधन के सन्मुख काल की तरह उपस्थित होते रहेंगे ॥८७-८८॥

इत्युक्तवानधर्मज्ञस्तदा परमदुर्मतिः ॥८९॥
पापः पापवचः कर्णः शृण्वतस्तव भारत।

हे भारत! तुम्हारे सुनते २ यह सब कुछ इस पापी दुर्मति, धर्महीन, कर्ण ने पापपूर्ण वचन कहे थे ॥८९॥

अद्य पापस्य तद्वाक्यं सुवर्णविकृताः शराः ॥९०॥
शमयन्तु शिलाधौतास्त्वयास्ता जीवितच्छिदः।

हे अर्जुन! आज तुम सुवर्णोज्ज्वल, शिला पर तीक्ष्ण किए हुए अपने बाणों से कर्ण का जीवन नष्ट कर डालो ॥९०॥

यानि चान्यानि दुष्टात्मा पापानि कृतवांस्त्वयि ॥९१॥
तानद्य जीवितं चास्य शमयन्तु शरास्तव।

इस दुष्टात्मा कर्ण ने जो कुछ अन्य पाप किए हैं, उन सब की शान्ति के लिए ये तेरे बाण उसके जीवन को नष्ट करदें ॥९१॥

गाण्डीवप्रहितान्घोरानद्य गात्रैः स्पृशञ्छरान् ॥९२॥
कर्णः स्मरतु दुष्टात्मा वचनं द्रोणभीष्मयोः।

आज गाण्डीव से छोड़े हुए घोर बाणों से जब कर्ण का शरीर छिद जावे-तो यह दुष्टात्मा कर्ण आज भीष्म और द्रोण के पूर्वोक्त वचनों का स्मरण कर सकेगा ॥९२॥

सुवर्णपुङ्खा नाराचाः शत्रुघ्ना वैद्युतप्रभाः ॥६३॥
त्वयास्तास्तस्य वर्माणि भित्त्वा पास्यन्ति शोणितम् ।

हे पार्थ ! सुवर्ण मूलधारी, शत्रुनाशक, बिजली के तुल्य चमकीले, तुम्हारे द्वारा छोड़े हुए नाराच संज्ञक बाण कर्ण के कवच को बींध कर उसके रक्त को चाट जाने चाहिए ॥६३॥

उग्रास्त्वद्भुजनिर्मुक्ता मर्म भित्त्वा महाशराः ॥६४॥
अद्य कर्णं महावेगाः प्रेषयन्तु यमक्षयम् ।

हे कौन्तेय ! तेरी भुजा से निकले हुए बड़े २ वेग वाले तेरे उग्र बाण, कर्ण के मर्मों को बींध कर उसे यमराज के घर भेजदेवें ॥६४॥

अद्य हाहाकृता दीना विषण्णास्त्वच्छरार्दिताः ॥६५॥
प्रपतन्तं रथात्कर्णं पश्यन्तु वसुधाधिपाः ।

आज तुम्हारे बाणों से पीड़ित हुए हीन होकर कौरव पक्ष के राजा दुःख के साथ हाहाकार मचावें और वे अपनी आंखों से रथ से गिरते हुए कर्ण को देखें ॥६५॥

अद्य शोणितसम्मग्नं शयानं पतितं भुवि ।
अपविद्धायुधं कर्णं दीनाः पश्यन्तु बान्धवाः ॥६६॥

आज कर्ण के प्रेमी बान्धव, उसे रक्त में सने और पृथिवी में पड़े हुए शस्त्रहीन कर्ण को बड़ी दीनता के साथ देखें ॥६६॥

हस्तिकक्षो महानस्य भल्लेनोन्मथितस्त्वया ।
प्रकम्पमानः पततु भूमावपि रथध्वजः ॥९७॥

हे पार्थ ! अपने भल्ल नामक बाण से काट कर हाथी की शृङ्खला के चिन्ह से युक्त कर्ण रथ की ध्वजा कांपती हुई पृथिवी में गिर जानी चाहिए ॥९७॥

त्वया शरशतैश्छिन्नं रथं हेमविभूषितम् ।
हतयोधाश्वमुत्सृज्य भीतः शल्यः पलायताम् ॥९८॥

तुम्हारे सैंकड़ों बाणों से छिन्न भिन्न, सुवर्णोज्ज्वल, अश्व और रथी से हीन कर्ण के रथ को छोड़ कर सारथि सूत मद्रराज शल्य आज भागना चाहिए ॥९८॥

त्वं चेत्कर्णसुतं पार्थ सूतपुत्रस्य पश्यतः ।
प्रतिज्ञावारणार्थाय निहनिष्यसि सायकैः ॥९९॥
हतं कर्णस्तु तं दृष्ट्वा प्रियं पुत्रं दुरात्मवान् ।
स्मरतां द्रोण भीष्माभ्यां वचः क्षत्तुश्च मानद ॥१००॥

हे पार्थ ! यदि तुम अपनी प्रतिज्ञापूर्ण करने के निमित्त सूतपुत्र कर्ण के देखते २ अपने बाणों से कर्ण के पुत्र वृषसेन को मार लोगे-तो दुरात्मा कर्ण, अपने पुत्र के मारे जाने को देखकर अवश्य आज द्रोण, भीष्म और विदुर के वचनों का स्मरण करेगा ॥९९-१००॥

ततः सुयोधनो दृष्ट्वा हतमाधिरथिं त्वया ।
निराशो जीविते त्वद्य राज्ये चैव भवत्वरिः ॥१०१॥

आज अधिरथ पुत्र कर्ण को मृतक देखकर शत्रुभूत राजा दुर्योधन अपने जीवन और राज्य के विषय में निराश होजाना चाहिए ॥१०१॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला वध्यमानाः शितैः शरैः।

कर्णेन भरतश्रेष्ठ पाण्डवानुज्जिहीर्षवः ॥१०२॥

हे भरतश्रेष्ठ ! कर्ण द्वारा तीक्ष्ण बाणों से मारे हुए ये पञ्चाल भागरहे हैं, जो तुम पाण्डवों का विपत्ति से उद्धार करना चाहते थे ॥१०२॥

पञ्चालान्द्रौपदेयांश्च धृष्टद्युम्नशिखण्डिनौ ।

धृष्टद्युम्नतनूजांश्च शतानीकं च नाकुलिम् ॥१०३॥

नकुलं सहदेवं च दुर्मुखं जनमेजयम् ।

सुधर्माणं सात्यकिं च विद्धि कर्णवशङ्गतान् ॥१०४॥

पञ्चाल, द्रुपदपुत्र धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, द्रौपदी पुत्र, धृष्टद्युम्न पुत्र, नकुल पुत्र शतानीक, नकुल सहदेव, दुर्मुख, जनमेजय, सुधर्मा, और सात्यकि को तो तुम कर्ण के वश में हुए ही समझो ॥१०३-१०४॥

अभ्याहतानां कर्णेन पञ्चालानामसौ रणे ।

श्रूयते निनदो घोरस्त्वद्बन्धूनां परन्तप ॥१०५॥

हे परन्तप ! कर्ण के द्वारा क्षत विक्षत किए गए पञ्चालों और तुम्हारे बन्धुओं का यह रण में घोर आर्तनाद सुनाई देरहा है ॥

नत्वेव भीताः पञ्चालाः कथञ्चित्स्युः पराङ्मुखाः ।
नहि मृत्युं महेष्वासा गणयन्ति महारणे ॥१०६॥

ये पञ्चाल वीर कभी युद्ध से विमुख होने वाले नही हैं। ये महाधनुर्धर महारण में मृत्यु का भी भय नहीं मानते हैं ॥१०६॥

य एकः पाण्डवीं सेनां शरौघैः समवेष्टयत् ।
तं समासाद्य पञ्चाला भीष्मान्नासन्पराङ्मुखाः ॥१०७॥
ते कथं कर्णमासाद्य विद्रवेयुर्महारथाः ।
यस्त्वेकः सर्वपञ्चालानहन्यहनि नाशयन् ॥१०८॥
कालवच्चरते वीरः पञ्चालानां रथव्रजे ।
तमप्यासाद्य समरे मित्रार्थे मित्रवत्सलाः ॥१०९॥
तथा ज्वलन्तमस्त्राग्निं गुरुं सर्वधनुष्मताम् ।
निर्दहन्तं च समरे दुर्धर्षं द्रोणमोजसा ॥११०॥
ते नित्यमुदिता जेतुं मृधे शत्रूनरिन्दम ।
न जात्वाधिरथेर्भीताः पञ्चालाः स्युः पराङ्मुखाः ॥१११
तेषामापततां शूरः पञ्चालानां तरस्विनाम् ।
आदत्तासून्शरैः कर्णः पतङ्गानामिवानलः ॥११२॥

जिस अकेले भीष्म ने पाण्डव सेना को अपने बाणों से लपेट लिया था, उस भीष्म के सन्मुख भी पञ्चाल वीर, रण से विमुख नहीं हुए। तब तो वे पञ्चाल महारथी, कर्ण के सामने कैसे भी नहीं भागे। अकेला ही वीर नित्य प्रति द्रोण पञ्चालों को मार र

कर बिछा रहा था और पञ्चालों के रथसमूह में काल की तरह घूमता रहता था-मित्रवत्सल पाञ्चाल उसके सन्मुख भी मित्रकार्य को प्रधान मान कर नहीं हटे। सारे धनुर्धरों का गुरु, अस्त्ररूपी अग्नि से युक्त, सब को भस्म करते हुए दुर्धर्ष द्रोणाचार्य का भी अपने ओज से नित्य प्रसन्नताके साथ पञ्चाल वीर मुकाबिला करते रहते थे। हे अरिमर्दन ! वे शत्रुओं के जीतने का लगातार प्रयत्न करते रहे। उस समय भी कभी अधिरथ पुत्र कर्ण से डर कर पञ्चाल वीर रण से विमुख नहीं हुए। परन्तु अब जब वेगशाली पञ्चाल शूरवीर कर्ण पर आक्रमण करते हैं-तो कर्ण अपने बाणों से इस तरह इनके प्राणों का अपहरण कर लेता है, जैसे अग्नि पतङ्गों को भस्म कर देता है ॥१०७-११२॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला द्राव्यन्ते योधिभिर्ध्रुवम्।
कर्णेन भरतश्रेष्ठ पश्य पश्य तथा कृतान् ॥११३॥

अब तो ये पाञ्चाल वीर स्वयं भाग रहे हैं, और बड़े २ योद्धाओं द्वारा भगाये जारहे हैं। हे भरत श्रेष्ठ ! कर्ण से की हुई इनकी दुर्दशा तो देखो ॥११३॥

तांस्तथाभिमुखान्वीरान्मित्रार्थे त्यक्तजीवितान्।
क्षयं नयति राधेयः पञ्चालाञ्छतशो रणे ॥११४॥

अपने मित्र धर्मराज के लिए प्राणों का मोह छोड़ कर युद्ध करने वाले सन्मुख स्थित इन पञ्चाल वीरों को देखकर रण में सैंकड़ों की सङ्ख्या में कर्ण मार २ कर बिछा रहा है ॥११४॥

तद्भारत महेष्वासानगाधे मज्जतोऽप्लवे ।
कर्णार्णवे प्लवो भूत्वा पञ्चालांस्त्रातुमर्हसि ॥११५॥

हे भारत! अब बिना रक्षक के ये पञ्चाल वीर कर्णरूपी समुद्र में इस तरह डूबे जारहे हैं जैसे विना नौका के कोई समुद्रमें डूबता हो। अबतुम इनकी नौका बनकर पञ्चालों की रक्षाकरो॥११५॥

अस्त्रं हि रामात्कर्णेन भार्गवादृषिसत्तमात् ।
यदुपात्तं महाघोरं तस्य रूपमुदीर्यते ॥११६॥

कर्णने जो भृगुवंशश्रेष्ठ, महर्षि परशुराम से अस्त्रविद्या सीखी है, आज उसी महाघोर अस्त्र विद्या का चमत्कार प्रकट कर रहा है॥११६॥

तापनं सर्वसैन्यानां घोररूपं सुदारुणम् ।
समावृत्य महासेनां ज्वलन्तं स्वेन तेजसा ॥११७॥

यह सारी सेना का सन्तापजनक घोररूप धारी दारुण कर्ण का अस्त्र है, जो सारी सेना को घेरकर अपने तेज से प्रज्वलित हो रहा है ॥११७॥

एते चरन्ति संग्रामे कर्णचापच्युताः शराः ।
भ्रमराणामिव व्रातास्तापयन्ति स्म तावकान् ॥११८॥

हे अर्जुन! कर्ण के धनुष से निकले हुए बाण, संग्राम में उड़ रहे हैं जो भ्रमरों के समूह के तुल्य दिखाई देते हैं जिन से तुम्हारे योद्धा अत्यन्त सन्तापित होरहे हैं ॥११८॥

एते द्रवन्ति पञ्चाला दिक्षु सर्वासु भारत।

कर्णास्त्रं समरे प्राप्य दुर्निवार्यमनात्मभिः ॥११६॥

हे भारत! आज सारे पञ्चाल वीर सारी दिशाओं में इस कर्ण के दुर्वार अस्त्र को पाकर भाग रहे हैं। इसको साधारण मनुष्य, कभी नहीं रोक सकते हैं ॥११६॥

एष भीमो दृढक्रोधो वृतः पार्थ समन्ततः।

सृञ्जयैर्योधयन्कर्णं पीड्यते निशितैः शरैः ॥१२०॥

हे पार्थ! यह भीम बड़ा क्रोधी है, और अभी कर्ण से युद्ध कर ही रहा है। इसको सृञ्जय वीरों ने घेर रखा है, परन्तु यह भी कर्ण के तीक्ष्ण बाणों से घायल हो चुका है ॥१२०॥

पाण्डवान्सृञ्जयांश्चैव पञ्चालांश्चैव भारत।

हन्यादुपेक्षितः कर्णो रोगो देहमिवागतः ॥१२१॥

हे भारत! अब तुम पाण्डव, सृञ्जय और पञ्चालों की रक्षा करो, यदि तुमने उपेक्षा की-तो देह को रोग की तरह कर्ण इन सब को मार गिरावेगा ॥१२१॥

नान्यं त्वत्तो हि पश्यामि योधं यौधिष्ठिरे बले।

यः समासाद्य राधेयं स्वस्तिमानाव्रजेद्गृहम् ॥१२२॥

मैं तो राजा युधिष्ठिर की सेना में अन्य किसी वीर को नहीं देखता, जो राधापुत्र कर्ण के सन्मुख जाकर भी अक्षत घर को लौट आवे ॥१२२॥

तमद्य निशितैर्बाणैर्विनिहत्य नरर्षभ ।
यथाप्रतिज्ञं पार्थ त्वं कृत्वा कीर्तिमवाप्नुहि ॥१२३॥

हे भरतर्षभ ! आज तुम अपने तीक्ष्ण बाणों से अपनी प्रतिज्ञानुसार कर्ण को मार कर जगत् में कीर्ति को प्राप्त करो ॥१२३॥

त्वं हि शक्तो रणे जेतुं सकर्णानपि कौरवान् ।
नान्यो युधि युधां श्रेष्ठ सत्यमेतद्ब्रवीमि ते ॥१२४॥

हे योद्धाओं में श्रेष्ठ अर्जुन ! तुम तो रण में सारे कौरव वीरों के सहित कर्ण के जीत लेनेमें भी समर्थ हो, अन्य कोई ऐसा वीर नहीं है-यह मैं सत्य कहता हूँ ॥१२४॥

एतत्कृत्वा महत्कर्म हत्वा कर्णं महारथम् ।
कृतार्थः सफलः पार्थ सुखी भव नरोत्तम ॥१२५॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि कृष्णावाक्ये त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

हे पार्थ ! तुम महारथी कर्ण के वध रूप इस महा कर्म को करके कृतार्थ और सफल हो जाओ। हे नरोत्तम ! यही अपने और अपने बान्धवों को सुखी बनाने का समय है ॥१२५॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में कृष्ण द्वारा अर्जुन के उत्तेजित करने का तेहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ।

चौहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

स केशवस्य बीभत्सुः श्रुत्वा भारत भाषितम् ।
विशोकः सम्प्रहृष्टश्च क्षणेन समपद्यत ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भारत ! अब श्रीकृष्ण के ये वचन सुनकर अर्जुन क्षण भर शोक रहित आनन्दोल्लासित हो गया ॥१॥

ततो ज्यामभिमृज्याशु व्याक्षिपद्गाण्डिवं धनुः ।
दध्रे कर्णविनाशाय केशवं चाभ्यभाषत ॥२॥

अब उनने धनुष की प्रत्यञ्चा खैंच कर गाण्डीव धनुष को बजाया। इस प्रकार अपने गाण्डीव धनुष को सुसज्जित करके श्रीकृष्ण से कहा ॥२॥

त्वया नाथेन गोविन्द ध्रुव एव जयो मम ।
प्रसन्नो यस्य मेऽद्य त्वं लोके भूतभविष्यकृत् ॥३॥

हे गोविन्द ! जब आप हमारे स्वामी विद्यमान हो-तो हमारा अवश्य जय होगा। तुम ही भूत भविष्य के कर्ता हो-जब तुम प्रसन्न हो-तो क्या नहीं होगा ॥३॥

त्वत्सहायो ह्यहं कृष्ण त्रीँल्लोकान्वै समागतान् ।
प्रापयेयं परं लोकं किमु कर्णं महाहवे ॥४॥

हे कृष्ण ! यदि तुम्हारी सहायता मेरे ऊपर रही-तो मैं इकट्ठे होकर आए हुए भी त्रिलोकी के वीरों को महा घोर रण में जीत सकता हूँ, फिर कर्ण की तो गणना ही क्या है ॥४॥

पश्यामि द्रवतीं सेनां पञ्चालानां जनार्दन ।
पश्यामि कर्णं समरे विचरन्तमभीतवत् ॥५॥

हे जनार्दन ! मैं अवश्य पाञ्चालों की सेना को भागती देख रहा हूं और महारथी कर्ण को भी निर्भीक भाव से रण में घूमता देख रहा हूं ॥५॥

भार्गवास्त्रं च पश्यामि ज्वलन्तं कृष्ण सर्वशः ।
सृष्टं कर्णेन वार्ष्णेय शक्रेणेव यथाशनिम् ॥६॥

हे वृष्णिवंश श्रेष्ठ ! कृष्ण ! इन्द्र द्वारा छोड़े हुए वज्र के सदृश कर्ण द्वारा छोड़े हुए सब ओर जाज्वल्यमान भार्गवास्त्र को भी मैं देख रहा हूं ॥६॥

अयं खलु स संग्रामो यत्र कर्णं मया हतम् ।
कथयिष्यन्ति भूतानि यावद्भूमिर्धरिष्यति ॥७॥

आज यह वही संग्राम है, जिसमें कर्ण को मैं मारकर रहूँगा और इस कथा को सारे प्राणी तब तक गायेंगे-जब तक भूमि रहेगी ॥७॥

अद्य कृष्ण विकर्णा मे कर्णं नेष्यन्ति मृत्यवे ।
गाण्डीवमुक्ताः क्षिण्वन्तो मम हस्तप्रचोदिताः ॥८॥

हे कृष्ण ! आज कान तक गाण्डीव धनुष खैंचकर मेरे हाथ से छोड़े हुए बाण कर्ण को घायल करके मृत्यु के अधीन करके रहेंगे ॥८॥

अद्य राजा धृतराष्ट्रः स्वां बुद्धिमवमंस्यते ।
दुर्योधनमराज्यार्हं यया राज्येऽभ्यषेचयत् ॥९॥

आज राजा धृतराष्ट्र, अपनी बुद्धि की त्रुटि का पता जावेंगे, कि उन्होंने राज्य के अयोग्य राजा दुर्योधन को राज सिंहासन पर आरूढ़ कर दिया है ॥९॥

अद्य राज्यात्सुखाच्चैव श्रियो राष्ट्रात्तथा पुरात् ।
पुत्रेभ्यश्च महाबाहो धृतराष्ट्रो विमोक्ष्यति ॥१०॥

हे महाबाहो ! राजा धृतराष्ट्र, राज्य, सुख, राज्य लक्ष्मी, राष्ट्र, पुर तथा पुत्रों से सदा के लिए विमुक्त हो जावेगा ॥१०॥

गुणवन्तं हि यो द्वेष्टि निर्गुणं कुरुते प्रभुम् ।
स शोचति नृपः कृष्ण क्षिप्रमेवागते क्षये ॥११॥

हे कृष्ण ! जो राजा अपने स्थान पर गुणवान् का तिरस्कार करके निर्गुण पुरुष को बैठा देता है, तब विपत्ति आने पर अन्त में उसे पछताना पड़ता है ॥११॥

यथा च पुरुषः कश्चिच्छित्त्वा चाम्रवणं महत् ।
फलं दृष्ट्वा भृशं दुःखी भविष्यति जनार्दन ।
सूतपुत्रे हते त्वद्य निराशो भविता प्रभुः ॥१२॥

हे जनार्दन ! जैसे कोई आम के वन को काट कर और उसके फल को देखकर अत्यन्त दुःखी होता है, वही दशा आज राजा धृतराष्ट्र की होगी । वह सूत-पुत्र कर्ण को मृत देख कर विजय में बिल्कुल निराश हो जावेंगे ॥१२॥

अद्य दुर्योधनो राज्याज्जीविताच्च निराशकः ।
भविष्यति हते कर्णे कृष्ण सत्यं ब्रवीमि ते ॥१३॥

हे कृष्ण ! आज ही राजा दुर्योधन भी अपने राज्य और जीवन से निराश हो जावेगा-जब कि मैं कर्ण को मारलूंगा । यह तुमसे मैं सत्य कहता हूं ॥१३॥

अद्य दृष्ट्वा मया कर्णं शरैर्विशकलीकृतम् ।
स्मरतां तव वाक्यानि शमं प्रति जनेश्वर ॥१४॥

हे जनेश्वर ! जब आज मैं अपने बाणों से कर्ण के शरीर को जर्जरित कर दूंगा-तो जो तुमने सन्धि के समय वचन कहे थे उनको राजा दुर्योधन याद करेगा ॥१४॥

अद्यासौ सौबलः कृष्ण ग्लहाञ्जानातु वै शरान् ।
दुरोदरं च गाण्डीवं मण्डलं च रथं प्रति ॥१५॥

हे कृष्ण ! जब मैं कर्ण के रथ की ओर अपने धनुष का मण्डल बनादूंगा-तो उस समय सुबल पुत्र शकुनि को मेरे बाण जुआ का दाव और मेरा गाण्डीव धनुष जुआ का खेल बन जावेगा ॥१५॥

अद्य कुन्तीसुतस्याहं दृढं राज्ञः प्रजागरम् ।
व्यपनेष्यामि गोविन्द हत्वा कर्णं शितैः शरैः ॥१६॥

हे गोविन्द ! कुन्ती-पुत्र राजा युधिष्ठिर के रात २ भर जागते रहने की सारी बीमारी को आज मैं अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को मारकर दूर करदूंगा ॥१६॥

अद्य कुन्तीसुतो राजा हते सूतसुते मया।
सुप्रहृष्टमनाः प्रीतश्चिरं सुखमवाप्स्यति ॥१७॥

आज जब मैं सूत-सुत कर्ण को मारलूंगा-तो कुन्ती सुत धर्म राज, अत्यन्त प्रसन्न होगा और वह चिरकाल के लिए सुख प्राप्त करेगा ॥१७॥

अद्य चाहमनाधृष्यं केशवाप्रतिमं शरम्।
उत्स्रक्ष्यामीह यः कर्णं जीविताद्भ्रंशयिष्यति ॥१८॥

हे केशव! मैं आज ऐसा दुर्धर्ष धनुष बाण छोड़ूंगा, जो कर्ण को जीवन से मुक्त किये बिना न रहेगा ॥१८॥

यस्य चैतद्व्रतं मह्यं वधे किल दुरात्मनः।
पादौ न धावये तावद्यावद्धन्यां न फाल्गुनम् ॥१९॥
मृषा कृत्वा व्रतं तस्य पापस्य मधुसूदन।
पातयिष्ये रथात्कायं शरैः सन्नतपर्वभिः ॥२०॥

दुरात्मा कर्ण की मेरे वध के विषय में यह प्रतिज्ञा बताई जाती है, कि मैं जब तक अर्जुन को नहीं मारलूंगा-तब तक पैर नहीं धोऊँगा। हे मधूसूदन! मैं आज उस पापी के व्रत को मिथ्या करके रहूंगा और अपने नत पर्वधारी बाणों से उसके शरीर को रथ से नीचे गिरादूंगा ॥२०॥

योऽसौ रणे नरं नान्यं पृथिव्यामनुमन्यते।
तस्याद्य सूतपुत्रस्य भूमिः पास्यति शोणितम् ॥२१॥

जो राजा कर्ण अपने समान रण में किसी दूसरे वीर को नहीं मानता है, उसी सूत-पुत्र कर्ण के रक्त का आज भूमि पान करेगी ॥२१॥

अपतिर्ह्यसि कृष्णेति सूतपुत्रो यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रमते कर्णः श्लाघमानः स्वकान्गुणान् ॥२२॥
अनृतं तत्करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ।
आशीविषा इव क्रुद्धास्तस्य पास्यन्ति शोणितम् ॥२३॥

हे कृष्ण ! कर्ण ने जो ये वचन कहे ये-कि हे कृष्णे ! तू अब पतिहीन हो चुकी है और वह अपने गुणों की प्रशंसा करता रहा, जिसको राजा धृतराष्ट्र भी मानता रहा, आज उसके गुण की गाथा को ये मेरे तीक्ष्ण बाण मिथ्या कर देंगे। ये क्रुद्ध हुए सर्प के समान लपकते हुए उसके रक्त को अवश्य चाट जावेंगे ॥२२-२३॥

मया हस्तवता मुक्ता नाराचा वैद्युतत्विषः ।
गाण्डीवसृष्टा दास्यन्ति कर्णस्य परमां गतिम् ॥२४॥

बाहुबलशाली मुझ अर्जुन के हाथ से निकले हुए बिजली की सी कान्ति वाले गाण्डीव मुक्त नाराच, कर्ण को परम गति देकर ही शान्त होंगे ॥२४॥

अद्य तप्स्यति राधेयः पाञ्चालीं यत्तदाब्रवीत् ।
सभामध्ये वचः क्रूरं कुत्सयन्पाण्डवान्प्रति ॥२५॥

आज राधा-पुत्र कर्ण को अपने उन वचनों पर पश्चाताप होगा जो उसने पञ्चाल राज-पुत्री द्रौपदी से सभा के मध्य में पाण्डवों की निन्दा करते हुए कहे थे ॥२५॥

ये वै षण्ढतिलास्तत्र भवितारोऽद्य ते तिलाः ।
हते वैकर्तने कर्णे सूतपुत्रे दुरात्मनि ॥२६॥

जिनको दुरात्मा कर्ण ने षण्ढतिल (नपुन्सक) कहकर सम्बोधित किया था, आज वे ही सूत-पुत्र दुरात्मा, सूर्य-सुत कर्ण के मार लेने पर तिल (पुन्स्त्वधारी) हो जावेंगे ॥२६॥

अहं वः पाण्डुपुत्रेभ्यस्त्रास्यामीति यदब्रवीत् ।
धृतराष्ट्रसुतान्कर्णः श्लाघमानोऽऽत्मनो गुणान् ।
अनृतं तत्करिष्यन्ति मामका निशिताः शराः ॥२७॥

हे वार्ष्णेय ! कर्ण ने अपने गुणों की प्रशंसा करते हुए जो धृतराष्ट्र पुत्रों से यह कहा था, कि मैं तुम्हारी पाण्डु-पुत्रों से रक्षा करूंगा, आज मेरे तीक्ष्ण बाण उसके कथन को मिथ्या सिद्ध कर दिखावेंगे ॥२७॥

उद्योगः पाण्डुपुत्राणां समाप्तिमुपयास्यति ।
हन्ताहं पाण्डवान्सर्वान्सपुत्रानिति योऽब्रवीत् ॥२८॥

कर्ण ने जो यह कहा था, कि मैं पुत्रों सहित सारे पाण्डवों को मार दूंगा-आज उसके इस विषय में सारे उद्योग समाप्त हो जावेंगे ॥२८॥

तमद्य कर्णं हन्तास्मि मिषतां सर्वधन्विनाम् ।
यस्य वीर्यं समाश्रित्य धार्तराष्ट्रो महामनाः ॥२६॥

जिस कर्ण के पराक्रम पर धृतराष्ट्र-पुत्र मुग्ध हो रहे हैं-आज सारे धनुर्धरों के देखते २ मैं इस कर्ण को मार कर धराशायी कर दूंगा ॥२६॥

अवामन्यत दुर्बुद्धिर्नित्यमस्मान्दुरात्मवान् ।
हत्वाहं कर्णमाजौ हि तोषयिष्यामि भ्रातरम् ॥३०॥
शरान्नानाविधान्मुक्त्वा त्रासयिष्यामि शात्रवान् ।

यह दुर्बुद्धि दुरात्मा कर्ण नित्य हमारा अपमान करता रहा है मैं आज उसी दुष्ट कर्ण का वध करके अपने भ्राता धर्मराज को सन्तुष्ट करदूंगा तथा अनेक प्रकार के बाण छोड़ कर शत्रुओं को भयभीत बनादूंगा ॥३०॥

आकर्णमुक्तैरिषुभिर्यमराष्ट्रविवर्धनैः ॥३१॥
भूमिशोभां करिष्यामि पातितै रथकुञ्जरैः ।

यमराज्य के बढ़ाने वाले, कर्ण तक खैंचकर छोड़े हुए बाणों से रथ और हाथियों को गिराकर रण भूमि की अद्भुत शोभा बनादूंगा ॥३१॥

तत्राहं वै महासङ्ख्ये सम्पन्नं युद्धदुर्मदम् ॥३२॥
अद्य कर्णमहं घोरं सूदयिष्यामि सायकैः ।

इस घोर युद्ध में युद्ध दुर्मद, सारे शस्त्रों से सुसम्पन्न, कर्ण को अपने बाणों से नष्ट करके रहूँगा ॥३२॥

अद्य कर्णे हते कृष्ण धार्तराष्ट्राः सराजकाः ॥३३॥
विद्रवन्तु दिशो भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ।

हे कृष्ण ! जब कर्ण मार लिया जावेगा-तो सिंह से डरे हुए मृगों के सदृश सारे धृतराष्ट्र पुत्र और कातर होकर अपने पक्ष के राजाओं के साथ दशों दिशाओं को भाग निकलेंगे ॥३३॥

अद्य दुर्योधनो राजा आत्मानं चानुशोचताम् ॥३४॥
हते कर्णे मया सङ्ख्ये सपुत्रे ससुहृज्जने ।

आज जब मैं कर्ण-पुत्र वृषसेन और कर्ण के मित्र जनों के साथ कर्ण को भी रण में मारलूंगा-तो फिर राजा दुर्योधन, अपनी चिन्ता करने लगा ॥३४॥

अद्य कर्णं हतं दृष्ट्वा धार्तराष्ट्रोऽत्यमर्षणः ॥३५॥
जानातु मां रणे कृष्ण प्रवरं सर्वधन्विनाम् ।

हे कृष्ण ! राजा दुर्योधन बड़ा ही असहिष्णु व्यक्ति है, परन्तु जब वह कर्ण को मृत देखेगा-तो उसको भी पता लग जावेगा, कि अर्जुन सारे धनुर्धरों में श्रेष्ठ है ॥३५॥

सपुत्रपौत्रं सामात्यं सभृत्यं च निराशिषम् ॥३६॥
अद्य राज्ये करिष्यामि धृतराष्ट्रं जनेश्वरम् ।

हे जनार्दन ! आज मैं सिंहासनासीन राजा धृतराष्ट्र को पुत्र, पौत्र, अमात्य, भृत्य और सारे सुखों से वञ्चित करके राज्यहीन बना दूंगा ॥३६॥

अद्य कर्णस्य चक्राङ्गाः क्रव्यादाश्च पृथग्विधाः ॥३७॥
शरैश्छिन्नानि गात्राणि विचरिष्यन्ति केशव ।

हे केशव! आज कर्ण के शरों से जर्जरित शरीर को गीध आदि मांस भोजी पृथक् २ प्रकार के पक्षी रण में खैंचे फिरेंगे ॥२७॥

अद्य राधासुतस्याहं संग्रामे मधुसूदन ॥३८॥
शिरश्छेत्स्यामि कर्णस्य मिषतां सर्वधन्विनाम् ।

हे मधुसूदन! मैं सारे धनुर्धरों के देखते २ संग्राम में राधा सुत पुत्र कर्ण के शिर को काट गिराऊंगा ॥३८॥

अद्य तीक्ष्णैर्विपाठैश्च क्षुरैश्च मधुसूदन ॥३९॥
रणे छेत्स्यामि गात्राणि राधेयस्य दुरात्मनः ।

हे मधुसूदन! आज ही मैं अपने तीक्ष्ण विपाठ और क्षुर-संज्ञक बाणों से दुरात्मा राधापुत्र कर्ण का शरीर छेद डालूंगा ॥३९॥

अद्य राजा महत्कृच्छ्रं सन्त्यक्ष्यति युधिष्ठिरः ॥४०॥
सन्तापं मानसं वीरश्चिरसम्भृतमात्मनः ।

हे कृष्ण! आज ही वीर श्रेष्ठ राजा युधिष्ठिर, चिरकाल से अपने हृदय में भरे हुए महा दुःखदायी अपने मन के सन्ताप को परित्यक्त करेंगे ॥४०॥

अद्य केशव राधेयमहं हत्वा सबान्धवम् ॥४१॥
नन्दयिष्यामि राजानं धर्मपुत्रं युधिष्ठिरम् ।

हे केशव! आज ही तो मैं बन्धु बान्धवों के सहित, राधापुत्र कर्ण का वध करके धर्मपुत्र राजा युधिष्ठिर को आनन्दित करुंगा ॥४१॥

अद्याहमनुगान्कृष्ण कर्णस्य कृपणान्युधि ॥४२॥
हन्ता ज्वलनसङ्काशैः शरैः सर्पविषोपमैः ।

हे कृष्ण ! आज ही तो मैं अपने अग्नि के तुल्य जाज्वल्यमान और सर्प के समान तीक्ष्ण बाणों से युद्ध में कर्ण के कातर साथियों को मार गिराऊंगा ॥४२॥

अद्याहं हेमकवचैराबद्धमणिकुण्डलैः ॥४३॥
संस्तरिष्यामि गोविन्द वसुधां वसुधाधिपैः ।

हे गोविन्द ! आज मैं सुवर्ण कवच धारी मणिकुण्डलों से सुशोभित, अनेक महीपतियों से इस सारी रणभूमि को काटदूंगा ॥४३॥

अद्याभिमन्योः शत्रूणां सर्वेषां मधुसूदन ॥४४॥
प्रमथिष्यामि गात्राणि शिरांसि च शितैः शरैः ।

हे मधुसूदन ! आज मैं अभिमन्यु के सारे शत्रुओं के शिर और शरीरों को अपने तीक्ष्ण शरों से व्यथित कर डालूंगा ॥४४॥

अद्य निर्धार्तराष्ट्रां च भ्रात्रे दास्यामि मेदिनीम् ॥४५॥
निरर्जुनां वा पृथिवीं केशवानुचरिष्यसि ।

हे केशव ! आज मैं धृतराष्ट्र पुत्र दुर्योधनादि से रहित करके सारी पृथिवी को या तो अपने भ्राता धर्मराज को सौंप दूंगा या तुम लोग अर्जुन से हीन पृथिवी पर विचरण करना ॥४५॥

अद्याहमनृणः कृष्ण भविष्यामि धनुर्भृताम् ॥४६॥
कोपस्य च कुरूणां च शराणां गाण्डिवस्य च ।

हे कृष्ण! आज मैं सारे धनुर्धर कौरवों के कोप और गाण्डीव धनुष के बाणों से उऋण होजाना चाहताहूं ॥४६॥

अद्य दुःखमहं मोक्ष्ये त्रयोदशसमार्जितम् ॥४७॥
हत्वा कर्णं रणे कृष्ण शम्बरं मघवानिव ।

हे कृष्ण! शम्बरासुर को मघवान् इन्द्र की तरह रण में कर्ण को मारकर अपने तेरह वर्ष के इकट्ठे हुए दुःख को तिलाञ्जलि दूंगा ॥४७॥

अद्य कर्णे हते युद्धे सोमकानां महारथाः ॥४८॥
कृतं कार्यं च मन्यन्तां मित्रकार्येप्सवो युधि ।

आज युद्ध में मित्र के कार्य को सम्पादन करदेने वाले, सोमक महारथी, कर्ण के मारे जाने पर अपने को कृतकार्य मानलेंगे ॥४८॥

मम चैव कथं प्रीतिः शैनेयस्याद्य माधव ॥४९॥
भविष्यति हते कर्णे मयि चापि जयाधिके ।

हे माधव! आज जब मैं कर्ण को मारलूंगा-तो मेरी कितनी प्रीति सात्यकि पर होगी और जय से देदीप्यमान मेरे ऊपर, सात्यकि कितना प्रसन्न होगा ॥४९॥

अहं हत्वा रणे कर्णं पुत्रं चास्य महारथम् ॥५०॥
प्रीतिं दास्यामि भीमस्य यमयोः सात्यकस्य च ।

आज ही मैं कर्ण और उसके महारथी पुत्र वृषसेन को मार कर भीम, नकुल, सहदेव और सात्यकि को बहुत ही आनन्दित करसकूंगा ॥५०॥

धृष्टद्युम्नशिखण्डिभ्यां पञ्चालानां च माधव ॥५१॥
अद्यानृण्यं गमिष्यामि हत्वा कर्णं महाहवे।

हे माधव! इस घोर युद्ध में कर्ण को मारकर धृष्टद्युम्न, शिखण्डी, और पञ्चाल वीरों से आज उऋण होजाऊंगा ॥५१॥

अद्य पश्यन्तु संग्रामे धनञ्जयममर्षणम् ॥५२॥
युध्यन्तं कौरवान्सङ्ख्ये घातयन्तं च सूतजम्।
भवत्सकाशे वक्ष्ये च पुनरेवात्मसंस्तवम् ॥५३॥

हे कृष्ण! आज तो तुम असहनशील, धनञ्जय को संग्राम में कौरवों के साथ युद्धकरते हुए और सूतपुत्र कर्ण को मारते हुए देख सकोगे इसके बाद विजयी होकर मैं तुम्हारे सामने फिर अपनी प्रशंसा करूंगा ॥५२-५३॥

धनुर्वेदे मत्समो नास्ति लोके,
पराक्रमे वा मम कोऽस्ति तुल्यः।
को वाप्यन्यो मत्समोऽस्ति क्षमावांस्तथा।
क्रोधे सदृशोऽन्यो न मेऽस्ति ॥५४॥

हे केशव! धनुर्वेद में मेरे समान संसार में कोई नहीं है। और न पराक्रम में मेरे तुल्य कोई है। मेरे सदृश कौन क्षमाशील वीर होगा, तथा क्रोध में मेरे समान कौन है ॥५४॥

अहं धनुष्मानसुरान्सुरांश्च सर्वाणि भूतानि च सङ्गतानि
स्वबाहुवीर्याद्गमये पराभवं मत्पौरुषं विद्धि परं परेभ्यः

मैं इतना बड़ा धनुर्धर हूँ, कि सुर असुर, सारे इकट्ठे हुए प्राणियों को अपने भुजबल से पराजित कर सकता हूँ। तुम मेरे पौरुष को शत्रुओं से उत्कृष्ट समझो ॥५५॥

शरार्चिषा गाण्डिवेनाहमेकः सर्वान्कुरून्बाह्लिकांश्चाभिहत्य ।
हिमात्यये कक्षगतो यथाग्निस्तथा दहेयं सगणान्प्रसह्य ॥५६॥

मैं अपने गाण्डीव द्वारा छोड़े हुए बाणों की ज्वाला से सारे कौरवों, और बाल्हिक वीरों को सेना सहित मार कर इस तरह भस्म करदूंगा, जैसे तृणसमूह को ग्रीष्मकाल में अग्नि दग्ध करदेता है ॥५६॥

पाणौ पृषत्का लिखिता ममते धनुश्च दिव्यं विततं सबाणम् ।
पादौ च मे सरथौ सध्वजौ च न मादृशं युद्धगतं जयन्ति ॥५७॥

मेरे हाथों में बाण और दिव्य विशाल धनुष का चिन्ह है मेरे चरणों में रथ और ध्वजा के आकार हैं। मुझ जैसे शुभ-लक्षण सम्पन्न वीर को कौन जीतने में समर्थ हो सकता है ॥५७॥

इत्येवमुक्त्वार्जुन एकवीरः क्षिप्रं रिपुघ्नः क्षतजोपमाक्षः ।
भीमं मुमुक्षुः समरे प्रयातः कर्णस्य कायाच्च शिरो जिहीर्षुः ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि अर्जुनवाक्ये चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

क्षत (व्रण) के समान बड़ी २ आंखों वाला, शत्रुनाशक, सर्वश्रेष्ठ वीर अर्जुन इतना कह कर भीमसेन को रण में छुड़ाने

और कर्ण के शिर को उसके शरीर से पृथक करने को आगे बढ़ा ॥५८॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में अर्जुन के वाक्य का चौहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ।



पिचहत्तरवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

समागमे पाण्डवसृञ्जयानां महाभये मामकानामगाधे ।
धनञ्जये तात रणाय याते कर्णेन तद्युद्धमथोऽत्र कीदृक् ॥१॥

धृतराष्ट्र ने कहा—हे तात! जब पाण्डव और सृञ्जय वीर इकट्ठे होकर आगे बढ़े और इससे मेरे पुत्रों को अगाध भय उपस्थित हुआ तथा कर्ण के साथ युद्ध करने को अर्जुन ने प्रयाण किया-तो फिर उनका कैसा युद्ध हुआ ॥१॥

सञ्जय उवाच—

तेषामनीकानि बृहद्ध्वजानि रणे समृद्धानि समागतानि ।
गर्जन्ति भेरीनिनदोन्मुखानि नादैर्यथा मेघगणास्तपान्ते ॥२॥

सञ्जय बोले—हे भरतर्षभ! इन सृञ्जय आदि वीरों की सेना में बड़ी २ ध्वजा चमक रही थी, यह सेना बड़ी समृद्धि के साथ रणभूमि में आगे बढी। ग्रीष्म के अन्त में वर्षाकाल के उपस्थित

होने पर जैसे मेघगण गर्जना करते हैं, उसी तरह भेरी आदि बाजों की ध्वनि के साथ ये वीर गर्जना करने लगे ॥२॥

महागजाभ्राकुलमस्त्रतोयं वादित्रनेमीतलशब्दवच्च ।
हिरण्यचित्रायुधविद्युतं च शरासिनाराचमहास्त्रधारम् ॥३॥
तद्भीमवेगं रुधिरौघवाहि खड्गाकुलं क्षत्रियजीवघाति ।
अनार्तवं क्रूरमनिष्टवर्षं बभूव तत्संहरणं प्रजानाम् ॥४॥

यह युद्धरूपी मेघ उमड़ा चला आता था। इस में बड़े २ गज-मेघ घटा थी। अस्त्ररूपी जल, बाजे, रथनेमि और करतल ध्वनि मेघ गर्जना थी। सुवर्ण के कवच और विचित्र शस्त्र बिजली और शर, खड्ग, नाराच और बड़े अस्त्रधारा माने गए। इस युद्धरूपी मेघ का बड़ा वेग था, जिस में रुधिर का प्रवाह बह रहा था। इस में चारों ओर खड्गों की चमक थी, जो क्षत्रियरूपी जीवों का घातक था। यद्यपि यह समय वर्षा का नहीं था, तो भी यह ऋतुहीन मेघ, बड़ी अनिष्ट वर्षा करता हुआ प्रजा का संहार करने लगा ॥३-४॥

एकं रथं सम्परिवार्य मृत्युं नयन्त्यनेके च रथाः समेताः ।
एकस्तथैकं रथिनं रथाग्र्यांस्तथा रथश्चापि रथाननेकान् ॥५॥

इस युद्ध में अनेक महारथी, एक २ रथी को घेर कर मृत्यु के समीप पहुंचानेलगे। इसी तरह कहीं पर एक रथी एक रथी से और कहीं पर एक रथी अनेक उत्तम रथियों से लड़ रहे थे ॥५॥

रथं ससूतं सहयं च कश्चित्कश्चिद्रथी मृत्युवशं निनाय ।
निनाय चाप्येकगजेन कश्चिद्रथान्बहून्मृत्युवशे तथाश्वान् ॥६॥

कहीं पर किसी महारथी ने सारथि और अश्वों सहित रथ को नष्ट कर डाला तथा कहीं पर रण में अकेले हाथी ने बहुत से रथ और अश्वों को मृत्यु के वश में कर दिया ॥६॥

रथान्ससूतान्सहयान्गजांश्च सर्वानरीन्मृत्युवशं शरौघैः ।
निन्ये हयांश्चैव तथा ससादीन्पदातिसङ्घांश्च यथैव पार्थः॥७॥

इसी तरह कुन्ती पुत्र अर्जुन ने भी सारथि और अश्वों सहित रथ, गज, अश्व, अश्वारोही, पैदल सैनिकों के संघ तथा अन्य बहुत से शत्रु, अपने बाण-समूह से मृत्यु के वश कर दिए ॥७॥

कृपः शिखण्डी च रणे समेतौ दुर्योधनं सात्यकिरभ्यगच्छत् ।
श्रुतस्तथा द्रोणपुत्रेण सार्धं युधामन्युश्चित्रसेनेन सार्धम् ॥८॥
कर्णस्य पुत्रं तु रथी सुषेणं समागतं सृञ्जयश्चोत्तमौजाः ।
गान्धारराजं सहदेवः क्षुधार्तो महर्षभं सिंह इवाभ्यधावत्॥

अब कृपाचार्य के साथ शिखण्डी, राजा दुर्योधन के साथ सात्यकि, द्रोणपुत्र अश्वत्थामा के साथ श्रुतसोम, चित्रसेन के साथ युधामुन्यु, कर्ण-पुत्र सुषेण के साथ सृञ्जयवीर उत्तमौजा, गान्धारराज शकुनि के साथ सहदेव, इस रण में युद्ध करने को इस तरह झपटे जैसे भूखा सिंह, किसी वृषभ पर झपटता है ॥८-६॥

शतानीको नाकुलिः कर्णपुत्रं युवा युवानं वृषसेनं शरौघैः ।
समार्पयत्कर्णपुत्रश्च शूरः पाञ्चालेयं शरवर्षैरनेकैः ॥१०॥

हे राजन् ! इस समय नकुल तरुण शतानीक ने अपने तुल्य ही युवा वीर कर्ण पुत्र वृषसेन पर आक्रमण किया । पाञ्चाली पुत्र शतानीक को कर्ण पुत्र वृषसेन ने भी अनेक तरह से बाण वर्षा करके आच्छादित कर दिया ॥१०॥

रथर्षभः कृतवर्माणमार्छन्माद्रीपुत्रो नकुलश्चित्रयोधी ।
पञ्चालानामधिपो याज्ञसेनिः सेनापतिः कर्णमार्छत्ससैन्यम् ॥

महारथियों में श्रेष्ठ, विचित्र प्रकार से युद्ध करनेवाले, माद्रीपुत्र नकुल ने कृतवर्मा को जा दबाया । तथा पञ्चालों का अधिपति पाण्डव सेनापति द्रुपद पुत्र धृष्टद्युम्न ने सेना सहित कर्ण पर आक्रमण किया ॥११॥

दुःशासनो भारत भारती च संशप्तकानां पृतना समृद्धा ।
भीमं रणे शस्त्रभृतां वरिष्ठं भीमं समार्छत्तमसह्यवेगम् ॥१२॥

हे भारत ! कौरव सेना और दुःशासन संशप्तकों की समृद्धशालिनी सेना ने रण में भयङ्कर काम करने वाले, शस्त्रधारियों में श्रेष्ठ असह्य वेगशाली भीम को जा घेरा ॥१२॥

कर्णात्मजं तत्र जघान वीरस्तथाच्छिनच्चोत्तमौजाः प्रसह्य ।
तस्योत्तमाङ्गं निपपात भूमौ निनादयद्द्यां निनदेन खं च ॥१३॥

अब वीर श्रेष्ठ उत्तमौजा ने बल पूर्वक कर्ण पुत्र सुषेण का शिर काट कर उसे मार दिया। उसका शिर जब पृथिवी पर गिरा तो शब्द से पृथिवी और आकाश भर गए ॥१३॥

सुषेणशीर्षं पतितं पृथिव्यां विलोक्य कर्णोऽथ तदार्तरूपः।
क्रोधाद्धयांस्तस्य रथं ध्वजं च बाणैः सुधारैर्निशितैरकृन्तत् ॥

अपने पुत्र सुषेण के शिर को पृथिवी पर गिरा हुआ देख कर कर्ण बड़ा दुःखी हुआ। अब इसने क्रोध में भरकर उत्तमौजा के अश्व, रथ, और ध्वजा को अपने तीक्ष्ण धारवाले बाणों से काट गिरा ॥१४॥

स तूत्तमौजा निशितैः पृषत्कैर्विव्याध खड्गेन च भास्वरेण।
पार्ष्णिग्रहांश्चैव कृपस्य हत्वा शिखण्डिवाहं स ततोऽभ्यरोहत् ॥

उत्तमौजा ने भी अपने तीक्ष्ण बाणों से कर्ण को आहत किया और चमकती हुई तलवार से कृपाचार्य को पार्ष्णिग्रह वीरों को मार गिराया तथा इसके बाद यह, शिखण्डी के रथ पर जा चढ़ा ॥१५॥

कृपं तु दृष्ट्वा विरथं रथस्थो नैच्छच्छरैस्ताडयितुं शिखण्डी
तं द्रौणिरावार्य रथं कृपस्य समुज्जह्रे पङ्कगतां यथा गाम् ॥१६।

इस समय शिखण्डी रथ में स्थित था, इससे इसने रथहीन कृपाचार्य पर प्रहार करना उचित नहीं समझा। अब द्रोणपुत्र अश्वत्थामा ने कृपाचार्य के रथ को छोड़कर उसे इस तरह बचाया जैसे कीचड़ में फंसी हुई गाय का कोई उद्धार कर देता है ॥१६॥

हिरण्यवर्मा निशितैः पृषत्कैस्तवात्मजानामनिलात्मजो वै ।
अतापयत्सैन्यमतीव भीमः काले शुचौ मध्यगतो यथार्कः ॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्र्यां संहितायां वैयासिक्यां
कर्णपर्वणि संकुलद्वन्द्वयुद्धे पंचसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

सुवर्ण कवच धारी, वायु पुत्र भीमने अपने तीक्ष्ण बाणों से तुम्हारे पुत्रों की सेना को इस तरह सन्तप्त कर दिया जैसे ग्रीष्म ऋतु में मध्यान्ह काल का सूर्य संसार को तप्त करता है ॥१७॥

इति श्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में घोर युद्ध के
वर्णन का पिचहत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ ।

छियत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

अथ त्विदानीं तुमुले विमर्दे द्विषद्भिरेको बहुभिः समावृतः ।
महारणे सारथिमित्युवाच भीमश्चमूं वाहय धार्त्तराष्ट्रीम् ॥१॥
त्वं सारथे याहि जवेन वाहैर्नयाम्येतान्धार्तराष्ट्रान्यमाय ।

सञ्जय बोले— हे राजन् ! अब इस घोर युद्ध में एक शत्रु अनेक वीरोंसे भीड़ गया । इस दशा को देखकर भीमसेनने अपने सारथि से कहा कि तुम मेरे रथ को कौरव सेना के मध्य में ले चलो । हे सारथे ! तुम शीघ्रतासे अश्वोंको ले चलो मैं इन धृतराष्ट्र पुत्रों को यम के द्वार भेजूंगा ॥१॥

संचोदितो भीमसेनेन चैवं स सारथिः पुत्रबलं त्वदीयम् ॥२॥
प्रायात्ततः सत्वरमुग्रवेगो यतो भीमस्तद्बलं गन्तुमैच्छत् ।

हे राजन् ! जब भीमसेन ने सारथि से यह वचन कहा—तो वह सारथि, बड़े-उग्रवेग से उधर ही तुम्हारे पुत्रों की सेना की ओर लेचला-जिधर को भीमसेन जाना चाहता था ॥२॥

ततोऽपरे नागरथाश्वपत्तिभिः प्रत्युद्ययुस्तं कुरवः समन्तात् ॥३॥
भीमस्य वाहाग्र्यमुदारवेगं समन्ततो बाणगणैर्निजघ्नुः ।

इसके अनन्तर कौरव वीर, हाथी, रथ, अश्व और पैदलों के द्वारा सब ओर से भीमसेन के सर्वश्रेष्ठ उदार वेग वाले रथ पर झपटे और सब ओर से बाणसमूह से मारने लगे ॥३॥

ततः शरानापततो महात्मा चिच्छेद बाणैस्तपनीयपुङ्खैः ॥४॥
ते वै निपेतुस्तपनीयपुङ्खा द्विधा त्रिधा भीमशरैर्निकृत्ताः ।

जब कौरव वीरों के बाणों को आते देखा तो महावीर भीमसेन ने अपने सुवर्ण- मूलधारी बाणों से उन्हें काट गिराया भीमसेन के बाणों से दो तीन टुकड़ों में कट कर वे सुवर्ण मूल-धारी बाण पृथिवी में गिरगए ॥४॥

ततो राजन्नागरथाश्वयूनां भीमाहतानां वरराजमध्ये ॥५॥
घोरो निनादः प्रबभौ नरेन्द्र वज्राहतानामिव पर्वतानाम् ।

हे राजन् ! इन वीर राजाओं के मध्य में भीमसेन द्वारा आहत हाथी, रथ, अश्व और युवा वीरों का घोर शब्द इस तरह उठ खड़ा हुआ-जैसे वज्र से आहत पर्वतों की ध्वनि फैल गई हो ॥५॥

ते वध्यमानाश्च नरेन्द्रमुख्या निर्भिद्यतो भीमशरप्रवेकैः ॥६॥
भीमं समन्तात्समरेऽभ्यरोहन्वृक्षं शकुन्ता इव पुष्पहेतोः ।

हे नरेन्द्र ! भीमसेन के बाणों की नोक से आहत और क्षतविक्षत, वीर राजाओं ने सब ओर से भीमसेन को इस तरह घेर लिया, जैसे पुष्पों के कारण सुन्दर वृक्ष पर पक्षी छाजाते हैं ॥६॥

ततोऽभियाते तत्र सैन्ये स भीमः प्रादुश्चक्रे वेगमनन्तवेगः ॥७॥
यथान्तकाले क्षपयन्दिधक्षुर्भूतान्तकृत्काल इवात्तदण्डः ।

हे राजन् ! जब तुम्हारी सेना ने भीम पर आक्रमण किया तो अत्यन्त वेगशाली भीमसेन ने प्रलयकाल में सारे प्राणियों को नष्ट करने वाले, सबके अन्तक दण्डधारी काल की तरह दग्ध करते हुए बड़ा वेग प्रदर्शित किया ॥७॥

तस्यातिवेगस्य रणेऽतिवेगं नाशक्नुवन्वारयितुं त्वदीयाः॥८॥
व्यात्ताननस्यापततो यथैव कालस्य काले हरतः प्रजा वै ।

हे भरतर्षभ ! अत्यन्त वेगशाली, भीमसेन के प्रचण्ड वेग को रण में तुम्हारे पक्ष के वीर रोकने में इस प्रकार समर्थ नहीं होसके-जैसे मुख खोल कर झपटते हुए और प्रजा के संहार करते हुए काल को कोई प्रलय काल में नहीं रोक सकता है ॥८॥

ततो बलं भारत भारतानां प्रदह्यमानं समरे महात्मना ॥६॥
भीतं दिशोऽकीर्यत भीमनुन्नं महानिलेनाभ्रगणा यथैव ।

हे भारत! बड़े भारी वायुद्वारा उड़ाए हुए मेघों के सदृश, भीमसेन द्वारा बखेरी हुई तथा महावीर भीम द्वारा दग्ध की हुई कौरवों की सेना भयभीत होकर सारी दिशाओं में भागनिकली ॥६॥

ततो धीमान्सारथिमब्रवीद्बली ।
स भीमसेनः पुनरेव हृष्टः ॥१०॥
सूताभिजानीहि स्वकान्परान्वा,
रथान्ध्वजांश्चापततः समेतान् ।
युद्ध्यन्नहं नाभिजानामि किञ्चिन्मा,
सैन्यं स्वं छादयिष्ये पृषत्कैः ॥११॥

अथ महाबली अत्यन्त-बुद्धिमान् भीमसेन ने प्रसन्नता-पूर्वक यह वचन कहा—कि हे सूत! तुम एकीभूत हुए कौरव और पाण्डव पक्ष के वीरों के रथों को उनकी ध्वजा आदि से यह जानलेना मैं युद्ध कर रहा हूँ-इससे मुझे कुछ भी पता नहीं है। कभी मैं अपने बाणों से अपनी ही सेना को न आच्छादित करदूं ॥१०-११॥

अरीन्विशोकाभिनिरीक्ष्य सर्वतो,
रथो ध्वजाग्राणि धुनोति मे भृशम् ।
राजातुरो नागमयत्किरीटी बहूनि,
दुःखान्यभियातोऽस्मि सूत ॥१२॥

हे विशोक ! मैं सब ओर से शत्रुओं को फैले हुए देख रहा हूँ और मेरा रथ, ध्वजा के अग्र भागों को अत्यन्त कंपा रहा है। इन लक्षणों से मैं-समझता हूं, कि राजा युधिष्ठिर, बहुत बीमार हैं इसी से अभी तक अर्जुन नहीं लौटे हैं। हे सूत ! इस कारण से मैं बहुत ही दुःख को प्राप्त होगया हूँ ॥१२॥

एतद् दुःखं सारथे धर्मराजो,
यन्मां हित्वा यातवाञ्शत्रुमध्ये ।
नैनं जीवं नाद्य जानाम्यजीवं बीभत्सुं,
वा तन्समाद्यातिदुःखम् ॥१३॥

हे सारथे ! मुझे यह दुःख बड़ा व्याकुल कर रहा है। कि धर्मराज मुझे छोड़ कर शत्रुओं के मध्य में घुसगया। अब मुझे पता नहीं है, कि वह जीता है या प्राण छोड़ चुका । और न मुझे अर्जुन का ही कुछ पता है-इसका मुझे बहुत ही दुःख है ॥१३॥

सोऽहं द्विषत्सैन्यमुदग्रकल्पं विनाशयिष्ये परमप्रतीतः ।
एतन्निहत्याजिमध्ये समेतं प्रीतो भविष्यामि सह त्वयाद्य

मुझे तो आज अत्यन्त वेगशाली शत्रुसेना को मार २ कर बिछा देना चाहिए । बड़ी सावधानी से रण के मध्य में इस इकट्ठी शत्रुसेना को मार कर आज मैं तेरे साथ बड़ा प्रसन्न होना चाहता हूं ॥१४॥

सर्वांस्तूणान्सायकानामवेक्ष्य किं,
शिष्टं स्यात्सायकानां रथे मे ।
का वा जातिः किं प्रमाणं च तेषां ज्ञात्वा,
व्यक्तं तत्समाचक्ष्व सूत ॥१५॥

हे सूत ! अब तुम मेरे रथ में सारे तूणीरों को पड़तालो कि मेरे रथ में उन में कितने बाण शेष बचे हैं । उन बाणों की क्या जाति और उनका क्या प्रमाण है-इस बात का पता लगा कर आप स्पष्टरूप में हमको सूचना दीजिए ॥१५॥

विशोक उवाच—

षण्मार्गणानामयुतानि वीर,
क्षुराश्च भल्लाश्च तथायुताख्याः ।
नाराचानां द्वे सहस्रे च वीर ।
त्रीण्येव च प्रदराणां स्म पार्थ॥ १६॥

विशोक ने कहा—हे कुन्ती पुत्र महावीर ! इस समय रथ में साठहजार क्षुरसंज्ञक और दश सहस्र भल्ल संज्ञक तथा दो सहस्र नाराच संज्ञक और तीन सहस्र प्रदर संज्ञक बाण हैं ॥१६॥

अस्त्यायुधं पाण्डवेयावशिष्टं न यद्वहेच्छकटं षड्गवीयम् ।
एतद्विद्वन्मुञ्च सहस्रशोऽपि गदासिबाहुद्रविणं च तेऽस्ति ॥१७॥
प्रासाश्च मुद्गराः शक्तयस्तोमराश्च मा भैषस्त्वं संक्षयादायुधानाम्

हे पाण्डवेय ! अभी तक इतने शस्त्र शेष हैं, जिनको छः बैल की गाड़ी भी नहीं लेचल सकती । हे विद्वन् ! आप इन सहस्रों

शस्त्रों को छोड़ों—आपकी वाहुओं का घन, गदा और खड्ग भी तो अभी तक सुरक्षित हैं। इसी तरह प्रास, मुद्गर, शक्ति और तोमर नामक शस्त्र विद्यमान हैं तुम शस्त्रों के समाप्त होने का भय न करो ॥१७-१८॥

सूताद्यैनं पश्य भीमप्रयुक्तैः सञ्छिन्दद्भिः पार्थिवानां सुवेगैः।
छन्नं बाणैराहवं घोररूपं नष्टादित्यं मृत्युलोके न तुल्यम् ॥१९॥

भीमसेन ने कहा हे सूत! अब तुम भीमसेन द्वारा छोड़े हुए वेगशाली, राजाओं के शरीर के भेदक, वाणों से रणभूमि को आच्छादित देखना। वह इतना घोररूप होगा, कि सूर्य नष्ट सा हो जावेगा। मानो मृत्युलोक में रह ही न गया हो ॥१९॥

अद्यैतद्वै विदितं पार्थिवानां भविष्यति ह्याकुमारं च सूत।
निमग्नो वा समरे भीमसेन एकः कुरून्वा समरे व्यजैषीत् ॥२०॥

हे सूत! आज राजा और राजकुमारों को यह पता लगजावेगा कि भीमसेन ने अकेले ही रण में घुसकर सारे कौरवों को जीत लिया ॥२०॥

सर्वे सङ्ख्ये कुरवो निष्पतन्तु मां वा लोकाः कीर्तयन्त्वाकुमारम्।
सर्वानेकस्तानहं पातयिष्ये ते वा सर्वे भीमसेनं तुदन्तु ॥२१॥

हे सारथे! अब सारे कौरव, अपना बल लगा कर रण में कूद पड़े, परन्तु बालक से लेकर वृद्ध तक सारे मनुष्य मेरी कीर्ति का गान करेंगे। आज मैं उन सारे कौरवों का नष्ट करदूंगा अथवा सारे कौरव, मुझ भीमसेन को नष्ट करदेवें ॥२१॥

आशास्तारः कर्म चाप्युत्तमं ये तन्मे देवाः केवलं साधयन्तु
आयात्विहाद्यार्जुनः शस्त्रघाती शक्रस्तूर्णं यज्ञ इवोपहूतः ॥

जो देव, उत्तम वीर कर्ण को देखना चाहते हैं, वे देव, मेरे मार्ग को कल्याणकारी बनावे, शस्त्रों द्वारा आघात करने वाला, अर्जुन भी देवों की कृपा से इस तरह चला आवे, जैसे—यज्ञ में बुलाया हुआ इन्द्र, आगया हो ॥२२॥

इत्यस्यैतां भारतीं दीर्यमाणामेते कस्माद्विद्रवन्ते नरेन्द्राः।
व्यक्तं धीमान्सव्यसाची नराग्रयः सैन्यं ह्येतच्छादयत्याशु बाणैः

अब तुम कौरवों की सेना को भागती हुई तो देखो--कि बड़े २ राजा किस तरह भाग रहे हैं। मुझे तो यह स्पष्ट प्रतीत हो रहा है कि युद्धकुशल, वीरश्रेष्ठ, सव्यसाची अर्जुन, अपने बाणों से इस सेना को वींध रहे हैं ॥२३॥

पश्य ध्वजांश्च द्रवतो विशोक नागान्हयान्पतिसङ्घांश्च सङ्ख्ये।
रथान्विकीर्णाञ्शरशक्तिताडितान्पश्यस्वैतान्रथिनश्चैव सूत ॥

हे विशोक ! तुम देखो—ध्वजा युक्त रथ कैसे भागे जा रहे हैं तथा युद्ध स्थली में हाथी, घोड़े और पैदलों की भाग दौड़ भी देखो। हे सूत ! शर शक्ति से ताड़ित होकर बिखरे हुए इन रथ और रथियों की ओर भी तो दृष्टि उठाकर देखो ॥२४॥

आपूर्यते कौरवी चाप्यभीक्ष्णं सेना ह्यसौ सुभृशं हन्यमाना।
धनञ्जयस्याशनितुल्यवेगैर्ग्रस्ता शरैः काञ्चनबर्हिजालैः ॥२५

हे सारथे ! अत्यन्त आहत की हुई कौरव सेना, बहुत ही अधिक रूप में ऊपर नीचे होरही हैं। मुझे तो यही प्रतीत होता है, कि यह अर्जुन के वज्र तुल्य वेगधारी सुवर्णमय जाल से सुशोभित, बाणों से आहत की जारही है। २५॥

एते द्रवन्ति स्म रथाश्वनागाः पदातिसङ्घानतिमर्दयन्तः ।
सम्मुह्यमानाः कौरवाः सर्व एव द्रवन्ति नागा इव दाहभीताः ॥
हाहाकृताश्चैव रणे विशोक मुञ्चन्ति नादान्विपुलान्गजेन्द्राः

यह देखो ? पैदल समूह को कुचलते हुए रथ, अश्व और हाथी, भागे जारहे हैं। जिन के ऊपर कौरव वीर चढ़े हुए हैं वे हाथी भी अग्निदाह से भीत हुएसे भाग रहे हैं। हे विशोक ? चिघांड़ मारते हुए हाथियों ने रणभूमि में हाहाकार मचादिया है ॥२६-२७॥

विशोक उवाच—

किं भीम नैनं त्वमिहाशृणोषि विस्फारितं गाण्डिवस्यातिघोरम्
क्रुद्धेन पार्थेन विकृष्यतोऽद्य कच्चिन्नेमौ तव कर्णौ विनष्टौ ॥२८॥

विशोक बोले—हे भीम ! क्या तुम खैंचे हुए गाण्डीव धनुष की अति घोर टङ्कार नहीं सुन रहेहो, जिसको क्रोध में भरे हुए अर्जुन खैंच रहे हैं। क्या तुम्हारे कानों की शक्ति नष्ट तो नहीं होगई है ॥२८॥

सर्वे कामाः पाण्डव ते समृद्धाः कपिर्ह्यसौ दृश्यते हस्तिसैन्ये
नीलाद्घनाद्विद्युतमुच्चरन्तीं तथा पश्य विस्फुरन्तीं धनुर्ज्याम्

हे पाण्डव ! अब तो तुम्हारी सारी अभिलाषा सिद्ध हुई-देखो कौरवों की गज सेना के मध्य में कपिचिन्ह धारी ध्वजा दिखाई दे रही है। जिस तरह नीले मेघों से बिजली निकलती है, उसी तरह तुम धनुष की प्रत्यञ्चा से आग निकलती देखो ॥२६॥

कपिर्ह्यसौ वीच्यते सर्वतो वै ध्वजाग्रमारुह्य धनञ्जयस्य ।
वित्रासयन्रिपुसङ्घान्विमर्दे बिभेम्यस्मादात्मनैवाभिवीच्य ॥३०

यह देखो ! धनञ्जय की ध्वजा पर स्थित कपि, सब ओर से दिखाई दे रहा है। यह इस युद्ध में शत्रुसंघ को भयभीत बना रहा है। मैं तो स्वयं इसको देखकर भयभीत हो जाता हूँ ॥३०॥

विभ्राजते चातिमात्रं किरीटं विचित्रमेतच्च धनञ्जयस्य ।
दिवाकराभो मणिरेष दिव्यो विभ्राजते चैव किरीटसंस्थः ॥

हे भीम ! देखो ? धनञ्जय अर्जुन का वह विचित्र मुकुट कितना अधिक चमक रहा है। इसी तरह सूर्य के तुल्य देदीप्यमान मुकुट में जटित, यह दिव्य मणि, कितनी चमक रही है ॥३१॥

पार्श्वे भीमं पाण्डुराभ्रप्रकाशं पश्यस्व शङ्खं देवदत्तं सुघोषम्
अभीपुहस्तस्य जनार्दनस्य विगाहमानस्य चमूं परेषाम् ॥३२

हे वीर ! अश्वों की रस्सी पकड़े और शत्रुसेना को आलोड़ित करते हुए जनार्दन कृष्ण के पार्श्व में उत्तम ध्वनि करने वाले श्वेत मेघ के तुल्य उज्ज्वल अर्जुन के देवदत्त नामक शङ्ख को तो देखो ॥३२

रविप्रभं वज्रनाभं क्षुरान्तं पार्श्वे स्थितं पश्य जनार्दनस्य।
चक्रं यशोवर्धनं केशवस्य सदार्चितं यदुभिः पश्य वीर॥३३॥

हे वीर! जिस की सर्वदा यदुवीर पूजा करते हैं जो श्रीकृष्ण के यश का बढ़ाने वाला है। जिस की सूर्य सदृश कान्ति, वज्र की सी नाभि, और क्षुर की सी धार है, उस सुदर्शन चक्र को भी तो तुम भगवान् कृष्ण के पार्श्व मे देख रहेहोगे॥३३॥

महाद्विपानां सरलद्रुमोपमाः करा निकृत्ताः प्रपतन्त्यमी क्षुरैः
किरीटिना तेन पुनः ससादिनः शरैर्निकृत्ताः कुलिशैरिवाद्रयः

अर्जुन ने अपने शरोपम बाणों से बड़े २ गजों की सरल वृक्ष के समान सूंडों को काट २ कर गिरा दिया है और इसी तरह वज्र से पर्वतों की भांति गजारोहियों के साथ बहुत से गज मार कर रण में अर्जुन ने बिछा दिए॥३४॥

तथैव कृष्णस्य च पाञ्चजन्यं महार्हमेतं द्विजराजवर्णम्।
कौन्तेय पश्योरसि कौस्तुभं च जाज्वल्यमानं विजयां स्रजं च

हे कौन्तेय! इसी तरह चन्द्रमा के समान उज्ज्वल अत्यन्त मूल्यधारी, श्रीकृष्ण के पाञ्चजन्य शङ्ख को देखो। तथा छाती पर पड़ी हुई जाज्वल्यमान कौस्तुभ मणि और वैजयन्ती माला को और भी तो देखो॥३५॥

ध्रुवं रथाग्र्यः समुपैति पार्थो विद्रावयन्सैन्यमिदं परेषाम्।
सिताभ्रवर्णैरसितप्रयुक्तैर्हयैर्महार्हैः रथिनां वरिष्ठः॥३६॥

अब निश्चय हो गया कि रथि श्रेष्ठ, महारथी अर्जुन, शत्रुसेना को उखाड़ता हुआ, अत्यन्त मूल्य वाले, श्वेत मेघ तुल्य कर्ण धारी श्रीकृष्ण द्वारा सञ्चालित अश्वों के द्वारा आगे रण में बढ़े चले आते हैं ॥३६॥

रथान्हयान्पत्तिगणांश्च सायकैर्विदारितान्पश्य पतन्त्यमी यथा
तवानुजेनामरराजतेजसा महावनानीव सुपर्णवायुना ॥३७॥

हे भीम ! इन्द्र के तुल्य तेजस्वी तुम्हारे छोटे भ्राता अर्जुन द्वारा बाणों से चीरे हुए रथी, अश्व, पैदल संघ, इस तरह गिररहे हैं, जैसे गरुड़ के पक्षों की वायु से वन के वृक्ष, गिर रहेहों ॥३७॥

चतुःशतान्पश्य रथानिमान्हतान्सवाजिसूतान्समरे किरीटिना
महेषुभिः सप्तशतानि दन्तिनां पदातिसादींश्च रथाननेकशः

हे वीर ! किरीटधारी अर्जुन ने अपने बड़े तीखे बाणों से अश्व और सारथियों से संयुक्त चारसौ रथ और सातसौ हाथी तथा बहुत से पैदल सैनिक या घुड़सवार मार गिराए तुम उनकी ओर दृष्टि उठाकर देखो ॥३८॥

अयं समभ्येति तवान्तिकं बली निघ्नन्कुरूंश्चित्र इव ग्रहोऽर्जुनः
समृद्धकामोऽसि हतास्तवाहिता बलं तवायुश्च चिरायवर्धताम्

हे भीमसेन ! अब महाबली अर्जुन, कुरु सेना का विध्वंस उड़ाते हुए विचित्र ग्रह की भांति तुम्हारे पास शीघ्रता से चले आ रहे हैं। अब तुम्हारे शत्रु मारे गए, तुम्हारी कामना समृद्ध हों तथा तुम्हारा बल और आयु की वृद्धि हो ॥३९॥

भीमसेन उवाच—

ददानि ते ग्रामवरांश्चतुर्दश प्रियाख्याने सारथे सुप्रसन्नः ।
दासीशतं चापि रथांश्च विंशतिं यदर्जुनं वेदयसे विशोक ॥४०॥

इति श्रीमहाभारते० संहितायां वैयासिक्यां कर्णपर्वणि
भीमसेनविशोकसंवादे षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

भीमसेन ने कहा—हे सारथे ! तुमने मुझे बड़ा प्रिय समाचार सुनाया-मैं तुम पर प्रसन्न होकर तुम्हें चौदह उत्तम ग्राम प्रदान करता हूँ। हे विशोक ! तुमने जो मुझे अर्जुन की सूचना दी, इस पर तुमको सौ दासी और बीस रथ भी प्रदान करता हूं ॥४०॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्ण पर्व में भीमसेन और
विशोक सम्वाद का छियत्तरवां अध्याय समाप्त हुआ



सतहत्तरवां अध्याय

सञ्जय उवाच—

श्रुत्वा तु रथनिर्घोषं सिंहनादं च संयुगे ।
अर्जुनः प्राह गोविन्दं शीघ्रं नोदय वाजिनः ॥१॥

सञ्जय बोले—हे भरत श्रेष्ठ ! जब भीमसेन का सिंहनाद और उसके रथ की घोषणा सुनी-तो अर्जुन ने श्रीकृष्ण से कहा, कि तुम शीघ्र मेरे अश्वों को हांको ॥१॥

अर्जुनस्य वचः श्रुत्वा गोविन्दोऽर्जुनमब्रवीत् ।
एष गच्छामि सुक्षिप्रं यत्र भीमो व्यवस्थितः ॥२॥

हे राजन्! अर्जुन के वचन सुनकर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा—हे अर्जुन! मैं अभी वहां चलता हूँ, जहां पर भीमसेन लड़ रहे हैं ॥२॥

तं यान्तमश्वैर्हिमशङ्खवर्णैः सुवर्णमुक्तामणिजालनद्धैः ।
जम्भं जिघांसुं प्रगृहीतवज्रं जयाय देवेन्द्रमिवोग्रमन्युम्
रथाश्वमातङ्गपदातिसङ्घा बाणस्वनैर्नेमिखुरस्वनैश्च ।
संनादयन्तो वसुधां दिशश्च क्रुद्धा नृसिंहा जयमभ्युदीयुः ।

हे राजन्! हिम (वर्फ)और शङ्ख वर्णधारी, सुवर्ण मुक्ता और मणि जाल से युक्त बालों वाले, अश्वों से वज्र को लेकर क्रोधातुर जम्भासुर के मारने को उद्यत इन्द्र की तरह विजय के लिए प्रयाण करते हुए अर्जुन के पीछे बाणों की सनसनाहट और रथ नेमि तथा अश्वों की टापों के शब्दों के साथ रथ, अश्व, हाथी और पैदलों के समूह तथा अनेक वीर श्रेष्ठ, दिशा और पृथिवी को सन्नादित करते हुए चल पड़े ॥३–४॥

तेषां च पार्थस्य च मारिषासीद् देहासुपाप्मक्षपणं सुयुद्धम् ।
त्रैलोक्यहेतोरसुरैर्यथासीद् देवस्य विष्णोर्जयतां वरस्य ॥५॥

हे आर्य! अब उन कौरव वीरों के साथ अकेले अर्जुन का घोर युद्ध छिड़ गया, जिसमें प्राण और पापों का नाश हो रहा था

यह युद्ध त्रिलोकी की रक्षा के निमित्त असुरों से लड़े जाने वाले, विजयी भगवान् विष्णु के युद्ध के समान भीषण था ॥५॥

तैरस्तमुच्चावचमायुधं तदेकः प्रचिच्छेद किरीटमाली ।
क्षुरार्धचन्द्रैर्निशितैश्च भल्लैः शिरांसि तेषां बहुधा च बाहून्

कौरव वीरों के अनेक ऊंचे नीचे फैंके हुए शस्त्र समूह को किरीटधारी अकेले अर्जुन ने काट गिराया तथा क्षुर अर्धचन्द्र और तीक्ष्ण भल्ल नामक बाणों से अर्जुन ने कौरव वीरों के शिर और बाहु छेद डाले ॥६॥

छत्राणि वालव्यजनानि केतूनश्वान्रथान्पत्तिगणान्द्विपांश्च
ते पेतुरुर्व्यां बहुधा विरूपा वातप्रणुन्नानि यथा वनानि ॥

अनेक छत्र, छोटे २ पंखे, ध्वजा, अश्व, रथ, पैदल गण, और बहुत से हाथी, छिन्न भिन्न आकार वाले होकर पृथिवी में इस तरह गिर गए जैसे-वायु के वेग से वन के वृक्ष गिर जाते हैं ॥७॥

सुवर्णजालावतता महागजाः सवैजयन्तीध्वजयोधकल्पिताः
सुवर्णपुङ्खैरिषुभिः समाचिताश्चकाशिरे प्रज्वलिता यथाचलाः

सुवर्ण के जाल से सुशोभित, बड़े २ झण्डों से युक्त, योद्धाओं से समन्वित, महागज सुवर्ण मूलधारी बाणों से व्याप्त हुए इस तरह चमकने लगे-जैसे प्रज्वलित पर्वत प्रदीप्त हो रहे हों ॥८॥

विदार्य नागाश्वरथान्धनञ्जयः शरोत्तमैर्वासववज्रसन्निभैः ।
द्रुतं ययौ कर्णजिघांसया तथा यथा मरुत्वान्बल भेदने पुरा

हे राजन्! जिस तरह बलासुर के मारण के लिये पूर्व काल में इन्द्र ने यात्रा की थी, उसी तरह अश्व और रथ समूह को इन्द्र के वज्र के तुल्य बाणों से बींधते हुये अर्जुन ने कर्ण के हनन के लिये वेग से यात्रा की ॥९॥

ततः स पुरुषव्याघ्रस्तव सैन्यमरिन्दमः ।
प्रविवेश महाबाहुर्मकरः सागरं यथा ॥१०॥

हे राजन् ! इसके अनन्तर वह अरिमर्दन, पुरुष श्रेष्ठ, महाबाहु अर्जुन, तुम्हारी सेना में इस तरह घुस गया-जैसे मकर समुद्र में घुस जाता है ॥१०॥

तं हृष्टास्तावका राजन्रथपत्तिसमन्विताः ।
गजाश्वसादिबहुलाः पाण्डवं समुपाद्रवन् ॥११॥

हे राजन् ! तुम्हारे पक्ष के भी योद्धा, रथ, पैदल सेना, तथा गज, अश्व घुड़सवार आदि सुसज्जित होकर पाण्डु-पुत्र अर्जुन पर टूट पड़े ॥११॥

तेषामापततां पार्थमारावः सुमहानभूत् ।
सागरस्येव क्षुब्धस्य यथा स्यात्सलिलस्वनः ॥१२॥

जब कौरवों ने अर्जुन पर आक्रमण किया-तो इस तरह की घोर ध्वनि सुनाई देने लगी-जैसे उछलते हुए समुद्र में जल ध्वनि हो रही हो ॥१२॥

ते तु तं पुरुषव्याघ्रं व्याघ्रा इव महारथाः ।
अभ्यद्रवन्त संग्रामे त्यक्त्वा प्राणकृतं भयम् ॥१३॥

हे भारत! कौरव महारथी गण ने भी अपने प्राणों का भय छोड़कर संग्राम में पुरुषश्रेष्ठ अर्जुन पर इस तरह आक्रमण किया जैसे सिंहों ने राजा पर वन में आक्रमण किया हो ॥१३॥

तेषामापततां तत्र शरवर्षाणि मुञ्चताम् ।
अर्जुनो व्यधमत्सैन्यं महावातो घनानिव ॥१४॥

जब कौरव वीरों ने आक्रमण किया और बाण वर्षा की झड़ी लगा दी-तो अर्जुन ने भी मेघों को महा वायु की तरह कौरव सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया ॥१४॥

तेऽर्जुनं सहिता भूत्वा रथवंशैः प्रहारिणः ।
अभियाय महेष्वासा विव्यधुर्निशितैः शरैः ॥१५॥

अब कौरव-पक्ष के महाधनुर्धर प्रहार करने वाले वीर, रथ समूह से संयुक्त होकर इकट्ठे ही अर्जुन पर टूट पड़े और तीक्ष्ण बाणों से उनको बींधने लगे ॥१५॥

ततोऽर्जुनः सहस्राणि रथवारणवाजिनाम् ।
प्रेषयामास विशिखैर्यमस्य सदनं प्रति ॥१६॥

अब अर्जुन ने सहस्रों रथ, हाथी और अश्वों को बाणों से मार २ कर यमराज के घर की ओर भेज दिया ॥१६॥

ते वध्यमानाः समरे पार्थचापच्युतैः शरैः ।
तत्र तत्र स्म लीयन्ते भये जाते महारथाः ॥१७॥

हे भरतश्रेष्ठ ! इस प्रकार अर्जुन के धनुष से निकले हुए बाणों से आहत हुए महारथी इस महाभय के उपस्थित होने पर इधर उधर घूमने लगे ॥१७॥

तेषां चतुःशतान्वीरान्यतमानान्महारथान् ।
अर्जुनो निशितैर्बाणैरनयद्यमसादनम् ॥१८॥

अब कौरव सेना के अत्यन्त प्रयत्न परायण चारसौ महारथी वीरों को अर्जुन ने मारकर यमराज के घर भेज दिया ॥१८॥

ते वध्यमानाः समरे नानालिङ्गैः शितैः शरैः ।
अर्जुनं समभित्यज्य दुद्रुवुर्वै दिशो दश ॥१६॥

इस महा संग्राम में अनेक प्रकार के तीक्ष्ण बाणों से मारे जाते हुए उन वीरों ने अर्जुन का पीछा छोड़कर दशों दिशाओं को भागना आरम्भ किया ॥१६॥

तेषां शब्दो महानासीद् द्रवतां वाहिनीमुखे ।
महौघस्येव जलधेर्गिरिमासाद्य दीर्यतः ॥२०॥

जब सेना के मुखपर ये वीर भागने लगे-तो उस समय समुद्र के जल प्रवाह या पर्वत के फटने के सदृश महान् ध्वनि होने लगी ॥२०॥

तां तु सेनां भृशं विध्वा द्रावयित्वार्जुनः शरैः ।
प्रायादभिमुखः पार्थः सूतानीकं हि मारिष ॥२१॥

हे आर्य ! अर्जुन ने अपने लाखों बाणों से इस सेना को अत्यन्त व्याकुल करके भगा दिया और फिर सूतपुत्र कर्ण की सेना की ओर गमन किया ॥२१॥

तस्य शब्दो महानासीत्परानभिमुखस्य वै ।
गरुडस्येव पततः पन्नगार्थे यथा पुरा ॥२२॥

जब शत्रु की ओर अर्जुन बढ़ा तो सर्प पर आक्रमण करते हुए गरुड़ के शब्द के समान महान् शब्द होने लगा ॥२२॥

तं तु शब्दमभिश्रुत्य भीमसेनो महाबलः ।
बभूव परमप्रीतः पार्थदर्शनलालसः ॥२३॥

महाबली भीमसेन, उस शब्द को सुनकर अर्जुन से मिलने की लालसा से बड़ा ही प्रसन्न हुआ ॥२३॥

श्रुत्वैव पार्थमायान्तं भीमसेनः प्रतापवान् ।
त्यक्त्वा प्राणान्महाराज सेनां तव ममर्द ह ॥२४॥

हे महाराज ! महाप्रतापी भीमसेन, आते हुए अर्जुन को सुन कर अपने प्राणों का मोह छोड़कर तुम्हारी सेना का मर्दन करने लगा ॥२४॥

स वायुवीर्यप्रतिमो वायुवेगसमो जवे ।
वायुवद्व्यचरद्भीमो वायुपुत्रः प्रतापवान् ॥२५॥

भीमसेन का वायु के समान पराक्रम और वेग था । अब वायु-पुत्र महाप्रतापी भीमसेन, रणाङ्गण में वायु के तुल्य ही निःशङ्क घूमने लगा ॥२५॥

तेनाद्यमाना राजेन्द्र सेना तव विशाम्पते ।
व्यभ्रश्यत महाराज भिन्ना नौरिव सागरे ॥२६॥

हे राजेन्द्र! प्रजा के स्वामी! महाराज! भीमसेन से पीड़ित तुम्हारी सेना इस तरह नष्ट-भ्रष्ट हो गई-जैसे समुद्र में नौका फटकर छिन्न-भिन्न हो जाती है ॥२६॥

तां तु सेनां तदा भीमो दर्शयन्पाणिलाघवम् ।
शरैरवचकर्तोग्रैः प्रेषयिष्यन्यमक्षयम् ॥२७॥

अब इस सेना में अपने हाथ का कौशल दिखाते हुए भीमसेन ने उग्र बाणों से सबको कतर डाला और यमराज के घर भेजना आरम्भ किया ॥२७॥

तत्र भारत भीमस्य बलं दृष्ट्वातिमानुषम् ।
व्यभ्रमन्त रणे योधाः कालस्येव युगक्षये ॥२८॥

हे भारत! मनुष्यातिशायी भीमसेन के बल को देखकर रण में इस तरह कौरव योद्धा, चक्कर खाने लगे, जैसे प्रलयकाल में काल के वेग को देखकर प्रजा चक्कर खाती है ॥२८॥

तथार्दितान्भीमबलान्भीमसेनेन भारत ।
दृष्ट्वा दुर्योधनो राजा इदं वचनमब्रवीत् ॥२९॥
सैनिकांश्च महेष्वासान्योधांश्च भरतर्षभ ।
समादिशन्रणे सर्वान्हत भीममिति स्म ह ॥३०॥
तस्मिन्हते हतं मन्ये पाण्डुसैन्यमशेषतः ।

हे भारत! भीमसेन द्वारा अपनी भयङ्कर सेना का मर्दन देखकर राजा दुर्योधन, अपने महाधनुर्धर को आज्ञा देता हुआ

वीर सैनिकों से यह वचन बोला, हे वीरो ! तुम शीघ्रता करके भीमसेन को मारो । यदि भीमसेन मार लिया गया-तो मेरी राय में पाण्डव सेना मारी गई ॥२९-३०॥

प्रतिगृह्य च तामाज्ञां तव पुत्रस्य पार्थिवाः ॥३१॥
भीमं प्रच्छादयामासुः शरवर्षैः समन्ततः ।

हे भरतर्षभ ! तुम्हारे पुत्र की आज्ञा को सुनकर बहुत से कौरव पक्ष के राजा, सब ओर से बाण वर्षा करके भीम को आच्छादित करने लगे ॥३१॥

गजाश्च बहुला राजन्नराश्च जयगृद्धिनः ॥३२॥
रथे स्थिताश्च राजेन्द्र परिवव्रु र्वृकोदरम् ।

हे राजेन्द्र ! अब बहुत से गजारोही और विजय के अभि-लाषी अनेक रथ सवार, राजाओं ने वृकोदर भीम को घेर लिया ॥३२॥

स तैः परिवृतः शूरैः शूरो राजन्समन्ततः ॥३३॥
शुशुभे भरतश्रेष्ठो नक्षत्रैरिव चन्द्रमाः ।

हे राजन् ! भरतवंशश्रेष्ठ, शूरवीर भीमसेन, सब ओर से इन सारे शूरवीर योद्धाओं से घिर कर ऐसा दिखाई देने लगा-जैसे नक्षत्रों से चन्द्रमा सुशोभित होता है ॥३३॥

परिवेषी यथा सोमः परिपूर्णो विराजते ॥३४॥
स रराज तथा संख्ये दर्शनीयो नरोत्तमः ।
निर्विशेषो महाराज यथा हि विजयस्तथा ॥३५॥

जैसे पूर्णचन्द्रमा के मण्डल बनगया हो—उसी तरह इन राजाओं से घिरकर रण में भीमसेन बहुत ही सुशोभित हुआ। हे महाराज ! इस समय अर्जुन और भीमसेन में कोई भेद नहीं दिखाई देता था ॥३४-३५॥

तस्य ते पार्थिवाः सर्वे शरवृष्टिं समासृजन् ।
क्रोधरक्तेक्षणाः शूरा हन्तुकामा वृकोदरम् ॥३६॥

इन कौरव पक्ष के राजाओं ने अब भीमसेन पर बाण वर्षा की झड़ी लगाना आरम्भ किया। इन शूरवीरों की क्रोध से आँखें लाल हो रही थीं, और ये वृकोदर भीम को मार देना चाहते थे ॥३६॥

तां विदार्य महासेनां शरैः सन्नतपर्वभिः ।
निश्चक्राम रणाद्भीमो मत्स्यो जालादिवाम्भसि ॥३७॥

नतपर्वधारी बाणों से कौरवों की विशाल सेना को चीरकर भीमसेन रण में ऐसा बाहर निकल आया—जैसे कोई महामत्स्य जल में जाल को चीरकर बाहर निकल गया हो ॥३७॥

हत्वा दशसहस्राणि गजानामनिवर्तिनाम् ।
नृणां शतसहस्रे द्वे द्वे शते चैव भारत ॥३८॥
पञ्च चाश्वसहस्राणि रथानां शतमेव च ।
हत्वा प्रास्यन्दयद्भीमो नदीं शोणितवाहिनीम् ॥३९॥

हे भारत ! इस प्रकार अब तक भीमसेन ने युद्ध से नहीं हटने वाले दश सहस्र हाथी मार दिए और दोलाख दोसौ वीर भी मार गिराए। इसी तरह पाँच हज़ार घोड़े और सौ रथी भी मार दिए। इस प्रकार भीम ने रक्तमयी नदी रणभूमि में बहादी ॥३८-३९॥

शोणितोदां रथावर्तां हस्तिग्राहसमाकुलाम् ।
नरमीनाश्वनक्रान्तां केशशैवलशाद्वलाम् ॥४०॥
सञ्छिन्नभुजनागेन्द्रां बहुरत्नोपहारिणीम् ।
ऊरुग्राहां मज्जपङ्कां शीर्षोपलसमावृताम् ॥४१॥
धनुःकाशां शरावापां गदापरिघकेतनाम् ।
हंसच्छत्रध्वजोपेतामुष्णीषवरफेनिलाम् ॥४२॥
हारपद्माकरां चैव भूमिरेणूर्मिमालिनीम् ।
आर्यवृत्तवतीं सङ्ख्ये सुतरां भीरुदुस्तराम् ॥४३॥
योधग्राहवतीं सङ्ख्ये वहन्तीं पितृसादनम् ।
क्षणेन पुरुषव्याघ्र प्रावर्तयत निम्नगाम् ॥४४॥

हे पुरुष व्याघ्र ! इस नदी में रक्त का जल, रथों के आवर्त और हाथी रूपी ग्राह मरे पड़े थे। वीर गण मछली और अश्व नक्र के समान थे। वीरों के केश शिवाल और तटवर्ती दूर्वा आदि के अंकुर थे। कटी हुई भुजाएँ जल सर्प थे, जिनमें मणिवत रत्न जटित आभूषण थे। कटी हुई जंघाएँ छोटेर ग्राह के तुल्य

प्रतीत होती थी और मज्जा की कीचड़ मानी गई। वीरों के मस्तक जल में पड़े हुए पत्थर थे। धनुषों के नदी तटवर्ती कुशा काश बाणों के तृण विशेष और गदा, परिघ और ध्वजा भी नदी के वृक्ष थे। हंसों के छत्र, ध्वजाएँ थी और उत्तम श्वेतपगड़ी फेन से भहरहे थे। हारों के कमल वन और भूमि की रेणु, तरङ्ग वत् मानी गई। इस नदी में आर्य वीर स्नान करते थे, जो कायर लोगों को भय जनक थी। अनेक योधाओं के भीषण जल जन्तु थे, जो रण में बहती हुई नदी पितृलोक को बह कर जारही थी। इस प्रकार वीर श्रेष्ठ भीमसेन ने क्षणभर में रक्त की नदी बहा दी ॥४०-४४॥

यथा वैतरणीमुग्रां दुस्तरामकृतात्मभिः।
तथा दुस्तरणीं घोरां भीरूणां भयवर्धनीम् ॥४५॥

पापी लोगों को जैसे वैतरणी नदी बड़ी उग्र और दुस्तर प्रतीत होती है। उसी तरह कायर लोगों को यह बड़ी दुस्तर, घोर भय बढ़ाने वाली थी ॥४५॥

यतो यतः पाण्डवेयः प्रविष्टो रथसत्तमः।
ततस्ततोऽपातयत योधाञ्शतसहस्रशः ॥४६॥

जिस २ ओर पाण्डुपुत्र भीमसेन, कौरव सेना में घुस जाते थे उसी ओर लाखों वीरों को वे धराशायी बनाते चले जाते थे ॥४६॥

एवं दृष्ट्वा कृतं कर्म भीमसेनेन संयुगे।
दुर्योधनो महाराज शकुनिं वाक्यमब्रवीत् ॥४७॥

हे महाराज ! जब भीमसेन द्वारा किया हुआ यह भयानक वीर कर्म राजा दुर्योधन ने देखा तो वह गान्धारराज शकुनि से यह वचन कहने लगा ॥४७॥

जहि मातुल संग्रामे भीमसेनं महाबलम् ।
अस्मिञ्जिते जितं मन्ये पाण्डवेयं महाबलम् ॥४८॥

हे मातुल ! अब तुम संग्राम में प्रथम इस महाबली भीमसेन को मार गिराओ । यदि भीमसेन जीत लिया गया-तो मेरी समझ में सारी ही पाण्डव सेना जीत ली गई ॥४८॥

ततः प्रायान्महाराज सौबलेयः प्रतापवान् ।
रणाय महते युक्तो भ्रातृभिः परिवारितः ॥४९॥

हे महाराज ! इतना सुनते ही महाप्रतापी सुबल-पुत्र शकुनि अपने भ्राताओं से युक्त होकर घोर युद्ध करने को चल पड़ा ॥४९॥

स समासाद्य संग्रामे भीमं भीमपराक्रमम् ।
वारयामास तं वीरो वेलेव मकरालयम् ॥५०॥
स न्यवर्तत तं भीमो वार्यमाणः शितैः शरैः ।

इसने संग्राम में पहुंच कर भयानक पराक्रमी भीमसेनको इस तरह जा रोका-जैसे वेला समुद्र को रोक देती है । भीमसेन भी अपने तीखे बाणों से शकुनि को रोकने लगा ॥५०॥

शकुनिस्तस्य राजेन्द्र वामपार्श्वे स्तनान्तरे ॥५१॥
प्रेषयामास नाराचान्रुक्मपुङ्खाञ्शिलाशितान् ।

वर्म भित्वा तु ते घोराः पाण्डवस्य महात्मनः ॥५२॥
न्यमज्जन्त महाराज कङ्कबर्हिणवाससः ।

हे राजेन्द्र ! अब शकुनि ने उसकी बांयी पार्श्व के स्तन में सुवर्ण, भूषित, शिलापर तीक्ष्ण किए हुए, बाणों का प्रहार किया। ये कङ्क और मयूर पक्षी के पङ्ख से विभूषित, घोर शकुनि के बाण महावीर पाण्डु-पुत्र भीमसेन के कवच को वींध कर शरीर में घुस गए ॥५१-५२॥

सोऽतिविद्धो रणे भीमः शरं रुक्मविभूषितम् ॥५३॥
प्रेषयामास स रुषा सौबलं प्रति भारत ।

हे भारत ! जब इस रण में भीमसेन, बहुत ही घायल हो गया-तो उसने सुवर्ण विभूषित, बाण, क्रोध-पूर्वक सुबल-पुत्र शकुनि पर फेंका ॥५३॥

तमायान्तं शरं घोरं शकुनिः शत्रुतापनः ॥५४॥
चिच्छेद सप्तधा राजन्कृतहस्तो महाबलः ।

हे राजन ! शत्रुतापकारी शकुनि ने भीम के जोड़े हुए घोर बाण को आता देखा-तो उसने उसके सात टुकड़े कर दिए क्योंकि शकुनि बड़ा बलवान् और हस्त कौशल युक्त था ॥५४॥

तस्मिन्निपतिते भूमौ भीमः क्रुद्धो विशाम्पते ॥५५॥
धनुश्चिच्छेद भल्लेन सौबलस्य हसन्निव ।

हे विशाम्पते ! जब भीमसेन ने अपने बाण को कटकर भूमि पर पड़ा हुआ देखा-तो उसने हँसते २ एक भल्ल संज्ञक बाण छोड़ा, जिसने सुबल-पुत्र शकुनि का धनुप काट डाला ॥५५॥

तदपास्य धनुश्छिन्नं सौबलेयः प्रतापवान् ॥५६॥
अन्यदादाय वेगेन धनुर्भल्लांश्च पोडश ।
तैस्तस्य तु महाराज भल्लैः सन्नतपर्वभि ॥५७॥
द्वाभ्यां स सारथिं ह्यार्च्छद्भीमं सप्तभिरेव च ।
ध्वजमेकेन चिच्छेद द्वाभ्यां छत्रं विशाम्पते ॥५८॥
चतुर्भिश्चतुरो वाहान्विव्याध सुबलात्मजः ।

हे महाराज ! महाप्रतापी सुबल-पुत्र ने भी उस खण्डित धनुष को फैंक दिया और बड़े वेग से दूसरा धनुष उठाया, फिर उसपर सोलह भल्ल बाण चढ़ाए। हे विशाम्पते ! उन सन्नत पर्व धारी सोलह भल्लों में से-दो से तो सारथि और सात से भीमसेन को बींध दिया तथा एक से ध्वजा और दो से छत्र काट गिराया। शेष चार बाणों से चारों अश्वों को बींध गिराया ॥५६-५८॥

ततः क्रुद्धो महाराज भीमसेनः प्रतापवान् ॥५९॥
शक्तिं चिक्षेप समरे रुक्मदण्डामयस्मयीम् ।
सा भीमभुजनिर्मुक्ता नागजिह्वेव चञ्चला ॥६०॥
निपपात रणे तूर्णं सौबलस्य महात्मनः ।

ततस्तामेव संगृह्य शक्तिं कनकभूषणाम् ॥६१॥

भीमसेनाय चिक्षेप क्रुद्धरूपो विशाम्पते।

सा निर्भिद्य भुजं सव्यं पाण्डवस्य महात्मनः ॥६२॥

निपपात तदा भूमौ यथा विद्युन्नभश्च्युता।

हे महाराज ! अब प्रतापशाली भीमसेन क्रोध से जल उठा उसने सुवर्ण निर्मित लोहमयी शक्ति को रण में फैंका। भीमसेन की भुजा से छोड़ी हुई सर्प की जिह्वा के तुल्य लपलपाती हुई यह शक्ति, रण में महावीर शकुनि की ओर गिरने लगी-तो हे विशाम्पते ! उस समय शकुनि ने झपट कर उस सुवर्ण विभूषित को अपने हाथ से पकड़ लिया और क्रोध के साथ उसे भीमसेन पर फैंका। यह शक्ति महावीर पाण्डु-पुत्र भीमसेन की दांयी भुजा को छेद कर आकाश से गिरती हुई बिजली के तुल्य भूमि में गिर गई ॥५६-६२॥

अथोत्क्रुष्टं महाराज धार्तराष्ट्रैः समन्ततः ॥६३॥

न तु तं ममृषे भीमः सिंहनादं तरस्विनाम्।

अन्यद्गृह्य धनुः सज्यं त्वरमाणो महाबलः ॥६४॥

मुहूर्तादिव राजेन्द्र च्छादयामास सायकैः।

सौबलस्य बलं संख्ये त्यक्त्वाऽऽत्मानं महाबलः ॥६५॥

हे महाराज ! शकुनि के वीर कर्म को देख कर सब ओर से धृतराष्ट्र वीर हर्षध्वनि करने लगे। भीमसेन इन तेजस्वी वीरों के

इस सिंहनाद को नहीं सह सका और वह झल्ला उठा। हे राजेन्द्र ! इस महाबली भीमसेन ने वेग के साथ दूसरा धनुष उठाकर खेंचा और उससे इतने बाण छोड़े कि जिस से थोड़ी ही देर में सुबल पुत्र शकुनि की सेना आच्छादित कर दी। इस समय भीमसेन को अपने प्राणों का भी मोह न था ॥६३-६५॥

तस्याश्वांश्चतुरो हत्वा सूतं चैव विशाम्पते ।
ध्वजं चिच्छेद भल्लेन त्वरमाणः पराक्रमी ॥६६॥

हे विशाम्पते ! महापराक्रमी भीमसेन ने शकुनि के चारों अश्व और सारथि को मारकर एक भल्ल नामक बाण से बड़े वेग से उसकी ध्वजा काट डाली ॥६६॥

हताश्वं रथमुत्सृज्य त्वरमाणो नरोत्तमः ।
तस्थौ विस्फारयंश्चापं क्रोधरक्तेक्षणः श्वसन् ॥६७॥
शरैश्च बहुधा राजन्भीममार्च्छत्समन्ततः ।

जब शकुनि के रथ के अश्व मारे गए-तो उस नरप्रवीर शकुनि ने, उस रथ को बड़ी शीघ्रता से छोड़ दिया। वह क्रोध से लाल नेत्र करके, श्वास लेता हुआ धनुष को खैंचने लगा। हे राजन् ! उस धनुष से उसने इतने बाण छोड़े, कि जिनसे भीमसेन को बिल्कुल आच्छादित कर दिया ॥६७॥

प्रतिहत्य तु वेगेन भीमसेनः प्रतापवान् ॥६८॥
धनुश्चिच्छेद संक्रुद्धो विव्याध च शितैः शरैः ।

महाप्रतापवान् भीमसेन ने भी उसका वेग से प्रतीकार करके क्रोध-पूर्वक तीखे बाण छोड़कर उसको काट डाला और उसे भी छेद दिया ॥६८॥

सोऽतिविद्धो बलवता शत्रुणा शत्रुकर्शनः ॥६९॥

निपपात तदा भूमौ किंचित्प्राणो नराधिपः ।

शत्रु नाशक, शकुनि, बलवान शत्रु भीमसेन द्वारा आहत होकर बहुत ही व्याकुल हो गया । अब शकुनि में थोड़े ही प्राण शेष थे, कि वह भूमि में गिर गया ॥६९॥

ततस्तं विह्वलं ज्ञात्वा पुत्रस्तव विशाम्पते ॥७०॥

अपोवाह रथेनाजौ भीमसेनस्य पश्यतः ।

हे विशाम्पते ! अब शकुनि को व्याकुल देख कर तुम्हारे राजा दुर्योधन ने शकुनि को अपने रथ में उठा लिया और रणाङ्गण में भीमसेन के देखते २ उसे वहां से उठा ले गया ॥७०॥

रथस्थे तु नरव्याघ्रे धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ॥७१॥

प्रदुद्रुवुर्दिशो भीता भीमाज्जाते महाभये ।

जब शकुनि को रथ में रख लिया-तो सारी कौरव सेना, युद्ध से पराङ्मुख हो गयी । इस समय भीमसेन से बड़ा भय खड़ा हो गया और सारे भयभीत हो कर प्रत्येक दिशा को भाग गए ॥७१॥

सौबले निर्जिते राजन्भीमसेनेन धन्विना ॥७२॥

भयेन महताऽऽविष्टः पुत्रो दुर्योधनस्तव ।

अपायाज्जवनैरश्वैः सापेक्षो मातुलं प्रति ॥७३॥

हे राजन् ! जब धनुर्धर भीमसेन ने शकुनि को जीत लिया तो तुम्हारा पुत्र राजा दुर्योधन बहुत ही भय से व्याकुल हो गया यह अपने मातुल शकुनि के प्राण बचाना चाहता था, इससे अपने वेगशाली अश्वों से शकुनि को लेकर वेग से रण से निकल गया ॥७२-७३॥

पराङ्मुखं तु राजानं दृष्ट्वा सैन्यानि भारत ।
विप्रजग्मुः समुत्सृज्य द्वैरथानि समन्ततः ॥७४॥

हे भारत ! जब क्षत्रिय वीरों ने राजा दुर्योधन को युद्ध भूमि छोड़ कर जाते देखा तो सब ओर अपनी२ जाट छोड़ कर कौरव योद्धा भी चल पड़े ॥७४॥

तान्दृष्ट्वा विद्रुतान्सर्वान्धार्तराष्ट्रान्पराङ्मुखान् ।
जवेनाभ्यापतद्भीमः किरन् शरशतान्बहून् ॥७५॥

जब भीमसेन ने कौरव सेना में भगदड़ देखी-तो उन्हें युद्ध से विमुख देखकर सैकड़ों बाण बरसाता हुआ भीमसेन उस सेना पर टूट पड़ा । ॥७५॥

ते वध्यमाना भीमेन धार्तराष्ट्राः पराङ्मुखाः ।
कर्णमासाद्य समरे स्थिता राजन्समन्ततः ॥७६॥

हे राजन् ! अब भीमसेन द्वारा आहत होकर धृतराष्ट्र वीर युद्ध से पराङ्मुख होगया और वे सब ओर से अङ्गराज कर्ण के पास जाकर इकट्ठे हो गए ॥७६॥

स हि तेषां महावीर्यो द्वीपोऽभूत्सुमहाबलः ।
भिन्ननौका यथा राजन्द्वीपमासाद्य निर्वृताः ॥७७॥
भवन्ति पुरुषव्याघ्र नाविकाः कालपर्यये ।

हे राजन ! यह महाबली वीर कर्ण ही इस समय इनका रक्षक इस तरह हुआ जैसे समुद्र में टूटी हुई नौका वाले नाविक किसी द्वीप को पाकर सुसमय पर सुरक्षित हो जाते हैं ॥७७॥

तथा कर्णं समासाद्य तावकाः पुरुषर्षभ ॥७८॥
समाश्वस्ताः स्थिता राजन्संप्रहृष्टाः परस्परम् ।
समाजग्मुश्च युद्धाय मृत्युं कृत्वा निवर्तनम् ॥७९॥

इति श्रीमहाभारते शतसाहस्रयां संहितायां वैयासिक्यां,
कर्णपर्वणि शकुनिपराजये सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥

हे पुरुषर्षभ ! इस प्रकार महारथी कर्ण के पास पहुंच कर तुम्हारी सेना को आश्वासन मिला और वह प्रसन्नता के साथ वहां स्थित हुई थोड़ी देर के अनन्तर वह सेना मृत्यु का भय छोड़ कर युद्ध के लिए प्रवृत्त हो गई ॥७८-७९॥

इतिश्री महाभारतान्तर्गत कर्णपर्व में शकुनि पराजय का
सतहत्तरवां अध्याय सम्पूर्ण हुआ ।



अठहत्तरवां अध्याय

धृतराष्ट्र उवाच—

ततोभग्नेषु सैन्येषु भीमसेनेन संयुगे।
दुर्योधनोऽब्रवीत्किं नु सौवलो वाऽपि सञ्जय ॥१॥
कर्णो वा जयतां श्रेष्ठो योधा वा मामका युधि।
कृपो वा कृतवर्मा वा द्रौणिर्दुःशासनोऽपि वा ॥२॥

धृतराष्ट्र ने कहा-हे सञ्जय ! जब भीमसेन द्वारा सारी कौरव सेना भगादी गई-तो उस समय सुबलपुत्र शकुनी राजा दुर्योधन विजयशीलवीरों में श्रेष्ठ कर्ण, या अन्य योद्धा, कृपाचार्य, कृतवर्मा अश्वत्थामा या दुःशासन ने रणभूमि में क्या कहा ॥१-२॥

अत्यद्भुतमहं मन्ये पाण्डवेयस्य विक्रमम्।
यदेकः समरे सर्वान्योधयामास मामकान् ॥३॥

हे सूत ! मैं तो पाण्डुपुत्र भीमसेन को अद्भुत पराक्रमी जानता हूं-जो अकेले ने, रण में सारे मेरे महारथियों को मार भगाया ॥३॥

यथाप्रतिज्ञं योधानां राधेयः कृतवानपि।
कुरूणामथ सर्वेषां कर्णः शत्रुनिषूदनः ॥४॥
शर्म वर्म प्रतिष्ठा च जीविताशा च सञ्जय।

शत्रुनाशक राधापुत्र कर्ण ने भी अपनी प्रतीज्ञा के अनुसार सारे कौरव योद्धाओं की रक्षा की, हे सञ्जय ! इस समय कर्ण ही

कौरवों का कल्याण करने वाला, कवच, रक्षक या जीवन की आशा देने वाला था ॥४॥

तत्प्रभग्नं बलं दृष्ट्वा कौन्तेयेनामितौजसा ॥५॥
राधेयो वाप्याधिरथिः कर्णः किमकरोद्युधि ।
पुत्रा वा मम दुर्धर्षा राजानो वा महारथाः ॥
एतन्मे सर्वमाचक्ष्व कुशलो ह्यसि सञ्जय ॥६॥

अत्यन्त ओजस्वी कुन्ती पुत्र भीमसेन द्वारा अपनी सेना को छिन्न-भिन्न देखकर अधिरथ और राधापुत्र कर्ण मेरे दुर्धर्ष पुत्र, या महारथी राजाओंने क्या किया। हे सञ्जय! तुम चतुर मनुष्य हो मुझे यह सब कुछ सुनाओ। ॥५-६॥

सञ्जय उवाच—

अपराह्णे महाराज सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
जघान सोमकान्सर्वान्भीमसेनस्य पश्यतः ॥७॥
भीमोऽप्यतिबलं सैन्यं धार्तराष्ट्रं व्यपोथयत् ।
अथ कर्णोऽब्रवीच्छल्यं पञ्चालान्प्रापयस्व माम् ॥८॥

सञ्जय ने कहा—हे महाराज! दोपहर दिन व्यतीत होने पर महाप्रतापी, सूतपुत्र कर्ण ने भीमसेन के देखतेर बहुत से-सोमकवीरों को मारर कर बिछा दिया, उधर भीमसेन ने भी कौरवों की बलवान सेना का विध्वंस उड़ा दिया इसके अनन्तर महारथी कर्ण ने मद्रराज शल्य से कहा-कि तुम मुझे पञ्चाल सेना की ओर ले चलो ॥७-८॥

द्राव्यमाणं बलं दृष्ट्वा भीमसेनेन धीमता ।

यन्तारमब्रवीत्कर्णः पञ्चालानेव मां वह ॥६॥

महाबुद्धिमान्, भीमसेन द्वारा भगाई हुई सेना को देखकर कर्ण ने अपने सारथि से कहा- कि मुझे शीघ्र पञ्चाल सेना में पहुंचाओ ॥६॥

मद्रराजस्ततः शल्यः श्वेतानश्वान्महाजवान् ।

प्राहिणोच्चेदिपञ्चालान्करूपांश्च महाबलः ॥१०॥

अब मद्रराज महाबली शल्य ने, बड़े वेगशाली कर्ण के श्वेत अश्वों को चेदि, पञ्चाल, करूषों की सेना की ओर चलाया ॥१०॥

प्रविश्य च महत्सैन्यं शल्यः परबलार्दनः ।

न्ययच्छत्तुरगान्हृष्टो यत्र यत्रैच्छदग्रणीः ॥११॥

शत्रु सेना नाशक, शल्य ने महा सेना में प्रविष्ट होकर उसी ओर अश्वों को चलाया-जिस ओर सेनापति कर्ण जाना चाहता था ॥११॥

तं रथं मेघसंकाशं वैयाघ्रपरिवारणम् ।

संदृश्य पाण्डुपञ्चालास्त्रस्ता ह्यासन्विशाम्पते ॥१२॥

हे विशाम्पते ! मेघ के समान उमड़ते हुए सिंह चर्म से आवृत कर्ण के रथ को देखकर पाण्डव और पञ्चाल वीर बड़े ही दुःखी हुए ॥१२॥

ततो रथस्य निनदः प्रादुरासीन्महारणे ।
पर्जन्यसमनिर्घोषः पर्वतस्येव दीर्यतः ॥१३॥

इस समय कर्ण के रथ की ध्वनि इस महा रण में मेघ की गर्जना या पर्वत के फटने की ध्वनि के सदृश सुनाई दे रही थी ॥१३॥

ततः शरशतैस्तीक्ष्णैः कर्ण आकर्णनिःसृतैः ।
जघान पाण्डवबलं शतशोऽथ सहस्रशः ॥१४॥

अब कर्ण ने अपने कर्ण तक खैंच कर सैंकड़ों हजारों की सङ्ख्या में तीक्ष्ण बाण छोड़े जिनसे पाण्डव सेना को मार मार कर बिछा दिया ॥१४॥

तत्तथा समरे कर्म कुर्वाणमपराजितम् ।
परिवव्रुर्महेष्वासाः पाण्डवानां महारथाः ॥१५॥

रण में महावीर कर्म कर दिखाने वाले, विजयशाली कर्ण को देखकर महाधनुर्धर पाण्डव महारथियों ने उसे घेर लिया ॥१५॥

तं शिखण्डी च भीमश्च धृष्टद्युम्नश्च पार्षतः ।
नकुलः सहदेवश्च द्रौपदेयाश्च सात्यकिः ॥१६॥
परिवव्रुर्जिघांसन्तो राधेयं शरवृष्टिभिः ।

इस समय शिखण्डी, भीमसेन, पर्षतवंशोद्भव धृष्टद्युम्न, नकुल सहदेव द्रौपदी पुत्र और सात्यकि आदि पाण्डव, वीरों ने कर्ण के मार देने की इच्छा से उसे घेर लिया ॥१६॥

सात्यकिस्तु तदा कर्णं विंशत्या निशितैः शरैः ॥१७॥
अताडयद्रणे शूरो जत्रुदेशे नरोत्तमः ।
शिखण्डी पञ्चविंशत्या धृष्टद्युम्नश्च सप्तभिः ॥१८॥
द्रौपदेयाश्चतुःषष्ट्या सहदेवश्च सप्तभिः ।
नकुलश्च शतेनाजौ कर्णं विव्याध सायकैः ॥१९॥

अब नरश्रेष्ठ शूरवीर सात्यकि ने रण में कर्ण पर बीस तीखे बाण छोड़कर उसके जत्रु प्रदेश में प्रहार किया। शिखण्डी ने पचीस, धृष्टद्युम्न ने सात, द्रौपदी पुत्रों ने चौसठ, सहदेव ने सात, नकुल ने सौ, बाण मार कर कर्ण को रण में बाणों से बींध दिया ॥१७-१९॥

भीमसेनस्तु राधेयं नवत्या नतपर्वणाम् ।
विव्याध समरे क्रुद्धो जत्रुदेशे महाबलः ॥२०॥

इसके अनन्तर महाबली भीमसेन ने भी नतपर्वधारी नब्बे बाण, राधा-पुत्र कर्ण पर छोड़कर उसके जत्रु देश में क्रोध-पूर्वक प्रहार किया ॥२०॥

अथ प्रहस्याधिरथिर्व्याक्षिपद्धनुरुत्तमम् ।
मुमोच निशितान्बाणान्पीडयन्सुमहाबलः ॥२१॥
तान्प्रत्यविध्यद्राधेयः पञ्चभिः पञ्चभिःशरैः ।
सात्यकेस्तु धनुश्छित्वा ध्वजं च भरतर्षभ ॥२२॥

अब कुछ मुसकरा कर अत्यन्त बली अधिरथ पुत्र कर्ण ने अपना उत्तम धनुष उठाया और भीम को पीड़ित करते हुए तीक्ष्ण

बाण छोड़ना आरम्भ किया। हे भरतर्षभ ! इन बाणों से राधा-पुत्र कर्ण ने पांच २ बाण छोड़े और सात्यकि के धनुष को काट कर उसपर ध्वजा को काट गिराया ॥२२॥

तं तथा नवभिर्बाणैराजघान स्तनान्तरे ।
भीमसेनं ततः क्रुद्धो विव्याध त्रिंशता शरैः ॥२३॥
सहदेवस्य भल्लेन ध्वजं चिच्छेद मारिष ।
सारथिं च त्रिभिर्बाणैराजघान परन्तपः ॥२४॥
विरथान्द्रौपदेयांश्च चकार भरतर्षभ ।
अक्ष्णोर्निमेषमात्रेण तदद्भुतमिवाभवत् ॥२५॥

अब महारथी कर्ण ने नौ बाण तो सात्यकि के वक्षस्थल में मारे और तीस बाण क्रोध-पूर्वक भीमसेन पर छोड़े। हे आर्य ! इसी तरह भल्ल बाण सहदेव पर छोड़ कर उनकी ध्वजा काट गिराई। शत्रुतापी कर्ण ने तीन बाणों से इसके सारथि को बींध दिया। हे भरतर्षभ ! इसी तरह द्रौपदी-पुत्रों को भी रथ से हीन बना दिया। यह सब कुछ अद्भुत चमत्कार आँख झपकाने में जितनी देर लगे-उतने ही समय में हो गया ॥२३-२५॥

विमुखीकृत्य तान्सर्वान्शरैः सन्नतपर्वभिः ।
पञ्चालानहनच्छूरांश्चेदीनां च महारथान् ॥२६॥

महारथी कर्ण- अपने नतपर्वधारी बाणों से इन सबको रण से विमुख करके पञ्चाल शूरवीर और चेदी वंश के महारथियों को मार २ कर गिराने लगा ॥२६॥

ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ।
कर्णमेकमभिद्रुत्य शरसङ्घैः समार्पयन् ॥२७॥
तान्जघान शितैर्बाणैः सूतपुत्रो महारथः ।

हे विशाम्पते ! जब इस प्रकार कर्ण द्वारा चेदी और मत्स्यवीर छेदे गए-तो एक दम कर्ण पर टूट पड़े और उसे बाण जाल से व्याप्त करने लगे । महारथी सूत-पुत्र ने भी उनको तीक्ष्ण बाणों से बींधना आरम्भ किया ॥२७॥

ते वध्यमानाः समरे चेदिमत्स्या विशाम्पते ॥२८॥
प्राद्रवन्त रणे भीताः सिंहत्रस्ता मृगा इव ।

हे विशाम्पते ! इस प्रकार चेदी वीर और मत्स्य महारथी रण में आहत हुए इस तरह भाग निकले-जैसे सिंह से डरे हुए मृग भागे हों ॥२८॥

एतदत्यद्भुतं कर्म दृष्टवानस्मि भारत ॥२९॥
यदेकः समरे शूरान्सूतपुत्रः प्रतापवान् ।
यतमानान्परं शक्त्या योधयानांश्च धन्विनः ॥३०॥
पाण्डवेयान्महाराज शरैर्वारितवान्रणे ।

हे भारत ! वहां मैंने रण में यह अद्भुत वीर कर्म देखा, कि महाप्रतापी सूत-पुत्र अकेले कर्ण ने रण में अपना बड़ा बल लगाते हुए बहुत से धनुर्धर पाण्डव योद्धाओं को अपने बाणों से वहीं रोक दिया ॥२९-३०॥